केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिये

निर्मल आयुर्वेद संस्थान, अलीगढ़

धन्वन्तरि

ज्वर चिकित्सांक

की

विषम ज्वर खण्ड

श्वसन प्रणालीय ज्वर खण्ड

आंत्र एवं रक्त दुष्टि जन्य ज्वर खण्ड

कीट दशज, पीडिका युक्त ज्वर एवं प्रकीर्ण ज्वर खण्ड

प्रयोग खण्ड

वेदों में ज्वर चर्चा

[2431] डा० ब्रह्मानंद त्रिपाठी

ऋग्, यजुः, साम एवम् अथर्व नामक वेदों का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि आयुर्वेद विषयक चर्चा अन्य वेदों की तुलना में अथर्व वेद में अधिक है। अथर्ववेद की नौ शाखायें हैं जिनमें से सम्प्रति पैप्पलाद और शौनकीय शाखा उपलब्ध है, शेष सात शाखायें अप्राप्त हैं। पठन-पाठन की दृष्टि से शौनकीय शाखा का अधिक व्यवहार है।

रोगों की उत्पत्ति तथा उनके प्रतिकार का यत्न सृष्टि के आरम्भ से ही होता चला आ रहा है। आयुर्वेद का सिद्धान्त भी यही है 'स्वस्थ की स्वास्थ्य रक्षा और रोगी को रोग से मुक्ति दिलाना'। संसार में उपलब्ध सभी वाङ्मयों में वैदिक वाङ्मय सबसे प्राचीन है। इसी से आयुर्वेद शास्त्र का स्रोत भी प्रवाहित हुआ है। सर्वानुक्रमणिका में जिन आयुर्वेदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के नाम आये हैं, उनकी संख्या प्रायः ७६ है।

प्रत्येक प्राणी की अपनी आयु सुनिश्चित है, वह बढ़ायी नहीं जा सकती, यथा—'आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः'। फिर भी वैदिक काल के महर्षियों की यह दृढ़ धारणा थी कि प्रार्थना आदि प्रयत्नों से उसमें वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार का वर्णन वेदों में अनेक स्थानों में वर्णित है।

रोगों के तीन कारण

१. शरीर के भीतर संचित विष* (मल), २. कृमि तथा जीवाणु*, जिनका दर्शन साधारण दृष्टि से नहीं हो सकता। आजकल का जीवाणुवाद (Germs Theory) वेद में सूत्र रूप में विद्यमान है। ३. त्रिदोष सिद्धान्त* अर्थात् वात, पित, कफ ये त्रिदोष हैं।

प्रथम कारण विष—"यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहम्" अथर्ववेद ९/८/१०। वैद्य कहता है, रोगी! मै तेरे सभी रोगों के विष को शरीर से बाहर निकालता हूं। यहाँ पर 'शरीर दूषणाद् दोषाः' के रूप में स्थित मल ही विष रूप हैं, यह स्पष्ट है।

दूसरा कारण कृमि—जब अन्न, जल, दूध आदि पदार्थों में प्रवेश करके कृमि या जीवाणु (Germs or Worms) शरीर में पहुँच जाते, हैं तो वे पुरुष को रुग्ण कर देते हैं। देखें—अथर्ववेद ५/२९/६, ७।

पूर्वोक्त जल आदि के सेवन के अनन्तर जूठे पात्रों में कुछ कृमि लगे रह जाते हैं जो दूसरे के शरीर में संक्रमण कर जाते हैं। देखें—यजुर्वेद १६/६२।

तीसरा कारण त्रिदोष—वेद में वात के इस प्रकार पाँच भेद किये हैं—१. प्राण, २. अपान, ३. व्यान, ४. समान और ५. उदान। यथा—'को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानम्। समानमस्मिन् को देवोऽधिशिश्राय पुरुषे' अथर्व० १०/२/१३। अर्थात् किस देव ने इस पुरुष में प्राण, अपान, व्यान, समान वायु को आश्रय दिया।

पित्त का वर्णन—'यकृन् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम्'। यजुर्वेद १९/८५। अर्थात् वरुण वायव्य पदार्थों से यकृत्, क्लोम और मतस्न (गुर्दे/निकाओं) की चिकित्सा करता हुआ, पित्त को नष्ट नहीं करता। इस मंत्र में वर्णित पित्त आयुर्वेदविदों का सम्मत है।

बलास (कफ) का वर्णन—'त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः'। अथर्ववेद ४/९/८। अंजन औषध के तक्मा (ज्वर), बलास (कफ) और आदहिः (दाहरोग) ये तीनों दास (अधीन) है। इस प्रकार अनेक मन्त्र वात, पित्त, कफ सम्बन्धी उपलब्ध होते है।

वेद में प्रायः सभी प्रकार के रोगों का वर्णन उपलब्ध होता है किन्तु काल भेद से नाम भेद का होना यह नितान्त स्वाभाविक है। जैसे वेद में ज्वर के लिए तक्मा शब्द का अधिकांश प्रयोग हुआ है। वहाँ इसकी निरुक्ति इस प्रकार की गयी है। तकि कृच्छ्रजीवने धातु से तक्मा शब्द बना है, इसका अर्थ है जीवन को कष्ट या दुःख देने वाला। मूल रूप से आमाशय स्थित अग्नि की विकृति ही ज्वर रोग का कारण होती है। देखें—'शकल्येषि यदि वा ते

जनित्रम्', अथर्ववेद १/२५/२। अर्थात् शकल्येपि (भोजन के टुकड़ों की इच्छा करने वाली आमाशय की अग्नि) मे ही तेरा जन्म है। इस वैदिक मत का लोक में भी सम्मान है। यथा–'मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रया:। वहिर्निरस्य कोष्ठाग्नि ज्वरदा: स्यु रसानुगा:' ॥ अर्थात् अहितकर आहार विहारो के कारण आमाशय तथा रसादि धातुओ मे स्थित प्रकुपित वातादि दोष कोष्ठ में स्थित अग्नि को बाहर की ओर प्रवृत्त कर ज्वरोत्पत्ति में कारण होते है।

उत्पत्ति विषयक चर्चा—

'यो वै रुद्र: सोऽग्नि'। शतपथ ब्राह्मण ५/२/४/३। अर्थात् जो रुद्र है वह अग्नि है। इसी का स्पष्ट रूप भगवान धन्वन्तरि के शब्दो मे देखे—'रुद्रकोपाग्निसम्भूत: सर्वभूतप्रतापन.'। सुश्रुत उ० अ० ३९/९। ऐसा ही आत्रेय पुनर्वसु ने भी स्वीकार किया है—'ज्वरस्तु खलु महेश्वर कोपप्रभव.'। चरक नि० अ० १। ज्वर महेश्वर के कोप से उत्पन्न होना है। रुद्र का ही पर्यायवाचक शब्द महेश्वर है।

अथर्ववेद में तक्मा (ज्वर) के भेद

अभ्रजा	अ० १/१२/३	कफ ज्वर
वातजा	,, ,,	वात ज्वर
शीत.	अ० ५/२२/१०	शीत ज्वर
रूर:	,, ,,	पैत्तिक ज्वर
तृतीयक	अ० ५/२२/१३	तृतीयक ज्वर
वितृतीय.	,, ,,	चातुर्थिक ज्वर
सदन्दि:	,, ,,	सन्तत ज्वर
शारद:	,, ,,	शरद् में होने वाला
वार्षिक.	,, ,,	वर्षा में होने वाला
ग्रैष्म:	,, ,,	गर्मी में होने वाला
विश्वशारद:	,, ,,	मलेरिया ज्वर
अन्येद्यु:	१/२५/४	अन्येद्युष्क ज्वर
उभयद्यु:	,, ,,	उभयद्यु ज्वर
अरुण:	६/२०/३	लालज्वर (मसूरिका मे)
बभ्रु:	,, ,,	पीतज्वर
अन्नन:	७/११६/२	विषम ज्वर

तक्मा (ज्वर) के उपद्रव

वेदों मे इस प्रकार का विस्तृत वर्णन प्राप्त नहीं होता कि किस ज्वर मे कौन से उपद्रव होते है किन्तु विश्वशारद (मलेरिया) ज्वर के सम्बन्ध मे ऐसा विवरण मिलता है— 'यस्यभीम: प्रतिकाश उद्वेपयति पूरुषम्'। अ. ६/८/६ ज्वर में शरीर अग्नि की भांति तपने लगता है, रोगी पागल की तरह प्रलाप करने लगता है और कांपने लगता है। ज्वर से मृत्यु भी हो जाती है। देखें—'अग्नेरिवास्य दहन एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति'। अथर्व० ६/२०/१ इनके अतिरिक्त ज्वर के और भी उपद्रव वर्णित है—जैसे शरीर की आन्तरिक एवं वाह्य गतियों में शिथिलता, जोड़ो में वेदना (जकड जाना), शिर:शूल, कास, हिक्का, क्षय, कामला आदि के विवरण इन मन्त्रों मे द्रष्टव्य है–अथर्व० १/१२/२, ५/२२/२,३,१०,११,१२, ६/२०/३ इस प्रकार का वर्णन उपस्थित कर वेद ने सैकड़ो प्रकार के उपद्रव होते है स्वीकार किया है। यथा—

'शतं रोपीश्च तक्मन:' । अथर्व० ५/३०/१६

वैदिक उपचार—

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम्। तक्मानं विश्वशारदमरसां जंगिडस्करत् ॥ अथर्व० १९/३४/१०

अशरीक, विशरीक, कफ, पसलियो के रोग, विश्व-शारद रोग इन सबको जंगिड मणि नीरस (समाप्त) कर देता है। कुष्ठ (कूठ) सभी प्रकार के ज्वरों का नाश करता है। देखें—अथर्व० ५/४/१।

'त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहि:'। अथर्व० ४/९/८ अर्थात् अञ्जन के सेवन से ज्वर, कफ, दाह नष्ट होते है और भी देखे–'वेदिर्वर्हि: समिध: शोशुचाना' अथर्व०–५/२२/१ यज्ञ करने से भी ज्वरों का नाश होता है।

अथर्ववेद में मूजवान (महावृष), वाल्हीक, गान्धार, अंग तथा मगध देशों का वर्णन आया है। अर्थात् इन देशों में होने वाले विशेष प्रकार के ज्वरों की चर्चा भी वेद का अन्यतम विषय रहा है। विशेष जानकारी के लिये अथर्व-वेद का स्वाध्याय करें, कि इसमें आयुर्वेद का किस प्रकार विस्तृत वर्णन किया गया है।

—डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
के० २०/६, घासीटोला, वाराणसी

"ज्वर" क्या है ?

ज्वर (पुं०) [ज्वर+घञ्] बुखार, ताप, मानसिक व्यथा, पीड़ा।

ज्वर की समाप्ति

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि।
तत्र आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परिवृङ्ग्धि तक्मन्।
—[अथर्ववेद का १ सू. २५ मंत्र १]

(यत्) कि (धर्मधृतः) वातिक पैत्तिक श्लेष्मिक धर्मों को धारण करते हुए (आपः) आहार रस (रसा वा आपः शतपथ ब्रा ३/३/३/१८) (यत्र) जहाँ (नमांसि) नमन झुकाव (कृण्वत्) करते हैं, वहाँ (अग्निः) कोष्ठ से स्थानच्युत अग्नि (प्रविश्य) प्रवेश करके (अदहत्) दहक उठता है *बस (तत्र) वहाँ (तक्मन्) वह तू।* (ते) तेरा (परमं जनित्रम) परम जन्म (आहुः) कहते हैं (सः) वह तू (नः) हमें (संविद्वान) समझता हुआ दृढ़ भाव रखता हुआ (परिवृङ्धि) वर्जित कर छोड़ दें।"

'यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा तेजनित्रम्
हरूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परिवृङ्ग्धि तक्मन्।' **—[अथर्ववेद का १ सूक्त २५ मंत्र २]**

(यदि अर्चिः) यदि तू अग्नि दीप्ति जैसा (यदि वा शोचिः) अग्नि ज्वाला जैसा (असि) है (शकल्य-इषि) देह के टुकड़े अंग-अंग में प्राप्त हो रहा है अंग-अंग को तोड़ रहा है (यदि वा जनितम्) अथवा तू अपने जन्म स्थान देह रस में प्राप्त है (सः) वह (हरितस्य हूंडुः नाम असि) शरीर में हरे रंग का प्रेरक अवश्य है (देव तक्मन्) हे पीड़ित करने वाले ज्वर। (संविद्वान्) समझता हुआ स्थिर भाव रखता हुआ (नः) हमें (परिवृङ्ग्धि) छोड़ दे।

ज्वर के शोक मोह आदि कारण—

यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञोवरुणस्यासि पुत्रः।
हरूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परिवृङ्ग्धि तक्मन्
—[अथर्ववेद १ कां १ सू. २५ मन्त्र ३]

"यदि (यदि तो (शोकः) शोक (यदि वा) और यदि अभिशोकः) मोह काम वासना (यदि वा) और यदि (वरुणस्य राज्ञः पुत्रः असि) वरुण राजा से उत्पन्न हुआ है ईर्ष्या आदि पाप से प्राप्त तथा (हरितस्य) शरीर में हरे रंग का (हुडु) प्रेरक 'हूंड' (गतौ) [भ्वादि०] (नाम) अवश्य (असि) है, अतः (सः) वह तू (देव तक्मन) हे पीड़ित करने वाले ज्वर (संविद्वान) समझता हुआ स्थिर भाव रखता हुआ स्थिर रूप (नः) हमें (परिवृङ्ग्धि) छोड़ दे।

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि। यो
अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने॥
—[अथर्ववेद कां १ सू. २५ मंत्र ४]

"(शीताय तक्मने नमः) शीत ज्वर पीडक के लिये यज्ञ होम या नाशन प्रतीकार (रूराय शोचिषे नः) ऊष्मज्वर दाहक ज्वर तापक के लिए यज्ञभवित जल या प्रतीकार (कृणोमि) करता हूं (यः अन्येद्युः) जो अगले दिन भी (उभयेद्युः) दूसरे दिन एक बीच में छोड़कर (अभ्येति) चढ़ता है [तृतीय काय तक्मने] तीसरे दिन दो दिन बीच में छोड़कर चढ़ता है उसके लिये [नमः अस्तु] यज्ञ-होम-सुगन्ध या प्रतीकार हो।" [1]

यहाँ ज्वर के लिए तक्मन् शब्द आया है। तक्मन् सर्व धातुभ्यो मनिन्। उणादि ४/१४५ इति तकि कृच्छ्रजीवने:=दुखेन जीवने-मनिन्। हे कृच्छ्रजीवनकारिन्,ज्वर।

ज्वर के उत्पत्ति प्रदेश—

ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बह्लिकेषु न्योचरः॥
—[अथर्व वेद काण्ड ५ सूक्त २२ मंत्र ५]

---

[1] **ये चारों अर्थ स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड "कृत" अथर्ववेद मुनिभाष्य** [तीन काण्ड] पृष्ठ ५७ से ५९ से लिए **गये हैं** [नवम्बर १९७४ ई. में भाष्यकार द्वारा आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर (हरिद्वार) द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]।

[अस्य] इस ज्वर का [ओकः] स्थान [मूजवन्तः] मूज वाले घास वाले जंगल है तथा [अस्य-ओकः] इसका स्थान [महावृषाः] बहुत वर्षा जल से युक्त प्रदेश हैं [तक्मन्] हे ज्वर। [यावत्] जितना या जैसे [जातः] प्रकट हुआ [तावान्] उतना या वैसे [वह्लिकेसु] आच्छादित स्थानों में जहां कि भली प्रकार सूर्य किरणें और वायु न पहुंच पाती हों ऐसे कुत्सित गन्दे स्थानों में भी [न्योचरः] नित्य संगत रहता है।[2]

बहुत से भाष्यकार 'वह्लिकेषु' का अर्थ संभवतः बलख बुखारा आदि अफगानिस्तान के समीपस्थ प्रदेश करते है जो उनका भ्रम है। वेदों में किसी प्रकार का भूगोल, इतिहास नही है। वेदों के सभी शब्द यौगिक हैं।

ज्वर के वातादि कारण—

यत् त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्मपरिवृङ्ग्धि नः॥
—[अथर्ववेद कां. ५, सूक्त २२, मत्र १०]

[तक्मन्] हे ज्वर। [यत्] कि [त्वम्] तू [शीतः] शीत पहुंचाने वाला कफ प्रधान श्लैष्मिक [अथो] और [रूरः] अग्निरूप तापकारी-पित्तप्रधान पैत्तिक [अग्निर्वैरूरः ताण्ड्य ब्रा. ७/५/१०। तथा [कासा सहवेपयः] खाँसी के साथ कम्पाने वाला वातप्रधान वातिक है [ते] तेरे [हेतयः] शस्त्र घातक आक्रमण या वेग [भीमाः] भयंकर हैं [ताभिः] उनसे [नः] हमें [परिवृङ्गधिस्म] मुक्त कर।[3]

ऋतुओं के कारण ऋतु ज्वर—

तृतीयकं वितृतीयकं सदन्दिमुत शारदम्।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम्॥
—[अथर्व ५/२२/१३]

[शारदम्] शरद् ऋतु में होने वाले [सदन्दिम्] सतत या सन्तत प्रतिदिन आने वाले [तृतीयकम्] एक दिन मध्य में छोड़कर तीसरे दिन आने वाले [उत] तथा [वितृतीयकम्] तीसरे दिन से आगे चौथे दिन आने वाले चातुर्थिक [शीतं तक्मानम] शीत लगकर चढ़ने वाले ज्वर को [ग्रैष्मं] ग्रीष्म ऋतु-सम्बन्धी [रूरम्] दाहक ज्वर को [वार्षिकम्] वर्षा ऋतु में होने वाले ज्वर को [नाशय] नष्ट कर।[4]

ज्वर के लक्षण –

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्नि रिवाभिदुन्वन्। अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि॥" **—[अथर्ववेद कां. ५ सू २२ मं० २]**

अर्थ—[योऽयम्] जो वह तू [तक्मन्] हे ज्वर। [अग्निः इव] अग्नि की भाँति [उत्श्चयन्] उज्ज्वलित होता हुआ उत्तेजित होता हुआ [अभिदुन्वन्] पीड़ित करता हुआ [विश्वान् हरितान्] सबको हरे पीले [कृणोपि) करता है [अधहि] अतएव अरसोहि सर्वथा अरस निःसत्व (भूयाः) होगा (अध) एवं (न्यङ्) स्वेद-पसीने द्वारा बिखरं कर (वा) या (अधराङ्) नीचे मल-मूत्र स्थान द्वारा (परेहि) दूर हो जा–अलग होगा।[5]

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति। अन्यमस्मादिच्छतु कंचिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने॥
—[अथर्व. वेद कां ६ सूक्त २०, मं० १]

अर्थ—वह [ज्वर] (दहतः) दहकती हुई, (शुष्मिणः) बलवान् (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के [ताप के] (इव) समान (एति) व्यापता है। (उत) और (मत्तः इव) उन्मत के समान (विलपन्) विलपता हुआ (अप अयति) भाग जाता है। (अस्मत्) हमसे (अन्यम्) दूसरे (कय्चित्) किसी [कुनयनी] के (अव्रतः) वह व्रतहीन (इच्छतु) ढूंढ लेवे। (तपुर्वधाय) तपते हुए अस्त्र रखने वाले (तक्मने) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नः) नमस्कार (अस्तु) होवे।[6]

अयं यो अभि शोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि। तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने॥
—अथर्ववेद कां० ६, सू० २०, मं० ३

---

[2] पं प्रियरत्न जी आर्य कृत 'अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र" पृष्ठ ५०-५४ [सन् १९४१ ई. श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]।

[3] वही, पृष्ठ ५४। [4] वही, पृष्ठ ५४। [5] वही, पृष्ठ ५७।

[6] पं. क्षेमकरण दास जी 'त्रिवेदी' कृत अथर्ववेद भाष्यम् षष्ठं काण्डम् पृष्ठ १२१६ [सन् १९१६ संवत् १९७३ वि.] प्रयाग, प्रथमावृत्ति

अर्थ—(अयम्) यह (यः) जो (अभिपोचयिष्णुः) बहुत ही शोक में डालने वाला तू (विश्वा) सब (रूहाणि) रूपों का (हरिता) हरे वा पीले (कृणोषि) कर देता है। (तस्मै) उस (ते) तुझ (अरुणाय) रक्त, (बभ्रवे) भूरे और (वन्याय) वनैले (तक्मने) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूं।[7]

ज्वर चिकित्सा—

ज्वर की चिकित्सा का वर्णन अथर्ववेद काण्ड ५, सूक्त २२ में है—

अग्निस्तक्मानमपबाधतामितः सोमोग्रावा वरुणः पूतदक्षा।
वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अपद्वेषांसमुया भवन्तु ।१।

अर्थ—(अग्निः) अग्नि (इतः) यहाँ से (तक्मानम्) ज्वर को (अपबाधताम्) हटावे भगावे। तथा (सोमः) सोम-औषधि (ग्रावा) पाषाण (पूतदक्षाः-समिधः) वेदि में प्रदीप्त होती हुई समिधायें भी हटावें-भगावें। एवं (द्वेषांसि) द्वेष के योग्य रोग कारण (अनुया) उस रोगी से (अपभवन्तु) दूर हों ॥१॥

सोम औषधि शुद्ध जल के सहयोग से पाषाण से पीस कर उसके स्वरस का होम तथा पके कषाय का पान करने से ज्वर तथा ज्वर के कारणरूप दोष दूर होते हैं।

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्नि रिवाभिदुन्वन्। अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि ॥२॥

अर्थ—[तक्मन्] हे ज्वर! [यः अयम] जो यह तू [अग्निः इव] अग्नि की भाँति [उत्–शोचयन्] उज्ज्वलित होता हुआ उत्तेजित होता हुआ। बढ़ता हुआ तथा [अभिदुन्वन्] पीड़ित करता हुआ [विश्वान् हरितान् कृणोषि] सब अंगों को हरे पीले कर देता है [अधहि] बस अब [अरसः हि] निः सत्त्व ही [भूयाः] हो जा [अद्य] एवं [न्यङ्] स्वेद पसीने द्वारा विखरकर [यः] या [अधराङ्] नीचे मल-मूत्र द्वारा [परेहि] दूर होगा।

इस मंत्र में ज्वर का लक्षण बताते हुए उसे पसीना देकर तथा मल-मूत्र द्वारा विरेचन या वस्ति देकर दूर करने की आंशिक चिकित्सा का वर्णन है।

[यः] जो [परुषः] कठोर [पारुषेयः] जोड़ों-अंगों में होने वाला [अवध्वंसः इव-अरुणः] नाशक अग्नि की भाँति लाल रूपवाला शरीर को वेग के समय लाल-लाल कर देने वाला है। उस [तक्मानम्] ज्वर को [विश्वधा वीर्य] सब प्रकार के रोग नाशक गुणों से युक्त हे सोम सोमरस सोम कषाय तू [अधराञ्चं परासुव] नीचे करके दूर भगा ॥३॥

अधराञ्चं प्रहिणोमि नमः कृत्वा तक्मने।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥४॥

अर्थ—[तक्मने] ज्वर के लिए [नमः कृत्वा] प्रतीकार करके या वज्ररूप औषधि या अभ्रक की गोली आदि बनाकर [अधराञ्चं प्रहिणोमि] नीचे प्रेरित करता हूं जो कि [शकम्भरस्य मुष्टिहा] शक्ति धारण करने वाले पुष्टिमान् को भी मुष्ठियों से मारने वाला जैसा है। ऐसा वह ज्वर [महावृषान्] महती वर्षा वाले देशों को वहाँ के रहने वाले को [पुनरेतु] वारम्वार आता है ॥४॥

ज्वर बड़ा भयंकर रोग है। शक्तिशाली पुष्ट मनुष्य को भी थका देता है और अति वर्षा वाले या अति वर्षा जल भरे देशों में रहने वालों को बार-बार आता है। इस लिए वज्ररूप अभ्रक औषधि का सेवन करना चाहिए।[8]

इस प्रकार इस सूक्त में १४ मंत्र हैं जिनमें ज्वर चिकित्सा की ही चर्चा है।

मंत्र ६ में "तक्मन् व्याल···दासीं निष्टक्वरीमिच्छ···" ज्वर की औषधि "दासी" कहा गया है। 'दासी' को 'काकजंघा' कहते हैं जो ज्वर नाशक है। 'राजनिघण्टु' में काकजंघा ध्वांक्षजंघा काकपादा तु लोमशा"···कहा है।

"तक्मन् मूजवतोगच्छः मंत्र ७ में शूद्रा" शब्द आया 'शूद्रा' औषधि के लिए आया है। 'फूल प्रियंगुलता' को शूद्रा कहा है। क्योंकि आयुर्वेदिक निघण्टुओं में 'प्रियंगु' को श्यामा, कुमांगी, महिलाह्वया' नाम दिए हैं जो शूद्रा के सदृश नाम है। तथा "वैद्यक शब्द सिन्धु" में 'प्रियंगु-लता' को 'शूद्रार्ता' कहा है। प्रियंगु ज्वरनाशक है [भाव प्रकाश निघण्टु]।

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ॥

मंत्र १४ में [गन्धारिभ्यः] गन्धपलाशी अर्थात् कचूर

शेष पृष्ठ ७३ पर देखें :

[7] क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी कृत अथर्ववेद भाष्यम षष्ठकाण्डम्, पृष्ठ १२१७-१२१८

[8] सभी अर्थ "अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र" पृष्ठ २७० से २७२ तक से लिए गए हैं—(लेखक)।

ज्वरोत्पत्ति की पुरातनता की समीक्षा

वैद्य श्री वेणी माधव अश्विनी कुमार शास्त्री भिषगाचार्य H P A.M.A
P.h.D· काय चिकित्सा विभागाध्यक्ष–शास. आयु. महाविद्यालय, ग्वालियर।

प्रसंगोपाख्यान—

ऐतिहासिक क्रमानुसार भारतीय वैज्ञानिकों की वर्णन शैली एवं पारिभाषिक शब्दावली में युगानुरूप परिवर्तन हुए है तथा आज भी होते रहते हैं, यह सर्वविदित है। इसी क्रम में स्मरणीय है कि त्रित्व का उपादान भारतीय वाङ्मय में सभी ज्ञान विज्ञान शाखाओं में विभिन्न रूपान्तरों के साथ चला आ रहा है। यथा—

देवत्व में त्रित्व	ब्रह्मा	विष्णु	महेश
लोकों में त्रित्व	भूः	भुवः	स्वः
तत्त्वों में त्रित्व	सत्त्व	रजः	तमः
लोकाङ्कने में त्रित्व	वायुः	अर्कः	सोमः
दोष	वात	पित्त	कफ

इसी परम्परा में प्राचीन गाथाओं के ससन्दर्भ पुरस्सर अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि रोगोत्पत्ति के क्रम का भारतीय इतिहास भी इसी प्रकार युगानुकूल मोड़ लेता हुआ चला आ रहा है। ज्वरोत्पत्ति की प्राथमिकता का कारण शरीर के षडंगों में से ज्वर का सम्बन्ध ललाट से माना गया है। च० नि० ८/११ में भगवान् आत्रेय ने लिखा है कि—ज्वरस्तु खलु महेश्वर ललाट प्रभवः। यहाँ ललाट चूँकि उत्तमाङ्ग होने से तथा षडंग में से सर्वप्रथम होने से ज्वर का प्रथम स्थान स्वयं सिद्ध हो जाता है। ललाट प्रभवत्व के लिए आधुनिक शरीर क्रिया विज्ञान के हायपोथैलेमस अंग जिसे Heat regulating Centre के नाम से जाना जाता है, प्रमुख उपादान माना जा सकता है। महेश्वर का तात्पर्य शिव जो कि भारतीय वाङ्मय में आदि पुरुष माना गया है, के साथ सिद्ध होता है। योगशास्त्र की परिभाषा में यदि विचार करें तो योगियों का सहस्रार पद्म ही महेश्वर स्थानीय है। तंत्र वाङ्मय में आदि गुरु का स्थान भी सहस्रार ही स्वीकृत है। आदि गुरु शिव ही माने गये हैं। वामकेश्वर तंत्र में गुरु वन्दना में प्रकट किया श्लोक देखें—

ब्रह्म स्थान सरोज मध्यविलसत्, शीतांशु पीठ स्थितम्।
स्फटिकसूर्य रुचिं वराभयकरं कर्पूर कुन्द उज्ज्वलम्॥
श्वेत स्रग्वसनानु लेपनयुत, विद्युद्वाकान्तया॥
सश्लिष्टार्द्धतनुं प्रसन्नवदन, वन्देगुरुं सादरम्॥

× × ×

तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं सर्वार्थं सिद्धि प्रदम्॥

इस प्रकार महेश्वर ललाट प्रभव ज्वर रोग गाथा क्रम से प्रासंगिक सिद्ध हो जाता है।

कारणता प्रसंग

भगवान् आत्रेय ने ज्वरातिहास वर्णन में "महेश्वर कोप प्रभवो ज्वरः" च० नि० १/३५ पर निरूपित किया है। कोप कारणजन्यता ज्वर व्याधि के लिए भारतीय

वाङ्मय में प्रसिद्ध है। कोप के कारण पित्त का प्रकोप आयुर्वेद में सिद्धान्ततया स्वीकृत है। 'क्रोधात् पित्तं प्रकुप्यति' इस आधार पर भी महेश्वर-सहस्रार पद्म में स्थित आलोचक पित्त, तद्भेदस्वरूप आचार्य भेल की परिभाषानुसार बुद्धिवैशेषिक पित्त की ललाट स्थानवृद्धि के परिणामस्वरूप ज्वर की कोपजन्यता सिद्ध हो जाती है। कोप मानस भाव है, इस भाव से पित्त भेद बुद्धिवैशेषिक पित्त की वृद्धि होकर तज्जन्य प्रभाव से संताप लक्षण की भी सिद्धि हो जाती है। संताप का प्रासंगिक अर्थ च० चि० ३/४ पर देह-इन्द्रिय एवं मनस्ताप कहकर किया है। देह ताप त्वचागत ऊष्म वृद्धि से ग्रहण किया जाता है, मनस्ताप वैचित्त्य (बेचैनी) अरति (विषयग्रहणासामर्थ्य) ग्लानि (कर्म प्रवृत्तिरभाव) के द्वारा जाना जाता है तथा इन्द्रिय संताप इन्द्रिय स्वभाव से भिन्न स्वभाव परिलक्षित होना माना गया है। आधुनिक शरीर क्रियाविद् कोप से प्रकुपित बुद्धिवैशेषिक पित्त स्थान-(आज्ञाचक्र) की उत्तेजना से अतिरिक्त एड्रीनल स्राव की अधिकता से ऊष्म वृद्धि मानते है। यह क्रिया विकृति भी इस प्रसंग से सिद्ध हो जाती है।

दक्षाध्वरध्वंस

भगवान् आत्रेय ने च० सू० १२/८ वातकलाकलीयाध्याय में वायु को प्रजापति सम्बोधित किया है। प्रजापति सम्बोधन दक्ष के लिए भारतीय वाङ्मय में सिद्ध है। इसी प्रकार च० चि० २८/३ पर भी महर्षि आत्रेय ने वायु को धाता तथा प्रभु शब्दो के साथ-साथ "वायुर्विश्वकृत्" भी कहा है। ज्वर के प्रसग मे आत्रेय की इस युक्ति को भी ध्यानपूर्वक ससन्दर्भ देखना अपेक्षित है। तद्यथा—

योगवाहः परं वायुः संयोगादुभयार्थकृत् ।
दाहकृत्तेजसा युक्तः शीतकृत्सोमसंश्रयात् ॥

—च०चि० ३/३८

इस अवतरण से यह प्रमाणित होता है कि वायु का योगवाह स्वरूप ही तेजस् तत्त्व (पित्त) के साथ मिलकर ज्वरोत्पादक हो जाता है। चूंकि आयुर्वेदज्ञों में आचार्य भेल-मनः का स्थान शिरः मानते हैं तथा भगवान आत्रेय वायु को "नियन्ता प्रणेता च मनसः" कहते हैं। मनः का नियंत्रण एवं प्रणयन ही दक्ष (वायु प्रजापति) का अध्वरयज्ञ है। जो निरन्तर इन्द्रियार्थों का इन्द्रियरूपी होताओं द्वारा प्रेषित अर्थ ग्रहणरूपी आहुतियों से पूर्ण होना रहता है। जब दक्ष का यह अध्वरध्वंस (विकृति) होती है तभी कोपज महेश्वर ललाट स्थान में विकृति होकर ज्वरोत्पत्ति मानी जा सकती है।

पुरातन गाथा की वैज्ञानिक परिभाषा में अन्वर्थकता

आत्रेयोक्त गाथा इतिहास इस प्रकार है—

द्वितीये हि युगे शर्वमक्रोधव्रतमास्थितम् ।
× × ×
जन्मादौ निधने च त्वमपत्तारान्तरेषु च ॥

—च चि० ३/१५-२५

द्वितीय त्रेतायुग मे सभी अक्रोध व्रतपूर्वक रहते हुए देवताओं को सहस्रों दिव्य वर्ष व्यतीत कर लेने पर तप एवं विघ्नों का नाश करने वाले प्रजाजनों, महात्माओं को तपोविघ्न कर्त्ता असुरों ने आवृत्त कर लिया। प्रजा की ऐसी तपोविघ्नक्षयकारिणी दशा देखकर विघ्नकारी असुरो के नाशार्थ प्रजापति दक्ष ने यज्ञ करने का निर्णय किया। इस यज्ञमहोत्सव में भाग लेने वाले देवताओं के परामर्श की उपेक्षाकर दक्ष ने निश्चयपूर्वक (अभिद्रोहवश) माहेश्वर भाग निरूपित नही किया। पशुपति की ऋचाये तथा शिव की आहुतियों के विना ही दक्ष ने यज्ञारभ किया। जबकि यज्ञ सिद्धि हेतु शैव ऋचा एवं आहुति आवश्यक थी। इस स्थिति का आत्म चिंतन करते हुए रुद्र देवता ने दक्ष का व्रत भंग एव व्यतिक्रम जानकर रौद्र भाव (अभिद्रोह-कोपः) से तृतीय चक्षु की ललाट स्थान मे सृष्टिकर तृतीय ललाट-चक्षु की क्रोधाग्नि से इस क्रम एवं पारणाहीन दक्ष यज्ञ को तप्त क्रोधाग्नि के नवोदित स्वरूप से नष्ट कर दिया तथा असुरों का भी नाश कर दिया। इस प्रकार दक्ष यज्ञ का (अभिद्रोहज क्रोधाग्नि) विनाश हुआ देख कर अग्नि प्रकोप जन्य दाह एवं व्यथा से पीड़ित देवतागण पीडित हुए तथा भूतगण भी भ्रान्त होकर स्वकार्यच्युति करने लगे।

इस महाव्यथाकारी अवस्था के निवारणार्थ देवतागण सप्तर्षि मण्डल को साथ लेकर ईश्वर (शिव) की शैवी ऋचाओं से स्तुति करने लगे। इससे क्रोधाग्नि जनित शिव कोप शैवीभाव कल्याणकारी शान्ति को प्राप्त हो गया। शिव क्रोधाग्नि के शान्त होते ही प्राणिमात्र को व्यथाकारी शिव कोप शीघ्र ही कल्याणकारी रूप में आ गया। तब शिवकोपज स्वरूप (संताप स्वरूप) स्वयं हाथ जोडकर भगवान् शिव से भयग्रस्त होकर बोला—भगवन् क्या आज्ञा है? शिव क्रोधोत्पन्न ज्वर स्वरूपतः तीन शिर वाला भस्मधारी, प्रहरण (दण्डधारी) नवलोचन, ज्वालामाला से

आवृत, छोटी जंघा एवं उदर वाला रौद्ररूप क्रोधाग्नि बोला—देव ! मैं आपकी क्या सेवा करूं ? तब भगवान ईश्वर शिव ने उसे कहा कि संसार में तुम ज्वर रोग बनकर रहोगे । तुम्हारी स्थिति जन्म के समय, मृत्यु के समय तथा अपचार काल में (मिथ्याहार विहार तथा हीनमिथ्याति योगज हेतुत्रसंयोग) रहेगी ।

इस पुरातन गाथा के स्पष्टार्थ ग्रहण हेतु पूर्व में वर्णित मात्र पारिभाषिक शब्दों का ही सन्दर्भ पुरस्सर अर्थ कर लेने पर वैज्ञानिक ज्वरोत्पत्ति क्रम का चित्र उभर कर सामने आ जाता है । मैं संपूर्ण भाषा का पिष्टपेषण न करते हुए केवल प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों के अर्थ प्रकट कर रहा हूं । उन शब्दों के साथ संपूर्ण प्रकरण ज्वर रूप सहित विकृति विज्ञानीय संप्राप्ति का परिचायक बन जाता है ।

१. द्वितीय युग	युवावस्था-पित्तप्रकोपज काल
२. अक्रोधव्रत स्थान	धातु साम्यावस्था
३. दिव्य सहस्र वर्ष	रस से शुक्रपर्यन्त धातु निर्माणकाल
४. असुर	ज्वरकारक शारीर मानस हेतु
५. तपोविघ्न	दोषवैषम्य
६. उपेक्षा	स्वस्थवृत्तस्य अनियमितता
७. दक्ष प्रजापति	तंत्रयंत्रधर''' प्राणोपरोधकः, वायुदोष
८. यज्ञ	स्वस्थवृत्तानुष्ठानरूप कर्म
९. सुर	मनोबुद्धीन्द्रिया
१०. पशुपति ऋचा	सद्वृत्त
११. शैव आहुति	ऋतुचर्यादिविधानं
१२. उत्तीर्ण व्रत	हीनमिथ्यातियोगा. कालार्थकर्मणाम्
१३. देव रुद्रः	पित्तम्
१४. रौद्रभाव	मानसकारणेषु क्रोधः
१५. ललाटेचक्षु	आज्ञाचक्रे तापनियंत्रण केन्द्र
१६. असुरान दग्ध्वा	शरीर मानसान कर्माणि संताप्य (विकृतभाव)
१७. प्रभु	तापनियंता पित्तम्
१८. बालक्रोधाग्नि संतप्तम्	नवसंतापयुक्त ज्वरं
१९. सत्रनाशनम्	स्वस्थवृत्तविधि विपरीतम्
२०. यज्ञोविध्वंस्तः	विकृति समागतः
२१. दिवौकमः व्यथिताः	सार्य इन्द्रियमनो व्यापार दुष्टि
२२. दाहव्यथापरीताः	संतापतायिता—वैचित्यारतिग्लानि युक्ताः
२३. भ्रान्तामूतगणाः	स्व थानान् उन्मार्गगताः
२४. दिशः	अधिष्ठानेषु
२५. ईश्वर	पित्तम्
२६. देवगणः	इन्द्रियां
२७. सप्तर्षि	सप्त धातुयें
२८. ऋग्भि स्तुतिः	शीततिक्त, सौमनस्यमंजनोपशयः
२९. शैवेभावेशिवः	नियमित संतापकर्त्ता वृद्धिवैशेषिकपित्तं
३०. भूतानां शिवाय	रोगिणां कल्याणाय
३१. भस्म	ज्वररोगे त्वग्रूक्षता (स्वेदावरोधज)
३२. प्रहरण	अंगमर्दः
३३. त्रिशिरा	शिरःशूलोप्रतीति (मानसानुभवः)
३४. नवलोचन	नवद्वारेषु (स्रेषु) संतापमार्गः
३५. ज्वालामालाकुलः	नेत्रदाहे अनुभूतिः
३६. रौद्र	ज्वराकृति
३७. ह्रस्वजंघोदर	ज्वरादेष्टे देहानुभवः (इन्द्रियवैकृत्यरूपं)
३८. क्रोधाग्नि	प्रकुपितं पित्तम्
३९. देवं	पित्तं (शिवं)
४०. ईश्वरः	शिवः (ताप नियंत्रकः)
४१. क्रोधं	कोपकारणकं
४२. लोके	मानवदेहे
४३. ज्वरः	ज्वर रोगः (देहेन्द्रियमनस्तापोति)
४४. जन्मादौ	प्रसव वेदनायां
४५. निधने	मृत्युकाले
४६. अपचारान्तरे	त्रयाणामायतनानां हीनमिथ्यातियोगे

ज्वर रोग का प्राचीन गाथामत्र यह उपाख्यान आज के युग में विकसित ज्वर की Etiopothalogy के साथ तुलना में किसी भी स्तर पर हीन मान्यता का नहीं है । इन सबसे आयुर्वेदज्ञों को इन इतिहासपरक मान्यताओं के प्रति शंकित नहीं होना चाहिए । जिस समुदाय द्वारा आयुर्वेदीय मान्यताओं के प्रति शंकायें की जाती हैं, उन्हें इन सब समंदर्भ मनीषाओं से जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये । ज्वर के प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान ही ज्वर को रोग मानता है तथा विस्तृत रूप से उसके Phys op-thologicrl fo m को निरूपित कर संप्राप्ति लक्षण सम्बन्ध पर पूर्ण प्रकाश डालता है । मार्डन मैडीसिन ज्वर को मात्र लक्षण ही मानते है ।

महाकाव्यों को पढ़ने पर यह ज्ञात होता है कि उस समय आयुर्वेद समृद्ध था तथा उसका प्रचार भी जन समाज में व्यापक रूप से हो चुका था। रामायण जो आदि काव्य के रूप में माना जाता है तथा महाभारत दोनों ही महाकाव्यों में आयुर्वेद का वर्णन स्थान-स्थान पर आया है। इसी प्रसंग में ज्वर का उल्लेख भी स्थान-स्थान पर यत्र-तत्र मिलता है।

रामायण में बालमीकि मुनि ने वात पित्त कफ के रूप में त्रिदोष तथा त्रिधातुओं का वर्णन प्रथक-प्रथक स्थानों पर किया है। जहाँ ये तीनों धातुयें स्वस्थ मनुष्य के शरीर को धारण करती हैं वहां ये विकृत होकर या विषम होकर रोगों को भी उत्पन्न कर देती है। अधिकांश शारीरिक रोगों की उत्पत्ति इन्हीं दोषों की विषमता या विकृति के कारण होती है। इन्हीं में ज्वर भी आते हैं। ज्वर की उत्पति भी त्रिदोषों से ही होती है। रामायण में ज्वर दो प्रकार का माना गया है—मानसिक तथा शारीरिक। दोनों ही प्रकार के ज्वरों का वर्णन रामायण में प्रसंगानुसार मिलता है। एक स्थान पर मुनि ने (वात पित्त कफ) का 'विवृद्धि मगमस्तत्र व्याधयोपेक्षिता इव (उत्तर काण्ड ५/८)' कहकर वात पित कफ की वृद्धि, जहाँ भी होती है वहाँ उसकी उपेक्षा करने से रोग में वृद्धि होती है। इस कथन के अनुसार दोषों की वृद्धि की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इससे रोग की वृद्धि होती है। यह प्रसंग आयुर्वेद सम्मत है।

आयुर्वेद के मतानुसार ज्वर को रोगराट अर्थात् रोगों का राजा माना है। रामायण में भी ज्वर का उल्लेख बार-बार आता है। साधारणतः ज्वर का संकेत तापमान की वृद्धि तथा ऊष्मा की वृद्धि से ही है। परन्तु व्यापक रूप से यह सभी प्रकार की सामान्य पीड़ाओं का संकेत भी है। मनुष्य की प्रत्येक पीड़क अवस्था को भी ज्वर कहकर पुकारा गया है।

मानसिक ज्वर रोग में काम ज्वर या अनंग ज्वर का नामोल्लेख[1] तो कई बार हुआ है। अन्य स्थान पर शोक ज्वर कहकर[2] दूसरे मानसिक ज्वर का भी उल्लेख किया है। रावण को ज्वराक्रान्त[3] बताकर ज्वर के प्रभाव से उसे कृशकाय हुआ भी बताया गया है।[4]

महामनस्वी लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर भगवान राम ने उन्हें कहा—'स्वस्थाभव: गत: ज्वर' स्वस्थ हो जाओ ज्वर को त्याग कर। यहाँ ज्वर पीड़ा के रूप में ही कहा गया है। लक्ष्मण मूर्छित थे ज्वराक्रान्त नहीं थे।[5]

अन्यत्र तीव्र ज्वर से जब मनुष्य मूर्छित हो जाता है तो उस पर शीतल जल का सिंचन करना लिखा गया है।[6] अप्रिय वाक्यों को सुनकर रावण को क्रोध आ गया। यहाँ क्रोध को भी ज्वर का कारण दिया है।[7]

रामायण में शारीरिक ज्वरों का भी उल्लेख है। भरत ने श्रीराम के सामने शपथ लेते हुए कहा कि यदि मैंने ऐसे कोई अपराध किये हों तो मैं सदा ही रोग से पीड़ित

---

1 सन्तापय तनन्यथा (कि० ८/२३) मामियन्तस्य

2 राघव शोक मूर्छित: (किष्किन्धा)

3 रावण: स्थित: ज्वरा: (युद्ध काण्ड १०/२०)

4 सम्भुव कृशो राजा (यु० १०/१)

5 युद्धकाण्ड (१ ३/१०)

6 परासुमिव तोयेन सिञ्चन्ति काव्यवारिण (सुन्दर ७ /८)

7 निशम्य तद्वाक्यमुपस्थित ज्वर (यु. १०/२७)

रह कर कष्ट भोगता रहूं। यहां ज्वर का उल्लेख शरीर सम्बन्धी ही है।[8] इसी प्रकार रामराज्य होने के बाद किसी को भी ज्वर का भय नहीं रहेगा ऐसी घोषणा मुनि ने की थी। यहां पर दोनों ही प्रकार के ज्वरों शारीरिक तथा मानसिक के न होने का संकेत है।[9]

इस प्रकार अनेक ज्वरों का वर्णन रामायण में प्राप्त होता है तथा आवश्यक उनका उपचार भी दिया गया है। इनके सिवाय पशुओ के ज्वरों का भी उल्लेख रामायण मे प्राप्त होता है उदाहरण के तौर पर हाथी के ज्वर का उल्लेख उपस्थित करते है। ज्वर के कारण हाथी कांपने लगता है और घबराने लगता है। ठीक इसी प्रकार राजा दशरथ कांपने तथा घबराने लगे। जब श्रीराम के वन-गमन का प्रसंग उनके सामने आ उपस्थित हुआ वे ज्वर से पीड़ित एव व्यथित हाथी की तरह आतुर होकर घबराने लगे तथा आँसू बहाने लगे।[10]

महाभारत में ज्वरोत्पत्ति वर्णन—

अपने पिता दक्ष प्रजापति के यहाँ अश्वमेध यज्ञ में अपने पति श्री महादेव को न जाते देख सती ने महादेव से प्रश्न किया कि क्या कारण है आपको मेरे पिता ने अपने यहाँ होने वाले यज्ञ में आमन्त्रित नहीं किया है जबकि सभी देवताओं को उनका आमन्त्रण प्राप्त हो चुका है। भगवान शंकर ने अपनी अर्धांगिनी को समझाते हुए कहा कि देवताओं ने ऐसा ही निश्चय किया है कि इस यज्ञ में मुझे भाग न दिया जाय। इस पर सती ने अपने पति का अपमान समझ कर तथा अपने पति को अपमानित जानकर उन्हें प्रतिशोध के लिए उकसाया। इस पर भगवान शंकर ने अपने योगबल से अपने सेवकों को वहाँ भेज दक्ष प्रजापति के यज्ञ को ध्वंस करा दिया। इस से भयंकर उत्पात हुए। इस भयंकर उत्पात को देखकर यज्ञ भयभीत हो गया और मृग का रूप धारण कर आकाश मार्ग की ओर भागने लगा। यज्ञ को मृग रूप धारण कर भागते देख शंकर ने धनुष हाथ में लेकर उसका पीछा किया। तत्पश्चात् अमित तेजस्वी देवाधिदेव महादेव के ललाट से क्रोधवश भयंकर स्वेद बिन्दु प्रकट हुआ। इस स्वेद बिन्दु के पृथ्वी पर पड़ते ही कालाग्नि के समान विशाल अग्नि-पुँज से एक भयंकर पुरुष उत्पन्न हुआ जिसे देखकर सभी देवगण अपना-अपना स्थान छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। तत्पश्चात सभी देवों ने भगवान शंकर को प्रसन्न करने का प्रयास किया और इसीलिए उनकी प्रार्थना की और कहा कि भविष्य में होने वाले सभी यज्ञों में आपका भाग अवश्य होगा। अन्त में भगवान शंकर ने शिवरूप धारण किया और कहा कि इस स्वेदबिन्दु से उत्पन्न पुरुष भविष्य में इस लोक में 'ज्वर' नाम से पुकारा जावेगा तथा सभी प्राणियों में वास करेगा। भगवान शंकर ने सभी प्राणियों में इसका नाम भिन्न-भिन्न रखा। यह वर्णन महाभारत के शान्तिपर्व अध्याय में वर्णित है।

इस प्रकार महाभारत में भी ज्वर का वर्णन उपलब्ध है जो महाकाव्य काल के अन्तर्गत ही आता है।

---

8 ज्वर रोग समन्वित (७५/६४)

9 न वातज भयं किञ्चआहूःपि ज्वरकृत तथा (मु० ८२)

10 ज्वरातुरो नागइव व्याधातुरः। (अयोध्या)
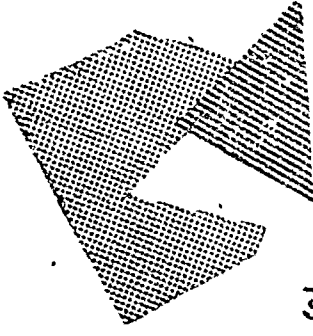
डा० ताराप्रकाश जोशी एम.ए.,पीएच.डी.,डी.लिट्.

पुराण ग्रंथ भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। इनमें अनेक ज्ञान की बातें जिनमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तथा इतिहास सम्बन्धी उल्लेख मिलते है। ब्रह्म वैवर्त पुराण इसी, अठारह पुराणों की शृंखला में एक है। इस पुराण में दो अध्याय आयुर्वेद से सम्बन्धित हैं उनमें प्रथम अध्याय है सोलहवां तथा दूसरा अध्याय है इक्यावनवां। दोनों ही अध्याय अपने अपने विषय को लेकर लिखे गये है।

ब्राह्मण रूपधारी भगवान विष्णु को मालावती ने पूछा - ब्रह्मन् ! आपने जो कहा है कि रोग प्राणियों के प्राणों का अपहरण करता है। रोग के नाना प्रकार के कारण, उन सबका वेद (आयुर्वेद) में निरूपण-जिसका निवारण कठिन है वे अमंगलकारी रोग शरीर में न फैलें ऐसा आप उपाय बताइये ? तथा अन्य उपयोगी लोक हितकारी बात बताइये।

इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए ब्राह्मण ने कहा ऋक, साम, यजु. तथा अथर्व वेदों का अध्ययन कर प्रजापति ने आयुर्वेद (उपवेद) का संकलन किया।[1] इस प्रकार पंचम वेद का निर्माण कर प्रजापति ने उस सूर्य को पढ़ाया। इस प्रकार आयुर्वेद के आचार्यों की परम्परा बताई गई है। उन सभी आचार्यों ने अपनी संहितायें बनाई। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

आचार्य	रचना
(१) प्रजापति	पंचम वेद
(२) सूर्य -	आयुर्वेद-संहिता (अपने शिष्यों को पढ़ाई)
(३) धन्वन्तरि—	चिकित्सा तत्व विज्ञान
(४) काशिराज दिवोदास	चिकित्सादर्पण
काशिराज	दिव्य चिकित्सा कौमुदी
(५) अश्विनी कुमार—	चिकित्सा सारतंत्र
(६) नकुल -	वैद्यक सर्वस्व
(७) सहदेव —	व्याधि सिन्धु विमर्दन
(८) सूर्य पुत्रयम —	ज्ञानार्णव
(९) च्यवन —	जीवदान
(१०) जनक —	वैद्य संदेह भञ्जन
(११) बुध —	सर्व सार
(१२) जाबाल —	तंत्रसार
(१३) जाजलि —	वेदांग सार
(१४) पैल —	निदान तंत्र
(१५) करथ -	सर्वधर तंत्र
(१६) अगस्त्य—	द्वैध निर्णय

संख्या ३ से १६ तक सभी सूर्य के शिष्य थे।

आयुर्वेद के अनुसार रोगों का परिज्ञान कर वेदना को रोकना इतना ही वैद्य का वैद्यत्व है। वैद्य आयु का स्वामी नहीं है।[2] वैद्य को आयुर्वेद का ज्ञाता, चिकित्सा क्रियाओं का यथार्थ परिज्ञाता, धर्मनिष्ठ तथा दयालु होना चाहिये। ज्वर की उत्पत्ति के बारे में कहा है -

दारुण ज्वर समस्त रोगों का जनक है। उसे रोकना कठिन होता है। वह शिव भक्त और योगी है। उसका स्वभाव निष्ठुर है। आकृति विकराल है। उसके तीन पैर, तीन सिर, ६ हाथ और नौ नेत्र हैं। वह भयंकर ज्वर काल अन्तक और यम के समान विनाशकारी है। भस्म ही उसका अस्त्र है तथा रुद्र उसके देवता।

---

[1] उपवेद आयुर्वेद, ज्योतिपश्च, आयुर्वेदः पञ्चमोवेदः

[2] व्याधेस्तत्व परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ।। भा. प्र. द खण्ड, प्रथम प्रकरण ५ श्लोक ५६ ।।

मन्दाग्नि उसका जनक है। मन्दाग्नि के जनक तीन हैं — वात, पित्त, कफ। एक चौथा ज्वर भी होता है उसे त्रिदोषज ज्वर कहते हैं।

उपरोक्त रूपक में मेरा यह निवेदन है कि कुछ वैज्ञानिकता अवश्य है। ज्वर के तीन पैर (त्रिदोष) हैं, तीन सिर त्रिगुणात्मक है क्योंकि यह मन को भी आघात पहुंचाता है। छः हाथ से तात्पर्य षट् रसों से है जिनके प्रति ज्वर की अरुचि होजाती है याने बंध जाते हैं तथा नौ नेत्र [स्वेदावरोध, देह सन्ताप, इन्द्रिय सन्ताप, मनस्ताप, उत्तमांग ग्रह, मध्यांग ग्रह, अधो अंग ग्रह, तथा शाखा अंग ग्रह, क्लम (थकान) ये ज्वर के लक्षण हैं] या मानव देह के नव द्वार हैं जिनमें होकर ज्वर मानवदेह में प्रवेश करता है।

इसके बाद इसी अध्याय में स्वस्थ रहने के उपाय भी बताये हैं—जिनमें संयम से रहना, नेत्रों को जल से धोना, व्यायाम करना, अभ्यंग, कर्ण स्नेह पूरित करना, मस्तिष्क पर तैल लगाना।

तदन्तर ऋतुचर्या के अन्तर्गत बसन्तु ऋतु में भ्रमण, स्वल्प अग्निसेवन, नव यौवना सेवन। ग्रीष्म ऋतु में तडाग स्नान, चन्दन लेप वायु सेवन। वर्षा ऋतु में गर्म जल स्नान, परिमित भोजन, वर्षा जल का त्याग। शरद ऋतु में प्रचण्ड धूप सेवन, भ्रमण त्याग, कूप, वापी तथा तडाग जल स्नान, परिमित भोजन। हेमन्त में—गोबर जल स्नान,तथा अग्नि सेवन, सद्य पक्व अन्न सेवन। शिशिरऋतु में—गर्म कपड़े, अग्नि सेवन, सद्य पक्व भोजन, गर्म जल स्नान।

आगे लिखा है—नवान्न, क्षीर भोजन, घृत सेवन, तथा तरुणी स्त्री सेवन।[3] भूख लगने पर भोजन, प्यास लगने पर शीतल जल ताम्बूल भक्षण, दही, मक्खन, गुड़ खाकर संयम से रहता है। फिर आयु क्षय कारक योग भी बताये हैं जो सभी आयुर्वेद शास्त्रों में वर्णित हैं। आगे आचार संहिता का भी उल्लेख किया है।

अनन्तर में फिर वात, पित्त, कफ को ज्वर का जनक बताया गया है फिर इन तीनों दोषों के प्रकोपक कारण भी बताये हे। भूख लगने पर अन्न न मिलना, शरद में गर्म पानी पीना तथा भाद्र में तिक्त भोजन करना, पित्त वर्धक है। पित्त शमन के लिए धनिया पीस कर शक्कर के साथ पिया जाय तो लाभ होता है। अन्य औषधियों में चना, गव्य पदार्थ, तक्र रहित दही, बिल्व फल (पके हुए) ताल फल, इक्षु रस, अद्रक, मूंग की दाल, शर्करा मिश्रित तिल, पित्त नाशक है।

भोजन के तुरन्त बाद स्नान, बिना प्यास जल पीना, तैलाभ्यंग, आवला द्रव सेवन, बासी अन्न, तक्रपान, पका कदलीफल, वर्षा जल, शर्वत, चिकनाई वाला जल, नारिकेल जल, रूक्ष स्नान, तरबूज, ककड़ी मूली, तथा तड़ाग स्नान कफवर्धक हैं। कफ ब्रह्मरंध्र मे उत्पन्न होता है। इसके बाद कफ शामक उपाय लिखे हैं। वे है --

शरीर तपाना, पका तैल सेवन, घूमना। सूखे पदार्थ खाना। सूखी हरड सेवन, कच्चा पिण्डारक, कच्चा केला, वेसवार (मसाले) निर्गुण्डी, उपवास, पानी न पीना, काली मिरच, पीपर, अद्रक, श्रीफल तथा मधु तत्काल ही कफ का शमन करते है।

वात प्रकोपक—भोजन के तुरन्त बाद घूमना, दौड़ना, आग तापना, मैथुन, वृद्धा स्त्री के साथ सहवास, मनस्ताप, रूक्षभोजन, उपवास, लड़ना। कलह करना, तेज बोलना, भय, शोक वायु उत्पादक कारण हैं।

वात शामक केले का पका फल, बिजोरा, शर्वत, नारिकेल जल, ताजी छाछ, उत्तम पिट्ठी, भैंस का मठा, दही, कांजी, तैल, नारियल, खजूर, आवले का उष्ण द्रव जल स्नान, स्निग्ध व्यंजन, वायु दोष को हरता है।

उपरोक्त प्रवचन के साथ यह अध्याय समाप्त किया गया है यह १६ वां अध्याय है। आगे ५१ वे अध्याय में धन्वन्तरि और मनसा देवी का विवाद तथा अन्त में मनसा देवी की अर्चना है जो हमारे इस लेख का विषय नहीं है। अन्य पुराणों मे भी आयुर्वेद से सम्बन्धित सामग्रा उपलब्ध है यहां तो एक संक्षिप्त परिचय जो ज्वर से सम्बन्धित है दिया गया है। जो पाठकों का ज्ञान वर्धन ही करेगा।

श्री तारा प्रकाश जी जोशी M. A. Ph. D. D Lit.
निवर्तमान डाइरेक्टर आयुर्वेद विभाग— राजस्थान,
अजमेर।

---

[3] सद्यो मांसम् नवं चान्न बालास्त्री क्षीरभोजनम्। घृतम् उष्णोदके स्नानम् सद्य प्राणकराहिषद् ॥
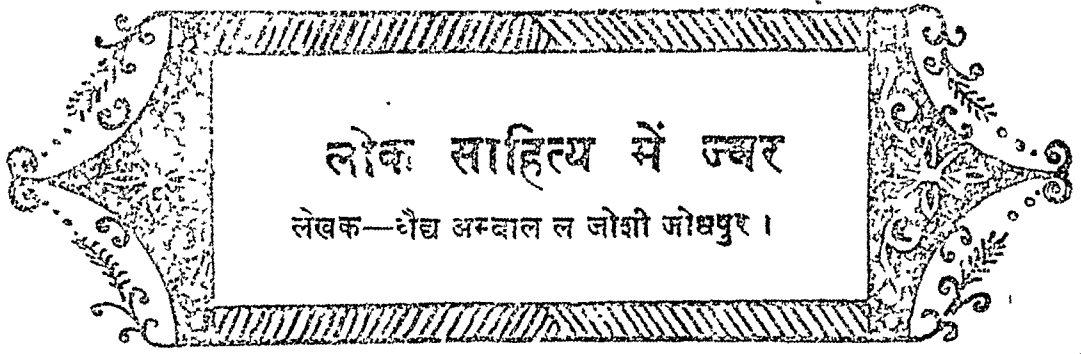
लोक साहित्य में ज्वर

लेखक—वैद्य अम्बालाल जोशी जोधपुर ।

ज्वर मानव को बहुत प्राचीनकाल से ही त्रस्त करता रहा है। मानव इसे पीड़क मानता रहा है। लोक कहावतों मे भी इसे यही स्थान मिला है। शास्त्रीय वाक्यों को सरल शब्दों में समझाने के लिए लोक कथनियों का सृजन समय-समय पर किया गया है जो पुरातन काल से चली आ रही है। सच पूंछा जाय तो इन्ही लोक कथनियों के आधार पर ही तो आयुर्वेद मानव जीवन धारा के इतना निकट आ गया है कि आज उसे मानव जीवन से अलग करना भी कठिन कार्य प्रतीत हो रहा है। आयुर्वेद मानव जीवन का एक अभिन्न अंग हो गया है। यहा ज्वर विषयक कुछ कथनियों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

ज्वर के सामान्य लक्षण बताते हुए यह कहा गया है—

गात गुरु इन्द्रिय मन विकल देह में पीड़ा होय।
बन्ध प्रसेवों दाह अति ये जुर लक्खन जोय॥
(प्र० मा०)

गात्र गौरव, मन विकल, इन्द्रियां विकल, अंगमर्द, स्वेदावरोध, अतिदाह (जलन) ये ज्वर लक्षण बताये गये है। आयुर्वेद में भी 'स्वेदावरोध सन्तापः सर्वांग ग्रहणं क्लम' लक्षण कहे गये है। यह ज्वर के सामान्य लक्षण है।

ज्वर से भयत्रस्त रहते हुए उसे निमन्त्रित न करने के लिये कहा गया है तावने **कुण तेडो भेजे** अर्थात् ज्वर को कौन निमंत्रित करता है। यह ज्वर को न स्वीकार करने की उक्ति है। यह अनिमन्त्रित ही आता है। आयुर्वेद के मतानुसार व्याधि की उत्पत्ति के दो कारण बताये गये है। एक प्रत्यक्ष तथा दूसरा अप्रत्यक्ष (परोक्ष) प्रत्यक्ष कारण को निमन्त्रण देना (तेड़ा भेजना) माना गया है। परोक्ष कारण से उत्पन्न होने वाला ज्वर अनिमन्त्रित कहलाता है।

ज्वर की अवस्थाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है—

सात दिनां तक तरुण जुर दिन बारह तक मद्ध।
इणसू पाछे हाड जुर, जीण कवै है सिद्ध॥

अर्थात्—सात दिनो तक ज्वर तरुण ज्वर रहता है इसके बाद बारह दिन मध्य ज्वर कहा जाता है परन्तु इसके बाद वह हाड ज्वर (अस्थिगत ज्वर) हो जाता है जिसे सिद्ध पुरुष याने बुद्धिमान पुरुष जीण जुर (जीर्ण ज्वर) कहते है। आयुर्वेद का यह अर्थपूर्ण-वाक्य अत्यन्त ही सरल भाषा मे स्पष्ट किया है।

समान वाक्य—'आसप्त रात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः। मध्य द्वादश रात्रन्तु पुराण मत उत्तरम्।

उपरोक्त श्लोक अक्षरश उक्त लोककथन का समर्थन करता है जो शास्त्र सम्मत है। सामान्यतः सात रात्रि तक ज्वर रहे तो उसे तरुण ज्वर, तदन्तर बारह दिन तक मध्य ज्वर और १२ दिन से अधिक रहने वाला ज्वर जीर्ण ज्वर कहलाता है। यह तरुण, मध्य तथा जीर्ण ज्वर काल मर्यादा है।

यह मान्यता लोक कहावतों में दुहराई गई है कि आम ज्वर को यदि तोड दिया जाय या उतार दिया जाय तो वह पुनरावर्तित हो जाता है कहा है—**काचो ताव फिर फिर आवै।** इसी दृष्टि से आयुर्वेद में आमदोष का पाचन कर ज्वर को उतारने का आदेश दिया गया है। शास्त्रों ने इसका समर्थन इस प्रकार किया है—

दोषाः कदाचित कुप्यन्ति जिता लंघन पाचनैः।
ये तु संशोधनैश्शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः॥

अर्थात् यदि कुपित दोषो का लंघन और पाचन द्वारा संशोधन तथा पाचन कर दिया जाय तो वे पुनः उत्पन्न नही होते। अतः कुपित दोषो का पाक कराना आवश्यक है। यह पाक गर्म जल तथा लघन के द्वारा कराया जा

सकता है। उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार ही यदि ज्वर की चिकित्सा की जाय तो सर्वथा वैज्ञानिक तथा निरापद है। तरुण ज्वर को जो अभी तक आम अवस्था में ही है बिना पाक किये तीव्र सूचिका द्वारा उतारना उसकी पुनरावृत्ति का कारक हो सकता है।

एक अन्य कहावत में ज्वर में लंघन की प्रशस्तता बताई गई है—

जुर जाचक और पाहुना तीनू एक स्वाव।
लंघन तीन कराइये कदे न आवे द्वार॥

ज्वर, याचक और अतिथि तीनों के स्वभाव समान होते है। इन तीनों को तीन-तीन दिन लंघन करा दीजिये याने उपवास करा दीजिये फिर कभी लौटकर नहीं आवेंगे। साम ज्वर तीन दिन के लंघन से निराम हो जाता है। फिर पचमान औषधि से सहज ही में उतर जाता हे।

आयुर्वेद शास्त्रों में उपरोक्त वाक्य की पुष्टि की गई है जो इस प्रकार है—

ज्वरादौ लंघनं कुर्वीत ज्वर मध्येतु पाचनम्।
ज्वरान्ते रेचनम् दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः॥

ज्वर की तरुण अवस्था में लंघन, मध्यावस्था में पाचन तथा अन्तिम अवस्था में रेचन देना चाहिये। सामान्यतः ज्वर में लंघन कहा गया है परन्तु श्रम, वात ज्वर आदि इसके अपवाद भी है। भैषज्य रत्नावली में—

ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्।
क्षयानिल भय क्रोध काम शोक श्रमोद्भवात्॥

सामान्य नियम यहां लागू नहीं होता। इन विशेष ज्वरों के लिये विशेष नियम है जो अन्यत्र द्रष्टव्य हैं। यहां तो लंघनम् औषधम् परम ही मान्य है।

कुछ शब्द बोल चाल की भाषा में कहे हैं जो आयुर्वेदीय शब्दों के अर्थवाची हैं जैसे जीण जुर याने जीर्ण ज्वर हाड तपै अर्थात् अस्थिगत ज्वर। जीर्ण ज्वर की अधिक व्याख्या आयुर्वेद के इस श्लोक में की गई है—

त्रिसप्ताह व्यतीतस्तु ज्वरो यस्तनुतां गतः।
प्लीहाऽग्नि साद कुरुते सजीर्ण ज्वर उच्यते॥

अर्थात् तीन सप्ताह बीत गया हो और वह ज्वर देह में रम गया हो प्लीहावृद्धि तथा जठराग्नि को मन्द कर दिया हो उसे जीर्ण ज्वर कहा जाता है। इस ज्वर में लंघन वर्जित है तथा इसमें औषधीय घृतपान लाभदायक है। क्योंकि इसमें बृंहण चिकित्सा ही लाभ देती है न कि कर्षण।

ज्वर के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करते हुए एक प्रकार के ज्वर का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

गुजराती गुजरात से दुख देवे है भारी।
कालो चाल जुर रवै छाती दूखै न्यारी॥

गुजराती ज्वर राजस्थान में न्यूमोनियां को कहते हैं। इसके लक्षण ही यहां बताये गये है। ज्वर, कास तथा फुफ्फुस शूल तथा पीड़ा, बेचैनी यही सब न्यूमोनियां के लक्षण है। इतिहास के अनुसार यह ज्वर सर्वप्रथम गुजरात से संक्रमित हुआ।

कलकत्ता सूं आयो टूटियो पूरब दिसारो वासी।
हुका हडबड मत करो तीजे दिन सूं जासी॥

यह ज्वर जिसे टूटिया ज्वर की संज्ञा दी गई है जिसमें ज्वरावस्था में हाथों पैरों में आक्षेप (वाइन्टें) आने लगते है कलकत्ते से संक्रमित हुआ है। यह तीन दिनों की मर्यादा का है फिर उतर जावेगा। अतः शोर-गुल मचाने की आवश्यकता नहीं है।

इतिहास मरुप्रदेश के एक बार एक विशेष प्रकार का ज्वर कलकत्ते से आने वाले यात्रियों द्वारा संक्रमित किया गया जो यहां से पूर्व दिशा ओर है। तीव्र ज्वर तीन दिन तक रहता था और हाथ पैरों में आक्षेप आने लगते थे अतः लोग घबराते थे। अतः वैद्यो ने पद्य में यह घोषणा की कि जनता को धैर्य रखना चाहिये। यह ज्वर तीन दिन में उत्तर जावेगा घबराने का कोई बात नही है। यह अति संक्षेप में एक नवीन रोग का परिचय दिया गया है। इस प्रकार नवीन रोगों का अत्यन्त ही सरल भाषा में तथा संक्षेप में परिचय समय-समय पर चिकित्सक दिया करते थे ऐसी प्रथा थी।

ज्वर की सन्निपातिक अवस्था का भी साधारण लोगों को ज्ञान था तथा उसकी चिकित्सा भी करने का प्रयत्न किया जाता था। जहां चिकित्सक उपलब्ध नहीं होते थे। इसे बायबक्का होना या 'सीत में आना' कहा गया है। बायबक्का होना प्रलापक सन्निपात का सम्बोधन है। इसमें रोगी प्रलापक अवस्था में रहता है तथा कुछ न कुछ अनर्गल प्रलाप करता रहता है तथा कभी उठ बैठने का श्रम भी करता है। शीतांग सन्निपात को 'सीत मे आना'

कहा है। इसमे रोगी का देह शिथिल हो जाता है तथा उसकी अवस्था शिथिल हो जाती है। अवसन्न अवस्था भी हो सकती है।

ज्वर की अन्य अवस्था को **कामरोयो ने ताव आग्यो'** कहकर वताया गया है। किसी भी व्यक्ति को काम करने का निर्देश प्राप्त करते ही ताप आ जाता है। यह एक तरफ आलसी व्यक्ति के लिए कहा गया है तथा दूसरी तरफ शिथिल (कमजोर) व्यक्ति के लिए भी कहा गया है। 'ताव' शब्द 'ताप' शब्द का अपभ्रंश है। ताप शब्द संताप शब्द का सूक्ष्मसूचक है। यह संताप देह, इन्द्रिय तथा मन इन तीनों के संतापित करने के अर्थ मे ही माना गया है। कार्य को कहने पर आलसी व्यक्ति को देह से तो संताप होता ही है मन तथा इन्द्रियों से भी सन्ताप होता है। इसी प्रकार शिथिल आदमी को भी अधिक श्रम करने से संताप होता है जो देह, इन्द्रिय तथा मन तीनों से ही सम्बन्धित होता है। सन्ताप का तात्पर्य है दुःख। बोल चाल की भाषा में ताप शब्द से ज्वर का बोध ग्रहण किया जाता है।

आयुर्वेद में भी 'देहेन्द्रिय मनस्तापी सर्वरोगाग्रजो वली' ज्वर के विशेष लक्षण वताये गये है। यह ज्वर देह, इन्द्रिय तथा मन को ताप (दुःख) देने वाला कहा गया है।

इसी वात को प्रकारान्तर मे इस प्रकार कहा गया है 'कयो ने वाय आग्यो' किसी को अनपेक्षितवात कहने पर ताप आ जाता है। प्रकारान्तर मे ताप (ताव) आने से क्रोध आने का तात्पर्य भी लिया जा सकता है। ऐसी स्थिति मे मनुष्य से कुछ अनर्थ भी हो सकता है–फिर वह कर्तव्याकर्तव्य को सोचता नही है। एक अन्य लोकोक्ति में कहा है– **अबार इणने कीं नन कई जो इणने ताव आयड़ो** है'—अर्थात् अभी इस व्यक्ति को कुछ भी न कहना इसे अभी क्रोध आया हुआ है या यह ज्वर से ग्रसित है। अतः इसे कुछ भा कहना असह्य हो सकता है।

ज्वर के विषय में व्यापक ज्ञान लोकिक में व्याप्त है। त्रिदोषज ज्वर के सिवाय भी खैण (क्षय), निकालो (मन्थर ज्वर) गुजराती (न्यूमोनिया) इकांतरो, तेजरी, चोथियो, डव्वा (वच्चों का न्यूमोनिया) का (पूर्ववत) आदि अनेक प्रकार के ज्वरों का ज्ञान उन्हे होगा। जिनके नामकरण भी उनके स्वयं के थे जिनकी चिकित्सा भी साधारण जडी बूटियों से की जाया करती थी। आज भी भारत में अनेको गांव हैं जहां वैद्य,डाक्टर की छाया भी नही पडती।

साधारण अपढ ग्रामीण पुरुषों में पशुओं के रोगों के बारे में भी ज्ञान था। पशुओं के ज्वर को उन्होंने बहुत ही गम्भीर दृष्टि से देखा था। यहां एक कहावत **ताव हाथी रा हाड भांग दे'** में यह आशय स्पष्ट है। सर्व प्रथम तो ताव (ज्वर) हाथी जैसे वलशाली व्यक्ति को भी व्यथित कर देता है। दूसरी ओर हाथी जैसे शक्तिशाली पशु को भी ज्वर इतना व्यथित करता है कि उसकी हड्डी पसली एक कर देता है (हाड भांगना)। इस कहावत से यह भी स्पष्ट है कि ज्वर शक्ति का ह्रास करने वाला रोग है। यह पशु (वलवान पशु) तथा मानव (वली मानव) को भी शिथिल कर देता है। ऐसा कहा जाता है कि हाथी के पास मे (सामने) जाकर ज्वर कहता है मैं आऊँ तो हाथी भय के मारे कांपने लगता है तथा कभी-कभी मृत्यु को भी प्राप्त हो जाता है। ज्वर हाथी के शरार मे पूर्णरूप से प्रवेश नही करता। इस प्रकार का ज्ञान भी ग्रामीणो को था।

यहाँ ज्वर विषयक कुछ उद्धरणो को देने का प्रयास किया गया है। हाँ एक बात याद आती है अपने वचपन–की एकान्तर ज्वर के अवरोध या इसके निर्मूलीकरण की दृष्टि से एक वृद्ध महाशय जो हमारे पास हा रहते थे कहानी कहा करते थे। यह कहानी सायं ५-६ वजे पर कही जाती थी। जिस व्यक्ति को एकान्तर आता वह वहां आ जाता। करीव १० फुट के फासले पर वह वैठ जाता। उसके हाथ में पानी का भरा छोटा वर्तन होता। कहानीकहने वाला वृद्ध उसके पीछे का ओर ऊँचे स्थान पर वैठता पूर्ण कहानी कहने के वाद वह जूती फैंकता और रोगी उठकर भाग जाता। हम वच्चे कहानी कहने वाले वृद्ध के पास वैठे रहते। कहानी समाप्त होने पर हम भी जूती फैंक देते। विश्वास किया जाता था कि उसे पुनः ज्वर नही आवेगा। इसी प्रकार आक के पौधे के पत्ते मे भी शूल चुभादी जाती (उस आदमी के द्वारा जिसे एकान्तर ज्वर आता हो) और कह दिया जाता कि मेरा शूल निकल जाने पर मै तुम्हारा शूल भी निकाल दूंगा। और इसके वाद उसे ज्वर नही आता। इसे प्रभु की कृपा कहा जाय (मानसिक उपचार) या वैज्ञानिकता अवश्यहै। अर्क (आक) में ज्वर उतारने तथा रोकने की शक्ति है।

दक्ष के कारण उत्पन्न ७ रोग

ले०- श्री तारा शंकर वैद्य आयुर्वेदचक्रवर्ती, प्रधानाचार्य—श्री अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय रामपुरी—जगतगंज, वाराणसी-२२१००२

भ्रान्तियाँ—आयुर्वेद के अधिकांश ज्ञाताओं को यह जानकारी है कि दक्ष यज्ञ में एक मात्र ज्वर रोग की उत्पत्ति हुई थी। जबकि तथ्य यह है कि दक्ष यज्ञ में गुल्म, प्रमेह, कुष्ठ, उन्माद व अपस्मार नामक ५ रोगों की उत्पत्ति हुई है। शंकर जी जब दक्ष-यज्ञ विध्वंस करने लगे तब यज्ञ से सम्बन्धित और उसमें उपस्थित लोगों में पीड़ित होकर इधर-उधर दौड़ने-भागने लांघने और देह के विक्षोपण आदि से उपर्युक्त ५ रोग उत्पन्न हुए। दक्ष यज्ञ के विध्वंस के पूर्व ही क्रुद्ध भगवान शङ्कर के ललाट से ज्वर उत्पन्न हो चुका था। फिर ज्वर के संताप से रक्तपित्त उत्पन्न हुआ। इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्ष के कारण उपर्युक्त ५+२ अर्थात् ७ रोग उत्पन्न हुए।

यज्ञ विध्वंस होने के कारण पराभूत अतः दर्पहीन दक्ष का तेज और प्रभाव नष्ट हो गया। परिणामतः उनकी प्रजा विशेषतः उनकी २७ कन्यायें (२७ नक्षत्र) जो नक्षत्रराज चन्द्रमा से ब्याही थीं अनुशासनहीनता और कामुकता आदि से ग्रस्त हो गयीं। उनमें से १ रोहिणी में ही विशेष कारणवश चन्द्रमा अधिक आसक्त थे और सहवास की क्रिया एक मात्र उसी में सम्पन्न करते थे। एक में ही रत्याधिक्य से प्रायः यक्ष्मा होता है। पर कथा प्रसंग यह है कि शेष २६ कन्याओं ने अपने पिताजी दक्ष से इसकी शिकायत की जो मर्यादा विरुद्ध थी। अनुशासनहीन प्रजा से मर्यादा की आशा भी नहीं करनी चाहिये। दक्ष ने भी क्रुद्ध होकर अपने दामाद चन्द्रमा को ही राजयक्ष्मा होने का शाप दे दिया। जो अत्यधिक्य अमर्यादित था। दूसरी ओर अत्यासक्ति मन का विषय है। उसमें मन से उत्पन्न (या मन के राजा) चन्द्रमा का ग्रस्त होना सम्भव ही है। अतः एक में अत्यधिक मैथुन से चन्द्रमा को राजयक्ष्मा हुआ। अप्रासंगिक होने के कारण आठवें रोग राजयक्ष्मा की उत्पत्ति का विवेचन यहां सम्भव नहीं है। यहाँ तो दक्ष, महेश्वर (रुद्र), क्रोध और ज्वर का प्रसंग होने से इन्हीं का विवेचन होगा। उपर्युक्त सभी तथ्यों का स्पष्ट वर्णन चरक संहिता निदान स्थान के आठवें अध्याय के ११ वें सूत्र में इस प्रकार है—

"'दक्षाध्वरध्वंसे'''गुल्मोत्पत्तिरभूत्''' प्रमेहकुष्ठानां, उन्मादानां, अपस्माराणां ज्वरस्तु खलु महेश्वर ललाट प्रभवः, तत्सन्तापाद्रक्तपित्तम्. अतिव्यवायात् पुनर्नक्षत्रराजस्य राजयक्ष्मेति।

इस सूत्र एवं इसकी संस्कृत टीकाओं का अध्ययन करने से ज्वर के सम्बन्ध में बहुत सी भ्रान्तियों का निवारण होगा।

चरक संहिता के चिकित्सा स्थान अध्याय ३ सूत्र १४, १५ से २५ एवं निदान स्थान अध्याय १ सूत्र १६ और उनकी संस्कृत टीकायें भी स्पष्टीकरण में सहायक होंगी।

अधिकांश आयुर्वेद ज्ञाताओं में यह भी एक भ्रान्ति व्याप्त है कि ज्वर ही सर्वप्रथम या आदि रोग है। जबकि स्पष्ट तथ्य यह है कि मानसिक रोग क्रोध सर्व प्रथम या आदि में उत्पन्न हुआ। जैसाकि चरक संहिता निदान स्थान अध्याय १ सूत्र १६ की चक्रपाणि टीका में स्पष्ट लिखा है—

शारीराणामित्यनेन कामक्रोधादि मानसं रोगं प्रति न ज्वरस्य प्रथमत्वमिति दर्शयति।

माधव निदान के "दक्षापमान संक्रुद्ध रुद्रनिश्वाससम्भवः ज्वरोऽष्टधा" एवं सामान्य ज्ञान से भी स्पष्ट हो रहा है

कि मानसिक रोग क्रोध सर्व प्रथम और उसके बाद ज्वर रोग उत्पन्न हुआ। ज्वर जन्मादि-निधन एवं सभी रोगों में अपचारान्त में होता है इसलिए यह "सर्व रोगाधिपति" है। (चरक निदान अध्याय १ सूत्र ३५) इस नाम का एक कारण यह भी है कि यह देवाधिपति शङ्कर अथच उनके ललाट से उत्पन्न हुआ है। वैज्ञानिकता यह है कि यह प्राणियों में सिर से (विवेचन आगे) ही उत्पन्न होता है इसलिए यही सर्वरोगों में शिरस्थ (मूर्धन्य) हुआ।

पुराण की वैज्ञानिकता—माधव निदान के निम्नलिखित श्लोक—

"दक्षापमान सक्रुद्ध रुद्रनिश्वास सम्भवः।"

या इसी भाव से सम्पन्न पौराणिक अथवा आयुर्वेदीय वचनों में आगत दक्ष प्रजापति, शङ्कर और वीरभद्र की सत्ययुगीन उपस्थिति और दक्षयज्ञ विध्वंस की घटना को चुनौती देने की क्षमता हम में नहीं है पर इतना स्पष्ट है कि आज कलियुग में वे दृश्यमाण नहीं हैं। साथ ही वही क्रम आज के प्राणी में भी ज्वर उत्पन्न करता है यह बात भी वैज्ञानिकों के गले नहीं उतरती है। परन्तु जहां तक हमारी जानकारी है वहाँ तक समस्त पुराण, इतिहास भूगोल विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हैं। आवश्यकता है उनके विवेचन और उन पर विचार की।

वर्तमान प्रसंग में पहले दक्ष को समझिये। ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है "सः प्रजापतिः वैदक्षोमनः" "यः प्रजापतिः तन्मनः" और "पुरुषः प्रजापतिः।" इसी भाव से युक्त अन्यान्य बहुत से वचन वेद ब्राह्मण ग्रन्थ, शास्त्र और पुराणों आदि में स्पष्ट उल्लिखित है जिनका तात्पर्य यह है कि दक्ष या प्रजापति वस्तुतः "मन" के लिये कहा गया है। मन का अपराध रोगों का मूलकारण आयुर्वेदोक्त 'प्रज्ञापराध' है। "रुद्रो रोषः" अनुसार रुद्र रोष या क्रोध है। "क्रोधात्पित्तं" भी प्रसिद्ध है। दूसरे यह भी ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है कि "ईश्वरो वै अग्निः" अर्थात् रुद्र, ईश्वर, अग्नि, क्रोध, पित्त है। "पित्ताद्विना ज्वरो नास्ति" भी प्रसिद्ध ही है। चरक ने रुद्र-ईश्वर के साथ ही सर्वथा उपयुक्त स्थान पर "ज्वरस्तु खलु महेश्वर प्रकोप प्रभवः (च. नि. अ. १ सूत्र ३५)" ज्वरस्तु महेश्वर ललाट प्रभवः और "सृष्ट्वा ललाटेचक्षुर्वै" (च. चि. अ.-३ सूत्र २०) आदि कहा है। जिसका तात्पर्य महाअग्नि है। शरीर में अग्नि या ताप को नियन्त्रित करने वाला केन्द्र ताप नियामक केन्द्र (हीट रेगुलेटिंग सेन्टर) ही महाग्नि है जो ललाट में या सिर में ही स्थित है। आज के वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि इसी केन्द्र के द्वारा ताप का नियमन या नियन्त्रण ठीक न होने से ज्वर होता है। इसीलिये ज्वर के प्रबल वेग में चरक ने सिर पर हिमाहृति (बरफ से भरी थैली या आइस बैग) का प्रयोग लिखा है। इस प्रकार "दक्षापमान"...इत्यादि के रूप में वर्णित ज्वर की पौराणिक सम्प्राप्ति का स्पष्ट विज्ञान सम्मत अर्थ यह है—

मन के अपराध (प्रज्ञापराध) से क्रुद्ध या विकृत ताप नियामक केन्द्र द्वारा नि:श्वसित या प्रेरित ताप या पित्त से ज्वर की उत्पत्ति होती है।

वेदों में ज्वर तथा चिकित्सा :: पृष्ठ ६१ का शेषांश ::

औषधि के लिए [मूजवद्भ्यः] सोम औषधि के लिए (अंगेभ्यः) बोल औषधि के लिए [मगधेभ्यः] पिप्पली औषधि के लिए आया है।

आयुर्वेदिक निघण्टुओं में इन औषधियों के उक्त नाम आए है—

गन्धारिः गन्धपलाशयाम् (वैद्यक शब्द सिन्धु)।
समुगन्धः कर्चूरस्तीक्ष्णो दाही कटु स्मृतः।
....कासश्वास ज्वरापहः (निघण्टु रत्नाकर)।
मुञ्जवान् सोम (वैद्यक शब्द सिन्धुः)।
अङ्गं बोले (वैद्यक शब्द सिन्धु)।
पिप्पली मागधी शौण्डी वैदेही चपला कणा"
(कैयदेव निघण्टुः)

कई भाष्यकारों ने गन्धार अंग, मगध को स्थान विशेष को समझकर भाष्य किया है जो उनका भ्रम है।

इस प्रकार इस सूक्त में ज्वर को दूर करने के लिए प्रथम स्वेद पसीना और विरेचन के द्वारा पुनः 'सोम' [सोमरस], अभ्रक, काकजंघा, प्रियंगुलता, कचूर, बोल, पिप्पली, औषधियों द्वारा चिकित्सा करना बतलाया है।

'सोम' के लक्षण 'चरक सुश्रुत' में हैं पर आजकल उपलब्ध नहीं है अतः इसका प्रतिनिधि 'गुडूची' [गिलोय] लेना चाहिए। गिलोय को 'सोमवल्ली' कहा भी है और वह ज्वरनाशक तथा रसायन है।

ज्वर रोगराट् क्यों ?

लेखक कविराज श्री तोष जी जोधपुर।

ज्वर तो निश्चित रूप से   र जी के कोप से ही उत्पन्न हुआ है। सभी जीवधारि   प्राण का नाश करने वाला है। शरीर, इन्द्रिय और मन में ताप उत्पन्न करने वाला है। बुद्धि, बल, वर्ण, हर्ष और उत्साह को कम करने वाला है, श्रम, क्लम (बिना परिश्रम के थकावट) और मोह (बेहोशी) को उत्पन्न करने वाला और भोजन में अरुचि करने वाला है एवं शरीर में ताप उत्पन्न करने वाला है, अतः इसे, ज्वर कहते हैं। दूसरे रोग ऐसे कठिन नही होते है जैसे ज्वर है। यह बहुत उपद्रव करने वाला और चिकित्सा करने में अति कठिन है। वैसे हम विचार करने लगें तो ज्वर ही रोगों का राजा है, अनेक तिर्यक् योनियों (पशु, पक्षी, वृक्ष पहाड़ भूमि आदि) में भी होता है और भिन्न नाम से कहा जाता है। सभी प्राणि ज्वर को साथ लेकर उत्पन्न होते हैं और ज्वर के साथ ही मृत्यु प्राप्त करते है। यह ज्वर महामोह स्वरूप वाला है। इसी महामोह से युक्त होने के कारण प्राणिमात्र अपने पूर्व जन्म के लिए कार्यो को कुछ भी स्मरण नहीं करते हैं। सभी स्थावर एवं जङ्गम जीवधारियों का प्राण मृत्यु के समय में ज्वर रूप हो जाता है।

हम यहां विचार करें—ज्वर सभी रोगों में कठिन है। क्योंकि जब शरीर में किसी प्रकार का दुख होता है तो संताप अवश्य होता है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक और शरीर एवं मन में ताप होने को ही ज्वर कहा जाता है जैसे 'देहेन्द्रियमनस्तापो सर्वरोगाग्रजो वली।' (च० चि० अ० ३) मानसिक ताप का भी लक्षण नरक में ही बताया है यथा-वैचित्यमरतिर्ग्लानिर्मन संताप-लक्षणम्।' (चि० अ० ३)

जब गर्भाशय से अपत्य पथ के द्वारा गर्भ को निकलना पड़ता है तो मार्ग संकुचित होने पर उसे कष्ट तो होता ही है। इससे उसके मन में ताप हो जाता है। इसी प्रकार मृत्यु के समय जब वह शरीर का त्याग करने लगता है तो जीव के माया से आवृत रहने से मोह एवं मानसिक ताप हो जाता है। शरीर की ऊष्मा (गर्मी) बढ़ जाती है। यहां ताप का अर्थ यह नहीं है। *यह बढ़ना ही मृत्युसूचक है।* पर देखा जाता है कि शीत लगने से बर्फ से आक्रान्त होने पर मृत्यु सहसा होती है पर गर्मी की वृद्धि बिलकुल नहीं होती है। नाड़ी से मृत्यु की परीक्षा करने के उपदेश में "प्रति-क्षीणा च शीता च जीवितं हन्त्यशेषत।" से शीत होने पर मृत्यु तथा "कामं प्राणहरा रोगा वहवो न तु ते तथा। यथा हिक्का च श्वासश्च हरतः प्राणमाशु वै॥" (च० चि० अ० १) से हिचकी एवं श्वास से मृत्यु बतायी गयी है इस में ताप होता ही नहीं, अतः यहां मानसिक ताप (ज्वर) ही समझना चाहिये। ज्वर मोहमय होता है और वह पूर्वकालिक क्रिया का अवरोधक होता है अतः जन्म के पश्चात् पूर्व जन्म तथा गर्भकालिक स्थिति का स्मरण नहीं करता और मानसिक ताप होने पर भी कर्त्त-व्याकर्त्तव्य का ज्ञान नष्ट हो जाता है।" ऐसा उल्लेख है।

भिन्न भिन्न जीवधारी एवं अजीवधारियों को भी ज्वर होता है। यह बात "पालकाप्य-संहिता" में बताईगई है, यथा-हाथियों में पाकल, घोड़ो में अभिताप, गौओं में ईश्वर, मनुष्यों में ज्वर, भेड़-बकरियों में प्रलाप, ऊँटों में अलस, भैसों में हारिद्र मृगों में मृगरोग, पक्षियों में अभि-घात, मछलियों में इन्द्रमद कीट पतंगों पक्षपात, सर्पो में अक्षिक, जल में नीलिका (जल का नील हो जाना), भूमि में उपर और वृक्षों में कोटर आदि को ज्वर कहा जाता है, इस प्रकार सभी स्थावर एवं जंगमों में यह पाया जाता है। ज्वर का आक्रमण देवता एवं मनुष्यों में होता है तो चिकित्सा करने पर लाभ हो जाता है पर अन्यों में ज्वर का आक्रमण हो तो उसका बगैर चिकित्सा के नाश हो जाता है। इस प्रकार से जन्म से मृत्यु पर्यन्त समस्त प्राणियों में उपद्रव करने हेतु, तथा सभी रोग साथ में रखने वाला होने से ज्वर को रोगराट् (रोग राज) कहा है। ❁

प्राचीन ग्रंथों में ज्वर के भयावह चित्र

क्या विज्ञान सम्मत हैं ?

सुश्री पूर्णिमा तिवारी बी० ए०, जोधपुर।

कई प्राचीन आयुर्वेद ग्रंथों में ज्वरों के भयावने चित्र देखने में आते हैं जो रेखांकित होते हैं। ये चित्र कब से प्रारम्भ हुए यह बात भी ऐतिहासिक दृष्टि से स्पष्ट है। चरक, सुश्रुत में ज्वरों का कोई स्वरूप वर्णन नहीं है न किसी अन्य आयुर्वेदीय ग्रंथों में इन्हें देखा गया है। परन्तु इनमें से कुछ ग्रंथों के प्रारम्भ में ही ज्वरों के रेखांकित चित्र अवश्य अवलोकनार्थ मिलते हैं। अध्ययन से यह स्पष्ट है कि यह कल्पना मध्ययुगीन है। जिस प्रकार स्वर्ग नर्क के चित्र, गौ माता के देवयुक्त चित्र तथा करणी-भरणी के चित्र देव असुरों के चित्र, भूत प्रेत राक्षसों के चित्र बनाये गये हैं उसी प्रकार ये चित्र भी बनाये गये है। इन चित्रों के निर्माण का आधार जहाँ तक मेरा ध्यान है पौराणिक गाथाएं हैं। उन्हीं के आधार पर चित्रकार ने अपनी भावनायें स्थिर कर ये चित्र बनाये है। वास्तविक रूप से इनमें वैज्ञानिकता कम तथा कल्पनाशक्ति अधिक है।

जिस प्रकार एक सुन्दर श्याम पुरुषाकृति के हाथ में बंशी धारण की हो तो वह श्रीकृष्ण तथा उसी के हाथ में धनुष धारण किया हो वो श्री राम माना जावेगा। इसी प्रकार अन्य देवताओं की आकृति की भी व्यवस्था की जा सकती है—लम्बी तुण्डी, गज वदन वाले श्री गणेश जी होते हैं। ये सभी उनके वास्तविक चित्र नहीं हैं केवल चित्रकार की कल्पना हैं जो पौराणिक गाथाओं पर आधारित हैं। ज्वर की कल्पना भी ठीक इसी आधार पर की गई। ज्वर भयावह है-विरूप है, रुद्र द्वारा उत्पन्न है, रुद्रोपासक है, मनुष्य अथवा प्राणिमात्र को डराने वाला है सभी उसके हस्तगत हैं इस प्रकार के लम्बे दाँतों वाला ज्वर बताया गया है।

आगे विवेचन करते समय एक दोषज ज्वर के एक मुख द्वि दोषज ज्वर के दो मुख, सन्निपातक ज्वर के तीन मुख, विशालकाय शरीर जिसके सामने छोटा सा प्राणी जिसे वह हाथ में पकड़े हैं, प्राणी भय से त्रस्त है अपने आपको असहाय महसूस करता है-एक दो प्राणी उसके उदर में अंकित है। इस प्रकार के ज्वर की मूर्तियां अंकित हैं। इसके आगे रोग लक्षणों के अनुसार प्राणी की देह की फूटन खिचाव आदि के भाव भी चित्रों में अंकित हैं। द्वि दोषज तथा सान्निपातक ज्वर के गले में मुण्डमाला भी डाल दी गई है। रुद्रोपासक होने के कारण त्रिपुंड भी ललाट पर रख दिया जाता है। नेत्र लाल बड़े बड़े, दाँत बड़े बड़े, बाल खड़े तथा रोम खड़े तथा भयावह।

अनुमानतः १६ वीं शताब्दि में लिखी गई पुस्तक भाव प्रकाश में ज्वर के स्वरूप का वर्णन स्पष्टतः इस प्रकार लिखा गया है--

"रुद्र की क्रोध रूप अग्नि से उत्पन्न हुआ और सर्व जीवों को सन्तापित करने वाला ऐसा ज्वर नाम वाला (छाया) पुरुष प्राणियों के नाश करने के लिये प्रकट हुआ है। यह पुरुष तीन पांव वाला, भस्म रूपी आयुध को धारण किये हुए तीन सिर युक्त, दीर्घ उदर वाला, बाघम्बर पहने, कपिल वर्ण वाला, मुण्डों की माला (नर) धारण किये हुए, पीली आंखें वाला, छोटी छोटी जाँघें, भयंकर रूप, महाबलवान, और बहुत लम्बा, ऐसा ज्वर रूपी पुरुष मनुष्यों का नाश करने के लिए स्थित है। यह ज्वर मनुष्यों के अतिरिक्त और जीवों में अन्य नामों से कहा जाता है। यह बहुधा करके प्राणियों के जन्म और मरण के समय शरीर में प्रविष्ट होता है। उसको देवता और मनुष्यों के बिना कोई नहीं सह सकता—ऐसा सुश्रुत का मत है।

(भाव प्रकाश खण्ड २ ज्वराधिकार श्लोक ४-७ तक)

उपरोक्त रूपक में ३ सिर, तीन पांव, पिंगलवर्ण।

दीर्घ उदर, भयंकर रूप, महावली. आकार में लम्बा, ये सब बातें ज्वर के लक्षण मात्र हैं जो त्रिगुण। त्रिदोष, पित्त वृद्धि उदर विकार, त्रासदायक, दुःश्चिकित्स्य। मारक भा ऐसे ज्वर के लक्षण बताये गये हैं। क्रोध पित्तोत्पादक ऐसा चरक का मत है। वाग्भट्ट ने भी इसका समर्थन देते हुये कहा है कि पित्त के बिना गर्मी नही होती और गरमी के विना ज्वर नही होता। इसलिये पित्त ज्वर में पित्तको कुपित करने वाली चिकित्सा न करे। अधिके शब्द से वाग्भट्ट ने सूचना दी है कि 'रुद्र श्री महादेव जी से उत्पन्न होने के कारण ज्वर देव-स्वरूप है अतः इसका पूजन करना चाहिये यह पूजा के योग्य है। आचार्य विदेह ने भी उत्तम रीति से ज्वर का पूजन करने से ज्वर तत्काल ही शान्त होता है ऐसा लिखा है।

—भाव प्रकाश खण्ड २ ज्वराधिकार श्लो. २-३

मधुर ज्वर, सन्तत ज्वर, अन्येद्युष्कज्वर, त्रितीयक, चतुर्थक, काल ज्वर के भिन्न भिन्न स्वरूप थोड़े थोड़े अन्तर से अंकित किये गये है। इनके पैरों तले भी प्राणी पड़े हैं। विभिन्न ज्वरों के लक्षणानुसार रोगी की अवस्था तथा ज्वर का स्वरूप अंकित किया गया है। परन्तु आधार भूत बातें एक ही है। जिन कारणों से रोग उत्पन्न होता है वे कारण भी उन चित्रों में अंकित रहता है। उपरोक्त सभी वातावरणों के आधार पर ही ये चित्र बनाये गये है।

आयुर्वेद की यह मान्यता है कि व्याधियों का कारण दुष्ट कर्म भी है अत पापी मनुष्य है ऐसा भी अंकित है। प्रज्ञापराध जो रोग का प्रमुख कारण है वह भी अंकित है। ज्वर चाहे रूप वाला न भी हो फिर भी मानव कल्पना मूक नही है। उन्होंने उनके लक्षणों के आधार पर उन्हें चित्रित कर दिया है। ये चित्र वास्तविक चाहे न हों उनका आधार वैज्ञानिक अवश्य है। जिस प्रकार देव प्रतिमायें अल्पमति मानव के समझने के लिए ये चित्र उत्तम है। चित्रों को देखकर साधारण बुद्धि वाला मनुष्य ज्वर के पूर्वरूप, रूप, कारण, प्रभाव आदि को भली प्रकार से समझ सकता है और उस ज्ञान के आधार पर वह उन कारणों से बच भी सकता है। जो पढ़ने में कुछ कठिन व्याबसायिक शब्दों के कारण उनके समझ में नही आते उन्हें चित्रों द्वारा सरलीकृत कर उपस्थित कर दिया गया है।

सारांशतः ज्वर के उन रेखांकित चित्रों का जो मध्य युगीन काल में चित्रित किये गये है उनका आधार सदाचार तथा धर्माचरण है, विज्ञान है तथा विज्ञान की कठिन गुत्थियों को सरलीकृत कर समझाना है। जो पूर्ण विज्ञान सम्मत तो है ही ज्ञानवर्धक भी है।

इसी दृष्टि से भाव प्रकाश ने विषम ज्वर की चिकित्सा के साथ ही शिव, पार्वती तथा नन्दी गणों सहित उनकी पूजा करना लिखा है। विष्णु सहस्रनाम का पाठ तथा विष्णु की पूजा का विधान भी दिया है। तीर्थ जल का सेवन, देवों का संस्तुति तथा ज्वर का पूजन भी लिखा है।

(भाव प्रकाश ज्वराधिकार ७६८-तक)

ज्वर को नमस्कार

वैद्य प० गोपाल जी द्विवेदी
मन्त्री—प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन उत्तर प्रदेश एवं अ० भा० आयुर्वेद पत्रकार संघ
ग्राम – नरहन कलाँ पो० सैढ़ी (चन्दौली) वाराणसी उ० प्र०।

"अथर्व वेद" में ज्वर को प्रणाम किया गया है। इससे स्पष्ट है कि ज्वर अनादि काल से लोगों को कष्ट देता आज तक एक मुख्य व्याधि के रूप में चिकित्सा जगत में बहु चर्चित रोग रहा है। अथर्व वेद का० ५ अ० ५ सू० २२ में ज्वर की इस प्रकार चर्चा हुई—

हे ज्वर ! तू देह को नष्ट कर देने वाला है, तू सब मनुष्यों को अग्नि के समान सन्ताप देता हुआ हरे वर्ण का सा बना देता है अतः तू तिरस्कृत, निर्बल एवं अधम स्थान को प्राप्त हो। जो कठोर, अर्बुद के समान लाल है ऐसे ज्वर को, हे शक्तिवान तुम दूर हटाओ। मैं ज्वर को प्रणाम करता हूं। उसे निम्न स्थान में जाने को प्रेरित करता हूं। मुक्के के समान प्रहार ज्वर महान वर्षकों को पुनः प्राप्त हो। ज्वर का स्थान मूंज से युक्त है, वीर्य की अधिक वर्षा करने वाले पुरुष इसके गृह रूप हैं। हे तक्मन् ! वाल्हिकों में तू जितना है उतना ही मिला रहता है। जीवन को सर्प के समान कष्ट देने वाले ज्वर ! तू चोरी करने वाली दासी से वज्र रूप से मिलता हुआ हमसे अपने को दूर कर। हे ज्वर, तू जीवन को दुखी करने वाला है।

तू मूंज वाले प्रदेश अथवा वाल्हीक प्रदेशों को या उससे भी दूर चला जा और हे तक्मन तू प्रथम अवस्था वाली शूद्रा से मिलता हुआ उसे ही कम्पायमान कर। हम मूंज युक्त या महावृष्टि युक्त स्थानों पर जाने के लिए ज्वर से कहते हैं। तू वहाँ जाकर बन्धुओं का भक्षण कर। ज्वर हमसे वाल्हिकों में प्रस्थान करेगा। तू अन्य क्षेत्रों में रम रहा है। अतः हमको सुख प्रदान कर। तू शीत के साथ होने वाला ज्वर है, तू कम्प के साथ कम्पित करने वाला है। तू अपने इस भयंकर शस्त्रों सहित हमसे दूर हो जा। हे तक्मन् शीत-ज्वर ! तू खाँसी और बल क्षीण करने वाले रोगों को हमारा मित्र मत बनाओ। मैं तुमसे बारम्बार कहता हूं कि इस स्थान से नीचा होकर यहाँ मत आ।

हे तक्मन् ! बल को क्षीण करने वाला रोग रूप तेरा भाई और खाँसी तेरी बहिन तथा पाप रूप तेरा भतीजा है। इसके साथ तू दुष्ट पुरुष को प्राप्त हो। हे देव ! तिजारी, चौथय्या, वर्षा, शरद और ग्रीष्म के तथा शीत और रूक्ष ज्वर को नाश कीजिए। मूंज युक्त अंग मगध, गंधार देशों में हम कष्ट देने वाले रोग भगाते हुए मनुष्यों को सुखी करते हैं।

—(अथर्व वेद श्लोक २ से १४ तक)

आगे काण्ड ६ अ० २ सूक्त २० श्लोक सं० १ से ३ के अनुसार—

दावाग्नि के समान देह के अंगों को जला देने वाले इस ज्वर की जलन सभी अंगों में व्याप्त होती है। उस समय उन्मत्त के समान प्रलाप करता हुआ मनुष्य संसार से चल देता है। ऐसा ज्वर हमारे पास से हटकर दुराचारियों को प्राप्त हो। इसलिये ज्वर के अभिमानी देवता को नमस्कार है। ज्वर के ताप से रुलाने वाले रुद्र को नमस्कार तथा पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली औषधियों को भी नमस्कार है। सब अंगों में व्याप्त, प्रत्यक्ष अनुभव में आते हुए, रक्त को दूषित कर पीला कर देने वाले पित्तज्वर को मैं नमस्कार करता हूं।

सर्वज्वर निवारक कृत्य—

विष्णोर्नाम सहस्रस्य पठनं श्रवणं श्रुतेः।
देवानां ब्राह्मणानां च गुरूणामपि पूजनम्।
ब्रह्मचर्यं तपो होमः प्रदानं नियमो जपोः।
साधूनां दर्शनं सत्यं रत्नौषधिविधारणम्॥
मंगलाचरणं चेति वर्णः सर्वान् ज्वरान् जयेत्॥

अर्थात्—विष्णु सहस्रनाम का पाठ करना, वेद का सुनना तथा देवता, ब्राह्मण और गुरुओं की पूजा करना, ब्रह्मचर्य से रहना एवं तप, होम, दान, नियम, जप और

—शेषांश पृष्ठ ९० पर देखें

ज्वर-विवेचन

डा० अविनाश वी० लोपे बी.एस.ए. एम., एम.डी. (आयुर्वेद)
आयुर्वेद विभागाध्यक्ष-कायचिकित्सा विभाग,
बाला हनुमान आयुर्वेद महाविद्यालय
लोद्रा (उत्तर गुजरात)

संसार में आदि काल से उत्पन्न हुआ ज्वर रोग है। त्रेतायुग मे रुद्र (भगवान शंकर) की क्रोधाग्नि द्वारा ज्वर की उत्पत्ति हुई है। सभी रोगों की उत्पत्ति में ज्वर प्रथम है। ज्वर स्वयं रोगस्वरूप होते हुए अन्य अनेक रोगों में लक्षण रूप में भी प्राप्त होता है तथा जन्म के समय और मृत्यु के समय भी इस ज्वर की अवश्यम्भावी प्राप्ति होती है। इस प्रकार ज्वर विशाल स्वरूप धारण किये संसार में उपलब्ध होता है।

आधुनिक युग में चिकित्सा शास्त्र का जो विकास हुआ है तथा आयुर्वेद सम्बन्धी प्राचीन संहिताओं का अध्ययन करने पर ज्वर की उत्पत्ति के विषय में अधिक स्पष्टता होती है। ज्वर की उत्पत्ति में मुख्यतः ३ घटनायें होती है। (१) उष्णता की उत्पत्ति—(२) उष्णता का नाश (३) तापनियन्त्रक केन्द्र द्वारा उष्णता का नियमन। आहार के समवर्त (Metabolism) से उष्णता निर्माण होती है। जब आहार का सम्यक् रूप में पाचन नहीं होता तब विषोत्पत्ति होकर अत्यधिक उष्णता निर्माण होती है। उसी प्रकार वातावरण में अनेक जीवाणु उपस्थित रहते हैं जिनके उपसर्ग से रक्तप्रवाह में विषोत्पत्ति होकर शरीर में अत्यधिक उष्णता का निर्माण होता है। इस उष्णता का नाश शरीर की मल उत्सर्जन क्रियाओं द्वारा होता है, जिसमे मल-मूत्र-स्वेद प्रवृत्ति, उच्छ्वास आदि का समावेश होता है। इन सभी क्रियाओं के ऊपर मस्तिष्क स्थित तापनियन्त्रक केन्द्र नियमन करता है। जब इस केन्द्र में तथा शरीर के मल उत्सर्जन करने वाले यन्त्रों में विकृति होती है तब योग्य प्रमाण में उष्णता का नाश न होने से ज्वर की उत्पत्ति होती है। आयुर्वेद में ज्वर रोग को स्वेदावरोध, संताप तथा सर्वाङ्ग ग्रहण—इन तीन लक्षणों का समूह माना है। इन तीन लक्षणों के युगपद होने पर ही उस रोग की पारिभाषिक ज्वर संज्ञा संभव है।

ज्वर की व्युत्पत्ति में—"ज्वरयति संतापयति देहेन्द्रियमनां सीति ज्वरः"—ऐसा कहा गया है। अर्थात देह-इन्द्रिय तथा मानस संताप को ही ज्वर कहा जाता है। देह संताप स्पर्श द्वारा ज्ञान किया जा सकता है। इन्द्रिय सन्ताप का ज्ञान करने के लिये उनके विषयों के ग्रहण शक्ति के विषय में विकृति होना या मिथ्या ग्रहण करना, इससे ज्ञान होता है। वैचित्य, अरति, ग्लानि—ये लक्षणों को देखकर मानस सन्ताप का ज्ञान किया जा सकता है।

सम्प्राप्ति—

सभी रोगों में दोष प्रकोप ही मुख्य कारण है। दोष प्रकोप कालस्वभाववश तथा मिथ्या आहार विहार जन्य इस प्रकार दो तरह से होता है। कालस्वभाववश अर्थात्—प्रावृट् वर्षा ऋतु में वात का, शरद ऋतु में पित्त का तथा बसन्त ऋतु में कफ का प्रकोप होता है। अथवा—बलवद् विग्रहादि हेतुओं से वात का, क्रोधादि हेतुओं से पित्त का और दिवास्वप्नादि हेतुओं से कफ का प्रकोप होता है। इस प्रकार प्रकुपित हुए ये दोष पृथक् पृथक् अथवा संसर्गज एवं सन्निपात रूप में आमाशय में प्रवेश कर आद्य आहार परिणाम धातु रस धातु से मिलकर, वहां से पाचकाग्नि को बाहर निकाल कर अपने साथ लेकर स्वयं साम होने के कारण रसवह तथा स्वेदवह स्रोतसों में अवरोध उत्पन्न कर रसायनियों द्वारा समग्र शरीर में व्याप्त हो अपने दोषाग्नि की तथा पाचकाग्नि की ऊष्मा से देहोष्मा को बढ़ाकर समग्र शरीर मे स्वाभाविक ताप से अधिक ताप उत्पन्न करते है। इस संताप से संतप्त शरीर ज्वरित अर्थात् ज्वर मे आक्रान्त कहलाता है।
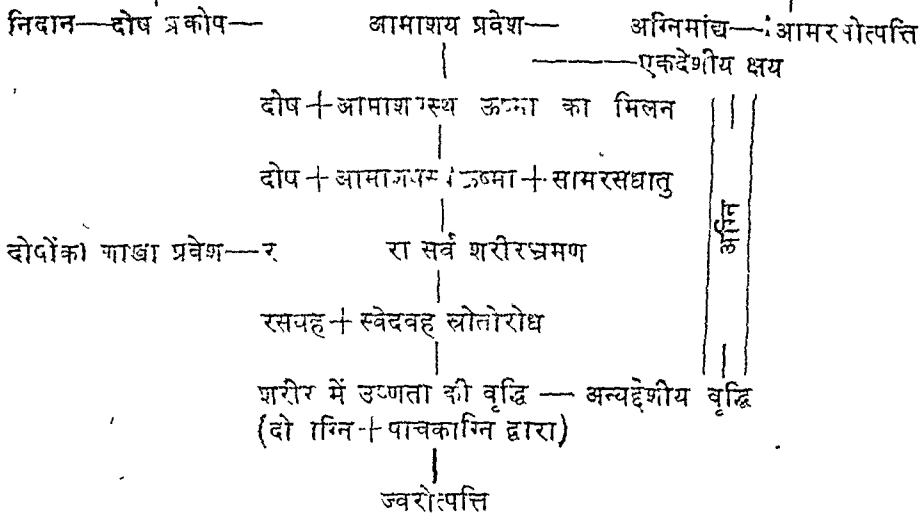
सम्प्राप्ति घटक—दोष-त्रिदोष (पित्त प्रधान)।
दूष्य—रस।
स्रोतोदुष्टि—रसवह स्रोतस, स्वेदवह स्रोतस।
स्रोतोदुष्टि लक्षण—संग।
अग्निदुष्टि—जाठराग्नि।
आम—जाठराग्निमांद्य जनित।
उद्भवस्थान—आमाशय।
अधिष्ठान—समनस्क शरीर।
व्यक्ति—शरीर (त्वचा)।
संचार—रसवाहिनी।
स्वभाव—चिरकारी।

प्रकार—

विभिन्न दृष्टिकोण से ज्वर के अनेक प्रकार कहे गये हैं। जैसे—

(अ) अधिष्ठान भेद से—(१) शारीर (२) मानस।
(आ) स्वभाव भेद से—(१) सौम्य (२) आग्नेय।
(इ) वेग भेद से—(१) अन्तर्वेग (२) वहिर्वेग।
पुनः—(१) अविसर्गी (२) विसर्गी।
(ई) काल भेद से—(१) प्राकृत (२) वैकृत।
(उ) साध्यासाध्यता भेद से—(१) साध्य (२) असाध्य।
(ऊ) दोषकाल बलाबल भेद से—(१) सन्तत (२) सतत (३) अन्येद्युष्क (४) तृतीयक (५) चातुर्थक।
(ए) धातुभेद से—(१) रसगत (२) रक्तगत (३) मांसगत (४) मेदगत (५) अस्थिगत (६) मज्जागत (७) शुक्रगत।
(ऐ) दोष भेद से—(१) वातज (२) पित्तज (३) कफज (४) वातपित्तज (५) वातकफज (६) कफ पित्तज (७) त्रिदोषज (८) आगन्तुज।
(ओ) अवस्था भेद से—(१) आम (२) पच्यमान (३) निराम।
(औ) मोक्ष भेद से—(१) दारुण (२) अदारुण।

चिकित्सा -

सभी रोगों में निदान परिवर्जन करना यह प्रथम चिकित्सा सूत्र है। कहा भी है—संक्षेपतः क्रिया योगो निदान परिवर्जनम्। इस सूत्र के ऊपर डल्हण आचार्य ने टीका करके बतलाया है कि क्रिया योगों में वमन विरेचनादि कर्मो का प्रयोग करना चाहिए, साथ में निदान का त्याग करना चाहिए। अतः सर्व प्रथम ज्वरोत्पत्ति में उत्पादक हेतुओं का त्याग करना चाहिए।

चिकित्सा का दूसरा सिद्धान्त सम्प्राप्ति विघटन करना है। निदान से लेकर रोग की व्यक्त अवस्था तक का सम्पूर्ण व्यापार ही सम्प्राप्ति है। इस सम्प्राप्ति को तोडना ही चिकित्सा है। ज्वरोत्पत्ति में पित्त प्रधान दोष है अतः पित्तशामक उपचार करना चाहिये। साथ साथ में निदान से अग्निमांद्य तथा आम रस का निर्माण होता है अतः अग्नि को प्रदीप्त करने वाले तथा आमदोष का पाचन करने वाले दीपन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। तथा पाचन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये। रसवह तथा स्वेदवह स्रोतस में संगात्मक विकृति होती है अतः अवरोध नष्ट करने के लिए स्वेदनादि क्रियायें करनी चाहिए।

ज्वर में कुपित दोष कोष्ठ (आमाशय) में से शाखा (रसधातु) में चले जाते हैं। शाखा में पहुंचने पर ज्वर के लक्षण व्यक्त होते हैं। अतः दोषों को शाखा में से पुनः कोष्ठ में लाना आवश्यक रहता है। स्वेदनादि क्रियाओं द्वारा दोष जब शाखाओं से कोष्ठ में आ जाते हैं तब उन्हें वमन-विरेचन आदि कर्मों द्वारा शोधन किया जा सकता है। पश्चात् शेष दोष की शमन चिकित्सा की जाती है। इस प्रकार सम्प्राप्ति विघटन करके चिकित्सा करनी चाहिये।

आचार्य चरक ने ज्वर के क्रिया क्रम में ज्वर के पूर्व रूप दिखाई पड़ने पर तथा ज्वर के आदि में लघ्वशन और अपतर्पण का विधान किया है क्योंकि ज्वर आमाशयोत्थ व्याधि है। इसके अनन्तर कषायपान, अभ्यंग, स्नेहन, स्वेदन, प्रदेह, परिषेक, अनुलेपन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, उपशमन, नस्य, धूपन, धूम्रपान, अंजन, और भोजन प्रभृति विधान यथावश्यक युक्तिपूर्वक करे। तदनुसार से लंघन, लान, स्वेदन, यवागू तथा तिक्त रस अपक्व (आम) दोषों का पाचन करने के लिये प्रयुक्त किया जाना है।

वात ज्वर— वात ज्वर में लंघन के लिये लघु भोजन का उपयोग करना चाहिये क्योंकि वात लंघन को क्षण भर भी सहन नहीं कर सकता है। अतः आवश्यकतानुसार स्नेहनपूर्वक रूक्षण तथा स्वेदन भी करना चाहिये। आमदोष पाचन के लिये पांच दिन तक आवश्यकतानुमार लंघन कराना चाहिये। तथा मधुर और स्निग्ध द्रव्यों द्वारा यवागू आदि को संस्कार करके सेवन करना चाहिये।

पित्त ज्वर—पित्त ज्वर में दोषपाचनार्थ छः दिन तक आवश्यकतानुसार लंघन कराना चाहिये। तथा मृदुविरेचन देना चाहिये। मधुर, तिक्त तथा कषाय रस विशिष्ट तथा शीतवीर्य औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

कफ ज्वर—कफ ज्वर की संपूर्ण चिकित्सा अपतर्पण प्रधान होती है। आमदोष पाचनार्थ ७ दिन तक लंघन कराना चाहिये। दोषों के उत्क्लिष्ट होने पर वमन द्वारा कफ का शोधन भी किया जाना है। तिक्तकषाय रस विशिष्ट औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

वातपित्त ज्वर—कफ के मन्द रहने पर तथा दोनों के परिपाक हो जाने पर दुग्ध का पान परमोत्तम है। इसी प्रकार विबन्ध तथा तृष्णोपता हो और दाह तथा तृष्णा से पीड़ित रोगी हो तो उस अवस्था में दुग्धपान श्रेष्ठ होता है। यहां पर चक्रपाणि टीका के अनुसार विबन्ध अवस्था में गोदुग्ध तथा तृष्णोपता अजादुग्ध का प्रयोग करना चाहिये।

वातकफ ज्वर—वात कफ ज्वर में स्वेदन कर्म श्रेष्ठ होता है। इसके प्रयोग से स्वेद, मूत्र, पुरीष तथा अधोवात की प्रवृत्ति होती है और अग्नि प्रदीप्त होती है।

पित्तकफ ज्वर—पित्त तथा कफ पित्त अथवा पित्ताशयगत दोष को लंघन द्वारा जीतना चाहिए। यहां पर लंघन का अर्थ विरेचन (मृदु) अथवा दोष विरेचन लेना चाहिये। आवश्यकतानुसार वमन कर्म का भी प्रयोग किया जा सकता है। यदि दोष पक्वाशयगत हो गया हो तो उन्हें बस्ति द्वारा जीतना चाहिये। यदि ज्वर पुराना हो गया हो और रोगी कृश हो परन्तु अग्नि बलवान हो, उसका पुरीष रूक्ष तथा बध गया हो तो अनुवासन देना आवश्यक है। इससे मल स्निग्ध होकर विबन्ध दूर हो जाता है।

सन्निपात ज्वर—सर्व प्रथम यह निर्णय कर लेना आवश्यक है कि रोगी सम सन्निपात ज्वर से पीड़ित है या विषम सन्निपात ज्वर से पीड़ित है। सम सन्निपात ज्वर में तीनों दोष समान रूप में प्रकुपित होते हैं अतः चिकित्सा में भी समान रूप से त्रिदोषहर, ज्वरघ्न औषधियों का प्रयोग अपेक्षित होता है। विषम सन्निपात ज्वर में दोषोल्वणता के आधार पर चिकित्सा करनी चाहिये।

सन्निपात ज्वर की चिकित्सा में शास्त्रों में दो प्रकार का विधान उपलब्ध होता है—(१) सर्व प्रथम—सन्निपात ज्वर में पित्त को शान्त करना उचित है क्योंकि ज्वर से पीड़ित रोगियों में पित्त का शमन ही दुष्कर है। (२) दूसरा विचार यह है कि सन्निपात ज्वर में सर्व प्रथम आम और कफ का पाचन करना आवश्यक है। कफ के शांत होने पर पित्त तथा वायु का उपक्रम करे।

इस प्रकार उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखकर ज्वर चिकित्सा में प्रवृत्त होना चाहिये।

ज्वर के प्रकार और भेद

डा० राजेन्द्रप्रकाश भटनागर
एम० ए०, पी-एच० डी० भिषगाचार्य (स्वर्ण पदक प्राप्त)
आयुर्वेदाचार्य, एच० पी० ए० (जाम०) साहित्यरत्न
प्राध्यापक
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, उदयपुर (राज०)

अमर कोष मे ज्वर को एक व्याधिभेद बताया है। 'ज्वादि' गण की रोग अर्थ मे प्रयुक्त होने वाली 'ज्वर रोगे' इस परस्मैपदी सेट् धातु से 'अच्' (३-१ १३४) प्रत्यय करके 'ज्वर' शब्द निष्पन्न होता है। अथवा 'ज्वरणं वा' इस अर्थ में 'घ्यन्यात् घञ्' (३-३-१८) से घञ् प्रत्यय करके या 'एरच्' (३-३-५६) से 'अच्' प्रत्यय करके 'ज्वर' शब्द बनता है।[1]

'ज्वरति इति ज्वरः' रोग या व्याधि को ज्वर कहते है। इस प्रकार 'ज्वर' शब्द रोगमात्र का सूचक है।

आयुर्वेद में 'ज्वर' शब्द रोगमात्र और रोगविशेष के अर्थ में प्रयुक्त होता है। रोगमात्रसूचक ज्वर शब्द यौगिक रूप है तथा सन्तापलक्षण रोगविशेष अर्थ में प्रयुक्त शब्द योगरूढ़ है। चरक संहिता में ज्वर के पर्यायों में रोगवाची शब्दों का परिगणन किया गया है—

ज्वरो विकारो रोगश्च व्याधिरातङ्क एव च।
एकोऽर्थो नामपर्यायैर्विविधैरभिधीयते ॥'
(च० चि० ३-११)

इसी प्रकार 'व्याधि' मात्र के पर्यायों में ज्वर का उल्लेख हुआ है—

'तत्र व्याधिरामयो गद आतङ्को यक्ष्मा ज्वरो विकारो रोग इत्यनर्थान्तरम्।' (च० नि० १-५)

ज्वर की प्रकृति या स्वभाव ही यमात्मक (यमरूप) होता है। चरक ने कहा है—जिस प्रकार यम अपने कर्म से क्लेश पाते हुए प्राणियों की मृत्यु का कारण होता है, उसी प्रकार क्षय (शरीर का क्षय करने वाला हेतु होने से), तम (मोह करने से), पाप्मा (पाप से), मृत्यु (मरण का कारण होने से) और ज्वर – ये यमरूप होते है। वैसे ही ये सब (क्षयादि) भी मारक होते है।

चरक संहिता के निम्न गद्य मे ज्वर का परिचय संक्षेप में दिया गया है—

'ज्वरस्तु खलु महेश्वरकोपप्रभवः, सर्वप्राणभृतां प्राणहरो, देहेन्द्रियमनस्तापकरः, प्रज्ञाबलवर्णहर्षोत्साहह्रासकरः, श्रमक्लममोहाहारोपरोधसंजननः; ज्वरयति शरीराणीति ज्वरः, नान्ये व्याधयस्तथा दारुणा बहूपद्रवा दुश्चिकित्स्याश्च यथाऽयम्। स सर्वरोगाधिपतिः, नानातिर्यग्योनिषु च बहुविधैः शब्दैरभिधीयते। सर्वे प्राणभृतः सज्वरा एवं जायन्ते सज्वरा एव म्रियन्ते च; स महामोहः, तेनाभिभूताः प्राग्दैहिकं देहिनः कर्म किंचिद पिन स्मरन्ति, सर्वप्राणभृतां च ज्वर एवान्ते प्राणानादत्ते ॥' (च० नि० १-३५)

ज्वर महेश्वर (रुद्र) के कोप से उत्पन्न हुआ है; सब प्राणियों का यह प्राण हरण कर लेता है; देह-इन्द्रिय और मन मे ताप करने वाला है; प्रज्ञा, बल-वर्ण, हर्ष, उत्साह को कम करने वाला है; श्रम, क्लम (थकान), मोह (कार्य में अनिच्छा), आहार का उपरोध (भूख का नाश) करने वाला है; शरीर में सन्ताप पैदा करने वाला है; अन्य व्याधिया इतनी दारुण (भयंकर), अनेक उपद्रवयुक्त और

1 अमर कोश, कांड, २, वर्ग ६, श्लोक ५६ पर भट्टोजिदीक्षित कृत 'रामाश्रमी टीका'।

दुश्चिकित्स्य नही है जितना यह होता है। यह सब रोगों का राजा है। अनेक प्राणि-योनियों में यह विविध शब्दों मे कहा जाता है। सभी प्राणि ज्वर सहित पैदा होते हैं और ज्वर सहित मरते है। वह महामोह है। (जन्म और मरण के समय महामोह रूप ज्वर पैदा होता है, सन्ताप रूप ज्वर नही होता—चक्रः)। इससे अभिभूत होने के कारण प्राणी अपने पूर्व देह के किसी भी कर्म का स्मरण नही कर पाता। सब प्राणियों में जीवन के अन्त में ज्वर ही प्राणों को ले लेता है।

इस विवरण में ज्वर की उत्पत्ति, शरीर का मन पर प्रभाव, परिभाषा, रोगों में उसकी प्रधानता, जन्म मृत्यु के समय अवश्यम्भाविता और पूर्व जन्मकृत कर्म का स्मृतिनाश का संक्षेप में उल्लेख हुआ है। सुश्रुत में भी कहा है—

ज्वरमादौ प्रवक्ष्यामि स रोगानीसराट् स्मृतः।
रुद्रकोपाग्नि सम्भूतः सर्वभूतप्रतापनः॥
(सु० उ० ३९-९)

परिभाषा—

'ज्वरयति शरीराणीति ज्वरः' (च० नि० १-३५)
'ज्वरयति सन्तापयति' (चक्रः)

शरीर में जो सन्ताप पैदा करता है उसे ज्वर कहते हैं।

'सन्तापलक्षणो ज्वर इति। तदुक्तं—'क्रोधात्पित्त मेवाग्निस्तदूष्मा ज्वरः' इति।'
(आढ़मल्लकृत 'दीपिका' व्याख्या, शा० पू० अ० १-२ पर)

सन्ताप लक्षण वाला रोग 'ज्वर' कहलाता है। इसी से इसके प्रत्यात्म लक्षण (Cardinal Symptom) का बोध होता है। चरक लिखते है—

ज्वर प्रत्यात्मिकं लिङ्गं सन्तापो देह मानसः।
ज्वरेणाविशता भूतं न हि किञ्चिन्न प्रतप्यते॥
(च० चि० ३-३१)

शारीरिक और मानसिक सन्ताप[1] को ज्वर कहते है। यही इसका मुख्य अपरिवर्ती-अव्यभिचारी लक्षण है। ज्वर होने पर कोई भी प्राणी सन्तप्त (अधिक उष्ण) हुए बिना नही रहता।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि शरीर और मन ये दोनों ज्वर के अधिष्ठान है -

केवलं समनस्कं च ज्वराधिष्ठानमुच्यते।
शरीरं × × × (च० चि० ३-३०)
(केवलमिति कृत्स्नं, तेन बाह्येन्द्रियाणामप्यवरोधः —चक्रः)

आढ़मल्ल द्वारा उद्धृत वचन से ज्ञात होता है कि 'क्रोध से पित्त बढ़ता है, पित्त ही अग्नि है, अग्नि की ऊष्मा ज्वर है।' वाग्भट्ट ने लिखा है—'ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा विना।' (अ० हृ० नि० अ० १)

इस सम्बन्ध मे ज्वर की उत्पत्ति को प्रदर्शित करने वाली एक पौराणिक कथा मिलती है, जिस पर ध्यान देना चाहिए। दक्ष प्रजापति के यज्ञ के अवसर पर महेश्वर या रुद्र के लिए पृथक भाग की कल्पना नहीं करने से रुद्र क्रुद्ध हो गया। तब उसके ललाटगत चक्षु से 'बाल' गण उत्पन्न हुआ। उसने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया। वह स्वरूप में भस्मलिप्त शरीर वाला, तीन सिर और नौ नेत्र वाला, ज्वालामालाकुल (ज्वालाओं से घिरा हुआ), रौद्ररूप (भयानक) और छोटी जांघों वाला और बड़े उदर वाला था। उस 'क्रोध' को रुद्र ने लोक में ज्वर रूप में विचरण करने हेतु आदेश दिया।[2] अन्यत्र भी कहा है—

'ज्वरस्तु खलु महेश्वरललाटप्रभवः।' (च. नि. ८-११)
'ज्वरस्तु खलु महेश्वरकोपप्रभवः।' (च. नि. १-३५)
'रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः।' (सु.उ. ३९-९)

माधवकार ने दक्ष के अपराध से क्रुद्ध रुद्र के निःश्वास से ज्वर की उत्पत्ति मानी है—

'दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वास सम्भवः।'
(मा. नि. २-१)

ज्वर की सम्भावना (उत्पत्ति) प्राणी मात्र के शरीर में होती है। जन्म के आरम्भ में और निधन के समय महानतम या मोह के रूप में 'ज्वर' अवश्यंभावीतया उत्पन्न होता है।

'जन्मादौ निधने च महत्तमः।. (च. चि. ३- २६)

वैसे यह अपचार (मिथ्या आहार विहार) से सब

---

१ 'तपु संतापे' (भ्वादि, प०) धातु से 'सन्ताप' शब्द बनता है।
२ च० चि० ३।१५-२५

प्राणियों में कभी भी हो सकता है—

'जन्मादौ निधने च त्वमपचारान्तरेषु च।'

(च. चि. ३-२५)

सब रोगों में ज्वर की प्रधानता—

समस्त (निज और आगन्तुज) रोगों मे ज्वर को प्रधान माना गया है। क्योंकि यह—१. शरीर, मन और इन्द्रिय इन तीनों को तपाता है, २. सब रोगों के पहले उत्पन्न होता है, ३. अनेक विकारों को पैदा करने के कारण बलवान है, ४. जन्म और मृत्यु के समय अवश्य उत्पन्न होता है तथा ५. स्थावर, जङ्गम रूप सब प्राणियों में व्याप्त है। इन कारणों से इसकी प्रमुखता मानी जाती है।[1]

'देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली।
ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवतापुरा॥'

(च० चि० ३-४)

यह जितना दारुण, अनेक उपद्रवों से युक्त और दुश्चिकित्स्य है, वैसा अन्य कोई रोग नहीं है—

'नान्ये व्याधियस्तथा दारुणा बहूपद्रवा दुश्चित्स्याश्च यथाऽयम्[1] स सर्वरोगाधिपतिः।' (च० नि० १-३५)

इसी से यह सर्व रोगों का राजा कहलाता है।

'स रोगानीकराट् स्मृतः।' (सु० उ० ३९-८)

ज्वर के नाम—

'ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्यु राजो यमोपमः।
क्रोधोदक्षाध्वरध्वंसी सर्वभूतप्रतापनः॥'

(ज्वर तिमिर भास्कर १-८)

ज्वर, रोगपति, पाप्मा (पाप से उत्पन्न), मृत्युराज (मृत्युओं का राजा), यमोपम (यम के समान), क्रोध (रुद्र का क्रोध रूप), दक्षाध्वरध्वंसी (दक्ष के यज्ञ का नाशक), सर्वभूत प्रतापनः (सब भूतों को तपाने वाला) है।

विभिन्न प्राणियों में यह अनेक शब्दों (नामों) से कहलाता है।

'नानातिर्यग्योनिषु च बहुविधैः शब्दैरभिधीयते।'

(च० नि० १-३५)

'तैस्तैर्नामभिरन्येषां सत्वानां परिकीर्त्यते।'

(सु० उ० ३९-९)

'ज्वरतिमिर भास्कर'[2] में इसकी एक विस्तृत सूची दी गई है—

१. हाथी—पालक
२. मनुष्य—ज्वर
३. महिष—हरिद्र
४. कुरंग[3]—आलस
५. तुरंग (घोड़ा)—ताप या अभिताप
६. गौ—ईश्वर
७. गधा—खोरक
८. मछली—इन्द्रमद
९. विहंग (पक्षी)—पक्षपात
१०. बकरी—प्रलापक
११. भेड़—भूक्षवेग
१२. पंचानन (शेर)—श्रम
१३. मयूर (मोर)—शिखाभेद
१४. हरिण—मृगामय (मृगरोग)
१५. सारमेय (कुत्ता)—अलर्क
१६. शुक (तोता)—हिक्का श्वास
१७. सर्प—निर्मोक (केचुलीत्याग तथा उष्णीष)
१८. कोयल—नेत्र रोग
१९. वृक्ष—कोटर
२०. पद्म उत्पल (लाल कमल)—ऋषभ
२१. बहुविध अन्न—चूर्णक
२२. गेहूं—कुकुम
२३. जल—नीलिका
२४. सब ओपधियां—ज्योतिष्क
२५. लता—ग्रन्थिक
२६. क्षेत्रभूमि (खेती की भूमि)—ऊसर
२७. पर्वत—शिलाजतु
२८. कूल—पर्व
२९. शाक—मधूपक

---

१ चक्रपाणि टीका च० चि० ३।४ पर तथा मधुकोष टीका मा० नि० २।१ पर।
२ 'ज्वरतिमिर भास्कर' अ० १, श्लोक ९-१६
३ मधुकोष में 'करभ' संज्ञा है, जिसका अर्थ हाथी का बच्चा ऊंट का सूचक है। कुरंग शब्द हरिण का पर्याय है।

३०. व्याघ्र या व्याल (मांस भक्षी जानवर) आक्षिक

मधुकोष (मा० नि० अ० २-१) में भी पालकाप्य के वचन के रूप में तीन श्लोक उद्धृत है जिसका विवरण गद्य रूप में पालकाप्यकृत उपलब्ध हस्त्यायुर्वेद के 'महारोगस्थान' के नवें अध्याय में मिलता है। इसमें प्राणियों में होने वाले ज्वर के मुख्य नाम दिए है।

ज्वर के प्रकार--

चरक संहिता मे मूलभूत रूप से ज्वर को सन्ताप लक्षण वाला एक ही प्रकार का रोग कहा गया है। अभिप्राय भेद से यह दो प्रकार का होता है--निज और आगंतु की विशेषता के आधार पर।

'ज्वरस्त्वेक एव सन्ताप लक्षण:। तमेवाभिप्रायविशेषाद्विविधिमाचक्षते, निजागन्तुविशेषाच्च।' (च० नि० १-३२)

ज्वर के अग्रिम भेदोपभेद इन्हीं दो प्रकार के पुनः विभाजन मे निष्पन्न होते हें—

'तत्र निजं द्विविधं त्रिविधं चतुर्विधं सप्तविधं चाहुर्भिषजो वातादिविकल्पात्।' (च० नि० १-३२)

निज ज्वर—

निज ज्वर वातादि दोषों से उत्पन्न होता है। वातादि के विकल्प से यह दो, तीन, चार और सात प्रकार का होता है —

१. द्विविध—शीताभिप्राय और उष्णाभिप्राय। उष्णसमुत्थ (जन्य) ज्वर में शीताभिप्रायता और शीत समुत्थ ज्वर में उष्णाभिप्रायता मिलती है क्योंकि रोगी निदान विपरीत आहार विहार को चाहता है। अन्यत्र भी कहा है—'द्वौ ज्वराविति उष्णाभिप्राय: शीतसमुत्थश्च, शीताभिप्राय: चोष्णसमुत्थ: (च० सू० १९-४)।

शीत ऋतु में उत्पन्न पैत्तिक ज्वर के शीत समुत्थत्व के निरासन के लिए समझना चाहिए। इसी प्रकार शीताभिप्राय में भी समझना चाहिए। (चक्र)

२. त्रिविध—तीन दोषों से उत्पन्न वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक।

३. चतुर्विध—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक एवं द्वंदज। चक्रपाणि ने स्पष्ट किया है कि—'तत्र चातुर्विध्ये द्वंदज्वरा: प्रतिक्षिप्यन्ते, तेषां प्रत्येकं वातादिज्वर सदृशत्वात्: त्रिदोष ज्वरस्तु असाध्यतायोगात् कृच्छ्रसाध्यतायोगाद्वा पृथगुच्यते।'

४. सप्तविधि—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातश्लैष्मिक, पित्त श्लैष्मिक, सन्निपातिक।

वातादि दोष रोग के सन्निकृष्ट कारण माने जाते हैं। इसलिए कारण भेद से ज्वर के आठ प्रकार स्वीकार किए गये है—

१. वातजन्य
२. पित्तजन्य
३. कफजन्य
४. वातपित्तजन्य
५. वातकफजन्य
६. पित्तकफजन्य
७. वातपित्तकफजन्य
८. आगन्तु कारण जन्य।

ज्वर का यह मौलिक या प्रारम्भिक वर्गीकरण है। ज्वर के अन्य भेद इन्हीं के अवान्तर भेद हैं।

आगन्तु ज्वर—

कारण भेद से ज्वर का आठवां प्रकार 'आगन्तुक' है। यह अभिघात, अभिषङ्ग, अभिचार और अभिशाप—इन चार कारणों से उत्पन्न होता है। इसी आधार पर आगन्तु ज्वर के चार भेद माने जाते हैं।

दोषों का अनुवन्ध—आगन्तु कारणों से उत्पन्न ज्वरों में भी प्रथम व्यथा (पीड़ा) उत्पन्न होती है, परन्तु बाद में उनका दोषों से अनुवन्ध (संयोग) हो जाता है—

१. अभिघातजज्वर में—दुष्ट शोणित में अधिष्ठान करने वाले वायु को;

२. अभिषङ्गज ज्वर में—वात और पित्त से;

३-४. अभिचारज और अभिशापज ज्वर में—सन्निपात से अनुवन्ध हो जाता है।

चरक में लिखा है—

'अभिघाताभिषङ्गाभिचाराभिशापेभ्य आगन्तुर्हि व्यथापूर्वोऽष्टमो ज्वरो भवति। स किंचित्कालमागन्तु:केवलो भूत्वा पश्चाद दोषैरनुवध्यते। तत्राभिघातजो वायुना दुष्ट शोणिताधिष्ठानेन, अभिषङ्गज: पुनर्वातपित्ताभ्याम्, अभिचाराभिशापजो तु सन्निपातेनानुवध्येते।

(च० नि १-३०)

चरकोक्त ज्वर—वर्गीकरण के आधार

चरक ने निम्न चार आधार पर ज्वर के वर्ग या भेद बताये हैं—

(अ) विधि (प्रकार) भेद से—

१. अधिष्ठान भेद से—द्विविध—१. शारीर, २. मानस।

२. अभिप्राय भेद से—द्विविध—१. सौम्य (उष्णाभिप्राय, शीतसमुत्थ, शीतज्वर-वातज, कफज, वातकफज)। २. आग्नेय (शीताभिप्राय, उष्णसमुत्थ, उष्णज्वर-पित्तज)। मिश्रलक्षणज्वर उभयाभिप्राय होते है।

३. वेग भेद से—द्विविध—१. अन्तर्वेग, २. वहिर्वेग।

४. ऋतुकाल भेद से—१. प्राकृत-ऋतुकाल स्वभाव से उत्पन्न दोषजन्य। २. वैकृत-तद्विपरीत।

५. साध्यासाध्य भेद से—१. साध्य, २. असाध्य।

(आ) दोषकाल वलावल भेद से—पञ्चविध—१. सन्तत, २. सतत, ३. अन्येद्युष्क, ४. तृतीयक, ५. चतुर्थक।

(इ) आश्रय भेद से—सप्त धातुओं के आश्रय से सप्तविध—१. रसज, २. रक्तज, ३. मांसज, ४. मेदोज, ५. अस्थिज, ६. मज्जाज, ७. शुक्रज।

(ई) कारण भेद से—अष्टविध १. निज वातादि विकल्प से सप्त विध। २. आगन्तुज एक विध।

द्विविधो विधिभेदेन ज्वरः शरीर मानसः।
पुनश्च द्विविधो दृष्टः सौम्यश्चाग्नेय एव वा ॥
अन्तर्वेगो वहिर्वेगो द्विविधः पुनरुच्यते।
प्राकृतो वैकृतश्चैव साध्यश्चासाध्य एव च ॥
पुनः पञ्चविधो दृष्टो दोपकालवलावलात्।
संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥
पुनराश्रयभेदेन धातूनां सप्तधा मतः।
भिन्नः कारण भेदेन पुनराष्टविधो ज्वरः ॥
(च० चि० ३-३२-३५)

(३) अवस्थाभेद से ज्वर के निम्न प्रकार से भेद मिलते है—

(१) त्रिविध—आम ज्वर, पच्यमान ज्वर, निराम (पक्व) ज्वर। (च० चि० ३-१३२-१३८)

(२) द्विविध—साम, निराम (अ० स० नि० २)

(३) द्विविध या त्रिविध—१. तरुण ज्वर (नवज्वर) (च० चि० १३२, १३८), २. जीर्णज्वर—'दौर्वल्याद्देहधातूनां ज्वरोजीर्णोऽनुवर्तते।' (च० चि० ३-२६१), ३. पुनरावर्तक ज्वर (च० चि० ३-३३३-३४३)।

(४) द्विविध—१. त्वक्स्थ—इसके पुन. दो भेद है—शीतपूर्वक एवं दाहपूर्वक। (सु० उ० ३९-५९-६१) २. गम्भीर (धातुस्थ)—इसे चरक ने 'अन्तर्वेग' ज्वर कहा है। यह गम्भीर धातुस्थ ज्वर है। (सु० उ० ३९-६२-६३)

अष्टविध ज्वर के विभिन्न भेदोपभेद—

उपर्युक्त अष्टविध (कारण भेद से) ज्वर के पुनः अनेक भेद और उपभेदों का वर्णन शास्त्र-ग्रन्थों में मिलता है।

(अ) एकदोषज ज्वर—

१. वातिक ज्वर—(च० नि० १।१९-२१; च० चि० सु० उ० ३९।२९-३०)

२. पैत्तिक ज्वर— (च० नि० १।२२-२४, सु० उ० ३९।३१-३२)

३. श्लैष्मिक ज्वर—(च० नि० १।२५-२७, सु० उ० ३९।३३-३४)

(आ) द्वान्द्विक ज्वर (द्विदोषज ज्वर)—

चरक के अनुसार निम्न हेतुओं के मिश्रीभाव से तत् तत् दो या तीन दोप युगपत् प्रकुपित होकर द्वान्द्विक या सन्निपातिक ज्वर को उत्पन्न करते है—

१ विपम (वहु, अल्प या अकाल मे) भोजन।
२ अनशन—भूखे रहना।
३. सहसा अभ्यस्त अन्न का परिवर्तन।
४. ऋतुव्यापत्ति।
५. असात्म्य गन्ध सूँघना।
६. विप दूपित जल का सेवन।
७. गर (विप) का सेवन।
८. पर्वतों के समीप रहना।
९. स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, शिरोविरेचन का अयथाप्रयोग।
१०. सशोधन कर्म के वाद मिथ्या विधि से ससर्जन क्रम करना।
११. स्त्रियों में विपम प्रसव होना।
१२. प्रसव के वाद मिथ्या आहार विहार का प्रयोग।

जव भी दो दोपों के प्रकोपक निदान सेवन किए जाते है तव 'द्वन्दज' (वातपित्त, पित्तकफ, वातकफ) तथा जव तीनो दोपों के प्रकोपक निदान सेवन किए जाते है तब

'सन्निपातिक' (वात-पित्त-कफज) ज्वर की उत्पत्ति होती है।

जब दो दोषों के ज्वर के यथोक्त लक्षण सम्मिलित मिलते हैं तब उसे 'प्रकृतिसमसमवेत द्वन्द ज्वर' तथा जब तीनों दोषों के ज्वर के लक्षण सम्मिलित मिलते हैं तब उसे 'प्रकृतिसमसमवेत सन्निपातिक ज्वर' कहते है। चरक ने लिखा है—'तत्र यथोक्तानां ज्वरलिङ्गानां मिश्रीभावविशेषदर्शनाद् द्वान्दिकमन्यतमं ज्वरं सान्निपातिकं वा विद्यात्।' (च० नि० १।२६)

इनके अतिरिक्त द्वन्दज एवं सन्निपातज ज्वरों के विशिष्ट लक्षण पृथक से बताये गए हैं, उन्हें 'विकृतिविषमसमवायारब्ध' जानना चाहिए।

४. वातपैत्तिक ज्वर—(अ) प्रकृतिसमसमवेत—यथोक्त वातपित्त के लक्षण। (आ) विकृतिविषमसमसमवेत—(च० चि० ।३८५-८६, सु० उ० ३९।४७-४८)

५. वातश्लैष्मिक ज्वर—(अ) प्रकृतिसमसमवेत—यथोक्त वातकफ के लक्षण। (आ) विकृतिविषमसमसमवेत—(च० चि० ३।८६-८७; सु० उ० ३९।४८-४९)

६. कफपैत्तिक ज्वर—(अ) प्रकृतिसमसमवेत—कफ पित्त ज्वर के यथोक्त लक्षण। (आ) विकृति विषमसमवेत—(च० चि० ३।८८-८९; सु० उ० ३९।५०)

७. सन्निपातिक ज्वर—(अ) प्रकृतिसमसमवेत—तीनों दोषों के ज्वर लक्षण सम्मिलित मिलते हैं। 'सर्वजे सर्वलिंगानि' (सु० उ० ३९।३८)। (आ) विकृतिविषमसमवेत—(च० चि० ३।१०३-१०९, सु० उ० ३९।३५-३८)

सन्निपातज्वर एक ही होता है। परन्तु उसके अवस्था भेद से अनेक भेद वर्णित हैं। (क) 'त्रयोदशविध सन्निपात ज्वर', (ख) 'विशिष्ट सन्निपात ज्वर' और (ग) 'विषमज्वर' इन तीन श्रेणियों में सन्निपात ज्वरों का वर्णन मिलता है।

(क) त्रयोदश विधि सन्निपात ज्वर—१३ प्रकार के सन्निपातों के नामों में शास्त्रग्रंथों में बहुत मतभेद मिलता है। सन्निपात दोषों की स्थिति के सम्बन्ध में शास्त्र निर्देश स्पष्ट है—

द्व्युल्वणैकोल्वणैः षट् स्युर्हीनमध्याधिकैश्च षट्।
समैश्चैको विकारास्ते सन्निपातास्त्रयोदश ॥
(च० सू० १७।४१)

दो उल्वण (अधिक प्रवृद्ध) दोष और एक हीन दोष से तीन; एक प्रवृद्ध और दो हीन दोष से तीन; एक हीन दोष, एक मध्य दोष और एक प्रवृद्ध (अधिक) दोष से छः; तीनों दोष प्रवृद्ध (अधिक) होने पर एक—इस प्रकार दोषों के सन्निपात १३ प्रकार के होते हैं—

१. वातपित्तोल्वण हीन कफ सन्निपातज्वर।
२. वातकफोल्वण हीनपित्त सन्निपात ज्वर।
३. पित्तकफोल्वण हीन वात सन्निपात ज्वर।
४. वातोल्वण हीन पित्त-कफ सन्निपात ज्वर।
५. पित्तोल्वण हीन वात-कफ सन्निपात ज्वर।
६. कफोल्वण हीन पित्त-वात सन्निपात ज्वर।
७. वात उल्वण, मध्य पित्त, हीन कफ सन्निपात ज्वर।
८. वात उल्वण, मध्य वात, हीन पित्त सन्निपात ज्वर।
९. पित्त उल्वण, मध्य वात, हीन पित्त सन्निपात ज्वर।
१०. पित्त उल्वण, मध्य पित्त, हीन कफ सन्निपात ज्वर।
११. कफ उल्वण, मध्य वात, हीन पित्त सन्निपात ज्वर।
१२. कफ उल्वण, मध्य पित्त, हीन वात सन्निपात ज्वर।
१३. त्रिदोषोल्वण सन्निपात ज्वर।

ये त्रयोदश विध सन्निपात ज्वर प्रकृति समसमवेत के ही प्रकार हैं। चरक चि० ३।८९-१०२ पर इनका वर्णन है।

विशेष—'ज्वरतिमिर भास्कर' में १३+१३+१३ कुल ३९ प्रकार के सन्निपात ज्वरों का वर्णन मिलता है। इनके विभिन्न नाम भी दिये गए हैं—

प्रथम वर्गीकरण (१३ सन्निपात ज्वर)—

एकोल्वणास्त्रयस्तेषु द्व्युल्वणाश्च तथेति षट्।
त्र्युल्वणश्च भवेदेको विज्ञेयः स तु सप्तमः ॥
प्रवृद्ध मध्यहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च षट्।
विस्फारकः शीघ्रकारी पृंफणी विश्रुसंज्ञकः ॥
मकरी फल्गु वैदारि—कर्ण कर्कोटकाह्वयः।
सम्मोहो याम्य क्रकचः पाकलाः कूटपालकाः ॥
(ज्व० ति० भा० ७।५७-५१)

१. वातोल्वण—विस्फारक
२. पित्तोल्वण—शीघ्रकारी
३. कफोल्वण—पुष्कल
४. वात-पित्तोल्वण—विघु
५. पित्त कफोल्वण—फल्गु
६. वातकफोल्वण—मकरी
७. हीन वात, मध्य पित्त, उल्बण कफ—वैदारिकर्ण
८. मध्य वात, हीन पित्त, उल्बण कफ—कर्कोटक
९. वृद्ध वात, मध्य पित्त, हीन कफ—सम्मोह
१०. हीन वात, वृद्ध पित्त, मध्य कफ—याम्यक
११. मध्य वात, वृद्ध पित्त, हीन कफ—क्रकच
१२. वृद्ध वात, हीन पित्त, मध्य कफ—पाकलक
१३. त्रिदोषोल्वण—कूटपालक

द्वितीय वर्गीकरण (१३ सन्निपात ज्वर)—

केचिच्च सन्निपातांस्त्रतोदशाहुश्चयोत्कटै: ।
उत्कृष्टमध्यहीनैश्च केचिद् द्वित्रिकभेदेन ॥
सन्धिगान्तकरुग्दाह-चित्तविभ्रम-कर्णकाः ।
कण्ठ-कुब्जक-शीतांग-तन्द्रिकाः सप्रलापकाः ॥
रक्तस्रावी भुग्ननेत्रोऽभिन्यासो जिह्विकाभिधः ॥
(ज्व० ति० भा० ७-६०-६१)

१. सन्धिग, २. अन्तक, ३. रुग्दाह, ४. चित्तविभ्रम, ५. कर्णक, ६. कण्ठकुब्ज, ७. शीतांग, ८. तन्द्रिक, ९. प्रलापक, १०. रक्तस्रावी, ११. भुग्ननेत्र, १२. अभिन्यास, १३. जिह्विक ।

तीसरा वर्गीकरण—

एकै कैः सुतरां क्षीणैः पुनर्द्वाभ्यां तथा च षट् ।
सुमध्यक्षीणहीनैः षट् तुल्यक्षीणैस्त्रयोदश ॥
अन्तर्दाहो दन्तपातोऽन्तरा च
कुम्भीपाकः पौर्णनावप्रलापी ।
एणी दाहो भूतहासोऽजघोषो
हारिद्रः संशोषि संन्याससंज्ञौ ॥
यन्त्रापीड: चेत्यमी सन्निपाताः
ख्याताः पूर्वं सुश्रुतेन स्वतंत्रे ॥
एकोन चत्वारिंशानां लक्षणं सचिकित्सितं ।
वक्ष्येहं सन्निपातानां क्रमाच्छास्त्रानुसारतः ॥

एक दोष क्षीण होने पर ३, दो दोष क्षीण होने पर ३, मध्य-क्षीण-हीन दोष होने पर ६, तुल्यक्षीण होने से १=कुल १३ सन्निपात । नाम हैं—

१. अन्तर्दाह, २. दन्तपात, ३. अन्तरा, ४. कुम्भीपाक, ५. पौर्णनाव, ६. प्रलापी, ७. एणीदाह, ८. भूत हास, ९. अजघोष, १०. हारिद्र, ११. संशोषी, १२. संन्यास, १३. यन्त्रापीड ।

(ख) विशिष्ट सन्निपात ज्वर—सुश्रुत ने सन्निपात ज्वर के निम्न ४ विशिष्ट प्रकारों का नामोल्लेख पूर्वक लक्षणों का वर्णन किया है—

१. अभिन्यास सन्निपात ज्वर (सु० उ० ३९।३८-४१)
२. हतौजस सन्निपात ज्वर (सु० उ० ३९।४२)
३. संन्यास सन्निपात ज्वर (सु० उ० ३९।४२)
४. ओजोनिरोधज सन्निपातज्वर
(सु० उ० ३९।४३-४५)

(ग) विषम ज्वर—विषमज्वर भी सन्निपात ज्वर के भेद हैं—

'ज्वराश्चविषमाः सर्वे सन्निपातसमुद्भवाः ।'

चरक में भी कहा है—

प्रायशः सन्निपातेन दृष्टः पञ्चविधो ज्वरः ।
सन्निपाते तु यो भूतान् स दोषः परिकीर्तितः ॥
(च० चि० ३।७४)

विषम ज्वर के भी ५ भेद हैं—

१. संतत, २. सतत (क), ३. अन्येद्युष्क, ४. तृतीयक, ५. चतुर्थक । तीन प्रकार के विषमज्वरों के 'विपर्यय' भी होते हैं । (सु० उ० ३९।५५)

१. अन्येद्युष्क विपर्यय ।
२. तृतीयक विपर्यय ।
३. चतुर्थक विपर्यय (च० चि० ३।७३)

चरक ने तृतीय और चतुर्थक के प्रभाव भेद से पुनः भेद किए हैं । (च० चि० ३।७१-७२)

१. तृतीयक—१. त्रिकग्राही (कफपित्तज), २. पृष्ठग्राही (वातकफज), ३. शिरोग्राही (वातपित्तज) ।

२. चतुर्थक—१. जङ्घापूर्वक (श्लैष्मिक), २. शिरःपूर्वक (वातिक) ।

सुश्रुत ने विषम ज्वर के विभिन्न रूपों के रूप में निम्न ज्वरों का भी उल्लेख किया है—
(सु० उ० ३९।५७-५८)

१. तृतीयक (वाताधिक)

२. चतुर्थक (वाताधिक)

३. औपत्यक ज्वर (पर्वत निकटस्थ भूमि जन्य)—पैत्तिक

४. मद्यसमुद्भव ज्वर—पैत्तिक

५. प्रलेपक ज्वर (कफाधिक)—(सु० उ० ३९।५४)

६. वातबलासक ज्वर (कफाधिक)

७. मूर्छानुबन्धी विषम ज्वर (द्वन्ददोषज)

८. आगन्तुज ज्वर।

यह चार प्रकार का होता है—

आगन्तुरष्टमो यस्तु स निर्दिष्टश्चतुर्विधः।
अभिघाताभिषङ्गाभ्यामभिचाराभिशापतः ॥
(च० चि० ३।११२)

१. अभिघातज ज्वर

२. अभिषंगज ज्वर

३. अभिचारज ज्वर

४. अभिशापज ज्वर।

चरक ने 'अभिषंगज' ज्वर के ५-६ भेद माने हैं—

कामशोक भयक्रोधैरभिषक्तस्य यो ज्वरः।
सोऽभिषंगाज्ज्वरो ज्ञेयो यश्च भूताभिषंगजः ॥
(च० चि० ३।११४-११५)

१. कामज ज्वर (च० चि० ३।१२२)

२. शोकज ज्वर (च० चि० ३।१२३)

३. भयज ज्वर (च० चि० ३।१२३)

४. क्रोधज ज्वर (च० चि० ३।१२३)

५. भूतावेशज ज्वर (च० चि० ३।१२४)

६. विषज ज्वर (च० चि० ३।१२४)

काम, शोक, भय, क्रोध और भूतावेश जन्य ज्वरों को 'मानस ज्वर' भी कहते है। (च० चि० ३।१२६-१२८) ये सब आगन्तुज ज्वर है। इनमें भी दोषो का अनुबन्ध होता है।

शार्ङ्गधर ने आगन्तु ज्वर को १३ प्रकार का बताया है—

तथागन्तुर्ज्वरोऽप्येकस्त्रयोदशविधो मतः।
अभिचार ग्रहावेशशापैरागन्तुकस्त्रिधा ॥
श्रमाच्छेदात्क्षताद्दाहाच्चतुर्धा घातजो ज्वरः।
कामाद्भीतेः शुचो रोषाद् विषादौषधगन्धतः ॥
अभिषङ्गज्वराः षट् स्युरेवं ज्वरविनिश्चयः।
(शा० पू० ७।५-८)

आगन्तु ज्वर एक प्रकार का होने पर भी उसके १३ भेद हैं—

तीन अभिचारादिज—

१. अभिचारज (हिंसार्थोऽथर्वमन्त्रहोमादिः)

२. ग्रहावेशज या भूतावेशज।

३. अभिशापज—ब्राह्मण गुरु वृद्ध सिद्धानाम् अनिष्टाभिशापनम्।

३ आघातज—

४. श्रमज (शरीरायासजनक कर्म)

५. छेदज (अस्त्र आदि से)

६. क्षतज (प्रहार, लोष्ठ शस्त्र लाठी आदि से)

७. दाहज (अग्नि आदि से)

३ मानस—

८. कामज

९. भयज

१०. शोकज

११. क्रोधज

२ विषज—

१२. विषज

१३. औषधगन्धज

८ से १३ इन छहों को 'अभिषंगज' ज्वर कहते हैं।

विप्रकृष्ट कारण जन्य ज्वरों के भेद—

जिस प्रकार वातादिविकल्प ज्वरों के सन्निकृष्ट हेतु है और उनसे ७ प्रकार के ज्वर होते हैं, उसी प्रकार ज्वर के विप्रकृष्ट हेतुओं को ध्यान में रखते हुए विविध भेद किए जाते हैं। परन्तु अन्ततोगत्वा इनसे भी दोष प्रकोप पूर्वक ही ज्वरोत्पत्ति होती है, केवल हेतुविशेष की प्रधानता को ध्यान मे रखते हुए यह वर्गीकरण किया है। सुश्रुत में इसका विस्तार से वर्णन है। इन सब का अन्तर्भाव 'आगन्तु ज्वरों' मे किया जाना चाहिए—

मिथ्यायुक्तैरपि च स्नेहाद्यैः कर्मभिर्नृणाम्।
विविधादभिघाताच्च रोगोत्थानात् प्रपाकतः ॥
श्रमात् क्षयादजीर्णाच्च विषात् सात्म्यर्तुविपर्ययात्।
ओषधीपुष्पगन्धाच्च शोका (कोपा) न्नक्षत्रपीडया ॥

अभिशापाभिचाराभ्यां मनोभूताभिशंकया ।
स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः ॥
स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रवर्तते ॥
(सु० उ० ३९।१९-२२)

१. कर्म मिथ्यायोज ज्वर—स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, शिरो विरेचन, रक्तमोक्षण आदि कर्मों के मिथ्यायोग और अतियोग से उत्पन्न ज्वर।

२. अभिघातज ज्वर—नख, शस्त्र, लोष्ठ, काष्ठ आदि के प्रहार से उत्पन्न ज्वर।

३. रोगोत्थानज ज्वर—विद्रधि, व्रणशोथ आदि रोगों की उत्पत्ति से होने वाला।

४. प्रपाकज ज्वर—विद्रधि व्रणादि के पकने के होने वाला ज्वर।

५. श्रमज ज्वर—अति व्यायाम या परिश्रम से होने वाला ज्वर।

६. क्षयज ज्वर—राजयक्ष्मा या धातुक्षय से होने वाला ज्वर।

७. अजीर्णज ज्वर—आहार के अपचन से होने वाला ज्वर।

८. विषज ज्वर—विष से होने वाला ज्वर।

९. सात्म्यविपर्ययज ज्वर—सात्म्य आहार-विहार के परिवर्तन से उत्पन्न ज्वर।

१०. ऋतुविपर्ययज ज्वर—ऋतुओं के सहसा परिवर्तन से उत्पन्न ज्वर।

११. ओषधि गन्धपुष्पज ज्वर—विषैली औषधि और पुष्प सूंघने से होने वाला ज्वर।

१२. शोकज या कोपज ज्वर।

१३. नक्षत्र पीड़ा जन्य ज्वर—(ग्रहपीड़ा)।

१४. अभिशापज—गुरु, वृद्ध, सिद्ध के अभिशाप से।'

१५. अभिचारज—मारणादि के लिए प्रयुक्त आथर्वण या तान्त्रिक प्रयोग, होम मन्त्र आदि से।

१६. मानस ज्वर—काम, क्रोध, शोक, आदि मानसिक कारणों से उत्पन्न।

१७. भूतज ज्वर—भूतावेश से उत्पन्न।

१८. भयज या अभिशंकाज ज्वर—,

१९. अपप्रजाता ज्वर—अकाल प्रसव या विषमप्रसव से उत्पन्न ज्वर।

२०. प्रसूति ज्वर या सूतिका ज्वर—प्रसवोपरांत मिथ्या आहार-विहार से उत्पन्न।

२१. स्तन्यावतरणज ज्वर—प्रथम स्तन्यागम के समय उत्पन्न।

इस प्रसङ्ग से सुश्रुत ने 'ज्वरो दोषैः प्रवर्तते' कहकर स्पष्ट कर दिया है कि इन कारणों से उत्पन्न होने वाले ज्वरों में भी दोषों का प्रकोप होता ही है। उस उस दोष के प्रकोप से ज्वर पैदा होता है। अतः इन सबका अंतर्भाव 'दोषज सप्तविध ज्वर' में या आगन्तुज्वर में हो जाता है।

सप्तधातुगत ज्वर—आश्रय भेद से सप्त धातुओं में होने वाले ज्वर (च० चि० ३। ७६-८३, सु० उ० ३९। ८३-९०) में वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, पित्तकफज, वातकफज और सन्निपातज ज्वरों के जो लक्षण हैं वे ही जानने चाहिए—

वातपित्तकफोत्थानां ज्वराणां लक्षणं यथा।
तथा तेषां भिषग्ब्रूयाद्रसादिष्वपि बुद्धिमान् ॥
समस्तैः सन्निपातेन धातुस्थमपि निर्दिशेत्।
द्वन्दजं द्वन्दजैरेव दोषैश्चापि वदेत् कृतम ॥
(सु० उ० ३९।९०-९२)

धातुगत ज्वर को 'शाखानुसारी ज्वर' भी कहते हैं (च० चि० ३। २९०)।

'शाखा रक्तादयो धातवास्त्वक् च'।

परवर्ती ग्रन्थों में ज्वर के भेद—

शार्ङ्गधर संहिता में—ज्वर के २५ भेद कहे हैं—(शा. पू. ७।२-७)

दोषज—१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ वात पित्तज, ५ वात कफज, ६ पित्तकफज, ७ सन्निपातज। (एकश्च सन्निपातेन तद्भवा बहवो मताः)

विषम ज्वर—'प्रायशः सन्निपातेन पंच स्युर्विषमज्वराः' ८ संतत, ९ सतत, १० अन्येद्युष्क, ११ तृतीयक, १२ चतुर्थक।

आगन्तुक ज्वर—'तथागन्तुज्वरोऽप्येकस्त्रयोदशविधो मतः।' यह पूर्वोक्त १३ प्रकार का है।

हंसराज निदान में निम्न प्रकार के ज्वरों का निदान वर्णित है—१ वात ज्वर, २ पित्त ज्वर, ३ श्लेष्म ज्वर, ४ वातपित्तज्वर, ५ वात कफज्वर, ६ पित्तकफ ज्वर,

७ सन्निपात के 'तेरह भेद'—संधिक, अन्तक, रुग्दाह, चित्तविभ्रम, शीतांग, तन्द्रिक, कंठकुब्ज, कर्णक, भुग्ननेत्र, रक्तष्ठीवी, प्रलापक, जिह्वक, अभिन्यास, ८ अजीर्णज्वर, ९ आमज्वर, १० रक्तज्वर, ११ दृष्टिज्वर, १२ भूतज्वर, १३ मलज्वर, १४ स्वेदज्वर, १५ शापज्वर, १६ ओषधिगन्धजज्वर, १७ भयज्वर, १८ कोप ज्वर, १९ शस्त्रघातकज्वर, २० अभिचारजज्वर, २१ कामज्वर, २२ अत्यंत-स्त्रीप्रसगज ज्वर, २३ क्षीणधातुज, २४ अग्निमांद्यज, २५ चिन्ताजन्य ज्वर, २६ संतत ज्वर, २७ विषमज्वर, २८ महेन्द्रज्वर (सततक?), २९ वेलाज्वर (अन्येद्युष्क के समान), ३० एकान्तरज्वर (यह द्विविध होता है—शीतपूर्वक, दाहपूर्वक), ३१ त्र्याहिकज्वर, ३२ चातुर्थिक, पाक्षिक, मासिक वार्षिक ज्वर, ३३ देवकोपजनित ज्वर, ३४ एकांगज्वर, ३५ संस्पर्शज, गन्धज, दर्शनज ज्वर, ३६ अन्तकज्वर, ३७ शोकज्वर, ३८ त्वग्गत वातज्वर, ३९ त्वग्गत पित्तज्वर, ४० त्वग्गत कफज्वर, ४१ रक्तगतज्वर, ४२ रसगतज्वर, ४३ मांसगतज्वर, ४४ अस्थिगतज्वर, ४५ मज्जागतज्वर, ४६ शुक्रगतज्वर, ४७ धातुपाकी ज्वर, ४८ अन्तर्वेगज्वर, ४९ वहिर्वेगज्वर।

इस ग्रंथ में रुद्रनिश्वास जनित, भयकर, दक्षयज्ञ नाशक, घोर वर्घरनादकारी ज्वरों के ८ स्वरूप भी बताये है—१. वीभत्सज्वर, २ त्रिशिराज्वर, ३ कपिलज्वर, ४ भस्मविक्षेपकज्वर, ५ त्रिपाद्ज्वर, ६ पिंगाक्षज्वर, ७ महोदरज्वर, ८ ज्वलद्विग्रहज्वर।

ज्वर के इन भेदों का परवर्ती 'अमृतसागर' आदि ग्रंथों में भी उल्लेख मिलता है।

उपसंहार—इस प्रकार आवस्थिक रूप से ज्वर के अनेक भेद होते हुए भी उसके मूल रूप से वातादिविकल्प के आधार पर सात और आगन्तु कारण विशेष के साथ कुल आठ प्रकार ही होते है।

पृष्ठ ७७ का शेषांश

साधुओं के दर्शन करना, सत्य बोलना, सहदेई आदि औषधि और रत्नों को धारण करना तथा मंगलाचरण करना ये सब कृत्य सब प्रकार के ज्वरों को दूर करते है।

(१) ओ३म नमो भगवते छिन्धि-छिन्धि अमुकस्य शिरः प्रज्वलित परशुपणाये पुरुषाय फट् स्वाहा ॥ एतन्मन्त्रस्य धारणात् ज्वरः सर्वो विनश्यति ॥

ओं नमः इत्यादि मन्त्र को भोजपत्र पर लिख कर धारण करने से सम्पूर्ण ज्वर हट जाते है।

(२) ओं विद्युदानल हुं फट् स्वाहा ॥

एतन्मन्त्रं ताम्बूलीपत्रे चूर्णलिप्ते लिखित्वा तत्पत्रं संचर्य भक्षयित्वा दिनत्रयाभ्यन्तरे ज्वरस्य शान्तिर्भवति।

ॐ विद्युदानल इत्यादि मन्त्र को चूर्णलिप्त (चूने से लिपे हुए) पान के पत्ते पर लिखकर उस पत्ते को चबाकर खाने से ३ दिन के भीतर ज्वर शान्त हो जाता है।

सोमं सानुचर देवं समातृगणमीश्वरम्।
पूजयन् प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषम ज्वरात् ॥

पवित्र होकर पार्वती, नन्दी आदि अनुचर तथा मातृगण युक्त महादेव जी की पूजा करने से रोगी शीघ्र ही विषम ज्वर से मुक्त हो जाता है।

ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रं हुतभक्षं हिमाचलम्।
गंगा मरुद्गणाश्चेष्टान् पूजयन् जयति ज्वरम् ॥

ब्रह्मा, दोनों अश्विनीकुमार, इन्द्र अग्नि हिमालय, गङ्गा, मरुद्गण तथा अन्य इष्ट देवों की पूजा करने से ज्वर नष्ट हो जाता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा पुराण श्रवणेन च।
जप होम प्रदानेन सत्येन नियमेन च ॥
ज्वराद्धि मुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च ॥

ब्रह्मचर्य, तप, पुराण आदि धर्म ग्रन्थों के श्रवण, जप, होम, दान, सत्य यम, नियमों के सेवन तथा साधुओं के दर्शन से रोगी शीघ्र ही ज्वर मुक्त हो जाता है। ■

श्रीमद्‌भागवत में ज्वर नाशक—

ऊषा अनिरुद्ध कथा

श्री श्याम जोशी बी० एस सी०, औरंगाबाद।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिस किसी व्यक्ति को ज्वर नहीं छोड़ता उसे श्री मदभागवद्‌ की ऊषा अनिरुद्ध प्रेमकथा पढ़ लेनी चाहिए। इससे भगवान विष्णु (श्रीकृष्ण) की कृपा से ज्वर छोड़ देता है। यह बात वर्षों से चले आ रहे विश्वास के आधार पर पुष्ट है।

शिवभक्त असुरराज वाणासुर ने अपने नगर की रक्षा के लिए भगवान शिव को भार सौंप रखा था। स्वयं उनकी भक्ति करता। उसके एक परम सुंदरी लड़की ऊषा थी। वह अज्ञान में ही भगवान श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के प्रेम में पड़ गई। स्वप्न में उसने इस अपरिचित को देखा और उससे प्रेम करने लगी। फिर उसने किसी भी यत्न से अनिरुद्ध को प्राप्त कर लिया और दोनों पास-पास रहने लगे। यह बात जब वाणासुर को ज्ञात हुई तो उसने अनिरुद्धको नागपाश में बाँध लिया। नारद के द्वारा यह संवाद प्राप्त कर भगवान श्रीकृष्ण ने वाणासुर पर चढ़ाई कर दी। शोणितपुर नगर की रक्षा के लिए भगवान शंकर भी अपने अनुचरों, पुत्र स्वामि कार्तिक सहित आ पहुंचे। युद्ध काल में भगवान श्रीकृष्ण ने भगवान शंकर को जृम्भअस्त्र से मोहित कर दिया। वे जंभाइयाँ लेते युद्ध से विरत हो गए। सभी शूरवीरों को मार कर बलराम की सेना ने शत्रु सेना को तितरवितर कर दिया। भगबान श्रीकृष्ण ने वाणासुर के एक हजार हाथों में से चार को छोड़ कर सभी हाथ काट डाले।

भगवान शंकर ने जब देखा कि वाणासुर परास्त हो रहा है तब उन्होंने ३ सिर वाला और ३ पैर वाला ज्वर छोड़ दिया जो दशों दिशाओं को जलाता हुआ श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा। भगवान श्रीकृष्ण ने उसे अपनी ओर आते देख कर उसका सामना करने के लिए अपना ज्वर छोड़ा। अब वैष्णव ज्वर और माहेश्वर ज्वर में संघर्ष हुआ। अंत में वैष्णव ज्वर के तेज से माहेश्वर ज्वर पीड़ित होकर भयभीत हो चिल्लाने लगा। जब उसने अपना त्राण अन्यत्र कहीं न देखा तो अत्यन्त ही विवशता के साथ हाथ जोड़ कर भगवान श्रीकृष्ण का शरण में आया और विभिन्न प्रकार से उनकी प्रार्थना करने लगा। उसकी प्रार्थना से द्रवित होकर भग वान श्रीकृष्ण ने उससे कहा—त्रिशिरा! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अब तुम्हें मेरे ज्वर से निर्भय हो जाना चाहिए। संसार में जो कोई हम दोनों के सम्वाद का स्मरण करेगा उसे तुम से कोई भय न रहेगा। भगवान श्री कृष्ण के इस प्रकार कहने पर माहेश्वर ज्वर उन्हें प्रणाम कर चला गया।

उपरोक्त कथा में भी ज्वर की उत्पत्ति भगवान रुद्र द्वारा ही की गई बताया गया है। उक्त कथा के पढ़ने से किसी को ज्वर पीड़ित नहीं करता तथा उसका आत्म विश्वास बढ़ता है या प्रभू की भक्ति में मन लगता है।

(श्रीमद्‌ भागवत दशम स्कन्ध अध्याय ६१, ६२, ६३ का संक्षिप्त सार)

उपरोक्त रूपक मे जहां रुद्र द्वारा उत्पन्न ज्वर पीडक है वहां विष्णु (श्रीकृष्ण) द्वारा उत्पन्न वैष्णवी ज्वर देह की सुरक्षात्मक शक्ति तथा प्राकृतिक तापमान है। देह की वैष्णवी शक्ति बाह्य आक्रामक ज्वर से युद्ध करती है और अन्त में वैष्णवी शक्ति (Resistant Power) की पीडक ज्वर के बाह्य आक्रमण को निःशेष कर देती है और देह स्वस्थ हो जाता है। यह वैष्णवी ज्वर की विजय है।

—वि० सम्पादक

ज्वरों में नाड़ी की गति और साध्यासाध्यता

सुश्री शान्तिदेवी बा० जोशी वैद्या

प्राचीन आयुर्वेद में नाड़ी का चलना 'धमनी जीव साक्षिणी' कहकर केवल जीवन का चिन्ह मात्र माना गया है। कहते हैं मध्यकाल में यूनानियों के सम्पर्क से नाडी परीक्षा का ज्ञान आयुर्वेद में प्रचलित हुआ। कुछ भी हो नाड़ी विज्ञान आयुर्वेद मे इतना प्रचलित हुआ कि वह वैद्यों का एक मानदण्ड वन गया। जो वैद्य नाडी परीक्षा नहीं जानता उसे उत्तम वैद्य नहीं मानने की कहावत प्रचलित हुई।[1] आज भी वैद्यों के पास रोगी इसी आशा में आता है कि वैद्य जी नाडी देखकर मेरा रोग वता देंगे और वैद्य को भी इस प्रकार का 'नाटक' रचना ही पड़ता है कि वह नाड़ी परीक्षण में पारङ्गत है।

जहां हम यह मानें कि नाडी विज्ञान यूनानियों की देन है वहां हमें यह भी मानना होगा कि प्रारम्भ में चाहे नाड़ी का ज्ञान भारत में यूनानियों या मुसलमानों के साथ आया हो परन्तु इसके वाद जो भी प्रगति हुई है वह भारतीयों की है और भारतीय पद्धति के आधार पर ही वे आगे वढ़े है। वास्तव में भारतीय चिकित्सकों (वैद्यों) की नाड़ी परीक्षा का आधार 'योग' साधना है। वैद्य नाड़ी के स्पर्श के साथ ही सूक्ष्म रूप से रोगी के शरीर में प्रवेश कर यह ज्ञात कर लेता है कि अन्दर क्या 'कुलना' है। यही नाड़ी परीक्षा की यौगिक पद्धति है। कहते है कि मध्यकालीन वैद्यों के राजमहल में नाड़ी पर डोरा (धागा) वांध कर डोरी (धागा) के स्पर्श से यह वता देते थे कि राज महिषियों के क्या रोग है। यह योगक्रिया ही तो है। आज भी कई वैद्य ऐसे है जो नाड़ी परीक्षा द्वारा भुक्त भोजन का विवरण दे सकते हैं। प्राचीन काल मे तो पशुओं और मनुष्यों की अज्ञात नाड़ी का भी भेद किया जा सका था।[2]

परन्तु आज यन्त्रों के प्रयोग से इस ज्ञान मे कुछ हीनता आई है फिर भी कई आश्चर्यजनक बातें देखने को मिलती हैं। एक वैद्य जी नाड़ी देखकर ब्लड कोलेस्ट्राल की मात्रा वता देते हैं तो दूसरे वैद्य जी नाड़ी देख कर रक्तचाप का माप वता देते है। इधर ज्वर का माप वताने वाले तो अनेक वैद्य मिल जावेंगे। यहां हम ज्वर की नाडी परीक्षा के वारे में संक्षिप्त विचार करेंगे।

सामान्यत: नाड़ी परीक्षा का समय प्रात:काल ही होता है। शौच आदि से निवृत होकर विना किसी खान पान के नाडी की परीक्षा उत्तम होती है। पुरुषों के दाहिने हाथ तथा स्त्रियों के वांये हाथ के अंगुष्ठ मूल में चलती नाड़ी पर वैद्य अपनी तीन उंगुलियां रखकर परीक्षण करें। देखें हाथ कहीं से दव तो नही रहा है (रोगी तथा वैद्य दोनों का मुक्त होना चाहिए। वैद्य का मस्तिष्क भी चिन्ता रहित तथा स्वस्थ होना चाहिए) तीनों ही उंगलियों के नीचे ऊपर वात, वीच में पित्त तथा अन्त में कफ का होना वताया गया है। उंगली को वैद्य उठाकर रखे। ऐसा तीन वार करे या समझने के लिए इससे अधिक वार भी कर सकता है। वात की नाड़ी की गति वक्र होती है याने स्पर्श में उंगलियां कभी नीचे तिरछी चलती है। इनका उदाहरण जीवों की गति से भी दिया गया है। पित्त की नाड़ी कूदती याने उछलती चलती है याने हाथ के नीचे कूदती स्पर्श होती है तथा कफ की नाड़ी धीमी तथा मन्द गति से चलती है। इसके स्पर्श मे उंगलियों के नीचे फिर द्विदोषज नाड़ी मिश्रित गति वाली होती है। वात पित्त की अधिकता में नाड़ी सर्प और मेंढक सी वक्र गति तथा कूद-कूद कर होती है। वात कफ मे नाड़ी हंस की चाल चलती है याने गतिशील भी होती है तथा भारी भी होती है। कफ पित्त से युक्त नाड़ी मेंढक तथा हंस की गति से चलती है याने कूदती हुई तथा धीमी गति होती है। इसी प्रकार सन्निपात में नाड़ी की गति

---

१ नाड़ी नहीं जाने वो तो वेद अनाड़ी है।

२ कहते हैं किसी राजा ने वैद्य जी की परीक्षा करने के लिये एक बकरी की नाड़ी पर धागा बांध कर उसे पर्दे में रखकर वैद्य जी को धागा पकड़ा दिया। वैद्य जी ने धागा पकड़ कर निःशंक होकर बता दिया कि इसे घास खाने की इच्छा है।

तीनों ही दोषों से मिश्रित होती है।

ज्वर में नाड़ी उष्णता लिये वेगयुक्त होती है।[3] यहां पित्त प्रकोप जन्य नाडी से इसकी भिन्नता करना आवश्यक है। पित्त की नाड़ी वेगवती होती है परन्तु ज्वर की नाड़ी उष्ण भी होती है। सन्निपातिक नाड़ी में तित्तर, लावा, वटेर पक्षियों की चाल तथा कठफोरा पक्षी काठ को आघात करता है ऐसा वताया गया है। मन्थर ज्वर में नाड़ी की गति मन्द तथा पित्त प्रधान होती है। रोमान्तिका में नाड़ी की गति पित्त कफ प्रधान होती है। मसूरिका में भी नाड़ी की गति पित्त कफ प्रधान विस्फोटक होती है। विषम ज्वर में ज्वरावस्था में नाड़ी की गति पित्त प्रधान होती है। वात श्लैष्मिक ज्वर में नाड़ी की गति वात तथा श्लैष्म प्रधान होती है। श्लैष्मिक ज्वर में याने न्यूमोनियां में नाड़ी की गति कफ प्रधान होती है। इसी प्रकार अन्य ज्वरों की परीक्षा भी की जा सकती है परन्तु इसमें उष्णता आवश्यक है।

साध्यासाध्यता की दृष्टि से नाड़ी का महत्व अति उपयोगी है। अनेक वैद्य जिनमे लेखक के दादा साहिव वैद्य मार्तण्ड विसनराम जी थे रोगी की नाड़ी परीक्षा कर उसकी मृत्यु का समय तक बता देते थे। उन्होंने एक वार बताया—

शिथिल शिथिल मन्दं आकुलं व्याकुलंवा।
भवति च यदि नाड़ी याति सूक्ष्मा प्रनाशम्॥

जिस व्यक्ति की नाड़ी शिथिल होती चली जाती है तथा जिस नाड़ी की गति मन्द हो, जो वार-वार व्याकुलता सी प्रतीत होती है वह रोगी धीरे-धीरे नाश की ओर चलता जाता है। अन्यत्र भी ये प्रमाण मिलते है—

(१) जो नाड़ी ठहर-ठहर कर चलती है वह प्राणों का नाश करती है।

(२) मरने के समय नाड़ी डमरू के आकार की हो जाती है।

(३) जो नाड़ी कम्पायमान हो तथा स्फुरित हो और वार-थार उंगलियों को छूकर लुप्त हो जाय उसे असाध्य माना जाना चाहिए।

(४) जिनकी नाड़ी स्थिर रहकर विजली की भांति गतिशील हो वह व्यक्ति एक दिन की आयु वाला होता है।

(५) मल से युक्त हुई नाड़ी शीघ्र ही चले तथा शीतल प्रतीत हो वह व्यक्ति एक दिन जीता है।

(६) जिसका देह शीतल हो तथा मुख से श्वास चले, दाह युक्त नाड़ी शीघ्र चले वह रोगी पन्द्रह दिन जीता है।

(७) अग्र भाग में नाडी न चले, मध्य भाग मे शीतल चले, शरीर मे ग्लानि हो ऐसी अवस्था में रोगी तीन रात्रि जीता है।

(८) अति सूक्ष्म तथा अति वेग युक्त शीतल नाड़ी वाला व्यक्ति अधिक नही जीता।

(९) कफ से पूरित कण्ठ वाले मनुष्य की तिरछी और गर्म तथा वेग से चलने वाली नाड़ी रोग की असाध्यता की द्योतक है।

(१०) जिसके हाथ की नाडी नही दीखे तथा पांवों की नाड़ी चलती हो तो उस रोगी को असाध्य जानो।

(११) जिसकी नाड़ी मल से युक्त होकर शीघ्र चले तथा मध्याह्न में उग्र ज्वर हो जाये (अग्नि के समान) तो रोगी जीता नहीं है।

(१२) जिसकी नाड़ी कम्पयुक्त चलती रहे फिर उंगलियों को स्पर्श करे वह नाड़ी असाध्य है।

(१३) जिसकी नाड़ी अग्रभाग में ही अति शीघ्र चलती हो और शीतल हो, देह में चिकना पसीना आता हो तो रोगी सात दिन में मर जावेगा।

(१४) हिम के समान शीतल नाड़ी वाला, दाह युक्त तापमान वाला और त्रिदोष नाड़ी वाला व्यक्ति ३ दिन में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

(१५) स्थान च्युत नाड़ी तथा हृदय में दाह वाला रोगी जब तक दाह रहती है तव तक जीता है।

(१६) अंगुष्ठ मूल में दो उंगली छोड़कर केवल कफ स्थान पर स्फुरण होता हो तो रोगी आधे प्रहर में मर जाता है।

(१७) जो नाड़ी केवल वात स्थान में सूक्ष्म रेखा सी निश्चल चलती है। वह रोगी के लिए अशुभ है।

—शेष पृष्ठ ९५ पर देखें।

३ ज्वर कोपेत धमनी कोष्णा वेगवती भवेत्। ४ मरणे डमर्वाकारा भवेदेक दिनेन च।

ज्वरों में लंघन की प्रधानता

वैद्य पूनमचन्द कुमावत, मंत्री–आयु० अनु० केन्द्र नरसिंहपुरा, मन्दसौर

लंघन करने का तात्पर्य यह है कि ज्वर आमाशय में रहने वाली कोष्ठाग्नि के कारण ही रस की उत्पत्ति होती है और रस की दूपितावस्था में ज्वर की उत्पत्ति होती है। ज्वर के प्रथम बार लक्षणोत्पत्ति से ही यदि लंघन किया जाता है, अर्थात—लंघन का अर्थ उपवास करना चाहिये। उपवास करने से ज्वरोत्पत्ति करने वाले दोषों का पाचन (शमन) हो जाता है। अतः दोषों के पच जाने पर ज्वर शीघ्र पच जाता है। यदि रोगी भोजन करता रहेगा तो आमरस की उत्पत्ति होती रहेगी इससे ज्वर का निदानभूत आमरस के मौजूद रहने पर ज्वर का वेग बढ़ता रहेगा।

ज्वर में लंघन के योग्य एवं अयोग्य रोगी—गर्भिणी स्त्री, बालक, वृद्ध आदि। वात से, क्रोध से, शोक से और श्रम से होने वाले ज्वरों को छोड़कर अर्थात क्षयादि ज्वर में लंघन नहीं करना चाहिये। ये सभी वात की वृद्धि करने वाले हैं। उपरोक्त ज्वरों में यदि लंघन करा दिया जावेगा तो शीघ्र वात का भयङ्कर कोप हो जावेगा अतः वात ज्वर में लंघन सर्वथा मना है। इन रोगियों को लंघन नहीं कराया जाता है, क्योंकि भोजन के अभाव में अधिक दुर्बल हो जाने पर रोग असाध्य हो जाता है। अतः इन व्यक्तियों के दोषों को पचाने के लिये लघु आहार की व्यवस्था की जानी चाहिये।

लंघन से प्राप्त होने वाले फल—लंघन करने से विषमावस्था में उत्पन्न दोष नष्ट हो जाते हैं। अर्थात—समानावस्था में आ जाते हैं जिससे जठराग्नि के प्रदीप्त हो जाने पर ज्वर का नाश हो जाता है जिससे शरीर हल्का हो जाता है भूख लग जाती है, रुचि उत्पन्न होती है, प्यास लगती है स्वास्थ्य ठीक होता है। इसके परिणामस्वरूप बल और ओज की वृद्धि होती है। ठीक तरह से लंघन होने पर अपान वायु, मल मूत्र का उचित रूप से त्याग होता है।

लंघन कब तक करना चाहिये—मनुष्य शरीर अर्थात रोगी के बल के अनुसार लंघन करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि रुग्णा की शक्ति (सहन शक्ति) को दृष्टि में रख बल का क्षय (ह्रास) न हो तब तक लंघन करना चाहिये, क्योंकि इसके अधीन ही आरोग्य प्राप्त होता है और आरोग्य प्राप्ति के लिये ही यह चिकित्सा क्रम किया जाता है। इसीलिये दुर्बल बालक आदि को लंघन करने को मना किया है।

चरक ने लंघन से प्राप्त परिणामस्वरूप गुणों का वर्णन करते हुए अतियोग के पहले ही लंघन समाप्त करने का उपदेश दिया है अर्थात—लंघन तब तक ही होता है जबतक कि दोष शरीर में बने रहते हैं। रोगी के बल से अधिक-अर्थात अति लंघन से बचे हुए रोगी के बल का भी क्षय हो जाता है तथा उससे अन्य उपद्रव प्यास का अधिक लगना, मुख का सूखना या शरीर सूखकर दुर्बल होने लगता है। तन्द्रा, निद्रा, क्लम और श्वास कास आदि उपद्रव होते हैं। इन लक्षणों के उत्पन्न हो जाने पर चिकित्सक को सावधानीपूर्वक बल प्रदान कराकर रोग से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न करना चाहिये।

लंघन के समय जल का सेवन—ज्वर से ग्रस्त रोगी को लंघन कराने के समय जल का सेवन आवश्यकता होने पर अवश्य करना चाहिये। इस विषय में महर्षि सुश्रुत ने कहा है—कि अधिक प्यासा रोगी जल न पीने से मूर्च्छित हो जाता है और मूर्च्छित होने से अन्तमें वह प्राणों को छोड़ देता है। अतः ज्वर की सभी अवस्था में कभी भी जल का निषेध नहीं करना चाहिये।

जल का विशेष प्रयोग—ज्वर से ग्रस्त रोगी को किसी भी हालत में रोग के अनुसार अन्नादि का निषेध तो किया जा सकता है किन्तु जल का निषेध किसी भी शास्त्र ने नहीं किया है। ज्वरावस्था में जल तो देना चाहिये किंतु कब एवं किस अवस्था में कैसे देना चाहिये यह समझना आवश्यक है। वात और कफजन्य तथा वात-पित्त जन्य ज्वरों में प्यास लगने पर उष्ण जल देना चाहिये, मदिरा आदि पीने से होने वाले ज्वर में और पित्त जन्य ज्वरों में तिक्त रसों से पकाये अर्थात गरम कर ठण्डा किया जल को शीतल कर सेवन करना चाहिये। ये तिक्त रस से पकाये शीतल किये हुए दोनों जल दीपन पाचन, ज्वर नाशक, स्रोतों के शोधक, बलकारक, भोजन में

रुचिकारक, स्वेदजनक, ज्वरी के लिये शीघ्र लाभदायक होते है।

उष्णोदक जल की विधि—जल को आग पर रखकर उसे धीरे धीरे औटावे, वह अपने आप औटाते हुए फेन से रहित एवं निर्मल हो जाय तब उसे क्वथित अर्थात औटाया हुआ समझना चाहिये। यह क्वथित जल दोषों को दूर करने वाला पाचक तथा लघु होता है। जहां जल का निषेध किया है। (वह शीतल जल के लिये कहा है) यह भी समझना आवश्यक है कि एक दिन सुबह या आवश्यकता के समय गरम कर शीतल किया गया, दिन का जल रात्रि में एवं रात्रि में गर्म किया गया जल दिन उपगोय में में नहीं लाना चाहिए।

(अ) गरम किये जल को शीतल करने की विधि—अग्नि पर पात्र का मुख ढ़क्कन से बन्द कर जल को गरम करें, फिर ढ़क्कन सहित पात्र को नीचे रख दें। जब जल स्वयं शीतल हो जावे तो उसका उसका प्रयोग करें।

(ब) दो पात्रों में फेंटते हुए ठंडा किया हुआ जल विष्टकारक होता है।

(स) पंखा की हवा से शीतल किया गया जल पचने में भारी होता है।

(१) नागरमोथा (२) पित्तपापड़ा (३) खश (४) रक्त चंदन (५) सुगन्धवाला (६) सौठ इन सब द्रव्यों से सिद्ध किया जल शीतल हो जाने पर प्यास और ज्वर की शांति के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये।

वाग्भट्ट ने जल के सम्बन्ध में कहा है—वात कफ सम्बन्धी ज्वर में प्यास लगने पर उष्ण जल (कुनकुना) पिया जाता है तो वह कफ को नष्ट कर प्यास को शान्त करने में सहायक होता है। तथा अग्नि को प्रदीप्त करके और शरीर में स्रोत मार्ग को मृदु करके शोधन करता है और वात पित्त कफ स्वेदमल तथा मूत्र का सारण करता है। वाग्भट्ट ने यह भी कहा है कि ज्वरग्रस्त रोगी को लापरवाही से बिना औटाया जल सेवन कराने से ज्वर और भी अधिक बढ़ जाता है।

उष्णोदक जल के गुण एवं लक्षण—पूर्व में बताई गई विधि से बनाये गये जल को उष्णोदक कहा है। यह जल ज्वर कास, कफ, श्वास, पित्त, वात आम तथा मेदों नष्ट करने वाला पाचक तथा सदा पथ्य (हितकारक) होता है। जेज्जट आदि ग्रन्थों में ऋतुपरिवर्तन के समय पृथक पृथक ऋतु मे अलग अलग बताया है। अर्थात कोई जल को ग्रीष्म में अष्टमांश जल जल जाने पर योग्य माना है, शरदऋतु में चतुर्थांश और दूसरी ओर शरद ऋतु में तीन भागों में से एक भाग जल जाने पर उत्तम माना है। शिशिर, वसन्त और हेमन्त ऋतु में औटाते हुए आधा जल रह जाने पर, दूसरी ओर हेमन्त मे चार भागों में से एक भाग। शिशिर ऋतु में पांच भागों में से एक भाग। वसन्तऋतु में ६ भागों में से एक भाग जल जानेप र पीने योग्य उत्तम जल माना है। वर्षा ऋतु में अष्टमांस जल अवशिष्ट रहने पर उत्तम माना है। दूसरी और वर्षा में दो भागों में से एक भाग जल जाने पर अवशिष्ट जल उत्तम माना है। इस प्रकार शास्त्र एवं वैद्यों के अलग अलग विचार है।

ज्वर में जल ग्रहण करने के भेद–हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में सरोवर अथवा तालाब का जल एवं वसन्तऋतु में तथा ग्रीष्मऋतु मे कुआ, बावड़ी, अथवा झरने का जल ग्रहण करना हितकारी है।

पृष्ठ ९३ का शेषांश

अन्य कारणों से यदि उपरोक्त लक्षण नाड़ी में भासित होते है तो अरिष्ट नही समझना चाहिए।

यह सत्य हे कि ज्वर युक्त रोगी की नाड़ी देखने में वैद्य आसानी से सफल होता है और यह भी बता सकता है कि ज्वर कितना है। परन्तु सन्निपातिक ज्वर की नाड़ी परीक्षा वैद्य की परीक्षा घड़ी है। दोषों की अंशांश कल्पना भी नाड़ी के आधार पर ही की जा सकती है। जो वैद्य रोगी के दोषों की अंशांश कल्पना करने में सफल हो सकता है वह चिकित्सा मे एक प्रवीण तीरंदाज की भाँति सफल हो सकता है। वह हीन दोषों का उत्थापन तथा वृद्ध दोषों का कर्षण कर रोगी को स्वस्थ कर सकता है। परन्तु यह एक कठिन परीक्षा की घड़ी है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि नाड़ी विज्ञान वैद्यों द्वारा प्रगति प्राप्त कर सकेगा। यहाँ हमजेतली महाशय कोभी याद करेंगे जो दूतनाड़ी परीक्षा द्वारा रोग निदान करनेमें सफल है। इधर तारा शंकर जी वैद्य भी नाड़ी परीक्षा में अपनी विशेष गति रखते है। मै आशान्वित हूं यह ज्ञान और आगे बढ़ेगा और आयुर्वेद की मौलिकता को लेकर बढ़ेगा जिससे आयुर्वेद का तथा वैद्यों का सम्मान होगा।

ज्वरों में पथ्यापथ्य

लेखक—वैद्यप्रवर पुखराज जी डागा, जोधपुर।

आयुर्वेद में पथ्यापथ्य का महत्व औषधि व्यवस्था से कम नहीं है। इसी दृष्टि से वैद्य जीवन के लेखक ने लिखा है--

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधं निषेवणं।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषध निषेवणं।

भाव—यदि पथ्य से रहा जाय तो औषधि की आवश्यकता नहीं है अर्थात पहले तो पथ्य से रहने वाले व्यक्ति को रोग होता ही नहीं फिर होगा भी तो उचित पथ्य की व्यवस्था से स्वस्थ हो जावेगा। परन्तु यदि पथ्य से न रहा जाय तो औषधि लेने से कोई लाभ नहीं है। अर्थात् पथ्य न रखने से औषधि लाभ नहीं करती।

ज्वर भी एक ऐसा ही रोग है जिसमे यदि पूर्व से ही पथ्य का पालन किया जाय तो रोग आवेगा ही नही परन्तु यदि पथ्य न रखा जाय तो रोग जावेगा नही चाहे जितनी औषधि पेट में भरते रहिये। अतः पथ्य की प्रधानता स्पष्ट हो जाती है। अब हम ज्वरावस्था में पथ्य पालन के कुछ निर्देश जो शास्त्रों में वर्णित है पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहे है।

तरुण ज्वर में—(१) लंघन (२) यथासमय तथा यथावस्था वमन (३) यवागू सेवन (४) स्वेदन (५) कटुरस सेवन (६) तिक्तरस सेवन (७) पाचन।

सान्निपातिक ज्वर में—(१) वमन (२) लंघन (३) स्वेदन।

आम ज्वर में—(१) कफ नाशक उपचार[1] (१) रसों की क्रिया (३) पैरों तथा हाथों के मूल में कण्ठ तथा कपोलों में स्वेदन के लिये सिकी हुई कुलथी का चूर्ण मर्दन करना।

मध्य ज्वर में—(१) पुराने साठी चावल (२) पुराना धान (३) वृन्ताक[2] (४) सहिजना (५) करेला (६) वेतस की कौंपल (७) आर्य (८) खीरा (९) परवल (१०) कंकोड़ा (११) मूली (१२) पोई (१३) मुद्ग (१४) मसूर (१५) चना (१६) कुलथी (१७) मौंठ का यूष (१८) पाढ़ (१९) गिलोय (२०) वथवा (२१) जीवन्ती (२२) काकमाची (२३) द्राक्षा (२४) कपित्थ (२५) अनार मीठी (२६) उरद पके हुए।

जीर्ण ज्वर—वमन, विरेचन, अञ्जन, नस्य, धूम्रपान, स्नेहवस्ति (अनुवासन) नस बंधन, संशमन, प्रलेप, जल स्नान, शीतल उपनाह, एण, कलिंग, हिरण, मोर, लवा, शशक, तीतर, वटेर, मुरगा, क्रौञ्च (ढेक) कुरंग पृषत चकोर, कपिंजल, कालपुच्छ, पक्षियों का मांस सेवन गाय बकरी का दूध घृत, हरीतकी, पहाड़ी स्रोत का जल अरण्ड तैल, श्वेत चंदन, प्रिया का आलिङ्गन (मैथुन नहीं)

आगन्तुक ज्वर में पथ्य—

(१) अभिघातज ज्वर में—चौका पानी, मालिश।
(२) क्षत ज्वर में--क्षत में लाभ दायी पथ्य तथा उपचार।
(३) औषधि जन्य ज्वर--औषधि प्रभाव निवर्तक पथ्य।
(४) विषजन्य ज्वर—विष प्रतिकारक पथ्य।
(५) अभिचार ज्वर—जप, हवन, दान।
(६) शाप ज्वर—जप, दान, यज्ञ तथा अन्य प्रतिकार।
(७) ग्रह पीड़ा—स्वस्ति वाचन, पुण्य, हवन, दान आदि
(८) काम ज्वर—प्रिया-आलिङ्गन।
(९) भय ज्वर—वातनाशक पथ्य तथा आश्वासन।
(१०) शोक ज्वर—धैर्य धारण तथा सान्त्वना।
(११) भूतावेश—पूजा, पाठ, मन्त्र तथा ताड़न।

ज्वर निवृति के बाद पथ्य—

(१) सुपाच्य भोजन (२) सह्य श्रम, (३) ब्रह्मचर्य पालन (४) अति स्नान त्याग, (५) उचित विश्राम।

परम पथ्य उष्णोदक—पानी को उबाल कर अष्टमांश शेष रख देना। अथवा उबाल कर चतुर्थांश शेष रखना,

[1] अवलेह, अंजन, नस्य, गण्डूष आदि। [2] वृन्ताकं कोमलं पथ्य।

बिगड़ा रहना, क्षुधानाश, मूत्र त्याग जल्दी-जल्दी हो, शरीर में जकड़ाहट, अंगों में गुरुता रहती हो। द्वितीयावस्था में ज्वर तीव्र होता है, प्यास, प्रलाप, श्वास, चक्कर, मल की प्रकृति, जी मिचलाना आदि लक्षण मिलते हैं।

तृतीयावस्था में भूख मिटती है, कृशता, अंगों में लघुता, दोषों की प्रवृत्ति व ज्वर का पाक होना आदि लक्षण पैदा होते हैं।

सामान्य ज्वर—उष्ण जल सेवन, हल्का लंघन, मल के बलानुसार हल्का ही भोजन (पथ्य), वायु विवन्धक स्थान में रखना, उत्तम महीन वस्त्रों पर सुलाना चाहिए, शुरू के तीन दिनों कड़ुवी, कषेली तथा विरेचन (जुलाव) न देना। क्रोध, मैथुन व्यायाम आदि भी वर्जित हैं। पश्चात २ माशे सौंठ और १ माशे धनियां क्वाथ बना देवें। ज्वर दूर हो भूख बढ़ेगी।

वात ज्वर—लंघन नहीं, हल्का पथ्य (क) चिरायता नागर मोथा, नेत्रबाला (कमल तन्तु) दोनों कटेरी गिलोय और सौठ ये सब औषध समभाग ले चूर्ण करें। ५ दिन तक क्वाथ पिलावें।

(ख) छोटी पीपल, शुद्ध वत्सनाभ खरल करके आधी रत्ती प्रमाण की गोलियां बनालें। नित्य १ गोली ५ दिन तक। यही हिंगुलेश्वर रस है।

पित्त ज्वर—(क) चावल की खीलों के पानी में मिश्री डालकर पिलाना चाहिए।

(ख) गेहूं का आटा और मिश्री पानी में डालकर पकालें। पूर्ण परिपक्व होने पर उतार कर ठण्डा होने पर पिलाना चाहिए। यह हरीरा कहलाता है। इसके अलावा मूंग की दाल का पानी या दाख के रस में भी मिश्री डाल कर पिलाना चाहिए।

(ग) मीठे अनार का शर्बत (रस) पिलाना चाहिए। इससे दाह शांत होती है।

(घ) फालसे के रस में सेंधा नमक डालकर पिलावें।

कफ ज्वर—आमाशय स्थित दोष कफ प्रधान हो तो वमन द्वारा उनका निर्हरण कराना चाहिए। लंघन या वमन कराये। रोगी को उचित समय पर यवागू प्रयोग करावें।

(क) १ किलो पानी को गर्म कर ७५० ग्राम रहने पर पीने को दें। बलानुसार लंघन करावें। जब लंघन तोड़े तो मूंग की दाल, मोंठ या कुल्थी की दाल का पानी पिलावें दिन में सोने न दें। पथ्य के साथ ही बिजौरे की कली (खट्टी) में सेंधा नमक मिलाकर पिलावें।

(ख) सौठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, चित्रक, पीपलामूल, श्वेत व काला जीरा, लौंग, इलायची, भुनी हुई हींग, अजवायन और अजमोद सभी समभाग ले चूर्ण कपड़छन करें। मात्रा २ ग्राम की गर्म जल से। कफज्वर का निश्चित नाश कर भूख बढ़ायेगी।

(ग) शीतभञ्जी रस २ रत्ती को अडूसा और सौठ के काढ़े के अनुपान से ७ दिन पिलाना चाहिए।

वात पित्त ज्वर—दुग्धपान हितकर है। दस दिन होने पर कफ मन्दता हो तो घृत का प्रयोग हितकारक है। फिर भी ज्वर शान्त होने पर विरेचन देना या आवश्यकतानुसार आस्थापन और अनुवासन बस्ति दे सकते हैं।

(क) चावलों की खीलों में मिश्री और मधु मिलाकर १२ दिन तक पिलावें।

(ख) सौठ, मिर्च, पीपल, परस्पर तुल्य. सभी के तुल्य मिश्री का कपड़छन चूर्ण कर रखलें। मात्रा—२ ग्राम मधु से १० दिन तक सेवन करावें।

वात कफ ज्वर—ऐसे रोगी को १० लंघन व गरम कर आधा रहने पर जल पिलावें। बाद में चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ समभाग कर चूर्ण बनावें १ तोला का क्वाथ दें फिर पथ्य दें।

यदि उक्त रोगी का मुख और तालु सूखकर जिह्वा कठोर हो जावे तो बिजौरे की कली में सेंधा नमक और काली मिरच मिलाकर जिह्वा पर लेप करें। उक्त विकार नष्ट होगा।

सन्निपात ज्वर—लंघन, बालुका स्वेद,नस्य, अवलेह, अंजन आदि उपक्रमों का प्रयोग करना चाहिए। सन्निपात ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को वायु विवंधक स्थान पर रखें। स्वच्छ कूप-जल में सौठ डालकर गरम करें। जल जब आधा रह जाय वही जल ठंडा होने पर छान कर रोगी को पिलावें। सुबह का गरम किया हुआ जल शाम के बाद काम में न लें। इसी तरह शाम को तैयार किया जल सुबह के बाद उस बचे जल को फेंक दें। रोगी के पास बुद्धिमान व्यक्ति ही रहे। शीतलता रोगी से जितनी दूर

रहे अच्छा है। इसके साथ मणिधारण, दान, हवन शिवाभिषेक तथा मंत्र जपादि सदैव अवश्य किये जायं।

(क) अर्क मूल, जवासा (यवासा दुरालभा), चिरायता, देवदारु, रासना (एलापर्णि), निर्गुंडी, वच, अरनी, सहजना (शोभांजन, मुंगना), पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सौंठ, अतीस और जल भांगरा समभाग ले चूर्ण कर ८ माशा चूर्ण का क्वाथ कर दोनों समय दें। सन्निपात के अतिरिक्त धनुर्वात, दंत स्तम्भन, शीतांग, प्रसूत रोग श्वास कास और वात व्याधि भी नष्ट होंगे।

(ख) जिह्वास्तम्भ होने पर विजौरे की केसर में सेंधा नमक व काली मिरच पीसकर (घिसकर) जिह्वा पर लेपकरे।

(ग) जमाल गोटा १० ग्राम, काली मिरच १ ग्राम, पीपलामूल १ ग्राम तीनों को जंभीरी के रस में १ दिन तक खरल करें। इस अंजन को नेत्रों में लगायें। इसके अलावा सन्निपात की अवस्था में आवश्यकतानुसार सन्निपात भैरव रस, सूचिकाभरण रस, महा लक्ष्मी विलास, कृष्ण चतुर्मुख, वृहत वात चितामणि आदि का प्रयोग किया जाता है।

पृष्ठ ९७ का शेषांश

तो इसे कृशरा (खिचड़ी) कहते है। यह वलकारक वात नाशक होती है। कूटकर भूसी निकाल कर फिर थोड़ा भून कर जौ को १४ गुना पानी में उवाले फिर छान लेवे तो उसे वाह्य मण्ड (Barlley water) कहते हैं। यह कफ पित्त हर होता है। धान के लावे को या भुने हुए चावल को १४ गुने जल में उवालकर छान लेवे। उसे लाज मण्ड कहते हैं। यह कफ पित्त नाशक है, ग्राही है। लाज मण्ड या वाह्यमण्ड वहुत ही लघु होते है। अतः ज्वर में भी यदि रोगी की अग्नि अति मन्द हो तो भी यथा मात्रा दी जा सकती है। पिप्पली तथा शुण्ठी के चूर्ण को डालकर पकाई गई धान लावा की पेया ज्वरनाशक है। शीघ्र ही पच जाती है। अतः इसे लंघन के वाद प्रारम्भ में भूख लगने पर दी जा सकती है। वात ज्वर में अग्निमांद्य होने पर जंगली जीवों का मांस रस, मध्याग्नि में पेया या तीव्राग्नि में कृशरा खिलावें। पित्त ज्वर में तर्पण, तीव्राग्नि में विलेपी देवे। कफ में मन्दाग्नि होने पर मूंग की दाल का यूष ही पिलावे।

आयुर्वेद में उर्ध्व रक्त पित्त, मदात्यय ज्वर, ग्रीष्मऋतु में यवागू हानि कारक वताया है अतः नहीं देना चाहिए।

ज्वर में उपरोक्त पथ्य व्यवस्था का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि कहा है औषधियों के विना केवल उचित पथ्य के सहारे रोग पर विजय प्राप्त की जा सकती है परन्तु पथ्य के पालन किये विना रोग नष्ट नहीं हो सकता चाहे सैकड़ों औषधियों का प्रयोग क्यों न कर लिया जाय।

सामान्यतः ज्वर चिकित्सा करते समय समझें

(१) ज्वर उतारने की जल्दवाजी न करें।
(२) मस्तिष्क, हृदय तथा आंतों की विकृति की ओर ध्यान दें तथा उनकी सुरक्षा करते रहें।
(३) धातु दोषों के पाचन का प्रयास करें। शमन पर अधिक वल न दें।
(४) अतिसार न होने दें और हो तो प्रथम उसको रोके।
(५) वमन आदि उपद्रवों की चिकित्सा पहले करें।
(६) लंघन कराना उपयुक्त है। 'ज्वरो लंघनं कुर्याद्'
(७) षडंग पानीय जल पिलावें, दूध न दें। औटाया हुआ शीतकर (श्रृत) जल दे सकते हैं।
(८) मलावरोध न होने दें, न विरेचन ही दें।
(९) रोगी के वल की रक्षा करें। उसका वल न तोड़ें।
(१०) दोषों की अंशांश कल्पना कर उसका समाधान करें।

वातिक ज्वर

वैद्य राजकुमार शर्मा भिषगाचार्य एम० ए०, राज० आयु० चिकि०, समदड़ी (बाड़मेर)

ज्वरयति शरीराणे इति ज्वरः । —च० नि० अ० १

स्वेद का अवरोध होकर सारे शरीर में सन्ताप तथा समस्त अंगों में जकड़ाहट ये विकार जिस रोग या मनुष्य में उत्पन्न होते हों उसे ज्वर कहते है । इसके आठ भेद माने गये हैं—१. वातज ज्वर, २. कफ ज्वर, ३. पित्त ज्वर, ४. वात पित्त ज्वर, ५. कफ वात ज्वर, ६. कफ पित्त ज्वर, ७. सन्निपात ज्वर, ८. आगन्तुज ज्वर ।

दोषैः पृथक् समस्तैश्च द्वन्द्वैरागन्तुरेव च ।
अनेक कारणोत्पन्नः स्मृतस्तु अष्टविधो ज्वरः ॥
—सु० उ० अ० ३९

चरकाचार्य ने चरक निदान स्थान अध्याय १ में सामान्य सन्ताप लक्षण वाले एक ही ज्वर को माना है। किन्तु उसके दो भेद दिये है । १. निज ज्वर, २. आगन्तुज ज्वर । पुनः निज ज्वर को उष्ण ज्वर और शीत ज्वर भेद से दो प्रकार तथा वातिक पैत्तिक श्लैष्मिक ज्वर सन्निपातिक ज्वर, वातपैत्तिक, वात श्लैष्मिक कफ पैत्तिक भेद से निज ज्वर सप्तविध प्रकार का माना है । महामहोपाध्याय डा० गणनाथ सेन सरस्वती महोदय ने भी प्रथम निज और आगन्तुज दो भेद किये है ।

ज्वरः प्रधानो रोगाणां त्वचि सन्ताप लक्षणः ।
देहेन्द्रिय मनस्तापी निजश्चागन्तुजश्च सः ॥
—सि० नि०

प्राकृत ताप की वृद्धिको ज्वर कहा है । इसका कारण अनूर्जता या वाह्य पदार्थों का शरीर में प्रवेश होकर प्रभाव होने से शरीर की प्रतिक्रिया का बोधक स्वरूप है । वाह्य पदार्थों, उपसर्ग और विषमयता के कारण जीव रस की प्राकृतिक क्रिया की वृद्धि होती है जिससे शरीर में ताप उत्पन्न होता है । इस ताप के अत्यधिक होने से वात सूत्र कोषाणुओं (Nerve Cells) के कायाणु रस (Cytoplasm) को स्कन्दित कर उनकी क्रिया को नष्ट कर देता

है । प्राकृत अवस्था में श्वसन क्रिया स्वेद का वाष्पीभवन मस्तिष्कगत ताप केन्द्र की ताप वृद्धि पर नियंत्रण रखते है । प्रतिदिन सर्वोच्च और अल्पतम (न्यूनतम) ताप का अन्तर १॥ अंश से अधिक नहीं होता है ।

सम्प्राप्ति—

वातादि दोष वर्षा शरद् और वसन्त ऋतु में दिन रात के स्वप्रकोपक समय में और वृद्ध युवा एवं बाल्य अवस्था में बल बुद्धि ग्राहिनि क्रोधादि दिवास्वप्नादि स्वप्रकोपक कारणों से प्रकुपित होते हुए सम्पूर्ण शरीर में प्रसृत या व्याप्त होकर ज्वर को उत्पन्न करते हैं ।

वर्षा ऋतु में वात का प्रकोप होता है,इसी प्रकार आयु की दृष्टि से वृद्धावस्था में वात का प्रकोप होता है । दिन की अवस्था क्रम से दिन के अन्त में वात का प्रकोप होता है । इसी प्रकार रात के अनुसार रात के अन्त में वात का प्रकोप होता है । भोजन के पाचन के समय के अनुसार भोजन पच जाने के अन्त में वात प्रकुपित होता है । महर्षि चरक ने लिखा भी है कि—

जरणान्ते दिवसान्ते निशान्ते घर्मान्ते ज्वराभ्यागमनम-भिवृद्धिर्वा ज्वरस्य, विशेषेण परुषारुण वर्णत्वं अनेक विधो-पमाश्चलाश्च वेदनास्तेषां तेषामंगावयवानाम् ॥ चरक ॥

वातिक ज्वर लक्षण—

वेपथुः विषमो वेगः कण्ठोष्ठ परिशोषणम् ।
निद्रानाशः क्षुतः स्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥
शिरोहृद्‌ गात्र रुग्वक्त्रवैरस्यं बद्धविट्‌कता ।
जृम्भाऽऽध्मानं तथा शूलं भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥

॥ सु. उ. अ. ३१।२१-३० ॥

शरीर में कम्पन,ज्वर के वेग की विषमता अर्थात् कभी ह्रास कभी वृद्धि,कण्ठ तथा ओष्ठ का सूखना, निद्रा का नाश, हिक्का का रुकना, शरीर में रूक्षता, शिर हृदय और शरीर में पीड़ा, मुख का वेस्वाद होना, मलावरोध, जमुहाई का आना, उदर में आध्मान, शूल का होना वात ज्वर के लक्षण हैं। वेग शब्द से ज्वर की प्रकृति या वृद्धि का वोध होता है। वात ज्वर में इन दोनों का समय अनिश्चित होता है। महर्षि चरक ने वात ज्वर को विषमारम्भ विसर्गी कहा है जैसाकि चक्रपाणिदत्त ने उद्‌धृत किया हैकि—

आरम्भः उत्पादः विसर्गो मोक्षः तौ विषमौ यस्य स विषमारम्भ विसर्गी।

ज्वर का वेग शिर से प्रारम्भ होता है और कभी पीठ से या जंघा से। ज्वर कभी तेज होता है और कभी मन्द होता है। इसी प्रकार इसकी निवृत्ति का समय भी अनियमित होता है। निद्रानाश वायु की प्रवलता से होता है—छींक की रुकावट होती है—क्षवथु उद्‌गार निग्रहः ॥ चरकाचार्य ॥

वाग्भट्ट ने भी वात ज्वर के लक्षणों में लिखा है कि—

हर्षो रोमांगदन्तेषु वेपथु क्षवथोर्ग्रहः।

भ्रमः प्रलापो धर्मेच्छा विलापश्चानिलजे ज्वरे॥-वाग्भट्ट

शास्त्रों में छिक्का का निग्रह लिखा गया है परन्तु अनु-भव में आता है कि प्रतिश्यायपूर्वक ज्वर होने पर छिक्का के निग्रह के स्थान पर छिक्का की प्रवृत्ति होती है। वेदना का अनुभव यद्यपि समस्त शरीर में होता है किन्तु शिर हृदय पार्श्व और कटि प्रदेश में विशेपतया वेदना होती है। वात ज्वर सभी ऋतुओं में वात प्रकोपक कारणों के उप-स्थित होने या सेवन करने से हो सकता है।

आचार्य चरक के मतानुसार वात ज्वर के निम्न लक्षण हैं—

भवन्ति विविधा वातवेदनाः पाद सुप्तता।
पिण्डिकोद्वेष्टनं कर्ण स्वनो वक्त्र कषायता॥
उरुदाहो हनुस्तम्भोविश्लेषः सन्धि जानुतः।
शुष्क कासो वमिललोम दन्तहर्ष भ्रमभुवौ॥
अरुणं नेत्र मूत्रादि तृट् प्रलापोष्णकामिताः॥ चरक॥

चिकित्सा—

१. वातजन्य ज्वर में लंघन नहीं कराना चाहिए।
२. साधारणतया ज्वरी को उष्ण जल पिलाना चाहिए।
३. वृहत् पंचमूल का औषधियों का क्वाथ वात ज्वर में हितकर होता है।
४. वात ज्वर में निरूहण वस्ति देनी चाहिये।
५. वातज ज्वर में पिप्पली, अनन्तमूल, मुनक्का, सौंफ, और निर्गुण्डी के वीज समभाग लेकर अर्थात् १-१ पल-लेकर सोलह पल जल में क्वाथ कर चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर १ कर्ष मिलाकर पिलाने से वात ज्वर नष्ट होता है।
६. सातवें दिन गुडूच्यादि क्वाथ देवें क्योंकि सातवें दिन वात ज्वर का पाक हो जाता है।
७. शालपर्ण्यादि क्वाथ सुखोष्ण गुनगुना पिलाने से वात ज्वर नष्ट होता है।
८. काश्मर्यादि क्वाथ गुड़ मिलाकर पीने से वात ज्वर नष्ट होता है।
९. वलादि क्वाथ २० मिली. १० ग्राम शर्करा मिलाकर पीने से वात ज्वर नष्ट होता है।
१०. गिलोय स्वरस शतावरी स्वरस गुड़ इन सवको १०-१० ग्रा. मिलाकर पिलाने से वात ज्वर नष्ट होता है। यह योग कई वार का अनुभूत है।
११. ज्वर संहार रस ३००-३००-३०० मि.ग्रा. गोदन्ती भस्म ५००-५००-५०० मिग्रा. गुडूच्यादि क्वाथ के साथ दिन में तीन वार देवें निश्चित लाभ होगा।
१२. ज्वरघ्नी वटी गुडूची स्वरस के १५-१५-१५ ग्राम के साथ ५००-५००-५०० मि.ली. की मात्रा में दिन में तीन वार देवें।

अथवा खूब खौल जाय इतना। इन्हें अग्निबल दोष बल तथा अवस्था देख कर प्रयोग करना चाहिए। यह व्यवस्था तर तम के आधार पर की जानी चाहिए। उबला हुआ जल केवल १२ घंटे काम में लेना चाहिए। इसे तांबे के बर्तन में या मिट्टी के बर्तन में सुरक्षित रखना चाहिए।[3]

औषधिश्रृत जल—१ तोला औषधि को १२८ तोला जल में पकावे। जब आधा शेष रहे तब पानी छान कर प्रयोग करें। लवंग अथवा एला यथा मात्रा इसमें काम ली जा सकती है। पेया भोज्य पदार्थ आदि बनाने के लिए भी इस जल का प्रयोग किया जा सकता है। स्नान आदि बाह्य प्रयोग के लिये भी औषधि जल काम में लिया जा सकता है। इसमें निम्ब पत्र तथा धमासा काम में आता है। इनकी मात्रा यथावस्था निश्चय करनी चाहिये[4]।

तरुण ज्वरे अपथ्य—स्नान, स्त्री प्रसङ्ग, कषाय रस सेवन, व्यायाम, अभ्यङ्ग, दिवा स्वाप, दुग्ध घृत, छाछ, मद्य, मिष्ठान, अन्न वायु भ्रमण, क्रोध।

सर्व ज्वरे अपथ्य—अधिवासन, लाल फूल, लाल वस्त्र, वमन, दतून, अहितकर गरिष्ठ भोजन, विरुद्ध अन्न पान, विदाही अन्न, दुर्जर वस्तु, अस्वच्छ जल, खारा, खटाई, पत्र शाक प्रवाही जल, कटहल, तोडी मछली, तिल की खल, नवान्न, चून। कफकारी पदार्थ।

ज्वर निवृत्ति के बाद अपथ्य—व्यायाम, व्यवाय, स्नान, अधिक भ्रमण, अधिक परिश्रम।

ज्वर के सामान्य उपक्रम में कहा है—

ज्वरादौलंघनं कुर्याद् ज्वर मध्ये तु पाचनम्।
ज्वरान्ते रेचनं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः।

ज्वर के प्रारम्भ में लंघन, मध्यकाल में पाचन अर्थात् पाचन शमन कषाय यवागू आदि का प्रयोग करे परन्तु ज्वर के अन्त में रेचन (विरेचन) देना चाहिए। यह सामान्य उपक्रम है ज्वर का, परन्तु कई ज्वर ऐसे भी है जिनमें लंघन वर्जित हैं—वे है क्षय रोग, वात ज्वर, भय, क्रोध, काम, शोक, श्रम द्वारा उत्पन्न ज्वरों में लंघन नहीं करानी चाहिए[5]। इनमें लघु सुपाच्य भोजन दोषानुसार देना चाहिए। उस व्यक्ति को जो क्लांत हो, अशान्त हो, शोकातुर हो, प्यासा हो, मुख शोषित हो लंघन नहीं कराना चाहिए।

षडंगपानीय—

मुस्तक, पर्पट, खस, चन्दन लाल, सुगन्धवाला और शुण्ठी इनको समान मात्रा में मिलाकर १० ग्राम की मात्रा में लेवें। फिर इन्हें १ किलो पानी में डालकर उबाले। आधा जल शेष रहने पर छान कर सुखोष्ण अथवा शीत जैसा भी आवश्यक हो प्रयोग करे। यह ज्वर तथा प्यास को शांत करता है। कषाय पिलाना निषिद्ध होने की अवस्था में भी इसे पिलाया जा सकता है। क्योंकि इसमें औषधि मात्रा अत्यल्प आती है। यह व्यग्रता या दुर्जरता नहीं करती, और ज्वर, प्यास, बेचैनी आदि उपद्रव भी धीरे धीरे शांत होने लगते है।[6]

यवागू निर्माण—जब भी यवागू या अन्न खिलाने का अवसर आवे तब इसका प्रयोग निर्भय होकर किया जा सकता है। यवागू चार प्रकार के होते हैं—मण्ड, पेया, विलेपी, कृशरा। यवागू बनाने के लिए पुराने चावल लेने चाहिए और उसको थोड़ा कूटकर १४ गुना पानी में छोड कर पकावें। जब खूब चुर जावे तो छान कर रखले। यह द्रव मण्ड कहाता है। यह दीपन पाचन होता है। यदि उपरोक्त पेय को छाने नहीं तो उस पीने योग्य पेय को पेया कहते है। यह अत्यन्त लघु तथा धातु पोषक होता है। इसी प्रकार १४ गुना पानी में दाल छोड़कर खूब पकावें कुछ गाढ़ा होने पर छान कर लेवें तो उसे यूष कहते है। यह लघु कफ नाशक होता है। चार गुने पानी में चावल की कणी डालकर पकावें जो खूब सीजे द्रव गाढ़ा रहे तो विलेपी कहते है। यह हृद्य पित्त नाशक होती है। ६ गुने पानी में चावल मूंग की दाल या उर्द की दाल या तिल डालकर पकावे और वह गाढ़ी होजावें

—शेषांश पृष्ठ १०२ पर देखें।

[3] अष्टमेनांश शेषेण चतुर्थेनार्थ केनवा अथवा क्वथने नैव सिद्धि कुष्णोदक वदेत्।

[4] कर्ष मात्रं ततो द्रव्यं साधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि। अर्धश्रृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादि संविधौ॥

[5] ज्वरे लंघन मे.वादावुपदिष्ट मृते ज्वरान्। क्षयानिल भय क्रोध काम शोक क्षयोद् भवात्॥

[6] मुस्तकं पर्पटकोशीर चन्दनोदीच्य नागरं। श्रृत शीत जलं दद्यात् पिपासा ज्वर शान्तये॥

आम ज्वर का परिहार

वैद्य गिरीशचन्द्र जोशी आयुर्वेद रत्न, जोधपुर

मुख से लालास्राव होना, वमन सी प्रतीत होना, हृदय (छाती) का भरा सा वा भारी सा प्रतीत होना, अरोचक, तन्द्रा और आलस्य होना, भोजन का वा दोषों का न पकना, मुख का विरस होना, शरीर भारी होना, क्षुधा नाश, मूत्र वाहुल्य, स्तब्धता एवं ज्वर वलवान होना यह आम ज्वर के लक्षण हैं। इनमें भेषज नहीं देनी चाहिए। क्योंकि आम दोष में दी हुई भेषज ज्वर को और तीव्र कर देती है। कारण इसमें यह है कि एक तो पूर्व ही अपक्व दोष शरीर में होते हैं जिन्हें निर्वल अग्नि पका नहीं सकती। उस पर यदि औषध सेवन करली जाय तो वह जीर्ण तो नहीं हो सकेगी प्रत्युत अपक्व रहने से आम दोषों को और भी उत्कृष्ट कर ज्वर को वढ़ा देगी।

उक्त आम ज्वर के प्रतिपादन में जो यह कहा है कि आमज्वर में भेषज नहीं देनी चाहिए, यह विरुद्ध है। क्योंकि भेषज दो प्रकार की चरक ने कही है—एक द्रव्य रूप और अद्रव्यरूप। इनमें से द्रव्यरूप तो कषाय आदि और अद्रव्य रूप लङ्घन स्वेदादि है। यहां अद्रव्यरूप लङ्घनादि और द्रव्यरूप षडङ्गपानीय आदि प्रयुक्त होती है। एवं उक्त आमज्वर में भेषज नहीं देनी चाहिए यह कहना ठीक नहीं वनता। इस पर आचार्य कहते है कि भेषज शब्द से यहां पर अन्नपान की साधना से व्यतिरिक्त कल्पना की जाती है, न कि सामान्यतः औषधमात्र। यदि यह कहो कि इसकी प्रतीति कैसे हुई तो इसका उत्तर यह है कि तरुण ज्वर में भेषज पीने का निषेध होने पर भी भेषज का विधान दीखता है। यदि आचार्य को भेषज मात्र का ही निषेध अभिप्रेत होता तो वह पूर्व निषेधकर पुनः विधान क्यों करते।' अतः सिद्ध होता है कि भेषज शब्द से अन्न-पान की सिद्धि से भिन्न कल्पना की जाती है न कि सामान्यतः औषध मात्र, अन्यथा उनमें 'वदतो व्याघात' दोष आता है। एवं पच्यमान अवस्था में भी समता होने के कारण ऐसा ही जानना चाहिए। (क्षुदित्यादि) इसमें समास न करने से यह प्रतीत होता है कि क्षुधा आदि अकेले-अकेले भी और मिलकर भी निराम अवस्था के बोधक हैं। (आठ दिन) पक्व दोष का लक्षण है, यह जेज्जट कहता है। परन्तु हरिचन्द्र तो कहते हैं कि आठ दिन के न होने पर भी क्षुधा आदि लक्षणों से निरामपन, वा क्षुधा आदि न होने पर भी अधोवायु के सरने से निरामपन अष्टाह पर ही होता है, यह कालात्मक और लक्षणात्मक निर्देश शिष्य के हित के लिये किया है, इससे शिष्यों को शीघ्र एवं निर्भ्रान्त वोध हो जाता है इसलिए उक्त निर्देश किया है। एक रससामता और दूसरी दोष सामता। रस सामता का ज्ञान मुख की विरसता आदि से होता है और दोष सामता तरुणत्व रूप होती है जो अष्टाह से हो जाती है। इसमें हरिचन्द्र ने हेतु दिया है कि—सातों धातुओं में स्थित दोष सात दिन में पच जाते हैं। अतः आठवें दिन ज्वर निराम कहलाता है और चरक सुश्रुत की टीका में भी आया है कि—तरुण सामता अष्टाह से ही दूर हो जाती है, परन्तु रस सामता तो उसके पश्चात् भी रहती है। चरक का भी मत है कि ज्वरी को छः दिन के पश्चात् हलका भोजन करवावे। अनन्तर भोजन कराने के वाद उसे पाचन और शमन कषाय देवे अथवा आम दोष वाले ज्वरी को दी हुई भेषज उसके ज्वर को और भी वढ़ा देती है, जैसे सुश्रुत ने कहा भी है कि कई सात रात्रि वाद कई दस रात्रि वाद औषधि देनी उचित हो वह दोषों के पक जाने पर देनी चाहिए। सप्ताह के पूर्व जो पाचक कषाय का प्रयोग कहा है वह अधिक सामतापरक नहीं है प्रत्युत अल्प सामतापरक है। वाग्भट्ट का प्रमाण भी है—उल्वणता न होने पर लघु अन्नपान के पश्चात् औषधि देनी चाहिए। जो तीव्र ज्वर से ग्रस्त होता है उसमें दोषों का वेग आदि होते हैं, इस कारण अथवा तन्द्रा और स्तिमितता करने वाले दोष के अत्यधिक संचित होने पर दी हुई औषधि न पक कर ज्वर को और वढ़ा देती है। कई विद्वानों ने इसका अर्थ यह कहा है, सात दिन के अनन्तर ज्वर में साम दोषों में स्तब्ध औषधि नहीं देनी चाहिए। यह संक्षेप है, यदि विस्तार से समझना हो तो कषाय के निर्णय वाले प्रकरण

को देखना ही उचित है। जैसे शास्त्र में कहा है—सात दिन तक तरुण ज्वर, बारह दिन तक मध्यम, तेरह दिन जीर्ण ज्वर होता है, तीन सप्ताह के पश्चात जो ज्वर सूक्ष्म (धातुओं में प्राप्त) हो गया है और प्लीहा की वृद्धि तथा अग्नि का नाश करता है वह जीर्ण ज्वर कहलाता है।

अल्प प्रदुष्ट दोषों वाले बलवान मनुष्य का कास, मूर्च्छा, अरुचि, छर्दि, तृष्णा, अतिसार, विबन्ध, हिक्का, श्वास और अङ्ग भेद रूप इन उपद्रवों से रहित ज्वर साध्य होता है।

चिकित्सा सूत्र—ज्वर के पूर्वरूप में हलका भोजन करना चाहिए। क्योंकि ज्वर आमाशय से ही उत्पन्न होता है। इसके बाद दोषों के अनुसार कषाय पान, अभ्यङ्ग स्नेह, स्वेद,प्रदेह, परिषेक, अनुलेप,वमन, विरेचन,आस्थापन वस्ति, अनुवासन वस्ति, शमन औषधि, नस्य, धूप, धूम्र-पान, अंजन, दुग्ध और भोजन की व्यवस्था युक्तिपूर्वक करनी चाहिए।

जीर्ण ज्वर में घृत का महत्त्व—दोषों के अनुसार औषधि से सिद्ध घृत का प्रयोग सभी तरह के जीर्ण ज्वरों में करना चाहिए क्योंकि घृत स्नेह होने के कारण वात दोष को, संस्कार से कफ को, शीत होने के कारण पित्त एवं ऊष्मा को शान्त करता है। इसलिए जैसे अग्नि से जले हुए द्रव्यों को जल सेवन से लाभ होता है वैसे ही सभी जीर्ण ज्वरों में घृत से लाभ होता है। जिस प्रकार मनुष्य अग्नि शांत करने के लिए जलते हुए घर का जल से सिंचन करते है वैसे ही जीर्ण ज्वर की शांति के लिये घृत का प्रयोग करते है।

घृत स्नेह होने के कारण वात को शांत करता है, शीत वीर्य होने से पित्त को नष्ट करता है, अपने तुल्य गुण वाले कफ दोष को संस्कार के द्वारा नष्ट करता है। जैसा घृत संस्कार का अनुवर्तन करता है वैसा कोई भी स्नेह संस्कार का अनुवर्तन नहीं करता है। अतः सभी स्नेहों में घृत को ही श्रेष्ठ माना गया है।

आम, पच्यमान और निराम ज्वर के लक्षण

आम ज्वर के लक्षण—

अन्न में अरुचि, भुक्त अन्न का परिपाक न होना, पेट का भारीपन, वक्ष जड़ता, तन्द्रा, आलस्य, ज्वर वेग अधिक होना, ज्वर न उतरना, दोषों की प्रवृत्ति न होना, मुख लालास्राव, जी मिचलाना, भूख न लगना, मुख विरसता, देह अवयव स्तब्धता, मूत्र त्याग की अधिकता, विष्टा का पाचन न होना, देह कृशता, विबन्ध, प्रसेक न आना, बेचेनी आदि लक्षण आमज्वर में होते हैं।

पच्यमान ज्वर के लक्षण—

ज्वर का वेग अधिक, प्यास अधिक, प्रलाप, श्वास गति में वेग, भ्रम, मल प्रवृति, वमन सा होना—ये लक्षण पच्यमान ज्वर के हैं।

निराम ज्वर के लक्षण—

भूख लगना, देह में कृशता, हल्कापन, ज्वर के वेग में ह्रास होना, दोषों की प्रवृत्ति होना तथा (आठ दिन बीतना) ये लक्षण निराम ज्वर के हैं।

ज्वर चिकित्सा के सामान्य सिद्धान्त

श्रीमती नीरू शर्मा एम० ए०,
डा० सुरेश शर्मा 'मानव' L.I.M.A , मा० सि० गंगा आरोग्य सदन, देवनगर (पुष्कर) अजमेर

श्वासो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिस्तृष्णातिसारविड्ग्रहाः ।
हिक्का कासाङ्गदाहश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥
—भा० प्र०

ज्वर के मुख्य १० उपद्रव हैं। श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, तृषा, अतिसार विड्वन्ध (मल की रुकावट), हिचकी, कास, अंगदाह ।

अगर हम एक युद्ध की कल्पना कर सोचें कि ज्वर अपनी (सेना) कुटुम्ब सहित मानव पर हमला करता है। इसका निर्णय वक्त करता है। इस पर परिस्थिति मात्र दो ही है एक रोगी किसी योग्य वैद्य के संचालन में ज्वर से युद्ध कर उसे खत्म करादें। या फिर अकेला रोगी हारे। इन दो निर्णयों के अलावा तो कोई निर्णय हो नहीं सकता। जब यह निश्चित ही है तो हमें हारना नहीं चाहिए। ज्वर अकेला तो नही उसके साथ उसके परिवारी कुटुम्बजन भी तो साथ होंगे। क्योंकि प्यास ज्वर की स्त्री है, तो श्वास कास दो पुत्र, हिक्का वमन (हिचकी) उल्टी दोनों पुत्रियां ! अतिसार उसका भ्राता, अरुचि बहन, विड्वन्ध (मल की रुकावट) भानजा, अफरा श्वसुर व मूर्छा दासी है।

इसलिये जब भी ज्वर का आक्रमण होगा इसके साथ कुटुम्ब के कुछ तो सदस्य होंगे ही। समयानुसार कौन सदस्य ज्यादा बलवान है उसका ही दमन प्रथम हो, नहीं तो कुटुम्बी होने से ये सभी ज्वर के पक्ष में रोगी को खत्म करने पर तुले रहते हैं। हम इसी युद्ध को कहते है 'चिकित्सा'।

या क्रिया व्याधिहारिणी सा चिकित्सा निगद्यते ।
दोष धातुमलानां या साम्यकृत सैव रोगहृत ॥
—भा० प्र०

जो क्रिया व्याधि का नाश करे वही चिकित्सा है। जो वात, पित्त, कफ, सप्त धातु व मल को यथायोग्य रखे वही औषधि रोग का नाश करती है। इसी चिकित्सा नामधारी युद्ध में रोगी को मात्र औषधियों को ही शस्त्र मान ज्वर से जीतने की आशा में लड़ा देने वाला वैद्य रोगी को हरा देता है। औषधि के सहायक आचरण पथ्यापथ्य आदि का उपयोग आवश्यक है। जिन्हें वैद्य महोदय को नहीं रोगी को करने होते हैं। रोगी वैसा ही करने का या तो निश्चय करे या (खुद की लापरवाही से युद्ध हार जावे।) वैद्य को चाहिए कि ऐसे रोगी से दूर रहे।

लंघन, पाचन, स्वेदन, यवागू प्रयोग, तिक्त रस सेवन, वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य, धूप अंजन, अभ्यंग, प्रसेक, सिद्ध घृत के प्रयोग, दुग्ध प्रयोग, जल प्रयोग, तर्पण, शमन आदि का समयानुसार जैसी आवश्यकता हो आचरण करावें। निश्चित सफलता मिलती है।

सबसे पहले अवस्थानुसार उपचार। प्रथम, शुरू के दिन से सात दिन तक, द्वितीय आठवें दिन से १२ वें दिन तक, तृतीय उसके बाद का काल क्रमशः नवीनावस्था या आमावस्था, मध्यमावस्था या पच्यमानावस्था और पुराणावस्था या निरामावस्था कहलाती है।

प्रारम्भिक अवस्था में लङ्घन ही हित कारण है, तो वात क्षय, भय एवं क्रोध से हुए ज्वरों में लंघन नहीं करना चाहिए। आमावस्था में लंघन अत्यन्त उपकारी है। क्योंकि इससे अग्नि प्रदीप्त होती है व दोषों का नाश होता है। इस अवस्था में औषधि का प्रयोग न करें। क्योंकि इस अवस्था में औषधि पाक नहीं हो पाती एवं लंघन के साथ स्वेद, काल प्रतीक्षा आदि करे। औषध ज्वर को प्रज्ज्वलित करती है।

द्वितीय अवस्था में प्रथमावस्था के लक्षण नजर आयें जैसे प्रथमावस्था में लालास्राव की अधिकता, जी मिचलाना, हृदय में गुरुता, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, खाये गये आहार का तथा दोषों का पाक न होना, मुख का स्वाद

जितना स्पष्ट रूप ज्वर–रोग में प्राप्त होता है वैसा किसी अन्य रोग में नहीं होता। अनेक आचार्यो ने ज्वर के प्रसङ्ग में ही इन तेरह भेदों का उल्लेख लक्षण एवं चिकित्सा सहित किया गया है, परिणामस्वरूप एक ऐसा प्रचलन और आम धारण हो गई कि ज्वर के प्रसङ्ग में ही १३ सन्निपात होते है। जबकि वस्तु-स्थिति यह है कि सन्निपात के ये भेद किसी भी रोग में हो सकते हैं, लेकिन इनका भेद करना बड़ा कठिन है। अतः उपयोगिता और धारणा के अनुरूप त्रयोदश सन्निपात का ज्वरप्रकरणानुगत चिकित्सा सिद्धांत उल्लिखित किया जा रहा है।

चिकित्सा सिद्धान्त—

उपर्युक्त त्रयोदश सन्निपात वृद्ध दोषों के सन्निपात हैं, इसी तरह क्षीण दोषों के भी तेरह सन्निपात होते है लेकिन उनका उल्लेख यहां इसलिए नहीं किया जारहा, क्योंकि रोग वृद्ध दोषों से ही होते है,[1] अतः चिकित्सा भी विशेषेण उन्हीं की करनी है, क्षीण दोष तो अपने लक्षणों को छोड़ देते है लेकिन रोग उत्पन्न नहीं कर सकते। वस्तुतः क्षीण दोषों को तदनुकूल द्रव्यों के सेवन से वृद्ध करके साम्यावस्था में तो लाया ही जाता है तथा 'रोगस्तु दोषवैषम्यम्' के अनुसार दोष का वैपम्य ही रोग है, अतः क्षीण सन्निपात के स्वरूप को भी रोग मानना चाहिए। इस प्रकार का एक प्रश्न उपस्थित होता है, लेकिन यह विषयान्तर होने से इसका उल्लेख ही पर्याप्त है। प्रकृत विषय तो यही है कि वृद्ध त्रयोदश सन्निपात प्रकारों की चिकित्सा क्या है? इसका उत्तर देने से पहले सन्निपात ज्वर को दो भागों में विभक्त करलें तो सुविधा रहेगी—

१—द्वयुल्वणादि १२ सन्निपात।

२—समसन्निपात।

कुछ आचार्य पूर्व के १२ सन्निपातों को प्रकृति समसमवायात्मक तथा सम सन्निपात को विकृति विपम समवायात्मक मानते है, लेकिन इस प्रकार का भेद यहां न भी करें या कर भी लें तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि चिकित्सा सिद्धान्त तो स्पष्टरूपेण दो भागों में निर्दिष्ट है तथा यहाँ विवेच्य विपय भी वही है।

१—द्वयुल्वणादि १२ सन्निपात का चिकित्सा सिद्धांत—

इन १२ सन्निपातों के भी सुविधा के लिए दो भागों में विभक्त करलें (क) हीन वृद्धस्थिति (ख) अधिक वृद्धस्थिति। यह स्पष्ट है कि सन्निपात में सभी दोष बढ़े हुये होते है फिर भी यहां हीन और वृद्ध का तात्पर्य एक दूसरे से तर-तमत्व है।

(क) हीन वृद्धस्थिति—सन्निपात में जिन दोषों की हीन स्थिति है उनके लिये चिकित्सा सूत्र है—'वर्धनेनैक दोपस्य[2]" अर्थात् जो हीनस्थिति में है उसे बढ़ाया जाना चाहिए। प्रथक-प्रथक रूप से निर्दिष्ट सभी बारह भेदों में एक या दो दोष हीन वृद्धस्थिति में है अतः ऐसे सभी दोपों को चाहे वह एक है या दो है अभिवृद्ध किया जाना चाहिए। लेकिन एक साथ दोपो का वर्धन असम्भव होने के कारण इस चिकित्सा सूत्र से द्वयुल्वण के ३ भेद तथा हीनमध्याधिक के ६ भेदों की चिकित्सा होती है। इस प्रक्रिया में इस प्रकार की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए कि जो द्रव्य हीनवृद्ध दोप की वृद्धि करे वही उसी समय वृद्धतम दो दोपों के विरुद्ध होने से उनका क्षपण करे यथा—

१—वृद्ध कफ और वृद्धतर वातपित्त के लिये मधुर रस का प्रयोग करने पर कफ और बढ़ेगा, लेकिन यही मधुर वातपित्त का क्षपण करेगा। यहां कफ की वृद्धि करने पर भी बलवान् दोप वातपित्त का क्षपण होने से ज्वर का नाश होगा।[3]

२—वृद्धवात और वृद्धतर कफपित्त में तिक्तरस का प्रयोग वही कार्य करेगा।

३—वृद्ध पित्त और वृद्धतर कफवात में उष्णवीर्य द्रव्यों का प्रयोग पित्त की अभिवृद्धि तथा कफवात का क्षपण करेगा।

---

1 लिङ्गं स्वं जहतीत्यनेन क्षीणानां प्रकृतिलिङ्गक्षयव्यतिरिक्तं विकार—कर्तृत्वं नास्तीति दर्शयति, यतो वृद्धा उन्मार्गगामिनो दोषा दूष्यं दूषयन्तो ज्वरादीन् कुर्वन्ति त क्षीणाः, स्वयमेव दुःस्थितत्वात्। (च सु. १७/६२ पर चक्रपाणि)

2 तत्र वर्धनेनैकदोषस्येत्यनेनैक दोषस्य वर्धनेनापीत्यर्थः एकशब्देन च द्वित्रिवृद्धो दोष एवापेक्षितो न वृद्धतरो नापि वृद्धतमः तयोर्हि अतिवृद्धयोर्वर्धनेनातिमात्र वृद्धान्याऽत्याहितमेव स्यात्। (च. चि. ३/२८६ पर चक्रपाणि)

3 वृद्ध कफे वृद्धतरयोश्च वातपित्तयोर्मधुरं, तद्धि वृद्धतरवातपित्तद्वय हन्तृतया कफं क्षीणं वर्धयदपि बलवद्दोष हन्तृतया हरति। (च. चि. ३/२८६ पर चक्रपाणि)

इसी तरह हीनमध्याधिक में भी औषध प्रयोग किया जाना चाहिए।

अधिकवृद्ध स्थिति—उपर्युक्त चिकित्सा एक दोष की अभिवृद्धि के लिये उपयुक्त है, लेकिन जहाँ दो दोष वृद्ध (हीन) है तथा एक दोष वृद्धतर स्थिति में है वहाँ दो दोषों की वृद्धि करने की अपेक्षा बढ़े हुए उस एक दोष का क्षपण ही अधिक श्रेयस्कर है क्योंकि दोष की अभिवृद्धि के साथ-साथ बढ़े हुए दोष का क्षपण भी 'वर्धनेनैकदोषस्य' की प्रक्रिया में निहित है तभी तो बलवान् दोष की क्षीणता से ज्वर का हनन होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से बलवान् दोष का क्षपण आवश्यक है। अतः एकोल्वण सन्निपात में 'क्षपणेनोच्छ्रितस्य च' कहना पड़ा अर्थात् बढ़े हुए एक दोष का क्षपण करना चाहिए। यहाँ भी 'वर्धनेनैकदोषस्य' की विपरीत प्रक्रिया होगी अर्थात् वृद्धतम एक दोष का क्षपण करने वाली भेषज वृद्ध दो दोषों का अभिवर्द्धन करेगी[1]। यहाँ महात्यय कारी वृद्धतम दोष का प्रत्यक्ष रूपेण क्षपण है जबकि पहली प्रक्रिया मे परोक्ष रूप से महात्ययकारी दोषों का क्षपण होता है। यह बात चक्रपाणि के इन शब्दों से स्पष्ट होजाती है—'क्षीणं वर्धयदपि ज्वरं बलवद्दोष हन्तृतया हरित'।

इस प्रकार से 'वर्धनेनैक दोषस्य' द्व्युल्वण ३ तथा हीनमध्यादि ६ की चिकित्सा तथा "क्षपणेनोच्छ्रितस्य" से एकोल्वण ३ की चिकित्सा हो जाती है।

दोष पूर्ण चिकित्सा—

यद्यपि उपर्युक्त चिकित्सा क्रम में अन्तिम रूप से तो वृद्ध दोष का क्षपण करके ही ज्वर का शमन अभीष्ट है। लेकिन इस प्रक्रिया में दोषों को अभिवृद्ध करना शुद्ध चिकित्सा नही है। तथापि सन्निपात-चिकित्सा में दूसरी कोई गति नहीं होने से यह क्रम दोषपूर्ण होते हुए भी ग्राह्य है।[2] क्योंकि वृद्धतम दोष अप्रतिकृत होने के कारण तत्काल रोगी की मृत्यु कर सकते है[3] अतः उनका क्षपण एकोल्वण में प्रत्यक्ष रूप से तथा द्व्युल्वणादि में परोक्ष रूप से किया जाता है। इस क्रम में जिन दोषों का अभिवर्द्धन किया जाता है वे हानि तो करते है, लेकिन अल्प। इसके साथ ही अभिवर्द्धन एक साथ न किया जाकर, क्रमशः करना चाहिए।

सम सन्निपात का चिकित्सा सिद्धान्त—

सम-सन्निपात की चिकित्सा के प्रसङ्ग में आचार्यों के चिकित्सा-सिद्धान्त में भिन्नता दिखाई देती है। वर्णन की इस भिन्नता के आधार पर हम इसे तीन तरह से विभक्त करके सामञ्जस्य कर सकते है—

१—वातपूर्वक चिकित्सा।
२—पित्तपूर्वक चिकित्सा।
३—कफस्थानानुपूर्वी चिकित्सा।

१. वातपूर्वक चिकित्सा—सभी दोषों में वात का प्राधान्य है तथा रोगोत्पत्ति में भी वात की प्रमुख भूमिका रहती है, इसीलिये 'पित्तं पंगुः कफः पंगुः' आदि में स्पष्ट कहा गया है कि दोष कोई सा भी प्रकुपित हो उसे गति-प्रदान वायु ही करती है। अतः चिकित्सा में भी सर्व प्रथम वायु का अवजयन करके ही अन्य दोषों का क्षपण करना चाहिये। सभी सन्निपात रोगों की चिकित्सा का क्रम निर्धारित करते हुए आचार्य चरक ने कहा है कि—

वातस्यानुजयेत् पित्तं, पित्तस्यानुजयेत् कफम्।
त्रयाणां वा जयेत् पूर्वं यो भवेद्बलवत्तमः॥
(च. चि. १९।१२)

यह चिकित्सा क्रम अतिसार के प्रसङ्ग में कहा गया है, लेकिन सभी सन्निपातज रोगों में यह क्रम विधेय है। इसमें स्पष्ट करते हुए आचार्य चक्रपाणि लिखते है कि यह निराम सन्निपात की चिकित्सा का क्रम है। साम सन्निपात में तो पहले आम की ही चिकित्सा करनी चाहिये तथा यह क्रम सम सन्निपात का है। विषम सन्निपात में से जो दोष बलवान हो उसी की चिकित्सा करनी चाहिए। अतः

---

1 क्षपणेनैकदोषस्येत्यनेन च क्षीणद्वयसवर्धकमपि यन्महात्ययवृद्धतरवृद्धतमदोषक्षकरं भवति तद्भेषजं कर्तव्यम्।
(चक्रपाणि)

2 तथाऽपि सन्निपात चिकित्सायां गत्यन्तरासंभवे नति अल्पदोषसहगुणतया क्रियत इति ज्ञेयम्।
(च चि.३/२८६ पर चक्रपाणि)

3 ....वृद्धतमो ह्यप्रतिकृतः सद्यो हन्ति, तत्प्रतिक्रियायां च क्षीणयोर्वृद्धिरल्पात्यया, सा क्रमेण प्रतिकर्तव्येति भावः।
(चक्रपाणि)

'त्रयाणां वा जयेत्'...से यह स्पष्ट हो गया कि द्वयुल्वणादि की चिकित्सा में जो 'वर्धनेनैकदोषस्य...' की व्यवस्था की है, वह बलवत्तम दोष की चिकित्सा होने से 'वातस्यानुजयेत्...' से विरुद्ध नही है। सम सन्निपात की चिकित्सा में जो विरोध है उसका स्पष्टीकरण 'कफस्थानानुपूर्वी' के प्रसङ्ग में आगे कर दिया जायगा। यहाँ इतना स्पष्ट है कि ज्वर में वातानुपूर्वी चिकित्सा नही होगी।

२ पित्तपूर्वक चिकित्सा—ज्वर मे प्रथम प्रकार के चिकित्सा क्रम का समर्थन कोई भी आचार्य नही करता। लेकिन पित्तपूर्वक चिकित्सा के क्रम का आचार्य सुश्रुत ने प्रबल समर्थन किया है। उन्होंने लिखा है कि—

शमयेत् पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु।
दुर्निवारतरं वद्धि ज्वरार्तेषु विशेषतः॥—सु. चि. ३९

यहाँ दृढ़तापूर्वक कहा है कि सन्निपात-ज्वरों मे सर्व प्रथम पित्त का ही अवजयन करें। एक दृष्टि से यह उचित भी है क्योंकि ज्वर में पित्त का प्राधान्य है। आचार्य वाग्भट्ट ने स्पष्ट कहा है कि 'ऊष्मापित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा बिना' अर्थात् पित्त के विना ऊष्मा नही हो सकती तथा ज्वर ऊष्मा के बिना नही हो सकता, अतः ज्वर में पित्त विकृति का निश्चित सम्बन्ध है। आचार्य चरक भी पित्त की प्रधानता सूचक-वाक्यों से संकेत देते है कि पित्त का प्राधान्य है तथा—

(क) ज्वरस्त्वेक एवं सन्ताप लक्षणः। (च. नि. १।३२)
(ख) ज्वरप्रत्यात्मिकं लिंगं सन्तापो देहमानसः।
ज्वरेणाविशता भूतं न हि किञ्चिन्न तप्यते॥
(च. चि. ३।३१)
(ग) रूक्षं तेजो ज्वरकरम्.........(च. चि. ३।२१७)

अन्य और भी कई उद्धरण ऐसे हैं जिनसे ज्वर मे पित्त का प्राधान्य सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति मे प्रधान रूपेण विकृत पित्त की ही चिकित्सा सर्व-प्रथम विधेय होने कारण सुश्रुत का मन्तव्य युक्ति युक्त प्रतीत होने से ग्राह्य है लेकिन इसमें यह अवधेय है कि इस चिकित्सा में पित्त की सामता नही होनी चाहिये जबकि प्रारम्भिक अवस्था में सामता अवश्यम्भावी है। दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि सभी आचार्य इस बात मे एक मत हे कि 'स्थानं जयेद्धि पूर्वंतु' अर्थात् पहले स्थान का अवजयन करना चाहिए। इन दोनों बातों को देखते हुए यह स्पष्ट होजाता है कि आचार्य सुश्रुत द्वारा निर्दिष्ट यह चिकित्सा जीर्ण सन्निपात की है नवीन की नही। अतः चरक के मत से विभेद नही हुआ।

३. कफस्थानानुपूर्वी चिकित्सा—सम सन्निपात की चिकित्सा का क्रम निर्दिष्ट करते हुए आचार्य चरक लिखते है कि—

कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपात ज्वर जयेत्।

अर्थात् समसन्निपात की चिकित्सा में कफस्थानानुपूर्वी चिकित्सा करनी चाहिए। यहाँ आचार्य ने स्पष्टतः कफानुपूर्वी चिकित्सा का निर्देश न कर के कफस्थानानुपूर्वी कहा है। इसका कारण यह है कि ज्वर आमाशय समुत्थ है तथा आमाशय कफ का स्थान है। अतः किसी भी दोष के प्रकोपान्तर ज्वर उत्पन्न होगा तो स्थान के वैशिष्ट्य के कारण इसमे कफानुबन्ध अवश्य होगा। दूसरी बात यह है कि आमाशयगत किसी भी दोष की चिकित्सा करने से पहले आमाशयस्थित स्थायी दोष का अवश्य ध्यान रखना पड़ेगा। इसीलिये स्पष्टरूपेण कहा गया है कि—'अन्यस्थानगतं दोषं स्थानिवत् समुपाचरेत्' अतः पित्त का प्राधान्य ज्वर में स्वीकृत कर लेने पर भी सर्व-प्रथम पित्त का अवजयन न कर के लङ्घन-पाचनादि द्वारा या अन्य प्रक्रिया द्वारा आम और कफ का क्षपण अवश्य करना पड़ेगा। इसी बात को आचार्य भेल ने स्पष्ट किया है कि—

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादामकफापहम्।
पश्चाद्श्लेष्मणि संक्षीणे शमयेत् पित्तमारुतौ॥

अर्थात् सन्निपात ज्वर मे पहले आम और कफ का अपनयन करना चाहिए इसके बाद ही पित्त और मारुत का शमन करे।

आचार्य चरक के 'कफस्थानानु०' की व्याख्या करते हुए चक्रपाणि लिखते है कि समसन्निपात में सभी दोष समान स्थिति मे है तथा इनका ज्वरारम्भकत्व स्वरूप भी समान है फिर भी ये सभी दोष आमाशय को दूषित करके

[1] एव च समा अपि दोषा ज्वरारम्भका यस्मादामाशयं विशेषेण दूषयित्वा ज्वरं कुर्वन्ति, तस्मात् स्थानानुगुणेनैव ज्वरे प्रथमं चिकित्सा कर्तव्या। स्थानिदोषापेक्षया हि स्थानमेव प्रथमं चिकित्स्यम्। (चक्रपाणि)

ही रोग उत्पन्न करते हैं अतः स्थानानुसार चिकित्सा ही सर्व प्रथम करणीय है ।[1] स्थानी दोष की अपेक्षा स्थान आमाशय का ही प्राधान्य होने के कारण कफानुपूर्वी की अपेक्षा कफस्थानानु पूर्वी कहकर आचार्य ने स्थान के महत्व को भी प्रतिपादित कर दिया है क्योंकि–'संथानं जयेद्धि पूर्वं तु' की अनुपालना भी तभी होती है । इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि स्थान का अवजयन कर लेने पर अपने आप ही स्थानी-कफ का भी अवजयन हो जायगा क्योंकि चिकित्सा का स्वरूप तदनुरूप ही होगा ।

सामान्यतया सभी ज्वरों में पहले आम और कफ का क्षपण लङ्घन पाचनादि के द्वारा किया जाता है, लेकिन कभी-कभी विशेष परिस्थितियों में तथा वात की वलवत्तमता में लङ्घनादि न करके तदनुरूप चिकित्सा करनी पड़ती है । परन्तु समसन्निपात में कफस्थानानुपूर्वी चिकित्सा ही आवश्यक है इसलिए आचार्य को यह निर्देश करना पड़ा ।

समसन्निपात में कफस्थानानुपूर्वी चिकित्सा करते समय या करने के वाद जिस दोष की उल्वणता हो जाय उसकी चिकित्सा 'वर्धनेनैकदोषस्य क्षपणेनोच्छ्रितस्य च' के अनुसार करनी चाहिए ।

सार-संक्षेप—

१–सन्निपात ज्वर के त्रयोदश भेद हैं ।

२–द्व्युल्वण एवं हीनमध्याधिक का चिकित्सा क्रम—'वर्धनेनैकदोषस्य' है ।

३–एकोल्वणकी चिकित्सा—'क्षपणेनोच्छ्रितस्य' है ।

४–दोनों ही क्रमों में वलवत्तम दोष के क्षपण पूर्वक ज्वर का हनन है ।

५–समसन्निपात की चिकित्सा—'कफस्थानानुपूर्वी' है ।

६–समसन्निपात में स्थान के ग्रहण से ही स्थानी (कफदोष)का भी ग्रहण होजाने से तदनुरूप चिकित्सा होती है ।

७–कफ का क्षय हो जाने पर 'वर्धनेनैक०' के अनुरूप चिकित्सा की जाती है, अर्थात् कफ का क्षपण हो जाने पर पित्त और मारुत का अवजयन किया जाता है ।

पृष्ठ १०७ का शेषांश ।

कुटकी, कचूर, वासा पत्र, गडूची समभाग यवकुट करे । मात्रा १ तोला–क्वाथ बनाकर मधु मिलाकर पिलावें ।

(६) चातुर्भद्रिकावलेह—कायफल, पुष्करमूल, कर्कट श्रृंगी, पिप्पली २-२ ग्राम मात्रा में चूर्ण बनाकर मधु सह चाटे । बार-बार चटाने से लाभ होता है ।

(७) चतुर्भुज रस १ भाग, शृङ्ग भस्म ८ भाग, प्रवाल पंचामृत रस १६ भाग, विषम ज्वरांतक लोह आधा-भाग–इनको मिलाकर तुलसी पत्र स्वरस, धतूरे पत्र स्वरस, अद्रक स्वरस, कुमारी स्वरस में मर्दन कर २ रत्ती की वटी बनावें । मात्रा १ वटी मधुसह ।

(८) नाग गुटि मिश्रण—नाग गुटि आधा रत्ती, समीरपन्नग चौथाई रत्ती चौंसठ प्रहरी पिप्पली २ ग्राम । १ मात्रा मधुसह सेवन करे ।

(९) शीतभंजीरस (भै. र.) १ रत्ती की मात्रा में उष्ण पेय के साथ ।

(१०) महा ज्वरांकुश रस मात्रा १ रत्ती चाय के साथ या तुलसी पत्र में सेवन करें ।

(११) रत्नगिरि रस पिप्पली चूर्ण तथा मधु के साथ दिन में ३ बार चाटें ।

(१२) संजीवनी वटी—१-१ रत्ती अद्रक के रस या नागवल्ली के पान के रस में गर्म कर लें । यह कोष्ठबद्धता की हालत में नहीं देनी चाहिए ।

(१३) वनप्शादि क्वाथ (यूनानी) भी इसकी उत्तम औषधि है । प्रयोग इस प्रकार है—गुलवनप्शा, मुलहठी, मुनक्का काला, गावजुवां, खत्मी, उन्नाव, लिसोड़ा, खाकसीर इनमें उन्नाव, लिसोड़ा तथा मुनक्का ५-५ दाने लेवें । शेष औषधियां ३-३ माशा लेवें । यह १ मात्रा है । २ कप जल में ये औषधियां डालकर उवालनी चाहिए । फिर चतुर्थांश शेष रहने पर कपड़े में छानकर चीनी मिलाकर सुखोष्ण होने पर पीना चाहिए । यह दिन में २ बार ली जाती है ।

तुलसी योग—तुलसी पत्र १०, कालीमिर्च ५ दाना, अद्रक तीन माशा, लौंग ३ दाना, इनको मोटी कूटकर दुग्ध में मिलाकर लें । क्वाथ ऊपर लिखी विधि से वनावें ।

यह सत्य है कि आज की एन्टीवायोटिक्स औषधियां कफ को सुखाने में काम करती हैं लेकिन इनके प्रयोग से क्षणिक आराम मिलता है । पुनः दोष एकत्रित होने से रोग फिर से उभर आता है और रोगी को विस्तर में ले जाता है । अतः धैर्य से ही आयुर्वेदीय औषधिका प्रयोग करना चाहिए ।
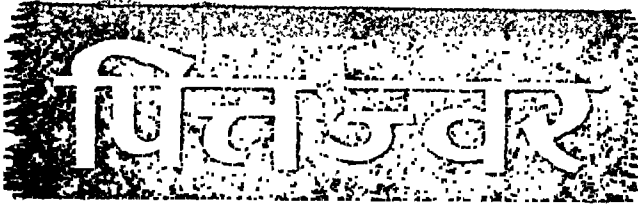
पित्तज्वर —एक विवेचन

वैद्यप्रवर श्री केदार नाथ अग्रवाल, जोधपुर।

सामान्यतः ज्वर एक उत्पीड़क संज्ञा है। मानव देह में ताप की वृद्धि ही ज्वर सूचक है जो तापमापक यन्त्र से भी जानी जाती है। ज्वर की उत्पत्ति क्रोध से मानी गई है—[1] अतः क्रोध पित्तजनक है। चरक के मतानुसार क्रोध से पित्त उत्पन्न होता है। अतः सम्पूर्ण ज्वरों में पित्त का उपस्थित रहना परमावश्यक है। तथा ज्वर की चिकित्सा करते समय कैसा भी ज्वर क्यों न हो पित्त उत्तेजक औषधियां नहीं देनी चाहिए। पित्त शामक ही देनी चाहिए। वाग्भट्ट ने भी कहा है पित्त विना गरमी नहीं होती तथा गरमी के विना ज्वर नहीं होता।

त्रिदोष के प्रथक प्रथक वर्गीकरण के अनुसार वात, पित्त तथा कफ दोष जिस ज्वर में प्रधान होता है उसे उसी दोष के नाम से पुकारा जाता है जैसे वात ज्वर, पित्त ज्वर, कफ ज्वर तथा अन्य ज्वर के कारणों में भी मिथ्या याने झूठे जिनकी जरूरत न हो ऐसे आहार तथा विहार के प्रयोग से तीनों दोष आमाशयमें जाकर रस को दूषित कर कोष्ठाग्नि की उष्णता को वाहर निकाल कर ज्वर को पैदा करते हैं। [2] यहां कोष्ठे की अग्नि लिखने से पित्त का भी उद्रेक होता है पित्त अग्नि स्वरूप ही है। पित्त ज्वर के पूर्वरूप में नेत्रों में जलन होना एक प्रधान लक्षण है।

आम दोष—ज्वर होते ही आम दोष प्रधान होते हैं। अतः उनका पाचन करना आवश्यक है। पित्त ज्वर में साम पित्त के लक्षण ये हैं—'अम्ल, दुर्गन्धित, हरा, भारी, खटाई खाने के समान कण्ठ और हृदय में दाह करने वाला, श्याम वर्ण युक्त, और स्थिर होता है। परन्तु जब इस साम पित्त का पाचन कर दिया जाता है तब पक्वावस्था में यह निराम हो जाता है—निराम पित्त के लक्षण ये हैं—

निराम दोष—इसका वर्ण लाल, वहुत गरम, चरपरा, सारक (दस्तावर), दुर्गन्धित, रुचिकारक तथा जठराग्नि और बल को बढ़ाने वाला होता है। पित्त ज्वर की चिकित्सा करते समय दोष की अंशांश कल्पना करना तथा तदनुसार ही चिकित्सा करना उत्तम है। इसी दृष्टि से उपरोक्त लक्षणों का अध्ययन आवश्यक है। पित्त ज्वर में प्यास अधिक लगती है परन्तु शीतल जल का पिलाना पित्तवर्धक है अतः निषेध है। क्वथित जल ठंडा कर थोड़ा थोड़ा पिलाते रहें। यही उत्तम है। औषधियों के क्वथित जल में तिक्त औषधियों का क्वथित जल उत्तम है।

आयुर्वेद शास्त्रों ने दोषों के पाक की अवधि भी बताई है। सामान्यतः पित्त ज्वर के पाक की अवधि दस रात्रि की है। इसलिये पित्त ज्वर में दस दिन लंघन कराकर औषधि देनी चाहिए।

सामान्य निर्देश—

पित्त ज्वर में ऊपर कहे अनुसार पित्तकारक आहार विहार करने से दुष्ट हुआ पित्त आमाशय में जाकर रस को दूषित कर कोठे की गरमी को वाहर निकाल कर ज्वर को उत्पन्न करता है। इस प्रकार कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि अन्य दोष मौन रहते हैं। एक दोष विकृत होकर अन्य दोषों को भी कुपित कर देता है—दोषों के संचालन में वायु का प्रधान कार्य है[3]। पित्त ज्वर होने के पूर्व नेत्रों में दाह प्रधान लक्षण है जो हम ऊपर बता आये हैं।

पित्त ज्वर में ज्वर का वेग तीक्ष्ण होता है। अतिसार तथा निद्रा आती है। वमन अधिक होता है। कण्ठ, ओष्ठ, नासिका, मुख सूखते हैं। प्रसेक होता है। रोगी प्रलाप भी करता है। मुख में कड़वापन, तिक्तता होती है। मूर्च्छा, दाह, मद, तृषा आदि लक्षण होते हैं। विष्ठा मूत्र, नेत्र पीले होते हैं। भ्रम होता है। पित्त में अतिसार भी पित्तयुक्त पतला होता है। पित्त ज्वर में नाड़ी की गति अति उग्र होती है।

---

[1] क्षतावमान संक्रुद्ध रुद्र निःश्वास सम्भवः।

[2] मिथ्या आहार विहाराभ्यांदोषा ह्यामाशयाश्रया। बहिर्निरस्य कोष्ठाग्नि ज्वरदाः स्यूरसानुगाः।

[3] पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगुवोमलधातवः। वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥

चिकित्सा –

पित्त ज्वर में उपवास आवश्यक है। सुश्रुत के मतानुसार पित्त ज्वर में दस रात्रि तक लंघन कराना चाहिये[4]। फिर तिक्त द्रव्यों का क्वाथ देना चाहिए—जैसे कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रयव, पाठा, कायफल आदि।

(१) गडूची सत्व, प्रवाल पिष्टी, सूतशेखर रस तीनों को समभाग मिलाकर दिन में तीन वार मधु के साथ देना उत्तम है। मात्रा १ ग्राम—इस योगको महाद्राक्षा स्वरस से भी दिया जा सकता है–द्राक्षा फाण्ट भी उपयोगी है।

(२) गडूच्यादि क्वाथ—गिलोय, चिरायता, सुगन्धवाला, खस, आवला, दाख, अडूसा, पित्तपापडा समानभाग यवकुट कर फिर १० ग्राम की मात्रा में क्वाथ वना कर शहद के साथ पीवे।

(३) पर्पटादि क्वाथ—पित्तपापड़ा, लाल चंचन, खस, सुगन्धवाला समान भाग-मात्रा १० ग्राम क्वाथ कर दिन में २ वार पीवे।

(४) द्राक्षादि क्वाथ—मुनक्का, हरडछाल, पित्तपापड़ा, नागरमोथा कूटकर अमलतास का गूदा समान भाग मात्रा १० ग्राम क्वाथ कर मिश्री मिलाकर पिलावे।

(५) पीपल वृक्षकी ऊपर की छाल ६० ग्राम जलाकर निर्धूम होजाने पर १ कि. पानी छोड़ कर मिट्टी के वर्तन में १ घंटा पड़ा रहने दें फिर मोटे कपड़े से छान कर रखलें। रोगी को प्यास लगने पर यही जल पिलावें।

(६) धनिया ३०ग्राम कूट कर सायं १५० ग्राम जल में मिट्टी के वर्तन में भिगोवे। प्रातः छान कर ५ ग्राम मिश्री मिलाकर ३-४ वार कर पिलावे।

(७) गोदन्ती भस्म २ भाग, प्रवालपिष्टी १ भाग, गडूची सत्व १ भाग मिलाकर—१ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ या अनार के रस में अथवा पित्तपाप या द्राक्षाड़े के हिम में पिलावे।

(८) चन्द्रकला रस मात्रा २ रत्ती दिन में ३ वार उपरोक्त अनुपान से देवे।

(९) ज्वराधिकता होने पर मस्तिष्क पर गीली पट्टी या वर्फ का सेक (ICE BAG) रखे या शतधौत अथवा सहस्रधौत घृत की मालिश पैरों की तली में या मस्तक पर करे।

(१०) ज्वरी को यदि उग्र ज्वर है तो कांसे के कटोरे में शीतल जल डाल या वर्फ डाल कर नाभि पर रखे। ज्वर तथा दाह तत्काल शांत होता है।

(११) रोगी को गीला वस्त्र ओढाकर पंखा चला दे ज्वर दाह शांत होता है।

तर्पण-संतर्पण—

दाह तथा कम्प से युक्त दुर्वल ज्वरी को धान्य की खीलों के सत्तू में मिश्री मिलाकर या शहद डाल कर पिलावे।

मूंग के यूष का भीगा हुआ भात चीनी मिलाकर खाने को दे।

भवन—पित्त ज्वर वाले को कूलर लगे हुए शीतल भवन में शयन करावे या ठंडे कमरे में जहां ठण्डी हवा आती हो सुलावे।

पित्त ज्वर के दाह का सामान्य उपचार—

खिले हुए कमलों वाली वावडी, शीतल सुन्दर फुहारे, शीतल घर, चन्दनादि लेपित स्त्री ये सव पित्त ज्वर तथा दाह को शांत करती हैं[5]। परन्तु इसमें स्त्री प्रसङ्ग का अवसर न आने दें।

पित्त ज्वर में पथ्य –

चन्दन, खस तथा गुलाव के फूलों को जल में पका कर (१किलोजल में ५०-५० ग्राम औषधियां डाल)क्वाथ १पाव पानी रहजाने पर छानकर यह पानी १पाव दूध में डालकर पकावें। जव दूध मात्र शेष रह जावे तव ठंडा कर रोगी को पिलावे। यव की खीलें वनाकर उसे पिसवाले। फिर यह यव सत्तू-जल या दूध में डाल कर मिश्री मिलाकर पिलावे।

मूंग की दाल को उवाल कर खूव सीज जाने पर उसे उतार कर ठंडा कर खिलावे।

चावल को चौदह गुना जल में पकावे। चुर जाने पर मांड निकाल लेवें। फिर इस प्रकार वनाया गया भात मधुर और लघु होता है।[6] ऐसा शार्ङ्गधर का मत है।

शाकों में परवल,करेला,पाठा, पुनर्नवा,चौलाई, वथुवा, मूली, पित्तपापड़ा की पत्ती, टमाटर, तथा गुर्चा की पत्ती आदि लाभप्रद हैं।

ज्वर मुक्त होने के वाद निम्न कर्म त्यागे—

व्यायाम, अधिक श्रम, मैथुन, वार-वार स्नान, घूमना-फिरना, जव तक रोगी दुर्वल रहे न करे।

---

[4] पैत्तिक दशरात्रेण ज्वरे युञ्जीत भेषजम।

[5] वाप्यः कमल हारिण्यो जल यन्त्र ग्रहा शुभाः। नार्यश्चन्दनादिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्य हरा मता॥

[6] जले चतुर्दश गुणे तण्डुलाना चतुष्पलम्। विपचेत् स्रावयेन्मण्डं स भक्तोमधुरो लघुः॥

श्रीमती मीनादेवी, जोधपुर ।

चरक के मतानुसार स्निग्ध, गुरु, मधुर, पिच्छल, शीत, अम्ल और लवण पदार्थो के सेवन से ग्रीष्म ऋतु के सिवाय अन्य ऋतुओं में दिन में सोने से, आराम की जिन्दगी बसर करने से, *व्यायाम* न करने से कफ प्रकुपित होकर विपरीत परिस्थितिओं में आमाशय में पहुंच कर जठराग्नि के साथ मिलकर रसधातु का अनुगमन कर रस-वह स्रोतस् को अवरुद्ध कर स्वेदवाही स्रोतों को आवृत कर अग्नि को पक्ति स्थान से हटाकर या मन्द कर जाठराग्नि की उष्णता को, त्वचागत कर सम्पूर्ण शरीर में ताप उत्पन्न करता है।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि कफ सम्पूर्ण शरीर को एक साथ गर्म करता है। सिर से पैर तक सभी जगह एक सी गर्मी रहती है जो तापमापक यंत्र से नापी जा सकती है। कफ प्रकोप काल, भोजन के तुरन्त बाद, प्रातः समय, रात्रि के प्रथम प्रहर, वसन्त ऋतु। उपरोक्त लक्षणों के आधार पर कफ ज्वर का निर्णय किया जा सकता है।

अब ज्वरी के देह में वे लक्षण प्रकट होते है जो कफ विकृत होने पर देखे जाते है—वे हैं-देह का भारी होना, सिर में दर्द, अन्न खाने में अरुचि। मुख और नासिका से कफ आना, मुख का स्वाद मीठा होना। जी मिचलाना, छाती में कफ होना, शरीर गीले कपड़े से लिपटा हुआ सा मालूम होना। वमन, अग्निमांद्य, निद्रानाश, स्तब्धता, तन्द्रा, कास, श्वास, प्रतिश्याय, ठंड लगना, नख, नेत्र, मुख मूत्र, मल तथा देह की त्वचा का वर्ण श्वेत होना, शरीर में श्वेत पीड़िकायें होना, उष्ण पदार्थो के सेवन की इच्छा होना, कफ विकृति के जो आहार विहार ऊपर कहे गये है उनके करने से ज्वर का उत्तेजित होना, विपरीत पदार्थो के सेवन से आराम मिलना, रोम हर्ष, स्रोतावरोध, शरीर में पसीना अधिक न होना, ऊपर से शरीर अधिक गर्म प्रतीत होना, या ताप कम रहना, अन्न द्वेष आदि लक्षण दृष्टिगत होते हैं। किसी किसी आचार्य ने श्रुतरोधन (सुनने में अड़चन आना) लक्षण भी बताया है। माधवकार ने लवणास्यता कह कर मुख का स्वाद लवण बताया है जो मधुर स्वाद से भिन्नता दिखाता है परन्तु यह ऐसा नही है। वमन होते समय लवण युक्त जल जब मुख में आता है तो लवण स्वाद हो जाता है।

साधारणतः कफ ज्वर का पाक काल ११ दिन माना गया है। अधिक उग्र तथा ज्वर नाशक औषधि देने से यदि ज्वर का वेग उतर भी जावे तब भी रोगी में चंचलता तथा उत्साह नही पैदा होता। ऐसा होने में उपरोक्त अवधि लग जाती है। इसी दृष्टि से आयुर्वेद का महत्व स्वीकार किया जाता है। रोगी का बल घटता जाता है, आलस्य बढ़ता रहता है। इसी दृष्टि से कफ ज्वर की चिकित्सा भी शीघ्र काम नही करती इसमें धैर्य रखना आवश्यक है। कफ अति मंथर गति से चलने वाला दोष है।

चिकित्सा—

कफ ज्वर वाले रोगी की चिकित्सा करते समय लंघन आवश्यक है। उष्णपान या जल को गर्म कर सुहाता पीना चाहिए। अधिक आवश्यकता होने पर पानी में पीपर तथा सौंठ आदि डालकर या पका कर लेना चाहिए। वातावरण वस्त्र तथा निवास स्थान भी उष्ण रखना उपयुक्त है।

कफ ज्वर में भी अधिकतर उष्ण कटु तीक्ष्ण एवं रूक्ष औषधियों का सेवन लाभप्रद है।

( ) त्रिभुवनकीर्ति रस—चाय आद्रक-कालीमिर्च मिली हुई के साथ देना उपयुक्त है।

(२) मृत्युंजय रस (लाल)—उपरोक्त प्रकार से

(३) आनन्द भैरव रस—आर्द्रक-मधु के साथ।

(४) कल्पतरु रस—

(५) पटोलादि क्वाथ—परवल, आंवला, हरड़, बहेड़ा,

—शेष पृष्ठ ११२ पर देखें।

सन्निपात ज्वर

चिकित्सा सिद्धान्त

वैद्य श्री बनवारीलाल गौड़ भिषगाचार्य, आयुर्वेद-बृहस्पति, एम० ए०,
डिप्लोमा इन जर्मन, मौलिक सिद्धान्त विभाग—राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर (राज०)

रोग का निदानादि के माध्यम से सम्पूर्ण ज्ञान कर लेने के बाद उनका अपनयन करना ही आयुर्वेद का प्रधान लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति में धातुओं का साम्यापादन ही परिणामतः प्राप्त होता है। धातुओं की विषमता के अनेक प्रकार ही रोग के मूल हेतु हैं। इन्हीं वैषम्य-परक अवस्थाओं में सर्वाधिक जटिल और भयङ्कर स्थिति दोषों का एक साथ अभिवृद्ध होकर रोगोत्पत्ति करना है। दोषों की यह अवस्था सन्निपात कहलाता है जोकि अनेक रोगों को स्थान-संथान आदि के अनुरूप उत्पन्न करने में समर्थ है। यहां सन्निपात के एक ऐसे ही स्वरूप (जोकि ज्वर रूप में प्रकट होता है) का चिकित्सा सिद्धान्त उल्लखित किया जा रहा है।

सन्निपात —

रोगों के मान विकल्पज [1] भेदों का निर्देश करते समय आचार्य चरक ने वृद्ध सन्निपात के तेरह प्रकार लिखे हैं—

	द्वयुल्वण		एकोल्वण	
	वृद्ध	वृद्धतर	वृद्ध	वृद्धतर
१.	कफ	वातपित्त	वातपित्त	कफ
२.	वात	कफपित्त	कफपित्त	वात
३.	पित्त	कफवात	कफवात	पित्त

दो दोषों की उल्वणता से ३ भेद तथा एक दोष की उल्वणता से ३ भेद कुल ६ भेद तथा हीन मध्य और अधिक दोषों के सन्निपात से ६ भेद तथा समान रूप से वृद्ध वात-पित्तकफ रूपी सन्निपात का एक भेद-इस तरह कुल तेरह भेद हुए।

	हीन--वृद्ध	मध्य वृद्ध	अधिक वृद्ध
१.	वात	पित्त	कफ
२.	वात	कफ	पित्त
३.	पित्त	वात	कफ
४.	पित्त	कफ	वात
५.	कफ	वात	पित्त
६.	कफ	पित्त	वात

समसन्निपात—वातपित्तकफ समान रूप से बढ़े हुये।

द्वयुल्वण ३+एकोल्वण ३+हीनमध्याधिक से ६+ समसन्निपात १=१३ [2] दोषों की जटिल स्थिति के कारण भयङ्कर और दुश्चिकित्स्य हैं।[3] सन्निपात की ये अवस्थायें अनेक रोगों में हो सकती हैं तथा अपने स्वरूप के अनुरूप लक्षण उत्पन्न करती हैं। सन्निपात के इन भेदों का

[1] **समस्थानवृद्धयो दोषमान, तस्य विकल्पो दोषान्तर सम्बन्धासम्बन्ध कृतो भेदः (च. सू. १७/३ पर चक्रपाणि)**

[2] **द्वयुल्वणैकोल्वणैः षट् स्युर्हीनमध्याधिकैश्च षट्। समैश्चैको विकारास्ते सन्निपातास्त्रयोदश ॥ (च.सू. १७/४१)**

[3] **सन्निपातो दुश्चिकित्स्यानां। (च. सू. २५)**

सन्निपात ज्वर

वैद्य श्री सोमेश्वर शर्मा भिषगाचार्य
राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय, तवाव वाया भीनमाल (जालोर) राज०

ज्वर दोषों के विभिन्न लक्षणों के अनुसार एक दोषज, द्वन्दज तथा सान्निपातिक रूप धारण कर लेते हैं। सन्निपातिक ज्वर में तीनों दोष वात-पित्त तथा कफ की वृद्ध, वृद्धतर और वृद्धतम के अनुसार विभिन्न लक्षणों को उत्पन्न करते हैं। इन लक्षणों के अनुसार ही शास्त्रों में सन्निपातिक ज्वर के १३ भेदों का वर्णन किया हुआ है। चरक संहिता में सन्निपातिक ज्वरों के निम्न भेद महर्षि अग्निवेश नें वर्णन किये हैं—

(१) वातपित्तोल्वण मन्द कफ सन्निपातज ज्वर।
(२) वातकफोल्वण हीनपित्त सन्निपातज ज्वर।
(३) पित्तकफोल्वण हीनवात सन्निपातज ज्वर।
(४) वातोल्वण कफपित्तहीन सन्निपातज ज्वर।
(५) पित्तोल्वण कफवातहीन सन्निपातज ज्वर।
(६) कफोल्वण वातपित्तहीन सन्निपातज ज्वर।
(७) श्लेष्मोल्वण पित्तमध्य हीनवात सन्निपातज ज्वर।
(८) पित्तोल्वण मध्यकफहीनवात सन्निपातज ज्वर।
(९) वातोल्वण मध्यकफहीनपित्त सन्निपातज ज्वर।
(१०) कफोल्वण वातमध्य पित्तहीन सन्निपातज ज्वर।
(११) वातोल्वण पित्तमध्य कफहीन सन्निपातज ज्वर।
(१२) पित्तोल्वण वातमध्य कफहीन सन्निपातज ज्वर।
(१३) सम सन्निपातज ज्वर।

उपरोक्त प्रकार से १३ प्रकार के सन्निपातज ज्वर हैं उनके अलग अलग लक्षण निम्नानुसार हैं—

१. वातपित्तोल्वण मन्दकफ सन्निपातज ज्वर—इसमें भ्रम, प्यास, दाह, शरीर में भारीपन, शिर में अधिक पीड़ा—ये लक्षण पाये जाते हैं।

भ्रमः पिपासा दाहश्च गौरवं शिरसोऽतिरुक्।
वातपित्तोल्वणं विद्याल्लिंगं मन्दकफे ज्वर॥ च.चि.३

अन्यत्र ऐसे सन्निपातज ज्वर का नाम वक्षु रखा है। जिसमें विशेषतः ज्वर, मद, तृष्णा मुखशोष प्रमीलक, आध्मान, अरुचि, तन्द्रा, कास, श्वांस, भ्रम आदि लक्षण बताये है।

२. वातकफोल्वण हीनपित्त सन्निपातज ज्वर—इसमें शरीर में शीत लगता, कास, अरुचि, तन्द्रा, प्यास, दाह, शरीर में वेदना—यह लक्षण होते हैं।

शैत्यं कासोऽरुचिस्तन्द्रा पिपासा दाहरुग्व्यथाः।
वातश्लेष्मोल्वणे व्याधौ लिंगं पित्तावरे विदु॥

—च. चि. ३

अन्यत्र इस ज्वर का नाम शीघ्रकारी रखा है। यह शीघ्रकारी सन्निपातिक ज्वर असाध्य है तथा इसके होने पर २४ घण्टे में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

३. पित्तकफोल्वण हीनवात सन्निपात ज्वर—इसमें वमन, शरीर में शीत लगना, बार बार दाह, तृष्णा, मोह (मूर्च्छा), हड्डियों में पीड़ा ये सब लक्षण होते है।

छर्दिः शैत्यं मुहुर्दाहस्तृष्णा मोहोऽस्थिवेदना।
मन्दवाते व्यवस्यन्ति लिंगं पित्तकफोल्वणे।

—च. चि. ३

अन्यत्र इसका नाम भल्लु सन्निपातज ज्वर है।

४. वातोल्वण कफपित्तहीन सन्निपातज ज्वर—इसमें सन्धि, अस्थि और सिर में वेदना होती है, प्रलाप, शरीर में गुरुता, सिर में चक्कर आना, प्यास, कण्ठ, मुख का सूखना ये लक्षण होते हैं।

सन्ध्यास्थिशिरसः शूलं प्रलापो गौरवं भ्रमः।
वातोल्वणे स्याद् द्व्यनुगे तृष्णा कण्ठास्यशुष्कता॥

—च. चि. ३

अन्यत्र इसका नाम विस्फारक रखा गया है।

५. पित्तोल्वण कफवातहीन सन्निपातज ज्वर—इसमें मल और मूत्र एक वर्ण का वा रक्त मिला हुआ होता है। पसीना, प्यास, वल की हानि, मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं।

रक्तविण्मूत्रता दाहः स्वेदस्तृड् वलसंक्षय।
मूर्च्छाचेति त्रिदोषं स्याल्लिगं पित्ते गरीयसि॥

—च. चि. ३

६. कफोल्वण वातपित्तहीन सन्निपातज ज्वर—इसमें आलस्य, अरुचि, जी मिचलाना, दाह, वमन, वेचैनी, शिर में चक्कर आना, तन्द्रा, कास ये सव लक्षण होते हैं।

आलस्यारुचि हृल्लास दाहवम्यरति भ्रमैः।
कफोल्वणं सन्निपातं तन्द्राकासेन चादिशेत्॥

—च. चि. ३

अन्यत्र इसका नाम कम्पन रखा है।

७. श्लेष्मोल्वण, पित्तमध्य हीनवात सन्निपात ज्वर—इसमें प्रतिश्याय, वमन, आलस्य, तन्द्रा, अरुचि और अग्निमन्दता ये लक्षण होते हैं।

इसका अन्यत्र वैदारिक सन्निपात नाम रखा गया है।

प्रतिश्याय छर्दिरालस्यं तन्द्राऽरुच्यग्निमार्दवम्।
हीनवाते पित्तमध्ये लिंगं, श्लेष्माधिकं मतम्॥

—च. चि. ३

कोई आचार्य इस ज्वर के ठीक होने के उपरांत कर्णमूल में सुदारूण पिड़िका की उत्पत्ति होती है जो वैदारिक संज्ञा से सम्बोधित की जाती है तथा तीन दिन के वाद में औषधि व्यवस्था करना व्यर्थ होता है।

८. पित्तोल्वण मध्यकफ हीनवात सन्निपात ज्वर—इसमें हल्दी के रंग के समान पीला मूत्र और नेत्र लाल हो जाता है। दाह, तृष्णा, भ्रम और भोजन में अरुचि ये लक्षण होते हैं।

हारिद्रमूत्रनेत्रत्वं दाहस्तृष्णा भ्रमोऽरुचिः।
हीनवाते मध्यकफे लिङ्गं पित्ताधिके मतम्॥

—च. चि. ३

अन्यत्र इसका नाम याम्य सन्निपात रखा गया है।

९. वातोल्वण मध्यकफ हीनपित्त सन्निपात ज्वर—इसमें शिर में पीड़ा, कम्प, श्वांस, प्रलाप, वमन और भोजन में अरुचि ये लक्षण होते हैं।

शिरोरुग्वेपथुः श्वासा प्रलापश्छर्द्य रोचको।
हीनपित्ते मध्यकफे लिङ्गं स्यान्मारुताधिकेः॥

—च. चि. ३

अन्यत्र इसे क्रकच सन्निपात कहा गया है। वर्तमान समय में इसका मस्तिष्क सौषुम्निक ज्वर (Cerebrospinal Fever) में अन्तर्भाव हो सकता है।

१०. कफोल्वण वातमध्य पित्तहीन सन्निपात ज्वर—इसमें शीत लगना अथवा शीतपित्त का निकलना, शरीर में गुरुता (भारीपन), तन्द्रा, प्रलाप, हड्डियों में अथवा शिर में अत्यधिक वेदना का होना ये सव लक्षण होते है।

शीतको गौरवं तन्द्रा प्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक्।
हीनपित्ते वातमध्ये लिङ्गं श्लेष्माधिके विदुः॥

—च. चि. ३

अन्यत्र इसका नाम कर्कट सन्निपात रखा गया है।

११. वातोल्वण पित्तमध्य कफहीन सन्निपात ज्वर—इसमें श्वास, कास, प्रतिश्याय, मुखशोष और पार्श्व में अधिक पीड़ा का होना ये सव लक्षण होते हैं।

श्वासः कासः प्रतिश्याया मुखशोषोऽतिपार्श्वरुक्।
कफहीने पित्तमध्ये लिङ्गं वाताधिके मतम्॥

—च. चि. ३

अन्यत्र इसका नाम सम्मोहक सन्निपात रखा गया है।

१२. पित्तोल्वण वातमध्य कफहीन सन्निपात ज्वर—इसमें मल का भेदन, अग्निमन्दता, दाह, तृष्णा, भोजन में अरुचि और शिर में चक्कर आना ये सव लक्षण होते हैं।

वर्चोभेदोऽग्निदौर्वल्यं, तृष्णा दाहोऽरुचिर्भ्रमः।
कफहीने वातमध्ये लिङ्गं पित्ताधिके विदुः॥

—च. चि. ३

अन्यत्र इसका नाम पाकल सन्निपात वताया गया है।

१३. सम सन्निपात ज्वर—इसमें तीनों दोषों की उल्वणता होती है। इसमें मुख्यतः क्षण में दाह क्षण में शीत लगना, हड्डियों सन्धि प्रदेशों तथा शिर मे विशेषतः वेदना, आंखों से पानी वहना, नेत्रों का मलिन रक्त वर्ण तथा टेढ़ा होना, कर्ण में शब्दों के नहीं होने पर भी शब्द सुनाई देना, और कानों में वेदना होना, कण्ठ में शूक (कांटों) से आवृत होना प्रतीत होता है। तन्द्रा, मोह, प्रलाप, कास, श्वास, भोजन मे अरुचि, शिर मे चक्कर आना, जिह्वा जली हुई सी कृष्ण वर्ण की, स्पर्श में खुरदरी प्रतीत होती है। शरीर के अङ्ग अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। थूक में कफ के साथ रक्त और पित्त का निकलना, शिर को इधर उधर घुमाते रहना, कास, निद्रा का न आना, हृदय प्रदेश में पीड़ा

पसीना, मल और मूत्र बहुत दिनों के वाद में प्रवृत्ति होना तथा मात्रा में भी कम निकलते हैं। शरीर का अधिक कृश होना नहीं होता, कण्ठ से निरन्तर कबूतर के शब्द के समान अव्यक्त शब्द का निकलना, शरीर में कोथ या श्याम और रक्तवर्ण के मण्डल दिखाई देते है। गुरुता, तथा मुख, नाक कान आदि स्रोतों का पक जाना, उदर का भारी होना तथा दोपों का परिपाक देर से होना ये सब लक्षण विद्यमान होते हैं।

इसमें तीनों दोप (वात, पित्त तथा कफ) समान मात्रा में कुपित होते हैं।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थि सन्धि शिरोरुजा।
सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि दर्शने॥
सस्वनो सरुजो कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः।
तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिभ्रमः॥
परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वास्रस्ताङ्गता परम्।
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च॥
शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा।
स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः॥
कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कण्ठकूजनम्।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम्॥
मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च।
चिरात् पाकश्च दोषाणां सन्निपात ज्वराकृतिः॥

—च. चि. ३

अन्यत्र इसे कूटपालक सन्निपात कहा गया है।

सन्निपात ज्वर का प्रभाव सब धातुओं एवं अङ्गों पर पड़ता है। केशिकाओं का मार्ग अवरुद्ध हो जाने से मस्तिष्क में रक्त पर्याप्त मात्रा में नहीं पहुंच पाता अतः वह स्थान विकृत होजाता है, जिससे रोगी असम्वद्ध प्रलाप, करने लगता है। इसी प्रकार कभी मूर्च्छा भी आजाती है। श्वास की प्रवृति भी पाई जाती है। जिह्वा पर अंकुर निकल आते हैं कभी कभी सम्पूर्ण मुख और गला अंकुरवत् रचनाओं से परिपूर्ण हो जाता है, इससे रोगी को मुख द्वारा कोई वस्तु ग्रहण करने तथा बोलने में भी कष्ट होता है। वाणीकेन्द्र पर प्रभाव होने से भी मन्द वचनता या मूकता होती है। अवरुद्ध कण्ठ से कपोतकूजनवत् घुरघुर शब्द निकलता है।

कोठ की उत्पत्ति रक्त, कफ़ तथा पित्त के मिश्रण से होती है। इसमें खुजली की विशेषता रहती है और अल्पकाल मे ही उत्पन्न होकर विनष्ट भी हो जाता है।

दिन में निद्रा की अधिकता एवं रात्रि में निद्रानाश यह सन्निपात ज्वर का विशिष्ट लक्षण है। कफोल्वण सन्निपात में निद्रा सदा बनी रहती है, जबकि वातपित्तोल्वण सन्निपात में उसका सर्वथा अभाव रहता है। इसी प्रकार पित्तोल्वण सन्निपात में स्वेद का आधिक्य तथा श्लेष्मोल्वण में स्वेद का अभाव रहता है। गीत, नृत्य आदि लक्षण तीव्र तापजन्य मस्तिष्क विकृति के द्योतक हैं।

सन्निपातिक ज्वरों के अन्य मतों से भेद प्रदर्शन—

आयुर्वेद एक शाश्वत विज्ञान है। इसमें सदा से ही अन्वेषण होते रहे है। चरकसंहिता में १३ प्रकार के सान्निपातिक ज्वरों का वर्णन है। इसी के आधार पर दूसरे आचार्यो ने भी उनका नामकरण किया तथा विभिन्न लक्षणों का वर्णन किया है। भावमिश्र ने १६वी शताब्दी में भावप्रकाश ग्रन्थ में चरकोक्त लक्षणों तथा नामों का उल्लेख कर भालुकी तन्त्र की सहायक अन्य निम्न १३ भेदों का उल्लेख किंया है। जिनके नाम तथा लक्षण निम्नानुसार हैं—

(१) शीताङ्ग सन्निपात ज्वर

१. शीताङ्ग सन्निपात ज्वरस्य लक्षणम्—

१
हिम शिशिर शरीरा सन्निपात ज्वरी यः,
२ ३ ४ ५ ६
श्वसनक हिक्कामोह कम्प प्रलापैः
७ ८ ९ १० ११
क्लम बहुकफवातदाहभ्यङ्गपीड़ा स्वर विकृतिभिरार्तः
शीतगात्रः स उक्तः॥

(२) तन्द्रिक सन्निपात ज्वर

२. तन्द्रिकस्य लक्षणम्—

१ २ ३ ४ ५
तन्द्राऽतीव ततस्तृषाऽतिसरणं श्वासोऽधिकः कासरुक।
६ ७ ८
संतप्ताऽतितनुर्गले श्वयथुना सार्द्धश्च कण्डूः कफः।
९ १० ११ १२
सुश्यामा रसना क्लमः श्रवणयोर्मान्द्यश्च दाहस्तथा।
भजस्यात् स हि तन्द्रिको निगदितो दोषजयोत्थो ज्वरः॥

(३) प्रलापकसन्निपात ज्वर

३. प्रलापकस्य लक्षणम्—

१
यत्र ज्वरं निखिलदोष नितांत दोष—जाते प्रलापबहुलाः
२
३ ४ ५ ६ सहसोत्थिताश्च ।
कम्प व्यपायतन दाहविसंज्ञताः स्युर्नाम्ना प्रलापक
इति प्रथितः पृथिव्याम् ।

४. रक्तष्ठीविनो सन्निपातिक ज्वरस्य लक्षणम्—
१ २ ३
निष्ठीवो रुधिरस्य रक्तसदृश कृष्णंत नौ मण्डलं
४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
लौहित्वं नयने तृषाऽरुचिवमिश्वासातिसारभ्रमाः ।
११ १२ १३ १४ १५
आध्मानं च विसंज्ञता च पतनं हिक्काङ्गपीड़ा भृशं
रक्तष्ठीवन सन्निपातजनिते लिङ्गं ज्वरे जायते ॥

५. भुग्ननेत्र सन्निपातिक ज्वरस्य लक्षणम्—
१ २ ३ ४
भ्रशं नयन वक्रता श्वसन कास तन्द्रा भृशं,
५ ६ ७ ८
प्रलापमदवेपथु श्रवण हानि मोहास्तथा ।
पुरा निखिल दोषजे भवति यत्र लिङ्गं ज्वरे,
पुरातनचिकित्सकैः स इह भुग्ननेत्रो मतः ॥

६. अभिन्यास सन्निपातिक ज्वरस्य लक्षणम्—
दोषास्तीव्रतरा भवन्ति बलिनः सर्वेऽपि यत्र ज्वरे
१ २ ३ ४ ५
मोहोदतीव विचेष्टनो विकायता श्वासो भृशं मूकता ।
६ ७ ८ ९ १०
दाहश्चिवक्रणमाननस्य दहनो मन्दो बलस्य क्षयः
सोऽभिन्यास इति प्रकीर्तित इह प्राज्ञैर्भिषाग्निः पुरा ॥

७. जिह्वक सन्निपातिकज्वरस्य लक्षणम्—१
त्रिदोपजनिते ज्वरे भवति यत्र जिह्वा भृशं,
२ ३ ४
वृता कठिनकण्टकैस्तदनु निर्भरं मूकता ।
५ ६ ७ ८ ९
श्रुतिक्षति बलक्षति श्वसन कास सन्तप्तताः,
पुरातनाभिषग्वरास्तमिह जिह्वकं चक्षते ॥

८. सन्धिग सन्निपातिक ज्वरस्य लक्षणम्—
१ २ ३
व्यथाऽतिशयिता भवेच्छ्वयथु संश्रुता सन्धिषु,
४ ५ ६
प्रभूतकफता मुखे विगतनिद्रता कासरुक ।
७
समस्तमिति कीर्तितं भवति लक्षणं यत्रज्वरे,
त्रिदोपजनिते बुधैः स हि निगद्यते सन्धिगः ॥

९. अन्तक सन्निपातिक ज्वरस्य लक्षणम्—
१
यस्मिल्लक्षणमेतदस्ति सकलैर्दोषै रुदीते ज्वरेऽ—
२ ३ ४
जस्रं मूर्छाविधूननं सकसनं सर्वाङ्गपीड़ाऽधिका ।
५ ६ ७ ८ ९
हिक्कावास सदाह मोहसहिता देहेऽतिसन्तप्तता,
वैकल्पञ्च वृथा वचांसि मुनिभिः सकीर्तितः सोऽन्तकः॥

१०. रुग्दाह सन्निपातिक ज्वरस्य लक्षणम्—
१ २
दाहोऽधिको भवति यत्र तृषा च तीव्रा.
३ ४ ५ ६ ७ ८
श्वासप्रलाप विरुचि भ्रममोहपीड़ाः ।
९ १० ११
मन्माहनुव्यथनकण्ठरुजः श्रमश्च,
रुग्दाह संज्ञ उदितास्त्रिभवो ज्वरोऽयम् ॥

११. चित्तभ्रम सन्निपातिक ज्वरस्य लक्षणम्—
१ २ ३ ४ ५
गायति नृत्यति हसति प्रलापति विकृतं निरीक्षते मुह्यते ।
७ ८
दाहव्यथाभार्तो नरस्तु चित्तभ्रमे ज्वरे भवति ॥

१२. कर्णिक सन्निपातिक ज्वरस्य लक्षणम्—
१ २
दोषत्रयेण जनितः किल कर्णमूले, तीव्रा ज्वरे भवति तु
३ ४ ५ ६ ७ ८
श्वयथुर्व्यथाच । कण्ठगुहो वधिरता श्वसनं प्रलापः प्रस्वेद-
९ १०
मोहदहनानि च कर्णिकाख्ये ।

१३. कण्ठकुब्ज सान्निपातिक ज्वरस्य लक्षणम्—
१ २ ३ ४ ५
कण्ठः शूकशतवारुद्धवदतिश्वास प्रलापोऽरुचि—
६ ७ ८ ९ १०
दाहो देहरुजा तृषाऽपि च हनुस्तम्भः शिरोऽर्तिस्तथा ।
११ १२
मोहो वेपथुना सहेति सकलं लिंगं त्रिदोपज्वरे
यत्र स्यात् स हि कण्ठकुब्ज उदितः प्राच्यैश्चिकित्साबुधैः ॥

अन्यत्र भी सन्निपात ज्वर के दूसरे १३ नाम और बताये गए हैं । उनके नाम निम्नानुसार हैं—

१. कुम्भीपाक सन्निपात ज्वर ।
२. प्रलापि सन्निपातज्वर ।

३. अन्तर्दाह सन्निपात ज्वर।
४. प्रोणुर्वाव सन्निपात ज्वर।
५. दण्डपात सन्निपात ज्वर।
६. अन्तक सन्निपात ज्वर।
७. एणीदाह सन्निपात ज्वर।
८. हारिद्रक सन्निपात ज्वर।
९. अजघोष सन्निपात ज्वर।
१०. भूतहास सन्निपात ज्वर।
११. यन्त्रापीड़ सन्निपात ज्वर।
१२. संन्यास सन्निपात ज्वर।
१३. संशोषि सन्निपात ज्वर।

इन चरक वर्णित १३ सन्निपातों में प्रथम के १२ सन्निपात प्रकृतिसम समवाय के नियम से होते है, अतः अन्यत्र सुश्रुतादि ग्रन्थों में इनका वर्णन नहीं है। सन्निपात ज्वर में वताए गए लक्षण की दृश्यता नहीं है, पर इन लक्षणों से न्यून या अधिक लक्षण भी पाये जा सकते हैं।

सन्निपात ज्वरस्य भयंकरता—

नारायण एव भिषग् भेषजमेतेषु जाह्नवीनीरम्।
भैषज्यहेतुरेको नित्यं मृत्युञ्जयो ध्येयः॥

सभी सन्निपात ज्वरों में श्रीनारायण ही प्रधानरूप से वैद्य रह जाते हैं, औषधियों में केवल गंगाजल ही रह जाता है और आरोग्य होने के लिये एक मृत्युंजय भगवान शिवजी का ध्यानमात्र आधार रह जाता है। अर्थात् भयंकर होने से बड़ी कठिनता से रोगी के प्राण बचते हैं।

सन्निपात ज्वरान् कष्टानसाध्यानपरं जगुः

इसलिए संनिपात ज्वरों को वैद्य कष्टसाध्य और असाध्य वतलाते हैं अर्थात् संनिपात ज्वर सुख साध्य किसी भी हालत मे नहीं होता है।

पूर्वोक्त सन्निपातिक ज्वरों में से किसी एक का अपचार वा उपेक्षा करने से अन्यस्वरूप में वरिवर्तन होसकता है अथवा उपद्रवस्वरूप किसी भी एक प्रकार में दूसरे प्रकार भी उत्पन्न हो सकता है। अतएव इनकी अर्वाचीन पद्धति से वणत प्रचलित 'टायफाइड', 'निमोनिया', प्लेग आदि विभिन्न ज्वरो से तुलना करना ठीक नहीं है।

सन्निपातिक ज्वरों की साध्यासाध्यता—

दोषे विबद्धे नष्टेग्नौ सर्व संपूर्ण लक्षणः।
संनिपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्त्वतोऽन्यथाः॥
—च, चि, ३

दोषों के वद्ध हो जाने पर अर्थात् विकृत दोष शरीर के बाहर न निकलने पर और अग्नि नष्ट हो जाने पर तथा संनिपात ज्वर में जितने लक्षण वताये गए हैं वे सभी लक्षण उपस्थित हों तो संनिपात ज्वर असाध्य होता है।

विकृतदोष एवं मल मूत्र की प्रवृत्ति हो, अग्नि तीव्र हो और लक्षण अल्प हों तो कृच्छ्रसाध्य होता है।

अन्यत्र आचार्य संनिपात ज्वर किसी भी अवस्था में सुखसाध्य नहीं होता, इसलिए कहा है कि—

(१) "सन्निपातो दुश्चिकित्स्यानाम्"

भालुकि ने संनिपात को मृत्यु के समान माना है—

(२) मृत्युना सह योद्धव्यं संनिपात चिकित्सता।
यश्च तत्र भवेज्जेता सा जेताऽऽमयंसङ्कुले॥

सन्निपात ज्वरस्य कालमर्यादा—

सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशोऽपि वा।
पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा॥ सु.उ. ३९
सप्तमी द्विगुणा चैव नवम्येकादशी यथा।
एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च॥

वात प्रधान सन्निपात ज्वर सातवे दिन, पित्तप्रधान दसवें दिन तथा कफ प्रधान सन्निपात ज्वर बारहवे दिन अत्यन्त प्रवल होकर या तो शांत हो जाता है या रोगी को मार ही डालता है।

कभी कभी वात प्रधान चौदहवे दिन, पित्त प्रधान अठारहवें दिन और कफप्रधान सन्निपात ज्वर चौवीसवें दिन उतरता या मारता है। यह त्रिदोष की मर्यादा है। इसमें रोगी या तो स्वस्थ होने लगता है या मर जाता है।

त्रिदोष की इस मर्यादा में रोगी का जीवन या मरण दो बातों पर निर्भर है। यदि मल का पाक होता है तो रोगी वच जाता है और यदि धातुपाक हो जाय तो रोगी मर जाता है। इसलिए कहा है—

पित्तकफानिलवृद्धया दशदिवस द्वादशाहसप्ताहात्।
हन्ति विमुञ्चति वायु त्रिदोषजो धातुमलपाकात्॥

सन्निपातज्वरस्योपद्रव—

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः।
शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते॥
—च. चि. अ. ३

सन्निपात ज्वर के अन्त में कर्णमूल में एक भयंकर

शोथ हो जाता है। इससे कोई ही रोगी वचता है।

यह शोथ कर्णमूलिक नामक लाला ग्रन्थि (Prnotid gland) में होता है। कभी कभी पक भी जाता है और अच्छी उपर्युक्त चिकित्सा करने पर ठीक भी हो जाता है। कर्णमूलिक ज्वर (Mumps) में होने वाले कर्णमूलिक शोथ से यह शोथ भिन्न है।

कोई लोग "कश्चिदेव प्रमुच्यते" का अर्थ यह कहते हैं कि इस शोथ से कोई ही बचता है, प्रायः सभी को यह शोथ होता है। अतः इसे असाध्य भी नहीं मानते है। परन्तु वास्तव में यह असाध्य ही हैं, क्योंकि तन्त्रान्तर में भी कहा है—

ज्वरादितो वा ज्वरमध्यतो वा
ज्वरान्ततो वा श्रुति मूलशोथः।
क्रमेण साध्यस्त्वथ कृच्छसाध्तस्तथा-
प्यसाध्यः कथितो मुनीन्द्रैः॥

अर्थात् सन्निपात ज्वर के आदि में होने वाला कर्णमूल शोथ साध्य, मध्य में होने वाला कृच्छ्रसाध्य और अन्त में होने वाला शोथ असाध्य होता है।

सन्निपातस्यैव भेदमभिन्यास ज्वरमाह—

त्रयः प्रकुपिता दोषा उरःस्रोतोऽनुगामिनः।
बमाभिवृद्धया ग्रथिता बुद्धीन्द्रिय मनोगता॥
जनयन्ति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं दृढम्।
श्रुतौ नंगे प्रसूप्ति, स्यान्न चेष्टां कश्चिदीहते॥
न च दृष्टिर्भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने।
न घ्राणं न च संस्पर्शं शब्दं वा नैव बुध्यते॥
शिरो लोठयतेऽभीक्ष्णमाहारं नाभिनन्दति।
कूजति बुध्यते चैव परिवर्तनमीरते।
अल्पं प्रभाषते किञ्चिदभिन्यासः स उच्यते।
प्रत्याख्यातः स भूयिष्ठ, कश्चिदेवता सिद्धयति॥

प्रकुपित तीनों दोष उरःस्रोत में घूमते हुए आमदोष की अत्यधिक वृद्धि से ग्रन्थित होकर मन एवं ज्ञानेन्द्रियों पर प्रभाव डालकर अभिन्यास नाम के भयंकर ज्वर को उत्पन्न करते हैं। इससे रोगी कानों से सुन नहीं सकता, आंखों से देख नहीं पाता, किसी प्रकार की चेष्टा प्रिय नहीं होती, उसका घ्राणज्ञान, स्पर्शज्ञान तथा शब्दज्ञान नष्ट हो जाता है। रोगी सिर को वार-वार इधर उधर पटकता है। भोजन की इच्छा नष्ट हो जाती है, कबूतर के समान घुर्घुर शब्द करता है। उसके शरीर मे सुई के चुभने जैसी पीड़ा होती है। रोगी वार वार करवट वदलने की इच्छा करता है, वहुत कम वोलता है, इस भयंकर ज्वर को अभिन्यास कहते हैं। इस अवस्था से पीड़ित कोई रोगी वच पाता है, इसलिये इसको असाध्य कहा है।

इसको कोई लोग "हतौजस" भी कहते है। इस अवस्था में ओज का वहुत अंश नष्ट हो जाता है। कविराज गणनाथ सेन जी इसे तीव्र विपमयता (Sever Toxaemia) जन्य ज्वर या अतितीव्र ज्वर (Hyper pyoexia) भी कहते हैं। आन्त्रिक ज्वर की तीव्र विपमयता में भी ये लक्षण मिलते हैं।

सन्निपात ज्वर का चिकित्सा सूत्र—

एक दोप को वढ़ाकर और वढ़े हुए दोप को घटाकर अथवा कफ स्थान (कफ) के अनुसार चिकित्सा करते हुए सन्निपात ज्वर पर चिकित्सा द्वारा विजय प्राप्त कर सकते हैं।

वर्धनेनैकदोपस्य क्षपणेनोच्छ्रतस्य वा।
कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपातज्वरं जयेत्॥

सन्निपात ज्वर २५ प्रकार के माने जाते हैं, १३ सन्निपात वृद्ध दोषों से और १२ क्षीण दोषों से। इसमें क्षीण दोप प्रायः व्याधि उत्पन्न नहीं करते हैं, यदि उत्पन्न करते भी हैं तो वह कालान्तर में स्वयं शांत हो जाता है। अतः वृद्ध दोप से होने वाले १३ सन्निपातज्वर का चिकित्सासूत्र ऊपर वाला है। सन्निपात ज्वर के कारणभूत दोप वृद्ध, वृद्धतर, वृद्धतम होते है। एक दोप को वढ़ाकर चिकित्सा करने का तात्पर्य यह है कि यदि वात वृद्ध हो तो कटुकषाय रस का प्रयोग करे। इससे वृद्ध वात अधिक मात्रा में वढ़ जायगा और वृद्धतर कफ या पित्त या वृद्धतर पित्त या कफ अपने विपरीत गुण वाले रस के प्रयोग से शांत हो जायगा।

इस प्रकार एक दोप की प्रधानता से या दो दोप की प्रधानता से या क्षीण, मध्य, वृद्ध दोप से होने वाले १२ सन्निपात ज्वरों का चिकित्सासूत्र, वृद्ध एक दोप को वढ़ाना और वृद्धतर और वृद्धतम दोपों को कम करना है। तेरहवां समवृद्धदोप से होने वाले सन्निपात ज्वर में कफ स्थानानुपूर्वी चिकित्सा करनी चाहिए। कफस्थानानुपूर्वी का तात्पर्य कफ और ज्वर का उत्पादक स्थान आमाशय

के अनुसार (जिससे कफ और आमाशय की शुद्धि हो जाय ऐसी, चिकित्सा करनी चाहिए ।

सुश्रुत ने सन्निपात ज्वर का चिकित्सासूत्र भिन्न ही बताया है—

शमयेत्पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु ।
दुर्निवारतरं सद्धि ज्वरार्तेषु विशेषतः ॥
—सु. चि. ३९

इसके आधार पर कुछ लोग "कफस्थानानुपूर्वी" का अर्थ इस प्रकार करते हैं—कफ का स्थान (आमाशय) स्थान है, जिसका ऐसे पित्त की प्रथम चिकित्सा करनी चाहिए पर उनका यह अर्थ युक्तिसंगत नहीं लगता है। अतः सुश्रुत का मत जीर्ण सन्निपात की चिकित्सा की दृष्टि से और चरक का मत तप सन्निपात चिकित्सा परक होगा, ऐसा उचित प्रतीत होता है।

कर्णमूल शोथ की चिकित्सा—

कर्णमूल शोथ में शीघ्र ही जोंक आदि से रक्त का निकालना, घृत का पान, कफ और पित्त नाशक प्रमेह, नस्य और कवलग्रह द्वारा उसे शांत करना चाहिए।

स्रावसेचनैः शीघ्रं सर्पिष्पानैश्च तं जयेत् ।
प्रदेहैः कफपित्तघ्नैर्नावनैः कवलग्रहैः ॥

शोथ के उत्पन्न होते ही जौंक लगाकर रक्त निकालने के बाद कफ पित्त नाशक द्रव्यों से पकाया हुआ घृत मिला कर लेप लगाना चाहिए। इस शोथ का प्रभाव नासिका, मस्तिष्क और गले में भी पड़ता है अतः नासिका और मस्तिष्क की शुद्धि के लिए नस्य एवं गला और मुख की शुद्धि के लिए कफ पित्त नाशक कवल धारण करना चाहिए।

गैरिकादिलेप—

गैरिकं पांशुजं शुण्ठी वचाकटुककाञ्जिकैः ।
कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरे भृशम् ॥

गेरू, खारीनमक, सोंठ, दुधियावच, कुटकी इन सबों को समान भाग लेकर कांजी के साथ पीस कर सन्निपात ज्वर में उत्पन्न कान के शोथ पर लेप करने से भयङ्कर कर्णशोथ दूर हो जाता है।

कुलत्थादिलेप—

कुलत्थ कट्फले, शुण्ठी कारवी च समांशिकैः ।
सुखोष्णैर्लेपनं कार्य्यं कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥

कुलत्थी, कायफल, सोंठ, कलौंजी ये सब बराबर हिस्सों में पानी से पीसकर कुछ गरम करके कर्णमूल में बराबर लेप करने से शांती हो जाती है।

पथ्यम्—

पंचमूल्या लवीयस्या गुर्व्या ताभ्यो सधान्या ।
कणया यूषपेयाऽऽदिसाधनं स्याद् यथाक्रमम् ॥
वातपित्ते वातकफे त्रिदोषे श्लेष्मपित्तजे ॥

सन्निपातिक ज्वर में लघु और बृहत् दोनों पंचमूल से सिद्ध किये हुए जल में यूष, तथा पेया आदि बनाकर प्रयोग करना चाहिए।

यवागूः स्यात् त्रिदोषघ्नी व्याघ्री[१]दुःस्पर्श[२]गोक्षुरैः[३] ॥

छोटी कंटकारी जवासा गोखरू के साथ सिद्ध की गयी यवागू त्रिदोष को नष्ट करती है।

सान्निपातक ज्वर में चिकित्सा क्रम—

लङ्घनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ।
अवलेहोऽञ्जनश्चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥
सन्निपात ज्वरे पूर्वं कुर्य्यादामकफापहम् ।
पश्चाच्छलेष्मणि संक्षीणे शमयेत् पित्तमारुतौ ॥

सन्निपात ज्वर में प्रथम लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह तथा अञ्जन का प्रयोग करना चाहिए। पहले सन्निपात ज्वर में आम और कफ का शमन करना चाहिए। इसके बाद में पित्त और वायु को शान्त करने के लिए उपचार करना चाहिए। कहा भी है—

"श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्याद् व्याधौ त्रिदोषजे"

अर्थात् त्रिदोषजन्य व्याधि में सर्वप्रथम कफ का ही शमन करना चाहिए।

सन्निपात ज्वर में लंघन विधि—

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा ।
लंघनं सन्निपातेषु कुर्याद्वाऽऽरोग्य दर्शनात् ॥
दोषाणामेव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता ।
न हि दोषक्षये कश्चित् सहते लङ्घनादिकम् ॥

सन्निपात ज्वर में ३, ५ अथवा १० दिन वा जब तक आरोग्य न हो, तब तक लंघन कराना चाहिए। विषम दोषों की उपस्थिति तक लंघन करने में समर्थ होता है। दोषों के ठीक हो जाने पर कोई भी लंघन नहीं कर

सकता है। आम पाचन न हो तब तक लंघन करना चाहिए।

सन्निपातिक ज्वर में निष्ठीवन—

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं कटुकत्रयम् ।
आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः-पुनः ॥
तेनास्य हृदयाच्छ्लेष्मा मान्यापार्श्वशिरोगलात् ।
लीनोऽप्याकृष्यते शुष्को लाघवञ्चास्य जायते ॥
एतन्जि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥

कुछ गर्म आर्द्रक का रस लेकर उसमें सैंधा नमक, सोंठ, मिर्च और पीपर का चूर्ण मिलाकर गले पर्यन्त मुख में वार वार धारण करने के बाद थूकना चाहिये। इससे हृदय, मन्या, पसलियाँ, सिर तथा गले शुष्क होकर रुका हुआ कफ निकल पड़ता है। अतः ये अंग लघु हो जाते हैं। संधियों का दर्द, शरीर का दर्द, मूर्छा, कास, गले का रोग मुख तथा नेत्रों का भारीपन, जड़ता व्याधि दूर होती है। दोषों के अनुसार दो तीन चार वार यह निष्ठीवन करना चाहिये। संनिपात ज्वर में वहुत लाभदायक होता है।

सैंधवादि नस्य—

सैंधवं श्वेतमरिचं सर्षपं कुष्ठमेव च ।
बस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तंद्रानिवारणम् ॥

सैंधा नमक, सहिजन के बीज, सरसों, कूठ इनको बकरे के मूत्र में पीसकर नस्य देने से तन्द्रा दूर होती है।

शिरीषाद्यञ्जनम्—

शिरीषे वीज गोमूत्र कृष्णामरिच सैंधवैः ।
अञ्जनं स्यात् प्रबोधाय सरसोन शिला वचैः ॥

सिरस के बीज, गोमूत्र, छोटी पीपल, काली मिर्च, सेंधा नमक, लहसुन, शुद्ध मैनसिल तथा वच को वारीक पीसकर अञ्जन करने से चेतना पुनः लौट आती है।

अष्टांगावलेहिका—

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी ।
श्लक्ष्ण चूर्णी कृतश्चैतन्मधुना सह लेहयेत ॥
एषाऽवलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च कण्ठरोगं नियच्छति ॥

कायफल, पोकरमूल, काकड़ासिंगी, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवासा, कालाजीरा समान भाग लेकर कपड़छन चूर्ण बनाकर मधु के साथ चाटना चाहिए। इससे भयंकर सन्निपात ज्वर, हिचकी, दमा, खांसी तथा अन्य गले के रोग दूर होते हैं।

पञ्चमुष्टिकयूष—

यवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलक शुण्ठयोः ।
एकैक मुष्टिकमाहृत्य पचेदष्टगुणे जले ॥
पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्त कफापहः ।
शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासे क्षये ज्वरे ॥

यव, बेर, कुलत्थी, मूँग, मूली के टुकड़े एक एक मुष्टि (करीवन ४ तोले) लेकर अठगुने जल में पकाकर चतुर्थांशावशेष उतार कर छान लेना चाहिये और कई वार थोड़ा-थोड़ा कर पिलाना चाहिए। इससे वात, पित्त, कफ, गुल्म, थूक, श्वास, कास, धातुक्षय तथा ज्वर दूर होता है। वहुत उपयोगी योग है।

सन्निपात ज्वर में दशमूल की उपयोगिता—

उभयं दशमूलन्तु सन्निपात ज्वरापहम् ।
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ॥
पिप्पली चूर्ण संयुक्तं कण्ठ हृद् ग्रह नाशनम् ॥

लघु तथा वृहत् दोनों दशमूल सन्निपात ज्वर को नष्ट करता है। कास, श्वास, तन्द्रा तथा पार्श्वशूल में अधिक लाभप्रद है। छोटी पीपल के चूर्ण के साथ गले तथा हृदय की स्तब्धता को दूर करता है।

भार्ग्यादि क्वाथ—

भार्गी पुष्करमूलञ्च रास्नां विल्वं यमानिकाम् ।
नागरं दशमूलश्च पिप्पलीश्चाप्सु साधयेत् ॥
सन्निपात ज्वरे देयं हत्पार्श्वानाह शूलिनाम् ।
कास श्वासाग्नि मन्दत्वं तन्द्राञ्च विनिवर्तयेत् ॥

भारंगी, पोकरमूल, रास्ना, वेल की जड़ की छाल, अजवायन, सोंठ, दशमूल, छोटी पीपल इनका क्वाथ पीने से सन्निपात ज्वर, हृदय तथा पसलियों का दर्द, अफारा शूल, खांसी, दमा, अग्निमांद्य तथा तन्द्रा दूर होती है।

कण्ठरोधादि चिकित्सा—

कण्ठरोध कफ श्वास; हिक्का संन्यासपीड़ितः ।
मातुलुङ्गार्द्र करसं दशमूलम्भसा पिबेत् ॥

गले के अवरोध, कफ, दमा, हिचकी, तथा अभिन्यास ज्वर से पीड़ित व्यक्ति के लिये दशमूल का काढ़ा, बिजौरा निम्बू और आदी का रस मिलाकर देना चाहिए।

स्वेद बाहुल्य चिकित्सा—

"स्वेदोद्गमे ज्वरे देयश्चूर्णो भृष्टकुलत्थजः ॥"

अधिक पसीना आने पर भुनी हुई कुलथी का चूर्ण पसीना के स्थान पर छोड़ना चाहिये।

जिह्वादोष चिकित्सा—

घर्षेज्जिह्वां जदां सिन्धुत्र्यूषणैः साम्लवेतसैः ।
उच्छुष्कां स्फुरितां जिह्वां द्रक्षया मधुपिष्टया ।।
लेपयेत् सघृतञ्चास्यं सन्निपातात्मके ज्वरे ।।

सन्निपात ज्वर में यदि रोगी की जीभ स्तब्ध हो गई हो तो उसके ऊपर सैन्धा नमक, सोंठ, मिर्च, पीपर, अमलतास का गूदा इनसे बने हुये चूर्ण को रगडना चाहिये । बाद में मधु के साथ पिसे हुये मुनक्का का लेप करना चाहिये ।

निद्रानाश चिकित्सा—

"काकजङ्घाजटा निद्रां जनयेच्छिरसि स्थिता ।"

काकजंघा की जड़ को बारीक पीस कर शिर में प्रलेप करने से नींद आती है ।

सन्निपाते विशेष व्यवस्था—

सन्निपाते प्रकम्पन्तं प्रलपन्तं न बृंहयेत् ।
तृष्णादाहाभिभूतेऽपि न दद्याच्छीतलं जलम् ।।

सन्निपात ज्वर में काँपते तथा प्रलाप करते हुये रोगी का बृंहण औषधों द्वारा उपचार करना उचित नहीं है । उसे चाहे कितनी भी प्यास लगे फिर भी शीतल जल नहीं पिलाना चाहिये ।

सन्निपात ज्वर में उपयोगी औषधियां—

सन्निपात ज्वर में निम्न उपयोगी रस तथा अन्य औषधियाँ यथासमय तथा यथा उपस्थित लक्षणों के अनुसार प्रयोग करना चाहिये । लक्ष्मीनारायण, सूतशेखर, त्रिभुवनकीर्ति, महाज्वरांकुश, महामृत्युञ्जय, लक्ष्मीविलासगुठिका, चन्द्रकला ।

अनुपान—अद्रकरस और शहद एवं तुलसी रस ।

पथ्य—लंघन, दूध, मौसमी रस, अनार, पतला अन्न तपाकर ठंडा किया हुआ जल तथा विश्राम ।

अपथ्य—भोजन, ठंडा पानी, व्यायाम, चिन्ता ।

कफोल्वण सन्निपात में—

रस सिन्दूर, पंचसूत, कर्पूरादि वटी, समीरपन्नग, चन्द्रकला, मृगश्रृंगभस्म, सितोपलादि चूर्ण. वासावलेह, द्राक्षारिष्ट, लक्ष्मीविलास गुटिका, मल्ल सिन्दूर, दशमूलारिष्ट, अभ्रक भस्म ।

विशेष औषधियाँ—

सुवर्ण भस्म, (औ. गु. सा,) कस्तूरी भैरव (आ ग्रंथ रस. यो. सा.) सन्निपात भैरव (र. यो. सा.) सुवर्ण सिन्दूर (भै. र.) वृ. ब्राह्मीवटी, महानारायण तैल (शार्ङ्गधर) ब्राह्मी तैल (वृ. वै.) निद्रोदय रस (रस. सा.)

शीतांग सन्निपात—अचिन्त्यशक्ति रस ।

हृदय रक्षणार्थ–पूर्ण चंद्रोदय रस (मकरध्वज)—(रस सा.) हेमगर्भपोटली रस (रस सा.)

बेहोशी शमनार्थ–संचेतनी गुटिका, सूचिकाभरण रस ।

ज्वर मुक्ति लक्षणम्—

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः
पाको मुखे करणसौष्ठव्यव्यथत्वम् ।
स्वेदः क्षवः प्रकृति गाभिमनोऽन्न लिप्सा
कण्डूवलमूर्ंहिम विगत ज्वर लक्षणानि ।।

सन्तत ज्वर की दुस्सहता

जिस तरह से वलवान राजा के सामने, हृदय में विरोधी भाव रखने वाला दूसरा राजा भी ठीक प्रकार का आचरण करता है उसी प्रकार काल की विभिन्नता, दूष्यों की विविधता, प्रकृति की प्रथकता आदि सभी, सन्तत ज्वरकारी दोषों के समान आचरण करने लगते है और सम्पूर्ण शारीरिक वातावरण संतत ज्वर के पूर्णतया अनुकूल बन जाता है । इसी कारण से इसे दुःस्सह कहा गया है । (संकलित)

सन्निपातिक ज्वरों का पृथक पृथक विवेचन

आधुनिक मत से इनका समर्थन तथा आयुर्वेद ग्रन्थों में उनके पृथक पृथक नामकरण पर मेरा विशेष अनुभव

डा० भागचंद्र जैन आयुर्वेद बृहस्पति, सचालक अखिल भारतीय आयुर्वेद महाविद्यालय सागर, संचालक—भारतीय आयुर्वेद शोध संस्थान, मन्त्री—आयुर्वेद चिकित्सक संघ सागर, मन्त्री—जैन आयुर्वेद धर्मार्थ औषधालय सागर, जनता आयुर्वेद औषधालय, परकोटा वार्ड, सागर (म० प्र०)।

आयुर्वेद में रोगों के अनेक वर्ग और उपवर्ग किये गये हैं। डाक्टरी में रोगों का वर्गीकरण और ही तरह से किया गया है। ज्वर के जिस तरह आयुर्वेद में अनेक भेद हैं, उसी तरह डाक्टरी में भी है, किन्तु आयुर्वेद में जिस तरह सन्निपातज्वर ५२ प्रकार का या १३ प्रकार का माना गया है उस तरह डाक्टरी में नही है। सुश्रुत और वाग्भट्ट ने सन्निपातज्वर के अलग-अलग भेद नहीं लिखे है।

परन्तु चरकाचार्य ने सन्निपात के खास-खास लक्षणों से १३ विभाग किये है। दोषों की कमी और ज्यादती अथवा प्रधानता और अप्रधानता के हिसाब से सन्निपात ज्वर के १३ विभाग कर देने से चिकित्सा कार्य में बड़ा सुभीता हो गया है।

संयुक्त रूप से वात, पित्त, कफ, इन तीनों दोषों से होने वाले ज्वर को "सन्निपात ज्वर" कहते हैं। इस ज्वर में जिस दोप के लक्षण. अधिक हों उसी की उल्वणता या प्रधानता समझनी चाहिए। यदि एक दोप अधिक जोर पर हो तो दो दोपोल्वण और तीनों दोप अधिक जोर पर हों तो त्र्युल्वण या त्रिदोपोल्वण कहते है। दोषों की प्रधानता या उल्वणता के हिसाब से सन्निपातज्वर सात तरह के होते हे–

(१) वातोल्वण (२) पित्तोल्वण (३) कफोल्वण (४) वातपित्तोल्वण (५) वात कफोल्वण (६) पित्त कफोल्वण (७) त्र्युल्वण।

जिस तरह वातादिक दोषों की प्रधानता या उल्वणता के भेद से सात तरह के सन्निपात ज्वर होते हैं। उसी तरह दोपों की हीनता मध्यता और अधिकता के भेद से ६ प्रकार के सन्निपात ज्वर और भी हैं—

(१) अधिक बात मध्यपित्त हीन कफ।
(२) अधिक वात मध्य कफ हीन पित्त।
(३) अधिक पित्त मध्यवात हीन कफ।
(४) अधिक पित्त मध्यकफ हीन वात।
(५) अधिक कफ मध्यवात हीन पित्त।
(६) अधिक कफ मध्यपित्त हीन वात।

इस तरह सात दोपों की उल्वणता के हिसाव से और ६ दोपों की हीनता मध्यता और अधिकता के हिसाव से कुल तेरह प्रकार के सन्निपात ज्वर हुए, यही चरक में लिखे हैं। दोषों की प्रधानता, अप्रधानता और हीनता मध्यता तथा अधिकता की पहिचान आ जाने से बड़े मजे में चिकित्सा होती है। जैसे जिस सन्निपातज्वर रोगी के ज्वर में वात के लक्षण बहुत हों, पित्त के कम हों और कफ के और भी कम हों, उसे वातोल्वण, अधिकवात, मध्यपित्त और हीन कफ सन्निपात कहेंगे।

दोपों की कमीवेशी के अनुसार ही चिकित्सा करनी चाहिये। चिकित्सकों के सुभीते के लिए अन्यान्य आचार्यों ने सन्निपातों के मुख्य लक्षणों के हिसाव से उनके तेरह नाम लिख दिये हैं। उन तेरहों के नाम नीचे दे रहे हैं। उनके

लक्षण कणठाग्र रखने और पहचान लेने का अभ्यास कर लेने से सन्निपात ज्वरों की चिकित्सा में और भी आसानी हो जाती है। उनके नाम ये हैं–

चौपाई

सन्धिक, अन्तक, दाह पुनि, चित्त भ्रम शीताग।
तन्द्रिक, कंठ सु कब्ज अरु, कर्णकि भग्न अनास ॥
रक्तस परलाप अर जिह्वक अरु भग्नास।
वैद्य धन्वन्तरि ने कहै, तेरह सन्निपात ॥

(१) सन्धिक ७ दिन (२) अन्तक १० दिन (३) रुग्दाह २० दिन (४) चित्तभ्रम २४ दिन (५) शीताङ्ग १५ दिन (६) तन्द्रिक २५ दिन (७) कण्ठकुब्ज १३ दिन (८) कर्णक ६० दिन (९) भुग्ननेत्र ८ दिन (१०) रक्तष्ठीवी १० दिन (११) प्रलाप १४ दिन (१२) जिह्वक १६ दिन (१३) अभिन्यास १५ दिन रहता है।

इनमें यदि कोई उपद्रव उठ आवे तो मनुष्य तत्काल ही मर जाय। सन्निपात ज्वर वाले का शीतल यत्न न करें तथा दिन में सोने न दें, अद्धविशेष जल पिलावें और कफ घटे ऐसा यत्न करें एवं सन्निपात के दोष सदृश लंघन करावें।

जो मनुष्य बहुत चिकना खट्टा अधिक गर्म चरपरा, मीठा, रूखा, भोजन करे और विरुद्ध वस्तु खाय अथवा अधिक भोजन करे तथा गन्दा पानी पिये और क्रोधवती रुगैली स्त्री के साथ प्रसङ्ग करे और दुष्ट अथवा कच्चा मांस खाय और धूप, देश, ऋतु, ग्रह की विपरीतता से मनुष्य को सन्निपात रोग होता है।

अकस्मात कभी दाह, कभी शीत लगे, स्वभाव बदल जाय और सब इन्द्रियां अपने अपने धर्म को छोड़ दें, शरीर के हाड़-हाड़ तथा सन्धि-सन्धि और माथे में अधिक पीड़ा हो, नेत्रों में जल आवे, काले और लाल हो जायें। कानों में शब्द और पीड़ा हो, कंठ में काँटे पड़ जायें तथा तन्द्रा, मोह, श्वास, कास, अरुचि, भ्रम हो और जीभ काली और खरखरी होकर लठरा जाय तथा रुधिर मिला हुआ कफ थूके, दिन में सोवे, रात्रि में जागे, पसीना बहुत आवे, अकस्मात गावे, नाचे, हंसे, रोवे, माथा धुने, तृषा अधिक लगे, हृदय दूखे, मलमूत्र नहीं उतरे और जो उतरे तो थोड़ा उतरे शरीर कृश हो जाय।

कण्ठ में कफ घर-घराय गूंगा हो जाय, ओष्ठ आदि अंग पक जायं, पैर भारी हो, नाड़ी की गति महामन्द शिथिल, सूक्ष्म टूटी सी हो और मूत्र हल्दी सा या काला अथवा रुधिर के समान और मल काला श्वेतता लिये हो– अथवा शूकर के मांस सदृश हो। इतने लक्षण जिसमें हो उसके सन्निपात ज्वर कहिए। जो वैद्य औषधि रस और यन्त्र मन्त्र तन्त्र से सन्निपात ज्वर को दूर करे उस वैद्य से धन देकर भी रोगी उऋण नही होता। महाभयंकर सन्निपात वाले को बिच्छू से कटवावे तो सन्निपात दूर हो। सन्निपात वाले को सर्प से भी कटाना लिखा है परन्तु लोक विरुद्ध है इससे यह चिकित्सा न करें। अथवा सन्निपात वाले को लोहे की शलाका अत्यन्त गर्मकर उसके पगथली भौंह और ललाट के मध्य में दाग दें तो सन्निपात जाय यह वैद्य विनोद में लिखा है। मन्त्र यन्त्र आदि के साधन से भी सन्निपात दूर होता है। सुश्रुत चरक वाग्भट्ट के मत से तो सन्निपात ज्वर एक ही प्रकार का है। परन्तु अन्य ऋषियों के मत से ५२ प्रकार का है।

(१) सन्धिक—तीव्र पीड़ा, उग्रज्वर, बेचैनी, कास, कफ की अधिकता, निद्रानाश आदि लक्षण होते हैं।

(२) अन्तक सन्निपात– शरीर में दाह कम्प मस्तक पीडा हो खासी और हिचकी आवे बके बहुत ध्यान जाता रहे श्वास हो, ये लक्षण जिसमे हों उसको अन्तक सन्निपात कहिये। न इस रोग की औषधि है और न रोगी जीता ही है।

(३) रुग्दाह सन्निपात—शरीर में दाह और व्याकुलता हो उदर में शूल चले, तृष्णा अधिक लगे उसको रुग्दाह सन्निपात जानिए। यह भी असाध्य है।

(४) चित्त भ्रम सन्निपात—भ्रम, मद, ताप, मोह, श्वास हो और विक्षिप्त के से नेत्र हो जाँय तथा हँसे, गावे, नाचे ये लक्षण जिसमें हों उसको चित्त भ्रम सन्निपात जानिए। चिकित्सा करने पर ११ दिन में ठीक होता है।

(५) शीताङ्ग सन्निपात—सम्पूर्ण शरीर शीतल ओला सा हो जाय और कांपे हिचकी आवे अङ्ग शिथिल हो जाय, श्वांस खांसी और वमन हो, मुख से लार बहे ये लक्षण जिसमें हों उसको शीताङ्ग सन्निपात जानिए। यह महा असाध्य है। इस सन्निपात वाला जीता नही इस सन्निपात वाले को बिच्छू से कटावें।

(६) तन्द्रिक सन्निपात—जबर्दस्त तन्द्रा, पीड़ा ज्वर, कफ वृद्धि, प्यास, जीभ काली, मोटी, कड़ी और कांटा ऐसी खरखरी हो जाय, दस्त, जलन, कान में पीड़ा, गला रुक जाय, हर वक्त निद्रा लगी रहे।

(७) कण्ठ कुब्ज सन्निपात—शिर मे पीड़ा, गला में पीड़ा, जलन, मूर्च्छा, कम्प, ज्वर वात रक्त की पीड़ा, दाँत वैठे जाय, शरीर गरम रहे प्रलाप, मूर्छा। यह कंठ कुब्ज सन्निपात कष्ट साध्य है।

(८) कर्णक सन्निपात–प्रलाप, वहिरापन, गले में पीड़ा, शरीर भर में पीड़ा, श्वास, खांसी, मुह से लार गिरे, ज्वर, शरीर गरम रहे, कान के पास और गले में पीडा। वैद्य लोग इस कर्णक सन्निपात को कष्टसाध्य वतलाते है।

(९) भुग्ननेत्र सन्निपात—ज्वर, वलनाश स्मरण शक्ति नष्ट हो जाय, श्वास, आँखें टेढ़ी हों, मूर्छा, प्रलाप, भ्रम, कम्प सूजन यह रोगी जल्दी ही खतम होता है।

(१०) रक्तष्ठीवी सन्निपात—मुह से थूक मे खून निकले, ज्वर, कम्प, प्यास, मूर्छा, शूल, दस्त, हिचकी, अफरा चक्कर जलन श्वांस वेहोशी जीभ काली या लाल, स्वाद न मालूम हो, देह में चकत्ते हों। यह रक्तष्ठीवी सन्निपात रोगी को मार डालता है।

(११) प्रलापक सन्निपात—कम्प, प्रलाप, जलन, शिर में पीड़ा, पवित्रता पसन्द हो, दूसरों की चिन्ता, वेहोशी वेचैनी ज्यादा अंड वंड वके, प्रलापक सन्निपाती शीघ्र ही यमपुर जाता है।

(१२) जिह्वक सन्निपात—श्वास, जलन, खांसी, वेचैनी, जीभ कड़ी और कांटेदार हो, वहिरा, गूंगा, रोगी का शक्तिनाश हो जाय। यह जिह्वक सन्निपात कष्ट साध्य होता है।

(१३) अभिन्यास सन्निपात—त्रिदोष खूब कुपित हो, मुंह पर चिकनाहट रहे। नीद अधिक आवे, वैचेनी, वेहोशी बोल न सकें, शक्ति कम हो जाय, सांस न आवें यह सन्निपात मृत्यु के समान है।

सन्निपात चिकित्सा

प्रत्येक सन्निपात वाले रोगीको अष्टांगी मर्दन(मालिश) करनी चाहिए जिससे पसीना आना बंद होता है।

छोटी कटेरी का पंचांग २०० ग्राम, पीपल १२॥ ग्रा सोंठ २५ ग्राम। समस्त द्रव्यों को घोट छानकर १ किलो पानी मे काढ़ा करें। जब पकते-पकते २१० ग्राम शेष रहे तब उतार कर इसी पानी का प्रयोग करें।

संजीवनी वटी ३ ग्राम, चन्द्रोदय आधा ग्राम, मकरध्वज आधा ग्राम, लक्ष्मी विलास रस नारदीय १ ग्राम, गोदन्ती आधा ग्राम, शुद्ध कुचला १ ग्राम, सींगिया १ ग्रा., पीपल लेड़ी १॥ ग्राम, समस्त द्रव्यों को बांटकर छानकर सुबह+दोपहर+रात्रि ३ बार। १ ग्राम के करीब दवा दें। असाध्य से असाध्य सन्निपात ठीक हो जावेगा।

(२) द्वितीय प्रयोग—आक की जड़ का वक्कुल, त्रिकुटा, कटेरी की जड़, जीरा सफेद, भारंगी, काकड़ासिंगी, पोहकरमूल, इन सब औषधियों को समभाग लेकर जौकुट करें। सवा २ तोले १ पाव गौमूत्र में ५ तोले शेष क्वाथ करके ४–४ घंटे बाद रोगी को पिलाते रहें। इससे रोगी का श्लेष्म दोष पचन होकर शमन होगा।

(३) तृतीय प्रयोग—बांझ ककोड़ा की जड़ का चूर्ण, कुलथी, पीपल छोटी, वच, काला जीरा, चिरायता, कुटकी, चीतामूल, नेत्रवाला बड़ी हरड, प्रत्येक १–१ भाग, कायफल २ भाग, इन सबका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर शरीर पर उबटन करावे। जब शीतांग सन्निपात के रोगी को प्रस्वेद की वहुलता हो शरीर ठण्डा पड़ता जाता हो तब यह उद्वर्तन और प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

(४) चतुर्थ प्रयोग—हेमगर्भ पोटली रस को पान के स्वरस ६ माशा तथा अदरख स्वरस ६माशा देने से समस्त सन्निपात रोग नष्ट होते है। यह प्रयोग वहुत अनुभूत है। हजारों रोगियों पर अजमाया है।

शीताङ्ग सन्निपात ज्वर

वैद्य मोहरसिंह आर्य आयु० बृह०, भिवानी (हरियाणा)

शीतांग सन्निपात ज्वर असाध्य कहा गया है। सर्व-लक्षण युक्त शीतांग सन्निपात की औषध किसी चिकित्सा पद्धति में नहीं है। शीतांग सन्निपात ज्वर में रोगी की जीवनी शक्ति निरन्तर क्षीण होती जाती है। यह जानते हुए कि यह ज्वर असाध्य है तो फिर इस पर लिख कर क्यों समय नष्ट किया जाय। परन्तु आयुर्वेद मनीषियों के इस सूत्र को कैसे भुलाया जा सकता है—

यावत्कण्ठगताः प्राणा यावन्नास्ति निरिन्द्रियः।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या कालस्य कुटिला गति ॥

जब तक कण्ठगत प्राण है, जब तक इन्द्रिया निष्क्रिय नही है तब तक चिकित्सा करते रहना चाहिए, निराश न होना चाहिए। काल की गति विचित्र है, कुछ कहा नही जा सकता क्या पता रोगी बच ही जाए।

शीतांग सन्निपात ज्वर के लक्षण—

हिमशिशिरशरीरः सन्निपात ज्वरी यः,
श्वसन कसन हिक्कामोहकफ प्रलापैः।
क्लमबहुकफवाता दाहवम्यहुपीड़ा,
स्वर विकृतिभिरार्त. शीतगात्र स उक्त ॥

यह भावप्रकाश में ग्रन्थान्तर का उद्धरण दिया है— इस ज्वर से आक्रान्त ज्वरी अपने शरीर को हिम वर्फ से ढके हुए के समान शीत का अनुभव करता है। तथा श्वास कास, हिक्का, मोह, कम्प, प्रलाप से पीड़ित होता है। क्लम (अनायास थकावट) दाह, वमन, अंग पीडा तथा स्वर विकृति के लक्षण होते है।

हिमसदृशशरीरो वेपथु श्वास, हिक्का,
शिथिलितसकलाग खिन्ननादः प्रलापः।
क्लमथुदवथुकासच्छर्द्यतीसारयुक्त,
स्त्वरितमरणहेतु. शीतगात्रः प्रभावात ॥

अर्थात जिस सन्निपात मे शरीर हिम वर्फ के समान शीत, ठण्डा हो, कंपकंपी, श्वास और हिक्का हो, सम्पूर्ण अंग शिथिल हो गये हों, वाद-स्वर खिन्न-क्षीण हो गया हो, ताप अत्यन्त बढ गया हो, क्लम, नेत्र आदि में दाह, कास, वमन और अतिसार हो तो उसे शीघ्र मरने का कारण वाला शीतगात्र, शीतांग सन्निपात जानना चाहिए।

योग रत्नाकर मे अङ्ग पीड़ा के स्थान पर शिथिलत सकलांग लिखा है। विकृत स्वर के स्थान पर खिन्ननाद बतलाया है। दवथु तथा अतिसार दो लक्षण उसके अतिरिक्त दिये है। भावप्रकाश मे 'बहुकफ तथा मोह' लक्षण दिये है, वे आयुर्वेद मे नही आये।

शीतांग सन्निपात मे रोगी का शरीर हिम (वर्फ) के समान होता है, परन्तु थर्मामीटर से देखने पर पारद १०४ डिग्री तक बढ जाता है। रोगी की सास बढ जाती है, बारबार दस्त आता है, हाथों मे कंपकंपी आती है।

"क्षीणनाड्यङ्गतापश्च' ये लक्षण विशेष नित्यनाथ ने कहे है। शीतांग सन्निपात मे नाडी की गति क्षीण होती चली जाती है। नित्यनाथ ने प्रलाप तथा मोह के अतिरिक्त अन्य लक्षण श्वास, हिक्का, अतिसार, कम्प, शिथिलगात्रता, हिमशरीर कहे है। यथा—

शरीर हिमशीतं च च्छर्द्यतीसारकम्पनम्।
क्षीणनाड्याग तापश्च हिक्काश्वासक्लमश्रमा.।
सर्वांग शिथिलो हन्ति शीतागसन्निपातक.। (नित्यनाथ)

एवं प्रकार वैद्यविनोदकार तथा चिन्तामणि ने कम्प, हिक्का, शिथिलागता, खिन्ननाद, कास, वमी प्रसेक और दूसरे ने कास, श्वास, हिक्का, अंग शैथिल्य, वमन, अतिसार, उग्रताप तथा मूर्च्छा को माना है।

शीतांग सन्निपात में शीतगात्रता का कारण रुग्ण के शरीर के एक-एक अवयव, अणु-अणु मे वात तथा कफ का प्रकोप होता है। वात और श्लेष्मा की प्रतिक्रिया हेतु उग्रताप बनता है। परन्तु अतिसार के कारण आन्त्र क्रिया, श्वसन, कास, हिक्का के कारण श्वास क्रिया और मन पर अपरिचित विषाद के कारण ही रोग असाध्य होता है,

रोगी की प्राण रक्षा कठिन होती है।

इस व्याधि में रोगी का शरीर इतना शीतल-ठण्डा हो जाता है कि रोगी कांपने लगता है। श्वास अनियमित हो जाता है। हिचकी आने लगती है। शरीर के सारे अंग प्रत्यंग ढील हो जाते है। स्वर-आवाज धीमा पड जाता है। शरीर के अन्दर उग्र सन्ताप होता है। खांसी आती है वमन होती है। पतले दस्त, अतिसार होते हैं। रोगी बेहोश हो जाता है, माथे पर पसीना आ जाता है।

शीताङ्ग सन्निपात चिकित्सा—

"शीतांग सन्निपातोऽसाध्यः" यद्यपि शीतांग सन्निपात असाध्य होता है तथापि उसकी चिकित्सा लिखते हैं। क्योंकि आयुर्वेद के विद्वानों ने कहा है—"यावत्कण्ठगता-प्राणस्तावत्कार्या प्रतिक्रिया" इसलिए शास्त्राज्ञा के साथ अनुभव के आधार पर लिखा जा रहा है—

१. भास्करमूल क्वाथ—आक की जड़, जीरा, सोंठ, पीपल, मरिच, भारंगी, कटेरी छोटी, पुष्करमूल इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर यवखण्ड कर यथाविधि गोमूत्र के साथ क्वाथ बनावें। इस क्वाथ को रोगी के बलाबल का विचार कर उपयुक्त मात्रा में पिलावें। इससे शीतांग सन्निपात, मोह, श्वास, कास, कफ की अधिकता शीघ्र शमन होती है।

२. उद्वर्तन—पारद १ भाग, विष १ भाग, मरिच ४ भाग, धतूर के फल का भस्म ८ भाग ले, सबको एकत्र कर शरीर पर मर्दन करने से अधिक पसीना आना और शीतांग सन्निपात का नाश होता है।

३. शीतांगहर उद्वर्तन—खेखसामूल चूर्ण, कुलथी, पीपल, वच, कायफल, काला जीरा, चिरायता, चीता, सुगन्धवाला और हरड़ समान भाग ले, सूक्ष्म पीस शरीर पर मलना लाभप्रद है।

४. शीतांग सन्निपात में शरीर से अतिमात्रा में स्वेद निकल कर शरीर का तापक्रम प्राकृत से बहुत कम हो जाता है। इस अवस्था में सम्यक् रीति से सावधानी की आवश्यकता है। यदि स्वेद अति मात्रा में निकले तो—अजवायन, वच, सोंठ, पीपल तथा काला जीरा समान भाग ले सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उद्वर्तन (Dusting) करें। अथवा—भुनी हुई कुलथी वा अरहर के चूर्ण का शरीर में उद्वर्तन करें। अथवा—कायफल के चूर्ण को हस्तपाद के तलुओं में हल्के हाथ से मर्दन करें।

५. पञ्चामृत भस्म—शुद्ध पीत सोमल, शुद्ध तालपत्रक, शुद्ध मनःशिला, चूना कलई, शुद्ध गन्धक तथा, फिटकरी प्रत्येक ५० ग्राम लें, सूक्ष्म चूर्ण कर ३ नदि घृत कुमारी के रस में खरल करके चार गोले बनावें। सूखने पर ४ सम्पुट कर ३ कपड़मिट्टी करके सबको पृथक-पृथक २॥-२॥ किलोग्राम उपलों की आंच दें।

मात्रा—२० मिली ग्राम से ६० मिली ग्राम तक।

अनुपान—अदरख के रस से। दिन में ३ बार २-२ घण्टे पर दें।

गुण—यह सन्निपात की मूर्च्छा, कफ प्रकोप, शरीर की शीतलता, हृदय और नाड़ी की मन्द गति, अनियमित नाड़ी आदि लक्षण होने पर दिया जाता है। इसके सेवन से हृदय उत्तेजित होता है। शीतलता दूर होती है। कंठ कफ रहित हो जाता है। रुग्ण होश में आ जाता है। यह भस्म पार्श्वशूल, श्वासावरोध तथा श्वास वेग में तत्काल लाभ पहुंचाता है।

६. मृतसंजीवनी सुरा (भै. र.)—यह प्रसिद्ध योग है। मात्रा—१० से २० मि. लि. तक।

७. मृग्मदासव (भै. र.) मृतसंजीवनी सुरावत दें।

औषध व्यवस्था—

१. पंचामृत भस्म ६० मि. ग्रा., मृतसंजीवनी सुरा २० मि. लि., भास्करमूल क्वाथ २० मि. लि.—तीनों को मिलाकर २-२ घंटे के पश्चात पिलाते रहें।

२. उद्वर्तन हाथ की हथेलियों तथा पांव के तलुवों में शनैः शनैः करें। जितनी मालिश करेंगे उतना ही लाभ अधिक मिलेगा।

३. सूचीवेध—हृदयामृत (मार्तण्ड), मृगनाभि (प्रताप) का ४-४ घंटे के अन्तर से प्रयोग करें।

क्रकच-पाकल सन्निपात

(Manin-gitis — [illegible])

श्री रामलाल जोशी आयु०, राज० आयु० औष०, तिवरो (जोधपुर)
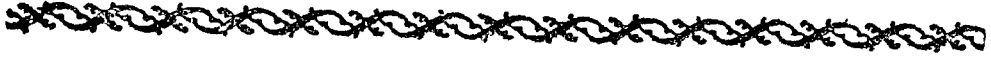
यह बड़ा भयंकर संक्रामक रोग है। इस रोग में घोर ज्वर. बेसुधि और वार-वार अङ्गों का आक्षेप होकर तुरन्त संकोच होने से बहुत से ग्रन्थकारों ने इसे आक्षेपक ज्वर संज्ञा दी है। नेत्र भुग्न और भौंहें टेढ़ी देखकर कई इसे भुग्न-नेत्र सन्निपात भी कह देते है। परन्तु यह उनकी कल्पना मात्र है। इस रोग में मुख्य विकृति समस्त मस्तुलुङ्ग के ऊपर और सुषुम्ना के ऊपर त्रिवृत्याकार होती है। उनमें अर्न्तकृति, मस्तिष्क के अवयव और सुषुम्ना से चिपकी हुई है। उसके ऊपर मध्यमाकृति है। इन दोनों के बीच लसीका द्रव (Subarachnoid Fluid) भरा है। जिसके साथ ब्रह्मवारि (Cerebro spinal Fluid)

मनुष्य के मस्तिष्क (मस्तुलुंग) में ज्वर (ताप नियंत्रण) केन्द्र एवं अन्य केन्द्र

भी अवस्थित है। इन आवरण और द्रव में विकृति होकर अधिक फैलती है। मस्तिष्कावरण और सुषुम्ना के आवरण में पूयोत्पादक प्रदाह अत्यन्त मलक्षय तथा शूल सहित मांसपेशियों का संकोच तथा मस्तिष्क की श्लेष्म कला में सूजन हो जाती है। इस व्याधि में गर्दन (ग्रीवा) एकदम जकड जाती है। इस कारण इस व्याधि को गर्दन तोड़ ज्वर की संज्ञा दी गई है। इसी से रोगी का मरण निश्चय होते देखा गया है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इस रोग का स्पष्ट वर्णन मिलता है। विद्वानों ने इसे अधिक वात-हीन-पित्त, और मध्य कफ के कारण होने वाला सन्निपात माना है। गर्दन के जकड़ जाने (मन्यानाड़ी के जकड़ जाने से मृत्यु के विशेष लक्षण होने से वैद्यजन इसे क्रकच सन्निपात कहते है। यथा—

> प्रवृद्ध हीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः।
> तेनरोगस्त एवोक्ता यथा दोष बलाश्रयाः॥
> प्रलापायास सम्मोहाः कम्पमूर्च्छारति भ्रमः।
> मन्या स्तम्भेन मृत्युःस्यातत्राप्येहिशेषतः॥
> भिपग्भिः सन्निपातोऽयं क्रकच सम्प्रकीर्तितः।

पूर्वरूप—

पहले अग्निमांद्य विवन्ध और बेचैनी रहकर अत्यन्त भयङ्कर शिरः शूल, गर्दन में अति वेदना, वाद में पीठ में वेदना, चक्कर आना, वेचैनी, कान के नीचे सूजन और कमर में दर्द फिर अकस्मात शीत ज्वर होकर इस रोग की उत्पत्ति हो जाती है।

लक्षण—

भयंकर सिर दर्द, वमन, शीत लगकर कम्प होना, कण्ठ जकड़ना फिर सिर पीछे की ओर खिच जाना, ज्वर का प्रति दिन वढ़ते जाना, हाथ, पैर आदि किसी न किसी

शाखाओं का संकोच हो जाना सब अङ्गों का संकोच होने से शरीर का अन्दर या बाहर आगे या पीछे की ओर मुड़ जाना, आंख का टेढ़ा हो जाना रोग की विशेष अवस्था में इसी दिन इन्द्रीयों का रोष प्रतीत होना। कारण— यह शीघ्र फैलने वाली संक्रामक व्याधि है। जनपद व्याधी रूप से उपस्थित होती है। इस रोग का कारण मेनिङ्गो कोकस (Meningo-Coccui) कीटाणु जनित होती है। इस रोग में सम्प्राप्ति दर्शक मस्तिष्कावरण और सुषुम्ना का पूयात्मक प्रदाह होता है। सामान्य संयोगों में इसका आक्रमण अधिक से अधिक ५ वर्ष तक की आयु वाले बालकों पर होता है। युवक और पक्व आयु वालों पर आक्रमण बहुत कम होता है। विशेषतया यह शीत और कफ की प्रबलता और दृढ़ता के हेतु से अवरोध होता है। तब इस रोग का बल बढ़ता है।

संप्राप्ति—

इस रोग के कीटाणु नाक और कण्ठ मार्ग से प्रवेश कर सुषम्ना और मस्तिष्क के भीतर आवरणों में पहुंच कर वहां अपना अड्डा जमाते हैं। उन स्थानों पर प्रदाह उत्पन्न करते हैं। इससे मस्तिष्क आवरण मोटा हो जाता है। और पूय व गाढ़ी लसीका भर जाने से मस्तिष्क बड़े हो जाते हैं। फिर सुषुम्ना और मस्तिष्क कोषाणुओं पर दबाव पड़ने से चेष्टावह तन्तुओं में उत्तेजना आकर आक्षेप आदि प्रकट होते हैं। इस कारण कतिपय ग्रन्थकारों ने इसे आक्षेपक ज्वर की संज्ञा दी है। वैसे अकस्मात आक्रमण, सिर दर्द, वान्ति, उत्तापवृद्धि, ग्रीवाका जकड़ना और प्रलाप तक मस्तिष्क के प्रत्याकर्षण में वृद्धि आदि लक्षणों से रोग स्पष्ट हो जाता है। विशेष निर्णय कटिवेध द्वारा होता है।

आधुनिक दृष्टि से लक्षण—

स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल (Sympathetic nerves) के पीड़ित होने से कनीनिका (Pupils) सामान्यतः प्रसारित रहती हैं किन्तु गम्भीर आक्रमण होने पर आकुंचित हो जाती है। सामान्यतः विषमता और जड़ता उपस्थित होती है। तारा मण्डल का कम्पन (Hippus) कभी कभी होता है।। २०% रोगियों में एक या दोनों नेत्रों की च्युति (Strabismus) १०% में चाक्षुषी नाड़ी प्रदाह, प्रकाश का सहन न होता, अभिष्यन्द, ऊपर के पलक का कुछ पक्षवद्य (Ptosis) तथा कभी कभी नेत्र गोलक का चारों ओर फिरना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। संज्ञावह नाड़ियों की विकृति से बार बार अति गम्भीर सिर दर्द होना, विशेषतः पिछली और, सुषम्णा और हाथ पैरों में दर्द फैलना, तथा व्यापक संवेदना वृद्धि सह कमर में गम्भीर वेदना होना तथा व्यापक संवेदना वृद्धि होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। मानसिक लक्षण रूप से बेचैनी, उन्माद, प्रलाप और उत्तरावस्था में बेहोशी या मूर्छा उपस्थित होते हैं। इनके अतिरिक्त मस्तिष्क विकृति होने पर आक्रमण काल में वमन होना, फिर चालू रहना, शारीरिक उत्ताप अनियमित बढ़ना घटना, सामान्यतः १०३ रहना, बढ़ने पर १०५ या अधिक हो जाना, नाड़ी और उत्ताप का सम्बन्ध कुछ कम रहना, अनियमित नाड़ी, फुफ्फुस का उपद्रव होने पर छिन्न श्वास, आक्रमण काल में रक्त-मय पिटकाएं पहले या दूसरे दिन तक रहना फिर कभी गम्भीरावस्था में पूयमय हो जाना, मधुरा के सदृश लाल पिटिकाएं होना २५ से ५०% में ४-५ दिन बाद ओष्ठ पर फुन्सियाँ होना, एकाधिक केन्द्र स्थान युक्त श्वेताणु २५००० से ५०००० प्रति मिलीमीटर हो जाना तथा गम्भीर अवस्था में उनका अभाव होना एवं कृशता अति शीघ्र आना ये लक्षण प्रकाशित होते हैं। इस रोग के विशेष निर्णयार्थ तीसरे और चौथे कटि कसेरुकों के बीच सूचिका डाल पूय निकालकर उसकी परीक्षा की जाती है। उसे लम्बर—पंन्चर और किवड़क्स पंन्चर कहते हैं।

चिकित्सोपयोगी सूचना—रोगी को खुली वायु में रखें। इस रोग में वस्त्र, स्थान आदि की स्वच्छता पर पूर्ण लक्ष्य देना चाहिए। राई का प्लास्टर दर्द वाले भाग पर लगावें या निर्गुण्डी के पत्तों का स्वेद दें। गर्दन और सिर पर सिंगी लगवाकर लसीका या पूय जल्दी निकालें। रोगी को लंघन करायें। केवल गरम कर शीतल किए हुए जल पर रखें। मल शुद्धि के लिए थोड़ी मुनक्का दें। मलावरोध हो, तो प्रारम्भ में ही उसके दूर करने का प्रयत्न करें। यदि मूत्रावरोध हो तो रबर की नली से मूत्र निकालते रहें।

आयुर्वेद चिकित्सा—

पूर्वरूप में गर्दन अकड़ जाने पर वृहत योगराज गूगल १ माशा खिला कर ४ तोले एरण्ड तैल और

थोड़ा दूध मिलाकर पिलावें। फिर ऊपर से ४० तोले निवाया दूध पिला दें। उदर शुद्धि होने पर दिन में तीन बार महायोगराजगूगल २-२ रत्ती निवाये जल से देते रहें अथवा सूतराज या मृत्युंजयरस दशमूल क्वाथ के साथ देवें।

ज्वर में कोष्ठशुद्धि के लिए—अश्वकंचुकी रस दें या एरण्डतैल की बस्ति दें। तीव्र आक्षेप हो तो अचिन्त्यशक्ति रस या कृमि मुद्गर और महावात-विध्वंसन रस दिन में तीन समय अष्टादशांग क्वाथ से देते रहें। जीर्णावस्था होने पर वृहद वातचिन्तामणि रस दें। कमर और गर्दन के दर्द पर-मस्तिष्क में ब्रहवारि का दबाब अत्यधिक होने या पूयोत्पत्ति हो जाने पर सुषुम्नाकाण्ड में से सिरिंज द्वारा द्रव निकालते हैं। इस तरह दूषित लसीका, रक्त या पूय निकाल लेने के पश्चात् निवाये महाविषगर्भ तैल या तारपीन तैल की मालिश करें और फिर मस्तिष्क के अन्य भाग पर निवाये जल से सेक करें।

एलोपैथिक चिकित्सा—

इस रोग की चिकित्सा एलोपैथिक में कुछ वर्षों से रसायनिक औषध पेनिसिलिन और सल्फोनामाइड वर्ग की औषध से की जाती है। इससे परिणाम संतोषप्रद आता है। ऐसा नव्य चिकित्सक मानता है। विशेषत: सल्फाथियाजोल (Sulfathiazole) दिया जाता है उसे **M&B 693** भी कहते हैं। आक्रमणावस्था में पहले अधिक मात्रा में देते है। फिर मात्रा कम करते हैं। बालकों को मात्रा कम देते हैं। अर्थात् २ वर्ष की आयु वाले को १ दिन में २ ग्राम। २-३ दिन बाद मात्रा घटाते जाते है। इस चिकित्सा में रोग लक्षण नहीं बढ़ते। फिर भी किसी रोगी को अति निद्रानाश और प्रलाप हो तो पेरल्डीहाइड रात्रि को देते हैं। अथवा मार्फिया का अन्तःक्षेपण करते हैं।

सन्निपातिक ज्वरों की चिकित्सा में ध्यान दें

(१) वृद्ध दोष को शांत करे एवं वृद्ध लक्षणों का शमन करें।
(२) मस्तिष्क तथा हृदय की सुरक्षा करें। बल प्रदान करे।
(३) शीतल उपचार कदापि न करें। न शीतल जल ही पिलावे।
(४) सन्निपात ज्वरों की चिकित्सा करते समय उसकी साध्यासाध्यता से उसके (रोगी के) परिजनों को पूर्णत: परिचित करादें।
(५) आम व कफ के नष्ट करने का अधिक प्रयास करें।
(६) मूर्छित रोगी को संज्ञा में लाने का प्रयास करें।
(७) मुख जिह्वा, दांत, ओष्ठ देह की स्वच्छता की ओर ध्यान दें।
(८) रोगी के पास परिचारक का उपस्थित रहना आवश्यक है।
(९) मल मूत्र का सम्यक् विसर्जन कराते रहें। विरेचन भूलकर भी न दें।
(१०) ज्वरी को पथ्य में दुग्ध+पानी मिलाकर पिलावें।
(११) उन्माद की अवस्था का विशेष ध्यान दें।
(१२) जब तक रोगी पूर्ण स्वस्थ न हो उसकी चिकित्सा में पथ्यापथ्य में उपेक्षा न करें।
(१३) सन्निपात के नाम की ओर विशेष ध्यान न देकर लक्षणों के आधार पर चिकित्सा करें यश मिलेगा।
(१४) धातु पाक, मल पाक तथा दोष शमन की ओर ध्यान दें।
(१५) सन्निपात ज्वर वैद्यों की परीक्षा है अत: इसकी चिकित्सा ध्यानपूर्वक, धैर्यपूर्वक तथा विवेक से करें।
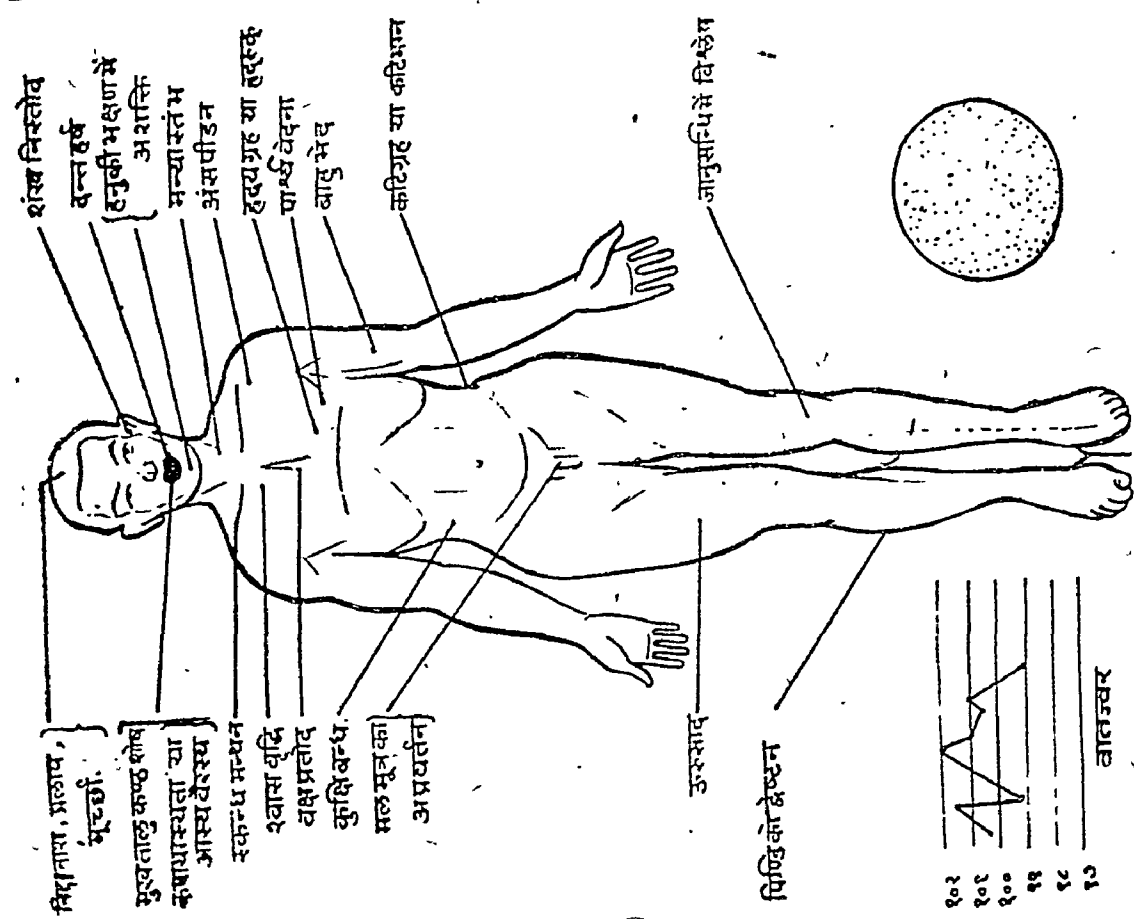
विवरण पृष्ठ १०३ पर देखें।
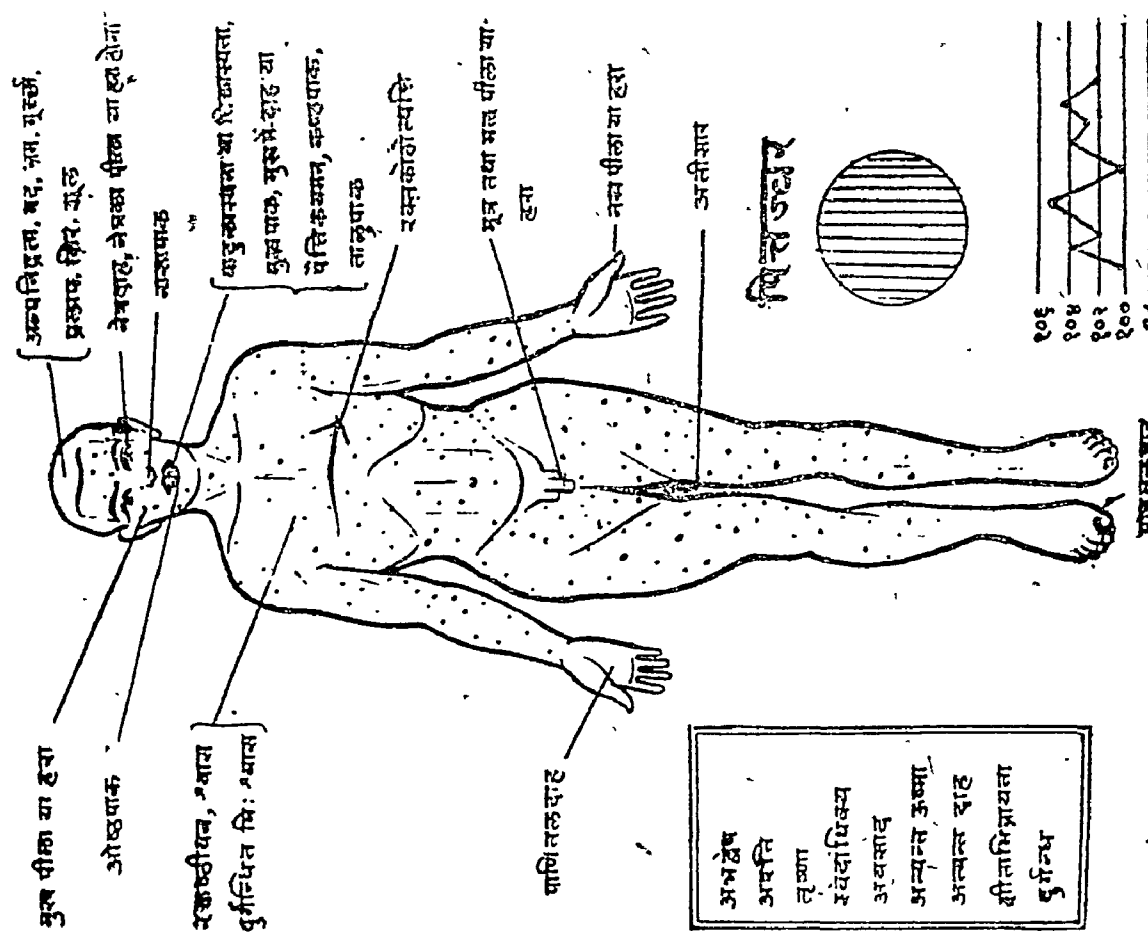
विवरण पृष्ठ १०५ पर देखें।

श्री वैद्य लालचन्द शर्मा आयु०, जोधपुर।

अन्य प्रसंगों में यह कहा जा चुका है कि ज्वर पित्त के प्रकुपित होने से ही होता है। इसकी उत्पत्ति क्रोध से हुई है और क्रोध पित्तोत्पादक है। पित्त ऊष्मा को उत्तेजित कर मानव देह को उष्ण कर देता है। यही उष्णता ज्वर को प्रकट करती है। ज्वर का क्षेत्र व्यापक है। यह मनुष्य, पशु पक्षी सभी प्राणियों को त्रास देता है। मानव देहमें भी यह भिन्न-भिन्न अंगों, अवयवों तथा घटकों को भिन्न-भिन्न प्रकार से त्रास देता है। उसी प्रकार यह धातुओं को भी आक्रान्त कर देता है।

मानव देह में धातुयें सात हैं। ये सातों ही धातु अपने-अपने क्षेत्र में मानव देह का पोषण करती हैं तथा धारण करती हैं। इन धातुओं की पुष्टि हमारे भोजन द्वारा हुआ करती है। खाद्य विकृति होने से धातुओं के पोषण में भी विकृति आ जाती है और वे रुग्ण या विकृत हो जाते हैं। इसी आधार पर वे ज्वराक्रान्त भी

रसगत लक्षण
+ रक्तगत लक्षण
— मांसगत लक्षण
मेदोगत लक्षण
卐 अस्थिगत लक्षण
मज्जागत लक्षण
शुक्रगत लक्षण

धातुगतज्वर
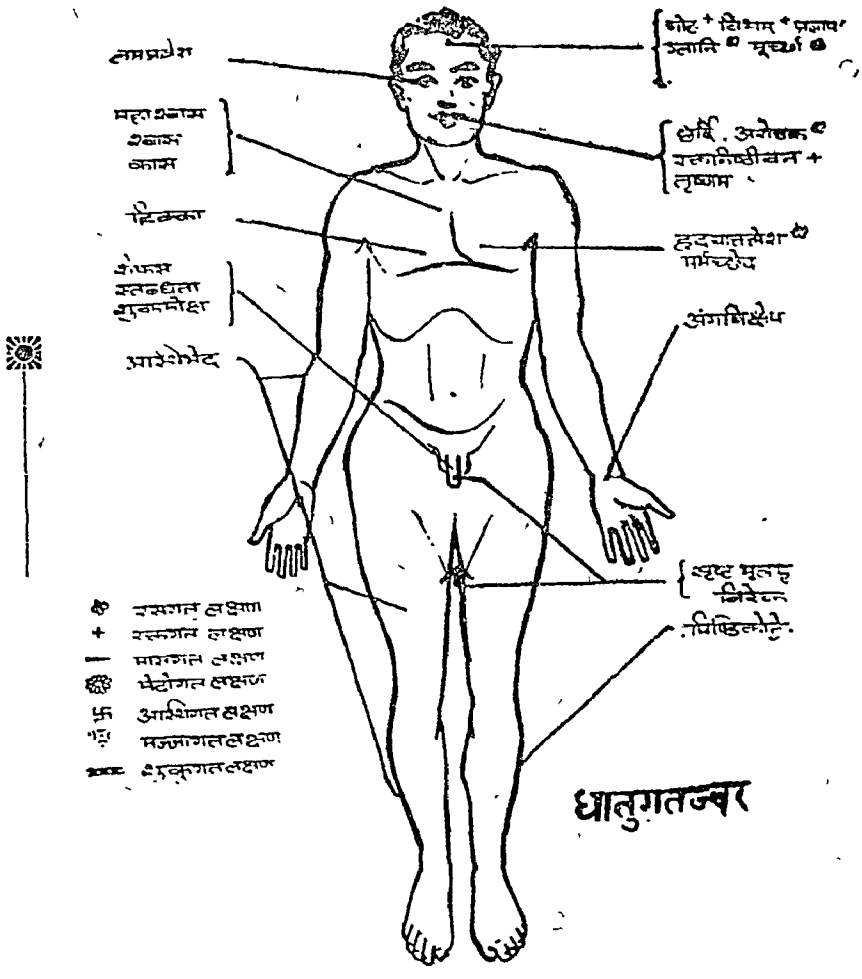
हो जाते हैं। धातुओं के ज्वराक्रान्त होने पर मानव देह पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है यह अवलोकनीय है। क्योंकि सातों धातुयें—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र देह को धारण करती हैं अतः इनके रुग्ण या ज्वराक्रांत हो जाने से देह की उस धातु द्वारा होने वाली पुष्टि में हीनता आ जाती है और इस कमी का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। ये धातुयें क्रमशः एक दूसरे से भी पुष्ट होती हैं जैसे अन्न से रस, रस से रक्त पुष्ट होता है और इसी प्रकार रक्त से मांस, मांस से अस्थि, अस्थि से मज्जा तथा मज्जा से शुक्र। इस प्रकार शुक्र इस पुष्टि की अन्तिम अवस्था है और वही सब धातुओं का सार है।

आयुर्वेद में बड़ी सूक्ष्मता के साथ सभी धातुओं पर ज्वर के प्रभाव को स्पष्ट तथा परिलक्षित किया है। इस संक्रांति को चाहे आज का एलोपैथ मानता हो या न भी मानता हो, आयुर्वेद इसे स्पष्ट स्वीकार करता है और व्यवहार में भी ये लक्षित होते हैं। सर्वप्रथम हम रस धातु से ही इसका अवलोकन करेंगे।

रसगत ज्वर के लक्षण—ज्वर जब विशेषकर रस धातु गत होता है तब रोगी के शरीर में भारीपन, हृदय में रहने वाले दोषों के बढ़ जाने से वमन होने जैसे प्रतीति होती है। ग्लानि, वमन, अरुचि तथा चित्त में हीनता लक्षण प्रकट होते हैं। ये लक्षण जब ज्वर केवल रस धातु पर आक्रमण करता है तब प्रकट होते हैं। यह मान्यता है कि यह संतत ज्वर ही है। फिर भी आचार्यों ने रसगत ज्वर के अलग लक्षण बताये हैं।

रक्तगत ज्वर—ज्वर के रक्तगत हो जाने पर रोगी के थूक में रक्त निकलता है और दाह, चित्त में व्यग्रता, वमन, भ्रम विक्षेप, प्रलाप, देह पर पिड़िकायें निकलना, प्यास अधिक लगना ये लक्षण मानते हैं। रक्त स्वयं ही पित्तक गुण युक्त है तथा फिर पित्त भी विकृत होता है अतः दोनों ही समान गुण धर्मी तत्व मिलकर अधिक दाह तथा पित्तात्मक गुण उत्पन्न करते हैं।

मांसगत ज्वर—मांसगत ज्वर होने पर रोगी के पिंडलियों में दण्डे मारने के समान पीड़ा होती है। यानि पिण्डलियों के मांस में तीव्र शूल होता है, अधिक प्यास लगती है जो ज्वर का लक्षण है। मूत्र तथा मल का विसर्जन बारम्बार होता है। देह के बाहर गर्मी रहती है तथा अन्दर दाह रहती है। हाथ पैरों को इधर उधर बारबार फैंकता रहता है ऐसा मांस पिण्डी में अधिक शूल होने के कारण करता है तथा ग्लानि होती है। उपरोक्त लक्षण मांसगत ज्वर के हैं।

मेदगत ज्वर के लक्षण—जब ज्वर मेद में प्रवेश करता है तब पसीना अधिक आता है। प्यास अधिक लगती है। मूर्छा, प्रलाप होते हैं तथा वमन भी होता है। शरीर में दुर्गन्ध आती है तथा अरुचि के लक्षण होते हैं। उपयुक्त कथन में मेद के विकृत होने से प्रस्वेद, देह दुर्गन्ध तथा शेष कारण पित्त विकृति के हैं। ये लक्षण मेदोगत ज्वर के हैं।

अस्थिगत ज्वर के लक्षण—इसमें हड्डी टूटती सी रहती है तथा हड्डी में तीव्र पीड़ा होती है। कूंथना, श्वास अतिसार, वमन तथा हाथ पैर आदि अंगों को रोगी इधर उधर फैंकता रहता है। उपरोक्त लक्षणों में भी अस्थिशूल तथा हाथ पैरों का पटकना अस्थि आक्रान्ति के लक्षण हैं तथा शेष पित्त प्रकोप के लक्षण है।

मज्जागत ज्वर के लक्षण—इस प्रकार के ज्वर में रोगी ऐसा महसूस करता है जैसे वह अन्धकार में प्रवेश कर रहा हो। हिचकी, कास, शीत लगना, वमन, देह के अन्दर दाह, महाश्वास तथा मर्म स्थानों को छेदन जैसी पीड़ा प्रकट होती है। उपरोक्त ज्वर में जो लक्षण बताये गये हैं वह स्पष्ट हैं।

शुक्रगत ज्वर के लक्षण—जब ज्वर शुक्र में प्रवेश पाकर उसे आक्रान्त करता है तब रोगी के मूत्रेन्द्रिय में जड़ता आ जाती है। रोगी का शुक्र बार-बार मूत्र मार्ग से निकलता रहता है। यहां शुक्र में पित्त दोष की वृद्धि होकर शुक्र अपने स्थान से च्युत हो जाता है। यह रोगी का मारक लक्षण है यानि शुक्रगत ज्वर असाध्य है।

उपरोक्त ज्वरों के लक्षणों का अध्ययन करने के बाद यह तथ्य सोचना पड़ता है कि धातुगत ज्वर की कोई चिकित्सा भी है ? अब हम नीचे सभी ज्वरों के पृथक-पृथक चिकित्सा सूत्र प्रस्तुत कर रहे हैं।

चिकित्सा सूत्र—

रस धातुगत ज्वर में रोगी को वमन तथा लंघन कराना चाहिये।

रक्तगत ज्वर का चिकित्सा सूत्र—रक्तगत ज्वर में रोगी की देह को ठंडे पानी से पौंछना चाहिये और ऐसा बार-बार करना चाहिये। ठंडे द्रव्यों का लेप करना चाहिये तथा रक्त निकलवाना (फस्त खुलवाना) चाहिये। ये सभी उपचार लाभदायक है।

मांसगत ज्वर—मांसगत ज्वर में रोगी को तीव्र विरेचन देना चाहिए।

मेदोगत ज्वर—मेदोगत ज्वर में रोगी को मेद का नाश करने वाली औषधियों तथा उपायों का प्रयोग करना चाहिये।

अस्थिगत ज्वर—अस्थिगत ज्वर में वायुनाशक चिकित्सा करनी उपयुक्त है जैसे वस्ति कर्म, वातहर तैलों का अभ्यंग, देह पर स्नेह मर्दन आदि।

मज्जागत ज्वर तथा शुक्रगत ज्वर दोनों ही असाध्य हैं अतः शास्त्र इसकी चिकित्सा करने में मौन है। मज्जा तथा शुक्र देह की अन्तिम दो धातुये है अतः शेष धातुओं के ये सार हैं। इनके स्थानों को जब ज्वर आक्रान्त कर लेता है तब इसका कोई उपचार नही है।

उपरोक्त उपचारों में रसगतज्वर की चिकित्सा कफवत हुई, रक्तगत ज्वर की चिकित्सा पित्तवत हुई, मांसगत ज्वर की चिकित्सा वातवत हुई तथा मेदोगत ज्वर की चिकित्सा वात कफ नाशक हुई, अस्थिगत ज्वर की चिकित्सा वात वत हुई। अन्त के दोनों ज्वरों की चिकित्सा असाध्य बताई गई है। उपरोक्त चिकित्सा में जो दोष साम्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है वह पूर्ण साम्य तो नही रखता फिर भी एक ही श्रेणी में रखा जा सकता है। चिकित्सा खूब समझ के साथ ध्यान रख कर करें।

पित्तशामक द्रव्यों में चन्दन, खस, मुनक्का, पित्तपापड़ा आदि लिये जा सकते है जबकि वातशामक तैलों में महानारायण तैल, महाविषगर्भ तैल, तीव्र ज्वरावस्था में लाक्षादि तैल तथा चन्दनबला लाक्षादि तैल का अभ्यग किया जा सकता है। कफ को शमित करने में वमन का उपयोग प्रशस्त है।

आयुर्वेद के महर्षियों ने धातुगत ज्वरों को भी अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा है और उसके उपचार का भी जहां तक हो सका प्रयास किया है।

प्रलेपक ज्वर

सन्धि नामक कफ स्थान मे स्थित दोष के विकृत होने पर प्रलेप ज्वर होता है। इस ज्वर में रोगी पसीने से तर तथा देह गौरवयुक्त होता है। राजयक्ष्मा वाले को यह होता है। इसमें ज्वर मंद तथा अति कष्टसाध्य होता है। धातुओं का शोषण करने वाला होता है। प्रलेप ज्वर विषम न होने पर भी संधि रूप कफ स्थान में रहे हुए दोषों से उत्पन्न होता है। इसलिये सततादि विषम ज्वरों से यह भिन्न है तथा साथ भी लिया गया है।

प्रलेपक ज्वर राजयक्ष्मा विधि विसर्प आदि रोग वालों को होता है। इसमें प्रातः ज्वर मंद तथा अपराह्न और सायं बढ़ता है इस ज्वर में शरीर में पसीना बहुत होता रहता है। यह कफ तथा पित्त भी अधिकता से होता है और रस रक्त आदि धातुओं को सुखाता है।
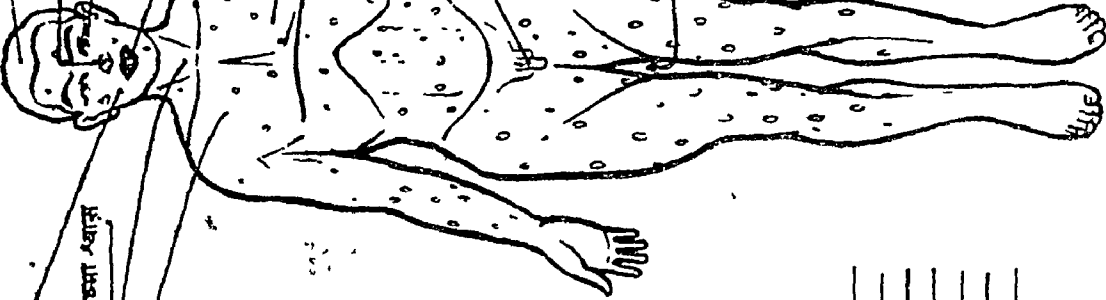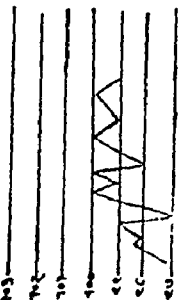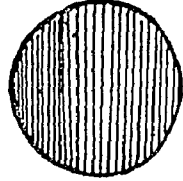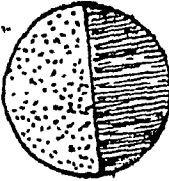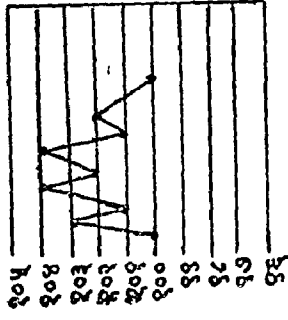
विवरण पृष्ठ १०७ पर देखें।

विवरण पृष्ठ ८५, १०१ पर देखें।

प्रलापक सन्निपात अर्थात इन्सेफेलाइटिस

डा० बी० एन० गिरि ए० एम० बी० एस०
पो० डंगरा (गया) विहार
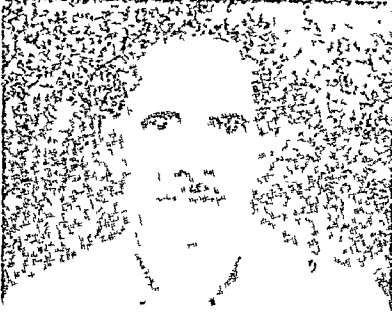
गत वर्ष अक्टूबर, नवम्बर में पूर्वी और उत्तरी भारत के कई प्रदेश विहार, आसाम, वंगाल, पूर्वी उत्तर प्रदेश आदि जगहों में यह महामारी के रूप में फैल गई जिससे हजारों लोग आक्रान्त (रोगग्रस्त) हुए और सैकडों लोगों की जीवन लीला समाप्त हो गई। आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सक इसे इन्सेफेलाइटिस (मस्तिष्क ज्वर) कहते है। यह एक प्रकार का संक्रामक रोग है। इसका आक्रमण वहुत ही भयानक रूप में होता है जिससे दो तीन दिन के अन्दर ही रोगी का वचना कठिन हो जाता है। केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारें और जनता इस रोग से भयभीत एवं त्रस्त हो गई तथा रोग पर कावू पाना मुश्किल और कठिन हो गया। चोटी के आधुनिक चिकित्सक परेशान है और कोई भी निश्चित चिकित्सा करना कठिन प्रतीत करने लगे। अतएव विश्व स्वास्थ्य संगठन से भी सम्पर्क किया गया फिर भी कुल मिलाकर विचार और अनुसंधान की ही वातें सामने आयी तथा रोग की व्यापकता की दृष्टि से सफलता नगण्य ही रही। जापान से भी रोग प्रशमन के लिए टीका (vaccine) मंगाये गये परन्तु जनसंख्या और रोग प्रसार को देखते हुए अपर्याप्त ही कहा जा सकता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक चिकित्सक इस रोग को मस्तिष्क शोथ (इन्सेफेलाइटिस) अथवा मस्तिष्कावरण शोथ के निकट मानते हैं। इसीके अनुरूप चिकित्सा व्यवस्था कर कितनी सफलतायें प्राप्त किये यह तो कहना कठिन है। परन्तु जहां तक जानकारी मिली है इस रोग में प्रमुखतः आक्षेपनाशक दवाये तथा हाइड्रोकार्टिसोन ग्रुप को, टेकाड्रोन, वेटनेसोल, होस्टाकार्टिन आदि दवायें ही व्यवहार में लाई जाती रही।

इन्सेफेलाइटिस के लक्षण—तीव्र ज्वर, भयानक शिरःशूल, आंखों से पानी गिरना, आंखे लाल, वमन, वेहोशी, गर्दन मे जकडाहट (मन्यास्तम्भ), शरीर मे ऐठन, प्रलाप, अर्ध अथवा पूर्ण मूर्च्छा तथा आंशिक पक्षाघात, कंपकपी (जाड़ा लगना) और श्वास नली अवरुद्ध होकर रोगी की मृत्यु तक हो जाती है।

प्रथम यूरोपीय महायुद्ध १९१८ के पश्चात् भारत में प्रथम बार ही महामारी के रूप में इन्फ्लूएन्जा फैला था. जिसमें लाखों लोग इस रोग से पीडित हुए थे और हजारों लोगो की मृत्यु हो गई थी। उस समय भी वड़े-वड़े आधुनिक चिकित्सक इस रोग को समझ नही पाये थे। इस रोग के निदान, चिकित्सा निर्णय करने के लिए एलोपैथिक चिकित्सकों के वोर्ड को कई मास का समय लग गया था, किन्तु भारतीय आयुर्वेद चिकित्सक समुदाय हाथ पर हाथ धरे वैठा नही रहा। कफ और वात दोष की प्रधानता समझकर एवं लक्षणों के आधार पर आयुर्वेदीय
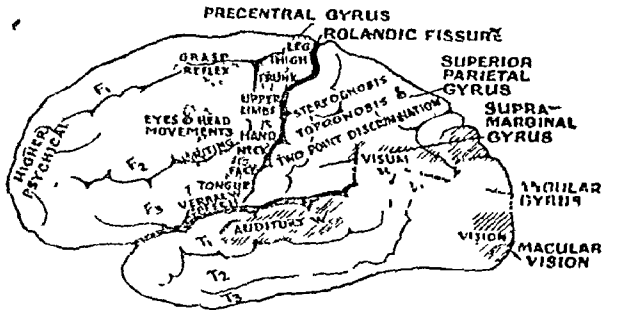
औषधियाँ निश्चित कर चिकित्सा करने मे ७०% से ८०% प्रतिशत तक सफलता प्राप्त किये थे। आज भी भारतीय आयुर्वेदज्ञ चिकित्सक वर्तमान "इन्सेफेलाइटिस" रोग की त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) सिद्धान्त के आधार पर चिकित्सा करने में सफलता प्राप्त किये होगे इसमें सन्देह

नहीं। क्योंकि आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति में त्रिदोष सिद्धान्त के आधार पर किसी भी अज्ञात रोग की चिकित्सा करना आयुर्वेदज्ञों के लिए कठिन नहीं है। कुछ माननीय आयुर्वेदज्ञ चिकित्सक इस रोग को क्रकच तथा अभिन्यास सन्निपात के अन्तर्गत मानते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण तो नहीं, अधिकांश लक्षण इन दोनों सन्निपातों में पाया जाता है। परन्तु मैं पूर्ण सहमत न होकर इसे प्रलापक सन्निपात के अन्तर्गत मानता हूं, जिससे एकाध को छोड़कर सम्पूर्ण लक्षण मिलते हैं। अतः यहां पर तीनों सन्निपातों को उद्धृत कर देना आवश्यक समझता हूं।

क्रकच सन्निपात—

प्रवृद्ध हीन मध्येस्तु वात पित्त कफैश्चयः।
तेन रोगास्त्र स्त्वोक्ता यथादोप वलाश्रयः॥
प्रलापायास सम्मोहा कम्प मूर्च्छाऽरति भ्रमाः।
मन्यास्तम्भेन मृत्युः स्यान्त त्राप्यैतद्विशेपतः।
भिषग्भिः सन्निपातोऽयं क्रकचः सम्प्रकीर्तितः॥

—माधव (मधुकोप)

अर्थात्—प्रलाप, अयास, सम्मोह, कम्प, मूर्च्छा, बेचैनी, भ्रम (चक्कर) गर्दन की जकड़ाहट (मन्यास्तम्भ) होकर मृत्यु हो जाती है।

अभिन्यास सन्निपात—

दोषत्रय स्निग्ध मुखत्व निद्रा
वैकल्य निश्चेष्ट न कण्ट वाग्मी।
बल प्रणाशः श्वसनादि निग्रहोऽ-
भिन्यास उक्तो ननु मृत्यु कल्पः॥ माधव

अर्थात्—इसमें तीनों दोषों के कोप के समान मुख मण्डल पर चिकनापन, निद्रा, बेचैनी, चेष्टाहीन, कण्ठ से बोलना, बल का नाश, श्वास आदि का रुकना ये लक्षण अभिन्यास सन्निपात में होते हैं, और मृत्यु के तुल्य हैं। इसकी मियाद १६ दिनों की है। अभिन्यास में तीनों दोप पाया जाता है। इसके लक्षण और वर्तमान इन्सेफेलाटिस के सम्पूर्ण तो नहीं अधिकांश लक्षण लगभग सामान्य हैं।

प्रलापक सन्निपात होने का कारण—शीतल गन्दी जगहों में रहने तथा घनी आवादी वाले गन्दी जगहों के निवास में रहने और वर्षा ऋतु का पानी का जमाव एवं गन्दगी भरा, कीचड़युक्त स्थान एवं मच्छर मक्खियों का विशेप प्रकोप बढ़ना जिससे एक स्थान से दूसरे स्थान पर इस रोग का फैलाव हो जाता है। वर्तमान इन्सेफेलाइटिस का आक्रमण उन्हीं स्थानों पर अधिक हुआ है जहां बाढ़ का प्रकोप अधिक होने के कारण आबहवा दूपित हुआ है।

प्रलापक सन्निपात—

कम्पप्रलाप परिताप न शीर्पपीड़ा प्रौढ़ प्रभापवमान
परोऽन्य चिन्ता
प्रज्ञाप्रणाश विकल प्रचुरप्रवादः क्षीप्रं प्रयातिपितृ
पालपदं प्रलापी॥ माधव।

अर्थात्—कम्प (जाड़ा लगना), बड़बड़ाना, सन्ताप, शरीर में भयंकर पीड़ा (दर्द), पवित्रता में आसक्त, चिन्ता करे, बुद्धि का नाश, बेचैनी, बहुत बकवास करना आदि। इस रोग में वात पित्त कफ इन तीनों दोपों का अधिक कोप होने से तीव्र ज्वर एवं रोगी बकवास करता है। शरीर कांपता, गर्दन में जकड़ाहट, श्वास, मूर्च्छा, वमन, दाह, जाड़ा लगना, बेहोशी, शिर में भयंकर दर्द होता है। शरीर में ऐंठन, शरीर के अवयवों में दर्द, आंखें लाल, आंखों में पानी गिरना, बुखार का बढ़ना, आंखें मुंदना, मुंह खुला रखना तथा उत्तर न देना, वधिरता, जीभ पर छाले पड़ना दन्त, मसूढे, ओष्ठों में किसी-किसी को फुन्सियां निकलना। रोगी दो तीन दिन में ही कमजोर हो जाता है जिसके कारण आक्षेप होता है। बुखार १०५ से १०६ तक बढ़ जाता है, नाड़ी की गति १२० तक हो जाती है। किसी-किसी को आंतों से रक्त मिश्रित दस्त तथा नाक से रक्त गिरता है। ६-७ दिन पश्चात् हाथ, तलुओं एवं छाती पेट आदि में किसी किसी को काले रंग की दाग अथवा फुन्सियां दिखाई देती हैं। इसकी मियाद १४ दिनों की होती है। परन्तु यदि आक्रमण तीव्र होता है और चिकित्सा में विलम्ब होती है तो तीन चार दिन में ही रोगी की मृत्यु हो जाती है।

सावधानी—यह एक प्रकार के संक्रामक रोग के अन्तर्गत है। इसलिए रोगी का मल, मूत्र, वमन को दूर फेंकवा देना चाहिए अथवा गड्ढा खोद कर गड़वा देना चाहिये जिससे मक्खियों के द्वारा रोग का फैलाव न हो सके। रोगी का जूठा किसी को न दें एवं साफ, सुथरा, हवादार और उजाले वाले कमरे में रोगी को रखा जाय इस कमरे में गूगल, लोहवान, देवदार, नीम के पत्ते, गन्धक

कपूर, घी, चावल मिलाकर जलायें तथा बिछावन आदि धूप में सुखायें।

चिकित्सा—

(१) त्रैलोक्य चिन्तामणि रस(भै० र०) २ रत्ती= २५० मिली ग्राम।
वृहद कस्तूरी भैरव रस (भै० र०) ४ रत्ती ५०० मिली ग्राम।

दोनों मिलाकर ४ मात्रा बनायें और अदरख स्वरस तथा मधु से दिन रात में चार मात्रा दिया जाना चाहिए।

इसका प्रभाव त्रिदोषनाशक, बलवीर्यवर्द्धक, दोष प्रकोप को शान्त करने के साथ-साथ तापमानाधिक्य Rise of tempera ture को दूर कर तापमान को स्वभाविक पर ले आता है और संजीवनी शक्ति प्रदान के साथ ही पक्षाघात, आक्षेप, धनुष्टंकार, अंगों का जकड़ना आदि दूर होता है।

(२) वृहद वात चिन्तामणि रस (भै० र०) २ रत्ती २५० मिली ग्राम,
पंचानन रस (र० सा० संग्रह) ४ रत्ती ५०० मि.ग्रा
ब्राह्मी वटी (सिद्ध योग संग्रह) ४ रत्ती ५०० मि. ग्रा.

तीनों को मिलाकर ६ मात्रा बनायें और लौंग तथा जटामांसी क्वाथ एवं मधु के साथ दिन रात में ४ मात्रा दें। इसका प्रभाव वात एवं पित्त प्रधान रोगों में और निद्रानाश, मस्तिष्क, ज्ञान वाहिनी नाड़ियों के दोष से पैदा हुई बिमारी, पित्त युक्त वायु, कफ युक्त वायु, मस्तक पीड़ा, प्रलाप, शीतांग, त्रिदोष ज्वर, विषम ज्वर, दाह, मूर्च्छा, बेहोशी, ऐंठन, चक्कर, हृल्लास, मूकता, बधिरता आदि को दूर करता है।

(३) महावात विध्वंसन रस (भै०र०) २रत्ती २५० मिग्रा.
सर्वज्वर हर लौह (र०सा०सं०) ६ रत्ती ७५० मिग्रा.
योगेन्द्र रस (भै० र०) २ रत्ती २५० मि. ग्राम

तीनों को मिलाकर ६ मात्रा बनायें और पान स्वरस तथा तुलसी स्वरस और मधु के साथ दिन रात में ४ मात्रा दें। इसका प्रभाव वातवाहिनियों, वात संस्थानों पर क्षोभ नाशक एवं मन्यास्तम्भ (गर्दन की जकड़ाहट), आक्षेप नाशक, कीटाणु नाशक, शूलघ्न, त्रिदोष एवं ज्वर नाशक, व्याकुलता, निद्रानाश, पक्षाघात, मुखपाक, पित्त प्रकोप-जन्य दाह, वमन, तृष्णा, विशेषकर मस्तिष्क वात वहा नाड़ियों पर पड़ता है।

नोट—प्रति दो घन्टे पर एक न एक योग की मात्रा पारी-पारी से देनी चाहिए। इस तरह दिन रात में कुल बारह मात्रा तक दिया जाना चाहिये। रोग की उग्रता जैसे-जैसे कम होने लगे दवा की मात्रा दो घंटे की बजाय तीन अथवा चार घन्टे के अन्तर से पारी-पारी से दिया जाय। इस तरह इस रोग पर यथाशीघ्र काबू पा लिया जाता है।

मालिश के लिए—निरामिष महामाष तैल, महानारायन तैल और कपूर चूर्ण मिलाकर ऐंठन स्थान पर एवं सिर में मालिस करायें। साथ ही ऐंठनयुक्त स्थान को सेक भी करायें।

इंजेक्शन—(१) महावात विध्वंसन रस (सिद्धि) हृदयामृत (मार्तण्ड) दोनों को मिलाकर सुबह में उम्र के अनुसार उचित मात्रा में मासान्तर्गत प्रतिदिन दें।

(२) स्मृतिदा, तापीकर (मार्तण्ड) दोनों को मिला कर उम्र के अनुसार उचित मात्रा में प्रतिदिन साम को एक इंजेक्शन मासान्तर्गत दें।

पथ्य—बिजदाना का स्वरस दिन रात में कई बार पिलायें। जब रोग शान्त होकर रोगी कुछ खाने लायक हो जाय तब मूंग का यूश पिलायें।

मुझे १८ रोगियों की चिकित्सा करने का अवसर मिला। १० बच्चे, ३ स्त्रियां, ५ पुरुष, जिसमें ३ बच्चे, १ स्त्री, १ पुरुष की मृत्यु हो गई। शेष उपरोक्त चिकित्सा के द्वारा आरोग्य हुए। इस रोग में वात पित्त कफ की अधिकता एवं तीव्र ज्वर, कम्प, मूर्च्छा, बेहोशी, वमन, दर्द आदि पर विचार कर ही औषधियों का योग निश्चय किया था जिससे अधिक सफलता मिली है। बच्चों की मात्रा उम्र के अनुसार कम अथवा वैसी आवश्यकता के अनुसार दिया जाना चाहिये।

वातकफज्वर

विवरण पृष्ठ ८५, १०१ पर देखें।

कफपित्तज्वर
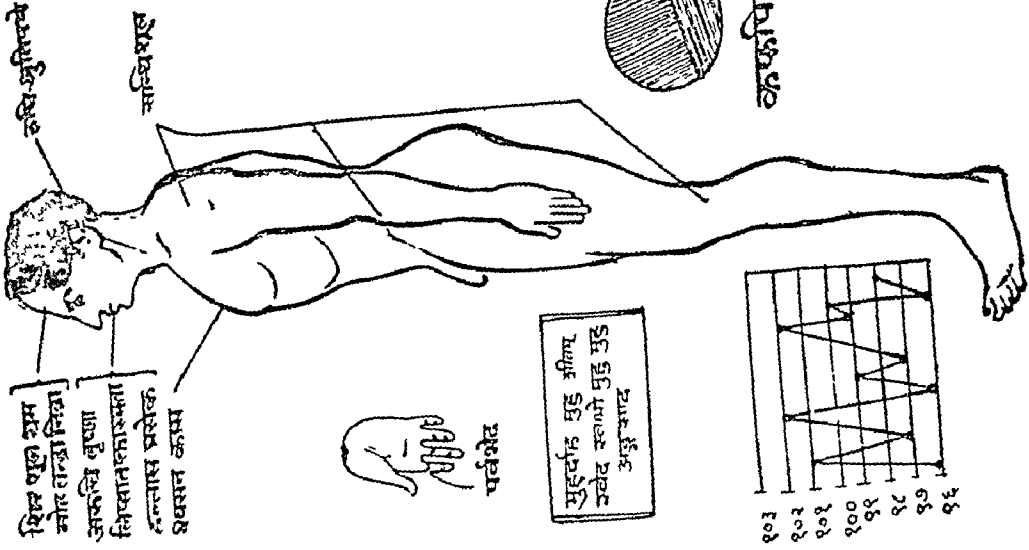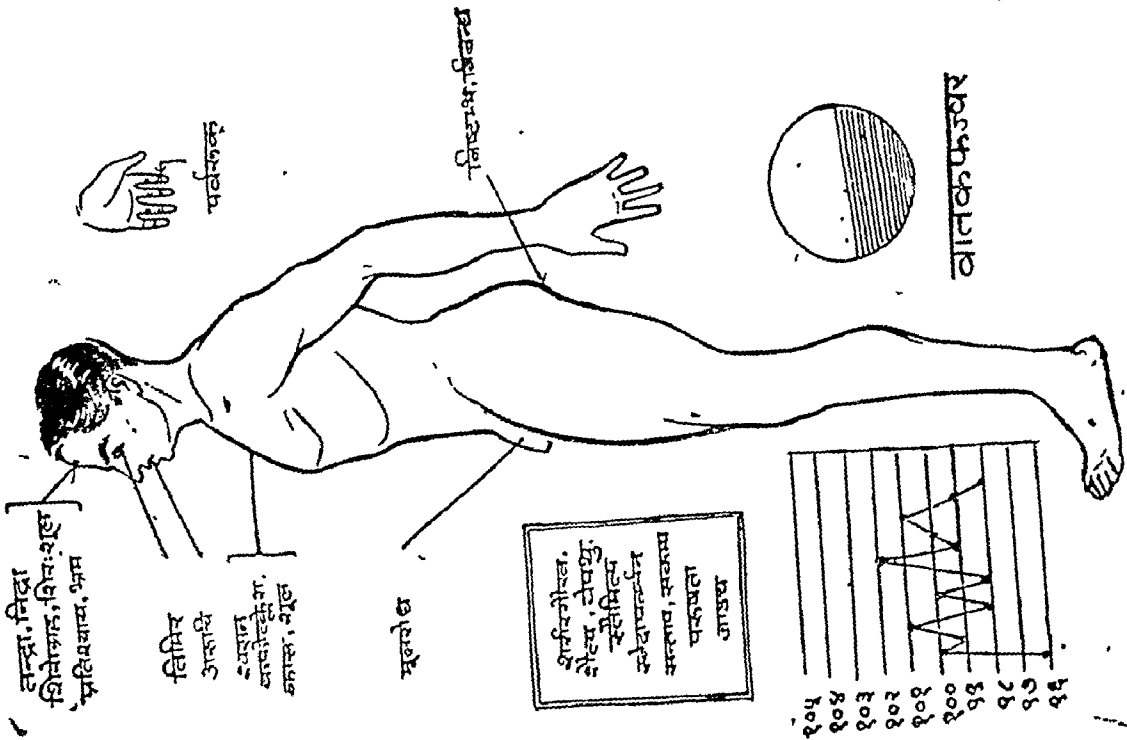
विवरण पृष्ठ ८५, १०१ पर देखें।

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु०.केशरी (विशेष सम्पादक)

आगन्तु ज्वर चार प्रकार के वर्ग के होते हैं। ये हैं— अभिघातज, अभिषङ्गज, अभिचारज तथा अभिशापज।

अभिघातज ज्वर—विभिन्न प्रकार के आघात से, मिट्टी का ढेला, पत्थर, चाबुक, काष्ठ, मुष्टिक प्रहार, दांत, नख, पद-आघात तथा अन्य किसी भी प्रकार के आघातों की चोट से क्षत, दाह, श्रम से ज्वर आता है उसको अभिघातज ज्वर कहते हैं। इस वर्ग के ज्वरों में वायु रक्त, माँस आदि को दूषित कर पीड़ा, शोथ, वैवर्ण्य, क्षत, श्रम आदि की पीड़ा के कारण ज्वर उत्पन्न हो जाता है। श्रम, धातुओं के क्षय और अभिघात से वायु कुपित होकर रस-वह स्रोतों द्वारा समग्र शरीर में व्याप्त होकर ज्वर उत्पन्न करता है।

अभिघातज ज्वर में प्रथम पीड़ा होती है। तदन्तर दोषानुबन्ध के कारण ज्वर होता है। निश्चय ही इन ज्वरों में भी दोष प्रधान लक्षण सामने आते हैं। इसी के आधार पर दोषों की कल्पना करनी चाहिए। अति धूम्र के सेवन से श्वास, हिक्का,-आध्मान, कास, आंखों में जलन, ललाई, धूम्रयुक्त निःश्वास, धूम्र गन्ध का ही ज्ञान होना, सुनने में बाधा होना, प्यास अधिक लगना, दाह, अवसाद, मूर्छा आदि लक्षणों के साथ ज्वर का होना, बिजली के जलने से अतिदाह के साथ ज्वर, भ्रम, मूर्छा तृषा आदि लक्षण होते हैं। अग्निदग्ध होने पर ज्वर के तृषा, मूर्छा, फोड़े फफोले उठना, अतिदाह, सन्ताप, भ्रम, क्रमशः प्यास बढ़ना आदि लक्षण होते हैं। इसी प्रकार अतिश्रम से अङ्गों में पीड़ा, तन्द्रा, ग्लानि, सन्धियों की शिथिलता, स्वेदाधिक्य ये लक्षण होते हैं। उपरोक्त लक्षणों के साथ दोषों की प्रधानता का अङ्कन करना चाहिए।

अभिषंगज ज्वर—काम, शोक, भय और क्रोध इसके उत्पन्न होने से देवादि ग्रहों के आवेश से जीवाणुओं के देह में प्रवेश होने से जो ज्वर होता है उसको अभिषंगज ज्वर कहते हैं। विषैले उद्भिजों की वायु के स्पर्श से अन्य स्थावर-जंगम विषों के भक्षण आदि से और सविष प्राणियों के दंश स्पर्श आदि से जो ज्वर आता है उसको भी कई आचार्य अभिषंगज ज्वर ही मानते है। काम, शोक, भय से वायु का प्रकोप होकर ज्वर का होना, क्रोध से पित्त का प्रकोप होता है अतः यह पित्त ज्वर होता है। भूताभिषंग से तीनों दोषों का प्रकोप होता है अतः यह सन्निपातज ज्वर सा प्रतीत होता है। इन ज्वरों में दोष लक्षणों के अतिरिक्त आगे आने वाले इन ज्वरों में विशिष्ट लक्षण भी होते है। काम ज्वर में वासना का ध्यान, निःश्वास, मन का भ्रंश, तन्द्रा, आलस्य, अरुचि, हृदयशूल, देह सूखना, इन्द्रियों का मोह, देह दाह, मज्जा निद्रा बुद्धि धैर्य का क्षय लक्षण होते हैं। शोकज ज्वर में रोना, प्रलाप लक्षण होते हैं। भय से उत्पन्न ज्वर होने में डरना, प्रलाप लक्षण होते हैं। क्रोध से उत्पन्न ज्वर मे शरीर कांपना, सिरदर्द और खीजना ये लक्षण होते हैं। विषैली औषधियों के गन्ध से जो ज्वर होता है उसमें मूर्छा, शिरःशूल, वमन, छींक आना आदि लक्षण होते हैं। विष से उत्पन्न ज्वर में चेहरे पर श्यावता, दाह, अतिसार, हृदयशूल, अरुचि, तृष्णा, सूचिका चुभने सी पीड़ा, मूर्छा, मद, छाती में जकड़न, लक्षण होते हैं।

ग्रहावेश से होने वाले ज्वर में प्रलाप, मानसिक उद्विग्नता, रोना, हंसता, देह कम्पन, अमानुषीय लक्षण होते हैं।

उपरोक्त सभी ज्वरों में प्रथम ज्वर होकर तदन्तर अन्य लक्षण पैदा होते हैं। कभी अन्य लक्षण पहले दृष्टिगत होते हैं तदन्तर ज्वर होता है। कभी दोनों ही लक्षण ज्वर

तथा अन्य लक्षण एक ही साथ होते हैं। इन ज्वरों में कभी प्रत्यक्ष ज्वर न भी हो तो मानसिक ज्वर लक्षण अवश्य हो जाते है।

अभिचारज ज्वर तथा अभिशापज ज्वर—मन्त्रसिद्ध पुरुषों के मन्त्राघात से तथा उनके वचनों से अभिचारज या अभिशापज ज्वर होता है। इनमें त्रिदोषज ज्वरों के लक्षण होते हैं, ये मोह तृषा आदि लक्षणों से युक्त होते है। यों ये दोनों ही प्रकार के ज्वर दुःसह होते है। अभिचार तथा अभिशाप के रूप विभिन्न होने से इस ज्वर के रूप विभिन्न होते है। अभिचार तथा अभिशाप के प्रयोग का ज्ञान स्वय देखकर, प्रत्यक्ष से, आप्त पुरुष से सुनकर शब्द प्रमाण से अथवा अभिचार व अभिशाप की शांति के लिये किये हुए कर्मों से ज्वर की शांति होती हुई। देखकर अनुमान से होता है। अभिचार से प्रथम चित्त मन में और पीछे देह में सन्ताप होता है तथा विस्फोट, तृपा, चक्कर, दाह, मूर्छा लक्षण होते है।

इनकी चिकित्सा भी युक्तिपूर्वक करनी चाहिये जैसी परिस्थिति हो वैसी चिकित्सा ही करनी चाहिए। दोषज, मानसिक, यज्ञ आदि के द्वारा।

मारक विषम ज्वर

दोषो अल्पोहित सम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः।
धातु मन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम्॥ (७१९)

ज्वर से मुक्त हुए रोगी के अहितकर आहार विहार आदि आचरणों के कारण हीन वल त्रिदोष पुनः वल प्राप्त कर रस रक्तादि धातुओं में से किसी एक धातु को दूपित कर पुनः ज्वर उत्पन्न कर देते हैं। इसे विपम ज्वर कहते है।

टीका—तत्र विपमज्वरस्य निदान कथन पूर्विका संप्राप्तिमाह दोष इति। अयमर्थ—ज्वरोत्सृष्टस्य ज्वरेण त्यक्तस्य। सन्निकृष्टहेतुमाह—दोषऽल्प=ज्वर मुक्ताः स्वल्पोऽपि। विप्रकष्टहेतुमाह—अहितम्= आहार विहारादि, तेनसम्भूतः सम्पूर्णो जातः।

यहां पर यह भी समझना चाहिए कि—इस श्लोक में विपम ज्वर के निदानों को प्रथम कहते हुए उसकी सम्प्राप्ति को भी कहते है और ज्वरोत्सृष्टस्य पद का ज्वर से मुक्त हुए व्यक्ति के यह अर्थ समझना चाहिये। और थोड़े वल वाले वातादिक दोपों को सन्निकृष्ट कारण तथा 'अहितकर आहार विहारादि को विप्रकृष्ट निदान समझना चाहिए।'

अन्यतमं धातु=रसरक्तादिकम्, प्राप्य-दूपयित्वा, पुनर्विपमज्वरं करोति। ज्वरोत्सृष्टस्य येति। वा शब्देनेति वोध्यते, प्रथम तो विपम ज्वरोभवति। यत उक्तम् आरम्भाद्विपमो-यस्त्वि इत्यादि।

अन्यतमं धातुम् इन पदो में रस रक्तादि धातुओं में से किसी एक धातु को तथा 'प्राप्य' पद का प्राप्य होकर अर्थात् दूपित करके यह अर्थ समझना चाहिये। 'ज्वरोत्सृष्टस्य वः' इस स्थल पर 'वा' शब्द के प्रयोग करने से यह समझना चाहिए कि—प्रथम से ही विपम ज्वर होता है क्योंकि शास्त्र में कहा भी है कि आरम्भ से ही जो विपम ज्वर होता है उसे असाध्य जानना चाहिए। 'अन्तकमिवमारकत्वात्॥

(भाव प्रकाश ११९ ज्वराधिकार)
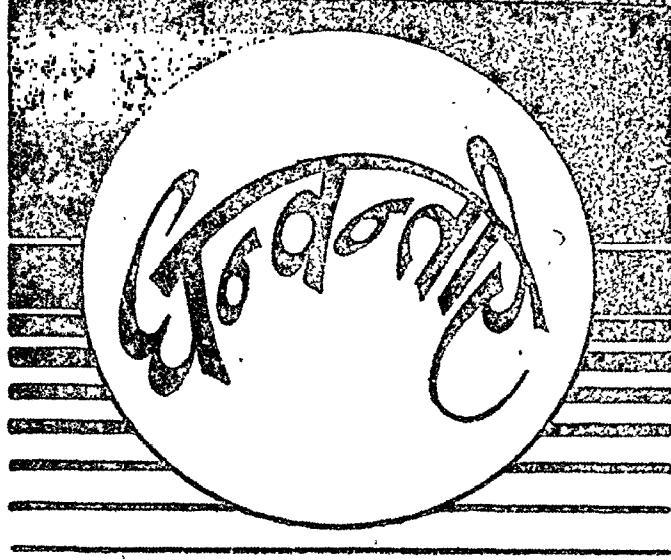
ज्वर चिकित्सांक

विषम ज्वर खण्ड

फरवरी+मार्च १९८२

—प्रकाशक—

देमैल आयुर्वेद संस्थान अलीगढ़

विषम ज्वर

वैद्य श्री देवीदत्त व्यास सेवा निवृत्त उपनिदेशक
आयुर्वेद विभाग, शास्त्री नगर, जोधपुर।
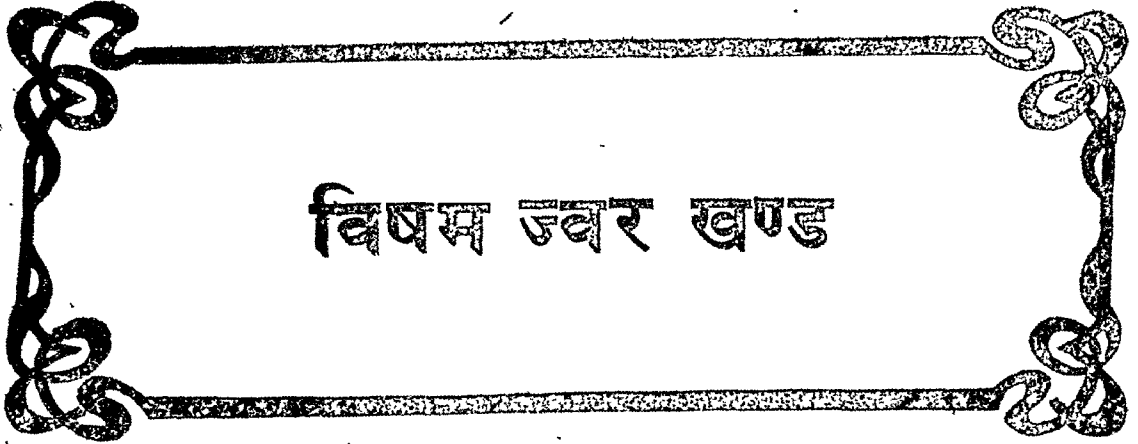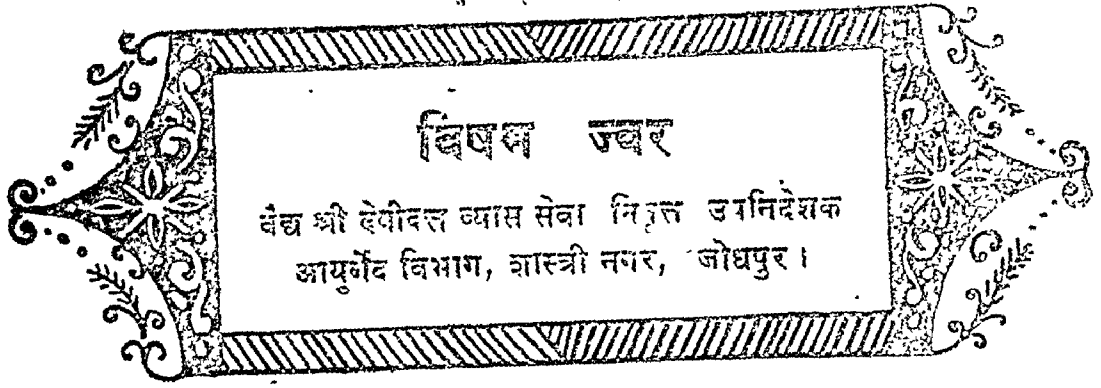
ज्वर पारिभाषिक शब्द है। यह उस स्थिति को प्रकट करता है जिसमें शरीर का ताप सामान्य से बढ़ जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का ताप उसकी प्रकृति के अनुसार निश्चित रहता है जिसे उस व्यक्ति की सामान्य स्थिति कहते हैं। जब यह तापक्रम देह का बढ़ने लगता है तब वह ज्वर कहलाता है—

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वांग ग्रहणं तथा।
विकारा युगपद्यस्मिन ज्वरः सपरिकीर्तितः॥
—सु० उ० अ० ३९/१२

तापवृद्धि के साथ पसीना न आना तथा सारा देह जकड़ जाना ज्वर का सामान्य परिचायक है।

ज्वर की संख्या संप्राप्ति आठ बताई है 'ज्वरोऽष्टधा' इनमें सात निज की दोष दुष्टी द्वारा तथा आठवां आगन्तुक कहा है। आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायशो विषम ज्वरः—च.चि.२३ और आगन्तु ज्वर 'अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषंगतः' चार प्रकार से होता है। इन चार में 'केचिद्भूताभिषंगोत्थं ब्रुवते विषम ज्वरम्' सु. उ. तं. अ. ३९ इस प्रकार एकीय मत को सुश्रुत ने मान्यता दी है। यह वर्तमान में आधुनिक विचारसारणी से पूर्णतया सुस्पष्ट होता है। वैद्यक ग्रंथों में ज्वर के आठ भेद-तीनों दोषों से सात व आठवां आगन्तु कहा है, इनका विचार भी बड़ी गंभीरता से किया है। क्योंकि आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि सभी प्रकार के विकारों में वात पित्त कफ का तारतम्य चिकित्सक को चिकित्सा के पूर्व करना अपेक्षित है क्योंकि—

'आगन्तुरन्वेति निजं विकारं निजस्तथागन्तुमपिप्रवृद्धः' इसलिये सर्वत्र रोगी में दोष का अनुबन्ध तथा रोगी की प्रकृति को समझ कर चिकित्सा करे। क्योंकि आगन्तु रोगों में यद्यपि रोग की उत्पत्ति पीड़ापूर्वक प्रारम्भ होती है किंतु इसके पश्चात् वात पित्त कफ की विषमता बन ही जाती है। आगन्तुर्हिव्यथापूर्वो ज्वरोऽष्टमो स किंचित्काल-मागन्तुः केवलोभूत्वा पश्चाद्दोषैरनुबध्यते—

मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्नि ज्वरदास्युःरसानुगाः॥

अर्थात् दोष पहिले आमाशय में प्रवेश कर आग्नेय द्रवों से मिलकर देह के प्रथम धातु रस के साथ होकर रस-वह स्रोतों के मुंह को बंदकर अग्निस्थान से अग्नि को बाहर फेंककर समस्त देह में सन्ताप उत्पन्न कर देता है जिसे ज्वर कहते है। विषम की परिभाषा आचार्य भालुकि ने इस प्रकार कही है—

यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च।
वेगतश्चापि विषमो ज्वरः स विषमः स्मृतः॥

इस प्रकार की स्थिति को बारी से आने वाला बुखार कहा जाता है। यह बारी दिन रात में एक एक बार आने से सतत, दिनरात में एक बार आने से अन्येद्यु, एकान्तर से आने वाला तृतीयक, दो दिन छोड़ कर आने वाला चतुर्थक, या प्रलेपक आदि भेद किये जा सकते हैं।

चिकित्सा—

चिकित्सक को रोगी की प्रकृति एवं रोग लक्षणों से दोषों का निश्चय कर औषधि प्रयोग करने से सद्यः सफलता प्राप्त होती है—महासुदर्शन चूर्ण २ ग्राम से ५ ग्राम तक धासा बना कर दिन में तीन बार दिया जावे, यह ज्वर शमन के लिए अमोघ प्रयोग है। यह शतशोऽनुभूत है।

गोदन्ती भस्म (निम्बपत्र रस की सात भावना वाली तथा करेले रसकी ३ भावना वाली) १ ग्राम से २ ग्राम तक जल या मधुके साथ दी जावे। अनुभूत है। जयमंगल रस १ से २ गोली तक स्याह जीरा के धासे को कदुष्ण कर दी जाय।

मलेरिया

डा० सुरेश शर्मा 'मानव' L. I. M. A. आयुर्वेद रत्न
गंगा आरोग्य सदन, देवनगर (पुष्कर) अजमेर

यह रोग गर्म और तर जलवायु में अधिक प्रसार पाता है। इसके Parasites का मानव शरीर में प्रवेश मच्छरों द्वारा होता है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को यह रोग नहीं लग सकता, क्योंकि यह छूत की बीमारी नहीं। मच्छर कई प्रकार के होते है जिनमें एक जाति विशेष एनोफिलीस (Anopheles) की मादा के द्वारा ही इस रोग का प्रसार होता है। यह मच्छर जब किसी मलेरिया के व्यक्ति को काटता है तो मलेरिया के कायाणु उक्त मच्छर के पेट में पहुंच कर पलते है। इसके बाद तो वह जिसे भी काटेगी उसके रक्त में वे कायाणु प्रविष्ट होंगे और मलेरिया होगा। यह वर्षा ऋतु के दिनों में या तर स्थानों पर अधिक पैदा होते है। इसलिए मच्छरों को खत्म कर हम मलेरियां पर एक हद तक विजय पा सकते है।

मलेरिया कायाणु की चार उपजातियां—

(१) सौम्य तृतीयक (२) गंभीर तृतीयक (३) चतुर्थक (४) अति सौम्य तृतीयक।

इनके अतिरिक्त २ उपजातियां और है वे है—

(i) Plasmodium tenue

(ii) Plasmodium knowlesi

(१) सौम्य तृतीयक—यह प्लाज्मोडियम वाइवेक्स (Plasmodium Vivax) नामक सबसे अधिक पाया जाने वाला प्रकार है। यह ४८ घन्टों पश्चात् ज्वर उत्पन्न करता है। इसे Benign Terian भी कहते है।

(२) यह प्लाज्मोडियम फैल्सीपैरम (P.Falcipeum) अत्यन्त तीव्र होता है यह Vivax के बाद सबसे अधिक पाया जाने वाला है। यह २४ से ४८ घण्टों बाद ज्वर पैदा करता है। इसे Subtertion भी कहते है।

(३) इसे Quartan Plasmodium Malaria कहते हैं। यह ७२ घन्टों बाद ज्वर उत्पन्न करता है व कम पाया जाता है।

(४) यह प्रकार Ovale, Tertion Plasmodium ovale बहुत कम पाया जाता है। इसके द्वारा ज्वर की उत्पत्ति ४८ घन्टों बाद अत्यन्त सौम्य होती है।

(i) प्लाज्मोडियम टेन्यूई—यह शायद फैल्सीपैरम का ही एक प्रकार है।

(ii) प्लाज्मोडियम नोलेसी—यह कायाणु बन्दरों में विषम ज्वर उत्पन्न करता है।
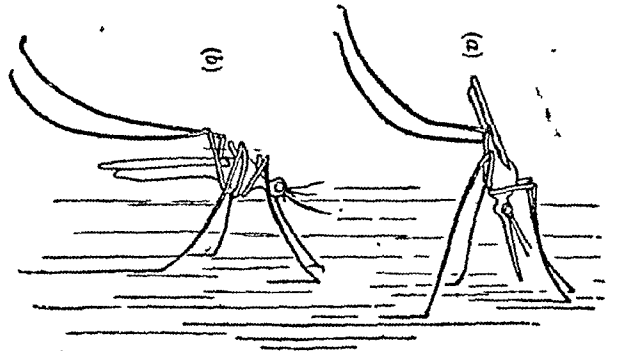
एक दीवाल पर बैठे दो प्रकार के मच्छर

(a) एनाफिलिस—पिछला भाग ऊपर की ओर करके बैठता है। मलेरिया के लिए यही मच्छर उत्तरदायी है तथा अधिक खतरनाक है। इसके पंखों पर बिन्दु होते हैं।

(b) क्यूलैक्स—दीवार पर यह समतल बैठने के कारण आसानी से पहिचाना जा सकता है।

उपर्युक्त कायाणुओं के जीवन में कई अवस्थाएं होती है। ये मच्छर के दंश के साथ शरीर में पहुंच कर रक्ताणुओं में प्रविष्ट हो जाते है। फिर इनके निश्चित समयानुसार उन रक्ताणुओं में से निकलते है। इससे R.B.C. (रक्ताणु) का नाश होता है। कायाणु जब रक्त रस (Plasma) में पहुंच कर विष छोड़ते हैं तो ज्वरोत्पत्ति होती है जिससे ही रक्त क्षय (Anaemia) होता है और प्लीहा को अधिक कार्य करना पड़ता है। प्लीहा के अधिक कार्य के कारण ही उसकी शोथमय वृद्धि होती है।
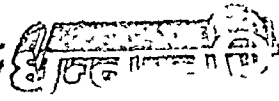
कभी-कभी जब किसी एक जाति के कायाणु भिन्न-२ समय में शरीर में प्रवेश कर वही ज्वर का आक्रमण भिन्न-भिन्न समय पर करेंगे जैसे एक ही प्रकार के कायाणु सुबह, शाम व रात को प्रवेश करते हैं, सो उनके समयानुसार ही ज्वर का आक्रमण कई बार होगा। जिससे सन्तत प्रकार का ज्वर हो सकता है।

मलेरिया चिकित्सा को प्रधान रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है। (१) बचाव (२) निवारण।

बचाव के उपायों में वे सब अवस्थाएं समाप्त करने का प्रबन्ध करना आवश्यक है, जो मच्छरों के विरुद्ध कार्य करती हैं और उन्हें वृद्धि के अवसर प्रदान करती हैं। नमी, गर्मी, पानी वाले स्थान में डी.डी.टी. और मिट्टी का तेल मिलाकर डालना चाहिए। मच्छरदानी का प्रयोग करे। स्वास्थ्य ठीक रखें ताकि रोग का आक्रमण न हो सके। वर्षा ऋतु आदि में जब इस रोग के अधिक प्रसार का भय रहता हैउस अवस्था में रोग प्रतिषेध के लिए औषधियां खिलानी चाहिए। ऐसी औषधियों में प्रमुख क्लोरोक्वीन

मच्छरों के जीवन की विभिन्न अवस्थायें

तीन प्रकार के विषम ज्वरों का तापमान चार्ट

(Chloroquin) इससे निर्मित दवाएं जैसे—नेवाक्वीन, पामाक्वीन, मेपाक्वीन नामक गोली विशेष आराम देती है। ध्यान देने की विशेष बात है, कि रोगी से मच्छर दूर रहें जिससे मच्छर वहां से जीवाणु को न चूस सके।

मलेरिया रोग के निवारण में वे सभी विधान काम लें जो ज्वर नाशक हों।

विरेचन कराना हितकारक है। द्रव्यों में उत्तम क्विनीन है। बच्चों के लिए विशेष रूप से कुछ कम कड़वा द्रव्य यूक्वीनीन के नाम से आता है। इसी द्रव्य की अनेक नामों से गोलियां व सूचीवेध तैयार करती हैं। किन्तु इन के प्रयोग में सावधानी विशेष रखने की है क्योंकि ये औषधियां विशेष दुष्प्रभाव रखती हैं।

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥

अयमर्थः—ज्वरोत्सृष्टस्य ज्वरेण त्यक्तस्य । सन्निकृष्टहेतुमाह । दोषः ज्वरेण त्यक्तस्य । सन्निकृष्टहेतुमाह । दोषः अल्पः ज्वरमुक्तः स्वल्पोऽपि विप्रकृष्टहेतुमाह । अहितम् आहारविहारादि तेन सम्भूतः सम्पूर्णो जातः अन्यतमं धातुं रसरक्तादिकं प्राप्य दूषयित्वा पुनर्विषमज्वरं करोति । ज्वरोत्सृष्टस्य वेति वाशब्देन इति बोधयते, प्रथमतो प्रथमतो विषमज्वरो भवति । यत उक्तम् "आरम्भाद्विषमोयस्तु" इति ॥

ज्वरत्यक्त मनुष्य के अवशेष रहे अल्पदोष भी अहितकारक आहार विहारादि के सेवन करने से पुष्ट होकर रस तथा रक्तादि किसी धातु को दूषित करके विषमज्वर को उत्पन्न करता है । स्वल्पदोष ही विषमज्वर के सामीप्य के कारण हैं । अहितकारक आहारविहारादि दूर के कारण हैं ऐसा समझना । मूल श्लोक में 'वा' शब्द जो उससे ऐसा जानना कि आरम्भ से ही विषमज्वर होता है अर्थात् किसी अन्य ज्वर के बिना ही उत्पन्न हुए, प्रारम्भ से ही विषमज्वर हो सकता है । कहा भी है कि "आरम्भ से ही जो विषमज्वर होता है वह मनुष्य को मार देता है ।

जब कुपित हुए दोष मनुष्यों के रस धातु में व्याप्त होते हैं, तब सन्तत ज्वर को उत्पन्न करते हैं । जब रक्त में स्थित होते हैं तब ही सतत ज्वर को उत्पन्न करते है। जब मांस में स्थित होते है तब अन्येद्युष्क ज्वर को उत्पन्न करते हैं, और जब मेद में स्थित होते हैं तब यह तृतीयक ज्वर को उत्पन्न करते है और जब अस्थि (हड्डी) में स्थित होते हैं तब चातुर्थिक ज्वर को उत्पन्न करते हैं । तब मज्जा में व्याप्त होता है तब घोरकाल के समान प्राणनाशक रोगों के समूहरूप (द्वादशानि) बारह दिन से अथवा एक कालिक १ वर्ष भर में एकबार होता है । जो ज्वर अनियमित काल (बिना समय) में आता है, जो शीत लगकर या उष्णता (दाह) से चढ़े तथा जिसका वेग विषम हो उसको विषम ज्वर कहते है ।

विषम ज्वर भेद—विषम ज्वर के सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थिक यह पाँच भेद है ।

जो ज्वर सात दिन तक, दश दिन तक अथवा बारह दिन तक निरन्तर एकसा चढ़ा रहे, छूटे नहीं, उसको सन्तत ज्वर कहते हैं । यहां सात, दश और बारह दिन का जो विकल्प किया है वह वात, पित्त, कफ के भेद से जानना ।

शङ्का—उतर कर फिर चढ़ आवे, यह विषम ज्वर का लक्षण है तो इस सन्तत ज्वर को विषम ज्वर में कैसे मानते है ?

समाधान—विषम ज्वर के लक्षण सन्ततज्वर में घटते ही हैं इस कारण कोई दोष नहीं, क्योंकि चरक कहते हैं कि—बारहवें दिन उत्तम रीति से मुक्त होकर पश्चात् बहुत समय तक स्थित रहता है और शांत होना बहुत दुर्लभ हो जाता है । "प्रथम सन्तत आदि जो पांच ज्वर कहे है उनमें से संतत ज्वर को छोड़ कर शेष चार को विषम ज्वर जाने ऐसा खरनाद का मत है । सन्तत ज्वर बहुत दिन में मुक्त होता है इसी अभिप्राय से संतत को विषम ज्वर नहीं माना है । जो ज्वर अहोरात्र में एकबार आवे उसको अन्येद्युष्क कहते है । यह ज्वर दोषों की अपेक्षा से दिन रात में एकबार आता है, किन्तु वह अपने

बढ़ने के पहिले समय को त्याग कर अन्य समय में आता है ऐसा जानना। कारण यह है कि पहिले समय में दोष की स्थिति हृदय में रहती है।

जो ज्वर तीसरे दिन आता है उसको तृतीयक ज्वर कहते हैं। (तिजारी) और चौथे दिन आता है उसको चातुर्थिक (चौथिया) कहते हैं, तीसरे दिन और चौथे दिन आने वाले ज्वरों में जिस दिन ज्वर आता है उस दिन को भी लगा लेना चाहिए क्योंकि बीच में एक दिन को छोड़ कर जो ज्वर आता है उसीको तृतीयक कहते हैं और बीच में दो दिन छोड़कर जो ज्वर आता है उसको चातुर्थिक कहते हैं।

यहां पर अब हम कुछ प्रयोग लिख रहे हैं जिन्हें पाठक काम में लेवें और लाभ उठावें—

पीपर चूर्ण १-२ ग्राम, मधु के साथ दिन में ३ बार अथवा निशोथ (गूंदिया) १/२ ग्राम से १ ग्राम मधु के साथ २ वार दिन में अथवा दारू हरिद्रा १ ग्राम से २ ग्राम दिन में ३ बार देवें। मेघान्दन मूल को शिर में बांधने से ठीक होता है। जो कामी पुरुष मदिरा सहित १६ वर्ष की आयु वाली स्त्री का सेवन करता है उसको विषम ज्वर की पीड़ा कभी कभी होती है।

दाहयुक्त विषम ज्वर को दो-तीन दिन में नष्ट करने वाला प्रयोग—कंघी की जड़ और सोंठ का क्वाथ बनाकर देना अति उत्तम है। नागरमोंथा, आमले, गिलोय, सोंठ और कटेरी इनके क्वाथ में पीपल का चूर्ण और मधु मिलाकर पीने से विषम ज्वर नष्ट होता है। १० ग्राम भजित कलौंजी गुड़ मिलाकर भक्षण करने से विषम ज्वर नष्ट हो जाता है।

अन्यश्च—काला जीरा एवं गुड़ समान भाग उसमें किंचित काली मिरचों को मिलाकर सेवन से विपमज्वर ठीक होता है। अथवा लहसुन के कल्क को तिल के तैल और नमक के साथ मिलाकर सेवन करे, विपमज्वर ठीक होता है। सर्व प्रकार के विपमज्वर सन्निपात से उत्पन्न होते हैं। जो दोप इनमें उल्वण हो तो प्रथम उसकी चिकित्सा करनी चाहिए और स्निग्ध तथा उष्ण अन्नपानों से ज्वर को शांत करे।

निम्न प्रयोग काम लिए जा सकते हैं—

(१) कुटकी, पटोल पत्र, इन्द्र जौ।

(२) सारिवा, नागरमोथा, पटोल पत्र, पाढ, कुटकी।

(३) पटोल पत्र, हर्र, वहेड़ा, आँवला, दाख, नागरमोथा, इन्द्र जौ।

(४) चिरायता, अमृता, आमले, नागरमोथा।

(५) गिलोय, आमला, नागरमोथा।

यह पाँचों प्रकार के क्वाथ विपमज्वरों को तत्काल शमन करते हैं।

विषमज्वर हर क्वाथ—धाय के फूल, आमला, अमृता (गिलोय) का क्वाथ वनाकर मधु मिलाकर देवें।

तृतीयक ज्वरहर क्वाथ—चन्दन लाल, नेत्रवाला, पीपर, सोंठ, धनियाँ, नागरमोथा (वड़ा) सर्व सम। इसका क्वाथ बनाकर शक्कर और मधु मिलाकर देवें, लाभ होगा।

चतुर्थिक ज्वर पर नस्य—

अगस्त वृक्ष के पत्तों का रस निकाल कर नस्य देवें, चौथे दिन के ज्वर में लाभ होगा।

जीर्णेन घृतयुक्तेन रामठस्य पुनः पुनः।
नासिकायां कृतं नस्यं हन्ति चातुर्थिक ज्वरं॥

अथवा पुराने गाय के घी में हींग भून लें, पश्चात् छान लें, पश्चात् नस्य वार-वार देवें, चौथे दिन का ज्वर ठीक होगा।

रसं धत्तूर पत्राणी पलार्द्ध दधिना सह।
पीतो सद्यः प्रमोहंति महदेकंतर ज्वरम्॥

धतूरे के पत्तों का रस २५ ग्राम, दही के साथ पिलाने से एकान्तर ज्वर नष्ट होता है।

नोट—चिकित्सकों को चाहिए कि रोगी का बलाबल देखकर ही इसका प्रयोग करें, क्योंकि कभी-कभी १/२ ग्राम रस भी रोगी के लिए हितकर नहीं होता। यदि धतूरे का रस हानि करे तो चण्दलिया का रस देने पर ही उसका विकार शान्त होता है।

अन्यच—नीमपत्र ६, कालीमिर्च ५, दिन में तीन वार धासा घोटकर पीवें अथवा मांस (वकरे का) के साथ उड़दों की दाल पकाकर खिलावें।

मस्तिष्कगत विषम ज्वर

श्रीमती शारदा व्यास, जयपुर

आधुनिक मतानुसार मलेरिया (विषम ज्वर) एक कीटाणुजन्य व्याधि है। यह प्लाज्मोडियम जाति के कीटाणु द्वारा फैलता है जिसकी कई जातियां हैं। यह कीटाणु अपनी मैथुनी तथा अमैथुनी चक्र के रूप में बढ़ता है। मच्छरी तथा मनुष्य इसके निवास हैं। ये रक्त के लाल कणों में रह कर उन्हें ही खाते हैं। इसीलिये इन्हें शोण कीटाणु (Haematoza) कहा जाता है।
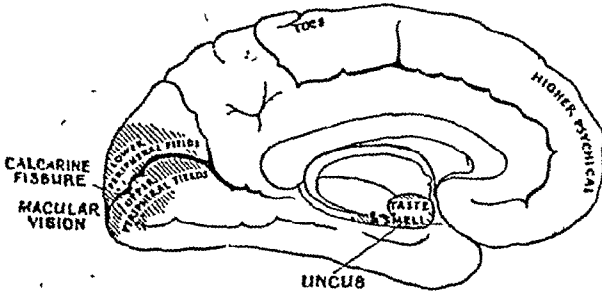
एक कीटाणु लाल कण में प्रवेश कर १० से ३२ कीटाणु तक पैदा करता है। इन कीटाणुओं में से अनेक को प्लीहा लाल कणों के साथ ही नष्ट कर देती है। प्रत्येक समय में ३-४ लाल कण बच पाते हैं। जिस समय ये लालकण फटते हैं तो उनमें निहित कीटाणु रक्त रस में स्वतंत्र होते हैं उस समय मनुष्य को जाड़ा देकर ज्वर हो जाता है। एक प्रौढ़ व्यक्ति में १५ करोड़ लालकण कीटाणु उपसृष्ट होने आवश्यक हैं। इसके लिए जितना समय लगता है वह संचयकाल कहलाता है। मैथुनी चक्र में जितना काल लगता है उतना ही विलम्ब ज्वर में होता है। मारक मलेरिया (Malignant Malaria) में अमैथुनी चक्र का काल सबसे छोटा होता है। अशुकेतों की संख्या अधिक होती है और क्षमता अधिक रहने के कारण अधिक संख्या में अशुकेतों के बच जाने के कारण उसका चयकाल सबसे छोटा होता है।

यों १५ करोड़ लालकणों का उपसृष्ट होना जूड़ी बुखार लाने के लिये पर्याप्त है परन्तु देखा यह गया है कि इस संख्या से कहीं अधिक (कई सौ गुना अधिक) लाल कण विषम ज्वर के कीटाणुओं से अभिभूत पाये जाते हैं। तथा मारक ज्वर में ५००० लाख कण उपसृष्ट मिलते हैं। मारक ज्वर में कभी कभी सम्पूर्ण रक्त के लाल कणों के तिहाई से आधे तक लालकण उपसर्गित पाये जाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि जितने अधिक लालकण अभिभूत पाये जावेंगे उतनी ही मारकशक्ति अधिक होगी। लाल कणों के नाश के परिणामस्वरूप रक्तक्षय तथा शोणवर्तुलि का ह्रास होता है जिसके कारण शरीर को उचित मात्रा में प्राणवायु प्राप्त नहीं हो सकती और Anoxaemia और हृदयादि मर्माङ्गों में अपजनन होजाता है।

विषम ज्वर के कीटाणुओं के कारण रक्तकणों के टुकड़े हो जाते है तथा रागक कण प्रचुर परिमाण में आ जाते हैं। इन विजातियों को ग्रहण तथा नष्ट करने का मुख्य कार्य जालकांत श्च्छदीय संस्थान को करना पड़ता है अतः सर्व प्रथम उसके कोशाओं का परमचय हो जाता है (प्लीहा इन कोशाओं का भण्डार है तथा वहीं लालकणों का विनाश पूर्णतः होता है अतः प्लीहाभिवृद्धि विषमज्वर का एक महत्वपूर्ण कार्य है। यदि रोग जीर्ण हो तो यकृत् को भी इस कार्य में सहायता देनी पड़ती है और वह भी वृद्धि को प्राप्त होजाता है। मज्जागत जालकांतश्च्छदीय संस्थान में कोशाओं में भी अभिवृद्धि होती है। अतः रक्तकण उत्पन्न नहीं हो पाते और रक्तालपता के लक्षण रोगी में दृष्टिगत होते हैं।

मारक विषम ज्वर के कीटाणु जिन लालकणों में घुस जाते हैं उन्हें भिदुर, टिपटु, अनम्य कर देते हैं। ये परिवर्तन ज्यों ज्यों कीटाणुओं का विकास होता है त्यों त्यों

बढ़ते जाते हैं। केशिकाओं में जाते समय उनके अन्तच्छद पर ये उपविष्ट कण चिपकते जाते हैं और जब वे संख्या में अधिक हो जाते हैं तो उनके मार्गो का अवरोध कर देते हैं। केशिकाओं को तथा समीपस्थ ऊति के पास रक्त का पहुँचना कम हो जाता है जिससे वहां प्राण वायु की कमी होती चली जाती है और वहां का कार्य सम्यक्तया चलना रुक जाता है। जब ये कीटाणु मस्तिष्क में जाकर यही क्रिया करते हैं तो ज्वर का तापांश अत्यधिक बढ़ जाता है। फलस्वरूप प्रलाप, विसंज्ञता तथा अपस्मार के समान आक्षेप आने लगते हैं। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर जाकर वे वहां पर की विकृति के लक्षण पैदा कर देते हैं।

जब विषम ज्वर के मारात्मक कीटाणुओं को भरपूर संख्या में साथ लेकर रक्ताणु रक्त परिभ्रमण के साथ मस्तिष्क में पहुंचते हैं तो वह सूक्ष्म केशिकाओं को अवरुद्ध करता है तथा बड़ी धमनिकाओं को विस्फारित कर देता है। रक्त के साथ साथ रागक कण भी पाये जाते हैं। ये दोनों सकीटाणु रक्तकण तथा रागक मिलकर मस्तिष्क के त्वक्षीय भाग को सीस धातु के समान काला बना देता है यहां रागक के कण संचित होते हैं वहां बिन्दु के आकार का रक्तस्राव होता है। यह रक्तस्राव अनुत्वक्षीय श्वेत भाग में होने के कारण यह कर्बुरित हो जाता है। मस्तिष्कगत विषम ज्वर के कारण जिनकी मृत्यु होती है उनकी मृत्युत्तर परीक्षायें यह बतलाती हैं कि मृतकों के मस्तिष्क का श्वेत भाग असंख्य छोटे छोटे रक्तस्रावों से भरा होता है। केशिकावरोध तथा रक्तस्रावों के कारण अत्यधिक सन्ताप, विसंज्ञता, तन्द्रा, आक्षेप, मूकता तथा अङ्गघातादि लक्षण प्रकट हुआ करते हैं।

मस्तिष्कगत विषम ज्वर की स्थिति पूर्णतया मारक न सही तो भी कृच्छसाध्य तो है ही। इसका निदान शीघ्र हो तथा इसकी चिकित्सा भी यथाशीघ्र हो तो रोगी मृत्युमुख से निकाला जा सकता है। अन्यथा कालान्तर में मृत्यु हो ही जाती है।

प्रसंगवश ये कीटाणु हृदय आदि मर्म स्थानों में पहुंच कर भी मारक बन सकते हैं। इसी दृष्टि से ही संभवतः आयुर्वेद ने भी विषम ज्वर को संनिपातिक ज्वर तथा मारक माना है। अब हम इसका सद्योपचार भी लिख रहे हैं।

इस स्थिति में जब विषम ज्वरी संज्ञाशून्य होता दीखे तब ग्लूकोज २५ सी. सी. में कुनैन २ सी. सी. का इन्जेक्शन मिलाकर शिरान्तर्गत सूचिका लगावें। आवश्यकता पड़ने पर अधिक मात्रा में भी दिया जा सकता है। अन्य सूचिकाद्रव Nevaquine तथा Chloroquine की भी सूचिका लगाई जा सकती है परन्तु वे सभी ग्लूकोज के साथ तथा शिरान्तर्गत ही लगाई जानी चाहिये।

इसका असर तत्काल ही हो जाता है परन्तु यदि इसका प्रभाव ज्ञात न हो तो रोगी को असाध्य घोषित किया जा सकता है। यह रोग मारक है तथा इससे रोगी की रक्षा तत्काल ही उपचार द्वारा हो सकती है। विलम्ब घातक सिद्ध होगा।
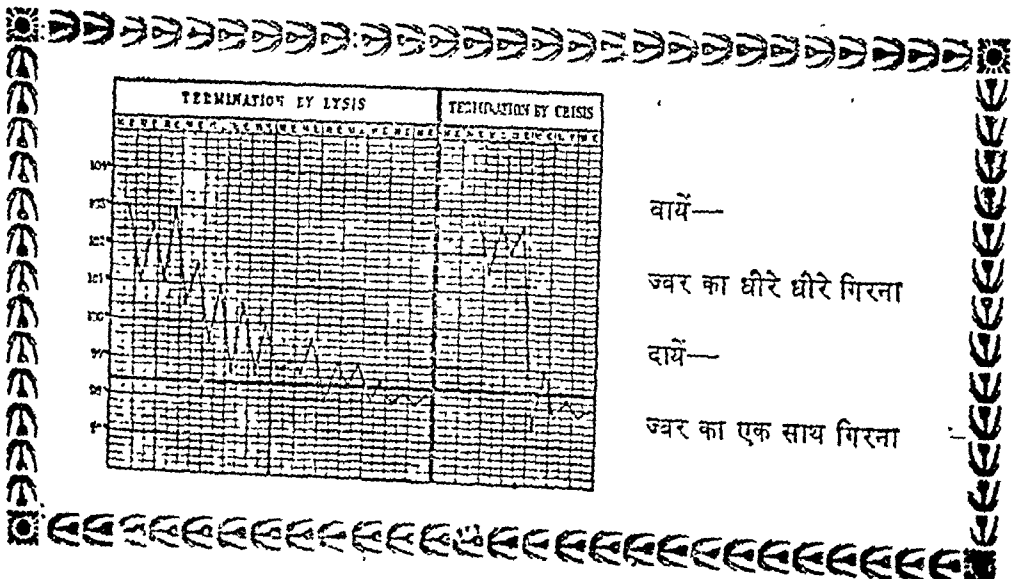
बायें—
ज्वर का धीरे धीरे गिरना
दायें—
ज्वर का एक साथ गिरना

विषम ज्वर एवं जीर्ण ज्वर चिकित्सा

वैद्य श्री यादव कुमार पुरोहित आयु० र०, जोधपुर।

एक दोपज, द्वि दोपज, एवं त्रिदोपज (सन्निपातिक) की नव ज्वर की चिकित्सा से सर्वथा भिन्न चिकित्सा हुआ करती है। कारण वातादि दोष प्रथक वा मिलित हो रसानुगामी हो उपरोक्त सारे ज्वरों को उत्पन्न करते है। रसकी लघुता एवं वातादि दोषों का परिपाक ही ज्वर निवृत्ति होती है। किन्तु सन्ततक और सततकादि विषम ज्वरों में ईषत् कुपित वातादि दोष, रस एवं रक्तादि धातु समूह का आश्रय ले ज्वरोत्पत्ति करते हैं, एवं शरीरस्थ रस रक्तादि के क्षयवशतः जीर्ण ज्वर में परिणत होते है, सुतरां यहां दोष व दूष्य-इन दोनों का ही प्रतिकार वैद्य का कर्त्तव्य हो जाता है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, एवं द्वन्दज तथा सन्निपातिक ज्वर समूह, कितने दिनों मे विषम ज्वर रूप में परिणत होता है, इस विषय में कोई विशेष नियम कहीं देखा नही जाता। जिन कारणों से वातादि की ह्रास-वृद्धि होती है तदनुसार ज्वर की भी ह्रास वृद्धि ज्वर की भी निरामता और परिपक्वता देखी जा सकती है। अर्थात् वातज्वर ८ दिन, कहीं कही १४ दिन, पित्त ज्वर १० दिन, शारीरिक विशेषता से कहीं कही २० दिन निवृत्ति में लग जाते है। द्वन्दज और सन्निपातिक ज्वरों में दोपों के परिपाक और ज्वर की लघुता, शरीर की अवस्थानुसार और भी अधिक दिनों के बाद ही परिलक्षित हुआ करती है। अतएव 'मुक्तानुवन्धित्वं विपमत्त्वं' एवं 'ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः' इन दोनों वाक्यों के अर्थ द्वारा विषम ज्वर के दिन निर्धारित करना सर्वथा असंभव है। साधारणतः १३ दिनों में दोपों का परिपाक और प्रबल वेग का ह्रास होता है। वातादि दोप समूहों का परिपाक एवं ज्वर की लघुता होने पर भी पुनः अहिताचरणवशतः अथवा पहले के कितने ही ज्वर शरीर की अवस्थानुसार विपम ज्वर में परिणत हो जाते है। विषम ज्वर के उत्पन्न होने पर शरीरस्थ रस-रक्तादि धातुओं की विकृति हो जाती हे एवं रस-रक्तादि की विकृति वा अल्पतावश भिन्न भिन्न रोग (यकृत्प्लीहा आदि) पैदा होकर शरीर में कृशता ले आते है, तभी यह जीर्ण अवस्था को प्राप्त होजाता है। नव ज्वर के तीन सप्ताहों बाद इस तरह का उपरोक्त जीर्णज्वर प्रकाश में आता है। वातादि दोपों की अल्पता प्रयुक्त अनेक स्थानों पर ज्वर मृदुभाव शरीर में प्रकाशित हो अहिताचरण द्वारा अथवा उपयुक्त औपधि के अभाव मे विषम ज्वर का रूप भी बन जाता है। ऐसी स्थिति में वातादि दोपों का यथासम्भव परिपाक को अवगत कर चिकित्सक रोगी को लघु अन्न भोजन करा विषम ज्वर की उपयुक्त औपधि सेवन करावे। साधारणतः रोगी को अन्नाहार सह्य हो जाने पर कई जगह ज्वर का जीर्णत्त्व अवगत होजाता है। जिस कारण से पुराने ज्वर में अन्नाहार द्वारा ज्वर की ह्रास-वृद्धि प्रायशः दिखलाई नही देती। अनेक स्थानों में पुराने ज्वर में अन्नाहार न देने से रोगी के रस और रक्तादि ह्रास हो कर विविध रोगों की उत्पत्ति संभव है। विपम एवं जीर्ण ज्वर में रोगी के दोपों की आमता और निरामता, रसों की आमता व निरामता और ज्वर के उत्ताप की नाड़ी द्वारा परीक्षा करनी चाहिए। सन्ततज्वर को अनेक पुराने ग्रंथकारों ने विपमज्वर नही माना है, कारण उसका-मुक्तानुवन्धित्व लक्षण नही है। इसकी चिकित्सा भी मध्यज्वर की चिकित्सा के समान है। यह ज्वर दीर्घकाल तक शरीर में रह जाने पर शरीर क्रमशः जीर्ण होता जाता है एवं प्लीहा तथा यकृत् की वृद्धि भी हो जाती है। किसी किसी के उदरामय शोथ, कास, सर्दी आदि उपद्रव देखे

जा सकते हैं। इसके बाद किसी-किसी के आम संयुक्त मल एवं रक्त भी निकलने लगता है। शरीर में जगह-२ पिड़कायें, जिह्वा और दांतों की जड़ों में एवं सभी क्षत स्थानों एवं नाक से रक्त निकलने लगता है। हाथ व पैर आदि सूखे से नजर आते हैं, वह साक्षात् नरकङ्काल सा दिखाई देने लगता है। सततकज्वर में भी यही हाल होता है। अधिक दिनों तक शरीर में ज्वर रहकर क्रमशः रक्तधातुगत ज्वर के समस्त लक्षणों को प्रकाशित कर डालता है एवं कहीं कहीं ऐसी हालत में मृत्यु भी संभव है। इसी तरह सारे ही विषम ज्वरों में दीर्घकाल व्यापी स्थिति, उत्तापवृद्धि, उदरामय शोथ, कास, प्लीहा वा यकृत् वृद्धि, मन्दाग्नि, अरुचि एवं शरीर की कृशता आदि लक्षण ही प्रायशः रोगी के जीवनाशक समझने चाहिए। ज्वर की दीर्घसूत्रता श्लेष्मा के कारण होती है, उत्तापवृद्धि पित्त के कारण होती है विषम ज्वर में दोष एवं दूष्य, दोनों के प्रकोप से वातादि के समताकारी एवं रस व रक्तादि धातु के संशोधनार्थ, गोलियां, क्वाथ व चूर्णों का प्रयोग किया जाता है। साधारणतः अन्येद्युष्क ज्वर में दीर्घकाल की स्थिति और उत्ताप की स्थिति देखी जाने पर पित्तश्लेष्म निवर्तक एवं रस संशोधक जयावटी एवं मृत्युंजयादि रूक्ष औषधियों का सेवन कराना चाहिए। इसी तरह कई स्थानों पर सामज्वर, निरामज्वर वा मध्यज्वर की औषधियां भी रोगी को सेवन करवानी सर्वथा उचित है। किंतु रोगी का शरीर अति कृश होने एवं ज्वर दीर्घकाल व्यापी होने पर श्लेष्मादि की उद्दृढ़ प्रवलता की विवेचना कर धातु-शमता कारक श्लेष्मादि निवर्त्तक, यथा संभव रूक्ष औषधियों का अर्थात् 'सार्वभौम रस' वृ. विश्वेश्वर रस, 'वृ. कस्तूरी भैरव रस' एवं 'सौभाग्यवटी' प्रभृति औषधियां सेवन कराना आयुर्वेद में विधेय है। सन्ततक, सततक, तृतीयक एवं अन्येद्युष्क प्रभृति ज्वरमें ह्रास प्रारम्भ हो जाने पर, यद्यपि शरीर का बल एवं वर्ण पूर्वस्थिति प्राप्त करने लगता है, यही नैरन्तर्य हो तब तो ज्वर निवृत्ति समझनी चाहिए और यदि ज्वर समभाव रहे, वा क्रमशः बढ़ता रहे तो रोगी के अमंगल की संभावना रहती है। जिन २ कारणों से इस अवस्था में रोगी का शरीर क्रमशः शीर्ण होता जाता है एवं विविध उपद्रवों को पैदा करता जाता है, उन सारे कारणों एवं परिस्थितियों की पूरी-२ विवेचना कर अलग-२ औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। चिकित्सा की सुविधा के लिए विषमज्वर की ३ श्रेणियां शास्त्रकारों ने विभाजित की हैं यथा प्रथमावस्था में ज्वर का प्रवल वेग एवं उसके साथ ही शरीर के धात्वादि की कृशता, कास, प्लीहा व यकृत की सामान्य वृद्धि, वा अभाव इत्यादि। द्वितीयावस्था में विविध उपसर्ग समन्वित ज्वर की दीर्घसूत्रता शरीर व धात्वादि की कृशता, उदरामय, कास, शोथ एवं यकृत-प्लीहा की वृद्धि, तृतीयावस्था में ज्वर की पर्य्यायक्रम से अनियमित भाव से वृद्धि, समय-समय पर ह्रास, प्लीहादि की अल्पता मध्यावस्था या अभाव। विषमज्वर की चिकित्सा में प्रवृत्त वैद्य को इन तीनों अवस्थाओं को अपने लक्ष्य में निरन्तर रखना उचित है। सर्व प्रथम ज्वर के उत्ताप का निरीक्षण करते रहना आवश्यक ही है।

प्रथमावस्था—ज्वर का प्रवलवेग दिखाई देने पर शरीर धात्वादि की नातिकृशता देखकर सामज्वर में मृत्युञ्जय, जयावटी वा अन्यान्य औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। इसी तरह निराम ज्वर में भी ज्वरारि अभ्र, ज्वराशनिरस, पंचभद्र क्वाथ प्रभृति औषधियों का रोग के लक्षणानुसार प्रयोग करना चाहिये। किन्तु विषमज्वर में रोगी की आमरसकी अपरिपक्वता—एवं वातादि दोषोंकी प्रबलतावश निजी लक्षणों को प्रकट होते देखकर साम ज्वर के नियमानुसार रोगी को लंघन कराना चाहिए एवं सामज्वर की निर्दिष्ट औषधियां देनी चाहिए, पर क्वाथ सेवन न करायें। विशेषतः इस अवस्था में शीघ्रतर ज्वरनाश की इच्छा से विषप्रधान वा अतिविपाक्त औषधि का भी सेवन नही करावें। कारण विषम ज्वर की प्रत्येक अवस्था में तीव्र औषधादि के प्रयोग से धात्वादि में विकृति उत्पन्न होती है। प्रथमावस्था में ज्वर का प्रवलवेग रस की परिपक्वता को लक्ष्य में रख निराम ज्वर में निर्दिष्ट क्वाथों का यथायोग्य सेवन करवाना चाहिए। प्लीहा, यकृद्वृद्धि हो तो प्लीहा एवं यकृद् के अवस्थान व दोषों की पर्य्यालोचना कर विविध औषधियों एवं प्रलेपों का प्रयोग करना चाहिए। कास वा उदरामय हो तो तत्तद्रोग निवारक (उपद्रव चिकित्सा के) औषधि का प्रयोग उचित है।

द्वितीयावस्था—संप्रति हमारे देश में अनेक स्थलों में

प्रायः दुर्ज्जलज्वर इसी अवस्था को प्राप्त होता देखा जाता है। रस एवं रक्तादि धातु समूह का क्षय अथवा वातादि दोषों के प्रकोपवश शरीर की कृशता एवं उसके साथ ज्वर का दीर्घकाल व्यापित्व वा निरन्तर वेग उदरामय, प्लीहा व यकृद् वृद्धि, शोथ एवं कास प्रभृति के प्रकाशित होने पर सर्व प्रथम अग्निवर्द्धक अर्थात् उदरामयनाशक औषधियों के प्रति दृष्टि रखना ही उचित है। जिस कारण से उदरामय की निवृत्ति हो एवं अग्निवल की वृद्धि हो, इस परिस्थिति में उदरामय नाशक अन्यान्य औषध की अपेक्षा रस पर्पटी जातीय औषधियों से अधिक उपकार होता देखा गया है। विशेषतः रोगी के हाथ-पैरों में शोथ व दिखाई दे और केवल उदरामय, ज्वर, काम प्रभृति ही विद्यमान हो तो पर्पटी सेवी को व्यन्जनों के साथ सह्यमत अन्न पथ्य प्रदान करवाना उचित हैं। उदरामय एवं हाथ-पैरों में शोथ अथवा सर्वाङ्ग शोथ विद्यमान हो तो नमक एवं जल बन्द कर दुग्धान्न का पथ्य देते हुए पर्पटी का प्रयोग शीघ्र उपकारी होता है किन्तु रोगी नमक और जल छोड़ने में ही असमर्थ हो तो दुग्धान्न प्रदान-पूर्वक पर्पटीका तो प्रयोग करना ही चाहिए। केवल मात्र उदरामय ही हो तो दुग्धान्न सेवन की विशेष आवश्यकता नहीं रहती। वात बलासक व अन्यान्य ज्वरों में रोगी के हाथ पावों में थोडा-२ शोथ दिखाई दे तो कोई शोथनाशक औषधि देनी चाहिये, प्लीहा वा यकृद् की वृद्धि के कारण यकृद् व प्लीहा के स्थान पर वेदना एवं तन्जन्य ज्वर मृदुभाव से दीर्घकाल अथवा नियत वेग के साथ दिखलाई पड़ने पर प्लीहा एवं यकृत-चिकित्सानुसार चिकित्सा करनी चाहिए। रोगी की दुर्वल अवस्था में कभी तीव्र विरेचन की व्यवस्था नही करें। यकृत-प्लीहा को घटाने का तीव्र प्रयास भी नही करना चाहिये। तीक्ष्ण वा क्षार-प्रधान अर्थात माणकादि गुटिका, वृ० माणकादिगुटिका, चित्रकादि लौह एवं अभयालवण प्रभृति औषधियां यथानियम रोगी को सेवन करानी चाहिये एवं प्लीह रोग में निर्दिष्ट प्रलेप प्लीहा वा यकृद् के ऊपर करना चाहिये। यदि कोष्ठ-काठिन्य हो तो प्लीहा एवं यकृतनाशक मृदु विरेचक औषधियां दी जानी चाहिये। प्लीहा ज्यादा ही वढ़ी हो तो वर्द्धमान पिप्पली उत्कृष्ट औषधि रहेगी। इसके व्यवहार से हाथ-पैरों का सामान्य शोथ भी दूर हो जाता है।

विषम ज्वर की द्वितीय अवस्था में प्लीहा वा यकृद् वृद्धि के साथ हाथ-पैरों पर शोथाधिक्य ज्यादा ही दिखाई दे तो मात्र मण्ड-पथ्य प्रदान करना चाहिए। ज्वर की प्रत्येक औषधि खूब विवेचनापूर्वक देनी चाहिए। प्लीहा व यकृद् वृद्धि जन्य ज्वर हो तो उसके निवारणार्थ रोगी को विषम ज्वर या निराम ज्वरों के लिये निर्दिष्ट औषधियां देनी चाहिए। उदरामय, प्लीहा यकृद् वृद्धि के प्रशमित होने पर अनेक स्थलों पर ज्वर स्वयं ही प्रशमित होने लगता है। अथवा मन्द तो होता ही है तथापि उभयविधि औषधियों का प्रयोग तो करना ही चाहिए। प्लीहा यकृद् रोग के चिकित्साकाल में उपद्रव निवारणार्थ पृथक प्रथक औषधियों का व्यवहार करना आवश्यक है तथा जब कभी भी रोगी का शरीर पांडुवर्ण दिखाई देने लगे तब नवायस लौह आदि का सेवन करवाना चाहिए। उदरामय वा यकृत प्लीहा की वृद्धि व्यतीत ज्वर के धातुगत होजाने पर शरीर की क्रमशः शीर्णता, सदा ज्वर का रहना, प्लीहा यकृद् की सामान्य वृद्धि एवं कास प्रभृत्ति के अल्पलक्षण प्राप्त होने पर ज्वर के लक्षणानुसार निर्दिष्ट औषधियां देनी चाहिये। वातादि दोषो के प्रति लक्ष्य रखना यहां विशेष महत्व रखता है। अर्थात श्लेष्माधिक्य मे अग्निमान्द्य हो, रोगी को सदा ही ज्वर बना रहे एवं क्रमशः शरीर शीर्ण होजाने की अवस्था में धातु शमताकारक वृ. कस्तूरी भैरव, सार्वभौम रस, वृ. विश्वेश्वर रस, ज्वर मातङ्गकेशरी एवं अभ्र प्रभृति औषधों की व्यवस्था करें एवं अग्नि और बल-वर्द्धक पथ्य (मांसयूष, मुद्गयूष) प्रदान करना नितान्त आवश्यक है।

तृतीयावस्था—काल में हमारे देश में दुर्ज्जलज्वर (मलेरिया) से ही ये सारी स्थितियां हो रही है। जो हो ज्वर के लक्षणों द्वारा वातादि दोषों की प्रवलता निरूपितकर उसके प्रतिकार की चेष्टा करनी चाहिए। जीर्ण अवस्था (तृतीयावस्था में) ७-८ मास अथवा एक दो वर्ष पर्य्यन्त स्थायित्व होती देखी गई है। इस हालत में स्नान, आहार सारे ही चलते रहते है। केवलमात्र ज्वर के भोगकाल में २-४ दिन स्नान आहार वन्द रखना चाहिये। ये सारे ज्वर अनेक स्थानों में जल वायु के परिवर्तन में एवं धातु परिवर्तन के साथ एवं औषधि भिन्नता से भी निवृत्त होते

—शेष पृष्ठ १५४ पर देखें।

सन्तत ज्वरस्य आयुर्वेदीय चिकित्सा वैशिष्टयम्

प्राणाचार्य वैद्य रामप्रकाश स्वामी एम. ए, भिषगाचार्य
अनाज मंडी जौहरी बाजार जयपुर (राज०)

यथा धातूंस्तथा मूत्रं पुरीषञ्चानिलादयः ।
युगपच्चानुपद्यन्ते नियमात् सन्तते ज्वरे ॥
—च० चि० ३।५६

रसधातोः प्रामुख्येनात्र दुष्टिः—
बलिनो गुरवः स्तब्धाः विशेषेण रसाश्रिताः ।
—अ. हृ. नि. अ. २।५८

सन्तत ज्वरे प्रामुख्येन रस दुष्टिः रसाश्रयता च हृदये भवति तथा च रसाधिष्ठानं हृदयमपि दुष्टं भवति । अर्थात् सामतायाः प्राचुर्येण हृदये गौरवमनुभूयते । आश्रयदुष्ट्या हृदयाश्रितौजो मनोबुद्धीनामपि दुष्टिर्जायते अतएव तन्द्रा प्रलापातिदौर्बल्यादि लक्षण प्रादुर्भावो युगपद् भवति ।

धातूनां वातपित्त कफानां च दोषाणां दुष्टिर्भवति । तथापि वात पित्तयोः दुष्टिः प्रामुख्येन जायते तयोरपि कदाचित् पित्तस्य प्राधान्यं कदाचिच्च वातस्य प्रमुखता भवति । त्रिदोषारब्ध सन्ततज्वरे रस रक्तादि धातुदुष्टिः यत्र भवति तस्यलक्षणेषु सन्ततज्वर पीड़ितस्य लक्षणेषु चातिशय विलक्षणता दृश्यते अतोऽस्य सन्निपात ज्वरात् भिन्नत्वं प्रतीयते । आचार्य सुश्रुतेन प्रकृति सम समवेत विकृति विषम समवेत सन्निपात ज्वरेभ्योऽतिरिक्ताभिन्यास-ज्वरहतौजस सन्निपातज्वरौ निरुपतौ हतौजस ज्वरएव सन्निपातारब्ध-सन्ततज्वर इति सुश्रुत व्याख्याकर्त्राचार्य डल्हणेन निर्दिष्टम्—

ओजो विस्रंसते यस्य पित्तानिलसमुच्छ्रयात् ।
स गात्र स्तंभ शीताभ्यां शयनेप्सुरचेतनः ॥
अपि जाग्रत् स्वपन् जन्तुः तन्द्रालुश्च प्रलापवान् ।
संसृष्टरोमास्त्रस्तांगो मन्द संतापवेदनः ॥
ओजो निरोधजं तस्य जानीयात् कुशलोभिषक् ।
सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा ॥
पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हंति वा ।
—सुश्रुत उ० ३९/४३–४५

सन्निपातारब्धस्य संततज्वरस्य सप्तमे दिवसे प्राप्ते इत्यादिना मोक्षवधयोरवधिमभिधायेदानीमेकदोषज द्विदोषजस्य विसर्गकालावधि द्वारेण लक्षणमाह सप्ताहेत्यादि··· सु० उ० ३९/६९ डल्हण ।

शास्त्रवर्णित सन्तत ज्वर लक्षण सन्तत पीड़ितातुर लक्षणेषु सत्यां मीमांसयामिदं निश्चीयते यत् सन्निपातारब्धज्वरेषु दोषदुष्टि लक्षणानि प्रामुख्येन भवन्ति । कदाचित्तु सन्निपातारब्धज्वरपीड़िता मत्तवद्विचेष्टन्ते । अतो विपरीतं संततज्वरे धातुदुष्टि लक्षणानि प्राधान्येनाभिलक्ष्यन्ते । धातूनां धारकत्व शक्तिर्न्यूना इति अनुभूयते । संनिपातारब्ध ज्वरपीड़ितो मत्तवद्विचेष्टते । तत्रैव संतत ज्वरावस्थायां तन्द्रावस्थां गतो प्रलपति । आसीनोऽपि मूर्छितो भूत्वा पतति ।

(१) लंघन पाचने—संतत ज्वरे सामतातिशयिता भवति अतः षट् दिनानि यावत् लंघनं उपयुक्तं भवति । अरूचावपि षड्दिनानन्तरं लंघनं न इष्टम् । सामान्यतया चतुः पञ्चदिनैरेव लंघित लक्षणानि प्रव्यक्तानि जायन्ते । लंघनकाले एव देशकाल प्रकृतिवयोऽनुसारं त्रिभुवन कीर्तिरसस्य तुलसी स्वरसानुपानेन एक द्विरक्ति मात्रया आमपाचनार्थ प्रयोगः प्रशस्यते । प्रयोगेण चास्य दिनत्रयेण दिनपञ्चकेवा पच्यमानावस्था लक्षणा निअभिव्यज्यन्ते । पच्यमानावस्थायां त्रिभुवनकीर्तिरसस्य प्रयोगो नौपयिकः । तत्र हि दोषादीनवेक्ष्य कल्प प्रयोगो यथायथं विधेयः लङ्घन पाचनेन सह रोगिणम् निवातस्थाने वस्त्रादिभिरावृतं स्थापयेत् ।

(२) जल विधिः—वात कफान्वितः तृष्णार्दितो यदि भवेत् तदा कदुष्ण जल पानं प्रशस्तम् । अर्धशृतोदकमपि उपयुक्तं भवति । पित्त प्रधानतायाम् षडङ्गोदकं शृतशीतं पानीयम् । विधानेनानेन पिपासो परमः आमपाचनं सुतरां जायते ।

(३) यवागूः—सन्ततज्वरे वातस्य प्राधान्यं पुरीषस्य अवष्टम्भश्च यदि स्यात् तदा पिप्पल्यामलकसिद्धा घृतभृष्टा यवसाधिता पेया प्रयोज्या मलदोषानुलोमनी । पित्त

प्रधानावस्थायान् सृष्ट विट्कता यदि भवेत् तथा लाजपेया किं वा मृष्टतण्डुलपेया कणा मधु मिश्रिता प्रयोज्मा। तृष्णादाहछर्दि लक्षण प्रमुखतायां शर्करा बदरद्राक्षा सारिवामुस्त सिद्धा यवागू: मधु मिश्रिता प्रयोज्मा। वस्ति पार्श्व शिर: शूल पीड़ितो रोगी कण्टकारी गोक्षुरसिद्धा पेया मुपयोजयेत। हिक्का श्वास कास पीड़ितश्च लघु पञ्च मूल साधिता पेयां पिवेत्।

अवधानीयम् मण्ड पेया विलेपीक्रमोऽत्रावचारणीय।

पाचन शमने–सन्तते ज्वरे लङ्घन पाचनानन्तरं पाचन शमन कल्प प्रयोग: प्रशस्यते।

(क) पित्त प्राधान्ये स्वर्णसूतशेखरस्य प्रयोग: प्रवाल पिष्टि प्रयोगो वा हितावह:।

(ख) पित्त प्राधान्येऽतिशदुर्वलतायां मुक्तायाः प्रयोग: आवश्यक:।

(ग) वात प्राधान्ये—वृहत्कस्तूरी भैरव प्रयोग:।

(घ) सृष्टविट्कतायां—मुस्ताक्वाथ:।

(ङ) सप्रलापसृष्ट विट्कतायां— वृ० कस्तूरी भैरव ब्राह्मीतगरादि क्वाथ प्रयोग:।

(च) आध्मानाधिक्ये–उदरे हिंग्वादिलेप:(हिंगु डीकामाली एलिया हीरा बोल)

(छ) अतीसारे—पृश्नि पर्णीवला विल्व शुण्ठी कमलपुष्पधान्यक साधिता लाज पेया दाडिमामम्लीकृतापानीया। मुस्ताक्वाथोऽपि हितावह:।

(ज) स्वतंत्रातीसार चिकित्सा करणीया भवत्यशान्तौ।

(झ) यदि रक्तपित्त प्रवृत्तिर्भवेत् तथा लाज मण्डस्य प्रयोग: स शर्कर: अवधारणीय:। कामदुधारसस्य दूर्वास्वरस मधुमिश्रितस्य प्रयोग: प्रशस्यते।

(ञ) कृष्णमृत्तिकाया उदरे प्रलेप:—रक्तपित्तस्य एवं शमनं न भवेत् तदा विशेषत: अनुसन्धानीयम्।

(५) शमनम्—ज्वरे लङ्घनं षड्दिनं यावत् कर्तव्यम् न च ततोऽधिकं कदापि कार्यम्। सन्ततज्वरेऽपि यथावश्यकं लङ्घनं कृत्वा वात प्राधान्ये मांसरस प्रयोग:, मांसाशित्वाभावे सिद्ध यूष प्रयोग:।

पित्त प्राधान्ये—पटोलपत्र साधितयूष प्रयोग:। बुभुक्षायां सत्यां पुराणशाल्योदन प्रयोग: हितावह:। लघ्वन्न प्रतिभोजितं नरं पटोलादि क्वाथं पाययेत्।

दोष शमननिमित्तम्—स्रोतोरोधशेषावस्थायाम् आरोग्यवर्धिन्या प्रयोग: हितावह:। स्रोतसां शुद्धौतु अभ्रमौक्तिक प्रयोगा: अन्ये च प्रयोगा: शमना: हितावहा:।

सन्ततज्वरे कफ प्रधान लक्षण प्राचुर्ये अभ्रमुक्ता प्रयोग: भार्ग्यादि क्वाथानुपानेन प्रयोज्य:। आहारार्थं मुद्गयूषेन सह शाल्योदन प्रयोग:। सामावस्थायां षडहेऽतीतेऽपि भुक्ताकांक्षा न जायते। अतोऽग्नि दीपन द्रव्य रुचिकर द्रव्य सिद्ध मुद्गयूष: प्रयुज्यते। भोजनाकांक्षायां च समुद्गयूष शाल्योदन प्रयोग: हिततम:।

ज्वरारम्भात् दशाहेऽतीते दोष पाचनावस्थायाम् सत्यां वायो: प्राधान्ये दाडिमादि घृत प्रयोग:, पित्त प्रधान्ये दाडिमादि घृत प्रयोग:, कफ प्राधान्ये पिप्पल्यादि घृत प्रयोग:।

दशाहादनन्तरमपि यदि दोष शेषावस्था भवेत् तदा घृतपानं निषिद्धम्।

(६) पय:पानम्—सम्यक् चिकित्सया ज्वरस्य शमनं न भवेत् द्वादशाहानि च अतीतानिस्युस्तदा जीर्णज्वर संज्ञया व्यवहार:। तत्र वल्य वृंहणाहाराद्युपयोग: प्रशस्यते।

दौर्वल्यात् देह धातूनां ज्वरो जीर्णोऽनुवर्तते।
वल्यै: वृंहणैस्तस्मादाहारैस्तमुपाचरेत्॥
—च० चि० ३।२९१

अत्र हि वात पित्त प्राधान्यमभिलक्ष्य आचार्यै: विभिन्न द्रव्यसाधित पय: प्रयोगा: निर्दिष्टा:।

(क) जीर्णज्वरे कास श्वास शिर: शूलादि लक्षणान्विते वृहद् पंच मूलसिद्धं पय: प्रयोजयेत्। दशमूलसिद्धे पयसि मधुमदनफलमुस्ता पिप्पली मधुयष्टि चूर्णम् संमिश्र्य वस्ति प्रयोग: हित:।

(ख) सशोथे मूत्र पुरीष विवन्धे गोक्षुर वलाकण्टकार्यादिभि: सिद्धं शुण्ठी सिद्धं वा दुग्धं प्रयोजयेत्।

(ग) तृष्णाधिक्ये शुण्ठीद्राक्षा खर्जूर साधितम् क्षीरं घृतमधुशर्करान्वितं पाययेत्।

(७) वल्यवृंहणौषधकल्प प्रयोग:—सन्तता ज्वरस्य जीर्णावस्थायां भुक्ताकांक्षाया: अल्पता भवेत्तदा लघु मालिनी वसन्ता प्रयोग: हिततम:। क्षुधाया उत्तमत्वे तु मालिनी वसन्तस्य मधुना सह प्रयोग: द्वित्रिवारं यथावश्यकं विधेय: प्रयोगोऽयं धातुवर्धको वलवर्धश्च तेन ज्वरस्य शमनं जायते। यदि विशेषेण कृश: परिदुर्वलश्च स्यात्तदा तु प्रात: सायम् दुग्धानुपानेन अमृत प्राशादि सर्पि: प्रयोज्यम्।

(८) निरूहवस्ति प्रयोग—

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम् ।
कामं तु पयसा तस्य निरूहैर्वाहरेत् मलान् ॥
निरूहोबलमग्निं च विज्वरत्वं मुदं रुचिम् ।
परिपक्वेषु दोषेषु प्रयुक्तः शीघ्रमावहेत् ॥—च.चि.३/१७०

पटोलारिष्ट पत्राणि सोशीरश्चतुरङ्गुलः ।
ह्रीवेरं रोहिणी तिक्ता श्वदंष्ट्रा मदनानि च ॥
स्थिराबला च तत्सर्वं पयस्यर्धोदके श्रृतम् ।
क्षीरावशेषं निर्यूहं संयुक्तं मधुसर्पिषा ॥
कल्कैर्मदनमुस्तानां पिप्पल्या मधुकस्य च ।
वत्सकस्य च संयुक्तं वस्तिं दद्यात् ज्वरापहम् ॥
शुद्धे मार्गे हृते दोषे विप्रसन्नेषु धातुषु ।
गताङ्ग शूलो लघ्वङ्गः सद्यो भवति विज्वरः ॥
(च० चि० ३/२४४)

(९) अनुवासनवस्तिः—जीर्णज्वरे पित्त श्लेष्म लक्षणानां प्रशमने संजाते अग्नौ च संधुक्षिते पुरीषे च रूक्षे विवद्धे च अनुवासनं देयम् ।

पटोलपिचु मर्दाभ्यां गुडुच्या मधुकेन च ।
मदनैश्च श्रृतः स्नेहः ज्वरघ्नमनुवासनम् ॥
(च० चि ३[२५२)

(१०) शिरोविरेचनम्—गौरवे शिरसः शूले इन्द्रियाणां च अवैमल्ये शिरोविरेचनं कार्यम्—

यदुक्तं भेषजाऽध्याये विमाने रोगभेषजे ।
शिरोविरेचनं कुर्यात् युक्तिज्ञः, तज्ज्वरापहम् ॥
यच्चनावनिकं तैलं याश्च प्राग्धूमवर्तयः ।
मात्राशितीये निर्दिष्टाः प्रयोज्यास्ताज्वरेष्वपि ॥
(च० चि० ३/२५५)

इत्येवमाचार्यैः प्रतिपादतोऽयं चिकित्साक्रमः यदि चिकित्सक महानुभावैः व्यवहृतो भवेत्तदा अवश्यमेव साफल्यं त्वरितं स्यात् । किं च ते ते उपद्रवा अपि निराकृताः स्युः ।

पृष्ठ १५१ का शेषांश

हैं । ये सारे ज्वर इस तरह दीर्घकाल पर्यन्त अनियमित भाव से अर्थात् एक मास में २।३ दिन वा मास के वीच में एक दिन आजाते हैं । ये ही सारे ज्वर दीर्घकाल के वाद विविध रोगों की उत्पत्ति में कारण वनते हैं तथा धातु विशेष में प्रवल रूप में प्रगट हो रोगी का जीवन तक नष्ट कर देते हैं । अत: इन की उपेक्षा कभी भी नहीं करनी चाहिये । इस हालत में प्रयुक्त विविध उष्णवीर्य गोलियां व क्वाथों के प्रयोगों से या अन्यान्य वहुतेरी क्रियाओं से रोगी की रूक्षता वढ़ जाती है, उसे ध्यान में रखते हुये दशमूल-षट्पलकघृत आदि औषधियों की व्यवस्था करनी चाहिये । रोगी को अन्नाहार यथा रीति सह्य होता हो एवं अग्निवल प्रवल हो तव ही घृत सेवन की व्यवस्था करनी चाहिये । विषम ज्वर में कफाधिक्य एवं हीनाग्नि हो जाती है । ऐसी अवस्था में घृत सेवन उचित नहीं रहता । घृतपान के समय अग्निवल की परीक्षा विशेष महत्व रखती है । अग्नि की हीनता, उदराध्मान, एवं अम्लोद्गार इत्यादि विद्यमान हों तो ज्वर में कदापि घृतपान नहीं करवाना चाहिए । घृत सेवन के कुछ दिनों वाद वात पित्त की प्रधान अवस्था मेंविविध द्रव्य साधित दूध का रोगी को सेवन कराना चाहिए । वात-पित्तप्रधान जीर्ण ज्वर में कफ की क्षीणता एवं रक्तादि धातुओं की हीनता दीखने पर विवेचनापूर्वक विविध द्रव्यों के संयोग से पक्व दुग्ध का सेवन करवाना चाहिए । वायु की रूक्षतावश एवं रक्तादि की हीनता युक्त जीर्ण ज्वर में कास, श्वास, शूल एवं शोथ प्रभृति की उपस्थिति में उसे दूर करने हेतु पञ्चमूलादि द्रव्यों से साधित दूध का सेवन कराना चाहिए । विशेषतः इन सारी अवस्थाओं में नवायस लोहादि का अल्प मात्रा में सेवन करवाना चाहिए । प्लीहा-यकृद् की वृद्धि व उनमें पीड़ा हो तो दूध का सेवन नहीं करवाना चाहिये ।

ज्वर रोग में रोगी के सारे शरीर में पुनः पुनः अङ्गारकादि तैलों की मालिश करानी चाहिये । जव तेल शरीर में शोषित हो जाय तव ईषदुष्ण जल या सह्य हो तो शीतजल से भी स्नान करवाना चाहिये । रोगी का शरीर वात-कफ प्रधान हो तो कनक तैल, रुद्रतैल प्रभृति की मालिश करवानी चाहिए । वात-पित्त प्रधान शरीर में किरातादि तैलों की मालिश विधेय है। तैलमर्दन वहिर्मार्गगत अर्थात् त्वगादिस्थित ज्वरों में ही समधिक उपकारी होता है । किन्तु जो सारे ज्वर नाड़ी में प्रवल वा मृदुभाव में ही प्रकाशित होते हों एवं गात्र में उत्ताप अनुभव न हो ऐसे सारे ज्वरों में तैल मर्दन प्रशस्त नहीं है ।

चतुर्विध ज्वर

वैद्य श्रीअम्बालाल जोशी आयु, विशेष सम्पा.-धन्वन्तरि

सन्तत ज्वर के सिवाय अन्य चारों ज्वरों को खरनाद ने विषम ज्वर के अन्तर्गत ही माना है। अतः सतत ज्वर भी विषम ज्वर के अन्तर्गत आ जाता है।

प्रायः त्रिदोष वात पित्त कफ सन्तत ज्वर में रक्त धातु का आश्रय प्राप्त करके रहते है और काल के अनुसार वृद्धि एवं क्षय को प्राप्त होते है। विरोधी काल में ज्वर नहीं होता अवरोधी काल में ज्वर हो जाता है। दिन और रात्रि के चौबीस घंटों में सन्तत ज्वर दो बार चढ़ता है। काल, प्रकृति अथवा दूष्य किसी एक से, दोनों से अथवा तीनों से बल प्राप्त कर इसका वेग बढ़ता है। जब इस बल का अवरोधी काल, प्रकृति या दूष्य आ जाता है तो वह शांत हो जाता है।

प्रायः शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए चक्रपाणि ने लिखा है कि ज्वर रक्ताश्रित तो होता है परन्तु मांसाश्रित भी हो सकता है। यह अन्य धातुओं के आश्रित भी रह सकता है। जब दोषों के अनुकूल काल आता है तब ज्वरोत्पत्ति या ज्वर का वेग बढ़ जाता है तथा जब दोष विपरीत स्थिति आती है तब ज्वर का क्षय हो जाता है। वह आगे लिखता है कि ज्वर के काल प्रकृति दूष्यों के बीच मे अन्यतम बल की प्राप्ति से निश्चयपूर्वक काल की प्रधानता होती है। यह नियम जान लेना आवश्यक है। अर्थात् दोष ज्वर को उत्पन्न करने में काल के अनुसार ही चलते है उसके विपरीत भी।

रक्त के आश्रित वातोल्वण सतत, पित्तोल्वण सतत तथा कफोल्वण सतत अपने-अपने प्रकोप काल में वृद्धि को प्राप्त होते है तथा अन्य काल में क्षय को प्राप्त होते है। पित्त मध्याह्न में या मध्य रात्रि में, वात संध्या समय या रात्रि के अन्तिम प्रहर में और कफ प्रभात में या पूर्व रात्रि में अधिक बलशाली होते हैं। इस प्रकार दिन में वार उनका वेग बढ़कर ज्वर चढ़ आता है। कभी-कभी रात्रि में २ बार या दिन में २ बार ज्वर चढ़ आवे तब यह समझना चाहिए कि सतत ज्वर द्विदोषज है। सतत ज्वर विसर्गी है अतः यह चौबीस घंटों में दो बार चढ़ता है यह उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है।

अन्येद्युष्क ज्वर—काल प्रकृति और दूष्यों से अन्यतम बल प्राप्त कर संतत ज्वर जहां चौबीस घंटों में २ बार चढ़ता है वहां इस अन्यतम बल की उपलब्धि के अभाव में रक्ताश्रयी होने पर भी अन्येद्युष्क ज्वर दिन रात में केवल एक ही बार वेग को प्राप्त होता है। अन्येद्युष्क ज्वर को उत्पन्न करने वाले वातादिदोष मेदोवह स्रोतों में गमन करते हुए रक्ताश्रयी अथवा मांसाश्रयी होकर अल्प
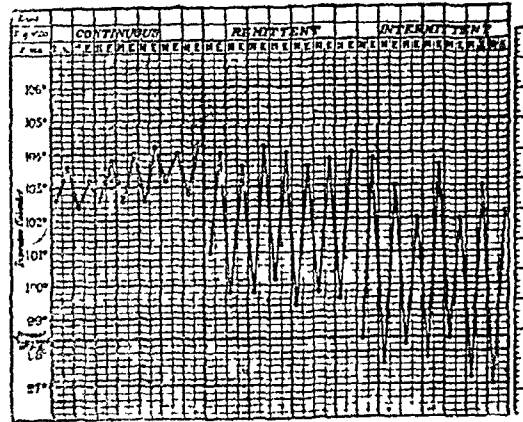
विषम ज्वर के तीन प्रकार

बल को प्राप्त करने के कारण तथा संतत ज्वर की अपेक्षा निर्बल होने के कारण २४ घंटों में केवल एक बार

ज्वर को बढ़ाते हैं। मेदोवह स्रोतों में मांसवह स्रोतों से बल की अल्पता के कारण वह दिन में एक बार या रात्रि में एक बार ही आता है।

अन्येद्युष्क ज्वर में मेदोवह नाड़ियों का वातादि दोषों द्वारा अवरोध होने के कारण मेदोदुष्टि हो जाती है। क्योंकि जब किसी श्रोतस का अवरोध हो जाता है तो उस स्थान पर स्थित और मार्ग में गमन करने वाले सभी दोषों का प्रकोप भी होने लगता है। तथा मेदवाही स्रोतों की दुष्टि हुई, तो मेदोधातु भी दुष्ट हो जाती है और ज्वरोष्मा मेद का नाश करने लगती है। यदि मल पाक न हुआ और धातुपाक की स्थिति बनी रही तो मेदोधातु के विनष्ट होने से रोगी का मुटापा घट कर वह सूख जाता है। अत्यधिक मेदस्विता को घटाने का एक अच्छा साधन अन्येद्युष्क ज्वर बन तो सकता है पर धातु पाक के कारण होने वाले अरिष्ट लक्षणों के लिये शमनोपाय का खतरा भी मोल लेना पड़ता है। इस समय अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता रहती है।

तृतीयक ज्वर—अन्येद्युष्क ज्वर जहां प्रतिदिन में एक बार तेज होता है वहाँ तृतीयक ज्वर एक दिन छोड़कर एक दिन आता है।

अन्येद्युष्क को पैदा करने वाले दोष जो अधिक प्रकुपित न होने के कारण अहर्निश में केवल एक बार ही ज्वर को उत्पन्न करते हैं वे ही दोष मांसवाही स्रोतों में अनुगमन करते हुए और अधिक प्रकुपित न होने के कारण एक दिन छोड़कर हर तीसरे दिन ज्वर को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। इसे तृतीयक ज्वर कहा गया है। यह ४८ घंटे में एक बार चढ़ता है। सुश्रुत ने अन्येद्युष्क को मांस स्थित माना है जबकि चरक ने तृतीयक को मांस-स्थित माना है। कारण उसका यह है अन्येद्युष्क के पश्चात तृतीयक का होना ही इस मान्यता में अन्तर लाता है। ऐसा देखा गया कि पहले दिन में एक बार ज्वर आकर फिर वही तृतीयक में बदल जाता है। सुश्रुत तृतीयक ज्वर को मेदोगत मानता है और उसके लिए मांसधातु से ही दोष जीर्ण होकर मेदोधातु को प्राप्त होते हैं अतः सुश्रुत की मान्यता मेदोगतस्तृर्तीयेऽस्मि तर्क संगत प्रतीत होता है। इस प्रकार चरक तथा सुश्रुत दोनों का मत एक दूसरे के पर्याप्त समीप आ जाता है।

चातुर्थिक ज्वर—जब दोष मेदोवह स्रोतों को प्राप्त हो जाते हैं तब चातुर्थिक ज्वर की उत्पत्ति होती है। मेदो वह स्रोतों का अवरोध अन्येद्युष्क ज्वर में भी वर्णित है परन्तु वहां इतने बलपूर्वक दोषों का प्रकोप होता है जितना यहाँ घटकर होता है। यहाँ त्रिदोष बलहीन होने से ज्वर का वेग भी हल्का और समयान्तर से होता है। यह हर तीसरे दिन चढ़ता है। इसमें एक दिन ज्वर चढ़ता है और ज्वरकारक दोष पुनः दो दिन विश्राम लेकर पुनः तीसरे दिन वेग को प्राप्त होकर ज्वर उत्पन्न करते हैं। अर्थात ज्वरकारक दोष निर्बल होकर दुष्ट होते हैं। सुश्रुत ने इस ज्वर को अस्थि तथा मज्जागत ज्वर माना है। और इसे यम सदृश घोर या मारक भी कहा है। गंगाधर ने इसकी घोरता पर आपत्ति प्रकट करते हुए कहा है—सुश्रुत ने जो इस ज्वर को घोर कहा है वह उचित नहीं है क्योंकि इस रोग में दोष निर्बल रहते हैं अतः मारक नहीं होते। यों मेदोगत या अस्थिगत ज्वर मारक हो सकते हैं यदि उनमें दोषों की प्रबलता हो। उन्होंने चातुर्थिक की परिभाषा इस प्रकार की है—

यो ज्वरो दिनद्वय विश्रम्य न भूत्वा प्रत्येति पुनरागच्छति स चतुर्थकः।

ज्वर कभी तेज चढ़ता है तथा कभी उतर जाता है। ऐसा क्यों होता है। आचार्य कहते हैं—जैसे पृथ्वी में बीज बोने
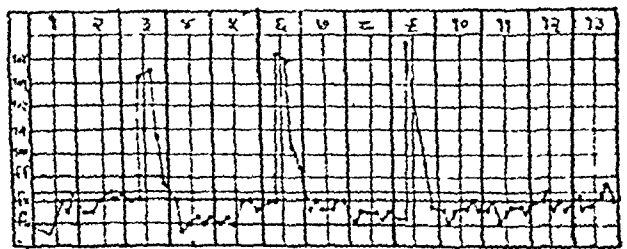
चतुर्थक ज्वर का चार्ट

से वह तुरन्त नहीं उगता बल्कि काल पाकर जब उसके उगने का समय होता है तभी उगता है। इसी प्रकार दोष भी धातुओं में जाकर स्थिर हो जाते हैं और काल पाकर या अनुरूप परिस्थितियां पाकर ही प्रकुपित होते हैं। यही तथ्य उपरोक्त तर्क को निरावृत करता है। दोष अनुकूल समय, परिस्थियां प्राप्त कर बल को प्राप्त होकर ज्वर उत्पन्न करते हैं।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि अन्येद्युष्क ज्वर मांसाश्रित है वह मेदोवह सिराओं को अवरुद्ध कर देता है अतः वह आयुर्वेद मतानुसार हृदयस्थ श्लेष्मसंस्थान से सम्बद्ध माना जाता है। यह दोष हृदय से आमाशय तक आने में एक काल का समय ले लेता है। जब यह आमाशय में पहुंचता है तब जठराग्नि को कुपित कर ज्वर के वेग को २४ घंटों में केवल एक बार ही कर पाता है। इसके बाद हीन बल होकर हृदयगत श्लेष्म स्थान में चला जाता है।

इसी प्रकार तृतीयक ज्वर में मांसगत दोष मेदोवह सिराओं को अवरुद्ध कर मेदोमार्ग का संश्रय करते हुए कण्ठ में अवस्थित हो जाता है। कण्ठ दोष २४ घंटों में हृदय तक आकर उसी दिन ज्वर पैदा करने में समर्थ नहीं होता। अतः दूसरे दिन हृदय से आमाशय में आकर जठराग्नि को बहिर्मुख कर ज्वर पैदा कर देता है। इसमें ४८ घंटे का समय लगता है।

इसी प्रकार चातुर्थिक ज्वर में दोष मेदोगत मार्गों का संश्रय कर अस्थि और मज्जागत दोष सिर में बैठ जाते हैं। ये ऊर्ध्वगत दोष २४ घंटे में सिर से कण्ठ तक तथा अगले २४ घंटे में कण्ठ से हृदय तक आ पाते हैं। फिर हृदय से २४ घंटे में आमाशय में पहुंच कर वे दोष ज्वर को पैदा करते हैं। और पुनः हीन बल होकर उसी मार्ग से सिर तक लौट जाते हैं।

उपरोक्त चातुर्थिक ज्वरों का विपर्यय भी आयुर्वेद में बताया गया है। यह ठीक ऊपर से उल्टा होता है। चातुर्थिक विपर्यय में रोगी को एक दिन आराम मिलता है तथा दो दिन ज्वर रहता है फिर चौथे दिन आराम मिले कर वही क्रम चलता है। इस प्रकार का क्रम तृतीयक तथा अन्येद्युष्क में भी चल सकता है। जब दोष दो तीन या चारों कफ स्थानों में व्याप्त हो जाते हैं तो एक स्थान से चलकर जब दोष आमाशय में आता है तब तक तीसरे स्थान का दोष हृदय में पहुंच जाता है और चौथे स्थान कण्ठ से चला आता है।

इनकी चिकित्सा मूल ज्वरों के अनुसार ही होती है।

सतत-ज्वर में—(१) परवल की पत्ती, अनन्तमूल, मोथा, पाठा कुटकी का समान भाग क्वाथ। मात्रा १० ग्रा.

(२) महा ज्वरांकुश रस

(३) महा सुदर्शन चूर्ण,

(४) निम्बादि चूर्ण।

अन्येद्युष्क ज्वर में—(१) नीम की अन्तर्छाल, परवल, आंवला, हरड़, बहेड़ा, मोथा, इन्द्रयव का क्वाथ मात्रा १० ग्राम।

(२) महाज्वरांकुश रस+गोदन्ती भस्म ४-४ रत्ती तुलसी पत्र स्वरस+मधु सह।

(३) उपरोक्त महा सुदर्शन चूर्ण तथा निम्बादि चूर्ण।

तृतीयक ज्वर—(१) चिरायता, गिलोय, लाल चंदन, शुण्ठी समभाग मात्रा १० ग्राम क्वाथ कर लेना, चतुर्थांश शृत।

(२) करञ्जबीज (भृष्ट) ३ माशा+गोदन्ती भस्म १ माशा, रस सिन्दूर २ रत्ती मिश्रण कर तीन खुराक आदि मधु से दिन में ३ बार देवें।

चातुर्थिक ज्वर की चिकित्सा—(१) गुडूची, आंवला, नागरमोथा समभाग लेकर क्वाथ तैयार करे। मात्रा १० ग्राम।

(२) हरताल भस्म मात्रा १ रत्ती दिन में तीन बार अनुपान मधु।

(३) अगस्त्य की पत्ती का रस नस्य लेने से ज्वर में लाभ होता है।

(४) सुदर्शन घनवटी।

पथ्य—सुपाच्य भोजन।

त्याज्य—गरिष्ट भोजन, मैथुन, व्यायाम आदि।

कविराज विष्णुदत्त पुरोहित, आयु० वृह०, जोधपुर

विषम ज्वर में वातादि दोष समूह तरुण ज्वर की तरह बड़ी प्रबलता से प्रकाशित नहीं होते तथा तज्जन्य भिन्न-भिन्न लक्षण समूहों का प्रकाश नहीं होता। विविध अहिताचरणादि द्वारा विषम ज्वर में ज्वर का वेग बढ़ने पर ही वातादि दोषों का प्रकोप लक्षित होता है पर विषम ज्वर में सन्निपात ज्वर के उपद्रव-समूह प्रबलता से प्रकाशित होने पर यह ज्वर रोगी का प्राणनाश करता है। विषमज्वर में वातादि दोष एवं लक्षण ईषत् व्यक्त भाव में प्रकट होने पर भी विषमज्वर प्रायः त्रिदोषजन्य ही होता है। यह कई बार अपने समय को नियत नहीं रखता, अतः चिकित्सा में उदासीनता या लापरवाही हो ही जाती है। वातादि दोषों की प्रबलता को चिकित्सक ज्वरारम्भकाल के ही लक्षणों द्वारा अवगत करें। अर्थात् ज्वरारम्भकाल में मस्तक वेदना हो तो वायु का प्राधान्य, जांघों में वेदना हो तो कफ का प्राधान्य एवं कटि देश में वेदना हो तो पित्त का प्राधान्य समझना चाहिए। ज्वरारम्भकाल में त्रिक् स्थान में वेदना हो तो कफ एवं पित्त की प्रधानता एवं पीठ में वेदना हो तो वात–कफ की प्रधानता समझनी चाहिए। इसी तरह अन्यान्य ज्वरों में कफ की प्रबलता जांघों की वेदना प्रकट करती हुई ज्वरोत्पादन करती है। वायु की प्रधानता में मस्तक-वेदना से ज्वरोत्पत्ति होती है इत्यादि सारी बातें विषमज्वर में एक या दो दोषों का प्रकोप जिस किसी रूप में प्रकट होता है वैसे ही त्रिदोष का प्रकोप भी होता है। यथा ज्वर के पूर्व वातश्लेष्मा द्वारा देह की शीतलता एवं शीतानुभव तथा अन्त में पित्त द्वारा दाह अथवा ज्वरारम्भ में दाह (पित्त द्वारा) एवं ज्वर निवृत्ति में शीत-वातश्लेष्मा द्वारा अनुभव होता है। ऐसा होने पर ज्वर में वायु, पित्त एवं कफ का एकत्र प्रकोप समझना चाहिए। अतः विषमज्वर में जिस दोष की प्रबलता देखी जाय उसी दोष के नाश की चेष्टा की जाय। दिन व रात्रि में ज्वरारम्भ से ही दोषों की पहचान प्रायः हो जाती है।

एक दोषज, द्विदोषज एवं त्रिदोषज (सान्निपातिक) ज्वर की महिमा नवज्वर से तो निराली ही है। पर विषमज्वर एवं जीर्ण ज्वर का विशेष महत्व है। कारण वातादि दोष पृथक वा मिलित रूप में रसानुगामी हो सारे ज्वरों (विषम) को उत्पन्न करते हैं, रस की लघुता और दोषों का परिपाक ही ज्वर मुक्ति है। पर विषमज्वर में ईषत् कुपित-वातादि दोष रस और रक्तादि धातुओं के समूह का आश्रय ले ज्वर उत्पन्न करते हैं एवं शरीरस्थ रस-रक्तादि के क्षय के कारण जीर्णज्वर में परिणत होते देखे जाते हैं, सुतरा यहां दोष व दूष्य-दोनों के ही प्रतीकार आवश्यक हैं। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक एवं द्वन्दज व सान्निपातिक ज्वर समूह, कितने दिनों में विषमज्वर का रूप ले लेते हैं, यह निर्णय करना प्रायः असम्भव है।
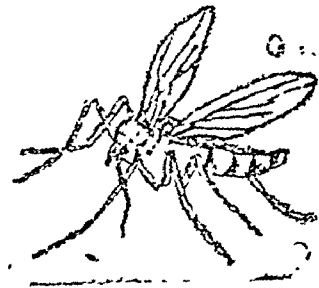
कालाजार कीटाणु वाहक मक्षिका

विषमज्वर के कई प्रकार हैं—यथा—सन्तत ज्वर, सतत ज्वर, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक। इनके भी सौम्य गम्भीर और जीर्ण-भेद हैं। इनसे भी एक भयङ्कर ज्वर

की सृष्टि १८८२ सन् में 'कालज्वर' के नाम से हुई। इससे कुछ पहले १८६९ सन् में इसने आसाम में अपना बीभत्स नृत्य दिखलाया। साधारणत: यह भी 'सतत ज्वर' ही है पर उससे कही अधिक बलशाली, अतीव दुःख देने वाला, काफी दिनों तक स्थायित्व लेने वाला 'कालाज्वर' एक मृत्युकारी रोग है, यह अति संक्रामक है। इसमें अनियमित उत्तापवृद्धि, विशेष एवं मूलत: प्लीहा की अतिवृद्धि, साथ-साथ यकृद् वृद्धि भी, रक्तस्राव, रक्त न्यूनता एवं दुर्बलता आदि लक्षण पाए जाते है। इसमें (ज्वर मे) भरा विष लम्बे समय से लम्बे समय तक धातुओं में लीन रहता है, लम्बे समय तक अपनी अनेक आवृत्तियां कर दुहराता ही रहता है। शरीर का रंग काला हो जाता है।

कालज्वर का विस्तार विस्तृत-भूभाग में पाया जाता है। भारत में अधिकांशत: आसाम, मद्रास और ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी के साथ-साथ के प्रदेश मे पाया जाता है। एक बार इसका आक्रमण ६-७ मास व्यापी होता है एवं कुछ विश्राम के बाद पुन: सामूहिक आक्रमण कर बैठता है। बंगाल, उड़ीसा, बिहार तक अब इसका आक्रमण हुआ करता है।

भला सोचिये—भयङ्कर वेग से ज्वर चढ़े। ४-५ डिग्री तक बढ़ जाय, रक्त निर्माणिक यकृत-प्लीहा बढ़ जाय, खून कम हो जाय और दुर्बलता भी बढ़ जाय? फिर मृत्यु में क्या अन्तर रहा? यह तो एक प्रकार का 'काल (मृत्यु)' का ही दोष है। देशव्यापी रूप मे इसका प्रभाव ७ वर्षों में कुछ सौ मील की रफ्तार से होता ही रहता है। साधारणत: एक स्थान पर ६ वर्षों तक उपस्थित रहने पर वहां पर यह स्वयमेव ही शमित हो जाता है और एकाएक इसका प्रवेश कई मासों तक स्थायित्व ले बैठता है। इसकी भयङ्करता से प्रभावित क्षेत्रों के निवासी इतने डरे हुए है कि—'जो मनुष्य इस ज्वर से पीड़ित हो जाता है उसे गाँव से बाहर निकाल दिया जाता है अर्थात् प्रकृति की भेंट चढ़ा दी जाती है। इसी परिप्रेक्ष्य में कई दुर्दांत घटनायें भी सुनी गई है।

अक्सर देखा आता है कि 'कालज्वर' का प्रकोप मैदानों के ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित रहता है और समुद्र से ४००० फीट की ऊंचाई पर यह नही फैल सकता। यह मार्च से मई मास तक फैलता है। पर आसाम में शीत ऋतु-नवम्बर से फरवरी तक फैलता है।

इस कालज्वर का मुख्य कारण एक प्रकार का परोपजीवी कीटाणु है जिसकी शोध 'लीशमन साहब' ने की थी। इसीसे इसका नाम भी 'लीशमानिया-डोनोवनी' रखा गया है। इस कीटाणु का आकार अण्डाकार या गोल लगभग २-४ म्यु तक व्यास वाला होता है। कीटाणुओं का विकास और वृद्धि प्लीहा मज्जा और लसीका ग्रन्थियों में हुआ करता है। विशेषत: इन्हीके कोषाणुओं को यह प्रभावित करती है। इन कीटाणुओं का वहन एक प्रकार के 'पिस्सू' द्वारा हुआ करता है। यही पिस्सू रोग पीड़ित किसी रोगी को काटकर अन्य किसी स्वस्थ प्राणी को काटता है तब उसे भी प्रभावित कर देता है। रोगी के मल द्वारा भी इसका संक्रमण होता देखा गया है। तथ्यत: कालज्वर के कीटाणु आतो की श्लैष्मिक-कला मे भी कही कही विद्यमान पाए जाते है। इसके जीवाणुओ का जीवन चक्र किस प्रकार चलता है यह अभी ज्ञात नही हो सका है।

कालज्वर समान रूप से सब आयु के स्त्री-पुरुषों को पीड़ित करता है। विशेषत: इसका आक्रमण उन पुरुषों वा स्त्रियों एवं बालको पर होता देखा गया है एक प्रकार की जलवायु के क्षेत्र से दूसरे भिन्न जलवायु क्षेत्र में प्रवास करते है, जहा कि पहले से इसका प्रकोप चालू होता है। भू-मध्य सागर के आसपास के देशो मे यह बालकों में ज्यादा पाया जाता है। भारत मे तो यह किसी भी उम्र मे हो जाता है।

सम्प्राप्ति—प्लीहा अत्यधिक बढ़ जाती है। तीव्रावस्था में कोप चिकने, मोटे और ग्रन्थिमय हो जाते हैं। इनका वल्क बढ़ जाता है और सूत्रमय हो जाते है। यह कल्पना की जाती है कि सम्पूर्ण प्लीहा का पांचवां भाग परोपजीवी कीटाणुओ का बन जाता है। यकृत भी बढ़ जाता है। इसकी जीर्णावस्था में अन्तर खण्डीय यकृद्दाल्युदर हो जाता है।

अस्थिमज्जा—यह रक्त वर्णीय एवं कीटाणुमय हो जाती है। इसमे अत्यधिक हानि पहुंचने के कारण रक्त निर्माण करने वाले तन्तु नाममात्र के लिये शेष रह जाते है।

वृक्क—इसमें भी रक्त संचार के साथ कीटाणु पहुंच जाते है। मूत्राशय पर आक्रमण होने पर मूत्र में भी इनकी

उपस्थिति प्रायः देखी जाती है।

लसीका ग्रंथियां—साधारणतः बढ़ एवं कठोर हो जाती है। ग्रसनिका एवं नासिका स्राव में इस ज्वर के कीटाणु देखे जाते हैं।

चयकाल—३ से ६ मास या एक वर्ष।

लक्षण—कालज्वर का आक्रमण अकस्मात अत्यधिक ज्वर के साथ हुआ करता है। ज्वर से पूर्व धूजनी छूटती है और वमन भी होता देखा जाता है। उत्ताप की अनियमितता (रात दिन बढ़ते रहना), कितने ही सप्ताहों तक उत्ताप रहना तथा निरन्तर लक्षणों की वृद्धि, प्लीहा की अत्यधिक वृद्धि। यकृत की भी वृद्धि, पेट का फूल जाना, कृशता, निर्बलता आना, स्वेद की अधिकता, त्वचा मैली व काली पड़ जाती है। पाण्डुता, श्वेताणु और रक्ताणुओं की न्यूनता। अस्थिमज्जा की विकृति के कारण रक्ताणुओं में विविध परिवर्तन एवं आन्त्रक्षत के कारण प्रायः अतीसार हो जाया करता है। यह २ से ६ सप्ताह या इससे अधिक भी रह सकता है। प्रति ४ घंटों के अन्तर से ज्वर मापने पर यह स्पष्ट मालूम हो जायगा कि २ या ३ समय उत्ताप वृद्धि हुई है जो कि इस रोग का मुख्य लक्षण है। प्लीहा की वृद्धि रोग के आरम्भ में ही हो जाती है। जब कि यकृत वृद्धि रोग के कुछ पुराना पड़ जाने पर ही हुआ करती है।

इस रोग का उपशम हो जाने पर भी थोड़े दिनों में पुनराक्रमण हो जाता है। पुनः उपशम एवं पुनः आक्रमण। इस तरह लम्बे समय तक यह कष्ट पहुँचाता रहता है, यहां तक कि कुछ आक्रमणों के बाद रोगी को निरन्तर मन्द ज्वर रहने लग जाता है। बाल शुष्क-भंगुर से हो जाते हैं। मसूढ़ों से अक्सर रक्त निकलता रहता है।

एक प्रमुख लक्षण इस रोग का यह भी है कि इतनी आफतों के बाद भी रोगी को भूख बहुत अच्छी लगती है। और उसकी जिह्वा स्वच्छ होती है। रोगी १०२ तक कार्य रत रहता है जैसे कि उसे ज्वर चढ़ा ही न हो। घबराहट व बेचैनी भी नहीं होती। रोग जीर्ण हो जाने पर यकृद्दाल्युदर के कारण जलोदर, सर्वांगशोथ, श्लैष्मिक कला में रक्तस्राव आदि उत्पन्न हो जाते हैं। त्वचा पर काले धब्बे हो जाते हैं। ये बढ़ते ही जाते हैं। इस तरह रोगी अत्यन्त निर्बल हो जाता है।

साध्यासाध्यता—

चिरकारी स्वभाव वाली यह व्याधि है। देश व्यापी प्रकोप में इसकी तीव्र अवस्था के रोगी भी मिलते है। आन्त्रिक-विकृति, जलोदर, यकृद्दाल्युदर आदि रोगी की कष्टसाध्यता प्रकट करते हैं। विषम ज्वर एवं प्रवाहिका का भी साध्यासाध्यता पर प्रभाव पड़ता है। इस रोग की आशुकारी तीव्रावस्था में रोगी की ८० प्र.श. मृत्यु हो जाती है। चिरकारी अवस्था में मृत्यु संख्या कम होनी है।

चिकित्सकोपयोगी सतर्कता—घरेलू तथा व्यक्तिगत स्वच्छता का इसमें अत्यधिक महत्व है। संक्रमित कुत्तों को मार देना चाहिए। जहाँ इस रोग का उपद्रवी प्रकोप हो वहाँ कुत्तों को इससे दूर रखना चाहिये। यह देखा गया है कि कुत्तों की संख्या अत्यधिक कम कर देने पर इससे पीड़ित देशों में रोग का प्रकोप अत्यन्त कम हो जाता है। रोगी को सर्वथा स्वच्छ वायु में गांव से बाहर रखें। उसके कपड़े झोंपड़ी, फर्नीचर आदि सब जलादें। भूलकर भी इनका प्रयोग कोई दूसरे व्यक्ति न करें। इसके कीटाणुओं को वहन करने वाली 'सेन्ड फ्लाई' के विनाश और उत्पत्ति को रोकने वाली प्रभावशाली क्रिया का अवलम्बन अत्यावश्यक है। यह (सेन्ड फ्लाई) शीलदार मकानों के भीतर अंधियारे में रहती है। अतः ऐसे मकानों का निवास निषिद्ध है। प्रकोप के समय पानी को उबाल कर ही प्रयोग करना चाहिए। यह भी एक प्रकार का 'सतत ज्वर' होने से सतत ज्वर चिकित्सा प्रणाली का अवलम्बन किया जा सकता है।

चिकित्सा—

विशेषतः तीव्रावस्था में अत्यन्त सावधानी अपेक्षित है। प्रारम्भिक अवस्था में 'रत्नगिरि रस', मेनसिल एवं हिंगुल का प्रयोग होने से अच्छा काम करता है।

रत्नगिरि रस—शु० मेनसिल, शुद्ध हिंगुल, लौंग और जायफल इनको समभाग मिलाकर १२ घंटों तक अदरख के रस में घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिए। मात्रा—१ से ३ गोली।

अनुपान—धनिया व मिश्री ६-६ माशे जौकुट कर ५ तोले जल में भिगो दें। १ घंटे छाया में पड़ा रहने दें।

—शेषांश पृष्ठ १६२ पर देखें।

पुनरावर्तक ज्वर

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु०, भिष० केशरी विशेष सम्पादक-धन्वन्तरि

ज्वर मुक्त रोगी वल प्राप्त न होने पर जब व्यर्थ आहार-विहार का सेवन करता है तो पुनः ज्वर आजाता है। अथवा ज्वरी के दोषों का निर्हरण उचित रूप से न होने से और उस समय स्वल्प अपचार से ज्वर पुनः लौट आता है। इसी दृष्टि से इसे आवर्तक या पुनरावर्तक ज्वर कहा है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने इसे स्पाइरोकेटल फिवर कहा है। यह ट्रीपेनोमा रेकरेन्टीस नामक जीवाणु से उत्पन्न होता है। यह रोग मुख्यतः उष्णता प्रधान देशों में अधिक दृष्टिगत होता है। अफ्रीका तथा भारत में यह व्यापक रूप से व्याप्त है।

गन्दगी इस रोग का मुख्य कारण है। क्योंकि जहां जहां स्वच्छता की कमी हो, स्वास्थ्य नियमों का उल्लंघन हो, समुचित पोषण आदिका ध्यान न हो वहां इस रोग का प्रसार देखा गया है। इसके दो प्रकार के जीवाणु होते हैं। इन दोनों ही जीवाणु के नाम इनके आविष्कारकों के नाम पर ही रखे गये हैं। (१) बोरेलिया रेकरेन्टीस या स्पीरीलम ओवेरमीपर (२) बोरेलिया डट्टनी। ये दोनों ही जीवाणु पेचदार होते हैं। यूका, लीक्षा, चीचडी के द्वारा ही इनका संक्रमण होता है।

इन पराश्रयी कीटों के शरीर में जीवाणु वृद्धि पाते हैं। ज्वर काल में जब इनका संक्रमण रक्त में रहता है और उसी काल में ज्वर उक्त कीटाणु ज्वराक्रांत रोगी के शरीर का रक्त चूसते हैं तो ये जीवाणु प्रभूत संख्या में उक्त यूका, लीक्षा या चीचड के पेट में चले जाते हैं और वहा से पुनः स्वस्थ मनुष्य के शरीर में इन कीटों के दंश द्वारा प्रवेश पाते हैं। इन पराश्रयी कीटों के मल मूत्र से भी ये जीवाणु निकलते हैं और उस मल मूत्र का सम्पर्क जब स्वस्थ देह की त्वचा से होता है तब भी इनका प्रवेश शरीर में हो जाता है।

बार बार लौट कर ज्वर का आना इसका विशेष रूप है। इस ज्वर का आरम्भ अकस्मात उग्ररूप में शीत कम्प, शिरः शूल, पृष्ठ का जकड़ना, वमन, निर्बलता आदि के साथ होता है। ज्वर का तापमान १०४ F तक चढ़ जाता है। प्लीहा वृद्धि भी पर्याप्त रूप में होती है। कभी कभी कामला या ओजोमेह, या सितामेह भी साथ साथ हो जाता है। पसीने के साथ ज्वर उतरता है और फिर चढ़ जाता है। रोगी शीघ्र ही स्वस्थ अनुभव करने लगता है परन्तु सप्ताह या दो सप्ताह में पुनः ज्वर आने लगता है। इस प्रकार बार बार आना ही आवर्तक या पुनरावर्तक शब्द को सार्थक कहता है। चरक ने माना है कि पुनरावर्तक ज्वरों में दोषों का पाक क्रमशः धातुओं में ही होता है अतः इसका शीघ्र ही प्रतिकार न करने से धातुओं का क्षय होकर कालान्तर में तदानुसार ही विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इससे आक्रान्त रोगी अपने आपको हीन अथवा असहाय या आत्मग्लानियुक्त अनुभव करता है। वह शोथ, पाण्डु तथा अरुचि रोग लक्षणों से पीड़ित रहता है। कण्डु, पिड़िका, कोठ अग्निमांद्य जैसे कष्ट उसे होते हैं तथा अनन्तर में इसी वर्ग के अनेक रोग उसको आघेरते हैं।

चिकित्सा—

सर्व प्रथम रोगी का दोष निर्हरण आवश्यक है। इसमें रोगी का बलाबल ज्ञात करना जरूरी है। शोधन के बाद संशमन करना चाहिए। यहां इस बात का ध्यान अवश्य रखें मृदुशोधन ही यहां होना चाहिए। वस्ति आदि का प्रयोग उत्तम है। भोजन भी हितकर होना चाहिए जिनमें यूष रस आदि उल्लेखनीय हैं। बाह्य उपचार में लाक्षादि

तैल, चन्दनवला लाक्षादि तैल का अभ्यंग होना चाहिए। स्नान, धूपन आदि भी किये जा सकते हैं।

पेट में किरात तिक्त, कुटकी, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, गुडूची का क्वाथ देना चाहिए। तिक्त घृत भी दिया जा सकता है। रोगी के स्वस्थ होने के बाद भी अधिक समय तक औषधि प्रयोग चालू रखने से ज्वर का आवर्तन बन्द होता है।

रसौषधियों में—पुटपक्व विषम ज्वरांतक लौह, सर्वज्वरहर लौह, जयमंगल रस, मल्ल योगों का प्रयोग उत्तम है।

पेय औषधियों में अमृतारिष्ट तथा लोहासव किराताद्यरिष्ट या कालमेघासव उपयुक्त तथा लाभदायक हैं।

आधुनिक चिकित्सक इस रोग में मल्ल के योगों का उपयोग करते हैं।

काल ज्वर या कालाजार : : पृष्ठ १६० का शेषांश

बाद में इन्हें मसल छानकर औषधि के साथ पिला दें। जीर्णावस्था हो तो शुद्ध दूध के साथ दें।

दुग्ध कल्प—काल ज्वर पीड़ित रोगियों के लिए दुग्ध कल्प आशीर्वाद के समान हितावह है। गो दुग्ध पर रोगी यदि दो मास तक रह जाय तो कीटाणु प्रायः नष्ट हो जाते हैं। विष जल जाता है। रक्त शुद्ध हो जाता है, दूषित अवयव पुनः बलशाली हो जाते हैं। त्वचा का रंग पूर्ववत उज्वल बन जाता है तथा शरीर बल और मस्तिष्क शक्ति भी बढ़ जाती है। दुग्ध कल्प में दूध के अलावा कुछ भी नहीं देना चाहिए। यदि दूध से अतिसार हो तो बकरी के दूध का प्रयोग हितकर है। इस कल्पकाल में निम्न प्रयोग का भी सेवन आवश्यक है—

किरातादि फाण्ट—चिरायता ३ माशा, कुटकी १ माशा, कालीमिर्च ४ रत्ती, इन सबको १ रत्ती कपूर, २ रत्ती शिलाजीत और ६ माशे शहद मिला मिला देवें। दिन में दो बार पिलावें। इसके सेवन से आम, कीटाणु और विष नष्ट हो जाते हैं। यदि कुटकी द्वारा दस्त पतले लगने लगें तो उसे कुछ कम कर दें। १०–१५ दिनों बाद मल की दुर्गन्ध कम हो जाय तब २ माशा त्रिफला चूर्ण मिलाकर सेवन करें। यदि कफदोष विशेष हो तो किरातादि फाण्ट के स्थान पर 'नागरादि फाण्ट' का सेवन विशेष हितावह है।

नागरादि फाण्ट—सोंठ ६ माशे, छोटी कटेरी की जड़ १ तोला, नागरमोथा १ तोला, आंवला १ तोला, इन सबों को जौकुट कर आधा किलो पानी में भिगो दें, थोड़ी देर बाद चूल्हे पर चढ़ा क्वाथ बना लें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर दो हिस्से कर लें। पिलाते समय १ रत्ती भीम सेनी कपूर, २ रत्ती शिलाजीत और ६ माशे शहद मिलाकर पिलावें।

अपनी बात—आज से करीब ४० वर्ष पहले मेरी मामी जी को यह हुआ था, उनके मामा जी वैद्यक का शौक रखते थे। चाहे जभी वे ज्वर पीड़ित हो जातीं, प्लीहा, यकृत बढ़े हुए थे, पर भोजन के समय वे ज्वरग्रस्त होने पर भी तृप्ति से भोजन करती थीं। पीड़ा तो थी ही, दुःखी भी कभी-कभी बेहद हो जाती थीं। एक दिन अपने मामा जी के पास जाकर गिड़गिड़ाईं, मामा जी ने उपचारार्थ १ मूला मंगवाया, उसे पिसवाया और एक बड़ी बोतल में भर दिया। ऊपर से अन्दाजिया १ तोला कलमीशोरा डालकर बोतल को धूप में छत पर रखवादी। २४ घंटों बाद उसे उठाई, केवल पानी ही पानी था, उसमें से २-२ तोला पानी दिन में ३ बार पिलाया। पथ्य में नमक बन्द करवा दिया। १०-१२ दिनों बाद मेरी मामी जी ठीक हो गईं।

यों नीम के पत्ते १०, कालीमिर्च १० घोटकर ३ अमृत संजीवनी मुंह में डाल नीम का पानी ३ समय पीने से अच्छा लाभ होता है।

व्याधि संक्रामक एवं भयङ्कर है, अतः किसी योग्य चिकित्सक से सम्पर्क साधना अतीव आवश्यक है।

काला ज्वर (काला आजार)

आजकल बहुत सी नवीन व्याधियाँ देखने मे आती है लोग अक्सर कालाजार को भी नवीन व्याधियों के अन्दर अचिकित्स्य मानकर बैठ गये हैं। किंतु कालाजार न तो कोई जटिल रोग ही है न नवीन व्याधि ही। केवल नाम बदल जाने से आयुर्वेद प्रेमियों ने साहस छोड़ दिया है।

कालाजार का लक्षण—ज्वर के साथ यकृत प्लीहा वृद्धि इस रोग का प्रधान लक्षण है। इस रोग में यह विशेषता अवश्य है कि बहुत काफी दिन तक चलता है। और रोगी को उत्तरोत्तर क्षीण करता चला जाता है। प्लीहा यकृत दोनों बढ़कर पेट में पूर्णतः फैल जाते है। शरीर का रंग मटमैला व काला पड़ जाता है। जो शरीर स्वभावतः काला होता है वह अधिक काला हो जाता है। एक विशेषता इस ज्वर मे और देखी जाती है कि रोगी को भूख अधिक लगती है। परन्तु जितनी भूख होती है उतना रोगी भोजन नही कर पाता। भोजन की इच्छा अधिक होती है, भोजन खाया कम जाता है। १०० मे से एक-दो रोगी ऐसे भी होते है जो खाते अधिक है और २।१ ऐसे भी होते है जिन्हे अरुचि होती है। यह ज्वर दिन-रात मे दो बार चढ़ता है। बहुतों के दांतों मसूढ़ों व नाक से रक्त आने लगता है। इस रोग की अन्तिम अवस्था में कभी-कभी हाथ पैरों में शोथ और उदर मे जल संचय हो जाता है। हाथ पैर मे शोथ जब होता है तो यह दो-दो तीन-तीन बार तक ठीक भी हो जाती है। आंखें पीली पड़ जाती है। बहुत से रोगियों में रात्र्यन्ध्य भी देखने को मिलता है। प्रायः, न्यूमोनियाँ रक्तातिसार होकर ही रोगी की मृत्यु होती देखी गयी है। इस ज्वर में शरीर के कृष्णवर्ण होने से ही इसका नाम काला आजार कर दिया गया है। पाश्चात्य चिकित्सक इस रोग की उत्पत्ति लिश्याअियाँ दोनोवानी नामक कीटाणु से मानते हैं। किंतु मैने इसे सतत ज्वर माना है। कहा गया है, अहोरात्रे सतको द्वौ कालानुवर्त्तते। यह विषम का ही स्वरूप है। तर्क यह अवश्य हो सकता है कि यदि यह विषम ज्वर है तो रक्तपात क्यों होता है। परन्तु यह समस्या भी हल हो जाती है। तद्यथा ज्वर संतापाद्रक्तपित्त-मुदीर्यते। यह अन्य ज्वरों की तरह नवीन एवं जीर्ण भेद से दो प्रकार का कहा जा सकता है। वैसे यह ज्वर विशेषतः नवीन अवस्था में अधिक नही रहता, शीघ्र जीर्ण
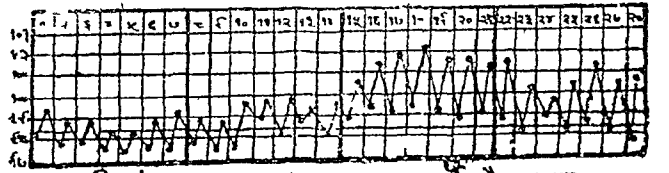
चित्र नं. १० काला-ज्वर (Kala-azar) का चार्ट सौम्य प्रकार

अवस्था में परिणत हो जाता है। इस विषय में और भी शास्त्रान्तर्गत विचार करने का कष्ट करें।

त्रिसप्ताह व्यतीतेतु ज्वरोमस्तनुतांगतः।
प्लीहाग्निसादं कुरुते सजीर्ण ज्वर उच्यते॥

अग्निसाद (यकृत) और प्लीहा दोनों अभिवृद्धि रूपेण पाये ही जाते है। यह ज्वर प्रायः रक्त धातु का आश्रय लेता है। कहा है—

रक्तधात्वाश्रयः प्रायो दोषः सततकं ज्वरम्। चरक।

और रक्तस्थ लक्षण इस प्रकार कहे गये है—

रक्तोत्था पिडिकस्तृष्णा स रक्तष्ठीवनं मुहुः।

चिकित्सा—

अन्य पैथियां कालाज्वर को असाध्य मानती हैं। परन्तु आयुर्वेद मतानुसार यह सुसाध्य कहा जाता है।

रस रक्ताश्रितः साध्यः मांस मेदोगतश्चयः।

और आयुर्वेदीय चिकित्सा से लाभ भी होता है।

(१) प्रातः सायं ज्वर पाचन के लिए।

नागरमोथा, कुटकी, पाठा, अनन्तमूल, पटोलपत्र ये सब मिश्रण २ तोला लेवें। मोटा चूर्ण बना आधासेर पानी में मन्द आंच से पाचन करें। आधा पाव रहने पर छान कर पिलावें। इससे शीघ्र ज्वर का पाचन हो जाता है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि इस ज्वर में शास्त्रोक्त दश उपद्रवों के अलावा यकृत, प्लीहा वृद्धि, रक्त वमन, रक्तातिसार, जलोदर या उरस्तोय, या त्वचा फटकर रक्तपात होना (ल्योकोमिया की तरह) कामला होना, रात्र्यांध्य तथा श्लेष्म वृद्धि आदि लक्षण अधिक देखे जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ज्वर के लिए जैसे महर्षियों ने 'कालान्तक यमोपमः' कहा है इस ज्वरमें पूर्णतः प्रदर्शन होता है। वड़ा ही धैर्यवान चिकित्सक भी आशुक्रिया कुशल चिकित्सक ही इसे जीत पाता है।

वैसे सभी उपद्रव भयंकर तो होते ही हैं परन्तु रक्तपात, उदरवात, रक्तातिसार, जलोदर, श्वास, ज्वर का उग्रवेग रोगी को तुरन्त मार देते हैं। इन उपद्रवों से सदैव चिकित्सक को सतर्क रहना चाहिए।

अनुभूत प्रयोग—

श्वास ज्वर के उग्रवेग में—दो से ५ रत्ती तक कपूर की डलीगुड़ में लपेटकर जल के साथ खिलावें। १० मिनट के अन्दर ही कमाल देखें।

शोथ तथा जलोदर में—गोपाल जठर चूर्ण ६ ग्राम नौ बजे रात में देवें। प्रातः पेट का सारा जल तथा कूड़ा निकल जावेगा। किसी-किसी रोगी में इसकी १२ मात्रायें नित्य ६ बजे रात में १२ दिन तक (१ मात्रा के हिसाब से) देनी पड़ती हैं।

रक्तपात या रक्तातिसार—गुजरिया, पीपल की लाख, का क्वाथ करे तीन दिन रक्खा रहने दें जब तीसरे दिन शराब की सी गन्ध आने लगे तब छानकर बोतलों में भर लें। मात्रा—३ ग्राम, जल ५ तोला। दिन में एकया दो बार देवें।

उदरवात में तीन ग्राम शुद्ध हींग शक्कर तीन ग्राम मिलाकर पानी से देवें। १० मिनट में इसका कमाल देखें।

प्लीहा यकृत वृद्धि में—बरफ का ढ़ेला १ किलो रोज यकृत प्लीहा में रखकर बांध देवें। १ हफ्ते में इसका कमाल देखें। यकृत प्लीहा चाहे जितने बढ़े हों अपने स्थान में आ जावेगें।

इस कालाजार की भयंकर अवस्था में जब रोगी का मूत्र तक काला आने लगता है उस समय राम मालिक होते हैं। परन्तु सन्तों की महिमा भी मृत्यु को जीतने में एक जाज्वल्यमान उद्धरण का कार्य करती है। एक सन्त द्वारा गोरवा बूटी का प्रयोग सैकड़ों रोगियों पर परीक्षित उन्होंने मुझसे बताया था जिसे मैंने दो रोगियों में ही चलाकर परीक्षण किया पूर्ण सफल रहा। इसका नाम लेटिन में वाईटेक्स पेन्डुन्क्युलेरिस बताया और इसकी उत्पत्ति पूर्वी बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, आसाम, उड़ीसा, खासिया पहाड़ी, तनानरीम के जङ्गलों में विशेष पायी जाती है। यह भी बताया था।

प्रयोग विधि—

गोरवा (गोरिया) बूटी के ताजे छायाशुष्क पत्ते ५० तोले को सवा सेर पानी में १० मिनट उबालकर नीचे उतार १ घन्टा अच्छी तरह ढक रक्खें। फिर छानकर थोड़ी शक्कर मिला १० से २० तोला की मात्रा में २४ घन्टे के अन्दर कई बार पिलाने से उपद्रवसहित कालाजार से शीघ्र लाभ दर्शाता है। इस प्रयोग से मेरे दो रोगी १ हफ्ते में ही रोगमुक्त हो गये थे।

विषम ज्वर

वैद्य सीताराम शर्मा शास्त्री, लक्ष्मी औषधालय, श्रीनगर रोड, अजमेर।

विषम ज्वर जिसे हुम्मा खिलातिया, मलेरिया कहते हैं। इस ज्वर के आने उतरने चढ़ने का कोई नियम नहीं है, इस हेतु इसे विषमज्वर कहते हैं। यह ज्वर वर्षा शरद, बसन्त ऋतु में अधिक फैलता है। कभी-कभी ग्रीष्म ऋतु में भी होता है।

उष्ण अन्धकार शील वाले स्थानों में जहां गन्दगी रहती है उन स्थानों में इसका प्रकोप होता है। इस ज्वर में बद्धकोष्ठता, तृषा, नेत्र जलन, कमर पीड़ा व किसी-किसी को ठण्ड लगकर और किसी को बिना ठण्ड (शीत) लगकर ज्वर आता है। किसी को शीत नहीं लगता, परन्तु शिर में दर्द आता है। वैद्य समुदाय इसके लक्षण सब जानते हैं। मैं केवल ज्वर की किन-किन अवस्थाओं में क्या क्या लक्षण होते हैं उसके अनुसार औषधियां आयोजित करता हूं जिसके अनुसार औषधि अति शीघ्र कार्य करती हैं उनका ही उल्लेख कर रहा हूं।

वैसे निम्नलिखित औषधियां हर ज्वर के ऊपर अपना कार्य कुछ न कुछ करतीहैं, अनुपान भेद से। परन्तु लक्षणों के मिलने पर तो अति शीघ्र ही अपने भरोसे का कार्य करती हैं।

जैसे आयुर्वेदीय औषधियों के अन्य पहलु इस प्रकार से हैं। प्रत्येक औषधि योग का किसी न किसी अधिकार में शास्त्रीय प्रयोग पाया जाता है, जैसे आरोग्यवर्धिनी वटी का प्रयोग रसरत्न समुच्चयकार ने कुष्ठाधिकार में किया है। बंगाल और काशी की वैद्य परम्परा में इसका प्रयोग जलोदर एवं यकृत के रोगों में किया जाता रहा है। इस प्रत्यक्ष के आधार पर यही सिद्ध होता है कि औषधि गुण अगाध व महान हैं। इसका प्रयोग किस-किस प्रकार किन-किन रोगों की किन-किन अवस्थाओं में अच्छा शीघ्र कार्यकारी होता है। यह विद्वानों के प्रयोग के ही आधार पर है।

यह सब मेरा अपना, अपने मित्र वैद्यों तथा गुरुजनों एवं गुरू सम-कक्ष विद्वानों के अनुभवों का संग्रह है।

शट्यादि योग—पाकस्थली की क्रिया की गड़बड़ी के कारण ज्वर होना, खाने पीने के दोष के कारण ज्वर मिचली या कै, जीभ पीली, थोड़ी देर बाद बहुत जाड़ा मालूम हो, परन्तु उष्ण अवस्था बहुत देर तक स्थाई रहे। ज्वर आने के पहले जम्भाई-अँगड़ाई लेता। बाहरी गर्म प्रयोग से जाड़ा बढ़ना। उष्णावस्था में तेज प्यास, पर जाड़ा लगते रहने पर प्यास न होना, उष्णावस्था के बाद ही बहुत पसीना, हरे आम भरे पतले दस्त, मुंह का स्वाद तीता। रोग की पहली अवस्था में मिचली, वमन पित्तरूप मल उदर में वायु संचय, सिर दर्द।

योग—नर कचूर, कपूर कचरी, करंज की मिंगी भुनी, जहर मोहरा, यशद भस्म २-२ तोला, हिंगुल रौप्य भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, पीपल छोटी १-१ तोला, दालचीनी ६ माशे, जटामांसी के क्वाथ में तीन भावना देकर २-२ रत्ती की गोली बना लें। मात्रा १-२ गोली।

महाज्वरांकुश रस—शीतपूर्वक आने वाला ज्वर सम्पूर्ण शरीर में कम्प होना, अङ्ग में जड़ता, शरीर पर गीलापन मालूम होना, हाथ-पैर में टूटन, संधियों में दर्द, हड़फूटन, तन्द्रा, हाथ-पैरों में शून्यता, तृषा, चक्कर आना और उदर में अफरा बार-बार वमन उबाकी आना, नेत्र-दाह, पसीना न आना, धूप में बैठना-अच्छा लगना, प्रलाप दस्त पहले आये हों या पेचिस के पहले हुई हो।

बृहत कटफलादि चूर्ण—ज्वर में उबाक, वमन बार-

बार होना, वमन में लेसदार मधुर दुर्गन्धयुक्त पदार्थ निकलना, कभी पित्त मिश्रित वमन भी हो जाना। जीभ पर सफेद मल जमा हो जाना, स्निग्ध मधुर चीज देखने पर रोगी के मुख में जल भर जाना, मुख में विरसता, किसी भी चीज में स्वाद न आना, उदर में जड़ता सी प्रतीत होना, पेट पर अफरा होना, पेट में वायु संचय होना।

गद्मुरारि रस—दिन में किसी भी समय अनियमित रूप से ज्वर आना, कभी कम कभी अधिक, कभी शीतयुक्त, कभी विना शीतयुक्त ज्वर आना, कभी तृषा अधिक, कभी तृषा न लगना, ज्वर आने पर सर्वांग में दर्द, ज्वर चले जाने पर रोगी चलता फिरता है। हाथ पैरों के तलवे में जलन, पैर की नाड़ियां खिचती हैं, हाथ पैर पटकना, अति व्याकुलता, उवाक, वमन, अरुचि, छाती में भारीपन, मुख मण्डल निस्तेज, प्रलाप, सन्धि वेदना, अति स्वेद, मुख से दुर्गन्ध निकलना, किसी का स्पर्श सहन न होना, दस्त पेशाव बार-बार आना। पंखे की हवा करते रहना अच्छा लगता है।

लक्ष्मीनारायण रस—जोर से ठंड लगकर ज्वर आता हो और साथ-साथ प्यास बेचैनी, पसीना न आना, सिर दर्द, ज्वर १०४ से १०५ डिग्री बढ़ जाता हो, रोगी को झटके आने लगते हैं, श्वास रुक जाती है, शरीर की नसें ढीली पड़ जायें या कड़ी हो जायें, मृत्यु भय या ज्वर में पाचन क्रिया बिगड़ कर दस्त हो जाते हैं, रोगी क्षीण होता चला जाता है।

ताप्यादि लोह—थोड़ी ठंड लगकर बड़ी तेजी से ज्वर आना, ताप अधिक, दूसरे दिन और अधिक जोर से ठंड लगकर ज्वर आना, अकस्मात् ज्वर आ जाना, ऐसी अनियमित अवस्थाओं में वातपित्तात्मक लक्षण की अधिकता से जीर्ण विषमज्वर होता है। साथ में अरुचि उवाक उदर जड़ता अन्न समीप आते ही मुंह में जल आ जाना, अगर थोड़ा सा भी भोजन कर लिया तो पचन न होना।

अग्नि कुमार—बहुत जाड़ा यहां तक कि गरम कमरे में भी जाड़ा नहीं थमता, प्यास नहीं रहती, नाड़ी नियमित वेग से चलती है। रात में तलवे ठंडे हो जाते हैं, सबेरे उठने के समय पसीना होता है, जीभ सादी या सफेद मैल चढ़ी, कब्जियत या पतले दस्त, खट्टी चीज के सिवाय रोगी दूसरी चीज खाना नहीं चाहता, रोगी बराबर सोता रहता है (बूढ़े और मोटे ताजे जवानों के रोग में अधिक लाभकारी है।)

सर्वतोभद्र रस—सवेरे के समय आने वाला ज्वर, ज्वर बन्द हो जाने पर पित्ती उछल आती है। खुजाने से आराम मालूम पड़ता है।

लक्ष्मीविलास रस (नारदीय)—नाड़ी क्षीण और तेज, सन्ध्या के समय शीत अधिक लगना, जाड़ा शुरू होने से पहले हाथ पैर ठंडे हो जाते हैं प्यास लगती है, धूप लगने से ज्वर, शीतावस्था में प्यास, उसके बाद तेज दाह, अन्त में कमजोर करने वाला खट्टी गंध मिला पसीना होता है, जाड़ा लगने के पहले सर दर्द अङ्गों में दर्द हाथ पैरों में दर्द, श्वाँस ठंडी चेहरा लाल रोगी बराबर हवा करने को कहता है।

आमलक्यादि चूर्ण (करंज मिंगी युक्त)—दस-ग्यारह बजे दिन के समय बहुत जाड़ा और प्यास के साथ ज्वर तेज सिर दर्द शरीर इक दम शीर्ण ओठों पर ज्वर के आने, ज्वर छूटने पर सुस्ती बहुत, पसीना या ज्वर १ बजे दिन से ४ बजे तक आता है। सूर्य अस्त के समय विना प्यास के ज्वर आता है। विना पसीने असह्य ताप हाथ पैरों में जलन अपचन आदि।

दुर्जलजेता रस—प्रतिश्याय सहित शीत ज्वर वर्षा ऋतु में कीचड़ के स्थान पर रहने से ज्वर आना, ज्वर आने पर जड़ता अङ्ग पर पीलापन, मुंह चिपचिपा और मीठापन, उदर में वायु भरा रहना, क्षुधानाश, मीठी दूषित डकार आना, कमर पीठ में दर्द।

विसूचिकान्तक रस—सवेरे ६ बजे के समय प्यास के साथ जाड़ा लगकर ज्वर आता है। बहुत देर तक जाड़ा लगता रहता है। शीतावस्था में प्यास के साथ संपूर्ण शरीर ठंडा और अवसन्न नाड़ी क्षीण उष्णावस्था में कपाल पर ठंडा पसीना, पसीने की अवस्था में चेहरा मुर्दा जैसा बदरंग हो जाता है। तेज मलेरिया ज्वर में बड़ा लाभकारी रस है। जहाँ जीवनशक्तिकमजोर और हिमांगावस्था खूब स्पष्ट है वहाँ विशूचिकान्तक काम करता है।

मृत्युञ्जय रस—शीत ज्वर की गति अति तेज हो देह में जलन ज्यादा हो, प्यास अधिक हो, मूर्छा चित्तभ्रम सिर दर्द कंठ मुख सूखना, वमन रोमाँच अरुचि आँखों में

सामने अन्धेरा छा जाना जोड़ों में दर्द या साथ में प्रतिश्याय होकर मंद ज्वर मुख मीठा चिपचिपा आलस्य पेशाब सफेद रङ्ग का होना हाथ पैर टूटना अङ्ग भारी होना।

चन्द्रशेखर रस— पित्त श्लेष्म ज्वर शरीर तन्द्रा अरुचि कभी-कभी अङ्ग में दाह कभी-कभी अङ्गों में ठंड लगना।

ज्वरारि अभ्र—ज्वर का तीव्र वेग, तृषा कंठमें शुष्कता निद्रानाश। सब अङ्गों में पीड़ा और शरीर का अकड़ जाना, प्रलाप, कम्प बना रहना। मन ही मन बड़बड़ाना, बीच में जोर से चिल्लाना, चिल्ला उठना। व्याकुलता तन्द्रा किंचिद नेत्र लाल मोह चक्कर वमन अरुचि, भोजन सामने आते ही मुँह में जल छूटने लगना, मुंह में मीठापन मूत्र में दाह तथा पीला पतला जलनसह दस्त आना।

त्रैलोक्य सुन्दर रस—वर्षा के जल में भीगने, शीत लगने या अपथ्य भोजन करने से या असमय में भोजन करने से ज्वर का होना ज्वर में दोषों की आमावस्था में वाले कोष्ठ शूल अथवा सर्वागशूल हो। सामान्य कब्ज हो।

स्वच्छन्द भैरव रस—वर्षा ऋतु में या शीत ऋतु में शीतल वायु के लगने से ज्वर या धूप में घूमने के कारण जुकाम हो जाना और मन्द-मन्द ज्वर आते रहना। मुख चिपचिपा आलस्य सिर दर्द उवाक अरुचि जोड़-जोड़ में दर्द अपचन से उत्पन्न ज्वर दिन में २–४ दस्त होना।

त्रिभुवनकीर्ति रस—सर्वाग कम्प संताप स्वेद अधिक दोपहर में ज्वर कम होना हाथ पैर टूटना, शरीर गीला सा रहना संधियों में दर्द छाती पीठ में दर्द थोड़ा सा भी चलने पर दर्द बढ़ना निद्रा वृद्धि शरीर में भारीपन मस्तिष्क जकड़ा होवे जैसी वेदना, प्रतिश्याय तथा खांसी व्याकुलता कान में आवाज होना मुख चिपचिपा, मल में मैलापन।

विश्व ताप हरण—शीत ज्वर मुख कड़वा तथा चिपचिपा अरुचि कास मोह तृषा तन्द्रा शिर में दर्द सन्धि वेदना बार-बार थोड़ी देर में कभी दाह कभी शीत और ठंड के बाद पसीना, ज्वर दिन के अन्त में या रात्रि के अन्त में आता है।

पित्तान्तक रस—शिर में बार-बार चक्कर आना, घबराहट, सर्वांग में कम्प, हरी पीली वमन, उबासी आना प्रस्वेद शोक चिन्ता से ज्वर दाह नेत्र जलन।

ज्वर केशरी रस—ज्वर प्रायः दोपहर को या मध्य रात्रि को आता है, कंठ शोथ शिर.शूल तृषा मूर्च्छा भ्रम दाह वमन रोंगटे खड़े होना अरुचि संधियों में पीड़ा जम्भाई चक्कर मलावरोध।

शूलवज्रणी वटी—रात को छोड़कर और किसी भी समय ज्वर का आना। हृदय में धड़कन, शिर में दर्द बारी बारी से जाड़ा और गर्मी पसीने के समय प्यास कभी-कभी दुबारा ज्वर बढने पर प्यास का अन्त न होना, अनिन्द्रा या अच्छी तरह से नींद न आना, बहुत अधिक निर्बलता, एक दिन के अन्तर से ज्वर का आना। यकृत प्लीहा बढ़ना। यकृत प्लीहा छूने से दर्द मालूम होना, पानी जैसा या लसदार पित्त मिला दस्त, कपाल की नसें फूली, जाड़े से पहले बहुत भूख प्यास। दस्त जाने के समय कांखना।

समीर पन्नग रस (स्वर्ण माक्षिक व प्रवाल युक्त)—हाथ पैर ठंडे होकर ज्वर शुरू होना कपकपी आरम्भ से पहले ही ज्वर बढ़ना और जलन दाह होने लगना दुर्निवार प्यास रहती परन्तु थोड़ा पानी पीने के बाद ही प्यास कम हो जाती है फिर प्यास लगती है। रोगी थोड़ा-थोड़ा पानी पीता है। श्वांस कष्ट, पानी पीते ही वमन हो जाती है। जीभ साफ हर बार ज्वर छूटने के बाद ही रोगी बहुत कमजोर हो जाता है। रात के १२ बजे बाद रोग के लक्षण बढ़ जाते है।

रामबाण रस (शंख भस्म कौड़ी भस्म युक्त)—पक्वाशय की क्रिया की गड़बड़ी के कारण उत्पन्न ज्वर या पैत्तिक ज्वर तीसरे पहर १ बजे से ४ बजे के भीतर आता है। सूर्यास्त समय बिना प्यास ज्वर होता है। जाड़ा बहुत देर तक रहता है कपकपी होती है। प्यास अक्सर नहीं रहती। बिना पसीने असह्यताप हाथ पैरों में जलन मालूम होना कभी-कभी जाड़े के थोड़ी देर बाद ही ताप अवस्था शुरु हो जाती है।

नोट—वैद्य बन्धु अनुपान समय अनुसार कर लें। या गर्म जल से दें।

श्री दुर्गा शंकर पाठक बी.ए.

कारण—रोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण गन्दगी है। मकान के समीप कीचड़, कूड़ा करकट आदि का जमा होना। कुओं के गंदे पानी का जमा रहना, आम प्रचलित सड़कों की नालियों, सण्डासों का गन्दा पड़ा रहना आदि। इन्हीं गंदगी पर मच्छरों का प्रमुख वास रहता है और यह तो सर्व विदित है कि एक विशेष मच्छर जिसका नाम 'एनाफिलज' के द्वारा यह रोग उत्पन्न होता है।

तापमान—इस ज्वर में तापमान विषम रहता है। मलेरिया ज्वर में प्रातः काल १०१ से लेकर शाम १०४, १०५ अंश तक पहुंच जाता है।

चिकित्सा—यदि रोगी की शीघ्र उपचार व्यवस्था न की जावे तो धीरे धीरे रक्त दूषित होने लगता है। तिल्ली बढ़ने लगती है। रक्ताल्पतावश शरीर पीला पड़ने लगता है। धीरे-धीरे अस्थियों तक पहुंच जाता है और रोगी की स्थिति भयानक हो जाती है। ध्यान रहे एकतर्रा तिजारी, चौथिया आदि ज्वर मलेरिया के ही रूप हैं। मलेरिया की मुख्य पहचान है ठण्ड देकर बुखार आना और पसीना आकर उतर जाना।

यज्ञ चिकित्सा—यह चिकित्सा भारतीयों की आदि-कालीन श्रेष्ठतम पद्धति है। अनेक कष्ट साध्य, मरणासन्न रोगियों को यज्ञ चिकित्सा विधि द्वारा मृत्यु के मुख से लौटाया गया। राजयक्ष्मा जैसे दुःसाध्य रोग के रोगियों ने भी यज्ञ चिकित्सा द्वारा तुरन्त स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया है। यद्यपि वर्तमान में यह क्रिया समय की करवट ने दबोच दी है किंतु उसमें आज भी वही अग्नि तत्व वर्तमान है। आवश्यकता है उसे प्रयोग में लाने की।

विज्ञान का नियम है कि मनुष्य लौकिक किसी भी प्रकार के पदार्थ का न तो निर्माण ही कर सकता है और न विनष्ट ही, केवल उसमें रूप, स्थान, समय उपयोगिता, अधिकार उपयोगिता आदि द्वारा परिवर्तनदाता ही कहला सकता है। अग्नि में भी जो वस्तु जलाई जाती है वह भी नष्ट नहीं होती वरन् सूक्ष्म स्वरूप में परिवर्तित होकर वायु के साथ सुदूर अम्बर क्षेत्र में फैल जाती है। रोगियों की समयानुसार प्रथक-प्रथक शारीरिक अवस्थाये होती हैं। जिन्हें सामान्य मंद रोग होते हैं उन्हें चलने फिरने, स्नान करने आदि में कोई कठिनाई नहीं होती, वे हवन पर स्वयं बैठ सकते हैं। जिनको स्नान आदि में कठिनाई अनुभव होती हो, वे आहुति आदि स्वयं न दें, किन्तु हवन के समीप ही आराम से बैठ जाना चाहिये। जो रोगी बैठने में भी असमर्थ हैं, उन्हें उनकी शैया के पास ही हवन करवाना चाहिए। ऐसे हवन देवाह्वान के लिए नहीं अपितु चिकित्सा प्रयोजन हेतु होते हैं। इनमें यदि सर्वाङ्ग पूर्ण पूजन प्रक्रिया न भी बन पड़े, तो चिन्ताजनक बात नहीं। ताम्र हवनपात्र में अथवा भूमि पर १२ अंगुल चौड़ी, १२ अंगुल लम्बी, ३ अंगुल ऊँची, पीली मिट्टी की वेदी बना, हवन कर्ता उसके इर्द गिर्द बैठ जावें। यदि रोगी हवन पर बैठ सके तो उसे पूर्वाभिमुख करवाकर बैठा लेना चाहिए। शरीर शुद्धि, मार्जन, आचमन, प्राणायाम, न्यास गायत्री मन्त्र द्वारा करके, गायत्री मन्त्र से ही हवनारम्भ करना चाहिए। कम से कम २४ आहुतियां अवश्य देनी चाहिए। आवश्यकतानुरूप पीछे भी दिन में तीन बार, रात्रि में यथा-सम्भव एक दो बार किसी उचित पात्र में अग्नि रखकर थोड़ी सी औषधियां रोगी के निकट धूप की भांति जलाई जा सकती हैं।

हवन सामग्री—(१) पटोल पत्र (२) नागर मोथा (३) कुटकी (४) नीम की छाल (५) गिलोय (६) कुड़े की छाल (७) करञ्ज (८) नीम के पुष्प। सभी को समानानुपात लेकर कुल का दसवां भाग शर्करा व दसवां भाग घृत भी मिला लेना चाहिए।

—श्री दुर्गाशंकर पाठक बी.ए., सुसनेर (शाजापुर)
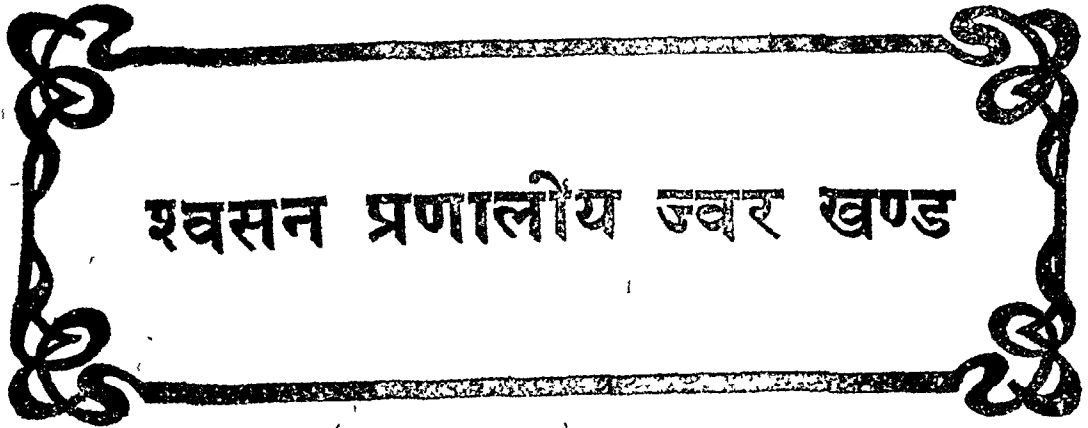
श्वसन प्रणालीय ज्वर खण्ड

फरवरी+मार्च १९८२
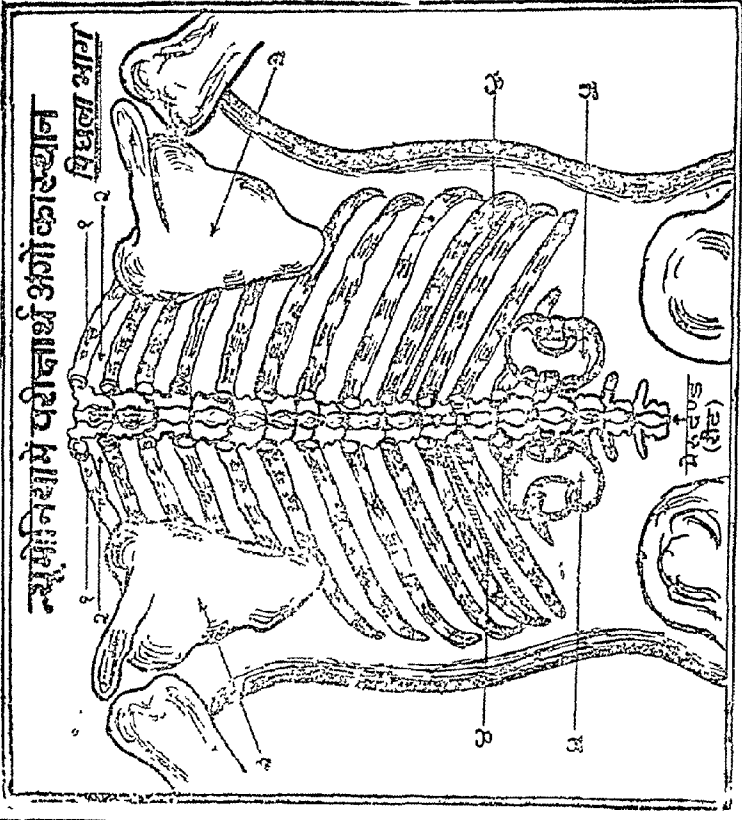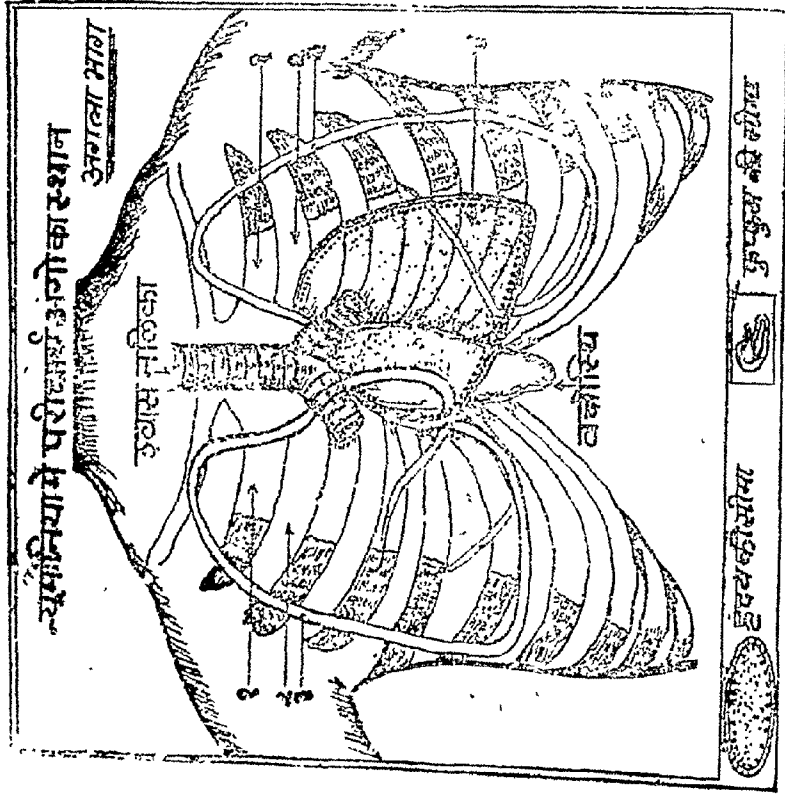
—प्रकाशक—

न्यूमोनिया में परीक्षार्थ अंगो का स्थान

अगला भाग

श्वास नलिका

वक्षोस्थि

हृदय की सीमा

१—पर्शुका
२—पर्शुकान्तरीय अवकाश
३—फुफ्फुसावरण कला
४—हृदय

१—पर्शुका
२—पर्शुकान्तरीय अवकाश
३—स्कन्धास्थि (Scapula)
४—पर्शुकान्तरीय मांसपेशिका
५—वृक्क
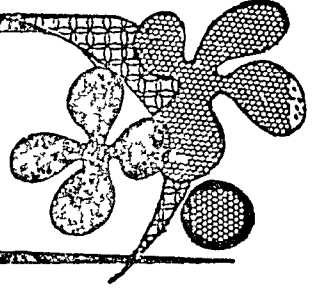
उत्फुल्लिका

वैद्य दरबारीलाल आयु० भिषक्, अशोक-भैषज्य भवन,
फतेहगढ़ जिला फर्रुखाबाद (उ० प्र०)

उत्फुल्लिका यह शब्द संस्कृत का है। इसी को डब्बा रोग व पसली चलना भी कहते है। कोई कोई इसे श्लैष्मिक सन्निपात भी कहता है। यह रोग बच्चों का न्यूमोनिया रोग है और छोटे बच्चों को होता है और बड़ा घातक है। यह श्वास नलिकाओं व फेफड़ों की बीमारी है। श्वास नलिकाओं व फेफड़ों मे शोथ (सूजन) उत्पन्न हो जाता है। डाक्टर लोग वायुकोष (फेफड़ों) के शोथ को लोवर न्यूमोनियां और श्वास नली के शोथ को ब्रांकोन्यूमोनियां कहते हैं।

लक्षण—

छाती में कफ भर जाता है, खांसी आने लगती है, नाक बहने लगती है, छीकें आने लगती हैं। श्वास कष्ट से आता है। पसलियां बड़े जोर से उछलने लगती है। पेट में पसलियों के नीचे श्वास लेने से गढ़े पड़ने लगते है। जिससे इसे पसली चलना कहते है। बच्चों को ज्वर हो जाता है। पसलियों में दर्द होता है। श्वास नली व फुफ्फुसावरण कला में शोथ हो जाता है। श्वास जल्दी जल्दी चलने लगता है, श्वास बड़े कष्ट से लिया जाता है। खांसी प्रारम्भ में सूखी, बाद मे कफ ढीला हो जाता है और गले में घड़–२ करता है, जिससे बालक परेशान रहता है। सांस लेने में बालक के दोनों नथुने फूलते है, यह इसकी खास पहिचान है। किसी को कब्ज हो जाता है और किसी किसी बालक को हरे पीले दस्त आने लगते है। किसी को वमन भी होने लगता है। ज्वर तेज होने पर मूर्च्छा, चेहरा सुर्ख, पार्श्वशूल यह सब लक्षण भी प्रकट होते है। स्टेथिस्कोप से सुनने पर जगह जगह श्वास की आवाज नहीं आती या कफ का भयानक घर्राटा या श्वास रोगी की तरह पी, पी, भी भी की भांति बांसुरी की तरह के शब्द सुनाई देते हे। छाती और पीठ को बजा कर देखने से जहां तहां ठोस शब्द सुनाई देता है। इस रोग मे बालक का कराहना भी एक विशेष लक्षण है। पार्श्वशूल के कारण बालक कराहा करता है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ योग रत्नाकर मे इसका वर्णन इस प्रकार किया है:—

आध्मान वात संफुल्लो वक्ष कुक्षो शिशोर्भवेत।
उत्फुल्लिका सा विख्याता श्वास श्वयथु संकुला॥

इसका भावार्थ यह है कि बालक के पेट में आध्मान होकर वायु से दायी कुक्षि अर्थात पसलियों के नीचे का भाग फूल जाता है। इससे बालक को श्वास रोग होजाता है तथा शोथ अर्थात छाती मे तथा श्वास नली में सूजन हो जाती है। इसे ही लोक मे बालकों की पसली चलना कहते हैं तथा इसी को डब्बा रोग भी कहते है।

रोग होने का कारण—कफ दोष से दूपित माता का दूध पीना, माता का कफकारक आहार विहार का सेवन, गाय, भैंस के दूध की चिकनाई का अधिक सेवन और उसका पाचन न होना, मलबद्धता, अजीर्ण, मन्दाग्नि, ऋतु परिवर्तन, अति वर्षा, अति ठंडी ऋतु, बालक को सर्दी लग जाना, ठंडे पानी से बालक को नहलाना या वर्षा में

भीग जाना। अक्सर देखा गया है कि जब जब बालक को ठंडे पानी से नहलाया गया तो उसके बाद उसी दिन या दूसरे दिन उसको पसली चलने की बीमारी पैदा होगई।

रोग की सम्प्राप्ति—उपरोक्त कारणों से कफ कुपित होकर फेफड़ों और श्वास नलियों में स्थान संश्रय करता है और वहां सूजन पैदा करता है जिससे प्राण वायु के आवागमन में अवरोध पैदा होता है और उत्फुल्लिका रोग पैदा होजाता है। इस रोग की अवधि ८ या ६ दिन की है।

चिकित्सा—

इस रोग में वमन कराना विशेष लाभ करता है क्योंकि वमन कफनाशक है। इसलिए वमन कराने से कफ नाश होकर रोग शान्त होता है। इसके लिये उसारे रेवन्द १ रत्ती जल से दें। इससे वमन विरेचन होकर कफ निकल जायेगा और पेट हल्का हो जायेगा। कफ की घरघराहट मिट जायेगी। या उसारा रेवन्द, शुद्ध तूतिया भुना हुआ १-१ माशे, गेरू ३ माशे लेकर जल से घोट पीस मूंग के बराबर गोली बनालें और १ से २ गोली तक मां के दूध में घोलकर पिलावें। इससे भी वमन विरेचन होकर रोग शान्त होगा। या करञ्ज की गिरी १ नग लेकर उसमें आग पर शुद्ध किया हुआ तूतिया १ रत्ती मिलाकर जल से घोट पीस सरसों के समान गोलियां बनाकर सुखाकर रखलें और इसमें से १ से २ गोलियां तक मां के दूध में घोलकर पिलावें। इससे भी वमन होकर कफ निकल जाता है और रोग शांत होता है।

बालक के पेट पर तथा छाती पर लिनीमेंट टर्पेन्टाइन जिसे सफेद तेल भी कहते हैं उस की प्रातः सायं मालिश करके हल्का हल्का सेक देना चाहिए। या मोम रोगन की मालिश करें। या महाविषगर्भ तेल ६० मि.लि. तारपीन का तैल ६० मि. लि., कर्पूर ३ ग्राम मिलाकर मलें और सेकें। तैल में कर्पूर मिलाकर रख देने से कर्पूर अपने आप घुलकर मिल जाता है। या महानारायन तैल या किसी वातनाशक तैल की मालिश करके गर्म-२ रूई से सेंक करना चाहिये। सेंक कुरते के ऊपर से हल्का हल्का करो। नंगे शरीर पर न करो। बालकों की त्वचा अत्यन्त कोमल होती है। इस बात की पूरी सावधानी रखनी चाहिए कि सेंक करते समय बालक झुलस न जाय।

छोटी पीपल, पिपरामूल, सोंठ, त्रायमाण, दारुहल्दी, हरड बड़ी की बकली, गज पीपल, भारङ्गी, लौंग, सुहागा, घृत कुमारी का गूदा, छोटी हरड़, सेंधा नमक इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके बकरी के मूत्र में मिलाकर ४ रत्ती से १ माशे तक अवस्थानुसार दिन में ३ बार पिलावें तो उत्फुल्लिका, ज्वर, कास, कब्ज का नाश होता है।
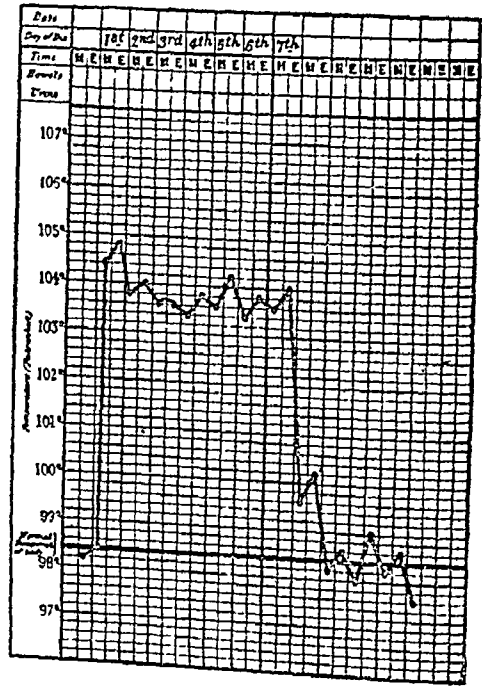
बालक माता का दूध पीता है अतः माता के दूध को शुद्ध करने के लिये ककोड़ा, सोंठ, नागरमोथा, कंकोल, अतीस इन सबको समान भाग लेकर कूट कपड़छन चूर्ण कर दूध से मिला कर बालक की माता को पिलावें। इससे तुरन्त ही दूध के दोष निवृत हो जाते हैं।

बेल की जड़, नागरमोथा, पाठा, हरड़, बहेड़ा, आमला, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर उनका काढ़ा बनाकर गुड़ की शराब के साथ समभाग मिलाकर बालक को पिलावें तो उत्फुल्लिका रोग नष्ट होता है।

कस्तूरी भैरव रस में ३ भावना अद्रक के रस की और ३ भावना बंगला पान के रस की देकर फिर इसमें से १ रत्ती लेकर उसमें श्वास कुठार रस १ रत्ती, उड़ाया नौसादर १ रत्ती (यदि उड़ाया हुआ नौसादर न मिले तो सादा ही लें) टंकणभस्म १ रत्ती मिलाकर घोट पीसकर रखलें। मात्रा २ महीने के बालक के लिए १/३ रत्ती दवा,

६ माह के बालक के लिये आधा रत्ती दवा और ६ माह से एक साल भर के बालक के लिये ३/४ रत्ती दवा ४-४ घंटे बाद माता के दूध में मधु मिलाकर उसमें मिलाकर पिलावें। साल भर से अधिक आयु वालों को रोग के बलाबल के अनुसार दवा दें।

कट्फलादि चूर्ण व श्रृङ्गभस्म मिलाकर देने से इस रोग में महान लाभ होता है। इस मिश्रण को पान या अद्रक के रस में घोलकर दें। ३-३ घण्टे बाद १-१ मात्रा दें। यदि कफ गले में विशेष रूप से घड़घड़ाता हो तो रात में १-२ चावल असली गौलोचन अद्रक के रस में या माता के दूध में केवल एक मात्रा दें। यदि आवश्यकता समझें तो दूसरे दिन १ मात्रा रात को फिर दे दे। कट्फलादि चूर्ण (शार्ङ्गधर ग्रन्थानुसार बनावें) की मात्रा १-४ रत्ती तक, श्रृंग भस्म की मात्रा १ से ४ चावल तक ६ माह से ५ वर्ष तक के बालक के लिए प्रयोग करें।

श्रृंग्यादि चूर्ण १ रत्ती, अडूसे का क्षार आधी रत्ती, टंकण भस्म चौथाई रत्ती मिलाकर एक मात्रा बनावे। ऐसी १-१ मात्रा ४-४ घंटे बाद मधु से या मां के दूध में मधु मिलाकर उसमें दें।

रस सिंदूर १ रत्ती, मृगश्रृंगभस्म २ रत्ती लेकर दोनों को घोट पीस आठ पुड़िया बनालें और ४-४ घण्टे बाद १-१ पुड़िया मां के दूध में या मधु में दें। इससे बीमारी शीघ्र ठीक हो जाती है।

यदि बालक ज्वर की तीव्रता के कारण बेहोश हो या शिर को इधर उधर पटके, प्रलाप करे तो २१ वार के धुले हुए मक्खन में कर्पूर मिलाकर मस्तक पर व तालु पर मालिश करें या गुल रोगन, काहू का तैल, व कद्दू का तैल मिलाकर मालिश करें या असली गुलाब जल (अर्क गुलाब) और सिरका गुलरोगन मिलाकर रखलें और इसमें तर करके कपड़ा सिर पर रक्खें और थोड़ी-२ देर बाद कपड़ा बदलते रहें। इसके लिए दो कपड़ा लेना चाहिए और इनको अदल बदल कर प्रयोग करना चाहिए। इससे ज्वर का ताप कम होगा और बालक को शांति मिलेगी, बेहोशी, प्रलाप दूर होगा। यह क्रिया तब तक करनी चाहिये जब तक ज्वर कम होकर १०० डिग्री तक न हो जाय। १०० डिग्री हो जाने पर यह क्रिया बन्द कर देनी चाहिए और जब ज्वर १ ३ डिग्री से अधिक बढ़ने लगे तब इस क्रिया को अवश्य करना चाहिये। इस कार्य के लिये नौसादर व कलमीशोरा मिला हुआ पानी भी प्रयोग किया जाता है वह भी अधिक लाभ करता है, उसी में कपड़ा तर करके मस्तिष्क पर रखते है। बर्फ की थैली का प्रयोग भी अत्यधिक लाभ करता है।

हृदय की शांति के लिए व शक्ति कायम रखने के लिए बालक को द्राक्षा शर्करा (ग्लूकोज) दें।

इस रोग में डाइक्रिस्टेसीन का इन्जेक्शन रामबाण का काम करता है। इसके प्रयोग से रोग बहुत जल्द दूर हो जाता है। इसका प्रयोग टेस्ट करने के बाद करें।

सिवाजाल की आधी टेबलेट व सोडाबाई कार्ब १ रत्ती मिलाकर ४-४ घंटे बाद पानी से या मा के दूध में घोलकर देने से चमत्कारी लाभ होता है। इसके ऊपर से नीचे लिखा हुआ मिक्श्चर पिलावे। इससे ज्वर, खांसी, पसली चलना बहुत शीघ्र ठीक होता है।

मिक्श्चर—वायनम इपीकाक ४ बूंद, टिंचर कैम्फर को ४ बूंद, स्प्रिट ईथरिस नाइट्रोसाई १ बूंद, पुटासियम साइट्रेट ५ ग्रेन, सीरप टोलू १० बूंद, पानी २ ड्राम सबको मिलालें। यह ३ वर्ष के बालक के लिये एक मात्रा है। दिन में ऐसी ४ मात्रा दे। आयु के अनुसार दवाओं की मात्रा कम या अधिक कर सकते है।

झंडू का कैम्पोकोडी वसाका उपरोक्त सिवाजाल की टेबलेट के मिश्रण के साथ देने से चमत्कारी लाभ करता है। पैंटिड सल्फा व पेंटिड्स भी इस रोग में चमत्कारी लाभ करते है।

टेरामाइसिन का कैपसूल, ड्राप्स या इन्जेक्शन भी इस रोग में सफल प्रमाणित हुए है।

ब्रायोनिया ३० व इपीकाक ३० पर्याय क्रम से ४-४ घण्टा बाद देने से रोग बहुत जल्द दूर हो जाता है।

हृदय दुर्बलता में हृदयामृत इन्जेक्शन मासान्तर्गत प्रयोग करें।

वृ० कस्तूरी भैरव रस तथा चन्द्रोदय व सिद्ध मकरध्वज का प्रयोग दुर्बलता व शीताङ्ग में महान लाभकारी है।

वैद्य मुरलीधर उपाध्याय, आयुर्वेद रत्न, एन० डी०, १७३ सुभाष चौक, रातानाड़ा, जोधपुर।

आज सारे विश्व एवं भारत में बड़े-बड़े काय चिकित्सक एवं वैज्ञानिकों के मन में एक ही डर समाया हुआ है कि यदि विश्व को आतंकित एवं विध्वंस करने वाला फ्लू फिर फैल गया तो क्या होगा ?

यह रोग सन् १८४७-४८, १८८०-६०, १६१८-१६ तथा १६७३-७४ में विश्व भर में फैल चुका है और बताते हैं कि सन् ८१ के अर्धवर्ष में शुरू होने वाला संक्रमण का यह दौर चलता ही रहेगा। यह भी मत रहा है कि यह जनपदोध्वंसक (गांव के गांव उजाड़ देने वाली) व्याधि विश्व के कुछ हिस्सों को खा भी सकती है। अनेकों काय चिकित्सको वैज्ञानिकों से चर्चा करने के समय पूछा गया कि विश्व भर में फ्लू फैल गया तो क्या करना होगा ? उत्तर मिला, क्या कर सकते हैं साहब, यह तो वायरस बिमारी है। इसकी तो लाक्षणिक चिकित्सा ही उपलब्ध हो सकेगी।

अनेकों वर्षों से इसका अधिक प्रकोप होने के कारण प्रायः सभी पढ़े लिखे व्यक्ति इस रोग के नाम से परिचित हैं। यह रोग साधारणतः शरद्, शिशिर, हेमन्त ऋतु में अधिकेतर फैलता है। इस रोग में "कफ दोष" के विशेष रूप से दूषित होने के कारण तथा शिरःशूल आदि लक्षणों के कारण कुछ 'वात दोष' का दूषित होना पाया जाता है। अतः इस रोग को "श्लैष्मिक ज्वर या वात श्लेष्मिक ज्वर" के नाम से जाना जाता है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में इसे बैसिलिस इन्फ्लूएन्जा (Bacillus Influenza) नामक कीटाणु के संक्रमण के कारण फैलने वाला रोग माना गया है अतः इसका इन्फ्लुएन्जा या फ्लू नाम रखा है। इन्फ्लूएन्जा को पाश्चात्य चिकित्सक जगत् निज रोग नहीं मानता, यह एक तीव्र औपसर्गिक रोग है जो इन्फ्लूएन्जा वाइरस नामक सूक्ष्म रोगाणु से तैयार होता है। इसे फैरट-पैथोजीनिक वाइरस कहा जाता है।

फ्लू की उत्पत्ति—

यह ज्वर ऋतु परिवर्तन के समय वर्षा के पानी में भीगने, शीतल पदार्थों के अधिक सेवन करने से तथा रोगी के शरीर में वात व कफ दोष दूषित होने से होता है। इस प्रकार के उत्पन्न ज्वर सीमित ही रहते हैं। इससे बहुत कम ही व्यक्ति इस रोग के शिकार होते हैं। लेकिन किसी कारणवश वायुमण्डल दूषित हो जाता है तथा किसी कारणवश इस रोग के विषाणुओं की उत्पत्ति हो जाती है, तब ये विषाणु वायु द्वारा फैलकर विश्व व्यापी प्रकोप उत्पन्न करते हैं। ऐसा प्रकोप महामारी (Epidemic) के रूप में फैलता है।

इन विषाणुओं का प्रसार वायु द्वारा होकर श्वास मार्ग मुंह से एवं दूषित वस्त्रों के संसर्ग से हो जाता है। संक्रामक रोग होने के कारण यह बहुत ही शीघ्र फैलता है। इसलिये बस स्टेण्ड, रेलवे स्टेशन, धान मंडियों, सिनेमा घरों, मेला, उत्सव, स्कूल, कालेज, भीड़ के स्थान, गन्दी व घनी आवादी में ज्यादा फैलता है।

लक्षण—

इस रोग का आक्रमण अचानक ही होता है। अच्छी तरह कार्य करते हुए ही अनेकों प्रकार की वेदना होकर ज्वर बढ़ने लगता है। रोगी को पहले सर्दी, जुकाम होकर ज्वर होता है। ज्वर सर्दी लगकर या कभी-कभी बिना सर्दी के ही बढ़ जाता है। शिरःशूल, शारीरिक दर्द, नेत्रों में लालिमा अधिक होती है। कभी-कभी रोगी को खांसी अधिक होती है तथा रोगी में कण्ठ प्रदाह से गले में दर्द

भी होता है। ज्वर लगभग १०३ अंश—१०४ अंश रहता है। इस ज्वर में शारीरिक दुर्बलता कमजोरी अधिक हो जाती है। शारीरिक अंगों की मांसपेशियां इतनी शिथिल पड़ जाती है कि हृदय का क्रिया संचालन कठिन हो जाता है। कभी-कभी फेफड़े निमोनिया से प्रभावित होकर एवं हृदय गति अवरोध के कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है। इस कारण इस ज्वर की परीक्षा एवं निदान सावधानीपूर्वक शीघ्र करना चाहिए।

फ्लू को अवस्था के अनुसार चार प्रकार के लक्षणों में रखा गया है—

१. ज्वर युक्त,

२. फुफ्फुस गत विकृति,

३. आन्त्रिक विकृति,

४. वात संस्थान विकृति।

१. ज्वर युक्त—इस अवस्था में तेज सिर दर्द के साथ १०२^{0} से १०४^{0} डिग्री तक ज्वर पहुंच जाता है। तथा तेज प्यास, श्वास, मलावरोध, पेशाब कम आना व गाढ़ा होना, जीभ पर मल जैसा लेप श्वास में दुर्गंध—सारे शरीर में तेज दर्द, जुकाम का होना आदि लक्षण पैदा होते हैं। ज्वर ७-८ दिन से अधिक नहीं रहना चाहिए। अगर रहता है तो उपद्रवयुक्त समझना चाहिए।

२. फुफ्फुस गत विकृति—इस अवस्था में शुरू से ही जुकाम के लक्षण मिलते है। ३–४ दिन के बाद फेफड़े में यदि विकार बढ़ जाता है, तो ज्वर, प्रलाप, श्वांस होना

वातकफज्वर
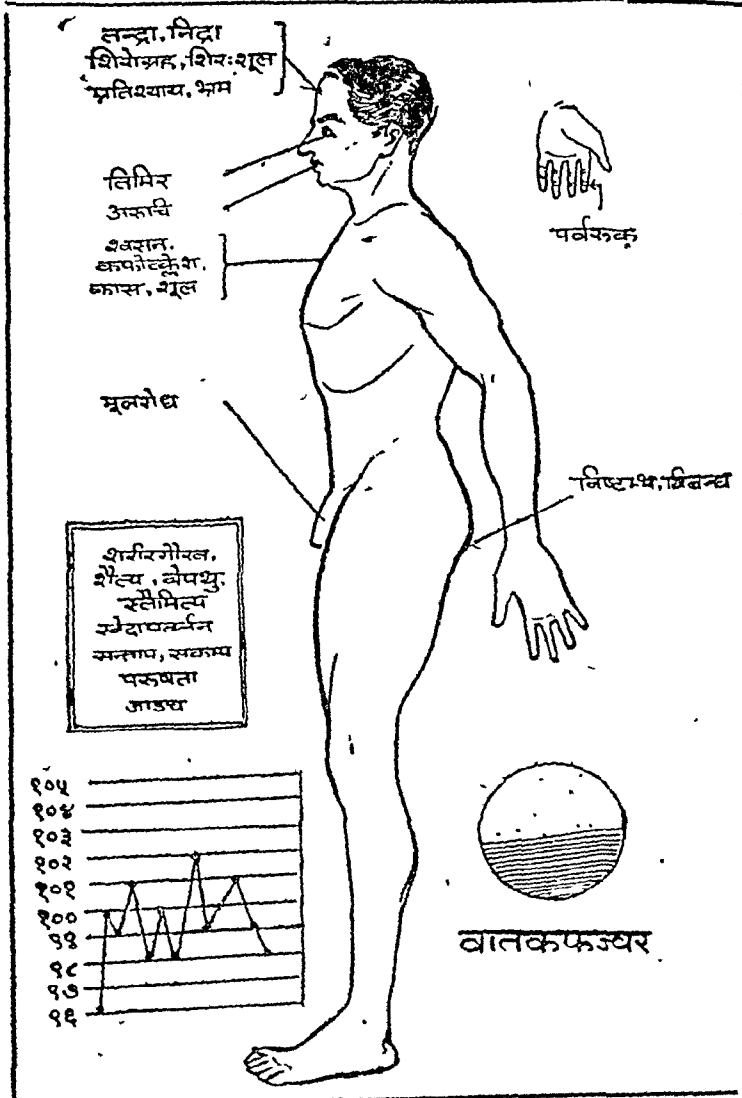
शुरू होकर न्यूमोनिया के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। थूक चिपचपा गुलाबी रंग या झागयुक्त निकलता है।

फेफड़ों में विकार उत्पन्न होते ही रक्त शुद्धि में अवरोध होकर प्राणवायु (Oxygen) की कमी रक्त में हो जाती है। हृदय को शुद्ध प्राणवायु नहीं मिलने के कारण किसी भी समय "हृदयावरोध" होने का खतरा पैदा हो सकता है। अतः सावधानी से फेफड़ों की परीक्षा कर, फुफ्फुसगत वायु कोषों का श्लेष्मा से अवरोध न हो, तत्काल उचित चिकित्सा करनी चाहिए।

३. आन्त्रिक विकृति—इस अवस्था में साधारण विकृति होती है। इसमें ज्वर वेग कम, जी मिचलाना, वमन, अग्निमान्द्य व नाभी के पास दर्द होता है। कभी-२ कामला, प्रवाहिका, अतिसार रोग आदि भी होसकते हैं।

४. वात संस्थान की विकृति—इस अवस्था में ज्वर में विशेष विकृति रहती है। तेज शिर दर्द, नीद का न आना, प्रलाप, सामान्य शारीरिक शक्ति का ह्रास होना, नाडी शूल व मूर्छा रहती है। कुछ रोगियों में शारीरिक शक्ति के साथ-साथ मानसिक शक्ति का भी ह्रास हो जाता है। रोगी और रोग की अवस्था एवं बल के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

फ्लू से उत्पन्न विशेष उपद्रव—

इस ज्वर में निम्न उपद्रव पैदा हो सकते हैं जिनकी चिकित्सा लक्षणों के अनुसार करनी चाहिए—न्यूमोनिया, फुफ्फुसावरण शोथ, श्वास, राजयक्ष्मा, हृदय की दुर्बलता, एवं हृदय की धड़कन बढ़ना, पक्षाघात, शिरःशूल आदि अन्य उपद्रव हो सकते हैं। इनके अलावा वृषण शोथ, पेशी शोथ, आन्त्रपुच्छ शोथ, कर्णमूल शोथ भी उपद्रव के रूप में प्रकट होते हैं।

वातश्लेष्मिक ज्वर या फ्लू ज्वर घातक व्याधि नहीं है किन्तु कई उपद्रवों के कारण घातक हो सकती है। प्रलाप, निद्रानाश, मूर्च्छा आदि लक्षणों से युक्त रोगी असाध्य होता है।

रोगी की तत्काल करनी योग्य व्यवस्था—

१. जल को गरम कर ठंडा कर दे। सर्दी में जल गुनगुना ही रहने दें।

२. शीतलवायु, शीतल जल, वर्षा में भीगने, ओस से बचना चाहिए।

३. ज्वर अधिक हो तो शीतल जल की पट्टी सिर पर लगा देनी चाहिए। ज्वर कम होने पर वर्फ की पट्टी हटा देना चाहिए।

प्रतिषेधात्मक चिकित्सा —

१. जिन स्थानों पर फ्लू संक्रामक रूप से फैलता हो उन स्थानों में नहीं जाना चाहिए। जैसे—बस स्टेण्ड, रेलवे स्टेशन, सिनेमा घरों, धान मण्डियों, मेला, स्कूल, कालेजों, घनी आवादी वाले स्थानों पर वात श्लेष्मिक ज्वर के फैलने की अधिक सम्भावना रहती है।

२. शुद्ध जलवायु वाले स्थान पर रहना चाहिए, सफाई का ध्यान रखना चाहिए, तथा भोजन सुपाच्य करना चाहिए।

३. तेज धूप व शीतल जलवायु से वचना चाहिए। वर्फ, दही, मठ्ठा चावल आदि लेना चाहिए।

४. वात कफ को दूषित करने वाले पदार्थों से वचना चाहिए।

५. दिन में सोने से कफ की वृद्धि होती है तथा रात्रि को जागने से वायु कुपित होता है, अतः दिन में नहीं सोना चाहिए एवं रात्रि में अधिक देर तक नही जागना चाहिए।

६. प्रतिदिन भोजन में अदरख व लहसुन सेवन से वात कफ का प्रकोप नहीं होता। प्रतिदिन अदरख वड़ी इलायची, तुलसीपत्र, काली मिर्च, दाल चीनी डालकर रोगी की अवस्थानुसार दे सकते हैं।

७. सफाई की ओर पूर्णतया ध्यान रखना चाहिये। घर के प्रत्येक कमरे में प्रतिदिन गुग्गुल, अगरवत्ती या नीम की पत्तियों की धूनी देनी चाहिए।

८. रोगी के मल, मूत्र, थूक आदि पर मक्खी मच्छर बैठकर अन्य स्थानों पर भी रोग फैलाने के कारण वनते हैं अतः इनकी रोकथाम के लिए उपाय करना चाहिए।

९. रोगी को घर के अन्य स्वस्थ सदस्यों से अलग रखना चाहिए।

१०. कब्ज अनेक रोगों की जड़ है अतः इसे दूर करना चाहिये।

उपरोक्त उपायों को अपनाने से प्रत्येक व्यक्ति इस ज्वर से रक्षा कर सकता है। अगर किसी कारणवश कोई व्यक्ति इस व्याधि से पीड़ित हो जाय तो निम्न चिकित्सा करनी चाहिए।

सामान्य चिकित्सा—

रोगी का शारीरिक बल अच्छा है और रोग का प्रभाव शरीर के ऊपर साधारण अवस्था में है तो निम्न चिकित्सा करनी चाहिए—

१. रोगी को साफ जगह एवं प्रकाशयुक्त कमरे में रखना चाहिए। रोगी के नासिकास्राव, कफ इत्यादि को अलग बर्तन में इकठ्ठा करके जमीन में गाढ़ देना चाहिए।

२. अपने को बचाकर सावधानीपूर्वक रोगी की सेवा करनी चाहिये। रोगी की सेवा करते समय नाक पर साफ कपड़ा या नीलगिरी के तेल में भीगा हुआ रूमाल रखना चाहिये।

३. रोगी को स्वस्थ होने तक पूर्ण विश्राम दिया जाना चाहिए। रोगी को सर्दी में गर्म और गर्मी में ठंडे वातावरण में रखना एवं ऋतु के अनुसार वस्त्र ओढ़ाना चाहिए। ताकि बाहर के वातावरण का प्रभाव रोगी पर नहीं पड़े।

४. रोगी को भोजन नहीं देना चाहिये। इस रोग में अन्न विष के समान है अतः जहां तक हो सके उपवास ही करवाना चाहिए।

५. 'वातश्लेष्मा' के कारण रोगी को गरम किया हुआ पानी ठंडा कर थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहना चाहिये।

६. रोगी कमजोर हो, बालक, वृद्ध, स्त्रियों को पूर्ण उपवास नहीं करवाना चाहिये। इनको दूध, मुनक्का, मौसमी, नीबू आदि का रस पिलाना चाहिये।

७. रोगी को शारीरिक शक्ति के लिए दूध एवं फलों का रस लेते रहना चाहिए। दूध शुण्ठी चूर्ण डालकर गर्मकर पिलाये। इससे शरीर और हृदय की शक्ति कायम रहती है।

८. रोगी को कब्ज की शिकायत हो तो पंचसकार चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, इसबगोल अथवा दूध मुनक्का का मृदु विरेचन देना चाहिये।

९. रोगी को प्रारम्भ में ज्वर उतारने की दवाओं का प्रयोग नहीं करना चाहिए, वैसे उपरोक्त उपायों का अवलम्बन करने से ज्वर शान्त हो जाता है। यदि आवश्यक हो तो त्रिभुवन कीर्तिरस, श्रृङ्गभस्म, गोदन्ती भस्म की यथोचित मात्रा में पुड़िया बनाकर शहद व तुलसी के पत्तों के रस के साथ सुबह शाम प्रयोग करना चाहिए।

१०. ज्वर उतरने पर रोगी को हल्का व सुपाच्य भोजन, गेहूं का दलिया, मूंग की दाल, पालक, बथुआ, खिचड़ी, लहसुन+अदरख+धनिया+पोदीने की चटनी देनी चाहिए।

विशेष चिकित्सा—

१. महा सुदर्शन काढ़ा—२-२ तोला सुबह, दोपहर, शाम पानी मिलाकर लें।

२. गोदन्ती मिश्रण (सिद्ध योग संग्रह के अनुसार) फ्लू की उत्तम दवा है। इससे ज्वर का दाह और संताप कम हो जाता है।

३. त्रिभुवन कीर्तिरस २ रत्ती, गोदन्ती भस्म ४ रत्ती, गिलोय सत्व ४ रत्ती—इनकी ३ मात्रा सुबह दोपहर शाम को अदरख के रस+तुलसी के पत्तों के रस+शहद के साथ दें। यह औषधि ज्वर की अवस्था में देनी चाहिये। कास का वेग होने पर श्रृङ्ग भस्म ४ रत्ती और मिला देनी चाहिये।

४. आनंद भैरव रस (कास) २ रत्ती+संजीवनी वटी २ रत्ती+टंकण भस्म ४ रत्ती—ऐसी ३ मात्रा तुलसी पत्र के रस+शहद के साथ सुबह दोपहर सायं दें।

५. सुबह एक समय—पिप्पली चूर्ण १ ग्राम+दशमूल क्वाथ ५० मि.ग्रा. के साथ दें। तथा वातश्लेष्मान्तक रस २ रत्ती, १×४ मात्रा ४ बार पान के रस एवं शहद के साथ दें।

६. शिरःशूल अधिक हो तो सोंठ को जल में घिसकर लेप करें या अमृतधारा लगावें। वैसे सिर दर्द ज्वर के शमन के साथ-साथ ठीक हो जाता है।

७. कासाधिक्य में चन्द्रामृत रस+मिश्री+मरिचादि वटी, लवंगादि वटी चूसने को देनी चाहिये।

८. निद्रानाश व प्रलाप होने पर—ब्राह्मी वटी या ब्रह्मी+शुंठी का क्वाथ दिन में तीन समय पिलायें।

९. शीताङ्गता, हृदयावरोध व नाड़ी मन्द हो तो संजीवनी वटी+श्रृङ्गभस्म+रस सिन्दूर+सिद्ध मकरध्वज को सितोपलादि चूर्ण शहद के साथ दिन में ३ बार देना चाहिये। कस्तूरी भैरव रस अधिक उपयोगी है।

१०. रोग मुक्त होने पर स्वर्ण वसन्त मालती, द्राक्षासव, द्राक्षावलेह, अभ्रक, च्यवनप्राश आदि पौष्टिक औषधियों का सेवन करना चाहिये।

श्रीमती शकुन्तला आचार्य आयुर्वेद रत्न, जोधपुर।

मूलतः कफ के साथ तीनों ही दोष विकृत होते हैं, इसी दृष्टि से इसे भी सन्निपातिक ज्वर की संज्ञा दी है। इस ज्वर में विषाणु जिन्हें 'न्यूमोकोकस' कहते हैं संक्रमण करते हैं। रोगी इसमें लाक्षा रस के समान रक्त वर्ण का कफ निरन्तर थूकता रहता है। इस रोग में ज्वर के साथ रोगी श्वास कष्ट, का अनुभव करता है। फुफ्फुस का भाग इससे प्रभावित होता है। कभी-कभी रक्तष्ठीवन न होने पर भी फुफ्फुस में संहृति भाव होकर यह रोग मौजूद होता है। फुफ्फुस परीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षा करने पर उसमें मर्मर शब्द सुनाई देता है। वक्ष पर अंगुली रखकर ठेपण क्रिया द्वारा भी मन्द ध्वनि सुनाई देकर इस रोग का होना प्रकट करती है।

आयुर्वेद में कर्कोटक सन्निपात से इसके लक्षण मिलते हैं।

ओढ़ने बिछाने का पर्याप्त अभाव होने के कारण सर्दी के प्रभाव से यह रोग होता है। दुर्बल, दुखी, चिन्तायुक्त, अधिक मद्य सेवन करने वाले, वृक्क या यकृत शोथ वाले को यह रोग होता है। शीत वसन्त तथा वर्षा ऋतुओं में पूरा यत्न न रखने पर भी यह रोग होता है।

इस रोग के जीवाणु जिनका नाम ऊपर दिया गया है जब दायें या बायें (एक या दोनों) भागों में रक्तवाहिनियों के द्वारा या श्वास क्रिया के द्वारा प्रवेश कर, रक्त, लसीका को दूषित कर उनमें गाढ़ापन उत्पन्न कर देते हैं, अपने विषों के प्रभाव से ये उस प्रदेश में शोथ उत्पन्न कर तथा काठिन्य भी पैदा कर श्वसन प्रणाली में पीड़ा उत्पन्न करते हैं। श्वास की कठिनता तथा ज्वर इसके लक्षण हैं। जीवाणुओं के विष प्रभाव से कफ, वात-पित्त (त्रिदोष) कुपित होकर श्वसनक सन्निपात पैदा करते हैं।

श्वसनक सन्निपात के दो भेद हैं—(१) खण्डीय श्वसनक ज्वर तथा (२) प्रणालीय श्वसनक ज्वर। अनन्तर में खण्डीय श्वसनक ज्वर के ५ उपभेद हैं। (१) शिखरीय (२) संचारी, (३) केन्द्रीय, (४) द्विलय, (५) प्रदाही। प्रणालीय श्वसनक ज्वर के भी दो उपभेद हैं। (१) मुख्य तथा (२) गौण।

इस रोग के प्रकट होने के पूर्व पार्श्व पीड़ा, श्वास कष्ट, कास हो जाते हैं। कभी-कभी कम्प या अन्य कष्ट द्वारा भी यह रोग होता है। बालकों को छर्दि लक्षण भी होता है।

कभी-कभी इस ज्वर में रोगी शीत का अनुभव कर *तीव्र ज्वराक्रान्त होता है। तदन्तर अन्य ज्वर के लक्षण* अरुचि पार्श्व शूल, तृष्णा, कास श्वास लक्षण होते हैं। कफ में कभी कभी लाक्षावत रक्त ष्ठीवन होता है। श्वास लेते समय नासापुट फूलते रहते हैं। अंगों में दाह का अनुभव, ललाट में स्वेद, दुर्बलता, मोह, प्रलाप, कण्ठ में सूजन आदि होते हैं। रोगी की जिह्वा मलीन तथा कर्कश होती है। नाड़ी की गति कोमल, स्थूल एवं चंचल *प्रतीत होती* है। यह अवस्था ज्वर मुक्ति होने *तक बनी* रहती है। ज्वर मुक्ति के बाद नाड़ी मन्द हो जाती है। यह अवस्था प्रायः सातवें, आठवें या नवमे दिन होती है। इस रोग में ज्वर मुक्ति के समय चिकित्सक को सतर्क रहने की आवश्यकता है। यदि रोगी को प्रसेक आदि होते समय चिकित्सक सतर्क न रहे तो रोगी के प्राण नष्ट हो सकते हैं। सतर्क रहने पर सहज ही ज्वर मुक्ति हो जाती है और रोगी स्वास्थ्यलाभ की ओर अग्रसर हो जाता है।

इस रोग में रोगी की अवस्था के आधार पर ही साध्यासाध्यता आंकी जा सकती है। प्रसेक आदि होते समय यदि ज्वरी को शारीरिक शिथिलता न हो तो रोगी साध्य है। वृद्ध, कमजोर, बालक पर इस रोग का घातक प्रभाव भी पड़ सकता है। दोनों ही फुफ्फुस या एक फुफ्फुस का अधिक आक्रान्त होना, अधिक प्रसेक आना तथा

नासापुट में श्वास का न समाना रोगी के प्राण ले सकता है। प्रलाप, मोह तथा प्रस्वेद, हाथ पैरों में कम्प लक्षण मारक हैं। अतिसार यदि न रुके तो रोगी को मृत्यु मुख में धकेल देता है।

उग्र खण्डीय फुफ्फुस प्रदाह (Acute Lober Pnuemonia) न्यूमोकोकस के संक्रमण से होता है। इसमें फुफ्फुस खण्डों में विकृति पाई जाती है। पूय स्रावों से फुफ्फुस खण्डोंमें स्थित वायु इतनी भर जाती है कि फुफ्फुसों में शोथ उत्पन्न होकर श्वास मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और वायु कोष प्रायः वायु से विहीन हो जाते हैं। फिर इन वायु कोषों के तन्तु कफ को बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं जिससे यह कफ पिघल कर बाहर निकलने लगता है। यह क्रिया स्थानीय प्राणवायु द्वारा होती है।

उग्र खण्डीय फुफ्फुस प्रदाह में सम्पूर्ण खण्ड का कोई भी भाग आक्रान्त हो सकता है। शिखरीय भाग आक्रान्त होने पर शिखरीय, दोनों खण्डों का अधिक क्षेत्र आक्रान्त होने पर प्रदाही, दोनों ही फुफ्फुस केन्द्र आक्रान्त होने पर द्वितीय या Double जब प्रदाह संचार करता रहता है तो उसे संचारी (Creeping) कहते हैं। खण्डीय प्रदाह की सभी दशाओं में फुफ्फुस शोथयुक्त होने से फफ्फुस आकार में मोटा तथा भारयुक्त हो जाता है। यकृत के समान ठोस हो जाने के कारण ही इसे याकृती भवन (Hepatisation) कहते हैं। इस अवस्था में पर्शु कान्तराल उत्सेध युक्त हो जातो है और ठंपण करने पर मन्द ध्वनि आती है। उपरोक्त अवस्थाओं के वर्णन से यह स्पष्ट है कि फुफ्फुस का जो भी अंग रोगी है वही अन्य भाग की अवस्था उससे भिन्न है।

तीव्र अभिसंचयावस्था में केशिकाओं में रक्त संचय होता है जिससे वे फैलकर रक्तस्राव करने लगती हैं। रक्तघानीभवन अवस्था में फुफ्फुस खण्ड कठोर होजाता है। इसमें फुफ्फुस खण्ड भंगुर हो जाता है और तंतुओं में विकृति आ जाती है। फुफ्फुस खण्ड की वृद्धि होने से पर्शुकान्तराल उत्सेधयुक्त दृष्टिगत होती है। फुफ्फुस खण्ड के वायुकोषों से रक्तसंचय होने से सूक्ष्म एवं अतिरिक्त रक्त वाहिनियों के निर्माण होने से फुफ्फुस खण्ड रक्तवर्ण दिखता है। इससे रक्तष्ठीवन आने लगता है। फुफ्फुस ठेपण में मन्द ध्वनि करता है। थूक की अणुवीक्षण परीक्षा करने पर उसमें R.B.C. और सौत्रिक तन्तु दृष्टिगोचर होते हैं तथा उसमें जीवाणु भी होते हैं।

धूसर रक्तघनीभवन अवस्था पांचवे दिन आती है। रक्तकणों के लुप्त हो जाने से उसमें वर्ण विकृति आ जाती है। वायुकोष में संचित द्रव्य न्यून होने लगते है। R.B.C. शोषित होने लगते हैं और पोलीमार्फ की संख्या बढ़ जाती है।

निवृत्तावस्था में रोगी बहुत आराम बताता है। इसमें वक्षशूल कम हो जाता है, ताप घट जाता है या नहीं रहता। कास में भी कफ पिघलने से आराम होता है। कभी-कभी उपेक्षा करने से वापिस उपद्रव बढ़ जाता है।

सुधारावस्था में वायुकोषों में जमा कफ पूर्णरूप से आचूषित होजाता है और वायुकोष खाली होजाने से प्राणवायु से पुनः पूरित हो जाते हैं। नष्ट वायु कोषों में सक्रियता आ जाती है। परन्तु इस अवस्था में भी पूर्ण सतर्कता की आवश्यकता रहती है।

रोग का विष अति उग्र होने पर या रोगी के अति न्यून क्षमता वाला होने पर तथा मधुमेही होने पर या रोगी के सुरापायी होने पर फुफ्फुस सम्बन्धी अनेक उपद्रव पैदा हो जाते हैं और रोगी फुफ्फुस के गैंग्रीन रोग, हृदयावरण प्रदाह, पूयीरस, मस्तिकावरण प्रदाह, हृदयान्तरिक शोथ फुफ्फुस प्रदाह आदि उपद्रवों से घिर जाता है जो मारक होते हैं।

प्रणालीय श्वसनक ज्वर (Broncho Pnuemonia)—

यह रोग भी ऊपर लिखे अनुसार इसका ही एक प्रकार है। इसमें फुफ्फुस के दोनों ही पार्श्व में घनता दृष्टिगोचर होती है। विशेष कर अधोभाग में ही विकृति देखी जाती है। यह रोग विशेष कर बच्चों तथा वृद्धों में होता है। जनमारक रूप से इस रोग के फैलने पर मध्यवय के स्त्री पुरुषों में यह रोग होता है। श्वास खंडों से प्रारम्भ होकर इसकी विकृति वायुकोषों तक होती है इसीलिये इसे 'प्रणालीय श्वसनक' कहा गया है। उपखंडों के आक्रान्त होने पर इसको उपखंडीय श्वसनक ज्वर कहा गया है। इस विकार में सम्पूर्ण फुफ्फुस दूपित नहीं होता। इसका एक और उपभेद है जिसे प्रतिश्यायज श्वसनक कहा गया है। यह फुफ्फुस की श्लेष्म कलाओं के प्रदाह से उत्पन्न होता है। खंडीय फुफ्फुस प्रदाह की तरह न्यूमोकोकस इस रोग का संक्रामक जीवाणु नहीं हैं। स्ट्रेप्टोकोकस का

संक्रमण इस रोग में पाया जाता है। तदन्तर न्यूमोकोकस, इन्फ्लूएन्जा वैनिलेस एकाकी या अन्य जीवाणुओं के साथ इसमें संक्रमण पा जाते है।

२ वर्ष से कम आयु वाले वालकों में यह रोग पाया जाता है। वृद्ध जो शैयाशायी या बहुत कमजोर होते है। पूर्व में वक्ष में चोट लगी होती है या जिनके वृक्क प्रदाह हो उन्हें यह रोग होता है। इसकी तीन अवस्थायें हैं (१) प्राथमिक अवस्था (२) गौण (३) प्रश्वासीय।

इस रोग में अवस्था भेद से अनेक प्रकार देखे जाते हैं। सामान्य प्रणालीय श्वसनक ज्वर—इसमे पूय नहीं होता। इन्फ्लूएन्जा, रोमान्तिका, कुक्कुर कास, रोहिणी रोग के के कारण उत्पन्न ज्वर। आंत्र ज्वर आदि रोगों के उपद्रव स्वरूप। औपसर्गिक जिसमें पूय संचय हो जाता है। क्षयज में क्षयरोग के जीवाणु संक्रमित होते है। अन्य फुफ्फुस ज्वरों के फलस्वरूप।

उपरोक्त सभी प्रकारों में पहले श्वसनक प्रणालियों में प्रदाह आरम्भ होता है तदन्तर वायुकोप आक्रान्त होते हैं। इस रोग में श्वास प्रणालियां कफ से आपूरित हो जाती है और फलस्वरूप सूक्ष्म वायु कोषों का नाश हो जाता है। सूक्ष्म वायुकोपों का नाश होने से मोटे वायुकोप फैल जाते है। इसमें दोनों ही फुफ्फुस एक साथ ही आक्रान्त होते है। फुफ्फुस में घनता आ जाती है। ज्यों-ज्यों घनता बढ़ती जाती है फुफ्फुस प्रदेश आक्रान्त होते जाते है। बढ़ने पर शुष्क प्लूरिसी रोग हो जाता है।

इन दोनों ही रोगों की चिकित्सा एक समान ही है तथा विभिन्न लक्षणों के अनुसार तात्कालिक परिवर्तन कर चिकित्सा की जा सकती है।

रोगी को पूर्ण विश्राम दे। खुली शीत वायु का आघात रोगी को न लगे परन्तु ताजी हवा (प्राणवायु) का आवागमन आवश्यक है। रोगी का निवास आर्द्र न होना चाहिये। धूल तथा धूंवे से दूर रखें। भोजन में लघु सुपाच्य भोजन देना चाहिये। रोगी अधिक कमजोर न हो ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिये।

औषधियों में त्रिभुवन कीर्ति रस, आनन्द भैरव रस, कस्तूरी भैरव रस, नारदीय लक्ष्मी विलास रस, त्रैलोक्य चिन्तामणि रस स्मरणीय हैं। अभ्रक, कस्तूरी, मुक्ता तथा मकरध्वज का प्रयोग होना उचित है। अवस्थानुसार एक या अधिक मिश्रण किया जा सकता है। शृङ्गभस्म, रसमाणिक्य लाभ देता है। वक्ष पर अलसी का पुल्टिस, तारपीन आदि का लगाना उपयुक्त है। गर्म पानी का सेक करना भी आवश्यक है।

आधुनिक चिकित्सा में पैनसलीन के इन्जेक्शन का प्रयोग उत्तम है। सल्फाड्रग्स भी इस रोग में लाभ करती हैं। इस रोग की चिकित्सा करते समय हृदय को बल देने वाली औषधियों का प्रयोग करते रहें। हेम गर्भ पोटली रस इसकी उत्तम दवा है। जवाहर मोहरा, याकूती भी दी जा सकती है।

विशेष अवस्थाओं में प्राणवायु (Oxygen) देना भी पड़ सकता है। समीर पन्नग रस ऐसी अवस्था में प्रयोग किया जा सकता है।

अन्य कफ नाशक क्वाथ भी लिये जा सकते है। बच्चों के लिये बालचातुर्भद्र, कुमार कल्याण रस तथा बंग भस्म उपयोगी है।

पथ्य में शीत पदार्थों का पूर्ण त्याग करें। रोगी का निवास उष्ण तथा शुष्क होना चाहिये परन्तु ताजा वायु का संचार भी आवश्यक है। रोगी को पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है। पथ्य में पेय पदार्थ, दूध, चाय, काफी, मण्ड, यवागू, विलेपी उष्ण प्रयोग में ले सकते हैं। फल स्वरस भी उष्ण ही दें। जल भी श्रृत दें। द्राक्षा, पपीता, परवल, करेला दिया जा सकता है।

ज्वर मुक्ति होने पर भी रोगी का अवस्था के अनुसार ही पथ्य अग्रसर किया जाना चाहिये। जब तक रोगी पूर्ण स्वस्थ न हो जाय तब तक उसे अधिक काम तथा गरिष्ठ भोजन, शीत द्रव्यों से दूर रहना चाहिये।

वात बलासक ज्वर

(BERI—BERI)

श्री डा. वेदप्रकाश शर्मा ए०, एम० बी० एस०, राजकीय आयु० चिकित्सालय,
फीरोजाबाद (आगरा)

महर्षि सुश्रुत ने इस रोग के लक्षण बताते हुए लिखा है कि इस रोग में मन्द ज्वर होता है जो प्रायः अलक्षित तथा अव्यक्त रहता है। इस रोग से आक्रान्त रोगी का शरीर रूक्ष तथा शोथयुक्त प्रतीत होता है। इस रोग का उत्पादक कारण कफ तथा वात होता है अतः इसे वात बलासक (कफ) रोग कहा है।

शोथ आदि में तो मुख तथा हाथों, पैरों में दिखता है जिसमें पैरों में अधिक शोथ रहता है। फिर धीरे-धीरे यह मध्य देह तक बढ़ता जाता है। दुर्बलता तथा रोग के कारण अंग स्तब्ध बंधे हुए रहते हैं। तथा हिलने डुलने का विरोध करते रहते हैं। रोग त्रिदोषज होने पर भी श्लेष्मा भूयिष्ट होने के कारण मुख प्रसेक, शीतलता, कास, श्वास आदि उपद्रव रूप में पाये जाते हैं। रोग के अधिक बढ़ने पर कभी-कभी फुफ्फुसों के मूल में भी शोथ उत्पन्न हो जाता है। रोगी स्तब्ध (अवसादावस्था) महसूस करता रहता है। इस प्रकार इस रोग के रोगी अधिकतर हृदयावसाद से ही मरते है।

नित्य मन्द ज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति।
स्तब्धांगः श्लेष्म भूयिष्ठो नरो वात बलासकी॥
—अष्टाङ्ग हृदय नि०-२

निदान—

आनूप देश निवासी, तन्दुलभोजी तथा वृक्क रोग से पीड़ित लोगों में यह रोग देखा गया है। बालकों में यह रोग हो गया हो तो अति दारुण होता है तथा कृच्छ साध्य है। आर्द्रस्थान, साररहित भोजन, विजातीय द्रव्य, दूषित भोजन, बासी भोजन इसके उत्पादक कारण हैं।

आधुनिक मत से भी उपरोक्त निदान को समर्थन मिलता है। बेरी बेरी रोग तंदुलभोजी व्यक्ति को विशेष देखा गया है। यह जनमारक रूप में आनूप देशों में प्रारम्भ हुआ था। इसको जीवनीय विटामिन B की कमी के कारण होने वाला रोग माना गया है। दो प्रकार का होता है (i) शुष्क तथा (ii) आर्द्र। शुष्क में शोथ नहीं होता।
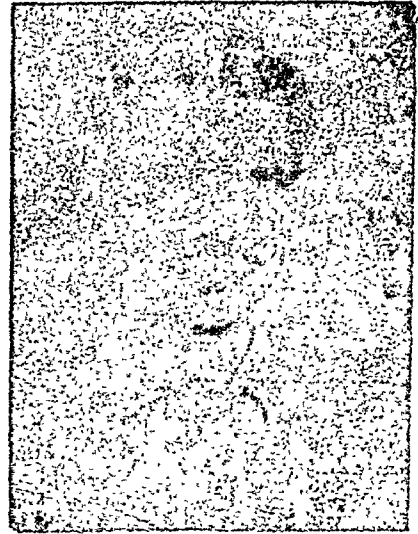
इस रोग के प्रधान लक्षण मन्द ज्वर, देह रूक्षता, धातुओं का क्षय, वक्ष मांसपेशियों की शिथिलता ही होता है। इसमें वात नाड़ी संस्थान तथा मांस पेशी स्थान विकृत होते हैं। जानु में शिथिलता तथा जंघा तथा पिण्डलियों की मांसपेशियां पीड-सहिष्णुता तदन्तर सुप्तता को प्राप्त हो जाती हैं। रोगी पालथी मारने के बाद उठने में अस-

मर्थ हो जाता है। चलने में भी लम्बी डग मारता है। आँखों की ज्योति कम हो जाती है।

आर्द्र वात बलासक में शोथ प्रथम पैरों में यत्र तत्र दिखता है। फिर अन्यत्र फैलता है। श्वास कष्ट, हृदय का फैलना, हृद्द्रव तथा सांकोचिक मर्मर भी उपलब्ध होता है। नाड़ी की गति मन्द हो जाती है। वात संस्थान दुष्ट हो जाता है। मूत्र परीक्षा में अल्व्यूमिन या कास्ट उपलब्ध नहीं होते। इसमें हृदय तथा रक्तवाही संस्थान भी विकृत होते हैं। सर्व प्रथम इसमें पचन संस्थान सम्बन्धी विकृति दृष्टिगोचर होती है तदन्तर वात वाहिनियां विकृत होती है। तथा शोथ होता है। इस रोग में रोगी की मृत्यु अधिकतर हृदयावसाद से ही देखी गई है। इन दोनों के संक्रमण काल में रोगाभिव्यक्ति की अवधि दो से तीन मास तक है।

मलाया आदि देशों में एक तीसरे प्रकार का वेरीवेरी रोग होता है जिसे Cardial Beri Beri कहा गया है। यह अति उग्र होता है। इसमें रोगी श्वासावरोध के कष्ट, छर्दि, उदरशूल आदि से पीड़ित होता है। रोगी कष्ट से अति व्याकुल रहता है। जब तक इस रोग में विटामिन B का उचित मात्रा में इन्ट्रावीनस इंजेक्सन नहीं दिया जाता तब तक यह व्याकुलता बनी रहती है। इसमें सामान्य रूप से हृदय विस्तृति तथा गर्दन की शिरायें उभरी हुई नजर आती है। नाड़ी की गति प्रति मिनट १२० से १३० तक सीमित रहती है। इसमें संकोचीय रक्त चाप (Systolic B. P.) मृत्यु पर्यन्त प्राकृत रहता है परन्तु विस्फारीय रक्त चाप (Diastolic B. P.) गिर जाता है।

चौथे प्रकार का Beri Beri बच्चों में होता है। जिसे Infantile Beri Beri कहते हैं। यह स्तनपायी बच्चों में होता है। जापान, फिलीपाइन में यह रोग अधिक है। इसमें हृदय शोथ, पाचन संस्थानों की विकृति के लक्षण होते हैं जैसे वमन, उत्क्लेश, अतिसार अथवा कभी कभी कोष्ठ बद्धता।

चिकित्सा—

इस रोग की चिकित्सा करते समय Vitamin B का प्रयोग विविध प्रकार से देना उत्तम है। आयुर्वेद में हृदय की सुरक्षा के लिए हृद्य योग पुनर्नवारिष्ट, पंचानन रस, बलाधारस का प्रयोग करना चाहिये।

रोग के उपचार करते समय सर्व प्रथम रोग कारणों का निवारण आवश्यक है। ज्वर न उतार कर शोथ को उतारना चाहिये। मध्यम श्रेणी के विरेचन तथा मध्यम श्रेणी की मूत्रल औषधियाँ देनी चाहिये जिससे रोगी शिथिल न हो जाय। पुनर्नवादि मंडूर उत्तम औषधि है। हृदय को बल देने के लिये अभ्रक, रस सिंदूर तथा कफनाशक औषधियों का मिश्रण देना उत्तम है। शिलाजतु तथा स्वर्ण योग का प्रयोग भी लाभ देता है। चन्दनादि-लोह, वृहद सर्व ज्वरहरलोह, स्वर्णबसन्त मालती आदि का प्रयोग अवस्थानुसार करें। शोथ के लिये—आरोग्य वर्धनी, चन्द्रप्रभा वटी, शिलाजत्वादि लोह स्मरणीय है।

पथ्य—गो दुग्ध, फलों का रस, गेहूं का दलिया, साबूदाना, रोटी, लाजा मंड मधु, ताजी ताड़ी उत्तम पथ्य है। परवल, कुन्दरू, घृतजीरा डालकर दे दें। मेथी, काली मिरच, लवंग, धनिया आदि डाल कर देवे।

अपथ्य—नमक, तैल, खटाई, कटु वस्तु। नमी वाला स्थान त्याग दें। तथा सभी रोग कारक कारणों से दूर रहें।

फुफ्फुसावरण शोथ जन्य ज्वर

वैद्य रमेशचन्द्र जी व्यास भिषगाचार्य—धन्वन्तरि, अजमेर
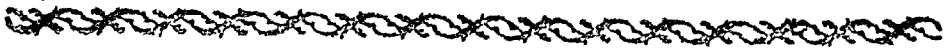
हमारे फुफ्फुस दो पर्त वाले एक श्लेष्मल थैले में बन्द हैं। इस थैले का एक पर्त पसलियों के पिंजड़े के अन्दर की दीवाल के साथ चिपका रहता है तथा दूसरा फुफ्फुसों की बाहरी दीवार पर चिपका रहता है। बाहरी पर्त को विसरल लेयर कहा जाता है। दोनों को क्रमशः परिसरीय पटल तथा कोष्ठांगीय पटल कहा जाता है। दोनों ही पटलों के बीच कुछ सूक्ष्म अवकाश रहता है। ये दोनों एक चिकने पदार्थ से सुचिक्कण रहते हैं ताकि फेफड़ों के आकुंचन तथा प्रस्फुरण की क्रिया बिना किसी विघ्न के चलती रहे।

जब किसी पटल में जीवाणु प्रवेश करते हैं तो वहां रगड़ (फ्रिक्शन) उत्पन्न हो जाती है। दोनों की रगड़ में यह बाधक बनते हैं। इसीसे उस स्थान पर पीड़ा होने लगती है। फेफड़ों के आकुंचन और प्रस्फुरण की क्रिया से जो घर्षण उनमें पैदा होता है उससे यह पीड़ा और भी बढ़ जाती है। रोगी पीड़ा से कराहने लगता है। इसी कारण से यह धीरे-धीरे श्वास लेने लगता है। श्वास कष्ट, श्वास धीरे लेना और वक्ष में पीड़ा, ये तीनों ही लक्षण इस रोग को निर्दिष्ट करते है। ये जीवाणु फेफड़े व छाती, उरःप्राचीर और उदर के ऊर्ध्व भाग से उपसर्गित होकर प्लूरा तक पहुंच जाता है।

उपसर्ग के कारण प्लूरा के पटलों पर स्राव उत्पन्न होने लगता है जो अधिरक्तता पैदा कर देता है तथा इन पटलों की चमक समाप्त कर देता है। इस स्राव के कारण दोनों पटलों में संसक्ति हो जाती है। न्यूमोनियां के कारण बनी प्लूरिसी भी शुष्क या तरल होती है। यक्ष्माजन्य रोग में भी कभी-कभी तरल सूख जाता है। परन्तु यदि किसी अर्बुद के कारण जल संचय हो जाता है तो वह सूख नहीं पाता या सूख भी जाय तो पुनः भर जाता है।

शुष्क प्लूरिसी को अंग्रेजी में फाइब्रिनस प्लूरिसी भी कहते हैं। इसमें सूखी खांसी, छाती में दर्द, उठता श्वास, ये तीनों लक्षण होते हैं। श्रवण परीक्षा में फेफड़ों में एक घर्षण ध्वनि सुनाई देती है जिसे प्लूरल रब कहते हैं। यह रोग तीन कारणों से उत्पन्न होता है—(१) राजयक्ष्मा, (२) कैंसर, (३) उरःक्षत। एक्स-रे परीक्षा से भी इसका पता लग सकता है परन्तु कभी-कभी एक्स-रे से यह ज्ञात नहीं होता।

फुफ्फुसावरण शोथ का उपचार भी दो प्रकार से किया जाता है—ऊपरी उपचार तथा आन्तरिक उपचार। बाह्य उपचार में गरम पानी का सेक, उपनाह, प्लास्टर तथा हल्की मालिश। मालिश में लांगिली का तेल, प्लास्टर में एन्टीफ्लाजिस्टीन का मलहम काम में आ सकता है। विशेष शूल की अवस्था में पैथेड्रीन का इन्जेक्शन भी लगाना पड़ता है। हल्के शूल में एस्प्रीन आदि दिये जा सकते हैं।

उरःशोथ में ज्वर होता है। शूल भी होता है। भूख नहीं लगती या कम लगती है। रोगी दिन प्रतिदिन शिथिलता का अनुभव करता है। श्वास लेने में कठिनाई होती है। इसमें अग्निदीपक शोथहर, बल्य, हृद्य तथा कफहर्ता चिकित्सा की जानी चाहिए।

इस रोग की चिकित्सा करते समय आयुर्वेदीय औषधियों में आरोग्यवर्धनी, शृङ्गाराभ्र रस, अभ्रक भस्म, दन्ती योग आदि औषधियां याद रखने योग्य हैं। न्यूमोनियांजन्य उरःशोथ में ये लाभ करती हैं। राजयक्ष्मा जन्य में राजयक्ष्मा की चिकित्सा तथा अर्बुदजन्य रोग में कैन्सर की चिकित्सा करनी चाहिए। इस रोग में हृद्य औषधि देने का विशेष ध्यान देना चाहिए।

पाश्चात्य चिकित्सा में—स्ट्रेप्टोमायसीन, स्ट्रेप्टो-पेनसलीन तथा इनके साथ विटामिन बी कम्पलेक्स दी जाती है जो लाभ करती है। न्यूमोनियां तथा क्षयजन्य उरःशोथ में यह लाभ करती है।

आयुर्वेदीय दृष्टि से कैंसरजन्य उरशोथ में हीरा भस्म अभाव में वैक्रान्त भस्म, माणिक्य, नीलमणि उचित मात्रा में देना उपयुक्त है। यह मात्रा रोगी तथा रोग के बलानुसार ही निश्चय की जानी चाहिए। दशमूलारिष्ट या मृगमदासव भी आवश्यकता पर दिये जा सकते हैं। कस्तूरी भैरव रस उपयुक्त औषधि है।

इस रोग में जल कम देना चाहिए तथा नमक बिल्कुल नहीं देना चाहिए।

इस रोग में रोगी को पूर्ण विश्राम की सलाह दी जानी चाहिए। छाती पर गरम सेक तथा गरम कपड़ा (ऊनी वस्त्र) ढका रखना चाहिए। पथ्य में द्रव पदार्थ लेना उपयुक्त है। शीत द्रव न लिए जावें। साबूदाना, दूध, चाय, काफी, मौसम्बी का रस (गरम), अंगूरों का रस (गरम) दिया जाना उपयुक्त है।

रोगी के स्वास्थ्य में सुधार होने पर मूली, बलिया आदि देने की व्यवस्था करें। इस रोगके निर्मूल होनेके बाद भी १ वर्ष पर्यन्त पथ्य का सेवन किया जाय। पथ्य त्याग से रोग की पुनरावृत्ति हो जाती है। आहार तथा विहार दोनों ही नियमित रखे जावें। स्त्री प्रसंग, द्रुत गमन, धावन, अधिक श्रम, दिवास्वाप, निरन्तर शीतल जल से स्नान, क्रोध, वाद विवाद, संगीत, मुख वाद्यवादन आदि कभी न करे।

निश्चय ही यह रोग सुखसाध्य नहीं है। इसका ध्यान देकर शीघ्र उपचार कराना उचित है। नहीं तो आगे बढ़कर यह रोग उरस्तोय या क्षय रोग में परिवर्तित हो सकता है।

उरस्तोयजन्य ज्वर

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी, आयुर्वेद केशरी,
मकराना मौहल्ला, जोधपुर (राजस्थान)

आर्ष ग्रन्थों में उरस्तोय का वर्णन नहीं मिलता है। संभव है उस समय यह व्याधि प्रचलित न हो या राजयक्ष्मा में ही इसका समावेश कर लिया गया हो। कालान्तर में माधव निदान परिशिष्ट में तथा भैषज्य रत्नावली में इसका निदान तथा चिकित्सात्मक वर्णन मिलता है। ग्रन्थकार ने स्पष्ट लिखा है कि विषम ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, प्लीहा वृद्धि, पाण्डुशोथ, अर्बुद, हृदय रोग, यकृत दोष, वृक्क रोग आदि अन्य रोगों की जीर्णावस्था में उरस्तोय नामक विकार उत्पन्न होता है जो उपद्रव रूप में होता है। बाह्य आघात तथा अन्य आगन्तुक कारणों से रोग कीटाणु फुफ्फुसावरण में जाकर इस रोग को पैदा कर देते हैं। फिरंग आदि अन्य रोगों के फलस्वरूप भी यह रोग उत्पन्न होता है। न्यूमोनिया तथा क्षय रोगों से भी इस रोग का निकट सम्बन्ध है।

भैषज्य रत्नावली में शीत लगने से, छाती पर चोट लगने से ज्वर, मंथर ज्वर, सन्निपात ज्वर, राजयक्ष्मा तथा अन्य प्रकार के फुफ्फुस रोग जैसे श्वसनक ज्वर, श्वास, यकृद रोग, पाण्डु एवं शोथ के कारण तथा अन्य ऐसे कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है। सर्व प्रथम फुफ्फुसावरण शोथ होता है फिर फुफ्फुस में तरल भरने लगता है और उरस्तोय बन जाता है। कभी कभी शोथ स्वतः ही या औषधि उपचार द्वारा धीरे धीरे कम पड़ता जाता है और रोगी स्वस्थ हो जाता है। या रोग आगे नहीं बढ़ता। परन्तु कभी कभी रोग आगे बढ़ जाता है और फुफ्फुसावरण में पीले अथवा श्वेत रंग या लालिमा लिये श्वेतरंग की जैसी परिस्थितियां हों पानी भर जाता है। इसके लक्षण रूप तीव्र ज्वर हो जाता है।

फुफ्फुस का आवरण जो फुफ्फुस की सतह से चिपका रहता है या उसकी बाह्य झिल्ली पर आघात, चोट या झटके लगने से, शीत, सर्दी या ऋतु परिवर्तन से या अन्य

ऊपर निर्दिष्ट कारणों से यह झिल्ली क्षुब्ध हो जाती है। फलस्वरूप इसमें प्रदाह, शोथ उत्पन्न हो जाता है। इससे इसमें अतिसय वेदना तथा चुभन सी हो जाती है। इसे फुफ्फुसावरण प्रदाह कहते हैं। आगे बढ़ कर इसमें तरल पदार्थ भरना शुरू हो जाता है इसी को उरुस्तोय कहा गया है।

उरुस्तोय में ज्वर प्रधान लक्षण है। रोगी श्वास लेने में कष्ट का अनुभव करता है। पार्श्व में जिस स्थान पर

तरल संचित होता है वह स्थान ऊपर उठा होता है। पीड़ा, शुष्क कास, तृष्णा, मन्दाग्नि, निर्बलता आदि लक्षण रहते हैं। रोगी की नाड़ी सूक्ष्म, तीक्ष्ण तथा द्रुतगामिनी रहती है। स्टेथिस्कोप से शब्द श्रवण करने पर अंसास्थि के निम्न कोण पर एक या आधा इन्च स्थल पर शुष्क प्लूरसी में घर्षण शब्द सुनाई नहीं देता। फुफ्फुस संकोच

तीव्र उर:पूय जन्य ज्वर (Acute Pyaemia)
में तापमान चार्ट

विकासात्मक गति कुछ मन्द रहती है क्योंकि फुफ्फुस तरल वोझ से दबा रहता है। तरल संचितस्थान पर ठेपण क्रिया करने से शब्द मन्द तथा ठोस आता है। अधिक तरल एकत्रित हो जाने पर फेफड़े की संकुचन तथा विकास शक्ति सर्वथा समाप्त हो जाती है। सूखी प्लूरिसी में रोगी को काम करते ही शूल का अनुभव होता है अत: वह काम करना नहीं चाहता तथा काम करते करते रुकने का प्रयास करता है।

इस रोग के निदान तथा लक्षणों का स्पष्ट अध्ययन करने के लिए आधुनिक मतका अवलोकन करना आवश्यक है। इस मत से फेफड़े का शोथयुक्त होना प्रधान लक्षण है। यह प्राय: राजयक्ष्मा के जीवाणुओं के संक्रमण के द्वारा उत्पन्न होता है। यह रोग युवा आयु वालों को अधिक होता है। ये कीटाणु पहले नीचे के भाग में चिपकते हैं वहां शोथ उत्पन्न करते हैं। इसी दृष्टि से इस रोग के दो भाग किये गये हैं। एक शुष्क (Dry), दूसरा तरल (Wet)। सूखा प्रकार प्रारम्भिक प्रकार है। कुछ समय

जीर्ण उर:स्तोयजन्य ज्वर (Chronic Pyaemia)
में रोगी का एक माह का तापमान चार्ट

वाद उसमें पूय भरना प्रारम्भ हो जाता है। इसे एम्पायमा थोरेसिम या उर: पूय कहते हैं। जब तरल थोड़ा व जल्दी जमने वाला हो तो जमकर तन्तुमय फुफ्फुसावरण प्रदाह होजाता है। इसमें वाहरी दीवार के भीतरी भाग में कभी सब जगह तथा कभी एक स्थान पर शोथ हो जाता है। इससे नसें व वाहिनियां फट जाती हैं। लचीली धातु की मात्रा थोड़ी होकर उसमें जमने की शक्ति अधिक हो जाती है। अत: वह वहकर ऊपरी सतह पर जम जाती है। इसमें लाल कणिकायें, श्वेत कणिकायें और आवरण के कटे लच्छे फंस जाते हैं। यह तंतुमय अवस्था है। इसमें ऊपर की सतह चिकनी चमकदार, तथा रूखी होकर खरखरी हो जाती है।

तरल प्रकार में लसीका की मात्रा अधिक तथा तन्तु की मात्रा कम होती है। ऐसा दोनों अवस्थाओं में होना संभव है यानी प्रारम्भिक अवस्था में तथा तदन्तर भी इसमें द्रव की मात्रा अधिक होती है। इस रोग की चिकित्सा करते समय हमें कुछ रोगियों पर सफलता प्राप्त हुई हैं। उसका विवरण हम नीचे प्रस्तुत करेंगे। परन्तु ऐलोपैथिक चिकित्सा भी अतिसंक्षेप में प्रसंगवश यहां प्रस्तुत कर देते हैं। तरल अवस्था में सूचिका द्वारा तरल निकाला जाता है। परन्तु एक ही वार में सम्पूर्ण तरल नहीं निकालते। तरल निकालते समय यदि रोगी को अधिक पीड़ा तथा घबराहट आदि हों तो उसका निकालना वन्द करं देना

चाहिए तथा हृद्य औषधियां देनी चाहिये। कालान्तर में फिर तरल निकालने का धीरे धीरे प्रयास करना चाहिए। महर्षि सुश्रुत द्वारा बताये गये त्रिकूर्चकास्त्र से भी यह क्रिया की जा सकती है। परन्तु यह लघु शस्त्र कर्म शल्य चिकित्सक के द्वारा किया जाना चाहिए।

आयुर्वेदीय चिकित्सा में इस रोग में कफ नाशक मूत्र प्रवर्तक औषधि देनी चाहिए। अन्य औषधि व्यवस्था इस प्रकार रोगी के बलाबल तथा रोग की प्रधानता के अनुसार की जानी चाहिए।

प्रयोग—(१) षड्गुण बलिजारित मकरध्वज १० ग्राम, महालक्ष्मी विलासरस (स्वर्ण युक्त) १० ग्राम, मृग श्रृङ्ग भस्म १० ग्राम, कफकेतु रस १० ग्राम। सबको मिलाकर खरल कर सूक्ष्म मिश्रण बनालें। सर्व प्रथम मकरध्वज को पीसकर चन्द्रिकाहीन करदें। फिर एक एक कर शेष औषधियां मिला दें। फिर आर्द्रक स्वरस में तथा शहद में इसको दिन में ३-४ बार चटावें। मात्रा—१ रत्ती या १।. रत्ती।

(२) शुद्ध पारद (अष्ट संस्कृत) तथा शुद्ध आंवलासार गन्धक की निश्चन्द्र कज्जली करलें। फिर शतपुटी अभ्रक सत्व भस्म, शतपुटी नाग भस्म, सोमनाथी ताम्र भस्म (अमृतीकरण की हुई) रस सिन्दूर, लोह भस्म, शतपुटी समानभाग लेकर सबको मर्दन करे।

भावना—थूहर का दुग्ध, जम्बीरी का स्वरस, वांसापत्र स्वरस, चित्रक क्वाथ, करवीर पत्र स्वरस, दन्तीमूल क्वाथ, कृष्णामिरची क्वाथ, कुचला क्वाथ की ४-४ भावना। फिर इसकी टिकिया बनाकर सुखाकर शराब सम्पुट करे। अच्छी तरह सुखाकर वालुका यन्त्र में ३ प्रहर अग्नि दे। शीतल होने पर खरल करलें। फिर त्रिकटु या षडूषण, वच, शु. विष, रजनी ४-४ माशा चूर्ण मिलाकर अद्रक स्वरस में वटी बनालें। मात्रा—१-१ रत्ती।

अनुपान—मधु+अद्रक स्वरस।

(३) सहस्र पुटी अभ्रक, चन्द्रोदय, मुक्ताभस्म, स्वर्ण भस्म, वृहद श्रृंगाराभ्र रस, श्रृङ्ग भस्म, समान मात्रा में लेकर खरल करे। मात्रा २ रत्ती—अनुपान तुलसी पत्र+मधु।

(४) पंचसूत रस (भै. र.)

(५) सुधानिधि रस (भै. र.)

(६) क्वाथ—बादाम पेटिका ५० ग्राम, काली जीरं १२ ग्राम, रजनी चूर्ण २५ ग्राम, वासा पत्र (श्याम) ५० ग्राम। यह क्वाथ एक में या सहपान के रूप में लाभ देता है।

(७) पिप्पलीमूल चूर्ण—१ ग्राम से नित्य १ ग्राम बढ़ाकर वर्धमान मात्रा में दूध के साथ सेवन कराने से लाभ होता है। पिप्पलीमूल बढ़िया गांठदार होना चाहिये। यह मात्रा—१० ग्राम तक बढ़ाकर फिर १-१ ग्राम कम करे। आवश्यकता होने पर फिर बढ़ाना चाहिए।

इस रोग के प्रकट होते ही रोगी को शैयागत रखना उत्तम है। पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है। रोगी को स्वच्छ वायु वाले कमरे में रखना चाहिए। छाती पर गर्म वस्त्र लपेटे रखना चाहिए। आवश्यकता होने पर अलसी का पुल्टिस तथा हल्का सेक करना चाहिए। टिंचर आयोडीन तथा यूकलिप्टिस तैल तथा अन्य ऐसे द्रव गर्म पानी में डालकर गर्म वस्त्र को इसमें भिगोकर सेक करना चाहिए।

आयोडेक्स, लिनिमेन्ट केम्फर की हल्की मालिश भी लाभ करती है

पथ्य—में द्रव पदार्थों का अधिक सेवन लाभप्रद है। दूध, साबूदाना, अंगूर स्वरस, पौष्टिक तथा सुपाच्य भोजन, मूत्रल एवं मलावरोध न करने वाले खाद्य देने चाहिए। पीने के लिये हर समय गर्म जल दिया जाना चाहिए। थोड़ा लाभ होने पर दलिया, मूंग की दाल धुली, खिचड़ी आदि दी जा सकती है।

अपथ्य—शीतल जल, शीतल वायु, कफ वर्धक पदार्थ, तथा गरिष्ट भोजन बल पूर्वक त्याग देना चाहिए।

विशेष—इस रोग के निवृत होजाने के बाद भी एक वर्ष तक रोगी को पथ्य सेवन करना चाहिये। श्रम, मैथुन से बचना चाहिये। दिवास्वाप, शीतल जल स्नान, क्रोध, विवाद, संगीत, मुखवाद्य (बांसुरी) सर्वथा त्याग दें।

उरस्तोय रोग अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही औषधिसाध्य है—परन्तु रोग की उग्रावस्था में जब पूय अधिक भर जावे तो तरल निस्कासन का उपयुक्त उपचार के साथ तल वृद्धि को रोकने के लिये स्ट्रेप्टोमायसीन, डाईक्रिस्टिसीन आदि उग्र औषधियां देनी होंगी।

उर:क्षतजन्य ज्वर

वैद्य मुकुन्द कृष्ण जी शास्त्री न्याय आयुर्वेदाचार्य, ग्वालियर।

उरु से तात्पर्य है छाती का तथा क्षत से तात्पर्य है जखम होना। छाती में याने फुफ्फुसों में व्रण का होना ही उरःक्षत है। चाहे यह जखम फोड़ा, गांठ या चोट लगने से ही क्यों न हुआ हो। अवश्य यह अन्दर होता है, बाहर दीखता नहीं है। ऊपरी चिन्हों से तथा परीक्षा से यह जाना जाता है कि यह उरःक्षत है। इसमें थूक या वमन या कफ के साथ खून आना एक प्रधान लक्षण है। वक्ष शूल दूसरा लक्षण है।

अधिक परीक्षण करने से, जोर लगाने से फेफड़ों का वातायन फैल जाता है और फिर सुकड़ते नहीं। इतने अवकाश में व्रण होकर तरल संचित हो जाता है और व्रण में पूय पैदा हो जाती है। यह पूय कफ द्वारा बाहर निकलता है जो बदबू देती है तथा इसके साथ पूय जनक कीटाणु भी निकलते हैं। थोड़ा थोड़ा रक्त भी पूय के साथ बाहर आता है।

इस विशेषांक के विशेष सम्पादक के पूज्य पितामह वैद्य वेणीराम जी आयुर्वेद मार्तण्ड से इन पंक्तियों के लेखक का निकट का सम्बन्ध रहा है। वे नाड़ी परीक्षा तथा काल ज्ञान के अद्भुत चमत्कार दिखाया करते थे। एक बार उनके चिकित्सालय में एक रोगी आया जो पुलिस में बड़ा अफसर था। नाड़ी देखकर उन्होंने उसे उरक्षत कायम किया और उसकी नाड़ी देखने को कहा, मैंने देखा। फिर उन्होंने "क्षत कासे तथा राजयक्ष्मणि नाड़ी ग्रन्थि-रूपणि" श्लोक बोलकर मुझे इशारा किया। मैंने फिर देखी। तदन्तर उन्होंने रोगी से पूछा क्या आपकी छाती में कभी चोट लगी। हां, उसने कहा—मेरे बन्दूक की चोट लग चुकी है। रोगी को यक्ष्मा तो था नहीं क्योंकि वह दीखता था, अतः उरक्षत कायम कर चिकित्सा की गई, रोगी स्वस्थ हो गया।

वैद्य वेणीराम जी जिनकी आयु उस समय ८० वर्ष के करीब थी अपने ज्ञान के पूर्ण विद्वान थे। अब उनका स्वर्गवास हो चुका है, परन्तु उनके क्षेत्र में उनके चिकित्सा चमत्कार तथा ज्ञान चमत्कार के विषय में अनेक कथायें प्रचलित हैं।

एक रोगी को करीब २० फुट दूर पर खांसते हुए सुनकर उन्होंने उसे उरक्षत कायम किया और घोषणा की कि यह रोग असाध्य है। फल वही हुआ जो होना था। मैंने उनसे पूछा कि यह कैसे बताया गया तो उन्होंने कहा कि उसके कास में कांसी के थाल पर चोट लगने जैसी आवाज आती थी। इसी आधार पर यह घोषणा की गई। नाड़ी ज्ञान प्रकाश में लिखा है कि रक्त दूषित नाड़ी भारी तथा गरम होती है। ये लक्षण भी रोग पहिचान में सहायक होते हैं।

चरक के मतानुसार रोगी का बल वर्ण अग्नि बराबर क्षीण होते रहते हैं। स्नायुदौर्बल्य, पार्श्वशूल, सरक्त कफ, कफ दौर्गन्ध्य, ग्रन्थिक कफ का प्रातःकाल अधिक मात्रा में निकलना। खांसी, ज्वर, कम्पन और अंग शोथ आदि लक्षण भासते हैं।

अन्य लक्षण—कृष्ट श्वास, दुर्गन्धयुक्त कफ, पीला, गांठदार कफ, रक्तयुक्त कफ स्राव मात्रा में अधिक, दैहिक क्षीणता होती है, छाती में दर्द रहता है, वमन होती है, पार्श्व पृष्ठ तथा कमर में अकड़न रहती है। शनैः शनैः धातुक्षीण होकर वात प्रकोप के कारण सम्पूर्ण देह के अंगों में शूल, श्वास फूलना पाया जाता है।

यह रोग क्ष किरण द्वारा चित्र लेने पर छाती में व्रण स्थान पर धब्बा देखा जा सकता है। रक्त में ई. एस. आर बढ़ा रहता है।

चिकित्सा करते समय रोगी के कफ को आसानी से निकालने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए वासा स्वरस + मधु का उपयोग उत्तम है। यह दिन में ३–४ बार प्रयोग किया जा सकता है।

कफ आसानी से निकलने पर वमन, ज्वर आदि विपाक्त लक्षण कम हो जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर

शेषांश पृष्ठ १६२ पर

यक्ष्मा ज्वर के प्रतिबन्धनात्मक उपाय

वैद्य एस० जे० नलगोरकर एम० ए०, जी० सी० ए० एम, आयुर्वेद रत्न,
प्रपाठक व स्वस्थवृत्त विभाग प्रमुख आर० ए० पोद्दार मेडीकल कालेज (आयु०), मुंबई—१८

सभी प्रकार के ज्वरों में यक्ष्माज्वर विशेष महत्व रखता है। इसमें दिनप्रतिदिन बल का ह्रास होता रहता है तथा यह दीर्घकाल तक शरीर में रहता है। किसी भी व्याधि की उपेक्षा करने पर तथा मिथ्या आहार विहार वेगावरोध अतिश्रम मानसिक चिन्ता अपोषक आहार सेवन तथा ज्वर, पांडु, अतिसार में अपथ्य सेवन से इस व्याधि में परिणत होता है। सभी चिकित्सा प्रणाली में इस व्याधि के उपाय बताये गये हैं। इसके स्वतन्त्र निदान केन्द्र और रुग्णालय हैं। इस व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति इनका लाभ लेता है। यह स्वयं रोग का पर्याय समझा जाता है।

इस तरह से यक्ष्माज्वर त्रिदोपात्मक निज व्याधि अन्तर्गत प्राणवह स्रोतस सम्बन्धी संसर्गजन्य संक्रामक व प्रसारक तथा क्रम से बढ़कर दीर्घकाल चिकित्सा योग्य व्याधि है। सुश्रुत ने शोप (Drying up, consumption) तथा चरक ने क्षय (Wasting) कहा है। इसको राजयक्ष्मा नाम से सम्बोधित किया है। प्राणवह स्रोतस दुर्बल तथा दूषित होने से अन्य स्रोतस कोषों को भी दुर्बल करता है। रसरक्तादि धातु उत्तरोत्तर दुर्बल होते हैं। या शुक्र धातु के अतिव्यय होने से अथवा उसका रक्षण न करने से मज्जा, अस्थिमेद, मांस रक्तादि दुर्बल होते हैं। इस तरह से अनुलोम और प्रतिलोम दृष्टि से यह रोग होता है। दूषित वायु के सेवन से, बन्द कमरे में रहने से, आर्द्रनिवास, मद्यपान, प्रकाश वायु संचार हीन स्थान, कपड़ों के कारखानों में काम करने वाले, कुपोषण या विषमासन और अन्न द्रव्य का पाचन, शोषण, प्रसारण, धातु रूपान्तर न होने से यह रोग होता है। शरीर इस रोग का माध्यम बनता है। आधुनिक वैद्यक शास्त्र इसकी उत्पत्ति जीवाणु द्वारा मायको ट्यु्बर क्युलोसीस (Mycotuber culosis, Tuberculus Koce's Basilli) से मानता है। यह जीवाणु सीधे या वक्र ३ मायक्रोन लंबे, ५ मायक्रोन चौड़े रहते हैं। यह रोग फौपफुसीय (Pulmonary or Phthisis) और अफौपफुसीय (अस्थिग्रंथि अन्त्र आदि Nonpulmonary) ऐसे दो प्रकार का है। इस व्याधि का प्रसारण रुग्ण के सम्पर्क में रहने से, निश्वास वायु द्वारा बिन्दुक्षेप (Droplet) से फैलता है।

यक्ष्माज्वर की निश्चिति होने के लिए कई दिनों से विनाश्रम थकान, अङ्ग पीड़ा, तालुशोप, भूख न लगना, वजन घटते रहना, ज्वर की अनुभूति और श्रम से संध्या में उसका बढ़ जाना, हस्तपाद में जलन और पूर्व अवस्था में प्रतिश्याय, कास, शिरःशूल, रुचि, पार्श्व, उरु पीड़ा होना व अल्पश्रम से श्वास बढ़ना, इसके पश्चात् कफ रक्त निष्ठीवन श्वास कृच्छ मांसक्षय दिखाई देते हैं। आधुनिक दृष्टि से उपरोक्त लक्षणों के साथ रक्त तथा कफ परीक्षण से जीवाणु को निश्चित, क्षयं किरण परीक्षण से फुफ्फुस में क्षय चिन्ह (Mottling, cavity) दिखाई देते हैं। ट्यु्बरक्युलिन टस्ट से ज्ञात होता है। इरथ्रोसाईट सेडिमेन्टेशन रेट (E. S. R.) (१–१०) से अधिक होने पर शरीर में क्षरण अवस्था मालूम होती है। यह कई व्याधियों में चढ़ता है।

उपाय—आयुर्वेद में किसी भी व्याधि की चिकित्सा तीन प्रकार से की जाती है—

(१) शोधन (वृद्ध दोषों को वमन विरेचन वस्ति से शरीर के बाहर निकालना)।

(२) शमन न बने हुए दोषों को औषध द्रव्यों से तथा सामान्य लंघन, व्यायाम, आतप सेवन कराना)।

(३) पथ्यापथ्य का सेवन—चिकित्सा में इसका विशेष महत्व है। रोग पूर्व चिकित्सा में तथा रोग मुक्त होने पर किसी भी अवस्था में उसीकी आवश्यकता रहती है। बिना पथ्यापथ्य का विचार करते हुए औषध लाभ-

दायक नहीं होती, क्योंकि शरीर वल, प्राण वल तथा अग्निवल और दोष धातुमल के प्राकृत विकृत अवस्था इस पर निर्भर है। हितकर आहार विहार का सेवन पथ्य और अहितकर आहार विहार का त्याग अपथ्य कहा जाता है।

यक्ष्माज्वर के निवारण के लिए अनेक औषधियां उपयुक्त हैं। आयुर्वेद में सितोपलादि चूर्ण, तालीसादि चूर्ण, एलादि वटी, सुवर्ण मालिनी वसन्त, मृगाङ्क रस प्रवाल पिष्टी, कूष्माण्डावलेह, वासावलेह, द्राक्षासव, पिपल्यासव, यह हैं। आधुनिक वैद्यक शास्त्र में स्ट्रेप्टोमायसीन, ऐन्टीबायोटिक्स, आयसोनेक्स, पैरा अमीनोसैलिसिलिक एसिड —पास (P. A. S.), काड लिव्हर आयल और प्रतिबन्धन के लिए, यक्ष्मा लस (Bacillus Calmette Gverin--B. C. G.) यह दिया जाता है। इन औषधियों को अति मात्रा में लेने पर शरीर में उनकी विषाक्तता होती है और अरुचि, वमन, अतिसार, ज्वर, कण्ठ ग्रन्थिशोथ, हस्तपाद दाह, मलावरोध लक्षण दिखाई देते हैं। इसलिए राजयक्ष्मा के लिए निम्न प्रकार का उपाय करना पड़ता है—

(१) शरीर मनोवल का रक्षण करना—यक्ष्मामें वल क्षय अधिक होता है। इसमें मल स्वयम् वल प्रदान करता है। चिकित्सा में कर्षण, अतिसरण न होने दें। मल स्वयम वल प्रदान करता है। इसकी रक्षा करें, मन शांत रखें।

(२) वात वृद्धि न होने देना—शरीर में वात दोषों का संचय प्रकोप नहीं होने देना। वायु योगवाही होने पर कफपित्त संपर्क से दोष विषमता प्राप्त करता है। अतिव्यायाम, उपवास, अतिभाषण, अतिचलना, रूक्ष आहार से वात प्रकोप होता है। प्राण उदान वायु विकृति से फेफड़े, हृदय कंठ में विकृति होती है। श्वास कास विकार, कृशता दुर्वलता आती है। उष्ण मधुर लघु स्निग्ध अन्नपान, विश्रांति लेनी चाहिए।

(३) वेगावरोध न करना—वेग वायु के कारण होते हैं। नित्य आहार विहार से मल मूत्र निद्रा क्षुधा तृष्णा अधो वेग प्रवृत होते है। उनका अवरोध न करे तथा शोक क्रोध भय इन मानसिक वेगों को रोके।

(४) शरीरगत स्नेहों का रक्षण करना—शरीर में स्नेह रस मांस मेद मज्जा शुक्र ओज इन धातु के ताह्य से रहता है। स्नेह वल तथा कार्यक्षम शक्ति बढ़ाता है, वात प्रकोप से प्रतिवंध रखता है, अतिव्यवाय, चिंता, क्रोध, अतिपरिश्रम से यह घटता है। स्निग्ध द्रव्य और विश्रांति से इसका रक्षण होता है। इसके अभाव से क्षय वढ़ता है। इसके लिये इसका रक्षण करें।

(५) अग्नि का रक्षण करे—विषमासन से अग्नि दुर्वल होती है। इसलिये नित्य आहार स्वच्छ, पवित्र, मात्रावत जीर्णकृत वातानुलोमक, मधुर—रस प्रधान षड्रसात्मक आहार से अग्नि का रक्षण होता है।

(६) इन्द्रिय-निग्रह का पालन करना अहितकर विहार, अनुकूल कार्य जो मन को भाते हैं परन्तु रोग वढ़ाते हैं, इसलिये इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखो जिससे रोग ठीक होने में मदद होती है।

(७) संक्रमण से सावधान रहो यह व्याधि संक्रामक होने के कारण रुग्ण के निश्वास, सहभोजन, गात्रस्पर्श, सह शैया, वस्त्रा आधो वस्तु परिधान न करे।

(८) ऋतु चर्या का पालन करना—स्वभाव से ही प्रतिवर्ष ऋतुयें वदलती रहती हैं। ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में शरीर तथा अग्निवल क्षीण होता है। इस समय वल्य प्रधान, पुष्टिकर औषधि आहार टानिक लेने पर भी उसका दुष्ट परिणाम दिखाई देता है। इसलिये ऋतु प्रतिवंधनात्मक ऋतुचर्या का पालन करे।

(९) पथ्यकर आहार का सेवन करना—क्षय रोग में धान्य में पुराणजव(लघु मधुर शीघ्रपाकी) गोधूम मधुर गुरु स्निग्ध संधान कर) मुद्ग (लघु) फल में दाल व आमलकी, द्राक्षा मौसमी, वनाना, खर्जूर, सकरकंद, रतालु, आलू (पिष्टमय,मधुर) शाक में—वथुवा,तंडुलीयक, पालक मेंथिका, जीवन्ती, गोभी, टमाटर, मूलक, पटोल, कांदा, (पत्रशाक त्रिदोषहर सारक, वात वृद्धिकर नहीं रहते हैं) व्यन्जन में—मरिच, आर्द्रक (ग्राही) सेंधव, हरिद्रा, धान्य गुड़, शर्करा, तिल तैल। प्राणिज में—अहिंसक द्रव्य में दुग्ध (स्नेह मधु सात्म्य) गौ दुग्ध, अजादुग्ध (दीपन लघु, संग्राही), दशमूल सिद्ध घृत (चरकमत) वलाघृत। हिंसक में—मांस (धातुउष्टो कुकुट, अजा मांस, हरिणमास, लावापक्षी। इनमें वकरी का दुग्ध घृत श्रेष्ठ समझा जाता है।

वकरी के कषाय तीक्ष्ण अम्ल द्रव्यों के सेवन तथा भ्रमण से शरीर लघु वनता है। उसके सम्पर्क में रहने से

तथा मांस, दुग्ध, घृत सेवन से क्षय तथा सर्व रोग नष्ट होते हैं—

अजा नाम अल्प कायत्वा कटुतिक्त निषेवणात ।
नात्यम्बुपान् व्यायामात सर्व व्याधिहर पथ्यः ।।
—सुश्रुत सूत्र स्थान ४५

कृतान्न में—अग्निदीपन के लिए शालि मुद्गदाल, कृशरा (खिचड़ी) शुण्ठी सिद्ध यवागू सेवन करें। नित्य पक्व चावल व चपाती,दालशाक,ज्वार की रोटी हितकर है और दुग्ध पान करे। अनुपान—भोजनान्तर द्रव लेने के लिए, द्राक्षासव, पिप्पल्यासव और मांस भक्षण करने वालों को वारुणी मद्य (मद्य निर्मिती में स्वच्छ तरल भाग) इन्द्रिय उत्तेजक दीपन पाचक उत्साहवर्धक बस्तिशोधक, वल्य, भय, शोक क्षय नाशक, स्रोतोशोधक अल्प मात्रा में सावधानी से लेनी चाहिए। यह ओज के विपरीत होता है। इस अनुपान से दोष साम्यता का तथा आहार का पाचन, वायु का अनुलोमन ठीक होता है। जो मांस भक्षण करके मद्य नित्य लेकर वेगावरोध नहीं करते, उनको कभी क्षय नहीं होता है।

रसायन में—यक्ष्मा ज्वर में रसमांस मज्जा धातु क्षीण होते रहते हैं। अकाल वार्धक्य तथा जरा अवस्था के लक्षण दिखाई देते है, इसलिए शरीर शोधन करके रसायन सिद्ध दुग्धपान सुबह करे। इसमें आमलकी पिप्पली, गुडूची, अश्वगन्धा, मधुयष्ठी, नागवाला लाभप्रद है।

लसुन (आमलकी+खजूर)—यह भी यक्ष्मा में विशेष हितकर है। वासा पिप्पली, इन द्रव्य की औषधि से वियाक्तता की कमी होती है।

(१०) पथ्यकर विहार सेवन—पथ्यकर विहार भी वातशामक, शरीर पुष्टिकर, श्रम परिहार, अङ्ग-प्रत्यङ्ग शुद्धीकरण होने चाहिए। नित्य मलमूत्र विसर्जन, दन्त धावन, अधोमुख शुद्धि करना आवश्यक है। विशेष करके अभ्यङ्ग (वला तैल, चन्दन बला लाक्षादि तैल, अजा मल-मूत्र मिश्रित)।

अभ्यंग स्नान में—मुलेठी, काकोली, मुद्गपर्णी सिद्ध जल, वला गुडूची, निम्ब द्रव्य सिद्ध जल स्नान तथा परिषेक करे, चन्दन, अगरु अनुलेपन करे, गुग्गुल जेष्ठमधु, अगरु घृत निर्गुण्डी वीज़युक्त धूम्रपान वातकफ शमनार्थ करे। राशीय द्रव्यों का धारण–जिसमें पन्ना,हीरा धारण करें। घृत नस्य करे, स्वच्छ लघु कपास वस्त्र धारण, शोधन के लिए वल रक्षण करते हुए वात व्याधि प्रधान यक्ष्मा होने से शिरोवस्ति श्रेष्ठ है (वा० चि० ५/८६)। इससे दूषित मल का निस्सरण होता है। स्रोत विकसित करने के लिए प्रातः सायम् मन्द वायु तथा आतप सेवन करे। विश्रांति क्षय रोगों के लिए स्वास्थ्यवर्धक है। शरीर को विश्राम दें। ब्रह्मचर्य पालन यह आवश्यक है। मनोनुकूल, चिन्तारहित आनन्दोवृत्त, धैर्य, संयम, हास्य मनोरंजन करे। यह धातु पुष्टि वातशामक है। मानसिक शान्ति, सन्तोष के लिए प्रार्थना, ईश्वर चिन्तन, आराधना आवश्यक है। गृह तथा निवास स्थान को सामान्य सफाई, सूर्य प्रकाश, वायु संचालन तथा गुग्गुल, वच, चन्दन आदि से धूपन देकर वायु को शुद्ध तथा रोग प्रतिवन्धक वातावरण निर्माण के लिए लाभदायक है।

(११) अपथ्य का त्याग करना—आहार में नवीन धान, गौदूध, शाली, जव (गुरु दुर्जर पाकी), बाजरा (रूक्ष सारक), माष (गुरु), चणक, कुलत्थ, लाख, मसूर (उष्ण वातवर्धक), जांव (अतिसारक), तरबुज (रूक्ष शुक्र क्षय), करवद (क्षारयुक्त अम्ल), अपक्व फल, सुपारी, (कषाय शीत रूक्ष), कंवठ (Wood apple), बन्दोर, सुक्का, आलाबू करकटी, कारवेल (वातजनक), वृत्तांक (तीक्ष्ण, उष्ण, लघु), यवक्षार महामरीच (उष्ण, तीक्षण, सारक, पित्तवर्धक), अतीस तैल, सर्षप (पित्तवर्धक), महिष दुग्ध, दही (गुरु.अभिष्यन्दि स्रोतोरोधकर), शीत तक्र, गौमांस, महिष मांस, सूकर मांस, ऊंट, हाथी का मांस, तलित पदार्थ, पिष्टमय पदार्थ (सेव, चिवड़ा, भजी), पर्युषित अतिशीत विरुद्ध अन्न, वर्षा जल (पित्तवर्धक, अग्निमांद्यकर), विहार में वायु प्रकाश रहित निवास, दिवास्वप्न, रात में जागना, क्रोध, चिन्ता, दुःख, वार्तालाप, अतिभाषण, श्रम विश्रान्ती असन्तुलन, दिनचर्या, अतिहीन, मिथ्या का अनुसरण करना।

(१२) योग नैसर्गिक के उपाय—क्षय वाक्यों में सर्व प्रकार के उपाय अभिप्रेत है। विना औषधि से यह उपाय किया जाता है। शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने के लिए, शोधन के लिए और अवयव कार्यक्षम बनाने के लिए और उपद्रव न होने के लिए, योग निसर्गिक अनुकरण आवश्यक होता है। यौगिक उपाय में—जल-नेति (एक•

नासा पुट में जल लेना, दूसरे नासापुट से जल निकालना), वमन धौति, (सुखोष्ण, लवण जल, पाच गिलास पीकर उसको बाहर निकालना), आसन में–सर्वांगासन, प्राणायाम भस्मिका प्राणार्प स्निग्ध, मधुर, मात्रा वत् अन्नपान करे। नैसर्गिक उपाय में—पवन स्नान (वायु सेवन, उद्यान घूमना), सूर्य स्नान, हरित, नील, पीत, जामुनी और आसमानी किरणों का रंगीन कांच से शरीर पर स्पर्श तथा उनसे सिद्ध जल का सेवन करे। उर भाग मे मर्दन, बस्ति, कटि स्नान, विश्रान्ति, दुग्धपान, पोपक आहार, हितकर है। इस तरह क्षय ज्वर के उपाय के लिए एक ही समय शरीर मानस नैतिक, आत्मिक, अन्नपान, रत्न-धारण सब चिकित्सा करनी पड़ती है। रोग परीक्षण और औषधि के साथ उपरोक्त विधि का पालन करने से अन्य उपद्रव न होकर रोग मुक्त होने में सहायता मिलती है।

आभार—यक्ष्माज्वर तथा प्रतिवन्धनात्मक उपाय के लिए मार्ग दर्शन तथा महत्वपूर्ण ज्ञान को लाभ कराके इस लेख को परिपूर्ण होने से तथा साहस तथा अनुमोदन देने से वैद्य एम. वाय. लेले. डी. ए. एस. एफ., ए. व्ही. पी. अधिष्ठाता-आर. ए. पोद्दार मेडीकल कालेज (आयु०), मुंबई–१८, इनका लेखक मनपूर्वक आभारी है।

उर.क्षत जन्य ज्वर :: :: पृष्ठ १८८ का शेपांश

कफ निकालने का यन्त्रों द्वारा प्रयास करना चाहिए।

आयुर्वेद में उर.क्षत की चिकित्सा करते समय रक्त रोकने के लिए वासा पत्र स्वरस का उपयोग हम ऊपर बता आये हैं, फिर लाक्षारस भी स्मरण में रखने योग्य औषधि हैं।

(१) मुक्ता पंचामृत २ रत्ती, स्वर्ण भस्म १/४ रत्ती

(२) लाक्षा चूर्ण ८ रत्ती को कूष्माण्ड स्वरस २ तोला, मधु ६ माशा मिलाकर दिन में २ बार दें।

(३) स्वर्ण वसन्त मालती १ रत्ती, मुक्ता पिष्टी १ रत्ती, रसराज रस १ रत्ती, मधु सहित।

(४) एलादि मन्थ १ तोले की मात्रा में दें।

(५) अमृत प्राश घृत या अवलेह।

(६) द्राक्षाद्य घृत का सेवन करें।

(७) वैद्य प्रवर ने इस रोग में ताम्र चन्द्रोदय तथा प्रवाल पिष्टी का प्रयोग कर यश प्राप्त किया था।

(८) कहरवा पिष्टी + एला चूर्ण–घृत तथा मधु के साथ देने से लाभ होता है।

पथ्य यव धान का लाजा, पानी के साथ या फलों के रस के साथ मधु मिलाकर देना चाहिए।

शीत वीर्य, सन्तर्पण, अविदाही, हितकर और लघु पथ्य देना चाहिए। जीवनीय गण के साथ दूध या मांस स्वरस देना चाहिए। लवण, मिरची वर्जित है। रक्तस्राव बन्द होने पर थोड़ा सा सैंधव दे सकते हैं। रक्तपित्त में जो पथ्य उत्तम है वही पथ्य इस रोग में देना चाहिए।

अपथ्य—नमक, मिरची, शोक, क्रोध, स्त्री प्रसंग, चिन्ता, ईर्ष्या आदि का साध्यतः प्रतिकार करना चाहिए।

इस रोग में पूर्ण विश्राम, श्रम त्याग तथा स्वच्छ वातावरण आवश्यक है।

आधुनिक चिकित्सा में स्ट्रेप्टोमायसीन, स्ट्रेप्टो पेनिसिलीन इस रोग की प्रसिद्ध दवायें हैं।

वैद्य दरबारीलाल आयु० भिषक, अशोक भैषज्य-भवन, चौराहा कानपुर रोड,
फतेहगढ़ जिला फर्रुखाबाद (उ० प्र०)

आयुर्वेद में राजयक्ष्मा के कई नाम है यथा क्षय रोग, रोगराज, यक्ष्मा, शोष आदि ऐलोपैथी यानी डाक्टरी में उसको टच्यूबरकुलोसिस, कन्जम्पशन, थाइसिस तथा टी.बी. कहते हैं। यूनानी हिकमत में इसको तपेदिक या सिल कहते है।

नामकरण का कारण—यह देह और औषधि दोनों का क्षय करता है इसलिये इसका नाम क्षय रोग पड़ा। इससे शरीर तथा धातुयें सूख जाती है। इसलिए इसको शोष रोग कहते है। यह रोग वड़ा भयंकर व कठिन है। इससे ग्रसित होकर लाखों मनुष्य प्रति वर्ष मरते है तथा सब रोग में राजा होने के कारण उसका नाम राज रोग या रोग राज पड़ा। सर्वप्रथम यह रोग नक्षत्र राज चंद्रमा को हुआ था इसीलिये इसे राजयक्ष्मा करते है।

आयुर्वेदीय मत से राजयक्ष्मा उत्पन्न करने वाले चार कारण—

वेग रोगात्क्षयाच्चैव साहसाद्विपमाशनात्।
त्रिदोषोजायते यक्ष्मा गदो हेतु चतुष्टयात्॥

अर्थ—(१) मल मूत्रादि के वेगों को रोकने से (२) शरीरान्तर्गत रस रक्तादि वीर्य आदि सप्त धातुओं के क्षय होने से (३) अपनी शक्ति से अधिक साहस के काम करने से और चौथा कारण है विपम भोजन करना। इन चार कारणों से त्रिदोपज राज यक्ष्मा उत्पन्न होता है।

अनुलोम क्षय तथा प्रतिलोम क्षय के विचार से यह दो प्रकार का होता है जिसकी व्याख्या निम्नलिखित है। देशी भाषा में अनुलोम का अर्थ सीधा और प्रतिलोम का अर्थ उल्टा होता है।

अनुलोम क्षय—जब उपरोक्त कारणों से रस धातु का क्षय हो जाता है तो रस धातु से उत्तरोत्तर बनने वाली धातुयें रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र भी क्षय को प्राप्त हो जाती हैं और परिणामस्वरूप क्षय रोग प्रकट हो जाता है। इसको अनुलोम क्षय कहते हैं।
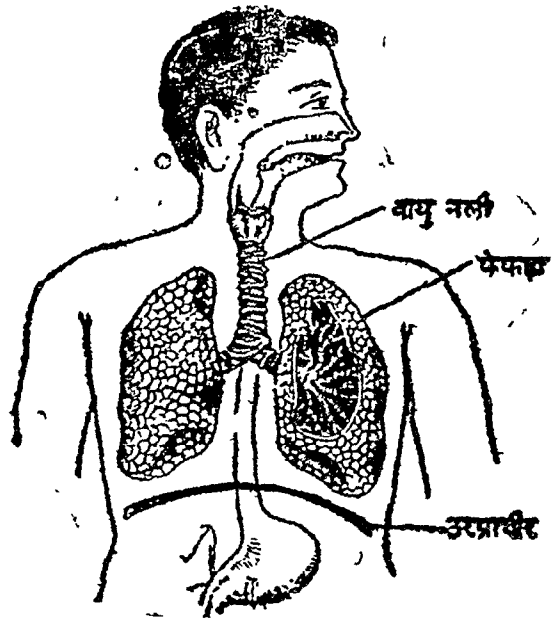
प्रतिलोम क्षय—अत्यन्त मैथुन करने वाले मनुष्य का जब वीर्य क्षीण हो जाता है तो वीर्य के क्षीण होने से मज्जा क्षीण हो जाती है, मज्जा सूखने से हड्डियां क्षीण होती हैं। इस प्रकार प्रतिलोम क्रम से मेदा, मांस, रक्त, रस आदि सब धातुयें क्षीण होती जाती है और मनुष्य का शरीर सूख जाता है। इसे प्रतिलोम क्षत कहते हैं।

पूर्व रूप—

जब राज यक्ष्मा किसी को होना होता है तो उसके पूर्वरूप निम्नलिखित है—

श्वास, अंगों में सुस्ती, मुंह से कफ थूकना, तालू सूखना, वमन होना, मन्दाग्नि होना, मद या नशा सा रहना, पीनस, खांसी तथा नींद अधिक आना, आंखें सफेद हो जाना तथा खाने की अत्यन्त इच्छा होना, मैथुन की अत्यंत इच्छा होना। स्वप्नों में कौआ, तोता, सेह, नीलकण्ठ, गीध, वन्दर, गिरगट पर अपने को सवार देखना, नदियों को पानी से रहित देखना और सूखे हुए वृक्षों को देखना अथवा आंधी, धुंआं, अग्नि से गिरते हुये और जलते हुये वृक्षों को देखना।

रूप—

तीन लक्षण वाला व छः लक्षण वाला व ११ लक्षण वाला इस प्रकार राज यक्ष्मा के तीन रूप या तीन अवस्थाऐं आयुर्वेदीय ग्रन्थों में बताई गई हैं जो नीचे लिखी जाती हैं।

तीन लक्षण वाली प्रथमावस्था—इसमें कंधों तथा दनों पखवाड़ों में दर्द रहता है, हाथ पैरों का तपते रहना तथा सारे शरीर में ज्वर रहना ये तीन लक्षण हों तो राज

यक्ष्मा की प्रथमावस्था समझो।

छः लक्षण वाली द्वितीयावस्था—अग्नि मन्द हो जावे, ज्वर रहे, शीत लगे, खून और पीप की वमन हो, शक्ति या बल नष्ट हो जाय, शरीर सूखता जाय। ये छः लक्षण

हों तो राज यक्ष्मा की द्वितीयावस्था समझो ।

ग्यारह लक्षण वाली तृतीयावस्था—यदि राजयक्ष्मा उग्र हो तो उसमें वात पित्त कफ तीनों दोनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं । वायु से स्वर भेद (गला बैठना) शूल रहना, कंधों तथा पसवाड़ों का सिकुड़ जाना ये तीन लक्षण होते हैं । पित्त से ज्वर रहना, दाह, अतिसार तथा नाक, मुंह आदि से रक्त निकलना ये चार लक्षण होते हैं । कफ के कुपित होने से शिर का भारी रहना, भोजन की इच्छा न होना (अरुचि), खांसी आना, कंठ का कफ से भरा रहना जिससे ठीक आवाज न निकलना ये चार रूप होते हैं । ये सभी ११ रूप यदि किसी रोगी में हो जांय तो समझो कि यह त्रिदोषज राज-यक्ष्मा है ।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के निम्नांकित छः लक्षण भी होते हैं । यथा—

भक्त द्वेषो ज्वरः कासः श्वासः शोणित दर्शनम् ।
स्वरभेदश्च जायन्ते षड्रूपे राज यक्ष्मणि ॥

अर्थ—भोजन में अरुचि, ज्वर, खांसी, श्वास, खून का मुंह से निकलना, स्वर भेद (गला बैठना) ये छः लक्षण भी राजयक्ष्मा के होते है ।

राजयक्ष्मा की साध्यसाध्यता—

पूर्वोक्त ग्यारह लक्षणों से युक्त अथवा खांसी, अतिसार, पसलियों में दर्द, स्वरभेद, अरुचि तथा ज्वर इन छः लक्षणों से युक्त अथवा ज्वर, खांसी तथा खून निकलना इन तीन लक्षणों से युक्त राज यक्ष्मा के रोगियों की चिकित्सा सुयश चाहने वाला वैद्य न करे । क्योंकि आयुर्वेदीय मतानुसार ऐसा रोगी असाध्य है । यदि सभी त्रिदोषज ग्यारह लक्षण हों या पूर्वलिखित छः लक्षण हों अथवा पूर्वोक्त तीन लक्षण युक्त राज यक्ष्मा हो और साथ ही मांस क्षय हो गया हो तथा बल नष्ट हो तो ऐसी क्षीणता से युक्त रोगी का इलाज न करे । परन्तु यदि मांस और बल क्षीण न हुआ हो तो चाहे तीन, छः या ग्यारह लक्षण ही क्यों न हों तो भी रोगी की चिकित्सा करे ।

यदि राज यक्ष्मा का रोगी खाना तो बहुत खाये पर वह फिर भी सूखता जाये, अतिसार भी हो तथा जिसके अण्डकोष और पेट फूल गया हो ऐसे राज यक्ष्मा रोगी को भी असाध्य समझ कर चिकित्सा न करे ।

जो रोगी जितेन्द्रिय हो, जिसकी अग्नि दीप्त हो, जो कृश (दुबला पतला) न हो तथा नया ही रोगी हुआ हो ऐसे रोगी का इलाज करे । परन्तु जिसकी आंखें श्वेत हो गई हों अन्न द्वेष करता हो, ऊर्ध्व श्वास से दुःखी हो रहा हो तथा बड़ी कठिनता से जो बहुत अधिक पेशाब करता हो ऐसे रोगी को राज यक्ष्मा रोग मार देता है ।

इसके अतिरिक्त व्यवाय शोष, शोक शोष, व्यायाम शोष, अध्व शोष, व्रण शोष तथा उरः क्षत शोष—ये शोष रोग के भेद शास्त्रों में कहे गये हैं । ये धातुओं को क्षय करने वाले होने से क्षय ही कहे जाते हैं । इनके पृथक-२ लक्षण नीचे लिखे जाते हैं—

व्यवाय शोष रोगी (अति मैथुन जन्य रोगी) वीर्य के क्षय होने के लक्षणों से युक्त होता है । वीर्य क्षय के लक्षण इस प्रकार हैं—मैथुन में शक्ति न होना, लिंग तथा अण्डकोषों में दर्द होना, देर से वीर्य का निकलना और निकलने पर भी थोड़ा वीर्य या रक्त निकलना, शरीर का पाण्डुरंग का हो जाना । इस प्रकार वीर्य के क्षय होने से वीर्य से पहली पहली मज्जा आदि धातुयें तथा पूर्व क्रम से क्षीण हो जाती है । इसे व्यवाय शोष कहते हैं ।

शोक शोष रोगी—सदा ध्यानमग्न रहता है, उसके अंग ढीले ढीले हो जाते हैं तथा पूर्व लिखित व्यवाय शोषी के समान हो चिन्तित तथा वीर्य क्षय के विकारों से युक्त होता है ।

क्षीण वीर्य पुरुष के लक्षण—शरीर दुर्बल रहना, मुख सूखना, पाण्डु रंग होना, शरीर सन्न रहना, सिर में चक्कर आना, नपुंसक हो जाना, वीर्य स्वयं अजान में ही निकल जाना ये सब शुक्र क्षय के लक्षण है ।

वार्धक्य (जरा, बुढ़ापा) शोष रोगी—कृश हो जाता है, मन्द वीर्य, मन्द बुद्धि, मन्द बल तथा मन्द इन्द्रियों वाला हो जाता है अर्थात् इन्द्रियों की शक्ति मन्द हो जाती है । शरीर कांपता है, अरुचि हो जाती है, टूटे हुये कांसी के बरतन के समान स्वर टूट जाता है । बिना कफ का थूक थूकता है । गौरव तथा अरुचि से पीड़ित रहता है । आंख, कान, मुख से पानी निकलता रहता है । मल सूखा हुआ तथा सूखा सा निकलता है ।

अध्व शोष के लक्षण—जो रास्ता अधिक चलने से थककर शोष रोग से ग्रसित हो जाय, उसके अंग-प्रत्यंग ढीले हो जाते हैं । भुने हुए कठोर पदार्थ के समान शरीर

का वर्ण हो जाता है। सरीर के अंग-प्रत्यंग सोये हुये से रहते हैं; क्लोम, गला तथा मुख सूखा हुआ सा रहता है।

व्यायाम शोप के लक्षण—इसके लक्षण भी अध्व शोप के लक्षण के समान ही होते हैं तथा बिना छाती आदि में क्षत होने पर भी उसके लक्षण आगे कहे जाने वाले उरःक्षत रोग के लक्षणों के समान होते हैं।

व्रण शोप रोग के लक्षण –कोई क्षत (घाव) या नासूर होने से जब रक्त अधिक मात्रा में शरीर से निकल जाय तब पीड़ा से तथा आहार न खाने से रस, रक्त आदि धातुओं का क्षय होता है जिससे शरीर में शोप रोग हो जाता। ऐसे व्रण रोगी का शोप असाध्यतम होता है।

उरःक्षत के कारण व लक्षण—

अत्यन्त साहस के कार्य करने से उरःक्षत होता है, जैसे धनुप को अधिक खींचने से, भारी भार उठाने से, बलवान पुरुषों से युद्ध करने से, ऊँचे स्थान से तथा विषम स्थान से गिर जाने से, सांड़, घोड़े या अन्य दौड़ते हुये पशु को बलपूर्वक रोकने से तथा पत्थर, लकड़ी तथा शिला के टुकड़ों को जोर-२ से फेंककर दूसरों को मारने से, अति ऊँचे स्वर से पढ़ने से अथवा दूर तक तेज चलने से या महा नदियों को तैरने से या घोड़ों के साथ-२ दौड़ने से, एकदम दूर छलांग लगाने से या तेजी से अति नाचने से या अन्य भयंकर कर्मों से छाती को बारम्बार चोट पहुंचने से या अति स्त्री भोग भोगने से तथा रुखा, सूखा, थोड़ा अत्यन्त माप कर खाना खाने से, इनमें से किसी प्रकार से अथवा छाती में सख्त चोट लगने से छाती फट जाती है यानी छाती में घाव हो जाता है और उरःक्षत की बलवान व्याधि प्रकट हो जाती है।

इससे छाती में अत्यन्त पीड़ा होती है, टूटती सी है, जलती सी है। फिर दोनों पसवाड़े में पीड़ा होती है। शरीर सूखने लगता है तथा कांपता है। क्रम से वीर्य, बल, रंग, रुचि तथा अग्निमन्द हो जाती हैं। ज्वर हो जाता है, पीड़ा होती रहती है, मन दीन हो जाता है। मल टूट कर पतला आता है तथा अग्नि नष्ट हो जाती है। दुष्ट, काला, दुर्गन्धयुक्त, पीला, गांठदार, बहुतसा खून मिला हुआ कफ-खांसी आते-२ निकल जाता है। इसके साथ ही वीर्य तथा ओज के अत्यन्त क्षीण होने पर वह क्षत रोग वाला अति क्षीण हो जाता है। छाती में दर्द होना, खून का वमन होना, खांसी होना ये विशेप करके उरःक्षत के लक्षण हैं। जब रोगी क्षीण हो जाता है तब रक्त सहित मूत्र आता है तथा पसवाड़ों, पीठ तथा कमर में जकड़न सी हो जाती है। यदि रोग के लक्षण थोड़े से प्रकट हुये हों तथा रोगी की जठराग्नि दीप्त हो, रोगी बलवान हो तथा रोग नया हो तब तो रोग साध्य होता है। एक वर्ष यदि हो चुका हो तो रोग याप्य है और यदि सभी लक्षण प्रकट हो चुके हों तो असाध्य समझना चाहिये।

शोप रोग की मर्यादा—यदि जवान शोप रोग से पीड़ित रोगी उत्तम वैद्यों से इलाज कराके जीवे तो एक एक हजार दिन तक जी सकता है ऐसा शास्त्र का मत है। अर्थात् तरुण शोप रोगी उत्तम वैद्यों से इलाज कराकर यदि एक हजार दिन तक जी जाता है तो फिर जी जाता है अर्थात् फिर इस रोग से बच जाता है।

राजयक्ष्मा पर पाश्चात्य मत

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में इसको जीवाणुजन्य संक्रामक, छूत का रोग माना गया है। इसके उत्पन्न करने वाले जीवाणु का नाम यक्ष्मा दण्डाणु या ट्यूबरकल बेसलाई या माइकोबेक्टीरियम ट्यूबरक्लोसिस है। यह दुर्बल फेफड़ों में अपना घर बना लेता है और यह बीमारी पैदा हो जाती है। वंशगत दोप से अर्थात् माता पिता को अगर राजयक्ष्मा की बीमारी रहती हैं तो उनकी सन्तान को भी हो जाती है। पुराना ब्राकाइटिस (वायुनली भुज प्रदाह, जीर्ण कास), फेफड़ों में गुटिका दोप, फेफड़ों की धमनी में खून के थक्के अटकना, बार बार प्रतिश्याय (सर्दी-जुकाम) होना, सीड़ भरी और तर जमीन में रहना, रुई, पाट की धूल आदि का लगातार फेफड़ों में प्रवेश करना, बहुत ज्यादा धातुओं का क्षय, अधिक शराब पीना, रात्रि में जागरण करना आदि कारणों से यह बीमारी हो जाती है।

यक्ष्मा दण्डाणु का उपसर्ग मनुष्य शरीर पर अनेक प्रकार से होता है। यथा—फेफड़ों की राजयक्ष्मा वाले रोगी का यक्ष्मा दण्डाणु युक्त कफ और थूक इधर-उधर थूकने से सूख जाने पर चूर्ण रूप होकर धूल में मिल जाता है और धूल के साथ उड़कर उसमें रहते हुए यक्ष्मादण्डाणु अन्य व्यक्तियों के श्वास मार्ग में प्रवेश करके रोग पैदा करते हैं। इसी प्रकार यक्ष्मा रोगी का कफ व थूक घास

फूस पर पड़ने से घास में यक्ष्मा के कीड़े प्रविष्ट हो जाते हैं और उस घास को जब गाय खाती है तो गाय भी रोगाक्रान्त हो जाती है। फिर उस गाय का दूध विना पकाये पीने वाले व्यक्तियों के पचन संस्थान में यक्ष्मा दण्डाणु पहुंच कर रोग को उत्पन्न कर देते हैं। इसके अतिरिक्त चुभन, खाँसी, संक्रमित खाद्य-पेय, संक्रमित वस्त्र (त्वचागत व्रणों के मार्ग से) विन्दूत्क्षेप आदि से भी संक्रमण होता है। गर्भिणी को यह रोग होने पर गर्भस्थ शिशु प्रायः रोग मुक्त ही रहता है किन्तु जन्म के वाद दुग्ध आदि के द्वारा संक्रमण हो जाता है, वैसे अपरा द्वारा भी संक्रमण हो सकता है।

यक्ष्मा दंडाणु अत्यन्त सहिष्णु एवं दीर्घजीवी होते हैं। मनुष्य शरीर के वाहर और भीतर अत्यन्त विषम परिस्थियों में भी ये दीर्घ काल तक जीवित रहते व रोग उत्पन्न करने में समर्थ रहते हैं। शरीर में रोग नाशक क्षमता पर्याप्त अंशों में विद्यमान होने पर ये लक्षण उत्पन्न नहीं कर पाते या साधारण लक्षण उत्पन्न करते हैं और गुप्तरूप से निवास करते हुये क्षमता नाश होने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। कालान्तर में वे या तो स्वयं नष्ट हो जाते हैं या कारण वश क्षमता में कमी आने पर या वाहर से वड़ी संख्या में नये यक्ष्मादण्डाणु का प्रवेश होने पर रोगोत्पत्ति करते हैं। जब ये थोड़ी संख्या में वार वार शरीर पर आक्रमण करते हैं और शरीर में गुप्त रूप से निवास करते हैं तो उस समय क्षमता की उत्पत्ति भी होती है। इस प्रकार वहुत से लोगों में यक्ष्मा दण्डाणु का उपसर्ग होने पर भी वे यक्ष्मा से पीड़ित नहीं होते। परन्तु इस प्रकार से उत्पन्न क्षमता पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि अनेक कारणों से इसमें कमी आ सकती है और शरीर के भीतर उपस्थित अथवा वाहर से आये हुए यक्ष्मा दंडाणु रोगोत्पत्ति कर सकते हैं। इसीलिये यक्ष्मा दण्डाणु से वचना तथा उचित आहार विहार के द्वारा शरीर को वलवान बनाये रखना ही इस रोग से वचने का सर्वोत्तम साधन है।

निम्नलिखित परिस्थितियां इस रोग को उत्पन्न करने में सहायक होती हैं—

(१) वंश परम्परा गत—कुछ कुटुम्वों में यह रोग विशेष रूप से पायाजाता है। इसका कारण या तो वंश परम्परागत रोग ग्राहकता है या रोगी के सम्पर्क में रहने से और क्षमता में कमी होने से संक्रमण हो जाता है। यक्ष्मा से ग्रस्त रोगी स्त्री पुरुष प्रायः सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाते हैं और यदि सन्तान होती भी है तो जन्म काल में उसके शरीर में क्षय कीटाणु प्रायः नहीं मिलते। यदि उस समय उसे अलग कर लिया जाय तो प्रायः वह रोगोत्पत्ति से वचा रह सकता है।

(२) जाति—कुछ जातियाँ विशेष रूप से आक्रान्त होते पायी जाती है। यदि किसी नई जाति के लोगों में इस रोग का आक्रमण होता है तो उनमें यह वड़ी तेजी से फैलता है।

(३) लिंग—पुरुष अधिक संख्या में इस रोग से पीड़ित होते हैं किंतु युवा रोगियों में महिलाओं की संख्या अधिक पायी जाती है। ऐसा मत है कि गर्भ धारण करने से, वच्चे को दूध पिलाने आदि से रोगरोधक क्षमता में कमी आजाने से ही स्त्रियों पर इसका आक्रमण अधिक होता है।

(४) आयु—यह रोग किसी भी आयु में हो सकता है किंतु वच्चे और जवान इस रोग से अधिक आक्रान्त होते हैं।

(५) धंधा—रुई, पाट आदि के कारखानों में और खरादों में काम करने वाले व्यक्ति अधिकतर इस रोग से आक्रांत होते हैं। शक्ति से अधिक परिश्रम करने से और पौष्टिक पदार्थों के सेवन न करने से भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

(६) निवास स्थान का प्रभाव—सील भरे, अंधेरे, संकीर्ण, थोड़ी जगह में अधिक लोगों का रहना तथा गंदे स्थानों के निवासियों पर इसका आक्रमण अधिकतर देखा जाता है।

(७) निर्वल स्वास्थ्य व धातु क्षय—वात श्लेष्मज्वर (इन्फ्लूएञ्जा), काली खांसी (हूपिंग कफ), रोमान्तिका, प्ल्यूरिसी, आन्त्रिक ज्वर (टायफायड फीवर) आदि रोगों के आक्रमण के पश्चात तथा जीर्ण विषम ज्वर, जीर्ण काल ज्वर, मधुमेह, मदात्यय, फिरङ्ग रोग, हृद्रोग, विटामिन (जीव तिक्ति) की कमी, अनशन, अत्यधिक परिश्रम, सग-

र्भावस्था, दुग्ध पिलाने आदि के कारण निर्बलता की दशा में इस रोग के आक्रमण की संभावना अधिक रहती है।

यक्ष्मा दण्डाणु आमाशय को छोड़कर शरीर के किसी भी अङ्ग में रोग पैदा कर सकते हैं। जिस अङ्ग पर रोग का प्रभाव पड़ता है रोग का नाम उस प्रभावित अंग का नाम जोड़कर रखा जाता है। जैसे फेफड़ों पर रोग का प्रभाव पड़ने पर फौफ्फुसीय राजयक्ष्मा (फेफड़ों की क्षय), आंतों पर रोग का प्रभाव पड़ने पर आन्त्रिक राजयक्ष्मा (आंतों की क्षय), त्वचा पर रोग का प्रभाव होने पर त्वचागत राजयक्ष्मा, हड्डियों पर यक्ष्मा का आक्रमण होने पर अस्थिगत राजयक्ष्मा (हड्डियों की क्षय) आदि।

सभी स्थानों पर लगभग एक ही प्रकार की विकृति उत्पन्न होती है परन्तु अलग अलग स्थानों की यक्ष्मा के लक्षणों में बहुत अधिक अन्तर होता है। जब शरीर के किसी भी अंग में यक्ष्मा दंडाणु पहुंच कर स्थित होजाते हैं वहां की धातुओं में प्रतिक्रिया होकर अनेक प्रकार के कणों की उत्पत्ति होती है जो यक्ष्मा दण्डाणु को चारों ओर से घेर कर एक ग्रन्थि (गांठ) बना देते हैं। ये ग्रन्थियां इतनी सूक्ष्म होती हैं कि इनको आंखों से नहीं देख सकते केवल सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से ही देखी जा सकती हैं। इनका नाम 'यक्ष्मि' (क्षय की गांठ) है जिसे ऐलोपैथी में ट्यूबरकिल कहते हैं। इस प्रकार की अनेक यक्ष्मियों के मिलने से एक धूसर यक्ष्मि बनती है जो सरसों के बराबर आकार में होती है। इनका आकार क्रमशः बढ़ता रहता है तथा यक्ष्मा दंडाणु से उत्पन्न होने वाले विष के प्रभाव से तथा रक्त संचालन में बाधा पहुंचने क्षय ग्रंथि (यक्ष्मि) के भीतर स्थित पदार्थ एक पीले चिपचिपे पदार्थ (जिसे किलाट कहते) में बदल जाते हैं। इसे किलाटी भवन कहते हैं। इससे यक्ष्मि का रंग पीला हो जाता है इसीसे इसे पीत यक्ष्मि कहते हैं। यह पीत यक्ष्मि काफी बड़ी होती है। कभी कभी इसका व्यास १-२ तक हो सकता है। किलाटी भवन के बाद द्रवीभवन और पाक होता है जिससे विवर (गड्ढे, केविटी) बन जाते हैं या सौत्रिक तन्तुओं की उत्पत्ति होकर और चूने (कैल्शियम) का अन्तर्भरण होकर रोपण हो जाता है।

यक्ष्मि के आस पास के अंगों में रक्ताधिक्य हो जाता है और प्रदाह भी हो सकता है। आस पास की रक्तवाहिनियों की दीवारें मोटी हो जाती हैं जिसके कारण उनकी नलियां संकुचित हो जाती हैं और कभी कभी उनमें रक्त जम भी जाता है।

राजयक्ष्मा कई प्रकार का होता है जिनका विवरण नीचे लिखा जाता है।—

(१) श्यामाकीय राजयक्ष्मा जिसके निम्नलिखित भेद हैं—

(अ) तीव्रश्यामाकीय राजयक्ष्मा (आशुकारी पिड़िकामय राजयक्ष्मा), आन्त्रिक प्रकार या आन्त्रिक ज्वर सदृश प्रकार (टाइफाइड टायप) श्वासमार्गीय प्रकार अथवा फुफ्फुस नलिका प्रदाह प्रकार, मस्तिष्कावरणीय प्रकार या राजयक्ष्मा जन्य मस्तिष्कावरण प्रदाह।

(ब) अनुतीव्र श्यामाकीय राज यक्ष्मा।

(स) चिरकारी श्यामाकीय राजयक्ष्मा।

(२) फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा जो निम्नांकित दो प्रकार की होती है—

(अ) तीव्र फुफ्फुस प्रदाही राज यक्ष्मा।

(ब) चिरकारी फौफ्फुसीय राज यक्ष्मा।

इन उपरोक्त प्रकारों में से केवल फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा का वर्णन व चिकित्सा प्रस्तुत लेख में दी जायेगी।

तीव्र फुफ्फुस प्रदाही राजयक्ष्मा—यह रोग अत्यन्त तेजी से बढ़ता है, लक्षण गंभीर होते हैं और अधिकतर मारक होता है। इसका प्रभाव बालकों और वयस्कों पर समान रूप से पड़ता है। जब यक्ष्मा दंडाणु बड़ी संख्या में फेफड़ों में प्रवेश कर जाते हैं और शरीर में रोगरोधक क्षमता की अत्यन्त कमी हो जाती है तो इसकी उत्पत्ति होती है। सर्व प्रथम फेफड़े शिखर पर रोग का हमला होता है। ३-४ महीने बाद फेफड़े शिखर के नीचे वाले अंश में और दो तीन महीने बाद और भी नीचे के अंश पर इस तरह १०-१२ महीनो के भीतर ही समूचा फेफड़ा रोगग्रस्त हो जाता है और इसके बाद क्रमशः एक फेफड़े से दूसरे फेफड़े पर भी रोग जा पहुंचता है। फेफड़ों में सरसों के आकार की असंख्य यक्ष्मियां (क्षय ग्रन्थियां उत्पन्न होती हैं तथा रक्ताधिक्य, शोथ एवं संघनन होता है। प्रारम्भ में साधारण प्रतिश्याय या श्वास नलिका

प्रदाह होता है जो आगे चल कर फुपफुस नलिका प्रदाह का रूप धारण कर लेता है। ज्वर १०२ से १०४ तक रहता हैं। ज्वर की अपेक्षा नाड़ी और श्वास की गतियां अधिक तीव्र होती हैं। श्यावता भी उपस्थित रहती है। लगभग १ से ६ सप्ताह में मृत्यु हो जाती है। अधिक श्वास कष्ट, श्यावता और अधिक धातुक्षय इसकी विशेषतायें हैं। तापक्रम में अधिक चढ़ाव उतार होते हैं और पसीना आता है। यदि शीघ्र ही मृत्यु न हो तो रोग का समय सामान्य फुपफुस प्रदाह की अपेक्षा लम्बा होता है और फ़ेफड़ों में विवर बन जाते हैं। कफ में यक्ष्मा दंडाणु पाये जाते हैं।

इसमें रोगी के जीवन का कोई भरोसा नहीं रहता है। किसी भी समय मृत्यु आकर उसको अपना ग्रास बना सकती है। जो इससे बच जाते हैं उनको चिरकारी फौपफुसीय राजयक्ष्मा हो जाता है।

चिरकारी फौपफुसीय राजयक्ष्मा—आयुर्वेदीय ग्रंथों में जिस राजयक्ष्मा का वर्णन है वह यही है। इस रोग में फेफड़ों में व्रणों की उत्पत्ति और रोपण दोनों क्रियायें साथ साथ चलती रहती हैं अर्थात् रोग और शरीर की प्रतिकारक क्षमता में निरन्तर युद्ध चलता रहता है। कभी कोई जीतता है और कभी कोई। इस प्रकार कभी लक्षणों का उपशमन होता है और कभी पुनराक्रमण होता है।

इसकी चार अवस्थायें निम्नलिखित होती हैं—

प्रथमावस्था में यक्ष्मा दंडाणु के प्रविष्ट होने से फेफड़ों में ट्यूबरकल डिपाजिट अर्थात क्षय ग्रन्थियां हो जाती हैं। यह यक्ष्मा की पहली अवस्था है। यक्ष्मा दंडाणु फेफड़ों के किसी भी भाग की सूक्ष्म श्वास नलिकाओं के छोरों पर अवस्थित हुआ करते हैं। विशेषकर फेफड़ों के ऊपरी पिण्ड और विशेषत: दाहिने फेफड़े में यह क्रिया साधारणत: होते पाई जाती है।

द्वितीयावस्था—इसमें डिपाजिट वाले स्थान कड़े और ठोस होजाते हैं और इनमें प्रदाह होता है। निमोनिया की दूसरी अवस्था में फेफड़ा ठीक इसी तरह ठोस होजाता है) यही थाइसिस की दूसरी अवस्था है जिसको अंग्रेजी में कान्सोलिडेशन स्टेज कहते हैं।

तृतीयावस्था—कुछ दिनों तक इस तरह रहने पर ठोसपन का भाव चला जाता है और वहां छोटे छोटे गड्ढे (केविटी) होने लगते हैं। इन गड्ढों में फेफड़ों का क्षय हुआ अंश, पीव आदि संचय होता है। यह क्षय की तीसरी अवस्था है। इसमें पीड़ित भाग गल कर तरल हो जाता है और किसी बड़ी श्वास नलिका की राह से कफ के साफ निकल जाता है तथा उस स्थान पर विवर बन जाता है। फिर क्रमश: अन्य स्थानों पर भी यही क्रिया होती है। रोग प्रसार समीपस्थ भागों पर प्रत्यक्ष रीति से और दूरस्थ भागों में लसीका वाहिनियों व रक्त वाहिनियों तथा श्वास नलिकाओं के द्वारा परोक्ष रीति से होता है।

चतुर्थावस्था—इस अवस्था में रोगी के मुंह से फेफड़े के ये सब क्षय हुए अंग, पीव आदि बलगम के साथ साथ निकला करते हैं यह चौथी अवस्था है। रोगी खाट से उठ बैठ नहीं सकता, फेफड़े बहुत निर्बल हो जाते हैं। जब खांसी उठती है तब एकदम बदबूदार भारी कफ बाहर निकल पड़ता है। शिर पर पसीना आता है, हांफता रहता रहता है। जिस तरफ का फेफड़ा ज्यादा निर्बल या बिगड़ा होता है उस ही फेफड़े के दबने से खांसी बड़ी जोर से उठती है जिससे रोगी उस करवट से सो नहीं सकता, मूत्र के साथ धातु अधिक निकलती है, दस्त पतले आते, भूख मारी जाती, कभी कभी खून का दौरा भी पड़ता, मृत्यु के कुछ दिन पूर्व पांवों पर सूजन आजाती है, सुस्ती अधिक रहने लगती है।

रोग यदि अधिक दिनों तक रह जाता है तो फेफड़ों के अलावा दूसरे-२ अङ्ग जैसे फुफ्फुसावरक झिल्ली (प्ल्यूरा), आंतों को ढंकने वाली झिल्ली (पेरीटोनियम), लसीका ग्रन्थियां, वृक्क (गुर्दा, किडनी) मस्तिष्क, स्वरयन्त्र, आंतें, पाकस्थली, यकृत प्लीहा आदि पर बीमारी का आक्रमण होजाता है। इसको मिलियरी ट्यूबरक्लोसिस कहते हैं।

साध्यासाध्यता की विवेचना के लिए रोग की तीन अवस्थायें मानी गई हैं—

प्रथमावस्था—यदि विकृति एक ही फेफड़े में हो और दूसरी पसली से ऊपर के भाग में हो और यदि दोनों फेफड़ों में हो तो केवल थोड़ा सा ऊपरी भाग ही आक्रांत हो। प्रारम्भिक अन्तर्भरणी क्रिया चल रही हो ओर रोगी चलता फिरता हो और उसको ज्वर हो।

द्वितीय अवस्था—यदि एक ही फेफड़ा आक्रांत हो तो विकृति चौथी पसली से नीचे न फैली हो और यदि दोनों

फेफड़े आक्रांत हों तो विकृति दूसरी पसलियों से ऊपर के स्थानों में ही सीमित हो। घनीभवन हो चुका हो और किलाटी भवन की क्रिया प्रारम्भ हो रही हो तथा रोगी को चलने फिरने व कुछ परिश्रम करने पर भले ही ज्वर आजाता हो किन्तु लिटाकर आराम करने पर ज्वर न हो तो द्वितीयावस्था समझो।

तृतीयावस्था—रोग अधिक बढ़ गया हो, विवर बन चुके हों, लिटाकर आराम करने पर भी ज्वर रहता हो तो इसे तृतीयावस्था कहेंगे।

प्रथमावस्था साध्य द्वितीयावस्था, कष्टसाध्य, तृतीयावस्था अत्यन्त कष्टसाध्य या असाध्य होती है।

रोग का आरम्भ अनेक प्रकार से होता है—

(१) अधिकांश रोगियों में प्रतिश्याय (जुकाम) होकर यह रोग उत्पन्न होता है। रोगी जुकाम विगड़ जाने की शिकायत करता है। वारम्वार प्रतिश्याय होना और जल्द अच्छा न होना, खांसी अधिक आना और खांसी के साथ ही श्वास फूलना तथा रक्त आना तथा ज्वर भी हो जाना।

(२) कुछ रोगियों में फुफ्फुसावरण प्रदाह (प्लुरिसी) होने के बाद रोग उत्पन्न होता है।

(३) गण्डमाला रोग अधिकतर फौफ्फुसीय राजयक्ष्मा में परिवर्तित हो जाता है।

(४) कभी कभी ज्वर आजाना और साधारण उपचार से उसका चला जाना और फिर आजाना परन्तु भूख कम हो जाना और खांसी भी आने लगना और रात को खांसी जोर से उठना और ज्वर थोड़ा बहुत हर समय बना रहना।

(५) रुई, ऊन की-धुनाई की मिल्स आदि में जहां गर्दगुबार अधिक उठती हो, काम करने वालों की नासिका द्वारा गर्दगुबार गले में पहुँचने से सर्व प्रथम खांसी होजाती है गला दुखने लगता है। ऐसी हालत में अगर कोई गरम दवा पहुँच जाती है तो खांसी खुश्क हो जाती है, गले में खराश पड़ने लगते हैं। खांसते २ कफ के साथ खून भी आने लगता है।

(६) अधिक दिनों तक गले में कष्ट रहना अर्थात् गले में दर्द, बोलने में कष्ट तथा स्वर भंग रहना आदि यक्ष्मा के उत्पन्न होने के परिचायक लक्षण हैं। जो यक्ष्मा दण्डाणु श्वास मार्ग द्वारा शरीर में प्रविष्ट होते हैं वे सर्व प्रथम गले में ही निवास करते हैं। उसके बाद फेफड़ों में जाते हैं और रोग उत्पन्न करते है।

(७) बहुत से रोगियों में सर्व प्रथम फेफड़ों से अचानक रक्तस्राव होता है और उसके बाद यक्ष्मा के अन्य लक्षण भी शीघ्रता से उत्पन्न हो जाते हैं।

(८) कभी कभी विषम ज्वर राजयक्ष्मा में परिवर्तित हो जाता है। यदि विषम ज्वर सामान्य चिकित्सा से निश्चित अवधि में शान्त न हो तो राजयक्ष्मा का संदेह करना चाहिए।

(९) कभी कभी इस रोग का प्रारम्भ अजीर्ण के लक्षणों और रक्त क्षय के साथ होता है। अजीर्ण के लक्षणों में अम्ल वमन, अम्लोद्‌गार, आध्मान आदि मुख्य हैं और रक्त क्षय में शरीर उत्तरोत्तर कमजोर होते जाना, दिल में धड़कन, भोजनोपरांत कुछ ज्वर की ऊष्मा बढ़ जाना, स्त्रियों में आर्तव क्षय या अनार्तव होना प्रमुख लक्षण हैं। नवयुवतियों और बालकों में अधिकतर ऐसा होता है।

(१०) कभी-कभी अत्यन्त गुप्त रूप से बढ़ता है। शुरू में कोई लक्षण उत्पन्न नहीं होते और जब फेफड़ों में काफी बड़े विवर (गड्ढे) बन जाते हैं तब रोगी को रोगी का ज्ञान होता है।

(११) प्रमेह का विधिवत इलाज न होने से निर्बलता बढ़ जाती है। ऐसी हालात में यदि बार-बार प्रतिश्याय (जुकाम) होजाता हो और साथ ही खांसी भी हो तथा ज्वर भी रहने लगे, हाथ,पांव तथा आंखों में जलन हो, भूख कम होती जाती हो तो समझो कि राजयक्ष्मा का प्रकोप हो गया है।

(१२) किसी किसी को अधिक भोजन करने पर भी शरीर में वृद्धि नहीं होती दुर्बलता बढ़ती जाती है, चेहरा पीला पड़ जाता है, स्वप्नदोष हो जाता हो। रात्रि को या दिन को दो एक दस्त भी पतले हो जाते हों तो राज यक्ष्मा ही समझना चाहिये।

(१३) स्त्रियों में प्रदर रोग होना भी राज यक्ष्मा का कारण बन जाता है, जिससे निर्बलता बढ़ जाती है

और वाद में ज्वर तथा खांसी भी हो तो राज यक्ष्मा प्रकट हो जाता है।

(१४) कभी कभी वच्चा पैदा होने के वाद, नहाने धोने व सर्दी लग जाने से प्रतिश्याय (जुकाम) हो जाता है और उसी में ज्वर भी आने लगता है। अगर उसका ठीक इलाज न हुआ तो आगे चलकर यही राज यक्ष्मा की वीमारी वन जाती। निर्वलता वढ़ जाती है, ज्वर लगातार रहने लगता है, खांसी, श्वास दुःखी करने लगते हैं। खाया हुआ भोजन पचता नहीं और भूख मारी जाती है।

यक्ष्मा के प्रधान लक्षण—

(१) वक्ष (छाती) में पीड़ा प्रारम्भ से ही हो सकती है, किसी किसी को अन्तिम समय तक नहीं होती है। यह पीड़ा फेफड़ों को ढंकने वाली झिल्ली में प्रदाह होने से होती है। यह तीव्र भी हो सकती है और सामान्य भी हो सकती है। अधिकतर वक्ष के निचले भाग में होती है किसी किसी को कन्धे के पास होती है।

(२) कास—अधिकांश रोगियों में यह सवसे पहले प्रकट होती है और अन्त तक रहती है। शुरू में सूखी उत्तेजक रहती है उसमें जो वलगम निकलता है उसके साथ फेन रहता है। इसके वाद वीमारी धीरे धीरे ज्यों-ज्यों पुरानी होती जाती है त्यों त्यों यह फेन फिर नहीं मिलता,- पीव की तरह पीला या हरे रंग का वलगम (कफ) निकलता है। यह निकला हुआ वलगम पानी में डालने पर बहुत देर तक अलग ही तैरता रहता है। खांसी पहले सूखी खुस खुसी रहती है फिर तर यानी ढीली हो जाती है। पर इसके वाद क्रमशः रोग वढ़ने के साथ ही साथ जितनी पुरानी होती जाती है यक्ष्मा की खांसी प्रायः सभी समय आया करती है। परन्तु प्रातः काल या सोकर उठने के वाद अधिक सताती है। थोड़े से परिश्रम से यहां तक कि हिलने डोलने पर भी खांसी वढ़ती है। कभी कभी इतने वेग से आती है कि वमन हो जाता है और पोषण के अभाव से शीघ्र ही रोगी अत्यन्त कमजोर हो जाता है। जव रोग पूर्ण रूप से होजाता है तो रात्रि में खांसी अधिक आती है जिससे नींद आना कठिन हो जाता है। स्वरयंत्र में भी उपसर्ग हो जाने पर खांसी धसके के रूप में वदल जाती है। अपवादस्वरूप कुछ मामले ऐसे भी मिलते हैं जिनमें एक फेफड़े में विवर वन चुकने पर भी खांसी नहीं होती है। ऐसी दशा में निदान में गड़वड़ी होने की संभावना रहती है। ज्यों ज्यों किलाटी भवन होता है त्यों त्यों कफ (वलगम) अधिक मात्रा में और अधिक पूय युक्त निकलता है। विवर वन जाने पर विशेष प्रकार का थक्केदार हरिताभ धूसर वर्ण का कफ निकलता है जो जल में डालने पर डूव जाता है। उसमें यक्ष्मा दण्डाणु पाये जाते हैं। रोगी के कफ में एक गहरी विशेष प्रकार की मीठी गन्ध पाई जाती है। किन्तु फेफड़ों में सड़ने की क्रिया होने पर दुर्गन्ध आने लगती है।

(३) रक्तष्ठीवन (मुंह से रक्त निकलना)—यह लक्षण रोग की सभी अवस्थाओं में रह सकता है। पहली अवस्था में यह दिखाई देता है कि मनुष्य खूव अच्छा है, घूम फिर रहा है, एकाएक गले में सुरसुरी होने लगी, कुछ थोड़ी सी खांसी आने लगी। इसके साथ ही वहुत ज्यादा परिमाण में खून निकलने लगा। कभी कभी ऐसा भी होता है, कि पहले थोड़ी थोड़ी खाँसी आती है, खांसी के साथ खून के छीटे रहते है। कुछ दिनों तक ऐसा ही हुआ करता है, इसके वाद कुछ दिनों तक वन्द हो जाता है और फिर खून निकलने लगता है। कितनी ही वार इस तरह से खून निकलना ही इस वीमारी का प्रधान लक्षण हो जाता है। कुछ मामलों में रक्तष्ठीवन का कोई स्पष्ट कारण नहीं मिलता किन्तु अन्य में अत्यधिक परिश्रम वक्ष पर आघात आदि कारण मिल सकते है। लगभग सभी प्रकार के रक्तष्ठीवन के मामले राज यक्ष्मा से सम्वन्धित हो सकते हैं। रक्तष्ठीवन के सभी मामलों में विशेषतः नई उम्र वालों में राज यक्ष्मा का सन्देह करना चाहिये। प्रारम्भ की अवस्थाओं में होने वाला रक्तष्ठीवन अधिकतर थोड़े से स्थान में किलाटीभवन होने के कारण या श्वास नलिकाओं की श्लैष्मिक कला का क्षरण होने का कारण होता है। इसमें थोड़ी मात्रा में यानी १५ मि. लि. से कम रक्त निकलता है। यदि अधिक भी निकलता है तो इतना नहीं निकलता कि उसके कारण प्राण संकट की स्थिति हो सके। कभी कभी रक्तष्ठीवन किसी विवर की दीवार में स्थित रक्तवाहिनी का क्षरण होने से या फोपफुसीय धमनी के फटने से होता है। इस दशा में रक्त अधिक निकलता है जो १ पाइन्ट से अधिक हो सकता है और अधिक रक्तस्राव के कारण तत्काल मृत्यु भी हो सकती है।

रक्तष्ठीवन अचानक होता है। एकाएक रोगी को मालूम पड़ता है कि उसके मुँह में कुछ गर्म-गर्म सा खारा पदार्थ आ गया है। जब वह उसे थूकता है तब पता चलता है कि रक्त है। इसके बाद कई दिनों तक थोड़ा-२ खून निकलता रहता है। कुछ रोगियों में खांसी में कफ के साथ रक्त निकलता है। कुछ रोगियों में विवर के भीतर रक्त-स्राव होने पर भी रक्तष्ठीवन नहीं होता।

रक्तष्ठीवन में निकला हुआ रक्त अधिकतर चमकदार लालवर्ण का फेनदार और कफ मिश्रित रहता है। किन्तु जब बड़ी मात्रा में निकलता है तब उसका रंग गहरा हो सकता है। इस रक्तष्ठीवन के रक्त की परीक्षा करने पर यक्ष्मा दण्डाणु अधिकांश मामलों में मिल जाते हैं।
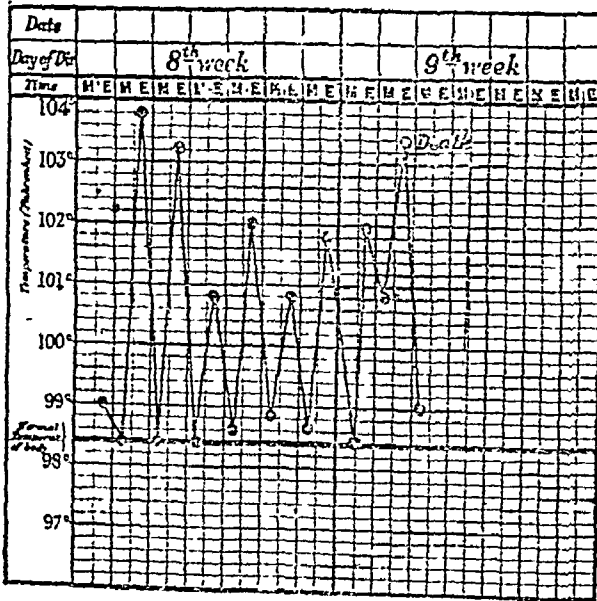
राजयक्ष्मा रोगी का तापमान चार्ट

(४) ज्वर—यक्ष्मा का ज्वर दिन-रात ही बना रहता है। प्रातःकाल बुखार कुछ घटता है। ९९—१०० डिग्री रहता है, पर तीसरे पहर १०१—१०२ डिग्री तक बढ़ जाता है। ज्वर आने के पहले कुछ सर्दी सी मालूम होती है, परन्तु मलेरिया की तरह कंपकंपी नहीं होती, ज्वर भोगने के समय पसीना होता है, बीमारी की पहली अवस्था में पसीना न रहने पर भी अन्तिम अवस्था में बहुत ज्यादा पसीना रात में ही ज्यादा होता है। इसलिए इसे निशाघर्म (रात का पसीना) कहते हैं। ऐसा देखने में आता है कि यक्ष्मा का ज्वर कुछ दिनों तक कुछ घटा रहता है। इसके बाद एकाएक बढ़ जाता है। इसका कारण यह होता है कि जब नयी यक्ष्मा ग्रंथि उत्पन्न होती है, उस समय फेफड़ों में रक्त संचय अधिक हो जाता है, फेफड़ा ठोस हो जाता है, उस समय ज्वर बढ़ जाता है और जब यह कम होता है तो उस समय ज्वर भी घट जाता है। दो-दो घन्टा बाद थर्मामीटर से परीक्षा करते रहने से रोग के घटने बढ़ने का ज्ञान होता रहता है। रोग की द्वितीयावस्था में संतत प्रकार का ज्वर अधिकतर तीव्र फुफ्फुस प्रदाह के कारण होता है।

(५) दौर्बल्य—इसमें रोगी दिनों दिन दुबला होता जाता है। हृदय में धड़कन होती है, शरीर का वजन कम होता जाता है। शरीर की सब पेशियों और चर्बी का क्षय होता है। इसलिए शरीर सूखता जाता है और चमड़ा भी सूख जाता है। किसी रोगी को खुसखुसी खांसी आये और वह दिन प्रति दिन दुबला होता जाय तो समझना चाहिए कि इस पर यक्ष्मा रूपी महाकाल का आक्रमण हो गया है।

यदि किसी रोगी को लगातार खांसी आये, शरीर दिनोंदिन सूखता जाय, देर तक कामकाज करने में असमर्थ होजाय, धीमा-धीमा ज्वर रहने लगे, पाचनशक्ति घट जाय तो यक्ष्मा का सन्देह करना चाहिए और ऐसी दशा में उसके रक्त, फेफड़ों, कफ आदि की विधिवत परीक्षा करा-कर रोग का निर्णय शीघ्रातिशीघ्र कराकर समुचित चिकित्सा करानी चाहिए। एक्सरे द्वारा फेफड़ों का चित्र लेने से तथा वक्ष की स्क्रीनिंग कराने से रोग का निदान सुविधापूर्वक तथा निश्चयात्मक हो जाता है।

इस रोग में उपद्रवस्वरूप स्वरयन्त्र प्रदाह, श्वास नलिका अवरोध, फुफ्फुसावरण प्रदाह, वातोल्वणता, श्वास नलिका प्रसार, फुफ्फुसप्रदाह, लसिका ग्रन्थि प्रदाह, अति-सार, उदरावरण प्रदाह, आमाशय प्रदाह, हृदयावरणप्रदाह, वृक्क, मूत्राशय, अष्ठीला, शुक्र नलिका आदि का राजयक्ष्मा, श्यामाकीय राजयक्ष्मा, कशेरुकीय यक्ष्मा, यकृतविकार आदि रोग हो सकते हैं।

राजयक्ष्मा में वक्ष परीक्षा—

प्रथम अवस्था में कुछ ज्यादा समझ में नहीं आता पर खूब ध्यान से अच्छी तरह देखने पर निम्नलिखित

लक्षण मिलते हैं—

स्टेथिस्कोप से सुनने पर स्वाभाविक शब्द वेसीकुलर मरमर कुछ घट जाता है। इनस्पिरेटरी मरमर यानी श्वास लेने के समय यह शब्द तरंग की तरह होता है और उसके भीतर एक तरह की कुड़ कुड़ आवाज मिलती है। खांसने पर कुछ देर तक यह आवाज नहीं रहती।

आघातन से अर्थात् अंगुली से ठोकने पर स्वाभाविक रेजोनैन्स (प्रतिध्वनि) कुछ घटी हुई मिलती है। उसके अलावा रोगी के पार्श्व में हँसली की हड्डी के नीचे तल हत्थी रख कर परीक्षा करने पर श्वास प्रश्वास की गति हाथ में बहुत कम अनुभव में आती है।

द्वितीयावस्था में फेफड़ा ठोस हो जाता है। स्टेथिस्कोप से सुनने पर वोकल रेजोनैन्स (वोलने की प्रतिध्वनि) बढ़ जाती है। ब्रांकोफोनी (शीशी में फूंकने की तरह की आवाज) वायु नली भुज की प्रतिध्वनि आती है।

आघातन से थोड़ी ठोस आवाज मिलती है।

इसके अतिरिक्त हँसली की हड्डी के ऊपर और नीचे वाले अंश कुछ गड्ढे से होकर नीचे धँस जाते हैं। तल हत्थी में श्वास प्रश्वास की गति का शब्द बहुत कम अनुभव में आता है।

तृतीयावस्था में ठोस भाव चला जाता है और फेफड़े के गड्ढे में तरल रस इकट्ठा होता है। स्टेथस्कोप द्वारा सुनने पर, ब्रांको फोनी (वायु नली भुज की प्रतिध्वनि) ब्रांकियल ब्रीदिंग और नाना प्रकार की घर-घर आवाज मिलती हैं। फूटे बर्तन की सी आवाज आती है। गह्वर यदि कम गंभीर हो तो बुदबुदे फूटने की सी ध्वनि सुनाई देती है।

चतुर्थावस्था—इस अवस्था में फुफ्फुस क्षय होता है। स्टेथिस्कोप द्वारा सुनने पर जहां गड्ढे होते हैं वहां बब्लिंग साउन्ड (बुलबुले फूटने की तरह की आवाज—बुद बुद शब्द) कैवर्नस ब्रीडिंग और ब्रांकोफोनी की आवाजें पाई जाती हैं। कैवर्नस ब्रीडिंग—किसी छेद या किसी खोखली चीज के भीतर से जोर से हवा जाने आने पर जो एक तरह की सों सों आवाज होती होती है उसी तरह का शब्द।

आघातन द्वारा—फेफड़े का जो अंश ठोस रहता है वहां डल साउण्ड और जहां गड्ढा रहता है वहां रेजोनैन्स (प्रति ध्वनि) मिलती है।

ऊपर कही हुई तीसरी और चौथी अवस्था में रोगी के बाहरी अंग देखने पर भी कितने विषम लक्षण मिलते हैं। सीने के ऊपर पसलियों की हड्डियां अलग अलग और नीचे की हड्डी सटी सटी दिखाई देती हैं। फेफड़े अच्छी तरह सिकुड़ और फैल न सकने के कारण सांस खींचने और छोड़ने के समय ऊंचे नीचे नहीं होते। जहां गड्ढा हो जाता है वह स्थान सिकुड़ा रहता है, सीना लम्बा, सँकरा, चपटा दिखाई देता है। हृत्पिण्ड का घात प्रतिघात सीने की दाहिनी तरफ तक पाया जाता है।

क्षय की प्राचीन परीक्षा पद्धति—जिस प्रकार खो खो खेलने में खिलाड़ी घुटनों को मोड़ कर पैर पर बैठते हैं उसी प्रकार रोगी को बिठावें और रोगी अपने दोनों हाथ घुटनों के मध्य (पैरों के मध्य में नहीं) कर हथेलियों को जमीन पर जमाले। अंगुलियां जमीन से चिपकी हुई पर फैली हुई रहें। हथेलियां दोनों पंजों के बीच में रहें तथा हाथ सीधे तने हुये हों। ऐसी स्थिति में बैठ जाने के बाद रोगी से कहिये कि वह अपने हाथों को हथेलियों को और अन्य अंगुलियों को हिलाये बगैर एक अंगुली जमीन से उठाये और फिर उसे जमीन पर रख कर दूसरी अंगुली उठाये। इसी प्रकार एक हाथ की छोटी अंगुली से यह परीक्षा प्रारम्भ होकर दूसरे हाथ की छोटी अंगुली पर समाप्त हो जाती है। इस विधि से बायां हाथ बायें फेफड़े का और दाहिना हाथ दायें फेफड़े का परिचायक होता है तथा अंगुलियां इनमें होने वाली विकृति की परिचायक होती हैं। इसका क्रम ऊपर से नीचे की ओर एक हाथ में तथा दूसरे में नीचे से ऊपर की ओर जाता है। जिस तरफ फेफड़े में विकृति होगी उस तरफ के हाथ की उससे सम्बन्धित अंगुली जमीन से उठेगी नहीं और विकृति नहीं हुई तो सभी अंगुलियां जमीन से उठ जायेंगी।

क्षय रोग को पहचानने के लिये तथा रोग की कमी वेशी जानने के लिये सदैव अपने बल की जांच करनी चाहिये। यदि शरीर की तौल दिन प्रतिदिन कम होती जाती हो तो जान लो कि क्षय रोग का प्रारम्भ हो गया है और रोग धीरे धीरे बढ़ रहा है। यदि शरीर का वजन बढ़ता है तो समझो कि स्वास्थ्य लाभ हो रहा है।

रोग की साध्य असाध्य अवस्था जानने के लिए रोगी के कफ को किसी पानी भरे वर्तन में डालिये। यदि कफ पानी में तैरता रहे तो समझो कि रोग अभी चिकित्सा के योग्य है। अभी कफ के साथ पीव या धातु का आना शुरू नहीं हुआ। यदि कफ पानी में डूव जाय तो रोग का आराम होना कठिन समझो।

फेफड़ों की खरावी जानने के लिये रोगी से कहें कि वह श्वास को भीतर खींचकर खूव भरले और फिर उस श्वास को धीरे २ निकाले और श्वास निकालते हुए धीरे धीरे एक दो तीन गिनती गिनता जाय। यदि उसका श्वास २५-३० गिनती तक छूटता है तो समझो कि उसका फेफड़ा ठीक है और उसकी चिकित्सा करने से वह ठीक हो सकता है।

आयुर्वेद मतानुसार राजयक्ष्मा चिकित्सा—

जिन कारणों से राजयक्ष्मा उत्पन्न हुआ है उन कारणों को दूर कर देना ही इसकी सर्व प्रथम चिकित्सा है। इस रोग के चार कारण जो प्रारम्भ में वताये गये हैं उनका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। मल और वीर्य की रक्षा पूर्णरूप से सावधानीपूर्वक करनी चाहिए। यह चिकित्सा का मूल सिद्धांत है। इसके लिए शास्त्र का कहना है कि—

मलायत्तं वलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवनम्।
तस्माद्यत्नेनसंरक्षेत यक्ष्मिणो मलरेतसी॥

जिसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यों का वल मल के आधीन है और जीवन वीर्य के आधीन है। इसलिये क्षय रोगी को इन दोनों की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए।

चिकित्सक को यह भी चाहिये कि उपद्रवों की चिकित्सा करते हुए यह भी देखते रहें कि रोगी नित्यप्रति निर्वल तो नहीं होता जा रहा है। वल की जांच के लिये रोगी का वजन हर सप्ताह करता रहे। यदि वजन वढ़ता रहे तो समझना चाहिये कि रोग खत्म हो रहा है। यदि वजन कम होने लगे तो समझना चाहिये कि रोग वढ़ रहा है और दवा से लाभ नहीं हो रहा है। यक्ष्मा रोगी की जीवन की आशा तभी तक रहती है जव तक वह चलता फिरता रहे और कुछ खाता पीता रहे। जो रोगी खाट पकड़ लेता है वह वचता नहीं। इसलिये रोगी को विरेचन (जुलाव) की दवा देकर कमजोर नहीं वनाना चाहिए।

आजकल अधिकांश रोगी प्राय: "प्रतिश्यायदथो कासः कासात् संजायते क्षयः" अर्थात् शुरू में प्रतिश्याय (जुकाम), प्रतिश्याय से खांसी,खांसी से क्षय सिद्धांत वाले अधिक पाये जाते हैं। इसलिये प्रतिश्याय तथा खांसी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये वल्कि उचित प्रभावी उपचार करना चाहिए।

(१) जिनको सूखी खांसी आती हो, हाथ पैर के तलवे गरम रहते हों या उनमें जलन होती हो, कंधों में भारीपन हो, निर्वलता वढ़ती जाती हो, कभी २ ज्वर भी वढ़ जाता हो,भूख कम लगती हो तो ऐसी हालत में अभ्रक भस्म, शृंग भस्म, सतगिलोय, प्रवाल भस्म, मुक्ताशुक्ति पिष्टी, मण्डूरभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म १-१ रत्ती, वसन्त मालती रस स्वर्ण युक्त १/२ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण एक माशे लेकर मिलालें। यह एक मात्रा हुई ऐसी १-१ मात्रा प्रातः, दोपहर,सायं उत्तम गोघृत १ माशा,असली मधु १॥ माशा में मिलाकर चटावें अथवा आगे लिखे हुए कासारि शर्वत की १ चम्मच में मिलाकर चटावें।

भोजन के वाद दिन में दो वार द्राक्षासव १।-१। तोले समान भाग पानी मिलाकर पिलाये। रात को गाय के दूध का पीपल डालकर वनाया हुआ क्षीर पाक पिलायें।

(२) जिनको उपरोक्त वातों के साथ ज्वर सदैव थोड़ा थोड़ा वना रहता हो, शाम के समय वढ़ जाता हो, खांसी अधिक आती हो और अधिक खांसने पर थोड़ा कफ निकलता हो तव उन्हें मृगांक रस १/२ रत्ती प्रवाल भस्म मुक्ताशक्ति भस्म, मंडूर भस्म १-१ रत्ती सितोपलादि चूर्ण १॥ माशा मिला १ मात्रा वना ऐसी १-१ मात्रा प्रातः दोपहर सायं १-१ चम्मच कासारि शर्वत में चटायें(निर्माण विधि आगे देखें)। ऊपर से अमृतारिष्ट १—१ तो० मिला कर पिलायें।

दिन में दो वार ९ वजे व ३ वजे १—१ तो० च्यवनप्राश चटा ऊपर से द्राक्षारिष्ट १।—१। तोला समान भाग पानी मिलाकर पिलायें।

भोजनोपरांत दिन में दो वार द्राक्षासव १।—१। तो० वरावर पानी मिलाकर पिलावें। रात को वसन्त कुसुमाकर रस १ रत्ती मधु में चटाकर ऊपर से पीपल डालकर

बनाया हुआ क्षीर पाक पिलायें । शरीर में चन्दनादि तेल की मालिश करायें ।

(३) जिनको उपरोक्त बातों के अतिरिक्त साथ में निर्बलता अधिक हो, श्वास जल्दी जल्दी चलती हो, कफ के साथ रक्त भी आता हो, भूख कम हो, पाचन शक्ति निर्बल हो उनकी चिकित्सा में बड़ी सावधानी की जरूरत है । उन्हें दवायें जो ऊपर नं० २ मृगांक आदि लिखी हैं वही दी जायेंगी । रक्त रोकने के लिये द्राक्षासव के स्थान पर उशीरासव पानी मिलाकर पिलायें । दिन में दो बार बोलबद्ध रस २–२ गोली या बोल पर्पटी ४–४ रत्ती दूब के रस और मधु में मिला चटायें और ऊपर से बबूल की कोंपल, अनार के पत्ते, आमला, धनियां इनको ६–६ ग्राम लेकर १२५ मि. लि. (दो छटाक) पानी में रात को भिगो दें । प्रातः मल छान कर मिश्री १२ ग्राम मिला दो मात्रा बना एक एक मात्रा पिलायें ।

रक्त रोकने के लिये निम्नांकित रक्त रोधक मिश्रण चमत्कारी लाभ करता है । शरीर के किसी भी अंग से रक्तस्राव हो रहा हो ६ मात्रा ही में रक्तस्राव रोक देता है चाहे कफ के साथ रक्त आवे चाहे बवासीर से रक्त आये चाहे रक्त प्रदर में रक्तस्राव हो चाहे नाक से रक्तस्राव हो सभी प्रकार के रक्तस्राव की प्रभावशाली दवा है—

घटक व निर्माण विधि—प्रवाल पिष्टी, मुक्ताशुक्ति पिष्टी, स्वर्ण माक्षिक भस्म, दम्मुल अखवैन, लाल फिटकरी की खील, सत गिलोय, अकीक भस्म तथा स्वर्ण गेरू सभी समान मात्रा में लेकर मिलालें । मात्रा ३/४ ग्राम (६ रत्ती) दिन में दो बार शर्बत अनार में चटायें ।

कासारि शर्बत निर्माण विधि–गुल बनफशा, गावजवां, उन्नाव, खतमी, लहसोरे, मुलहठी, गिलोय, सोमकल्प, मुनक्का १२-१२ ग्राम, अडूसे के पत्ता व जड़ की छाल व फूल मिलाकर ५० ग्राम, काली मिर्च ३ ग्राम लेकर जौकुट कर १० गुने पानीमें शाम को भिगो दें । प्रातः काल उसको अग्नि पर चढ़ाकर गरम करें । जब गरम करते करते दो तीन भाग पानी जल जाय और एक भाग शेष रह जाय तब उतार कर मल कर छान ले और उस छने हुए पानी में समान भाग मिश्री मिलाकर चूल्हे पर चढ़ाकर गरम करे । जब शर्बत की चाशनी ठीक बन जाय तब उतारकर कपड़े से छान कर शीशी में मजबूत डाट लगाकर रख लें । बस खांसी जुकाम की दवा बन कर तैयार हो गई । तैयार होने पर हर पौंड वाली शीशी में ४–४ बूंद गृह निर्मित अमृत द्रव (अमृत धारा) मिला दें । इससे इसके गुण बढ़ जाते हैं तथा कभी उसमें भुकड़ी नहीं लगती है । शर्बत पकाते समय जितनी मिश्री काढ़े में डाली जाती है उसका डेढ़ गुना जब रह जाय तब पकाना बन्द करके बर्तन को आग पर से उतार लें तो शर्बत ठीक बनता है । न गाढ़ा बनता है कि जम जाय और न पतला बनता है कि उसमें कालान्तर में किण्व क्रिया होकर बिगड़ जाय ।

रात्रि में स्वेद अधिक आता हो तो प्रवाल भस्म मधु से कुछ दिन चटायें ।

रीढ़ के क्षय पर प्रवाल पंचामृत २०० मि. ग्राम, पिप्पली चूर्ण २०० मिलीग्राम मिला मधु से प्रातः सायं चटायें और भोजनोपरांत द्राक्षासव पिलायें ।

क्षय रोगी के पीने वाले पानी में थोड़ा कपूर डाल दें और वही पानी पीने को दें । इस से क्षय कीटाणु मर जाते हैं। फेफड़ों के घाव भर जाते और ज्वर की तेजी कम हो जाती है ।

फेफड़े की क्षय पर लहसुन का प्रभाव चमत्कारी रूप से पड़ता है । इसका निम्नलिखित विधि से इंजेक्शन बना मांस में ७२ घन्टे बाद लगायें । विधि—रसोन स्वरस ३ बूंद बाष्प जल (डिस्टिल्ड वाटर) २ मि. लि. मिला लें । बस इंजेक्शन के लिये दवा तैयार हो गई । इंजेक्शन के अतिरिक्त रसोन कल्क से सिद्ध किये हुये तेल की मालिश करें और लहसुन की कलियों को गौघृत में तलकर खायें और ऊपर से गरम गौदुग्ध पियें । लहसुन से सिद्ध दूध पिलाने से क्षय में कफ की वृद्धि को रोकता, श्वास, कास में लाभदायक, गंडमाला अपची में भी हितकारी है । लहसुन क्षय कीटाणुओं को नष्ट करता है ।

वर्द्धमान पिप्पली योग क्षय रोग की सफल चमत्कारिक दवा है ।

यक्ष्मा रोगी को काली बकरी का धारोष्ण दूध अत्यधिक लाभकारी है । दूध को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए निम्नांकित विधि काम में लानी चाहिए—

जिस बकरी का दूध लिया जाय उसे निम्नलिखित दवाओं का मोटा चूर्ण ६० ग्राम,जौ का आटा २५० ग्राम,

घी ३० ग्राम, मिश्री या शकर दाना ३० ग्राम मिला रोटी वना आग पर सेंककर खिलायें और सेंधानमक का ढेला उसके पास रख दें, उसको भी वह चाटती रहे।

असगन्ध, शतावर, मूसली सफेद, समुद्र शोप, ताल मखाना, मुलहठी, खिरैटी के वीज, अष्टवर्ग की आठों दवायें सभी सभान भाग लेकर चूर्ण कर लें। ज्वर की तीव्रता अधिक हो तो इसके वदले महासुदर्शन चूर्ण का प्रयोग करें।

वकरी का दूध दुहते समय दोहनी के ऊपर एक सफेद वस्त्र का धुला हुआ छन्ना वांध दें और उस छन्ने पर पिसी हुई मिश्री उचित मात्रा में रखकर ऊपर से दूध को दुहे और दुहने के वाद तत्काल ही जब तक फेन शांत न होने पाये, पिये। इसी दूध का घृत, मक्खन वनाकर खिलायें, अतीव गुणकारी है। यह दूध भोजन भी है और दवा भी है।

क्षय रोगी को दूध में चूने का जल मिलाकर पिलाने से कैल्शियम की कमी दूर होती है, शक्ति मिलती है, खांसी को शान्त करता है, रक्तस्राव को रोकता है। यह वच्चों के लिए भी महान गुणकारी है। वच्चों को वमन, अतिसार, वालशोष आदि पर वहुत लाभ पहुंचाता है। अनेकों फार्मेसियां इसमें शकर मिला शर्वत वना वालामृत के रूप में वेचकर हजारों रुपया पैदा कररही हैं। चूने का जल और द्राक्षासव वरावर वरावर मात्रा में मिलाकर २-३ तोला की मात्रा में दिन में २-३ वार पिलाने से उरःक्षत, क्षय कास, रक्तष्ठीवन तथा वमन में आता हुआ तथा मल मूत्रादि के साथ आता हुआ रक्त तथा हर प्रकार का अन्दरूनी व वाहरी रक्तस्राव वन्द हो जाता है।

हाथ पांव के तलवे व आंखों में जलन होने पर मुक्ता पिष्टी छोटी इलाइचयी के चूर्ण के साथ दें। वमन में एलादि चूर्ण व जहर मोहरा खताई पिष्टी मिलाकर दें। यदि दस्त साफ न आता हो तो हर्र का मुरव्वा या गुलकन्द सत ईसवगोल आदि सौम्य रेचक दवायें दें या मुनक्का व अञ्जीर दूध से दें। पंचसकार व मधुयष्टयादि चूर्ण उचित मात्रा में दें।

यक्ष्मा रोगी अपने आस पास ९-१० वकरी रक्खे। उन्हीं के बीच बैठे उठे और सोये और उन्हीं का दूध पिये तो कष्ट होने में वड़ी मदद मिलती है। इसी प्रकार अरूसे (वांसा) के जंगल में निवास करने से और अरूसे का किसी भी रूप में प्रयोग करने से राजयक्ष्मा में लाभ पहुंचता है। शास्त्र कहता है कि—

वासायां विद्यमानायां, आशायां जीवितस्य च।
रक्त पित्तीक्षयी कासी किमर्थमवसीदति॥

अर्थात् जव तक वासा विद्यमान है तव तक संसार के जीवित प्राणियों में आशा का संचार है। वासा (अरूसा) के रहते हुए रक्तपित्त रोगी, कास (खांसी) रोगी, एवं क्षय रोगी इतना कष्ट क्यों पाते हैं। इसी को एक कवि ने हिन्दी में इस प्रकार कहा है कि—

वासा जग में यूँ कहे जिन वन में मम वास।
क्यों पावत दुःख नर जगत, जाको कहे अरि कास॥

अर्थ—अरूसा इस संसार में इस प्रकार कहता है कि हे रोगी प्राणियो! संसार में मेरे रहते हुए आप इतना दुःख क्यों पाते हो। ऐसा होते हुऐ भी महान दुर्भाग्य की वात है कि वासा जैसी अमृत तुल्य वनौषधियों के भारत में वन भरे पड़े हुये हैं किन्तु फिर भी लोग क्षय रोग से पीड़ित होकर हजारों की संख्या में अकाल में काल कवलित हो रहे हैं। वासा का प्रयोग चाहे स्वरस के रूप में करे या अवलेह के रूप में या क्वाथ के रूप में या क्षार के रूप में या धूम्रपान के रूप में या अर्क के रूप में या घनसत्व के रूप में या शर्वत के रूप में या घृत के रूप में या किसी भी रूप में करे यह क्षय रोग में छाती और फेफड़ों के रोगों के लिये अत्यन्त गुणकारी है।

क्षय रोग में हवन-यज्ञ चिकित्सा भी परम लाभकारी प्रमाणित हुई है। उसके लिखे निम्नांकित प्रकार से हवन सामग्री वना नित्य प्रातः सायं उससे हवन करे और फेफड़ों में हवन के धुयें को जाने दे तथा छाती पर भी हवन का धुआं लगने दे।

हवन सामग्री—व्राह्मी, शतावरी, असगंध, शालपर्णी, अरूसा, गुलाव के फूल, चन्दन सफेद, रास्ना, देवदारु, अगर, तगर, जटामांसी, गोखरू, पिस्ता, वादाम, मुनक्का, छुहारे, जायफल, जावित्री, लोंग, हर्र, वहेड़ा, आमला, १-१ भाग गूगल दूना कपूर, केशर थोड़ी थोड़ी मिष्ठान्न यथावश्यक घी शकर भी आवश्यकतानुसार मिला लें। वस हवन सामग्री तैयार हो गई। इसी से हवन करें या

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी हरिद्वार की बनी हुई सामग्री प्रयोग करें।

आजकल रुदंती नामक बूटी की खोज ने एक चमत्कार पैदाकर दिया है। रुदन्तीचूर्ण में स्वर्ण बसन्त मालती, प्रवाल भस्म, सितोपलादि चूर्ण आदि मिलाकर निर्मल आयुर्वेद संस्थान ने रुदनो कैपसूल तैयार किये है जो राज यक्ष्मा में अतीव लाभकारी प्रमाणित हो रहे है। इनसे फेफड़ों के जखम बहुत जल्द भरते है जिससे कफ, खांसी, ज्वर भी शीघ्र ही ठीक होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

राजयक्ष्मा में स्वर्ण के इंजेक्शन, काक जङ्घा के इंजेक्शन व बसन्त मालती के इंजेक्शन भी अतीव लाभकारी प्रमाणित हुए हैं।

उपरोक्त दवाओं के अतिरिक्त राज मृगाङ्क, महामृगाङ्क, हेमगर्भ पोटली रस व कांचनाभ्र रस, स्वर्ण भस्म व मोती भस्म व एलादि घृत, छागलाद्य घृत, द्राक्षादि घृत, बब्बूलारिष्ट, पिप्पल्यासव, दशमूलारिष्ट, तालीशादि चूर्ण, अशोकारिष्ट, क्षय केशरी रस, यक्ष्मान्तक लोह आदि भी विशेष प्रभावकारी दवायें है।

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में निम्नलिखित दवायें इस रोग के लिये रामबाण है जिनका आजकल धड़ाधड़ प्रयोग हो रहा है। उनका संक्षिप्त वर्णन पाठकों के ज्ञानबर्द्धन में सहायक होगा—

स्ट्रेप्टोमाइसीन के इंजेक्शन इस रोग के यक्ष्मा दण्डाणु को खत्म करने के लिए प्रधान औषधि के रूप में प्रयोग किये जाते है। इसके ३० इंजेक्शन का पूरा कोर्स है। आवश्यकतानुसार अधिक भी लगाये जा सकते है। यह सफेद चूर्ण के रूप में एयर टाइट शीशियों में आता है जिसमें वाष्प जल मिलाकर इंजेक्शन योग्य बनाकर मांसपेशी में लगाते है।

आइसोनियाजिड—क्षयरोग की नई सफल दवा है। मात्रा १।। से ४।। ग्रेन (२ से ५ मि. ग्राम) प्रति किलो ग्राम शारीरिक भार अनुसार प्रतिदिन दो मात्राओं में बांट खिलायें। एक टिकिया ३/४ ग्रेन (५० मि० ग्रा०) की होती है। प्राय: वयस्क रोगी को ३०० मि० ग्रा० (४ टिकिया) प्रतिदिन दो मात्राओं में बांटकर दी जाती है। यह दवा क्षय कीटाणुओं को पैदा होने और बढ़ने से रोकती है और उन्हें नष्ट कर देती है। खिलाने से आंतो में शीघ्र घुलकर सीरम में मिलकर २४ घंटों में शरीर से निकल जाती है। मांसपेशियों की सैलों के अन्दर जाकर अपना प्रभाव प्रकट करती है जिससे क्षय रोगी की भूख बढ़ जाती है। २,३ सप्ताह मे खांसी और बलगम में कमी हो जाती है और ज्वर भी कम हो जाता है। कफ में क्षय कीटाणुओं की संख्या भी कम हो जाती है, वजन बढ़ने लगता है, फेफड़ों के घाव भरने लगते है और गढ़ों की लम्बाई चौड़ाई भी कम होने लगती है। जब क्षय रोगी के फेफड़ों की रचना पनीर जैसी हो जाय तो यह दवा बहुत लाभ पहुंचाती है। अकेली यह दवा प्रयोग करने से कुछ समय बाद प्रभावहीन होजाती है अतः इसके साथ स्ट्रेप्टोमाइसिन एक ग्राम प्रतिदिन इंजेक्शन के रूप में प्रयोग करना गुणकारी है। स्ट्रेप्टोमाइसीन के बजाय इसके साथ पी. ए. एस. ५ ग्राम २४ घंटों में ४ मात्राओं में बांट कर खिलाई जा सकती है। इस विधि से प्रतिदिन इंजेक्शन लगाने की जरूरत नही रहती है। क्योंकि पी. ए. एस., खिलाई जा सकती है। आइसोनियाजिड को स्ट्रेप्टोमाइसीन या पी.ए. एस. के साथ दो माह तक प्रयोग कराये। यदि इससे अधिक समय तक चिकित्सा की आवश्यकता हो तो ६ सप्ताह बाद दोबारा चिकित्सा आरम्भ करें। इसके विषैले प्रभाव बहुत कम है। फिर भी अधिक समय तक निरंतर प्रयोग कराने से कब्ज, सिर दर्द, अनिद्रा, चक्कर आना, मितली, मूत्र में अलब्यूमिन आना आदि कुलक्षण उत्पन्न हो सकते है।

पेराएमीनो सेलेसिलिक एसिड—पी. ए. एस. हलका पीला कलमी पावडर होता है: मात्रा २ से ४ ग्राम प्रति ३ या ४ घंटे बाद सप्ताह में ६ दिन दें। इसका एक मिश्रण सोडियम एमीनो सेलीसिलास है जिसे पी. ए. एस. सोडियम कहते है। यह सफेद कलम या पावडर के रूप में होता है। गन्ध हीन स्वाद मीठा नमकीन। इसके १०० ग्राम की शक्ति पी. ए. एस. के ७२·५ ग्राम के बराबर है। मात्रा १० से १५ ग्राम प्रतिदिन ४ या ५ खुराकों में बांट कर खिलायें। यक्ष्मा दण्डाणुओं का नाश करता है। फुफ्फुसीय राज यक्ष्मा में जब बलगम अधिक निकले तब इससे लाभ होता है। रोग की तेजी कम हो जाती है। भूख बढ़ जाती। ३ से १५ दिन में ज्वर कम हो जाता, रात का पसीना बन्द हो जाता। खांसी कम हो

जाती, कफ में यक्ष्मा दण्डाणु की संख्या कम हो जाती है। यह आंतों की क्षय में विशेष लाभप्रद है। जिन रोगियों में स्ट्रेप्टोमाइसीन से रोगरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है उन्हें इससे लाभ होता है। ६ दिनों के वाद १ दिन दवा न खायें। ३–४ मास तक सेवन करें। कभी कभी सोडा-वाई कार्व लेते रहें। इसके अधिक प्रयोग करने से आंतों में व्रण उत्पन्न हो जाते हैं, सिर चकराना, मितली व कै, दस्त आदि उपद्रव होजाते हैं। ऐसी दशा में मात्रा कम कर दें परन्तु १० ग्राम प्रतिदिन से कम न करें। इसके सेवन काल में विटामिन बी व सोडा वाई कार्व पानी में मिला कर देने से बहुत लाभ होता है। पी. ए. एस. के साथ प्रोकेन का प्रयोग सख्त मना है। इसे खाली पेट न दें। दूध या पानी से दें। हृदय का कष्ट हो तो सोडियम पी. ए. एस. न दें, कैल्सियम पी. ए. एस. दें।

कार्बोलिक एसिड तीव्र कीटाणुनाशक और दुर्गन्ध निवारक है। क्षय के रोगियों के कमरे और थूकदान, यंत्रों हाथों तथा घावों को इसके लोशन से धोया जाता है। २॥ भाग को सौ भाग पानी में मिलाकर लोशन तैयार करें।

रक्तस्राव रोकने के लिये कैल्सियम ग्लूकोनेट का इंजेक्शन अतीव गुणकारी है।

इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी दवायें हैं जिनका प्रयोग आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। उनमें से कुछ मुख्य दवायें ये है। माल्टोमीन, औस्टोमाल्ट, रक्तो फास्फो माल्ट, जुवीमाल्ट, प्रोटोजेस्ट प्रोलाईओ ओरल, प्रोमोलन, यूनी प्रोटीन पावडर, न्यूट्रोटोन, एसेन्स आफ चिकेन, हाइड्रो प्रोटीन इंजेक्शन व ओरल, डीकोमाल्ट, हेपाविट्रन, विन्टोनविद ओलियो माल्ट, काडलिवर आयल।

पथ्यापथ्य—इस बीमारी में पाचन शक्ति घट जाती है, भूख नहीं लगती, खा लेने पर पचता नहीं, इसलिये जब ज्वर बढ़ता रहे उस समय रोगी को केवल जलीय पदार्थ जैसे दूध, साबूदाना, मूंग की दाल का पानी, गुरुकुल की चाय के सिवाय और कुछ भी खाने को नहीं देना चाहिये। जब ज्वर कम रहे तो गेहूं की रोटी, पुराने चावल का भात, खीर, मांस का शोरवा, मछली का शोरबा, अंडा, डवल रोटी, बिस्कुट, मूंग की दाल, गेहूं का दलिया, आलू, वैंगन, लौकी, परवल, भसीड़े, करेला, आमला, अंगूर, मुनक्का, वादाम, पिस्ता, पपीता आदि लें। मन को प्रसन्न रक्खे। गाना बजाना, परमात्मा का भजन ध्यान करना, ब्रह्मचर्य से रहना उत्तम है। फलों में मीठा अनार, जामुन, मीठा आम, फालसा, केला, छुहारे, खजूर, नारियल आदि दें। रोगी को खुले हवादार स्थान में रक्खे। पहाड़ी स्थान, समुद्र तट, मरु भूमि रहने के लिये सर्वोत्तम हैं। प्रातः सायं घूमना अवश्य चाहिये।

अपथ्य—उड़द, कुलथी, खटाई, लालमिर्च, बरफ, ठंडे-खट्टे फल आदि।

एक लड़का जिसकी उम्र करीव २२ साल, निवासी ग्राम महरूपुर, सहजू तहसील व जिला फर्रुक्खाबाद, दिनोंदिन कमजोर होता जाय, भूख कम हो गई, खा लेने पर ठीक से नहीं पचे, शाम को तापांश बढ़ जाय, काम करने की इच्छा न हो, सुस्ती कमजोरी मालूम हो। उसने कई डाक्टरों का इलाज कराया, मगर लाभ न हुआ, कमजोरी दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही थी। अन्त में हमारे पास आया, मैंने उसको चिकित्सा क्रम नं० १ में वर्णित बसन्त मालती, प्रवाल भस्म आदि का योग सेवन कराया, जिससे उसके सभी कष्ट दूर हो गये। भूख खुलकर लगने लगी, कमजोरी सुस्ती दूर हो गई और कुछ दिनों में हृष्ट-पुष्ट हो गया। इसका यह प्रभाव पड़ा कि उस लड़के का पिता जो पहले एलोपैथी का भक्त था अब आयुर्वेद का भक्त बन गया और इसी योग को बनवाकर अन्य कई लोगों को भी दे चुका हूं, उनको भी चमत्कारी लाभ किया।

एक व्यक्ति जिसके कफ में खून आता था, निर्बलता अधिक थी, क्षय रोग अधिक बढ़ चुका था। उसने डाक्टरी इलाज अधिक कराया। कानपुर, आगरा, लखनऊ में ऐलोपैथी चिकित्सा हुई, मगर उसे लाभ न हुआ, ४–५ हजार रुपया भी खर्च हो गया, निराश होकर आयुर्वेद की शरण में आया, उसे मृगांक रस का सेवन कराया गया जिससे वह बहुत जल्द चमत्कारी रूप से निरोग हो गया, केवल १.५० ग्राम मृगांक रस ने वह कमाल दिखाया कि सब दंग रह गये और आयुर्वेद की प्रशंसा करने लगे। रक्तस्राव आदि सभी कुलक्षण मिट गये और रोगी हृष्ट-पुष्ट हो गया और लगभग दो साल हो गये तब से अभी तक बिल्कुल ठीक है। खूब खाता-पीता और काम करता है।

यक्ष्मा-ज्वर

(PTHISIS-TUBERCULOSIS)

वैद्य राजकुमार शर्मा भिषगाचार्य, एम. ए, राज. आयु. चिकित्सालय, समदड़ी (बाड़मेर)

ज्वर की पूर्ण रूप से उचित चिकित्सा न होने के कारण वह धातुगत होकर जीर्ण ज्वर का रूप धारण कर लेता है और शोष या राजयक्ष्मा अथवा क्षय नाम रूपी रोग के रूप में परिणत हो सकता है। अतिसार प्रवाहिका संग्रहणी आदि रोगों की भी चिकित्सा न होने पर गुरु पदार्थों का मन्दाग्निवश पूर्ण पाक न होने से तथा मल के रूप में निकलते रहने से रस रक्तादि उत्तरोत्तर धातुओं का निर्माण तथा पोषण न होने से अनुलोम राजयक्ष्मा–शोष–क्षय हो जाता है। अतएव ज्वर तथा अतिसारादि के अनन्तर होने वाली व्याधि है।

इस यक्ष्मा की शोष, राज रोग अनेक संज्ञायें हैं। जिसे शोथादि अनेक रोग उपद्रव रूप में आश्रय करके होते हों तथा जिसके होने के पूर्व प्रतिश्याय कास श्वासादि पूर्वरूप के रूप में उत्पन्न होते हों एवं जिसका ज्ञान कठिनता से होता हो तथा जिसकी सफल चिकित्सा भी न होती हो ऐसे महाबलशाली रोग को शोष-क्षय-राजयक्ष्मा यक्ष्मा कहते हैं। इसे रोगराट् माना गया है क्योंकि यह अनेक कारणों से सब रोगों में प्रधान होता है अथवा जिस तरह राजा के चलने पर उसके पीछे पीछे अनेक अनुयायी चलते हैं इसी प्रकार इस रोग के हो जाने पर इसके पीछे पीछे अतिसार शोथ पाण्डु आदि अनेक रोग उपद्रव रूप में हो जाते हैं। अतः इसे अनेक रोगानुगत माना है। इसे रोगराट् मानने में दूसरा कारण बहुरोग पुरोगत है अर्थात् इस रोग के उत्पन्न होने से पूर्व पूर्वरूपावस्था में प्रतिश्याय कास श्वास आदि अनेक रोग दिखाई देते हैं। जिस प्रकार राजा के किसी स्थान पर जाने से पूर्व उसके अंगरक्षक सेनापति-अमात्य उस मार्ग से स्थान से पहले गुजरते हैं बाद में वह राजा। इसीलिये इसे रोगराट् कहा गया है क्योंकि अनेक रोग पूर्वरूप में होते हैं।
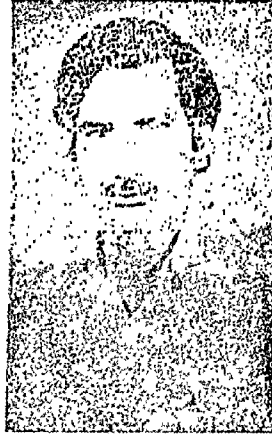
अनेक रोगानुगतो बहुरोग पुरोगमः। राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराज इति च स्मृतः। अनेक रोगाः शोथाद्युपद्रवा अनुगता आश्रिता यस्य सोऽनेक रोगानुगताः। बहवो रोगा प्रतिश्याय श्वासादयः पुरोगमाः पूर्वरूपत्वेन अग्रे सरा यस्य स बहुपुरोगमः तद् वक्ष्यति–श्वासांगमर्द कफसंश्रवतालु शोष वम्याग्निसाद मद पीनस कास निद्राः। शोषे भविष्यति स चापि जन्तु शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंमुः। अष्टांग संग्रह।

निरुक्ति—(१) रस रक्तादि धातुओं का शोषण करने से शोष कहते हैं। (२) तथा यह शरीर की बाह्य एवं आभ्यन्तर सम्पूर्ण क्रियाओं का क्षय (नाश) कर देता है इसीलिये इसे क्षय कहा जाता है। (३) प्राचीन काल

की कथा प्रसिद्ध है कि यह रोग नक्षत्रों के राजा चन्द्रमा को हुआ था इसीलिये कुछ विद्वान इसे राज यक्ष्मा कहते हैं।

आजकल विश्व में इस रोग को क्षय (Tuberculosis) कहा जाता है। उसके शोष क्षय यक्ष्मा (राजयक्ष्मा)ये तीन पर्यायवाची शब्द प्रसिद्ध है। यद्यपि महर्षि चरक ने इसके क्रोध, यक्ष्मा ज्वर और राजयक्ष्मा ये पर्याय लिखे हैं—

क्रोधो यक्ष्मा ज्वरो एकार्थो दुःखसंज्ञकः।
यस्मात्सराज्ञः प्रागीसाद्राजयक्ष्मा ततोमतः॥
—च० चि० अ० ८।

राजयक्ष्मा शब्द की व्युत्पत्ति दो तरह की मुख्य है—

(अ) i. यक्ष्मणां रोगाणां राजा राजयक्ष्मा— अर्थात् सब रोगों में प्रधान होने से राज-यक्ष्मा कहते हैं। —चक्रपाणि।
ii. राजेव यक्ष्मा राज यक्ष्मा वा। चक्रपाणि।
iii. तं सर्व रोगाणां कष्टतमत्वात् राजयक्ष्मणामाचक्षते भिषजः।

(आ) i. नक्षत्रों के राजा चन्द्रमा को हुआ था अतएव राजयक्ष्मा कहते हैं।
यक्ष्माद्वा पूर्वमासीद्वा मतः सोमत्योडु राजस्य तस्माद्राजयक्ष्मेति। च० नि० अ०६।
ii. राज्ञो यक्ष्मा राजयक्ष्मा। चक्रपाणि।
iii. यक्ष्मणां राजा राजयक्ष्मा-नक्षत्राणां द्विजानाञ्च राज्ञोऽभूत् तद् अयं पुरा। यन् च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः।—वा० नि० अ० ५।

सम्प्राप्ति—यक्ष्मा रोगी के शरीर में पाचन पूर्ण रूप से न होने पर अन्न से आमांश अधिक बनता है तथा उस अन्न के आमरस का भी पूर्ण पाचन न होने से कफ अधिक बनता है और वह कफ स्रोतों में जाकर उनके मार्गों को कुछ अवरुद्ध सा कर देता है जिससे अन्य धातुओं का रस से पूरा पोषण न होने से वे संशोषित होती रहती है। इस तरह अनेक कारणों एवं अनेक प्रकार से क्षय रोग में रस रक्तादि धातुओं का क्षय या शोष होता रहता है इसे महर्षि चरक ने निदान स्थान में उत्तम रूप से समझाया है—

यदा पुरुषोऽतिमात्रं शोकचिन्ता परिगत हृदयो भवति, ईर्ष्योत्कण्ठाभय कोधादिभिर्वा समाविश्यते, कृशो वा सन् रूक्षाना पानसेवी भवति, दुर्बलप्रकृतिरनाहारोऽल्पाहारो वा भवति तथा तस्य हृदयस्थायी रसः क्षयमुपैति, स तस्योपक्षयात् शोषं प्राप्नोति। —च० नि० अ० ७।

राजयक्ष्मा रोग के उत्पन्न होने पर शरीर की श्वास प्रश्वास क्रिया रक्तपरिभ्रमण क्रिया पाचन क्रियाओं आदि में धीरे धीरे क्षीणता होती जाती है अतएव इसे क्षय नाम से भी पुकारते हैं। इस रोग में रस रक्त मांस आदि धातुओं का और शुक्र तथा ओज का भी क्षय हो जाता है।

(अ) कफ प्रधान दोषों के द्वारा रस वाहक स्रोतसों का अवरोध होने से उत्तरोत्तर धातुओं का निर्माण या पोषण कम होने से उनका क्षय होकर जो यक्ष्मा उत्पन्न होता है उसे अनुलोम क्षय कहते हैं। रसवाहक स्रोतस Lymphatic Vessels तथा रक्तवाहक स्रोतस Arteries and veins दोनों का ग्रहण होता है इन स्रोतों का अवरोध होकर कफ Lymph का पूर्ण संवहन नहीं होता है उससे विदग्ध हुआ वह कफ विकृति रूप में बाहर निकलता रहता है।

रसः स्रोतसु रुद्धेषु स्वस्थानस्थो विदह्यते।
स ऊर्ध्वं कास वेगेन बहु रूपः प्रवर्तते॥

(आ) अत्यधिक सम्भोग करने से वीर्य के क्षीण होने पर मज्जा क्षीण हो जाती है। मज्जा के अनन्तर अस्थियां क्षीण होने लगती है। इस तरह उल्टे उल्टे रस धातु तक क्षीण होने का क्रम आ जाता है। उल्टी धातुओं का क्षय होने से उसे प्रतिलोम क्षय कहा जाता है। शुक्र क्षीण होने पर उसकी कार्यभूत धातुयें क्यों क्षीण होती हैं? इसका उत्तर विजयरक्षित जी ने दिया है—

शुक्र क्षय से वायु प्रकुपित होती है और वह वायु सान्निध्य से मज्जा को शोषित कर ऐसे ही पूर्व पूर्व धातु को नष्ट करती है।

ननु कार्यभूतस्य शुक्रस्य क्षयात्कथं कारणभूतस्य धातूनां क्षयं इति चेत् उच्यते—शुक्रक्षयाद्वायुः प्रकुप्यति। यद्रसं वायोर्धातु क्षयाद् कोपो मार्गस्यावरणेन च।
—च० नि० अ० १८।

इसका तात्पर्य यह है कि स्रोतोरोधवश रस क्षय से लेकर उत्तरोत्तर होने वाला धातुओं का क्षय ही राजयक्ष्मा है किन्तु बिना स्रोतोऽवरोध के अन्य कारण से किसी धातु का क्षय राजयक्ष्मा नहीं कहा जा सकता है। वह केवल मात्र उस धातु विशेष का क्षय रोग है। इसी तरह प्रति-

लोम क्षय में भी अतिमैथुन जन्य पूर्व पूर्व धातुओं का क्षय न होकर केवल मात्र शुक्र का क्षय राजयक्ष्मा नहीं कहा जा सकता है।

सम्प्राप्ति आधुनिक मतानुसार—i. श्वास मार्ग—थूक के सूक्ष्म कण हवा में उड़कर श्वास के द्वारा फुफ्फुसों में पहुंचते हैं। इसी तरह यक्ष्मी के बोलने खांसने छींकने से थूक के असंख्य कण बाहर हवा में मिलते हैं और वहां से समीपवर्ती मनुष्यों के फेफड़ों में श्वास द्वारा प्रवेश करते हैं इसे D.oplet Infection कहते हैं।

ii. रक्तमार्ग—कभी कभी जीवाणु गले में अटक कर लसीका वाहिनियों में प्रवेश कर लसिका ग्रन्थियों में होते हुये रक्त में मिल जाते हैं।

iii. जीवाणुयुक्त थूक को निगलने से या जीवाणु युक्त खाद्य पेयों के सेवन से वे प्रथम आंत्र में प्रविष्ट होते हैं और वहां की रस वाहिनियों द्वारा रक्त में प्रविष्ट होते हैं फिर फुफ्फुसों में आ जाते हैं। फुफ्फुस में रसवह संस्थान द्वारा Lymphatic System की ठीक व्यवस्था न होने से वे अपने को जीवाणुओं से ठीक प्रकार से रक्षित नहीं कर सकते हैं। अतः फुफ्फुस जीवाणु वर्धन के लिये उपयुक्त स्थल है। उनमें मेद द्रावक Lipolytic तथा ज्वलन सहायक oxydising फर्मेण्ट भी नहीं होते हैं अतः जीवाणु फेफड़ों में बढ़कर वहां विशिष्ट प्रकार की सूक्ष्म ग्रन्थि Tubercle उत्पन्न होती है अतः इस रोग को तद्युक्त Osis होने से Tuberculosis कहते हैं। फिर इस ग्रन्थि में रोपण विनाशन की क्रियायें होती हैं। विनाशन में उस स्थान पर नई केशिकायें नहीं बनती है और पुरानी नष्ट हो जाती हैं। इस तरह रक्त की कमी और जीवाणु विष के कारण ग्रन्थि सेलों में मेदापक्रान्ति होकर तथा कोथ प्रारम्भ होकर वे मृदु हो जाते हैं और यहां पूय बन जाती है जो कि श्वास नलिका में उत्सर्गित होकर खांसने से बाहर आता रहता है तथा फुफ्फुसों में विवर (Cavitation) हो जाता है। इस तरह आस पास अनेक विवर बन जाते हैं। इन विवरों की रक्त वाहिनियों के फटने से रक्तस्राव भी होता है। इसमें फुफ्फुसों के अतिरिक्त फुफ्फुसावरण (Pleura) श्वास नलिकाओं में शोथ, स्वरयंत्र, आंत्र और उदरावरण मस्तिष्कावरण मूत्र एवं प्रजनन संस्थान में भी विकृतियां होती हैं। हृदय तथा यकृत् में रोग विष के कारण मेदापक्रांति हो जाती है।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में इसे Pthisis या Consumption कहते हैं जिसका अर्थ क्षय शोष होता है। रोगराट् स्वरूप में इसे Symptom of the death कहते हैं। इस रोग में फुफ्फुसों की विकृति प्रधान रूप से होती है इसलिये इसे फुफ्फुस क्षय, Pulmonary Tuberculosis Pthisis कहते हैं। अधिक सम्भोग के कारण शुक्र नष्ट होकर फुफ्फुसों के विकृत होने के फलस्वरूप होने के कारण इसे राजयक्ष्मा कहा जाना चाहिए। शोष या क्षय शब्द का प्रयोग फुफ्फुसों के क्षय के अतिरिक्त अन्यक्षय में भी प्रयुक्त होता है। अस्थि क्षय Bone T.B., आंत्रिक क्षय Intestinal T.B., चर्म क्षय Skin T.B., मस्तिष्क क्षय Brain T.B.। राजयक्ष्मा को त्रिदोषज माना गया है।

भेद विचार—आचार्य पाराशर के शिष्यों ने राजयक्ष्मा-शोष को भिन्न-भिन्न दोषों से उत्पन्न होना माना है—

क्षयाः पञ्चैव विज्ञेयाः त्रिभिः दोषैस्त्रयश्चते।
चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमः स्यापुरःक्षतात् ॥
—शारङ्गधर।

चरकाचार्य ने कहा है कि वेगरोध क्षय साहस विषमाशन इन चतुर्विध कारणों से वायु प्रकुपित होकर कफ और पित्त, इन दोनों को भी उच्चारित करता हुआ अपने साथ लेकर विभिन्न स्थानों में जाता है यथा शिर में शिरःशूल, गले में जाने पर कास, स्वरभेद कण्ठोध्वस आदि एकादश लक्षण करता है। इन्हें त्रिदोषानुसार अवश्य विभक्त किया गया है। यथा—१. कफ से प्रतिश्याय, प्रसेक, कास, छर्दि, अरुचि, २. पित्त से ज्वर अंसाभिताप रक्तवमन, ३. वायु से पार्श्वशूल, स्वरभेद, शिरःशूल।

प्रतिश्यायं प्रसेकञ्च कासं छर्दिमरोचकम्।
ज्वरमंसाभितापञ्च छर्दनं रुधिरस्य च ॥
पार्श्वशूलं शिरःशूलं स्वरभेदमथापि च।
कफपित्तानिलकृतं लिंगं विद्याद्यथाक्रमम् ॥
रूपाण्यैकादशैतानि यक्ष्मारव्यते महान् ॥
—च० चि० अ० ८

आधुनिक चिकित्साशास्त्रियों के मतानुसार निम्नलिखित भेद हैं—

१. तीव्रस्वरूप Acute Miliary-Pulmonary Form

२. चिरकालीन सव्रण राजयक्ष्मा Chronic Ulcerative Tuberculosis.

३. शीघ्र घातकी Galloping Tuberculosis.

४. तन्तु भूयिष्ठ Fibroid T. B.

५. फुफ्फुस मूल यक्ष्मा Hilum Pthisis.

हेतु—विभिन्न कारणों से प्रकुपित हुए दोषों के शरीर में व्याप्त होने पर उस पुरुष के रसादि शुक्रान्त धातुओं के क्षय होने से वात मूत्र पुरीष आदि के वेगों का अवरोध करने से अपने शारीरिक, मानसिक बल के उपरान्त जोश में आकर किसी साहसिक कार्य के करने से देह अथवा मन के आघातयुक्त होने से एवं विषम भोजन करने से यक्ष्मा रोग की उत्पत्ति होती है।

क्षयाद्वेगप्रतीघाताद्विघाताद्विषमाशनात्।
जायते कुपितैः दोषैः व्याप्तदेहस्य देहिनः ॥

—सु० उ० अ० ४१/६

रोगोत्पत्ति करने वाले निदान या कारण के स्वयं चार भेद होते हैं। यथा—१. रात-दिन ऋतु और भुक्तांश दोष प्रकोपक कारण सन्निकृष्ट कारण।

२. विप्रकृष्ट कारण जैसे—हेमन्त में संचित कफ, वसन्त में कफजरोग करता है या रुक्षादि सेवन ज्वर का सन्निकृष्ट कारण तथा रुद्रप्रकोप विप्रकृष्ट कारण है।

३. व्यभिचारी कारण जो कि स्वयं दुर्बल होने से रोग करने में अशक्त हों।

४. प्रधान कारण विषम भक्षणादि—वेगावरोध क्षय साहस विषमासन आदि कारणों से अर्थ विप्रकृष्ट कारण है, क्योंकि इनके सेवन से कई दिनों या सप्ताहों या महिनों के बाद रोग की उत्पत्ति होती है। विषभक्षण आदि का रोगोत्पादक प्रभाव तुरन्त होता है।

इह खलु चत्वारि शोषस्यायतनानि भवन्ति तद्यथा—साहसं सन्धारणं क्षयो विषमाशनमिति।—च चि अ० ८।

साहसं वेगसंरोधः शुक्रौजः स्नेहसंक्षयः।
अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतवः ॥

—अष्टाङ्ग हृदय।

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदोहेतु चतुष्टयात् ॥

—माधव निदान।

यह निश्चित है कि शरीर की स्वाभाविक क्षति के बिना यक्ष्मा उत्पन्न नहीं होता है और धातु क्षय के बिना शारीरिक शक्ति का ह्रास भी नहीं होता है। चतुर्विध कारणों से ही धातु क्षय होता है।

ऐलोपैथी के अनुसार भी शारीरिक शक्ति के क्षय के बिना राजयक्ष्मा से उपसृष्ट हुये व्यक्ति में भी राजयक्ष्मा की उत्पत्ति नहीं हो सकती है अर्थात् जब तक शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता हो जो कि प्रत्येक व्यक्ति में थोड़ी बहुत मात्रा में अवश्य होती है, तब तक इस रोग का आक्रमण नहीं हो सकता है। इस रोग-प्रतिरोधकक्षमता के नष्ट होते ही रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। अतएव यक्ष्मा के दण्डाणु Bacillus Tuberculosis की रोगोत्पादकता सिद्ध होने पर भी उपसर्गकारी जीवाणु की अपेक्षा वेगरोधादि चतुर्विध कारण ही इस रोग की उत्पत्ति में प्रधान कारण हैं। हमारे महर्षियों को जीवाणु का ज्ञान होते हुए भी दोष प्रकोप को ही रोगोत्पत्ति में प्रधान हेतु माना है और जीवाणु को गौण। अनेक रोगियों को जीवाणुओं के नहीं होने पर भी यक्ष्मा रोग से ग्रस्त होते हुए देखा गया है। अतः आयुर्वेदिक मत ही अधिक वैज्ञानिक है। प्राचीनकाल में भी यक्ष्मादि अनेक रोगों को उपसर्ग से होना मानते थे। यथा—

प्रसंगात् गात्रसंस्पर्शात् निःश्वासात् सहभोजनात्।
सहशय्यासनाच्चापि गन्धमाल्यानुलेपनात् ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिक रोगांश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥

आधुनिक दृष्टि से इसका प्रधान कारण Bacillus Tuberculosis है जोकि आमाशय को छोड़कर शरीर के किसी भी भाग में यक्ष्मा उत्पन्न कर सकता है। आयु वंश जाति व्यवसाय परिस्थिति शरीरपोषणाभाव श्रमाधिक्य कुलज प्रवृति रोग परिणाम शारीरिक विकृति आदि राजयक्ष्माजनक होती हैं।

पूर्वरूप—श्वास, अङ्गों में पीड़ा, मुख से कफ का निकलना, तालु का सूखना, वमन, कास, अरुचि, अग्निमांद्य, मद, प्रतिश्याय, निद्रा, ये यक्ष्मा के पूर्वरूप होते है।

लक्षण सामान्य—भोजन में अरुचि, ज्वर, श्वास, कास, स्वर भेद, रक्तष्ठीवन, ये छः राजयक्ष्मा के लक्षण होते हैं।

आधुनिक मतानुसार भी यक्ष्मा के लक्षणों को ३ रूपों में विभक्त किया गया है। यथा—

१. स्थानिक विकृतिजन्य—प्रतिश्याय थूक रक्तष्ठीवन और फुफ्फुसावरण शोथ, ये लक्षण कफज लक्षणों में समाविष्ट होते हैं।

२. वातनाड़ी प्रत्यावर्तनजन्य—स्वर भेद, गले में गुदगुदी खांसी, छाती और कन्धों में पीड़ा, ये लक्षण वातिक लक्षणों में समाविष्ट होते हैं।

३. विषमयताजन्य—बेचैनी कमजोरी सहन शक्ति की कमी, बलक्षय, मानसिक अस्थैर्य पचनविकार भारक्षय नाड़ीगत तीव्र रात्रिस्वेदन ज्वर रक्तगत परिवर्तन, ये पैत्तिक लक्षणों में मिलते हैं।

राजयक्ष्मा के जीवाणु से उत्पन्न विष जब विकृत स्थान से रक्तवाहिनियों के द्वारा भ्रमण करता हुआ मस्तिष्कगत उष्णता नियन्त्रक केन्द्र पर पहुँचता है और विपरीत परिणाम करता है, उससे ज्वर उत्पन्न होता है। जब शरीर का रसवह संस्थान और रक्तवह संस्थान अधिक बढ़ता है उस समय विषताप नियन्त्रक केन्द्र में शीघ्र ही पहुंचता है और ज्वर को बढ़ा देता है। भोजन के बाद, क्रोध के बाद ज्वर बढ़ जाता है, ज्वर १०० डिग्री से १०२ डिग्री फारेनहाइट तक रहता है। फुफ्फुस में विवरीभवन के साथ-साथ पूय भवन होने पर ज्वर प्रलेपक स्वरूप का होता है। यह ज्वर दोपहर को चढ़ता है और एक-दो घन्टे में पर्याप्त स्वेद के साथ उतर जाता है।

विशिष्ट लक्षण—ज्वर, कास, रक्तष्ठीवन, दौर्बल्य, कृशता, अग्निमांद्य, बलक्षय, भारक्षय, रात्रिस्वेदन, श्वास, नख नेत्र नीलवर्ण, स्वरभेद, वाणी में परिवर्तन, कफ निःसारण, वक्ष में पीड़ा, ज्वर प्रातः अधिक सायं कम होना, रक्ताल्पता और नाड़ीगत मन्दता महत्वपूर्ण लक्षण है।

रोग का शनैः शनैः प्रारम्भ होना, प्रतिश्याय का ठीक न होना, कुकुरकास, वातश्लैष्मिक ज्वर, रोमान्तिका आदि का इतिहास महत्वपूर्ण है। इसकी प्रारम्भिक अवस्था में एक पार्श्व में फुफ्फुस के शिखर पर श्वसन ध्वनि का कमजोर या खर होना, प्रश्वास के समय दीर्घ होना, खांसने के समय सूक्ष्म क्रेपिटेशन का मिलना या कौगव्हील के लक्षण मिल सकते हैं। रोग के प्रारम्भ में ब्रोंकाइटिस के लक्षण मिल सकते हैं। बाद की अवस्था में फुफ्फुस के ठोस होने (Consolidation) पिचकने (Collapse) या विवर (Cavity) के चिन्ह मिलते हैं।

निदान—वक्ष की X-Ray परीक्षा तथा क्षय जीवाणु Bacillus Tuberculosis के लिए कफ की परीक्षा आवश्यक है। ठेपन के समय मन्द ध्वनि का न मिलना, क्षय जीवाणु का कफ परीक्षा में न मिलना, यक्ष्मा के न होने का निश्चित प्रमाण नहीं है।

यक्ष्मा में की जाने वाली परीक्षायें—(१) कफ परीक्षा, (२) वक्ष की क्ष किरण परीक्षा, (३) रक्त परीक्षा, (४) मौण्टू की परीक्षा, (५) वौन पिरकी की परीक्षा, (६) कौक की विधि, (७) कोमर की विधि। क्रम संख्या चार से सात तक की परीक्षायें ट्युबरकुलीन जांच कहलाती हैं।

चिकित्सा

सामान्यतः—सर्वप्रथम यक्ष्मा के रोगी को भेड या बकरी के औषध सिद्ध घृत से स्नेहित कर मृदु औषधियों द्वारा ऊर्ध्व अधः शोधन अर्थात् वमन, विरेचन कराना चाहिए। इसके अनन्तर आस्थापन वस्ति का प्रयोग और शिरोविरेचन कराना चाहिए। संशोधन कार्यों के दिनों में क्षुधा लगने पर यव यूष, नवे दिन गेहूं का दलिया, शालि चावल का सेवन मांस रस के साथ कराना चाहिए। इस प्रकार पाचकाग्नि के प्रदीप्त हो जाने पर यक्ष्मा की बृंहण चिकित्सा करनी चाहिए।

विशिष्ट औषध चिकित्सा—रोग, रोगी की अवस्था दोषों की उल्बणता एवं लक्षणों की तीव्रता के अनुसार निम्न चार योग अवश्य ही उपयुक्त एवं प्रयोजनीय हैं, प्रयोग में लावें—

क—(१) मृगांक रस २०० मि.ग्राम, शृङ्गाराभ्र ५०० मि.ग्रा., सितोपलादि चूर्ण ३ ग्राम, एक मात्रा।

(२) वासाखण्ड कूष्माण्ड १० ग्राम, च्यवनप्राशावलेह १० ग्राम, एक मात्रा। औषध नं० १ के साथ देवें। ऊपर से गरम दूध पिलावें।

(३) द्राक्षारिष्ट १५ मि.ली., लोहासव ५ मि.ली., एक मात्रा। बराबर पानी मिलाकर खाने के बाद।

ख—(१) एलादि चूर्ण १ ग्राम, पिप्पली चूर्ण ५०० मि.ग्राम, सितोपलादि चूर्ण २ ग्राम, मुक्तापंचामृत २०० मि.ग्राम, चतुर्मुख रस ३०० मि.ग्राम, एक मात्रा। प्रातः मध्यान्ह सायं, मधु के साथ।

(२) अमृत प्राशावलेह १५ ग्राम, प्रातः सायं गौदुग्ध के साथ।

(३) द्राक्षासव १० मि.ली., अश्वगन्धारिष्ट १० मि.ली., बराबर जल मिलाकर खाने के बाद।

—शेषांश पृष्ठ २२२ पर देखें

क्षय रोग और

आयु. वारिधि श्री चांदप्रकाश मेहरा, बी० एस-सी०
५५७, मन्टोला स्ट्रीट, नई दिल्ली--५५ ।

जिस प्रकार एलोपैथी, आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा प्रणालियों में औषधि उपचार से क्षय रोग को दूर किया जाता है, उसी प्रकार विभिन्न औषधियों के मिश्रण से हवन करके क्षय रोगी को पूर्ण आरोग्यलाभ कराया जा

सकता है बशर्ते कि उसका मनोबल दृढ़ हो, और उसे इस प्रणाली में विश्वास व आस्था हो। जिस प्रकार सब चिकित्सा विधि में उसको अवस्था विशेष पर भिन्न-भिन्न औषधियां होती हैं उसी प्रकार यज्ञ चिकित्सा में भी यज्ञ की सामग्री में अनेकों परिवर्तन करने पड़ते हैं जिनका विस्तृत वर्णन करना संभव नहीं।

प्राय: क्षय रोग की तीन अवस्थायें मानी गई हैं। अवस्था विशेष के लक्षण और हवन सामग्री आदि का विवरण फुन्दनलाल श्रीवास्तव की प्रकाशित पुस्तक 'यज्ञ चिकित्सा, के आधार पर पाठकों के लाभार्थ नीचे दिया जाता है।

विभिन्न प्रकार के क्षय रोगियों के लिये हवन सामग्री

प्रथम अवस्था के रोगी के लिये हवन सामग्री–मंडूकपर्णी अथवा ब्राह्मी, इन्द्रायण की जड़, शालपर्णी, मकोय, गुलाब के फूल, तगर, रास्ना, अगर, क्षीर काकोली, जटामांसी, पांडरी, गोखरू, चिरौंजी, हरड़ बड़ी मय गुठली के, आँवला, जीवन्ती, पुनर्नवा, चीड़ का बुरादा, खूबकला, जौ तिल, चावल, इलायची बड़ी, सुगन्धवाला प्रत्येक एक भाग, शतावरी, अडूसा, जायफल, बादाम, चन्दन सफेद, मुनक्का, किशमिश, लौंग प्रत्येक आधा भाग। गिलोय, गूगल प्रत्येक चार भाग, केशर, शहद प्रत्येक चार भाग। देशी शकर दस भाग, देशी कपूर प्रज्वलित करने के लिये, फल व जौ का हलवा हर सप्ताह।

द्वितीय अवस्था के रोगी के लिये हवन सामग्री—छुहारा, बड़ी, हरड़ गुठली सहित, हिमालय प्रदेश की ब्राह्मी, इन्द्रायण की जड़, कूठ, कुलिञ्जन, बादाम, शहद

असली, जौ तिल साठी के चावल, फल (जैसे अंगूर, मधु में भिगोकर) देशी कपूर प्रत्येक एक भाग, देवदारू, जटामांसी, चीड़ का बुरादा, बड़ी इलायची, गिलोय, देशी कपूर कचरी, किशमिश, मुनक्का (दाख), लौंग, जायफल, गोला (खोपरा), चिरोंजी, तगर-अगर, छाल, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, सुगन्धवाला प्रत्येक दो भाग, अड़ूसा, शतावर प्रत्येक ३ भाग। गूगल ४ भाग, जावित्री, केशर प्रत्येक चौथा भाग, देशी शकर दश भाग, हर सप्ताह खीर या मोहन भोग या बेसन के लड्डू ४ भाग।

तृतीया अवस्था के रोगी के लिये हवन सामग्री—

गोखरू, पिस्ता, जीवन्ती, पुनर्नवा, मकोय, छुहारे, गुलाब के फूल, हस, की बड़ी हरड़ गुठली सहित, ब्राह्मी, इन्द्रायण की जड, बादाम, नागरमोथा, जौ, तिल, साठी के चावल, ऋतु के अनुसार कोई भी मीठा फल (विशेष रूप से अगूर-शहद में भिगोकर, अंगूर न मिले तो उसके स्थान में दूसरा कोई भी मीठा फल आम इत्यादि लिया जा सकता है) प्रत्येक एक भाग, क्षीर काकोली (अभाव मे सालम मिश्री) आमला, खूब-कला, सुगन्धवाला, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, अगर, तगर, चिरोंजी, गोला (खोपरा), जायफल, लौंग, मुनक्का, किशमिश, गिलोय देशी कपूर, कचरी हाऊबेर, कूट, जटामांसी, चीड़ का बुरादा, देवदार प्रत्येक दो भाग, शतावर, अड़ूसा, कुलञ्जन प्रत्येक तीन भाग, गूगल आठ भाग, देशी कपूर आधा भाग, केशर असली, जावित्री प्रत्येक चौथा भाग। सप्ताह में एक बार खीर, हलुआ, लड्डू पृथक बनाकर हवि करें।

चतुर्थ अवस्था के रोगियों के लिये हवन सामग्री— चिरोंजी, खोपरा, जायफल, लौंग, बड़ी हरड़ गुठली सहित प्रत्येक एक भाग, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, अगर, तगर, मुनक्का, किशमिश, छुहारा, बड़ी इलायची, गुलाब के फूल, गिलोय, साठी के चावल प्रत्येक दो भाग, गूगल चार भाग, देशी शकर सामग्री से चौथाई भाग नित्य मिलावे। देशी कपूर अग्नि प्रज्वलित करने योग्य।

पञ्चम प्रकार के रोगियों के लिये हवन सामग्री— उपरोक्त चतुर्थ प्रकार की सामग्री मे सहदेवी, जटामांसी, शतावर, कूट और ब्राह्मी प्रत्येक दो भाग और मिलालें।

सामग्री तैयार करने के लिए ज्ञातव्य बातें— किसी विश्वस्त अतार की दूकान से ही सब सामग्री क्रय करें। प्रत्येक वस्तु की अलग-अलग पुड़िया बँधवाएं। सब औषधियां ताजी ही लें। घुनी, सड़ी बहुत पुरानी निर्वीर्य औषधियां न लें।

हरी चीजें यथा गिलोय, अड़ूसा, मकोय आदि जहाँ तक हो सके हरी ताजी ही खरीदे। फिर सभी चीजें कूट ले। केशर, कपूर, जावित्री, शहद, फल, शकर, मुनक्का किशमिश इनको अलग-अलग ही रखें, और उनको नीचे लिखे अनुसार प्रयोग में लाये—

१. कपूर से नित्य अग्नि प्रज्वलित करें।

२. केशर, जावित्री नित्य की मात्रा अनुसार घी में डाल लिया करे।

३. शहद में अंगूर भिगो लिया करें तथा समिधाओं मे लगा लिया करें।

४. फल, शकर, मुनक्का, किशमिश नित्य की मात्रानुसार उसी समय सामग्री मे मिला लिया करे।

५. कुटी सामग्री में नित्य घी इतना मिलाना चाहिये कि सामग्री सूखी न रहे। सूखी सामग्री से खांसी बढ़ने का अन्देशा रहता है। सामग्री इतनी तर हो कि लड्डू बँध सके।

६. कुटी सामग्री किसी बन्द डिब्बे या बर्तन में रखें ताकि उसकी सुगन्ध न उड जावे।

७. खीर, हलुआ, लड्डू इत्यादि बनाये जावें तो उसमें का एक भाग यज्ञ में डाले और शेष भाग यज्ञ के पश्चात् घर वालों को और जो यज्ञ कर्ताओं को बाटें। रोगी को भी खीर व सूजी का हलुआ दिया जा सकता है, पर बेसन का लड्डू न दे।

८. यज्ञ के समय जो घृत आहुति के पश्चात जल में बूँद-बूँद करके डाला जाता है वह रोगी की औषधि है। हाथ पर मल कर हवन पर हाथ सेक मुँह और शरीर में मल सकते है तथा रोगी को हलुआ इत्यादि मीठे पदार्थ खिला सकते है।

९. सामग्री में मिलाने के अतिरिक्त घी अलग आहुतियां देने के लिये किसी अलग बर्तन मे रखें। घी गाय का ही लें। यदि ऐसी गाय का घी हो जिसको यज्ञ की सामग्री में पड़ने वाली औषधियां खिलाई जाती हों तो

बहुत ही अच्छा हो। यदि ऐसी गाय का घी न मिल सके तो किसी भी गाय के दूध का शुद्ध घी लिया जा सकता है भैंस का घी उतना लाभ नहीं करता। वनस्पति घी डालडा वगैर प्रयोग में लाने से लाभ के स्थान पर हानि होने की अधिक संभावना है। अतः किसी विश्वस्त सूत्र से प्राप्त किया शुद्ध घी ही यज्ञ में डाले। कपूर डली वाला देशी अच्छा होता है। टिकियों वाला कपूर न हो। जापानी कपूर न लें, देशी ही लें। गिलोय नीम पर की विशेष लाभदायक होती है। हरी गिलोय काटकर कुचल कर धूप में रखने से एक ही दो दिन में सूखकर यज्ञ के योग्य हो जाती है। इसी प्रकार अडूसा, मकोय और आँवले ताजे, हरे भी डाले जा सकते हैं। परन्तु हरी चीज सुखाये विना सामग्री के साथ वन्द डिब्बे या पात्र में न रखें। ब्राह्मी या तो हरी हो अथवा साये (छाँह) में सुखायी होवे। धूप में सुखाने से उसके गुण कम हो जाते हैं।

१०. फलों में अंगूर, सेव, नारङ्गी, सन्तरा, गन्ना, आम, वेर, केला, अमरूद, खिरनी, कसेरू इत्यादि सव औपधियां उपलब्ध न हो और रोगी की शीघ्र चिकित्सा करना अनिवार्य हो वहाँ अन्य साधनों को उपयोग में लाने के साथ नितान्त न होने की अपेक्षा कुछ होना अच्छा है 'Some thing is better than nothing' के सिद्धान्त पर निम्न सामग्री से यज्ञ चिकित्सारंभ कर दें—

लौंग, मुनक्का प्रत्येक एक भाग, सफेद चन्दन, शतावर, गिलोय प्रत्येक दो भाग, शकर ढ़ाई भाग, गूंगल ४ भाग और घी सामग्री तर करने योग्य। यह भी न मिले तो केवल गूगल, घृत और शक्कर से यज्ञारंभ कर दें।

सामग्री की मात्रा—एक समय में कम से कम सवा पाव सामग्री तथा सवा पाव गौ का घृत होना चाहिये। अधिक हो तो और भी अच्छा है। जब रोगी अच्छा होने लगे और धन की कमी हो तो मात्रा घटाई जा सकती है पर एक छटांक सामग्री से तो नित्य हवन प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को भी स्वास्थ्य को स्थिर रखने के लिये करना ही चाहिए।

यज्ञ करने की विधि—यज्ञ कुण्ड तांवें अथवा लोहे के वाजार मे मिलते हैं। घर पर पृथ्वी पर भी खोदा जा सकता है। उसके वनाने की विधि इस प्रकार है—चारों ओर से सम चौरस और चौकोण हो। यदि ऊपर एक ओर की लम्वाई ८ अंगुल हो तो आठ ही अंगुल गहराई, इस प्रकार ढलवा हो कि नीचे की ओर की लम्वाई चौथाई अर्थात् दो अंगुल हो। कुण्ड के ऊपर चारों ओर मेखला वनाई जावे और एक नाली रखी जावे। जिन लोगों के यहां हवन, यज्ञ, जो वैदिक धर्म का मुख्य चिन्ह है, होता रहता है उनको तो ऐसे कुण्ड वनाने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होगी। परन्तु जो ऐसा न कर सकें तो चार ईंटे चारों ओर रखकर वीच में यज्ञ कर सकते हैं। जहां पर यज्ञ कुन्ड हो उसे लीप, पोत, धोकर खूव शुद्ध करें जैसाकि किसी पूजा स्थँल को किया जाता है। फिर निम्नोक्त सामान सजाकर रखें—

(क) एक अथवा तीन थालियों में सामग्री (जितने आहुति देने वाले हों)।
(ख) एक कटोरे में घी, केशर, जाविली डाल घी छना हुआ हो।
(ग) जितने 'होता' हों उतने वर्तनों में पानी आचमन के लिए।
(घ) एक कटोरी में जल, यज्ञ से वचे घी की वूँद डालने को।
(ङ) एक छोटे गड्ढ्ये में जल, यज्ञ कुन्ड की नाली में डालने को।
(ज) आसन 'होताओं' के वैठने को।
(छ) एक चम्मच घी आहुती देने को।
(ज) दियासलाई की डिव्वी और कपूर!
(झ) एक तांवे अथवा मिट्टी के कलश में जल (इस अभिप्राय से कि यदि अग्नि अधिक प्रचण्ड हो जावे तो जल से वुझाई जा सके तथा जल रोगी पीवे)।
(ञ) एक कोरा दीपक जो आरम्भ से अन्त तक घृत से जलता रहे, इस अभिप्राय से कि अग्नि वुझ जावे तो उससे जल सके।
(ट) पीपल, गूलर, पलाश (ढाक), देवदारु, सेमल अथवा आम की छालयुक्त सूखी समिधा जो वहुत मोटी न हो और हवन कुन्ड में रखी जा सके, उनको हवन कुण्ड में चुन दें।
(ठ) एक अंगोछा हाथ पौंछने को।

सव सामान ठीक हो जाने पर रोगी शुद्ध धोती पहन कर अन्य 'श्रोताओं' के साथ यज्ञ पर वैठकर पहिले—

१. सीधे हाथ की हथेली पर जल लेकर आचमन करे।

२. फिर वायें हाथ की हथेली पर जल लेकर सीधे हाथ की उँगलियों से इन्द्रिय स्पर्श करे।

३. फिर ईश्वर ध्यान करके ईश-प्रार्थना करे।

४. तव दियासलाई से घी का दीपक जलाकर घड़े पर (कलश) रख दें और उसी दीपक से कपूर जलाकर चमचे में रखकर हवन कुन्ड में रखी समिधाओं पर रख दें और अग्नि को प्रज्वलित करें।

५. ऊपर से कुछ छोटी समिधा अग्नि प्रदीप्त करने को रख दें।

६. फिर चार समिधा घी में डुवोकर कुण्ड में रखें।

७. फिर पांच आहुति घी की देवें।

८. फिर कुण्ड वनाया हो तो उसकी नाली में, न बनाया हो तो कुण्ड के चारों ओर जल छिड़कें।

९. फिर चार आहुति और घी की देवें।

१०. इसके पश्चात् घी और सामग्री की आहुति देवें।

११. यज्ञ समाप्त होने पर उसी स्थाल पर वैठकर ३० मिनिट तक गहरी सांस खींचें। निर्वल रोगी न वैठ सके तो लेटकर सांस लेता रहे।

उपरोक्त सव क्रियायें करने के मन्त्र आगे दिये गये हैं। इससे पहले यज्ञ चिकित्सा के पूर्वाङ्ग पर कुछ विचार कर लें।

यज्ञ चिकित्सा से पूर्व की कुछ तैयारी—जो रोगी यज्ञ चिकित्सा प्रारम्भ करना चाहता है, वह इस लेख में दिये गये विवरण को ध्यान से २-३ वार पढ़कर समझ लें। अच्छा तो यही होगा कि रोगी के अतिरिक्त अन्य कोई उसका सम्वन्धी इस भार को लेवे। चिकित्सारम्भ करने को एक वस्ती कर्म (Enema), एक स्नान करने का टव और सव सामान ठीक करना चाहिए।

पहले तीन दिन कुछ गुनगुने पानी से वस्ती कर्म करें। फिर चार दिन ताजे पानी से वस्तीकर्म करें। इन दिनों बस्तीकर्म करने के आधा घन्टा पश्चात हवन करें। एक सप्ताह के वाद प्रातः हिपवाथ अर्थात् कटिस्नान आरम्भ करें और प्रथम स्नान करें उसके पश्चात् यज्ञ करें।

यज्ञ के पश्चात् जलपान या भोजन करें और सन्ध्या को ४ ५ वजे से पूर्व स्नान करें और फिर हवन करें। सध्या को हवन के वाद भोजन करें। तीसरे प्रहर यदि जलपान करें तो वाथ और हवन के वीच ले सकते है। यज्ञ का समय सूर्योदय से सूर्यास्त तक है। अपनी सुविधानुसार कार्यक्रम तय कर सकते हैं, किन्तु भोजनोपरान्त एक घण्टे तक हवन पर रोगी न वेठे कोई दूसरा आदमी रोगी के कमरे में कर सकता है। एक सप्ताह के बस्ती कर्म के पश्चात् वस्तीकर्म तो सिर्फ आवश्यकता पड़ने पर ही करना चाहिए। सप्ताह में एक वार कर लेना हितकर है और स्नान तथा यज्ञ नित्य करना चाहिए। यदि किसी विशेष कारणवश स्नान में नागा हो जा जावे तो भी यज्ञ मे नागा न होनी चाहिए। रोगी स्वयं असमर्थ हो तो अन्य उसके पास वैठकर करदे।

यज्ञ चिकित्सा के मन्त्र

आचमन के मन्त्र—मानवगृह सूत्र प्रथम पुरुष ८वाँ खंड

१. ॐ अमृतोपस्तरणामसि स्वाहा ॥१॥ (इससे प्रथम आचमन।

अर्थ—हे सुखप्रद अमृततुल्य जल तू प्राणियों का आश्रयभूत है।

२ ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ (द्वितीय आचमन)

अर्थ—तू निश्चय होकर हमारा पोषक हो।

३. ॐ सत्यं यश: श्रीर्मयि श्री:श्रयंतां स्वाहा ॥३॥ (तृतीय आचमन)।

अर्थ ईश्वर कृपा से मुझमें सच्चाई, कीर्ति शोभा व लक्ष्मी स्थित हो।

निम्नो मन्त्रों से अंग्नि स्पश करे—

१. ॐ वाङ्मेआस्येऽस्तु ॥ पा० गृ० कां० १/क३/सू० २५)

अर्थ—हे भगवान मेरे मुख में वाग्न्द्रिय सुस्थित हो।

२. ॐ नसोर्मे प्राणोऽतु ॥२॥ (नासिका के दोनों छिद्र स्पर्श करें।

अर्थ—भगवान मेरे दोनों नासिकाओं में प्राणवायु प्राणेन्द्रिय स्थिर हो।

३. ॐ अक्षणोर्मे चक्षुरस्तु ॥३॥ (दोनों आंखों का स्पर्श करें)

अर्थ—हे भगवान मेरे नेत्र-गोलकों में चक्षुरिन्द्रिय स्थिर हो।

४. ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥ (दोनों कानों का स्पर्श)।

अर्थ—हे परमात्मा मेरे कानों में सुनने की शक्ति स्थिर हो।

५. ॐ वाह्वोर्मे बलमस्तु। (दोनों हाथों का स्पर्श)।

अर्थ—हे भगवान मेरे हाथों में बल स्थिर हो।

६. ॐ ऊर्वोमेऽओजोऽस्तु । (दोनों जंघा स्पर्श करो) ।
अर्थ—हे ईश्वर मेरी जंघाओं में ओज स्थिर हो ।

७. ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि मनुस्तुन्वा मे सहसन्तु । (इससे 'समस्त' शरीर का मार्जन करें) ।
अर्थ—हे ईश्वर मेरा शरीर व शरीर के समस्त अङ्ग अनुपहत-अवधित अर्थात् निरोग एवं कार्य करने वाले हों ।

अङ्गादि स्पर्श पश्चात निम्न मन्त्रों से ईश प्रार्थना करें—

१. ॐ विश्वानि देवसवितर्दु रितानि परासुवा यदुभद्रन्तन्न आसुव ॥१॥ (यजु. अ. ३०/मं. ३) ।

२. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रेभूतस्य जातः पतिरेक आसीत । सदाधार पृथिवींद्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ।२।
—यजु. अ. १३/मं०. ४

३. य आत्मदा वलदा यस्य विश्व उपाशते प्रशिषं देवाः । यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥

४. यः प्रणतो निमिषतो महित्वैक इन्द्रजा जगता वभूव । य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मैदेवाय हविषा विधेयं ॥

५. येन द्यौरुग्रा पृथिवि चद्रढा येनस्वः स्वभितं येन नाक । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानःकस्मै देवाय हविषाविधेम ॥

६. प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परिता वभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु यचंस्याम पतयोरयीणाम्॥
—ऋ. मं. १०/सु. १२१/मं. १०

७. स नो वन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेदभुवनानि विश्वा ॥
यत्र देवा अमृत मानशानस्ततीये धामन्न ध्येरयन्त ॥
— यजु अ. ३२/मं. १०

८. अग्नेनय सुपराये अस्मान विश्वानि देव वयुनानि विद्वान । युयो घस्मज्जुहुराण मेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम ॥

९. ॐ भूर्भुवः स्वः । ॐ भुर्भुवः स्वद्यौरिव भूम्रा पृथिविव ब्वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवी देवयजानि पृष्ठे अग्निमन्नाद्याया दधे । —यजु. अ. ३/मं. ५

फिर निम्नोक्त मंत्र से सूखी लकड़ी अग्नि पर रख । कर अग्नि स्थापना करें ।

ओं उद्‌वुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टा पूर्ते स ॐ सूजैथामयं च । अस्मिन्तसधस्थे अध्युत्तरस्मिन विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥
—यजु अ. १५/मं० ५४

इसके वाद घी में डुवाकर एक-एक करके तीन समिधा कुंड में रखें । जिससे अग्नि अधिक प्रचण्ड हो । उसके मन्त्र ये हैं —

१. ॐ अयन्त इध्म आत्माजात वेदस्तनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद वर्धयम् चास्मान प्रजयां पशुभिर्ब्रह्म वर्चसेनान्नाधेन समधेय स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥१॥
इससे पहली समिधा रखें ।

२. ॐ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्वोभया तिथिम । अस्मिन हव्या जुहोतन स्वाहा । इदमग्नये-इदन्नमम ॥
ओ३म सुसमिद्धाय शोचिषे घृतंतीव्रं जुहोतन । अग्नये जात वेदसे स्वाहा । इदमग्नये जात वेदसे इदन्नमम ।
इन मन्त्रों से दूसरी समिधा रखें ।

३. ॐ तन्त्वा समिद्‌भिरङ्गिरो घृतेनवर्द्धयामसि । हृहच्छो चायविष्टय स्वाहा । इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्नमम ।
—यजु. अ. ३ मं. १.२.३

तीनों समिधा रखने के वाद घी की आहुति देवें और चमचे का बचा एक बूंद घी कटोरी में रखे जल में टपकाते जावें । इन आहुतियों के देते समय उस मन्त्र का पाठ करें जो घी की डुवाई पहली समिधा के डालने पर पढ़ा था अर्थात ॐ अयन्त इदमं आत्मा इत्यादि ।

इसके वाद कुंड के चारों ओर जल डालें । उसके मन्त्र ये हैं—

१. ॐ आदित्येऽनुमन्यस्व । (आयस्तम्व—गृह. सू. ख. २/सू. ४/पटल—१
इस मंत्र से दक्षिण से पूर्व की ओर जल डालें ।

२. ॐ अनुमतेऽनुमन्यस्व । इस मन्त्र से पश्चिम से उत्तर की ओर जल डालें) ।

३. ॐ सरस्वत्लनुमन्यस्व । (इस मन्त्र से उत्तर से पूर्व की ओर जल डालें) ।

४. ॐ देव सविताः प्रसुव यज्ञं प्रसुवयज्ञपतिम् भंगाय । दिव्यो गन्धर्व केतपूः केतनः पुनातु वाचस्पति वाचि न स्वदतु ॥ (यु. अ. ३०/मं. १)

इससे पूर्व से दक्षिण तथा चारों ओर जल छिड़कावें । नाली वनाई है तो उसे पानी से भर दें ताकि कोई

जीवजन्तु कुंड में आकर न जले तथा पानी अनावश्यक फार्वनडाई आक्साइड को सोख ले।

उपरोक्त मन्त्रों में भगवान से अहिंसा आदि तथा वाणी की मधुरता की प्रार्थना की गई है। इसको सोचकर रोगी को चाहिये कि मधुरभाषी बने, चिड़चिड़ा न बने। सबसे मधुरता से बात करें, क्रोध न करें।

इसके बाद घी की चार आहुतियाँ और दें, उसके मन्त्र ये हैं—

१. ॐ अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम।

—य. अ. २२ मं. २१

इससे वेदी के उत्तर भाग में आहुति दें।

२ ॐ सोमाय स्वाहा। इदम् सोमाय इदन्नमम।

—य. अ. २२ मं. २८

इससे वेदी के दक्षिण भाग में आहुति दें।

३. ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्नमन।

—य. अ. २२ मं. २९

४ ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदम् इन्द्राय-इदन्नमम।

—य. अ. २२ मं. २१

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में आहुति देवें।

अर्थ १. प्रकाशक परमात्मा के लिए। २. परमात्मा के लिए प्रात्यर्थ। ३. प्रजापालक परमात्मार्थ। ४. एश्वर्य सम्पन्न भगवान के लिए यह चार आहुतियाँ समर्पण है। इस प्रकार देवताओं का पूजन करके रोगी घी और सामग्री की निम्न मन्त्रों से आहुतियाँ देवें और हवन के पश्चात उन मन्त्रों के अर्थ पर विचार करें।

सामग्री व घी की आहुति देने के मन्त्र

१. इन्द्रस्य यामहि द्रपित क्रिमे विस्वस्र्य तहर्णी।
तयापिनष्किसं क्रिमीनद्रपदा खल्वां इव॥

—अथर्व सू. ३१. मं. १

२. दृष्टम दृष्टम तृहमथो कुरुकुरुमतृहम।
अल्गाड्न्त्सर्वा छलुनान क्रिमीनवचसाजन्मयामसि।२।

३. अल्गाड्न् हन्मिमहतावधेन दूना अदूना अरसा अभूवन।
शिष्टान-शिष्टान नितिरामि वाचा यथा क्रिमीणांन किश्चिच्छिपातै।३।

४. अन्वान्त्र्यं शीर्षन्य १ मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन।
अवस्कवं व्यघ्वरं क्रिमीनवचसाजम्भयामसि।४।

५. ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोपधीषु पशुष्वप्एवऽन्तः।
ये अस्माकं तन्व माविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमिणाम्।५।

६. मुञ्चामित्वा हविषाजीवनाय
कमज्ञात यक्ष्मादुत राजयक्ष्मात।
ग्राहिर्जग्राह यद्यते देनं
तस्या इन्द्राग्नि प्रभुमुक्तमेतम॥

—अथर्व. का. ३ सु. ११ मं. १

७. यदि क्षितायुर्यदिवा परे तो यदि मत्योयन्तिकं नीतएव।
तमा हरामि निर्ऋते पस्थादस्पार्यं मेनं शतशारदाय॥

८. सहस्त्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषा हर्षमेनम।
इन्द्रो यथैनं शरदो न यात्यति विश्वस्य दुरिस्तस्य पारम्॥३॥

९. शतं जीवम् शरदो वर्द्धमानः
शतं हेमन्तच्छत मुवसन्तान।
शतं त इन्द्रो अग्नि सविता
वृहस्पतिः शतायुषा हविषा हर्षि मेनम्॥४॥

१०. प्रवशतं प्राणपानावन ऽवाहावित व्रजम।
व्यऽन्ये यन्तु मृत्यवो याना हुरित रात्रछतम्॥५॥

११. इहैव स्तं प्राणापानौ माय गात मितो, युवम्।
शरीर मस्याङ्गनि जरसे वहतं पुनः॥६॥

१२. जरायेत्वा परिददामि जरायै निधुवामित्वां।
भद्रा नेष्टव्य ऽन्ये यंतु मृत्यवो याना हुरितरञ्छातम॥

१३. अभित्वा जरिकाहित जामुक्षण मिव रज्जवा।
यस्त्वा मृत्युरम्य धन्तजाय मानं सुपाशया।
तं ते सत्यस्य हस्ताम्यामुद मुञ्चद वृहस्पति॥८॥

१४. अक्षीभ्यांते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षं एवं मस्तिष्काज्जिह्वाया विवृहामिते॥१॥

१५. ग्रीवव्यस्त उष्णिहाम्यः कीकसाम्यो अनुक्यात।
यक्ष्मं दोषरायं ऽमंसाभ्यां बाहुभ्यां विवृहामिते॥२॥

१६. हृदयात ते परि क्लोम्नी हलीक्ष्णात पार्श्वभ्याम।
यक्ष्यं मत स्नाभ्यां प्लीह्नौ यक्रस्ते विवृहामसि॥३॥

१७. आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठो रूदरादधि।
यक्ष्मं कुक्षिम्यां प्लाशेर्नाभ्या विवृहामिते॥४॥

१८. अरुभ्यां ते अष्ठीवदग्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम।
यक्ष्ममसद्यं श्रोणिभ्यां आ सदभससोविवृहामिते॥५॥

१९. अस्तिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्वावभ्योधमनिभ्यः।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गलिभ्यो नखेभ्यो विवृहामिते॥६॥

२०. अङ्गे अङ्गे लोम्नि लोम्नि यस्ते पर्वणि पर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचष्यं ते वयं कश्यपस्य वी वर्हेण विष्वंञ्चं विवृहामसि ।७।

इन मन्त्रों से आहुतियां देते समय रोगी को मन में यह दृढ़ भावना रखनी चाहिए कि वह यज्ञ चिकित्सा द्वारा अपने शरीर के रोम-रोम में घुसे क्षय कीटाणुओं को अवश्य नष्ट करके पूर्ण आरोग्य लाभ करेगा। रोगी को जिस अङ्ग का यक्ष्मा रोग हो उस पर विशेष ध्यान देना चाहिए और यह समझे कि मेरे शरीर के किसी भी अङ्ग में क्षय रोग हो वह अवश्य ही जड़ से दूर हो सकता है। उसके लिए ही मैं यज्ञ कर रहा हूं, साथ ही अन्तिम मन्त्र में चिकित्सक के विविध उद्यमों का सहारा लेने का आदेश किया है। इसका अभिमान नही करना चाहिये कि मुझे यज्ञ सामग्री मालूम हो गई, अब किसी विद्वान चिकित्सक की किसी सम्मति की आवश्यकता नही। न किसी औषधि सेवन की आवश्यकता, न किसी और उपाय की आवश्यकता है। यदि ऐसा विचार करेगा तो पूर्ण लाभ प्राप्त करना दुर्लभ है। क्योकि वेद भगवान ने जहां यक्ष्मा रोग की चिकित्सा का एक उपाय यज्ञ बतलाया है, वहां अनेक अन्य स्थानों पर औषधि सेवन, जल चिकित्सा, सूर्य, वायु, प्रकाश इत्यादि का भी उल्लेख किया है। डॉ० कुन्दनलाल जी का भी ऐसा ही अनुभव रहा है कि रोगी को वास्तविक लाभ तभी होता है जब वह विधिवत् सब साधनों के साथ यज्ञ चिकित्सा करता है। जैसा किसी न्यायालय का कार्य न्यायाधीश से ही होता है, पर यदि भृत्य व लिपिक न हो तो न्यायाधीश का कार्य बन्द हो जावे, इसी प्रकार यज्ञ चिकित्सा के साथ समयानुकूल अनेकों उपायों की आवश्यकता होती है। तो वेद भगवान ने जो विविध चिकित्सा के उपाय बतलाये हैं, वे इसी प्रकार के साधन हैं जिनको अनुभवी चिकित्सक समझता है और किसी उपद्रव के खड़े होने पर शीघ्र उसे शान्त कर सकता है। इसीलिये रोगी किसी भी चिकित्सक को उपेक्षा की दृष्टि से न देखे, सबका सम्मान करना चाहिये। क्योंकि हमारी वैदिक चिकित्सा मे वैद्य सर्वदा आदरणीय है।

यदि सामग्री अधिक हो तो इन्हीं मन्त्रों से बार-बार आहुतियां दी जा सकती है। या स्वस्ति वाचन व शान्ति प्रकरण के मन्त्रों से भी आहुतियां दी जा सकती है। अन्त में निम्नोक्त मन्त्रों को तीन बार पढ़कर तीन आहुतियां देकर यज्ञ समाप्त करना चाहिये।

"ओ३म् सर्वं वै पूर्ण (स्वाहा ३"

विशेष वक्तव्य—१. लेख कलेवर बढ़ जाने से उपरोक्त मन्त्रों के अर्थ नहीं दिये गए।

२. जो रोगी निर्बलतावश टब स्नान करने में असमर्थ हों वे पहिले पानी की पट्टी व कुछ बल आ जावे तब टब में स्नान करें।

३. जो रोगी निर्बलतावश स्वयं यज्ञ नही कर सकता, वह अपने पलङ्ग के पास किसी दूसरे व्यक्ति से यज्ञ करवाकर स्वयं खुले बदन से उसका धुंआ लेता रहे तथा यज्ञ-समय व आधे घन्टे पश्चात तक गहरी सांसे लेता रहे।

४. एनिमा का प्रयोग निर्भय करें, इससे हानि नही होती। चतुर रोगी केवल एनिमा, यज्ञ, अनुकूल भोजन एवं शुद्ध वायु से ही स्वस्थ हो जाता है।

५. यज्ञ चिकित्सा में भोजन का विशेष महत्व है। भोजन में फल व दूध का स्थान मुख्य रहे, अन्न का गौण। जब रोग अधिक समय तक काबू में न आवे तो नमक व अन्न सर्वथा छोड़कर केवल दूध व फल पर रहना चाहिए और बिना नमक की उबली सब्जी भी ले सकते है।

६. अधिक जीर्ण रोगियों के लिए गंगा जी अथवा समुद्र में नाव पर रहने का प्रबन्ध करना चाहिये अथवा पर्वत पर चीड़ के वृक्ष के बीच रहे। पर यह सब धनी लोगों की विधियां है।

७. चित्त प्रसन्न रखना और ईश्वर भक्ति भी इस चिकित्सा विधि में अपना महत्व रखते है।

८. यज्ञ चिकित्सा में दृढ़ विश्वास रखे। लोगों के कहने में आकर संशय में पड़कर अपना मनोबल क्षीण न होने दें।

९. क्षय रोगी के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण किये रखना नितान्त आवश्यक है।

अब पाठकों के लिए साधारण क्षय रोगी की दिनचर्या की एक रूपरेखा प्रस्तुत करते है—

१—प्रातः ५ से ६ बजे ईश्वर प्रार्थना और शौच के बाद एक हफ्ते तक रोज, फिर दूसरे और चौथे दिन बस्तोकर्म।

२—प्रातः ७ बजे—उपस्थ स्थान (Friction Sitz Bath) के पश्चात कम्बल ओढ़ टहलें या लेटें।

३—प्रातः ८ बजे—जलपान, दध व सन्तरा अथवा दूध व किशमिश।

४—प्रातः सवा आठ बजे—हवन (यज्ञ)।

५—हवन के पश्चात् साढ़े १० बजे तक—हवा व रोशनी में नंगे वदन लेटना। यदि हवा सहन न हो तो चादर ओढ़ लें और धीरे-धीरे स्वभाव डालें। जाड़ों में धूप में लेटें।

६—प्रातः साढ़े १० बजे—पूरा स्नान, ईश्वर प्रार्थना व उपासना।

७—प्रातः ११ बजे—सब्जी, रोटी व फल खाना। भोजनोपरान्त गाय का ताजा मट्ठा पीना।

८—११ से १ बजे तक—आराम करना, मनोविनोद करना, समाचार पत्र सुनना, गाना सुनना।

९—१ बजे जल पीना।

१०—१ से ३ बजे तक—हवा व रोशनी में फिर लेटना।

११—३ बजे—पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी बांधना।

१२—४।। बजे शाम—फल खाना अथवा मट्ठा पीना।

१३—५ बजे शाम—हवन करना'

१४—६ बजे शाम—कटि स्नान, उसके वाद टहलना या लेटना।

१५—शाम ७।। बजे—सब्जी, रोटी, दूध, किशमिश लेना, उसके वाद थोड़ा टहलना।

१६—रात्रि ८ बजे—मनोविनोद, गपशप लगाना इत्यादि सुनना और खूब हँसना, फिर शयन (सोना)।

यह जरूरी नहीं कि आप उपरोक्त कार्यक्रम अपनायें हीं। यह तो एक नमूना है। अपनी सहूलियत के अनुसार आपको अपना कार्यक्रम तय कर लेना चाहिये।

क्षयज ज्वर :: पृष्ठ २१३ का शेषांश

ग—(१) वलादि चूर्ण १ ग्राम, शृङ्गार्जुनाद्य चूर्ण १ ग्राम, यक्ष्मारि लोह ५०० मि.ग्रा, राजमृगांक रस २०० मि.ग्रा., विषाण भस्म ३०० मि.ग्रा., प्रातःसायंकाल।

(२) अश्वगन्धा घृत ५ ग्राम, वासावलेह १५ ग्राम, औषध संख्या १ के साथ देवें। ऊपर से गर्म जल पिलावें।

(३) द्राक्षासव १० मि.ली., पिप्पल्यासव ५ मि.ली. वरावर पानी मिलाकर खाने के वाद।

घ—(१) च्यवन प्राशावलेह १५ ग्राम, अमृतप्राश १० ग्राम, मुक्तापंचामृत २०० मि.ग्राम, अभ्रक भस्म २०० मि.ग्राम (१०० पुटी), विषाण भस्म ५०० मि.ग्राम, सितोपलादि चूर्ण २ ग्राम, स्वर्ण वसन्त मालती १५० मि.ग्राम, एक मात्रा। सुवह शाम गरम जल से देवें।

(२) द्राक्षारिष्ट २० मि.ली., वरावर पानी मिलाकर खाने के वाद।

विशेष—चन्दनवला लाक्षादि तैल और शङ्खपुष्पी तैल, श्री विष्णु तैल, वासा चन्दनादि तैल का अभ्यङ्ग एक-एक अथवा दो-दो तैलों के मिश्रण से अवश्य करें।

क्षयज ज्वर की चिकित्सा में रुदन्ती का प्रभाव

परमादरणीय श्री विश्वनाथ द्विवेदी जी का एक लेख "सचित्र आयुर्वेद" में पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था—"रुदन्ती (ख्रुथी-कोई) या मरजा दुधाट (Marjadudhaut) क्षय रोग की महौषधि है। इसके सेवन से फेफड़ों के भीतर के व्रण भर जाते हैं और एक्सरे लेने पर उन व्रणों के चिन्ह भी नहीं दिखाई देते।" विद्वान लेखक के शब्द से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ और अपने रोगियों पर इसके प्रयोग का विचार किया किन्तु अवसर प्राप्त नहीं हुआ। विभिन्न पत्रिकाओं में रुदन्ती पर विभिन्न विद्वानों के अनुभव पढ़े तो और उत्सुकता बढ़ी। सौभाग्यवश क्षयरोग की एक रोगिणी मेरे चिकित्सालय में आयी। कृशकाय, रक्ताल्पता, अरुचि, खाँसी, हर समय ज्वर ९९.५° एवं दिनों दिन वजन की कमी। एक होमियोपैथ बन्धु से अपनी चिकित्सा करा चुकने के बाद वह मेरे यहाँ आयी। उसकी इतिवृत्त सुनने के बाद उसकी E. S. R. परीक्षा की जो एक घण्टा में ४८ आया और मैंने अन्य लक्षणों के आधार पर क्षयरोग होने की घोषणा कर दी। क्षय का नाम सुनने पर रुग्णा के घर वालों ने पूछा—"यह क्षय क्या होता है?" मैंने जब उसे T. B. कहा तो वह घबरा गया और उसके नयन सजल हो गए। उसने पूछा—"क्या एक्सरे करवाना होगा? क्या यह नहीं बचेगी? क्या आप इसकी रक्षा कर सकते हैं? क्या ...., क्या.........?" ढेर सारे प्रश्न। मैंने उसे आश्वस्त किया——"पहले मलेरिया से गांव के गांव शून्य हो जाते थे लेकिन अब मामूली चिकित्सा भी इसकी चिकित्सा सरलतापूर्वक सम्पादित कर लेती है। यही हाल T.B. के साथ अब हो गया है। तुम लोग फिक्र मत करो मैं इसकी चिकित्सा का भार वहन करने को सहर्ष प्रस्तुत हूं।" मेरी बातों से रुग्णा काफी प्रभावित हुई और उसकी चिकित्सा निम्न प्रकार से प्रारम्भ की—

(१) रुदनो कैंपसूल (स्वर्ण वसन्त मालती युक्त) प्रातः— सायं और रात्रि में शयनकाल के समय १—१ कैंपसूल दिन में ३ बार ताजे जल के साथ।

(२) च्यवनप्राश अवलेह १-१ तोले प्रमाण की मात्रा में प्रातः और रात्रि में दूध के साथ।

(३) महाचन्दनादि तैल (केशर कस्तूरी युक्त) मालिश के लिये।

उपर्युक्त व्यवस्था ४० दिन तक चली और ४० दिन के बाद घर पर मेरी बुलाहट हुई। मैं उसके घर गया और उसके चेहरे पर दृष्टिपात करने से मुझे आश्चर्यजनक परिवर्तन परिलक्षित हुआ। कास के वेग काफी कम हो गये थे, शारीरिक क्षीणता भी दूर होती जा रही थी, शरीर में रक्त की वृद्धि भी हो गई थी, छाती का दर्द भी कम हो गया था और भूख भी खुलकर आने लगी थी। रुग्णा को इस अवस्था में पाकर मैं काफी उत्साहित हुआ और रुदन्ती के प्रभाव पर मुग्ध हो गया। रुग्णा और उसके घर वाले भी आयुर्वेद के प्रति श्रद्धावनत थे। मैंने सभी व्यवस्थाओं को पूर्ववत ही चालू रखा। मात्र रुदनो कैंपसूल को एक बेला घटाकर सिर्फ दिन में दो बार दिया जाने लगा। यह व्यवस्था ४ माह तक चली। अब रुग्णा पूर्णतः स्वस्थ परिलक्षित हो रही है। किसी प्रकार की शिकायत नहीं रही है। अब केवल रुदनो कैंपसूल दिन में एक बार ले रही है।

द्वितीय रुग्णा—फूलहसन मियां की बीबी रमुनिशं, पोस्ट—बिस्फी, जिला—दरभंगा की मेरी चिकित्सा में आयी। अरुचि, क्षुधानाश, मस्तिष्क में चक्कर, कफ और खाँसी, शारीरिक दुर्बलता, साथ ही मासिक स्राव भी बन्द था। एलोपैथिक के चिकित्सक द्वारा उनकी परीक्षा और चिकित्सा चली। चिकित्सा में Bistrepen Fort 15 vial, Isonex 100mg—50tab, Minadex Syrup और Vitamiu 'B' Complex tab, आदि औषधियां चलीं। आशानुरूप लाभ नहीं पाकर और आर्थिक दुरावस्था के कारण डाक्टरों की मोटी फीस और बहुमूल्य औषधियां के क्रय की शक्ति असमर्थता से वह आयुर्वेद की शरण में आयें। इस रुग्णा को भी निर्मल आयुर्वेद संस्थान की 'रुदनो

कैंपसूल' (स्वर्ण वसन्तमालती युक्त) दिन में ३ बार दिया जाने गया। सहायक औषधि के रूप में अश्वगन्धा चूर्ण एवं सितोपलादि चूर्ण अजापञ्चक घृत दिया गया। लगभग तीन माह तक उपर्युक्त चिकित्सा चली और रुग्णा पूर्णतः निरोग हो गयी। उसके शरीर में रक्त बढ़ गया और नियमित मासिक स्राव भी प्रारम्भ हो गया।

रुदनो कैंपसूल निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामूँ भांजा रोड, अलीगढ़ द्वारा निर्मित है जो दो प्रकार की होती है—

१. रुदनो कैंपसूल साधारण और २. रुदनो कैंपसूल स्वर्ण वसन्तमालती युक्त। साधारण कैंपसूल में रुदन्ती घनसत्व, लघुमालती वसन्त, प्रवाल भस्म और सितोपलादि चूर्ण है। विशेष कैंपसूल में साधारण कैंपसूल में पड़ने वाले सभी घटक विद्यमान हैं ही, साथ ही लघुमालती वसन्त के स्थान पर स्वर्ण वसन्त मालती नं० १ भी है जिससे यह विशेष उपयोगी और लाभप्रद बन पायी है। प्रवाल भस्म की विद्यमानता से निर्मल आयुर्वेद संस्थान के ये कैंपसूल पित्त का भी शमन करते हैं। क्षय के रोगियों के लिए रुदन्ती वरदान से किंचित भी न्यून नहीं है। क्षय के अतिरिक्त यह जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, धातुगतज्वर, धातुक्षीणता और हृदय रोग में भी रामबाण है। गर्भवती स्त्रियों और छोटे बच्चों को भी निर्भयतापूर्वक इसका प्रयोग कराया जा सकता है। क्योंकि यह बिल्कुल हानिरहित और निरापद है। क्षय रोग की चिकित्सा में एलोपैथिक डाक्टरों द्वारा प्रयुक्त Streptomycin, P A S आदि की तरह यह बिल्कुल हानिकर नहीं है। हम अपने अनुभवों के आधार पर जोर देकर कह सकते है कि अगर रुदन्ती का प्रयोग क्षय रोगियों पर निर्भयता और धैर्यपूर्वक कराया जाय तो भारतीयों का, जो इस दारुण रोग से पीड़ित है महान् उपकार होगा और राष्ट्र की करोड़ों रुपये कीराशि विदेश में इस रोग की औषधि के मद में जाने से बच जायगी

—डा० जे० एन० गिरि, मेडिकल जर्नलिस्ट
धजवा, पो० नूरचक (मधुबनी) विहार

फरवरी+मार्च १९८२

—प्रकाशक—

निर्मल आयुर्वेद संस्थान अलीगढ़

मंथर ज्वर के कृमि
"Bacillus Typhosus"
यह जीवाणु आंतों में पहुंचें तो शोथ और क्षत पैदा कर देते हैं ॥
'मंथर ज्वर में अंत्र शोथ'
१
२
चित्र में नं० १, २ बिन्दु वाला स्थान शोथयुक्त है
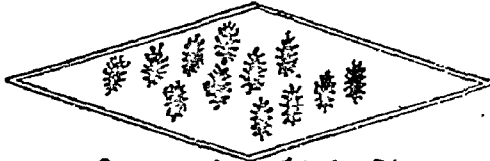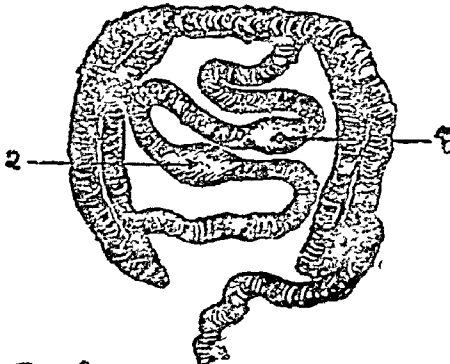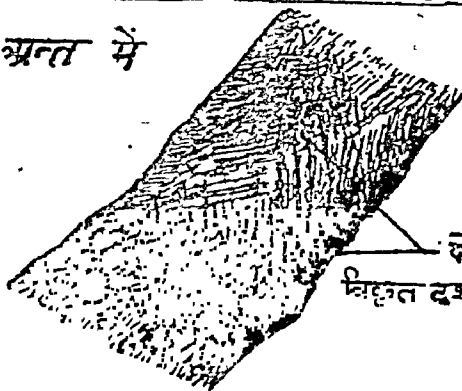
मंथर ज्वर में आंतों के क्षत
चित्र नं० १, २, ३ देखें
प्रारम्भ में =
क्षत
१
२
मध्य में =
क्षत
आंतें चीर कर देखने पर चित्र नं० १, २, ३ की तरह दिखलाई देते हैं।

३
अन्त में
क्षत
विकृत दशा में
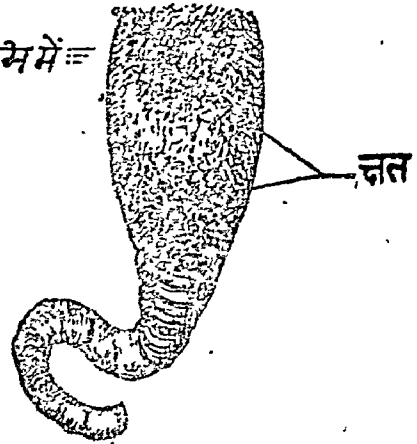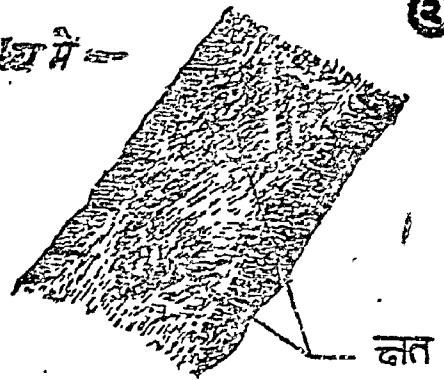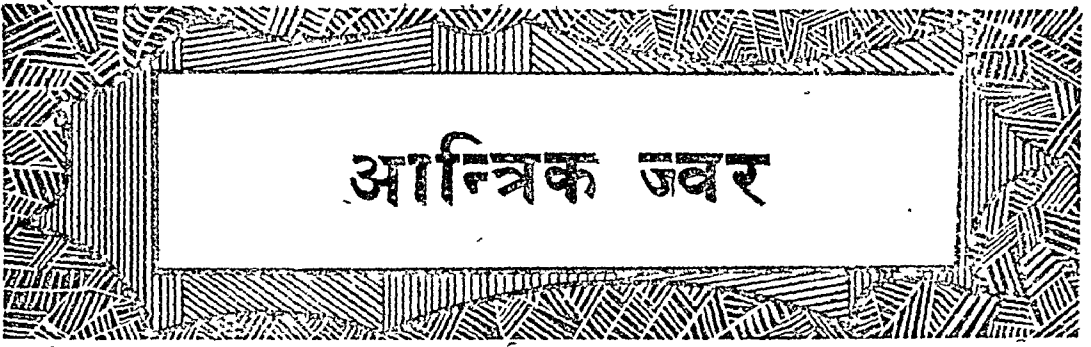
डॉ० डी० पी० मालाकार राजवैद्य, आयुर्वेद रत्न चिकित्सक रत्न, आयु० वृह०, एम० एस० सी० ए०
जनपद आयुर्वेदिक अस्पताल, बुन्देली (रायपुर) म०प्र०

पर्याय—आंत्रिक ज्वर, मंथर ज्वर, मोतीझरा, मोतीझाला, पानीझाला, म्यादी बुखार, मधुर ज्वर, मौक्तिक ज्वर, विषम, आलसमाय, तोरकी, मुबारकी एन्टरिक फीवर (Enteric Fever), टाईफाइड फीवर (Typhoid Fever) आदि कहते हैं।

निदान—

अत्यधिक मार्ग चलने से जिनका शरीर थक गया है या अधिक उपवास करने के कारण जो क्षीण हो गये है, या दुर्गंधपूर्ण स्थान में रहने वाले हैं, ऐसे व्यक्तियों को प्राय: इस रोग से पीड़ित रोगियों के मल आदि से संपर्कित दूषत भक्ष्य (खाने योग्य) और पेय (पीने योग्य) पदार्थों के सेवन से सभी ऋतुओं में घोर मंथर ज्वर होता है, किन्तु साधारण लोगों को ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद ऋतु में भयानक लक्षणों से युक्त वह (मंथरक) दिखाई पड़ता है। इसका दूसरा नाम आन्त्रिक ज्वर भी है। सामान्य कारणों का उल्लेख कर दिया गया है। अब विशेष कारण का उल्लेख करते हैं। वस्तु: 'वैसिलस टाईफोसस' नामक दंडाकार कीटाणु ही इस रोग के मूल कारण हैं जो कि रोगी के रक्त, मूत्राशय, मल, स्वेद, पित्ताशय, प्लीहा, पिड़का और आन्त्रिक व्रण द्वारा संक्रमण करता है। खाद्य, पेय वस्तुओं में इनकी उपस्थिति से भी यह कीटाणु मनुष्यों के शरीर में प्रवेश पाकर रोग पैदा करते हैं। (कीटाणुओं का चित्र पृष्ठ २२६ पर देखें)।

सम्प्राप्ति—

मल, मूत्र तथा स्वेद में स्थित दोषों के संसर्ग (दूषित भक्ष्य तथा पेय पदार्थों के सेवन आदि से) नानाविधि संक्रमण के कारणों से उक्त जीवाणु विशेष रूप से एक व्यक्ति से दूसरे पर संक्रान्त होते हैं। इस भांति वे संक्रमण करके प्रथम अन्त्र में प्रवेश करते हैं। उसके पश्चात अन्त्र की भित्तियों में स्थित ग्रन्थियों को शोथयुक्त कर रस रक्त तथा दोषों को शीघ्र ही कुपित कर देते हैं। तत्पश्चात् क्षुद्र अन्त्रों के अंतिम भागों को धीरे धीरे क्षतयुक्त कर देते हैं। इन अन्त्र क्षतों की क्रमश: वृद्धि होती है तथा क्षुद्र अन्त्रों के भागों में स्थित यह क्षत बढ़ते बढ़ते आन्त्र को छेद कर पार हो जाता है जिससे उदरस्था कला में शोथ उत्पन्न हो जाता है। इसी रीति से क्षत के बढ जाने पर जब कभी मल त्याग के समय रक्त का स्राव होने लगे तो वैद्य को समझ लेना चाहिए कि रोगी के अन्त्र भाग को क्षत पार कर गया है और रोग असाध्यावस्था में पहुंच गया है।

पूर्वरूप—

आन्त्रिक ज्वर की पूर्वरूपावस्था में रोगी के सिर में व्यथा, अरुचि, बेचैनी, आंखों के सामने अंधेरा छा जाना, शरीर में अवसाद, विबंध आदि लक्षण एक सप्ताह तक किसी को प्रकट किसी को अप्रकट रूप से होते हैं।

रूप—

इसके बाद आठवें दिन पूर्वोक्तपूर्व रूप के लक्षण स्पष्ट प्रकट होकर लक्षण स्वरूप हो जाते हैं। उस समय रोगी का ज्वर क्रमश: अन्य लक्षणों के साथ बढ़ने लगता है और ज्वर का तापमान १०४ या १०५ डिग्री तक हो जाता है। मन्थर ज्वर में रोगी की प्लीहा भी इस सप्ताह में बढ़जाती है और जीभ, ग्रीवा, तथा उदर भाग में मोती के समान आभा वाले खस के दानों से कुछ बड़े

आकार के चमकीले दाने भी निकल आते हैं, जो उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं। यूरोप देशवासियों में ये दाने पूर्वोक्त स्थानों में ही लाल रङ्ग के होते हैं। जीभ मैली, सूखी तथा रक्तवर्ण के अंकुरों से सर्वत्र व्याप्त तथा होती है, मुख की आकृति चिन्तारहित सी दिखाई पड़ती है। इस प्रकार अन्यान्य भी सन्निपातिक लक्षण रोगी में प्रकट होते हैं। इसके तृतीय या चतुर्थ सप्ताह में उपद्रवों के सहित यह ज्वर शांत हो जाता है। अधिकतर तीसरे सप्ताह
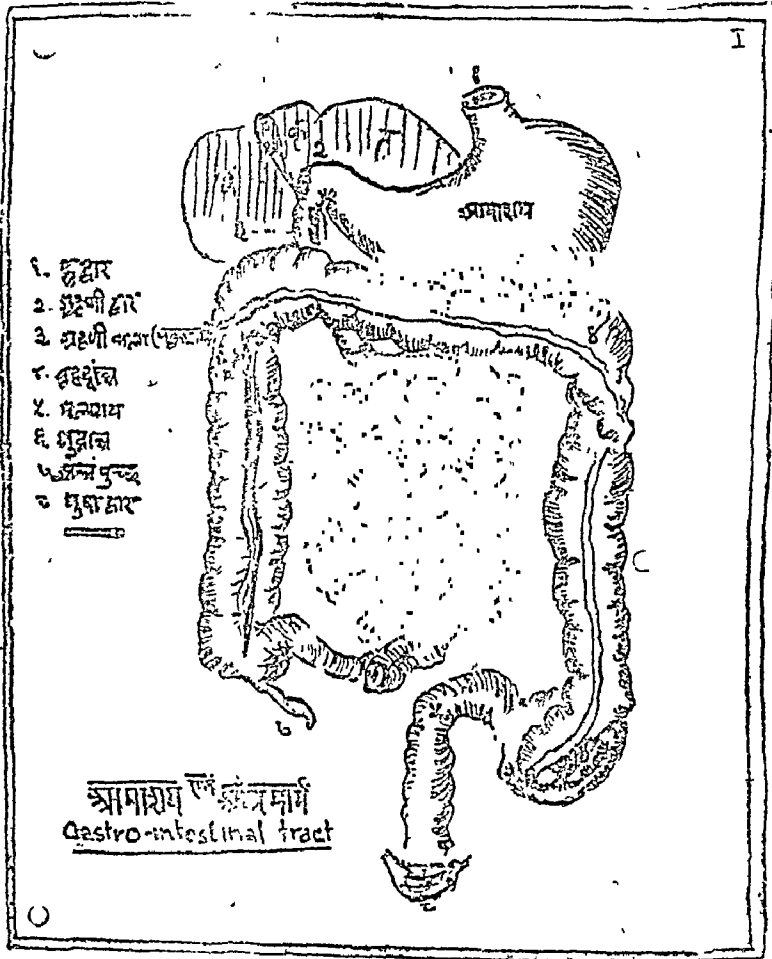
कभी फटी हुई रहती है और उदर आध्मान युक्त रहता है। इन सब लक्षणों के क्रमशः प्रकट होने पर ज्वर का तापमान पूर्वोक्त (१०४, १०५) डिग्री तक पहुंच जाता है। यह दशा ज्वर होने के प्रथम सप्ताह में रहती है।

उसके बाद द्वितीय सप्ताह में ज्वर का तापमान पूर्वोक्त दशा में तो बना ही रहता है। किन्तु रोगी को प्रलाप, तन्द्रा, कास, प्रमोह, आक्षेप, दुर्बलता, मुखशोष आध्यमान तथा अरति (किसी काम में मन का न लगना) भी हो जाती है। जीभ किनारों पर रक्तवर्ण की और मध्य में मैली तथा कर्कश एवं फटी सी दिखाई पड़ती है। नेत्र स्तब्ध तथा तेजहीन होजाते हैं। ज्वर का ताप अत्यधिक रहने पर भी नाड़ी की गति अत्यन्त चंचल नहीं

में ही ज्वर छूट जाता है। इसमें निरन्तर कुपथ्य करने वाले रोगी को उपद्रव अधिक बढ़ जाते हैं अतः यत्नपूर्वक कुपथ्य से बचना अत्यावश्यक है।

साध्यासाध्यता—

जब मंथर ज्वर वाले रोगी को बराबर कुपथ्य करते रहने से दैवात अन्त्रगत यक्ष्मा (क्षय) रोग हो जाता है तब रोगी के दोनों फुफ्फुस भी रोगाक्रान्त हो जाते हैं और अन्य उपद्रव भी होजाते हैं तब यही मन्थर ज्वर 'आन्त्रक्षय' नाम से असाध्य कहा जाने लगता है और बहुत यत्न करने से कोई कोई रोगी बचते हैं।

जब रोगी को अतिसार अधिक, तीव्र ताप, विषाक्तता (टाक्सीमिया) रक्तस्राव और उदरावरणकला में शोथ उत्पन्न

हो जाता है तब भी वह असाध्य समझा जाता है और इसके अतिरिक्त अन्यान्य लक्षण ऊपर जो आयुर्वेदिक चिकित्सकों द्वारा कहे गये हैं वे यदि दैवात उग्ररूप से प्रकट होवें तो अत्यन्त असाध्य समझा जाता है। उस समय सद्वैद्यों द्वारा उत्तमोत्तम औषधादि की उचित रूपेण व्यवस्था करने से ही कोई कोई अत्यन्त भाग्यशाली पुण्यवान रोगी का ही बचना संभव होता है।

विशेष वक्तव्य—मन्थर ज्वर प्रायः पित्तोल्वण त्रिदोषज होता है, किंतु विभिन्न अवस्थाओं में अथवा अपचार से अन्य दोषों की भी उल्वणता हो सकती है। इस ज्वर से पीड़ित विभिन्न रोगियों में पूर्वोक्त सन्निपात ज्वर के विविध रूपों में से किसी भी एक प्रकार के लक्षण मिल सकते हैं। वैसे आन्त्रिक ज्वर एक भयानक रोग है। इसमें १५-२० प्रतिशत रोगी मर जाते हैं। बच्चे इस रोग को बड़ों की अपेक्षा अच्छा सह सकते हैं और उनमें मृत्यु संख्या भी थोड़ी है परन्तु दूध पीते बच्चे इससे कम बचते हैं। अति मोटे, अति क्षीणकाय तथा शराबी मनुष्य को यह रोग बहुत भयानक है। कब्ज अतिसार की अपेक्षा अच्छा लक्षण है।

उपद्रव—

अति तीव्र ताप, टाक्सीमियां, प्रलापादि, आध्मान, आन्त्रिक रक्तस्राव, उदरकला शोथ, फुफ्फुस प्रदाह, यह सबसे अधिक होने वाला उपद्रव है। कई बार आन्त्रिक ज्वर फुफ्फुस प्रदाह के साथ ही आरम्भ होता है। वृक्क शोथ, शय्या व्रण, रक्त स्कन्दन, विशेषकर उरु की शिरा में हो जाता है।

रोग मीमांसा—

लक्षणों एवं गन्ध से रोग पहचाना कठिन नहीं। ज्वर का क्रमशः चढ़ना, ताप की अपेक्षा नाड़ी की गति का मंद होना और जीभ का वर्ण इसे बिल्कुल स्पष्ट कर देते हैं। परन्तु जब ज्वर अकस्मात या शीघ्र ही अपनी सीमा पर पहुंच जाय तो इसे विषम ज्वर एवं अन्य सन्तत ज्वरों से प्रथक करना कठिन होता है।

इसमें सीरम की 'विडाल परीक्षा' और रक्त, मल या मूत्र से कीटाणु वृद्धि करके रोग की पहचान की जाती है। रक्त में से कीटाणु वृद्धि तीसरे दिन भी प्राप्त की जा सकती है। मूत्र में 'ड्यानोक्रिया' की सिद्धि भी बहुत कुछ रोग ज्ञान में सहायक होती है।
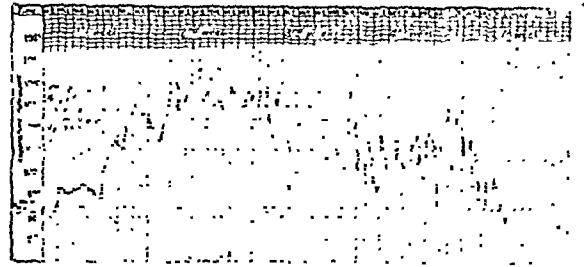
आन्त्रिक ज्वर रोगी का तापमान चार्ट

चिकित्सा सम्बन्धी सावधानी—

आन्त्रिक ज्वर के रोगी के मलादि के निराकरण का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। परिचारक को अपनी या दूसरों की रक्षार्थ स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए अर्वाचीन प्रतिरोधक वैक्सीन (T. A. B. Vaccine) का इन्जेक्शन बहुत लाभदायक है। इस रोग में चूंकि आन्त्र में व्रण हो जाते हैं इसलिए भोजन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। भोजन सदा मृदु और तरल हो, कोई भी कठिन खाद्य पदार्थ न दिया जाय, अन्यथा व्रण बढ़ जावेंगे और ज्वर तीव्र हो जावेगा।

रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिए। मल, मूत्र त्याग के लिए भी चारपाई से न उठने दें, लेटे-लेटे ही सब क्रियायें होनी चाहिये। सदा लेटे रहने से शय्या व्रण हो जाने का भय रहता है। अतः रोगी के पार्श्व बदलवाते हैं और शरीर पर शुद्ध मद्यसार (रैक्टीफाइड स्प्रिट) लगाकर जिंक बोरिक, स्टार्च, डस्टिङ्ग पाउडर मल दें। यदि रोग लम्बा हो जावे तो उसके नीचे वायु या जल का थैला (गद्दा), बिछौने के स्थान पर बिछा देना चाहिए। जो-जो उपद्रव पैदा हों उनकी यथोचित चिकित्सा करनी चाहिए। यदि कोष्ठबद्धता हो जाय तो मृदु विरेचन दें। मृदु विरेचन में हम निम्न योग काम में लाते हैं—

योग—१ पाव गौ दुग्ध में समान भाग पानी मिलाकर उसमें १ छटांक मुनक्का उबाल लें, जब पानी-पानी जल जाय तब पूरे मुनक्का रोगी को खिला देवें एवं शेष दूध भी पिला देवें। यह क्रिया सोते वक्त रात्रि में करें। यदि अतिसार हो तो सिद्ध प्राणेश्वर रस, कर्पूरेश्वर रस, शङ्ख भस्म, पाठादि क्वाथ या कर्पूरासव द्वारा तुरन्त उपचार करें। रोगी का शरीर प्रतिदिन अङ्ग प्रोन्छन करते रहें, मुख और दांतों को भी साफ करते रहें। शय्या

व्रण न हो इसलिये उपरोक्त सावधानी भी रखें। रोगियों के करवट न वदलने से तथा फेफड़ों में रक्त संचार के जमा होजाने से रक्त संचयज श्वसनक ज्वर (Hypostatic Pneumonia) भी हो जाता है। आन्त्रिक ज्वर के रोगी की उदर परीक्षा चिकित्सक को प्रतिदिन करनी चाहिए। समय पर अतिसार एवं आध्मान को रोकने से भयानक उपद्रव और उनके घातक परिणामों का निवारण हो सकता है।

इस रोग में दूध सर्वोत्तम आहार है। कम से कम दिन भर में १॥ किलो दूध अवश्य देना चाहिये। एक वार अधिक न देकर २-३ घंटे के अन्तर से थोड़ा थोड़ा दें रात्रि में सोये हुए रोगी को न उठायें। यदि दूध से पाचन में कोई विकार हो जावे तो उसमें यवयूष, चूर्णोदक (Lime Water) अन्यथा सौंफ श्रृत जल को यथावस्था तिहाई या चौथाई भाग मिलाकर दें। दूध में चाय या काफी मिला कर भी दे सकते हैं। वीच वीच में यथोचित फल स्वरस भी दें। यदि इस तरह भी दूध न पचे तो पिप्पली श्रृत दूध वनाकर अथवा दूध के साथ सोडियम साईट्रेट (Sodium Citrate) ५ से १० ग्रेन अथवा लैक्टिक एसिड(Lactc acid) की गोलियां दे सकते है। इतने पर भी न पचे तो छेना का पानी प्रयोग करना चाहिये। साथ-२ लवंग श्रृत जल, यवयूप, लाज पेया, सावूदाना, ग्लुकोज, विस्कुट, डवल रोटी, वाजरा का दलिया, सांवरिया, एवं खेडी (अनाज विशेष) का पतला दलिया मूंगदाल के पानी से या पंचकोल श्रृत मूंग दाल के पानी को वलावल अनुसार दे सकते हैं। सेव, वेदाना, अंगूर, मुनक्का, मौसम्वी आदि फल एवं मेवे भी दे सकते हैं।

अर्वाचीन विशेष चिकित्सा—

क्लोरोमाईसीटीन टाईफाईड के लिए रामवाण वत कार्य करती है, २-४ दिन में ही ज्वर उतर जाता है। २५० मि० ग्रा० के २-२ कैप्सूल हर ४-४ घंटे वाद दिन रात लगातार देना चाहिए अथवा १-१ कैप्शूल हर दो दो घंटे पर दें, वीच में भूल न होने पावे। ज्वर उतर जाने पर ४८ घंटे तक इसी क्रम से जारी रखें। वाद में २-२ केप्शूल हर ८ घंटे वाद २-३ दिन तक दें।

क्लोरोमाईसीटीन के स्थान पर सिंथोमाईसीटीन या एक्रोमाईसीन आदि जो उसी के रूप हैं इसी क्रम और मात्रा से दे सकते है। अगर रोगी मुख से लेने लायक अवस्था में न हो याने अचेत हो तो उपरोक्त दवा का इंजेक्शन दिन में दो वार दें। होश आने पर पुनः मुंह द्वारा औषधि दें। प्रायः वेहोश रोगी की इस अवस्था में जान खतरे में रहती है।

उपरोक्त चिकित्सा में हमारे अनुभव—

उपरोक्त केपशूल से उपरोक्त मात्रा में चिकित्सा करने से कई रोगियों को उक्त दवा का रीएक्शन होता देखा गया है। फलस्वरूप सर्वांग शीतता, अतिस्वेद, प्रलाप एवं हृदयावसाद की स्थिति होती देखी गयी है उसका समुचित इलाज न होने से जितने जल्दी इस दवा से रोग अच्छा होता है उतने ही जल्दी रोगी का स्वर्गारोपण भी होजाता है। या फिर ज्वर जल्दी उतर कर ४-८ दिन बाद पुनः आक्रमण कर देता है जो कि भयावह होता हुआ क्षय में परिणत हो जाता है। फिर उपरोक्त दवाइयों के सिवया आयुर्वेदिक दवाइयों जिनके द्वारा अनेक रोगियों का इलाज किया जा चुका है उनको लिखा जाता है—

(१) वृहत कस्तूरी भैरव रस अद्रख स्वरस या तुलसी स्वरस एवं मधु के साथ दिन में दो वार उसके अनुसार मात्रा निर्धारित कर रोगी को पिलाएं। इससे सोपद्रव टाईफाईड, टाईफस पाराटाईफाइड, विषम ज्वर एवं अन्यान्य ज्वरों का पाक होकर उतर जाते हैं तथा रोगी को दुवारा नही भुगतना पड़ता। यह अनुभूत है।

(२) मधुरांतक वटी—वलावलानुसार उचित उपरोक्त अनुपानों से देने से ज्वर उपद्रवों सहित नष्ट हो जाते हैं। यह अनुभूत हैं।

(३) आयुर्वेद की विल्कुल सस्ती दवा संजीवनी वटी जो कि गरीवों के लिये संजीवनी वूटी वत् सावित हुई है उक्त ज्वरों में उपरोक्त अनुपान से दें। यह भी अनुभूत है।

(४) घिसारा या घासा—सौंठ, हर्रा, मिश्री, सैंधव, हल्दी, वाल हरड़, मुलेठी १-२ आने भर लेकर इनको उवले पानी में सिलवट्टे पर चन्दनवत घिसकर सवको एकत्र मिलाकर उसमें मधु भी मिलाकर रोगी को दिन में

दो बार पिलादें । यह देहाती योग है व बडा ही लाभप्रद है। यह भी अनुभूत है ।

अनुभूत चिकित्सा—

आध्यमान—यदि आध्यमान हो तो दूध और शक्कर बन्द करदें, छेना का पानी या "अल्ब्यूमिन वाटर"—(अण्डे की सफेदी का पानी) दें ।

अल्ब्यूमिन वाटर निर्माण विधि—१०० ग्राम उबले हुए पानी में मुर्गी के अंडे का खोल पत्थर पर या खरल में पानी में बारीक पीसकर पानी में मिलालें। बस दवा तैयार है । चाहें तो ग्लुकोज मिला लें ।

(१) औषधि—साधारण अवस्था में शंखवटी, गंधक वटी, लशुनादिवटी और जम्बीर द्राव से लाभ होता है, परन्तु अति तीव्र अवस्था में ये काम नहीं करतीं ।

(२) हिंग्वादि वटी १-१ गोली अर्क सौंफ से हर ३-३ घंटे पर दें।

(३)–(क) सौंफ ४ माशा, एला १ माशा, अजवाइन २ माशा, सोंठ २ माशा, दालचीनी २ माशा, लवंग, पोदीना १-१ माशा २५० ग्राम पानी में खौलावें । चतुर्थांश रहने पर छानकर मिलालें । रोगी की रुचि अनुसार उसमें सैंधव भी मिला सकते है ।

(ख)– अजवाइन, सौंफ, पोदीना, एवं जीरा के अर्कों को बराबर मिलाकर दिन में ५-७ बार पिलावें ।

(ग) सत्व दालचीनी, सत्व लवंग, सत्व अजवाइन सत्व सौंफ सब १–१ बूंद, पीपरमेंट १/४ रत्ती, कपूर १/४ रत्ती मिलाकर कैंपसूल में भरकर हर ४ घण्टे बाद देवें ।

(४) १० से १५ बूंद तारपीन तेल को कैंपसूल में भरकर ६ से ८ घंटे पर देने से विशेष लाभ होता है ।

(५) तारपीन तेल पेट पर लगाकर उसपर कपड़ा रख हाटवाटर बैग से सेक करें । इससे शूल में आराम मिलता है ।

(६) पेट पर गूगल, हींग, एलुवा और अहिफेन लगावें अथवा तिल या गुल्ली की खली में हींग और एलुवा मिलाकर लेप करें। बकरी की लेंडी का लेप भी लाभप्रद है ।

(७) साधारण जल में ४ ड्राम तारपीन तेल एवं, थोड़ा हींग मिलाकर एनीमा दें ।

(८) आन्त्र की वायु निकालने के लिये फ्लैटस ट्यूब (Flatus tube) डालें। यदि यह ट्यूब न हो तो बड़े से बड़ा (१२ नं० का) कैथीटर गुदा द्वारा पेट में डालें कम से कम १ फुट् अन्दर जाना चाहिये, गैस निकलेगी ।

(९) अत्यन्त आध्मान में मुख द्वारा आहार वन्द कर दे । शिरागत इंजेक्शन द्वारा ग्लूकोज ३५% का १०० या २०० सी. सी. दें तथा इसके साथ हाईड्रोलेज इन्जेक्शन दें, या १ पाव दूध में खूब शक्कर मिलावें ताकि गाढ़ा हो जावे । बाद में गुनगुना गरम करके वस्ती दें ।

अतिसार आनन्द भैरव(अतिसार), सिद्धप्राणेश्वर रस गंगाधर रस कर्पूररस, शंखभस्म आदि उचित अनुपान से दें।

रक्तस्राव—यह स्मरण रहे कि अवशीकृत अतिसार में ही प्रायः व्रण से रक्तस्राव का भय रहता है । रक्तस्राव दूसरे सप्ताह के बाद तीसरे सप्ताह या उसके भी बाद में होता है । प्रायः यह वश में न आने वाले अतिसार का उपद्रव है, रक्तस्राव होने पर ताप कम हो जाता है । नाड़ी, मंद, तीव्र और मृदु हो जाती है और अत्यन्त क्षीण हो जाती है । रक्तस्राव का ज्ञान होते ही रोगी को १/४ ग्रेन मार्फिया का इंजेक्शन दे देवें । ध्यान रहे अतिकृश, अतिवृद्ध, एवं बालक को मार्फिया का इंजेक्शन न देवें । रक्त स्राव का ज्ञान न हो तो मार्फिया भूलकर भी न देवें। संदिग्ध अवस्था में सबसे उत्तम ट्यूनाल (Tuinal) अमिटाल (Amytol), गार्डिनाल Gardinal), ओरटाल (Ortal) देना अच्छा है । पेट के ऊपर बर्फ की पट्टी रखें । रोगी की शय्या के पैर ऊपर उठा दें, मुख द्वारा आहार बन्द कर दें। यदि आवश्यकता हो तो २४–४८ घंटे बाद ग्लुकोज शिरान्तर्गत इंजेक्शन दे । (Glucose 25% या Protein Hydrate) 100 c.c. शिरागत इंजेक्शन द्वारा दें ।

रक्तस्राव बन्द करने हितार्थ निम्नोक्त औषधि दें—

(१) कौएगूलिन सिवा १० मि लि.,

(२) कैल्सियम ग्लूकोनेट विद विटामिन सी १०% २५ मि. लि.,

(३) विटामिन के ५०० मि. ग्रा.,

(४) वेनेमूटेल का इन्जेक्शन ।

ये औषधियाँ एक साथ या अलग अलग दें । हर १२ घंटे के अन्तर से देवें । उपद्रव शांत होने पर रोगी को कब्ज हो जावे तो चिन्ता न करें, ग्लीसरीन पिचकारी द्वारा दस्त करावें ।

अन्त्र दीवार का फट जाना—यह घातक उपद्रव है फलस्वरूप असह्य उदर शूल, वमन, उत्क्लेश, ताप की न्यूनता, नाड़ी श्वास गति तीव्र उदर स्तब्ध और आध्मान चरम सीमा पर बढ़ जाता है। इसका उपाय शल्य क्रिया है ।

मेरी सफल चिकित्सा-विधि

मधुर ज्वर—आन्त्रिक ज्वर पर मेरा अनुभव

वैद्य श्री चन्द्रशेखर व्यास आयुर्वेद विशारद, चूरू (राजस्थान)

मधुर ज्वर लक्षणम्—

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहोऽह्यतीसारो वमीस्तृषा ।
अनिद्रा च मुखं रक्तं तालु जिह्वा च शुष्यति ॥
ग्रीवायां परिदृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपोपमाः ।
एभिस्तु लक्षणैर्विद्यान्मन्थराख्यं ज्वरं नृणाम् ॥

ज्वर, दाह, भ्रम, मोह, अतिसार, वमी, तृषा (प्यास) व नींद नहीं आना, मुख का वर्ण लाल होना, तालु तथा जीभ का सूखना, गर्दन के पास सर्षप जैसे छोटे-छोटे सफेद दाने दिखाई देना । यह मधुर ज्वर, मोतीझरा का रूप है ।

मैंने ५५ वर्ष के अनुभव में आये हुए मोतीझरे के अनेक रोगियों की चिकित्सा की है, उनमें से केवल ४ रोगियों का चिकित्सा क्रम लिखने का प्रयास किया है । मधुर ज्वर—सान्निपातिक ज्वर ही है । मुझे गुरुचरण की कृपा से इस रोग की चिकित्सा में सफलता प्राप्त हुई है । ऐसे-ऐसे जटिल वीमार ठीक हुए कि मुझे भी उनके ठीक होने में सन्देह था । परन्तु मैंने साहस नहीं छोड़ा । मैंने तो एक ही सिद्धान्त का पालन किया—

व्याधें तत्व परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रह ।
एतत् वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्य प्रभुरायुशः ॥

सर्व प्रथम—एक रुग्णा की चिकित्सा का वर्णन लिख रहा हूं ।

रुग्णा का नाम—श्रीमती रामदेव जी टोईवाल, उम्र २८ वर्ष, सन् १९४२, अप्रेल महीने की वात है । मेरे पास घर पर ही श्रीराम देव जी टाईवाल सुवह ८ वजे आए । मैं श्री भवानी शंकर की पूजा से उठा ही था तो वैठक में उनको देखा पूछा, क्यों कैसे आना हुआ तो कहने लगे, घर में वुखार है पेट में भयंकर दर्द है उसे चलकर देखना है । मैं उनके साथ गया देखा पेट में भयंकर दर्द सिर में भी दर्द था । नाड़ी—ज्वर वेगेन धमनी सोष्णा वेगवति भवेत् । ज्वर १०४ था । मलावरोध भी था, ४ दिन से दस्त नहीं हो रहा था । मैंने कहा, आप चिकित्सालय आओ, मैं व्यवस्था पत्र वनाकर दवा दूंगा ।

व्यवस्था पत्र—सुवह-शाम दशमूल क्वाथ ६ माशा, उन्नाव ३ दाना, मुलहैठी २ माशा, गाजवा १ माशा, गुलवनफसा १ माशा, मुनक्का ५ नग ।

उपरोक्त क्वाथ एक पाव जल में औटाकर ५ तोला जल शेष रहने पर देना है । साथ में नारदीय लक्ष्मीविलास रस १ वटी पीसकर मधु में उपरोक्त दवा दो दिन तक दी गई, कव्ज दूर हुई, शिरःशूल भी कम हो गई परन्तु ज्वर १०३—१०४ ही रहा । दो दिन वाद जव देखने गया तो जीभ देखी, तो जीभ पर सफेदी वहुत थी तथा छोटे-छोटे दाने भी थे, गर्दन के आसपास मोती के सदृश दाने स्पष्ट दिखाई दे रहे थे । पेट में पीड़ा थी, प्यास अधिक थी । दवा वदलनी पड़ी, कारण मौक्तिक ज्वर के लक्षण स्पष्ट दीख रहे थे ।

दूसरा व्यवस्था पत्र—सुवह-शाम २-२ वटी संजीवनी वटी, ४ लवंग, २ रत्ती सौंठ, ४ रत्ती ब्राह्मी की पत्ती, इन सवको पत्थर पर पीस कर २×२॥ तोला जल
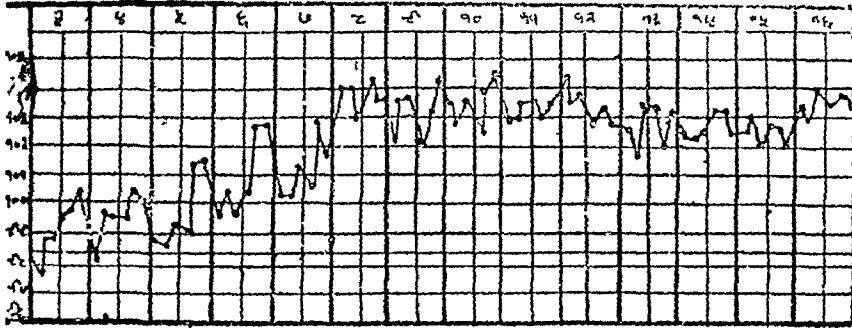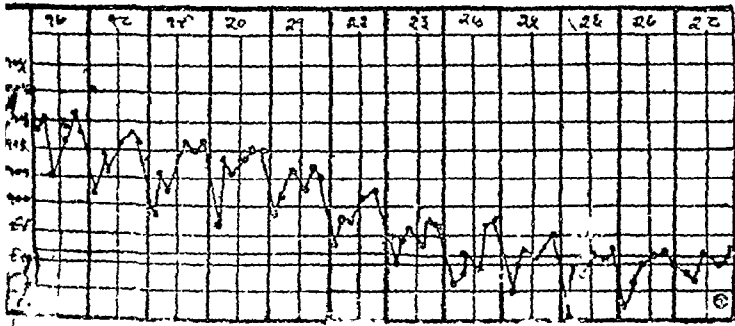
आन्त्रिक ज्वर रोगी का ३० दिन का तापमान चार्ट

तैयार करके, जल को गरम करके छानकर गुनगुने छने हुए जल से दी गई।

दुपहर में २ बजे रात के ६ बजे लक्ष्मी नारायण रस १ रत्ती, मुक्ता पिष्टी १ रत्ती—मधु से। यह क्रम १ सप्ताह चला। अब मोतीझरे के दाने सारे के सारे अदृश्य हो गए। यह अरिष्ट लक्षण सामने आया तो १ नग लौंग थोड़ा पीस कर २ तोले जल में औटाकर १ वटी हंसारूढी ब्राह्मी-वटी की दी गई। यह उपचार २ दिन चला। दाने बाहर आगये। ज्वर १०३ सुबह—रात के ८ बजे से १०४ रहता था—संज्ञा सब तरह से थी। दवा उपरोक्त चालू थी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ होगा। परन्तु—

सप्ताहाद्वादशाहाद्वाद्वादसाहमथापिवा-
पुनर्घोरतोभुत्वा प्रशमं यान्ति हन्ति वा ॥
अथ द्वितीय सप्ताहे प्रवृद्धस्तिष्ठति ज्वरः
तदास्युररतिस्तन्द्रामुख शोषः प्रमीलकः।
कासः प्रलापोदौर्बल्यमाध्मानं च विशेषतः॥
जिह्वा च रक्त पर्यन्ता कर्कशा स्फुटितोपमा।
सन्तापोऽप्याधिकश्चापि धमनी नाति चंचला।
सान्निपातिक लिंगानामन्येषां चापि सम्भवः॥

उपरोक्त लक्षण सामने आये। श्रीरामदेव जी घबराने लगे। मैंने कहा घबराने की जरूरत नहीं है, यदि जी नहीं जमता है तो डाक्टर को बुला लो। श्रीरामदेव जी बोले डाक्टर को आप चाहो तो बुला लो—मुझे तो आप से ही इलाज करवाना है। ऐसी दृढ़ता देखी तो—दवा देने का साहस बढ़ा। जिह्वा पर तुलसी के बीज पीस कर लेप किया गया। दवा पूर्ववत चालू थी। लौंग, सोंठ, ब्राह्मी का धासा, मुक्तापिष्टी, लक्ष्मीनारायण रस ही चालू रहा। कोई उपद्रव नहीं था। तीसरे सप्ताह के आदि में अतिसार हो गया। ज्वर केवल सूक्ष्म में ही रह गया। परन्तु प्रलाप कम नहीं हुआ। अतिसार तो था परन्तु साथ में आध्मान था संज्ञाहीन अवस्था होगई। अतिसार इतना भयंकर कि बारम्बार दस्त होने लगे। सिद्ध प्राणेश्वर रस २ रत्ती मधु में दिया गया कुछ लाभ प्रतीत हुआ। परन्तु रात के २ बजे हालत बहुत ही गम्भीर होगई। श्रीरामदेव जी के श्वसुर मुझे बुलाने आए मैं उनके साथ गया तो रुग्णा को देखकर स्तब्ध रह गया। पर फिर ध्यान आया—"यावत् कण्ठगता प्राणा तावत् कार्या प्रतिक्रिया" इस सूत्र को आधार मानकर औषध मंजूषा खोलकर आनन्द भैरव रस १ वटी, कनक सुन्दर रस १ वटी, मृतसंजीवनी वटी २ वटी, यह एक मात्रा—सूखा पोदीना—अतीस ४-४ रत्ती, बेल,

गिरी २ रत्ती इसके धासे के साथ उपरोक्त ४ रत्ती दीगई आधा घंटा के वाद जो पसीना आरहा था वन्द हो गया। ज्वर भी १०० होगया, आंखें भी खोली। मुझे विश्वास होगया कि अब खतरा नहीं है। ४ व जे घर आया तथा यह कहकर आया कि यही दवा ५ वजे देना। जिस समय मैं रुग्णा के घर पहुँचा था उस समत्र रुग्णा की नाड़ी रुक रुक कर चल रही थी—

"स्थित्वा स्थित्वा चलति सा स्मृता प्राणघातिनि"
शीताङ्ग सन्निपात के लक्षण मिल रहे थे।

हिम-सदृश-शरीरो वेपथु-श्वास-हिक्का-
शिथिलित सकलाङ्गो खिन्नानादोग्रताप: ॥
क्लवथु-दवथु-कास-च्छर्द्यतीसार युक्त-
स्त्वरित-गरण-हेतुः शीत गात्र प्रभावात् ॥

उपरोक्त—उपरोक्त लक्षणों में हिम सदृश-शरीर था अतीसार था ही यह सब अरिष्ट के ही चिह्न थे। उपरोक्त औपधियों के योग से दिन प्रति दिन लाभ होता गया। चौथा सप्ताह पूरा होने में आया, तब सुबह रुग्णा ने कहा मुझे भूख लगी है। परन्तु मुझे दीखता नहीं है। रामदेव जी घवराये हुये मेरे पास आये, कहने लगे—होसहवास दुरस्त है, भूख की इच्छा है, परन्तु दिखाई नहीं देता है। मैंने कहा, ऐसा इसमें होता है। घवरायें नहीं, अन्न देने के वाद दिखाई देने लगेगा।

रामदेव जी ने पूछा - खाने को क्या देवें। मैंने कहा, मैं देखकर कहूंगा? मैं देखने गया तो रुग्णा रोने लगी—ारण अपनी छोटी वच्ची को देख नहीं सकती थी। मुझे दखाई नहीं देता है। मैंने कहा, आज शाम तक दिखाई देने लगेगा। भूख वहुत जोर से लग रही है। भूख लगी है तो आज दूध देंगे। दशमूल साधित दूध १ छटांक (५ तोला) दिया गया। दूध पच गया, शाम को १॥ छटांक दूध दशमूल साधित दिया गया। दूसरे दिन मुद्ग यूप दिया गया। यूप देने के वाद १ घण्टा तक नींद नही लेने को कहा गया। तीसरे दिन यानी रुग्णा को बीमार हुए आज पूरे ३५ दिन हो गये थे। आज वाजरे का खांखरा बनवाकर उसकी पापड़ी पोदीने की चटनी के साथ दी गई। खांखरे की पापड़ी देने के वाद दीखना चालू हो गया। अब रुग्णा दिन प्रतिदिन ठीक होने लगी। ४५ दिन पूरे हुए तो छाया पात्र देकर रोग मुक्त स्नान कराया गया। भूख खूब लगने लगी, मूंग की दाल, वाजरे का खांखरा, पोदीने की चटनी दी जाती थी। दूध सुवह-रात को दिया जाता, कमजोरी दूर करने को चन्दनादि लौह २ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशा मिलाकर मधु में दिया जाता था। रात को सोते समय चौसठ प्रहरी पीपल एवं वसन्त मालती १-१ रत्ती मिलाकर मधु में देने लगे तथा दूध तो देते ही थे। इस तरह पूर्णरूपेण स्वास्थ्य लाभ हुआ। मैं तो श्री गुरु के चरण की कृपा ही मानता हूं। ऐसी जटिल स्थिति में मेरी हिम्मत नहीं टूटी।

नं. २ रोगी नाम—मोहनलाल श्रीमाल, उम्र १६ वर्ष, सन् १९४२ के नवम्वर में उपरोक्त स्थिति में श्री फूलचन्द जी श्रीमाल मेरे पास श्री रामदेव जी टोई वाले को साथ लेकर आए। कहने लगे, मोहन बहुत बीमार है। आप चल करके देखो। मैं फूलचन्द जी के साथ गया और मोहन को देखा, वह घोर सन्निपात में झूल रहा था। अपने वस्त्रों को दोनों हाथों से फाड़ रहा था। संज्ञाहीन था। प्रलाप वहुत था, दन्त वन्ध (जवाड़ें बन्द) उठ उठ कर भागना जैसा कि—माधव निदान में चित्तभ्रम सन्निपात के लक्षण लिखे हैं—

थदि कथमपि पुंसां जायते कायपीड़ा
भ्रम-मन्द परितापो मोह-वैकल्य-भावः।
विकल-नयन-हासो गीत-नृत्य-प्रलापोऽ-
मिदधति तमसाध्यं केऽपि चित्तभ्रमाख्यम्॥

मैंने मोहन को देखकर उसके पिता—श्री फूलचन्दजी से पूछा यह कितने दिन से बीमार है तो कहने लगे १५ दिन हो गए हैं। इतने दिन से दवा कौन देता था—चिकित्सक का नाम क्या है—तो कहने लगे कि डालूराम जी की मा दवा दे रही थी संजीवनी गोली लौंग, सोंठ के साथ। आज जो हालत है वह कल से है। मैंने श्रीरामदेव जी टांई वाले से कहा—आप मेरे साथ चलें मैं एक दवा दूंगा तथा एक क्वाथ लिखकर दूंगा—

यह व्यवस्था पत्र दिया—ग्रन्थ्यादिक्वाथ १ तोला, जल २० तोला में औटाकर चतुर्थांश रहने पर दोनों समय देना—साथ में "सौभाग्यवटी" २-२ देना—दिन में २ बजे, रात के ६ बजे, योगेन्द्र रस १ रत्ती, खताई पिष्टी १ रत्ती

मधु में उपरोक्त उपचार १३ दिन तक चालू रहा। मोहनलाल मौत के मुख से निकल आया। सोचता हूं यह सफलता दैवयोग से ही प्राप्त हुई। १३ दिन बाद मुद्ग यूष दिया गया १५ वें दिन याने मेरी चिकित्सा में १५ दिन रहा—वैसे ३१ वें दिन पथ्य दिया गया।

मैंने मधुर ज्वर में ही सन्निपात देखे है। स्वतन्त्र सन्निपात तो मैंने आज तक नहीं देखा है। प्रायः मौक्तिक ज्वर में ही सन्निपात होते देखा गया है। सन्निपात १३ लिखे हैं परन्तु इन तेरह के सिवाय और भी सन्निपात है— "कुम्भीपाकादि सन्निपातानि"

(१) कुम्भीपाक सन्निपात—जिस सन्निपात में रोगी की नाक से काला, लाल एवं गाढ़ा रुधिर निकलता हो और वह अपने शिर को इधर उधर बारम्वार गिराता हो तो उसे कुम्भीपाक सन्निपात से पीड़ित समझना चाहिए।

(२) प्रोर्णु नाम सन्निपात—जिस सन्निपात ज्वर में रोगी अपने हाथ पैर आदि अङ्गों को बारम्वार ऊपर को उठाकर इधर उधर को फेंकता हो तथा अत्यन्त जोर से श्वास लेता हो तो उसे अनेक प्रकार के कष्ट देने वाले प्रोर्णु नाम सन्निपात से पीड़ित समझना चाहिए।

(३) प्रलापी सन्निपात के लक्षण—प्रलापी सन्निपात ज्वर वाले रोगी को पसीना, भ्रम, शरीर में तोड़ने की सी पीड़ा, कम्प, नेत्रादिक में दाह, वमन, कण्ठ में पीड़ा और शरीर में भारीपन—ये सब लक्षण प्रगटे होते हैं।

(४) अन्तर्दाह सन्निपात ज्वर के लक्षण—जिस ज्वर में रोगी के शरीर के अन्दर दाह हो और ऊपर से सर्दी भी मालूम पड़ती हो तथा शोथ, बेचैनी, श्वास भी हो एवं उसे अपना शरीर जलते हुए के समान प्रतीत होता हो तो उसे अन्तर्दाह सन्निपात ज्वर से पीड़ित कहना चाहिये।

(५) दण्डपात नन्निपात लक्षण—जिस ज्वर में रोगी को दिन में या रात्रि में कभी नींद न आती हो और वह बुद्धि के भ्रम से आकाश की तरफ किसी वस्तु को पकडने के लिए जैसे कोई हाथ पसारता है, उस भांति बार बार पसारता रहता है और एकाएक उठकर दण्ड भांति बार-बार गिर पड़ता हो एवं भ्रम से युक्त चारों तरफ घूर्णन करता हो तो उसे दण्डपात सन्निपात से पीड़ित समझना चाहिए।

(६) अन्तक सन्निपात ज्वर के लक्षण—अन्तक ज्वर सन्निपात वाले रोगी के शरीर में चारों तरफ गांठें निकल आती हैं और उदर वायु से भर जाता है तथा वह निरन्तर श्वास से अत्यन्त पीड़ित हो जाता है—एवं संज्ञा से रहित भी हो जाता है।

(७) एणीदाह सन्निपात ज्वर के लक्षण—जिस रोगी को एणीदाह सन्निपात ज्वर होता है तो उसके शरीर में अत्यन्त पीड़ा होती है तथा उसे अपने शरीर के ऊपर सांप तथा हरिण समूह दौड़ रहे हों ऐसा प्रतीत होता है और शरीर में कम्प दाह भी होता है।

(८) हारिद्र सन्निपात—जिस ज्वर में रोगी का शरीर अत्यन्त पीला हरदी से पुते हुए के समान होजाता है तथा उसकी अपेक्षा नेत्र अधिक पीले हो जाते हैं—एवं नेत्रों से भी बढ़कर मल अधिक पीला हो जाता है। और शरीर के अन्दर दाह होता है किन्तु ऊपर से सर्दी प्रतीत होती है तो उसे हारिद्रक सन्निपात कहते हैं।

(९) अजघोष सन्निपात - अजघोष सन्निपात ज्वर होने से रोगी के नेत्र तांबे के समान लाल हो जाते है और उसके शरीर में बकरे के समान गन्ध आने लगती है। कन्धों में पीड़ा होती है तथा गले का छिद्र अवरुद्ध हो जाता है।

(१०) भूतहास सन्निपात—जो रोगी अपनी ज्ञानेन्द्रियों से शब्द आदिक विषयों को नहीं ग्रहण करता है अर्थात् जो देख सुन नहीं सकता है और हंसता है तथा कर्कश स्वर से प्रलाप करता है तो उसे भूतहास सन्निपात ज्वर से पीड़ित समझना चाहिए।

(११) यन्त्रपीड़ा सन्निपात—जिस ज्वर में रोगी को अपना शरीर बारबार ज्वर के वेग से कोल्हू में पेरने की तरह पीड़ित प्रतीत होता हो और उसे रक्त सहित पित्त का वमन होता हो तो वह यन्त्रपीडा सन्निपात ज्वर कहलाता है।

(१२) सन्यास सन्निपात—सन्यास सन्निपात ज्वर में रोगी प्रलाप करता है तथा उसका नेत्रमण्डल देखने में उग्र हो जाता है एवं उसे अतीसार और वमन होता है तथा वह धीरे धीरे अव्यक्त शब्द करने लगता है एवं बहुत देर तक अपने अङ्गों को इधर उधर फैंकता है।

(१३) संशोपित सन्निपात ज्वर—संशोपि सन्निपात ज्वर में रोगी का शरीर अधिक दस्त आने से काला पड़

जाता है तथा दोनों नेत्र भी अत्यन्त काले हो जाते है और शरीर में सफेद सफेद फुन्सियों का मंडल उत्पन्न हो जाता है। इन सब सन्निपात ज्वरों में नारायण ही प्रधान रूप से वैद्य रह जाते है और औषधि में केवल गगाजल रह जाता है। और आरोग्य होने के लिए एकमात्र श्रीमृत्युञ्जय भगवान शङ्कर का ध्यान मात्र रह जाता है। अर्थात् अत्यन्त भयङ्कर होने से बड़ी कठिनाई से रोगी के प्राण बचते हैं। मुझे भगवान श्री शंकरजी की कृपा से ही मधुर ज्वर में होने वाले सन्निपातों पर सफलता प्राप्त हुई है। में सफलता में प्रभु को ही सहायक मानता हूं।

रोगी का नाम—नन्दकिशोर मोटेका उम्र १८ वर्ष सन् १९५४ के सितम्बर मास की बात है। मैं श्री गणपति चिकित्सालय सुबह ८ बजे पहुंचा ही था कि श्री डालूराम जी मोटेका चिकित्सालय में आये कहने लगे भाई जरा "नन्दू" को देख कर आना है। मैंने कहा मै १० बजे जरूर देख लूंगा। श्री डालूराम जी चले गए, १५/२० मिनट बाद फिर आए कहने लगे मेरे साथ ही चलो तो ठीक है। मैंने कहा ऐसी क्या बात है। उन्होंने कहा वह बहुत ही बकता है। कपड़े भी चूटता है, ऐसा प्रतीत होता है जैसे सुनपात में आ गया हो। नन्दू की मा बहुत घबराई हुई है। दूसरा कोई है नहीं वह अकेला है। मैं उनके साथ गया देखा गया तो प्रलाप कर रहा था। मैने पूछा कितने दिन से बिमार है। कहा—एक सप्ताह से बिमार है। दवा क्या देते हो तो कहा-दवा तो एक कम्पोण्डर की थी वह कहता था मौसमी बुखार है। बुखार की दवा दी गई थी। मैंने देखा तो ज्वर १०४ था गर्दन के नीचे छोटे-छोटे मोती-के मानिन्द दाने स्पष्ट दीख रहे थे। अंगुली से दबाने पर फूटते नही थे। शिर में दर्द, प्यास, पेट में दर्द तथा बेचैनी थी। मैंने व्यवस्था पत्र इस प्रकार का लिखा—सुबह-शाम—संजीवनी वटी २-२, लवंग ३, सौंठ ३ रत्ती, ब्राह्मी की पत्ती ४ रत्ती, लवंग की टोपी उतार कर तीनों औषधियों को मोटी-मोटी कूटकर एक छटांक पानी में औटाकर जब २ तोला शेष रहे छानकर देवें। साथ में संजीवनी वटी देवें। दिन में २ बजे रात के ९ बजे। मुक्ता पिष्टी १ रत्ती विद्रुम पिष्टी १ रत्ती मधु में देवें।

उपरोक्त क्रम एक सप्ताह तक चालू रहा। सप्ताह के बाद कफ की वृद्धि हुई तो—दशमूल क्वाथ ३ मा० उपरोक्त दवा पूर्ववत दी गई। मुक्ता, विद्रुम पिष्टी के साथ १-१ वटी लक्ष्मी नारायण रस की दी गई।

दूसरे सप्ताहान्त में नन्द किशोर का चाचा देवीदत्त साहेब गंज से आया। मेरे पास आकर अपनी इच्छा प्रगट की। कहा आपको जंचे तो श्री मणिरामजी को रतनगढ़ से बुलाकर ले आऊँ मैने कहा मैं पत्र लिख देता हूं। पत्र लेकर देवीदत्त रतनगढ़ गया मेरा पत्र पढ़ते ही वे चुरू पधारे। नन्दू को देखा दवा क्या-क्या दे रहे हो, मैंने दवा का सारा क्रम बताया वे प्रसन्नतापूर्वक देवीदत्त से कहने लगे दवा की व्यवस्था उत्तम है। आप घबरायें नहीं। वे एक रात रहे दूसरे दिन, दिन के ११॥ बजे रतनगढ़ चले गए। नन्दू की तबियत ठीक हो रही थी। २१ वें दिन शाम को ज्वर १०४—४॥ हो गया। प्रलाप था। ४ दिन से दस्त नहीं आ रहा था। ज्वर विशेष था अतः 'अष्टादशाङ्ग क्वाथ ६ माशे जल १० तोला शेष २॥ तोला रहने पर रात के ९ बजे दिया गया। दवाइयां सभी पूर्ववत चालू थीं केवल क्वाथ ही उनके साथ था। ५ क्वाथ देने पर ज्वर १०१॥ हो गया। प्रलाप नहीं था। परन्तु होठों पर पपडी जमी हुई थी। इन पर आयुर्वेदिक ग्लेसरीन (मुनक्का कें बीज निकालकर महीन पीस लें, थोड़ासा शुद्ध गौ घृत मिलाकर होठों पर लेप करें) यह ग्लेसरीन-चक्रदत्त का योग है। नन्दकिशोर को भी ३१ दिन बाद मूंग का पानी दिया गया था। भोजन ३५वें दिन दिया गया। नन्द किशोर पूर्णरूपेण ठीक हुआ।

नं. ४—ऋद्धकरणसिह उम्र १५ वर्ष। यह भी मौक्तिक ज्वर का बिमार था दूसरे सप्ताह के अन्त में इसके पिता मेरे पास आए कहने लगे ऋद्धू बहुत बिमार है। चलकर देखना है। मैं देखने गया उस समय दिन के १०॥ बजे थे महिना आश्विन का था देखा तो मधुर ज्वर के ही लक्षण थे। भयंकरता बहुत थी। मैंने पूछा इतने दिन किस वैद्य का इलाज था तो बताया कोई ग्रामीण वैद्य दवा दे रहा था। लवंगसूठ का क्वाथ देता था तथा मोतीझरा ठसक गया अतः १ दाना सच्चा मोती भी दिया गया। मैंने कहा यह हालत कबसे है। कहने लगा तीन दिन से यह हालत है। डाक्टर को भी दिखाया गया पर डाक्टर की दवा से कोई लाभ नजर नहीं आया।

मैंने सोचा तथा सन्निपातों के लक्षण मिलाये तो—

अभिन्यास सन्निपात नजर आया।

अभिन्यास ज्वर के लक्षण—

त्र्यः प्रकुपिता दोपा उरः स्रोतोऽनुगामिनः।
आमाभिवृद्ध्या ग्रथिता बुद्धिन्द्रिय मनो गता॥
जनयन्ति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं दृढम्।
श्रुतौनेत्रे प्रसुप्तिः स्यान्न चेष्टां कांचिदीहते॥
न च दृष्टि भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने।
न घ्राणं न च संस्पर्श शब्दं वा नैवबुध्यते॥
शिरो लोण्ठयतेऽभीक्ष्णमाहारं नाभिनन्दति।
कूजति तुद्यते चैव परिवर्तनमीहते॥
अस्रं प्रभाषते किंचिदभिन्यासः स उच्यते।
प्रत्याख्यातः स भूयिष्ठः कश्चिदेवात्र सिध्यति॥

अभिन्यास ज्वर प्रतीत हुआ।

व्यवस्थापत्र—श्रृंग्यादि क्वाथ—भावप्रकाशोक्त सुवह शाम श्रृंग्यादि क्वाथ १-१ तोला, २० तोला जल में औटा कर ४ तोल शेप रहने पर देना। मकरध्वज—आधा रत्ती मुक्तापिष्टी १ रत्ती, विद्रुमपिष्टी १ रत्ती, मिलाकर यह एक मात्रा हुई। क्वाथ से पूर्व १ पुड़िया मधु में चटाकर काढा पिलावें।

२१वें दिन ऋद्धकरण सिंह को होस हुआ, भूख की इच्छा प्रगट की। मैंने उनके पिता को भोजन मैं कहूं जब देना। परन्तु मेरी वात की उपेक्षा करके भोजन दे दिया गया। भोजन देने के १ घंटा वाद विमार की हालत वहुत ही नाजुक हो गई। उसका पिता ऊँट लेकर बुलाने आया—मैंने पूछा कि तुम लोगों ने कोई गड़वड़ की है। तो वोला हम लोगों ने गड़वड़ तो नहीं की है। परन्तु काढ़ा वनाते समय छीके में पड़ी रोटी का टुकड़ा गिर गया हो पता नहीं। मैंने कहा यह तो असम्भव वात है। तुम लोगों ने उसे खाने को दिया है। जाकर देखा तो कर्ण मूल पर शोथ था—

सन्निपात ज्वरस्यान्ते कर्ण मूले सुदारुणाः।
शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते॥

मैंने एक लेप "वैद्य जीवन" में से लिखा हुआ वना कर उसका लेप कर वाया—

रास्ना, सौंठ, विजौरे की जड़, चित्रक, दारूहल्दी, अग्निमन्थ, इन सवको समभाग लेकर कूट छानकर इस चूर्ण को जल से पीसकर लेप कराया गया, शोथ कम हुआ तीन दिन के वाद ठीक हो गया।

ऋक्ष (नक्षत्र) दोषोद्भव ज्वर

इन ज्वरों का वर्णन भैपज्य रत्नावली में है। नक्षत्र दोपों से ज्वरों की उत्पत्ति होती है, यह सत्य है। अन्य आयुर्वेदीय ग्रंथ इस विपय में मौन हैं। ऋतु व्यापत्ति का उल्लेख चरक तथा सुश्रुत ने किया है। नक्षत्र २७ हैं तथा उनके स्वामी ग्रह भी अलग-अलग हैं, जो शुभाशुभ फल देते हैं।

कृतिका नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर नौ दिन रहता है। रोहिणी नक्षत्र ३ दिन। मृगशिरा ७ दिन। आर्द्रा नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर घातक होता है। पुनर्वसु तथा पुष्य ७ दिन। अश्लेपा नक्षत्र का ज्वर ९ दिन। मघा नक्षत्र में असाध्य ज्वर होता है। पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र का ज्वर २ मास रहता है। उत्तरा फाल्गुनी १५ दिन। हस्त नक्षत्र ७ दिन। चित्रा नक्षत्र १५ दिन। स्वाती दो मास। विशाखा २० दिन। अनुराधा १० दिन। जेष्ठा १५ दिन। उत्तरापाढा २० दिन। श्रवण २ मास। धनिष्ठा १५ दिन। शतभिषा १० दिन। पूर्वा भाद्रपदा १९ दिन। उत्तरा भाद्रपदा ४५ दिन। रेवती १० दिन। अश्विनी २४ घन्टे। भरणी का ज्वर घातक होता है।

(भैपज्य रत्नावली)

यूष ज्वर

TYPHUS FEVER

वैद्य अम्बालाल जी जोशी आयु०, भिष० केशरी विशेष सम्पादक-धन्वन्तरि,

यह ज्वर उग्र संक्रामक है जो यूकालीक्षा से तथा गन्दे वातावरण से फैलता है। इसे इसीलिए वन्दीग्रह ज्वर, यूकालीक्षा ज्वर (Louse Fever), अकाम ज्वर, शिविर ज्वर नामों से पुकारा गया है। आचार्य त्रिवेदी जी ने इसे तान्द्रिक ज्वर कहा है। यूकालीक्षा द्वारा यह मनुष्य देह में प्रवेश करता है। एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में जूं लगकर इस रोग को फैलाती हैं।

इस ज्वर के संक्रमण का पाककाल ५ से २० दिन तक का है। इसके पूर्वरूप में अवसाद तथा अंगमर्द देखा गया है। सर्व प्रथम सामान्य ज्वर कम्प द्वारा होता है। तापमान १०३-१०४ डिग्री होता है। कभी छर्दी भी होती है। मुख मण्डल व नेत्र रक्त हो जाते हैं। जिह्वा मलीन, दुर्गन्धयुक्त, श्वास, शिरःशूल, कास लक्षण होते हैं। रोगी अवसन्न एवं मदाभिभूत होता है।

कभी-कभी रोगी मोह और प्रलाप के वेग से आक्रांत होता है। ज्वर तापमान १२ से १४ दिन तक उच्च रहता है। प्रातः ताप कुछ न्यून रहता है। मृदु प्लीहा वृद्धि हो जाती है। यकृद, हृदय तथा वृक्कद्वय में कुछ विकृति पाई जाती है। यह एक संघातिक रोग है, इससे आक्रान्त रोगी हृदपेशीय क्षति के कारण, मोहमूर्च्छा सम्बन्धी विषाक्तता के कारण श्वसनक के कारण मरते हैं।

यह जूवों से पैदा होने वाला रोग जूवों के मल से भी फैलता है। शरीर में खरोंच या जखम में होकर मल शरीर में प्रवेश कर जाता है, श्वास मार्ग द्वारा, नासिकामार्ग द्वारा, मुख द्वारा, हवा के रजकणों में होकर यह शरीर में प्रवेश कर जाता है। यह विकार पहाड़ी देशों में अधिक पाया जाता है, इसके प्रकार भी होते हैं। जूं के सिवाय पिस्सू किलकी और कुटकी जीवों द्वारा भी यह फैलता है जिनके लक्षणों में कुछ मन्द हुआ करता है। रक्त में भी इनका रक्त परिवर्तन आता है।

रक्त परिवर्तन (१) श्वेत कायाण्वपकर्ष (२) वील फैलिक्स प्रतिक्रिया (Weil Feiix Reaction) (३) अस्त्यात्मक वासरमैन प्रतिक्रिया।

अब हम टायफाइड, टायफस ज्वर का अन्तर वताते हैं-

टायफाइड	टायफल
(१) मर्यादा २१ दिन	मर्यादा १४ दिन
(२) दाने एक सप्ताह में निकलते हैं	दाने ५ दिन में निकलते हैं
(३) ज्वर वेग की अपेक्षा नाड़ी मन्द	ज्वर वेग के अनुपातानुसार गति तीव्र
(४) आन्त्र तथा उदर में शूल	आन्त्र व उदर में पीड़ा का अभाव
(५) पेट में आध्मान तथा अतिसार	मलावरोध
(६) ताप में क्रमशः वृद्धि	प्रारम्भ से ही ताप वृद्धि
(७) शिरःशूल तथा प्रलाप का अभाव	शिरःशूल तथा प्रलाप

इस रोग की चिकित्सा करते समय संजीवनी, कस्तूरी भैरव रस आदि उपयोगी हैं। अन्य चिकित्सा लक्षणानुसार की जानी चाहिये। देह शुद्धि, वस्त्र शुद्धि की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये।

स्थान शुद्धि में फिनायल, तारपीन का तैल, गरम जल से स्थान साफ रखना चाहिये। वस्त्रों को उबलते गरम पानी में छोड़कर फिर साफ करना चाहिये।
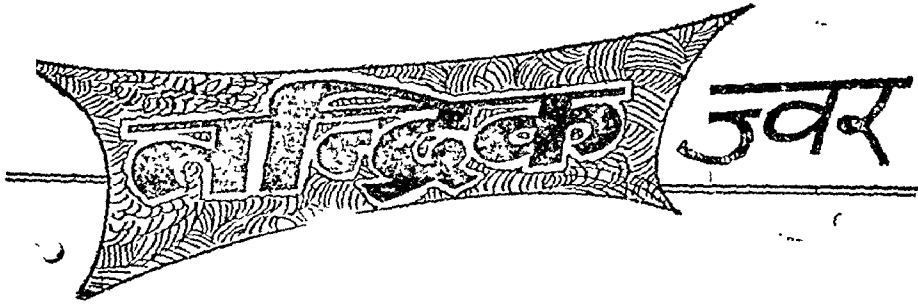
वैद्य अम्बालाल जोशी आयु० भिष० केशरी विशेष सम्पादक धन्वन्तरि

यह आन्त्रिक ज्वर का ही एक प्रकारान्तर है। इसका संक्रमण मांसहारियों के मांस भक्षण द्वारा तथा अमांसाहारियों में दूध या मक्खन द्वारा होता है। जल द्वारा भी यह फैलता है। इस रोग के कीटाणुओं को Bacterium Paratyphosum कहते हैं। ये कीटाणु A. B.C. श्रेणी से तीन प्रकार के होते हैं। इनमें A. B. का संक्रमण आन्त्रिक ज्वर के समान ही होता है। परन्तु सी का निदान ध्यानपूर्वक करने से इनमें स्पष्ट भेद मालूम होता है। इसका संक्रमण सेप्टीसीमिया से मिलता जुलता है।

यहां आन्त्रिक ज्वर से मिलता जुलता होता है। परन्तु इसके कीटाणु अलग होते हैं। ए श्रेणी के कीटाणु सडांध पैदा करते हैं, 'बी' से कम शक्तिशाली होते हैं। 'ए' प्रकार के कीटाणु भारत में, 'सी' उष्ण कटिबन्ध में होते हैं।

लघु आन्त्रिक ज्वर में उत्ताप अधिक, छाती में प्रदाह तथा वृहदान्त्र में व्रणों की प्राप्ति होती है। यह २१ दिनका होता है। लक्षण आन्त्रिक ज्वर के समान होते हैं। परन्तु इसका प्रारम्भ शीत लगकर ज्वर होता है। इसमें नासिका से रक्तस्राव होता है। उदर में पीड़ा नहीं होती। ज्वर का वेग उतार-चढ़ाव पर रहता है। पीडिकायें प्रचुर मात्रा में
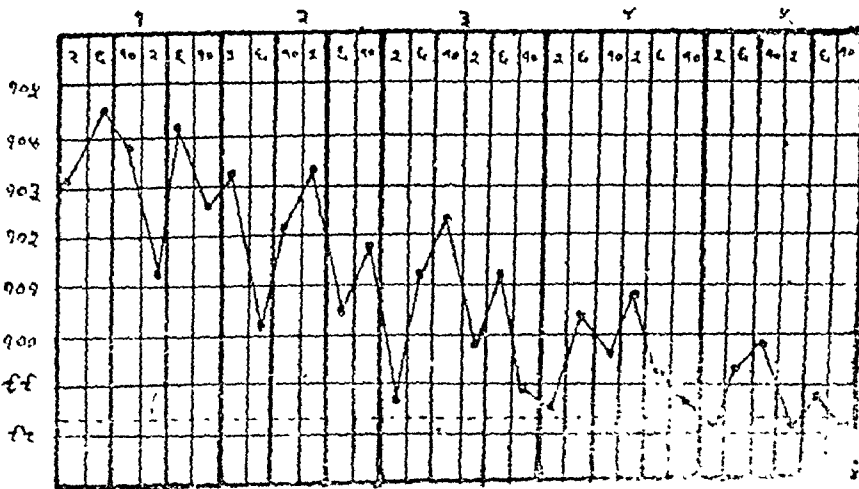
चित्र नं०

होती हैं। अतिसार, फुफ्फुस विकार भी होते हैं।

तीनों ही प्रकार के उपआन्त्रिक ज्वरों में कुछ भिन्नता अवश्य रहती है, परन्तु ये निदान तथा लक्षणों में परस्पर मिलते हैं। इनकी भिन्नता करना उतना ही कठिन है जितना आन्त्रिक ज्वर तथा उपान्त्रिक ज्वर की है।

आगे हम आन्त्रिक तथा उपांत्रिक ज्वरों की भिन्नता दिखा रहे हैं—

आन्त्रिक ज्वर	उपान्त्रिक ज्वर (अपर तन्द्राभू ज्वर)
(१) धीरे-धीरे और नियमित	अव सम्मत और त्वरित
(२) प्रातः सायं अन्तर सहवृद्धि	ज्वर १०४ से १०५ डिग्री, अनियमित
(३) द्वितीय सप्ताह में उच्चतम	आवश्यक नहीं
(४) शमन धीरे-धीरे	शीघ्र शमन
(५) काल—४ सप्ताह	काल दो सप्ताह
(६) आंत्रक्षत अधिक	आंत्र क्षत कम
(७) अतिसार, रक्तस्राव, उदर वृद्धि तथा आंत्र भेद सामान्य	अतिसार, रक्तस्राव, उदर वृद्धि, आन्त्र भेद कम
(८) जुला की रङ्ग की न्यून पीडिकायें	कभी अधिक, कभी रङ्ग में, कभी क्षेत्र या सीमित
(९) अनुपात की दृष्टि से उत्ताप मन्द	वार-वार अति मन्द
(१०) शीत कम्प का अभाव	शीत कम्प सामान्य
(११) स्वेदाधिक्य	स्वेद सामान्य
(१२) मांसक्षय अधिक	मांसक्षय कम
(१३) दिशाकान्ति अधिक	वहुत कम

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि उपांत्र ज्वर आंत्र ज्वर का ही छोटा रूप है। अतः इसकी चिकित्सा भी आन्त्र ज्वरवत ही करनी चाहिये। विभिन्न उपद्रवों में वैसी चिकित्सा होना आवश्यक है।

सामान्यतः यह ज्वर मारक नहीं है। इसमें पथ्य परेज सभी आन्त्र ज्वर वत ही होते हैं।

पृष्ठ २४७ का शेषांश :: :: दण्डक ज्वर

(५) रक्तस्फटिक चूर्ण तथा गोदन्ती हरताल भस्म, दोनों को समान भाग लेकर रख लेना।

मात्रा—२ रत्ती से ६ रत्ती तक अवस्थानुसार।

अनुपान—मिश्री का शर्बत, मधु। समय—ज्वर से पूर्व तथा पश्चात्, दिन में चार बार तक या आवश्यकतानुसार। गुण—विषमज्वर, वातश्लेष्मज्वर, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, कास, प्रतिश्याय पर।

(६) नीम की छाल, पटोलपत्र, तुलसीपत्र, मुड़वेल, चिरायता, कुटकी, सबको समान भाग लेकर जौकुट कर रखना। २ तोला लेकर २० तोला पानी में उबालना, जब चौथाई बाकी बचे तब छानकर पिलाना।

समय—दिन में तीन बार। गुण—विषमज्वर, जीर्णज्वर, पित्तज्वर, पुनरावर्तीज्वर में लाभप्रद।

उक्त छहों ज्वरघ्न प्रयोग मेरे द्वारा दातव्य औषधालयों में व्यवहृत २५ वर्षों तक के स्वानुभव सिद्ध हैं।

क्रकच-पाकम सन्निपात

(Manin-gitis — सुषुम्नाज्वर)

डाक्टर जगदीश कुमार अरोरा डा० ऑफ सांईस (ए वाई०) एफ० आर० ए० एस० (लन्दन)
मैम्बर ऑफ दि ऐस्थमा एण्ड ब्राँङ् काइट्रिस फाउन्डेशन आफ इन्डिया,
मैम्बर आफ दि इन्डियन कालेज आफ एलर्जी एण्ड एप्लाइड इम्यूनोली,
मैम्बर आफ दि सौसायटी आफ बायोलोजिकल केमिस्ट, इण्डिया,
पटेल नगर, हापुड़—२४५१०१ (यू० पी०)

इस रोग को क्रकच सन्निपात, मन्याज्वर, गरदन तोड़ बुखार, आक्षेपक ज्वर आदि कहते हैं। अंग्रेजी में इसको **Cerebrospinal Fever, Cerebrospinal Meningitis, Spotted Fever (Infants), Posterior Basal Meningitis** कहते हैं।

आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इस रोग का स्पष्ट वर्णन मिलता है। महर्षियों ने इसे अधिक वात हीन पित्त और मध्य कफ के कारण होने वाला क्रकच सन्निपात माना है।

इस रोग का विशेष लक्षण है कि रोगी की मृत्यु गरदन के जकड़ जाने से होतीं है।

कपालास्थि के अन्दर मस्तिष्क का स्थान है। यह कपालास्थि पांच स्थानों से जुड़ी हुई है। सीवनों द्वारा ये जोड़ स्पष्ट दिखलाई देते हैं। इस पर एक पेशी का आवरण है। ऐलोपैथी में इस पेशीरूपी आवरण को ही 'मिनिन्जीज' कहते हैं। यह कफ स्थान है। विशेषकर तर्पक कफ का ही यह मुख्य स्थान है। शिर:सस्थोऽज्ञ तर्पणात, तर्पक:। प्राणमूर्धग:॥ (वाग्भट्ट)। यह प्राण वायु का भी स्थान है। इसके सिवा सिर में ५ सीवन, ३४ स्नायु सिरा और कपालास्थि हैं।

प्राणा: प्राण भृतां यत्राश्रिता: सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते ॥१२॥

(चरक संहिता अ० १७, सूत्रस्थान)

अर्थात् जिस अवयव में प्राणियों का प्राण और सम्पूर्ण इन्द्रियां रहती हैं और जो अंगों में उत्तम अंग है उसे सिर कहा जाता है।

शरीर का यह एक प्रधान अंग है। प्राण और समस्त इन्द्रियों का यही एक आश्रय है।

मस्तिष्क और सुषुम्ना के आवरण में शोथ और शरीर की पेशियों का जकड़ जाना तथा उसमें पीड़ा ये लक्षण होते हैं। ज्वर, त्वचा पर विस्फोट प्रभृति भी उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद में यह वातोल्वण सन्निपात ज्वर का ही अवान्तर रूप है। इस विकार में ज्वर से आक्रांत रोगी अपने अंगों को बार बार संकुचित तथा प्रसारित करता रहता है। अर्थात हाथ पैरों को फैंकता रहता है जिससे इसको आक्षेपक ज्वर भी कहते हैं। इसमें ज्वर का वेग तथा संताप भयंकर होता है तथा रोगी संज्ञाहीन हो जाता है। जैसे—

आक्षिप्यन्तेमतोंगानि संकोचं यान्ति चांगसा।
घोरो ज्वरश्च संज्ञाहत सोऽयमाक्षेपको ज्वर: ॥

(सिद्धान्त निदान)

पित्त वात के आशय (मस्तिष्क) में जाकर तत्रस्थ वायु के कारण वात संस्थान में अधिक प्रकुपित हो जाता है परिणामत: तीव्र ज्वर होता है। यह प्रसिद्ध तथ्य हैं कि प्रलाप और मूर्च्छा साथ नहीं हो सकते। अत: प्रवृद्ध वात के साथ कफ कहा है। इसलिये अधिकांश रोगियों में मूर्च्छा होती है।

यास्मादाक्षिप्यन्ते, प्रायेणांगनि यन्ति संकोचप्।
घोरो ज्वरश्च संज्ञाहृदसावाक्षेपक: प्रोक्त: ॥

(माधव निदानम् परिशिष्टम्)

अर्थात् जिस रोग में रोगी के अंग प्रायः आक्षेपयुक्त और संकुचित होते रहते हैं और रोगी संज्ञाशून्य हो जाय तथा घोर ज्वर होता हो उसे "आक्षेपक" ज्वर कहते हैं।

कीटाणु—इस रोग के कीटाणुओं का शोध डा० वीच सेल्वौनने ने १८८७ ई० में किया है। ये कीटाणु देह से वाहर तुरन्त मर जाते हैं। इस रोग के कीटाणुओं को गोनोकोक्स, माई कोक्स, कोटर्ईलिस (ग्लूकोज और माल्टोज रहे हुए मेनिंगोकोक्स की जाति) तथा डिप्लो-, कोक्स म्यूकोसस से भिन्न करना चाहिये।

ये कीटाणु विशेषतः युग्म भाव से रहते हैं। ये ब्रह्म-वारि (Cerebrospinal Fluid) और पूय में रहते हैं। किन्तु सब यन्त्र और कोषाणुओं के भीतर नहीं। इनकी आकृति गोल या चिपटी होती है। ये कीटाणु ग्राम के रंगों से रंजित नहीं होते। गोनोकोक्स सदृश मानते हैं।

ब्रह्मवारि—मस्तिष्कोद का उदासर्ज झल्लरीप्रतान (Choroid Plexus) द्वारा होता है विशेषकर पार्श्व-निलयों (Lateral Ventricles) में। वहां से तृतीय निलय, मध्यमस्तिष्क मार्ग (Aqueduct of Midbrain या Cerebral Aqueduct) चतुर्थ निलय को पार करता हुआ, चतुर्थ निलय की छत में स्थित छिद्रों द्वारा Subarachnoid Space में पहुंच जाता है। यह मस्तिष्क आधार पर स्थित वड़े वड़े जलाशयों में बहता हुआ Incisura in the Tentorium और मध्य मस्तिष्क के तंग मार्ग से होकर ऊपर की ओर उपजालतानिकीय (Subarachnoid) झील में फैल जाता है। जहां Arachnoid Villi द्वारा छोटे छोटे अन्धकूपों का कार्य करते हैं और जिनका सम्बन्ध वड़ी वड़ी सिराओं से खास करके Superior Longitudinal Sinus से होता है। यह जल रक्त में मिला दिया जाता है। यह जल नीचे सुषुम्ना में अन्तिम कटि कशेरुका के निचले सिरे तक जाता है।

निदान—

वसतां लंकुले देशे रजोधूमाकुले चिरम्।
दरिद्राणां भवेद् भूम्ना सोऽयं जीवाणु संभवः॥
(सिद्धांत निदानम् श्रीगणनाथ सेन)

अर्थात—यह जीवाणु संभव व्याधि दरिद्रों को जो अति संकुल (वहुजनाकुल) धूम तथा धूलि से व्याप्त प्रदेश में निवास करते है, अधिक आक्रांत करती है।

सम्प्राप्ति—

इस रोग के कीटाणु नाक और कंठ मार्ग से प्रवेशकर सुषुम्ना और मस्तिष्क के भीतर आवरणों में पहुँकर वहां आक्रमण करते हैं तथा उन स्थानों पर प्रदाह उत्पन्न करते हैं। मस्तिष्क अन्तरा और मध्यमावृत्ति पीड़ित होने पर पूयात्मक द्रव उनके नीचे के स्थान में, विशेषतः पीठ में संग्रहीत होता है। कार्टेक्स प्रायः रसपूर्ण होता है। इससे दबाव वढ़ जाता है, मस्तिष्क द्रव्य मृदु और गुलावी बन जाता है। रक्तस्राव होता है। चतुर्थ वैन्ट्रीकिल पूयमय रस से स्फीत होती है। प्रणालियां प्रवाह मार्ग और Encephalitis (मस्तिष्क प्रदाह) के रुग्ण केन्द्र, सबमें अणुवीक्षण यन्त्र से देखने पर अन्तर्भरण प्रतीत होता है। इस रोग में सुषुम्ना काण्ड सर्वदा पीड़ित होता है। पूय सर्वत्र चारों ओर तथा कभी वातनाड़ी मूल में भी भर जाता है। चौथा वैन्ट्रीकिल वहुधा स्वच्छ और गाढ़े ब्रह्म-वारि से स्फीत हो जाती है फिर चौथा वैन्ट्रीकिल का मुख (Magendies Foramen) बन्द हो जाता है। अनेक वार मेनिञ्जो कोक्स जनित मस्तिष्क प्रदाह भी विकीर्ण रूप से हो जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य अवयवों में भी
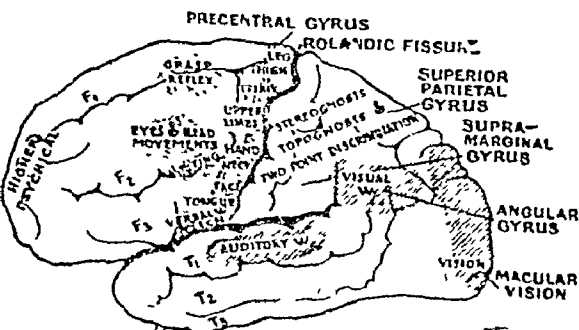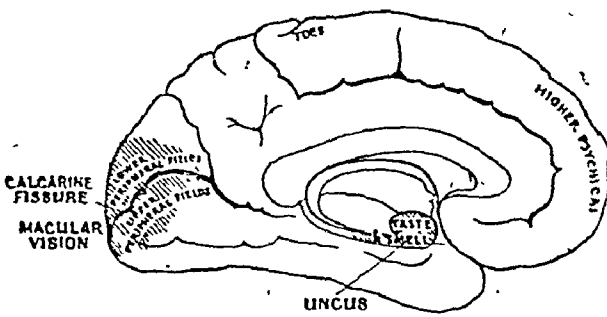
सामान्यतः कुछ परिवर्तन हो जाता है प्लीहा कभी कभी बढ़ जाती है।

चय काल—१ से ४ दिन तक।

लक्षण—

शिर में भयानक वेदना होती है, ग्रीवा स्तब्ध होजाती है। हाथ या पैर वा दोनों बेकार हो जाते है, रोगी न तो पैरों को खड़ा कर सकता है न चल सकता है न भार देकर खड़ा हो सकता है। एक पैर बटोरने पर दूसरा पैर भी संकुचित हो जाता है। तृषा, वमन, सर्वाङ्ग-वेदना, ज्वर आदि लक्षण होते है। शरीर पर दोनों तरफ दाने निकले आते हैं।

इसमें ग्रीवा भङ्ग होकर मृत्यु हो जाती है। ज्वर के संताप की नित्यवृद्धि होती है तथा शाखायें स्तब्ध होजाती हैं। अङ्गों का संकोच होता रहता है। दृष्टि वक्र होजाती है। तन्द्रा, प्रलाप तथा मोह (संज्ञानाश) से रोगी पीड़ित होता है एवं रुक रुक कर आक्षेप के लक्षण होते है। इस दारुण विकार में उचित प्रतिकार न होने पर रोगी १ से ३ दिनों के अन्दर मर जाता है। कभी कभी ४ से ७ दिन तक भी रोगी उपद्रवों में आक्रांत रह मृत्यु को प्राप्त होता है।

पूर्वरूप—पहले अग्निमांद्य, वद्ध कोष्ठ और बेचैनी रहकर भयङ्कर शिर दर्द, गरदन में अति पीड़ा, फिर पीठ में पीड़ा, चक्कर, घबराहट, कान के नीचे शोथ और कमर में पीड़ा आदि चिन्ह कुछ समय रहते फिर अक्स्मात शीत सहित ज्वर आकर इस रोग की उत्पत्ति होजाती है।

चिकित्सा—

पूर्वरूप में गरदन अकड़ जाने पर वृहद् योगराज गुगल १ ग्राम खिलाकर ५० ग्राम एरंड तैल और थोड़ा दूध मिलाकर पिला दें। फिर ऊपर से ५०० ग्राम तक निवाया दूध पिलावे। उदर शुद्धि होने पर दिन में तीन वार महा योगराज गूगल २५० मि. ग्रा. २५० ग्राम निवाये जल से देते रहे अथवा सूतराज या मृत्युञ्जयरस दशमूल क्वाथ के साथ देवें। और कपूर मिलाकर विषगर्भ तेल की मालिश करें। यदि पित्त के लक्षण मालूम हों तो शिर के बाल कटाकर मस्तिष्क सुषुम्ना पर अधोलिखित लेप लगावें—

१. तिल, अलसी, काले उड़द, मूंग, गेहूं, जौ, सरसों इनको पीस कर लेप करे और खाने के लिए वसन्तमालती ६० मि. ग्रा., प्रवाल भस्म १२० मि. ग्रा., वेदमुक्त ६० मि. ग्रा., तालिसादि चूर्ण (शार्ङ्गधरोक्त) २ ग्राम में मिलाकर तीन तीन घंटे के पीछे देते रहें।

यदि ज्वर अधिक वेग वाला हो तो कस्तूरी भैरव १२० मि. ग्रा. वेल के पत्तों का स्वरस २५ ग्राम (२५ मि. लि.) से देवें। इससे शांति होती है।

कमर, गरदन और सिर दर्द होने पर मस्तिष्क में Cerebro-spinal fluid का दवाव अत्यधिक होने या पूयोत्पत्ति हो जाने पर सुषुम्नाकांड में से सिरिंज द्वारा द्रव निकालते हैं। इस तरह दूषित लसीका, रक्त या पूय निकाल लेने के पश्चात् निवाये महाविषगर्भ तैल या तारपीन के तैल से मालिश करें और फिर मस्तिष्क तथा सुषुम्ना कांड भाग पर निवाये जल से सेक करें।

यदि रोगी को वेहोशी हो तो चन्द्रोदय, कस्तूरी, प्रवाल उचित मात्रा में पान के रस से दें। इससे रोगी को चैतन्यता आती है और ४ घन्टे के वाद द्राक्षासव १२ मि. ली. पिलावें और पीने के लिये सौंफ तथा लवंग का पानी दें।

गूगल, लोवान, अगर, नीमपत्र और सैंधव नमक का धूप करावें। इन धूपों से दूषित जन्तु नष्ट हो जाते हैं।

नागकेशर, गजपीपल, पीपरामूल, सोंठ, कालीमिर्च, सिरस वीज, आमला, इनका खूब महीन चूर्ण कर विल्ली के पित्ता में भावना देकर शीशीमें भर रखें। इसकी नस्य रोगी के लिये हितकारी है।

क्षीण नाड़ी पर—१. कस्तूरी भैरव स्वर्णयुक्त १ ग्राम, २. मकरध्वज अथवा सिद्ध चन्द्रोदय अथवा हिंगुल भस्म १ ग्राम, ३. गोमेद रत्न भस्म १ ग्राम, ४. अर्जुन-त्वक सत्व २ ग्राम, सवका मिश्रण वना लें। वच्चों को १२० से २४० मि.ग्रा. तथा वड़ों को २४० से ५०० मि. ग्रा., पान के रस के अनुपान में दिन-रात मे तीन-चार वार दें। इसके देने से नाड़ी अवश्य वलवान हो जाती है।

जव तीव्र आक्षेप हो—कृमि मुद्गर और महावात विध्वन्सन रस, दिन में तीन समय, अष्टादशांग क्वाथ के साथ देते रहें। जीर्णावस्था होने पर वृहद वात चिन्तामणि दें। यदि रोगी को प्यास अधिक लगे तो एलादि वटा अथवा जहर मोहरा खताई असली और पपीता,

दरयाई नारियल, इनको जल में घिसकर पिलावें।

आधुनिक उपचार

मस्तिष्कच्छदपाककारी जीवाणु Neisseria Intracellularia या Meningococcus कहलाता हैं। इसका ग्राम रंजन नहीं किया जा सकता। यह युग्म गोलाणु है।

इस रोग में पेनसिलीन तथा सल्फाडायजीन अतीव उपकारक सिद्ध हुए हैं। प्रारम्भ में ४ ग्राम सल्फाडायजीन (शिरान्तर्गत) देना चाहिए तथा इसके साथ ही १ ग्राम सल्फाडायजीन हर चार घन्टे वाद देना चाहिए। यह पूरी मात्रा है। बच्चों की आयु के अनुसार इसे कम किया जा सकता है। किन्हीं दशा में यह मात्रा वढ़ाई भी जा सकती है। औषधि की रक्त में मात्रा २० मि. ग्रा. १०० मि. लि. पहुँचनी चाहिए। यदि रोगी का वृक्क खराव हो तो इसमें सोड़ा वाई कार्व. के साथ मिला कर देना चाहिये।

दस लाख यूनिट पैनीसिलीन का जल में घोल पेशी में हर चार चार घन्टे में देना चाहिए जव तक कि रोगी को लाभ नजर न आए। एक्रोमाइसीन टैरामाइसीन आदि का प्रयोग किया जा सकता है। स्ट्रेप्टोमाइसीन पेशीवेध और ५० मि. ग्रा. १० मि. ली. नार्मल सेलाइन में मिला कर सप्ताह में तीन वार कटिवेध द्वारा पहले १२ मि.लि. मस्तिष्क सुषुम्ना जल निकालकर देना चाहिए। कटिवेध के कारण वमन तथा तापवृद्धि होने पर चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

प्रेतोत्थ तथा ग्रहोत्थ ज्वर

प्रेतोत्थ तथा ग्रहोत्थ ज्वरों का नामोल्लेख आयुर्वेद के आर्ष ग्रन्थों में उपलब्ध है। परन्तु स्पष्ट वर्णन नहीं किया गया है। वाल ग्रह रोगों का वर्णन करते हुए आचार्यों ने रोग लक्षणों का विवरण तो अवश्य दिया है परन्तु प्रेत या ग्रह शब्द को स्पष्ट नहीं किया है। कश्यप ने इसे विषम ज्वर के अन्तर्गत ही माना है। अष्टांग संग्रह में अभिषंग ज्वरों में ग्रहावेश ग्रहण किया है। सुश्रुत ने भी लक्षण तथा चिकित्सा लिखी है।

इस विषय में विद्वान वैद्यों के दो मत हैं। प्रथम मत मानसिक रोग को समर्थन देता है तथा दूसरा मत रोगोत्पादक जीवाणुओं को उपस्थित करता है। कुछ भी हो दोनों मत सर्व सम्मत नहीं हैं। अवश्य यह अनुसंधान का विषय है। इस पर अधिक खोज की आवश्यकता है। वाल ग्रह रोगों को लेकर यह अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है।

आशा है विद्वान वैद्य मेरे इस मत से सहमत होंगे।

—विशेष सम्पादक।

दण्डकज्वर

कविराज डा० हरिबल्लभ मन्नूमल द्विवेदी सिलाकारी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य,
चिकित्सक चक्रवती, आयुर्वेद बृहस्पति, स्वामी निरंजन-निवास, सागर।

पर्याय—इसे हिन्दी में हड्डीतोड बुखार, अंग्रेजी में ब्रेकबोन फीवर और डेंग्यू फीवर कहते हैं।

व्याख्या—इसमें ज्वर, त्वचा पर छोटे-छोटे गुलाबी वर्ण वाले दाने दिखते हैं और हड्डियों में तीव्र पीड़ा ये प्रधान लक्षण प्रदर्शित होते हैं। हड्डियों में पीड़ा इतनी तीव्र होती है कि हड्डियां टूट रही हैं, ऐसा आभास होता है। इसी कारण से इस ज्वर को हड्डीतोड़ बुखार कहते हैं।

कारण—इसके कारणभूत जीवाणु का अभी अन्वेषण नहीं हो सका है। भारत में मद्रास, बम्बई, बङ्गाल, आसाम और ब्रह्मदेश इन प्रान्तों में यह अधिक पाया जाता है। शरद ऋतु में विशेष दिखाई देता है। सम्पूर्ण साल में भी होता रहता है।

मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्यकोष्ठाग्निं ज्वरदाःस्युरसानुगाः॥
(माधव नि०)

मिथ्या आहार देश-काल-प्रकृति आदि के विरुद्ध एवं संयोग विरुद्ध भोजन, मिथ्या विहार, शरीर की शक्ति से अधिक करना इन कारणों से कुपित हुए दोष (वात-पित्त-कफ) आमाशय में प्रविष्ट होकर रस को दूपित कर कोष्ठाश्रित अग्नि की ऊष्मा को बाहर निकाल कर ज्वर को उत्पन्न करते है।

प्रसार[1]—स्टेगोमिया फैशियेटा नामक मच्छर के दंश करने से इनका संक्रमण होता है। दण्डक ज्वर से पीड़ित प्राणी को जब यह मच्छर दंश करता है तब कुछ जीवाणु उसके आमाशय में प्रविष्ट हो जाते हैं। इसके पश्चात् मच्छर के शरीर में १२ दिन के भीतर कुछ परिवर्तन होते हैं, तदोपरान्त वह मच्छर आजीवन रोग का संक्रमण अन्य मनुष्यों में दंश के द्वारा कर सकता है।

सम्प्राप्ति[2]—शरीर में जीवाणु का प्रवेश होने पर कूर्पर सन्धि के ऊपर स्थित ग्रन्थियां फूल जाती हैं। कभी कभी प्लीहा स्पर्शलभ्य होती है। रक्त में रोग के प्रारम्भिक दिनों में विष विद्यमान रहता है। श्वेतकण घट कर ३ से ४ हजार तक रह जाते हैं। बहुकेन्द्रीय कण बहुत कम तथा एक केन्द्रीय कण अधिक बढ़ जाते हैं। ज्वर उतर जाने पर ईयोसिनोफिल की संख्या बढ़ जाती है।

लक्षण—

ज्वर अकस्मात आरम्भ होता है और कुछ घण्टों में १०४ डिग्री तक बढ़ जाता है। ज्वर तीसरे दिन कुछ कम होता है। पांचवें दिन पुनः बढ़ता है। इसके बाद सातवें दिन उतर जाता है।

---

1 अभक्षयाभिघातेभ्यो देहिनां कुपितोऽनिलः।
पूरियत्वाखिलं देह ज्वरमापादयेद् भृशम्॥
तत्राभिघातजोवायुः प्रायोरक्तंप्रदूपयन्।
सव्यथाशोथवैवर्ण्यं करोति सरुजं ज्वरम्॥

2 कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥

कुष्ठ, ज्वर, शोष, नेत्राभिष्यन्द ये औपसर्गिक रोग एक से दूसरे पर संक्रमण कर फैलते हैं। अर्थात उपदंश, राजयक्ष्मा, विसूचिका, प्लेग, मसूरिका आदि रोग भी संक्रामक हैं।

पीड़ा—शिर, नेत्र, कमर तथा हाथ–पैरों में तीव्र पीड़ा होती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे हड्डियां टूटी जा रही हों। शरीर अकड़ता है।

विस्फोट—शरीर पर प्रायः विस्फोट निकलते हैं। पहले या दूसरे दिन में विस्फोट–मुख, गले तथा वक्ष पर दिखाई देते हैं। इनके कारण ये स्थान लाल-लाल दिखते हैं। एकाध दिन बाद विस्फोट मिट जाते हैं। चौथे अथवा पाचवें दिन दूसरी बार ज्वर चढ़ने के साथ विस्फोट निकलते हैं। ये धड़, शाखाओं तथा हथेलियों पर अधिक दिखाई देते हैं। इनके मुर्झाने पर चर्म भुसी की भांति निकलता है। कभी-कभी ये विस्फोट नहीं भी दिखते।

नाड़ी—प्रारम्भ में नाड़ी की गति ज्वर के अनुसार बढ़ती है परन्तु उत्तरोत्तर मन्द हो जाती है। यहां तक कि १०२ डिग्री ज्वर होने पर भी नाड़ी की गति स्वाभाविक रहती है। स्पर्श में—उष्ण होती है। इसके अतिरिक्त दुर्बलता, अनिद्रा, तीव्रज्वर, प्रलाप, जी मिचलाना, वमन, मन्दाग्नि, विवन्ध, जीभ मैली ये लक्षण होते हैं।

उपद्रव[3]—बहुत कम उपद्रव होते हैं, तथापि निम्न उपद्रव हो सकते हैं—रक्त प्रवाह, अलव्युमिन मेह, प्रवाहिका, वृषणशोथ, कर्णमूलिकशोथ, तीव्रज्वर तथा नेत्राभिष्यन्द।

साध्यासाध्यता—यह सुसाध्य ज्वर है। बालक, वृद्ध एवं दुर्बलों को कभी-कभी मारक होता है। बहुधा बालकों में—नासिका से रक्तस्राव, प्रलाप, आदि लक्षण अधिक होना तथा तीव्रज्वर इससे मृत्यु होती है। विद्वान वैद्यों के विशेष दिशादर्शन हेतु कविराज गणनाथ सेन कृत निदान उद्धृत है—

अस्थिसन्धिरुजास्तीव्रा दण्डाहतिकृता इव।
प्रायःक्षिप्रोदयलयो वीसर्पः सर्वगात्रगः॥
ज्वरश्च कण्ठरुग्युक्तः पुनरावर्त्तते गतः।
सञ्चारिणा सशोथेन सन्धिशूलेन लक्षितः॥
प्रतिश्याकासवान् प्रायेणाष्टाहेन प्रमुच्यते।
चिरं सन्धिरुजाः सन्ति सज्ञेयो दण्डक ज्वरः॥
प्रायोऽसौजानपदिको वातश्लेष्म प्रकोपणः।
बालानां जरतञ्चातिदारुणः परिलक्ष्यते॥
(सिद्धान्त-निदानम्)

चिकित्सा

आर्ष आयुर्वेदाचार्यों का आदेश है कि—

ज्वरादौ लङ्घनं कुर्यात् ज्वरमध्येतुपाचनम्।
ज्वरान्ते रेचनं दद्यात् तदनन्तर भेषजम्॥ (यो. र.)
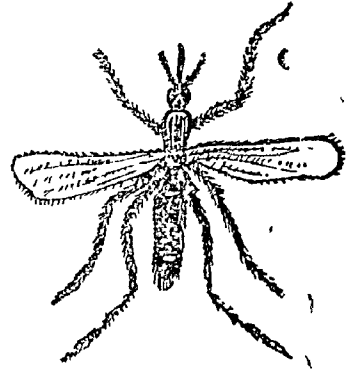
दण्डक ज्वर कीटाणु बाहक मक्षिका

ज्वर के पहले लङ्घन, ज्वर के मध्य में पाचन और ज्वर के अन्त में रेचन देना, तदोपरान्त औषधोपचार करना चाहिये। यदि ज्वर की सामावस्था हो तो एक सप्ताह लङ्घन कराना उचित है, अन्यथा नहीं। स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, यदि कब्ज होवे तो पहले अश्वकंचुकी रस देकर कोष्ठ शुद्धि करने के बाद ज्वरांकुश रस, महाज्वरांकुश रस, चढ़ते हुए ज्वर में इनका उपयोग करने से ज्वर का वेग बढ़ता है, अतएव ज्वर आने के पूर्व प्रयोग करना चाहिये। नारायण ज्वरांकुश रस २ रत्ती, तुलसी पत्र, सोंठ, कालीमिर्च की चाय के साथ सेवन कराके कपड़े ओढ़ाकर रोगी को सुलाना। इससे पसीना आकर ज्वर का वेग कम हो जाता है। यदि ज्वर का वेग तीव्र हो, रक्तस्राव हो रहा हो, पित्त प्रकृति हो एवम् ग्रीष्म ऋतु में इन औषधियों का उपयोग नहीं करना।

ज्वरेन्द्रवल्लभ रस—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध धत्तूरबीज साम्हर, शृङ्ग भस्म, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल पीपरामूल, प्रत्येक ५–५ तोला। चूने के

[3] कासोमूर्छाऽरुचिश्छर्दिस्तृष्णातिसार विड्ग्रहा।
हिक्काश्वासोङ्गभेदाश्च ज्वरस्योपद्रवादश॥
कास, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, तृष्णा, अतिसार, मलबद्धता, हिक्का, श्वास, अङ्गभेद (हड़फूटन) ये दस ज्वर के उपद्रव विशेष का आयुर्वेदाचार्यों ने उल्लेख किया है।

पानी में पकाया हुआ सुम्मल २ तोला, गोदन्ती हरताल भस्म २ तोला, चौकिया सुहागा भुना हुआ ४ तोला, करंजबीज का चूर्ण १० तोला, शुद्ध पारद ५ तोला, शुद्ध गन्धक ५ तोला।

विधि—प्रथम पारद और गन्धक, दोनों को काजल के समान घोट कर कज्जली करना। फिर औषधियों का चूर्ण और अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिलाकर क्रमशः करेले के पंचांग रस, इनकी पृथक्-पृथक् १-१ भावना देकर मर्दन करना और १ रत्ती प्रमाण वटी बनाकर रख लेना। मात्रा—१ से ३ वटी तक। अनुपान—तुलसी पत्र रस तथा मधु के साथ।

समय—प्रातः, मध्याह्न एवं सायं अथवा आवश्यकता और अवस्थानुसार देना। उपयोग—दण्डक ज्वर, शीतपूर्व विषम ज्वर, जीर्णज्वर, सर्व प्रकार के ज्वरों पर।

दशमूलादि क्वाथ का उपयोग करने से उपद्रवयुक्त दण्डक ज्वर एवं वायुजन्य वेदना का विनाश होता है। विशेष वेदना के वास्ते महानारायण तैल में तारपीन का तैल मिलाकर मर्दन करके मदार का पत्ता गरम कर बांधना चाहिए। अश्वकंचुकी रस, ज्वरांकुश रस, महाज्वरांकुश रस, नारायण ज्वरांकुश रस, दशमूलादि क्वाथ तथा महानारायण तैल के प्रयोग शारंगधर संहिता एवं भैषज्य रत्नावली में देखकर निर्माण करना चाहिये।

उक्त चिकित्सा परम्परागत तथा मेरी सात वर्ष के कार्यकाल में प्रयुक्त स्वानुभूत है। आशा है सहयोगी वैद्य बन्धु चिकित्सा का प्रयोग कर यशार्जन के साथ आयुर्वेदीय चिकित्सा की विजय पताका फहरावेंगे।

पथ्यापथ्य—पुराना पतला साठी चावल का भात, मूग और अरहर की दाल, कुल्थी का यूप, गेहूं की रोटी, दलिया, परवल, करेला, मेंथी, पालक की शाक, दूध, साबूदाना, बार्ली, मुनक्का, मौसम्वी, पपीता, आमला, लहसुन, अदरख की चटनी। गरम करके ठंडा किया हुआ पानी पिलाना हितकर है।

भारी, रूक्ष, शीतल एवं वायुकारक, बासे पदार्थ, पूर्व की वायु का सेवन, स्नान, व्यायाम, परिश्रम, मैथुन, दिवा-निद्रा, रात्रि जागरण, शीतल जल-पान, शरीर में खुली हवा का लगना, घूमना-फिरना, क्रोध, शोक, भय, यह अपथ्य दण्डक ज्वर के रोगी को सर्वथा त्याग देना चाहिए। लेखक के अप्रकाशित ग्रन्थ ज्वर 'ज्वर व्याधि विज्ञान' से—

"पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणैः।"
(पथ्यापथ्यम्)

पथ्य पालन न करने वाले रोगी को औषधि सेवन का क्या महत्व।

ज्वरघ्न प्रयोग संग्रह

(१) करंज बीज १० तोला, कालीमिर्च २ तोला, दोनों को कूट पीसकर छानकर तुलसी पत्र स्वरस में घोटकर मटर प्रमाण गोली बनाकर सुखाकर रख लीजिये।

मात्रा—१ से ४ गोली तक। अनुपान-ज्वर चढ़ने से दो घण्टे पहले दो घूंट पानी से, छोटे बच्चों को दूध या मधु के साथ। समय-दिन में तीन बार या आवश्यकतानुसार। गुण-विषमज्वर, ऐकाहिक-तृतीयक-चातुर्थिक ज्वर, शीतज्वर, उदरशूल पर उपयोगी।

(२) अर्कपत्र को कपड़ों से पोंछकर उसकी नसों को काटकर सिल पर चटनी के समान महीन पीस लेना। इसके वजन का अष्टमांश कालीमिर्च और हल्दी का चूर्ण मिलाकर चने प्रमाण वटी बनाकर छायाशुष्क कर सुरक्षित रख देना।

मात्रा—१ से २ वटी तक। अनुपान—सिकी हुई मुनक्का, मधु, मिश्री का सीरा, ताजा जल।

समय—दिन में तीन बार। गुण—विषमज्वर, जीर्ण ज्वर, मन्दाग्नि, प्लीहा पर लाभप्रद।

(३) करेले के पत्तों के साथ पीपल के चतुर्थांश चूर्ण को सिल पर पीसकर जंगली बेर के बराबर वटी बनाकर सुखा रखना। मात्रा—१ से ३ वटी तक। समय—तीन बार तक। अनुपान—मधु, कवोष्ण जल, मिश्री का शर्बत। समय—दिन में चार बार तक। गुण—शीतपूर्व ज्वर, विषमज्वर पर गुणप्रद।

(४) नाह बूटी को सिल पर महीन पीस लेना, इसका चतुर्थांश भाग कालीमिर्च का छना हुआ चूर्ण मिलाकर चने समान गोली बना सुखाकर रख लीजिये।

मात्रा—१ से ४ गोली तक। अनुपान—ताजाजल। शक्कर का सीरा। समय—ज्वर चढ़ने से एक घन्टे पूर्व। दिन में चार बार तक देना। गुण—विषमज्वर, शीतपूर्व ज्वर, पित्त विकृति पर लाभप्रद।

—शेषांश पृष्ठ २४० पर देखें
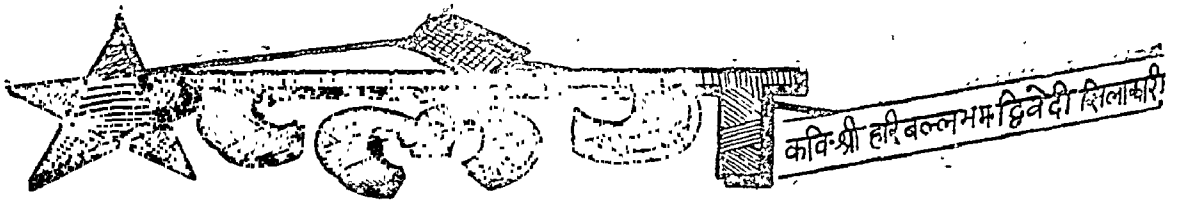
इस ज्वर को सुश्रुत ने अग्निरोहिणी नाम दिया है। यह तीव्र संक्रामक रोग है। आचार्य त्रिवेदी जी ने इसे वातालिका संज्ञा दी है। यह रोग जनपद विनाशकारी रोग है। इसमें तीव्र ज्वर, प्रलाप, लसीका ग्रन्थि वृद्धि लक्षण पाये जाते हैं। इससे पीड़ित होने वाले आवाल वृद्ध रोगियों के वंक्षण, कुक्षी या गर्दन में ग्रन्थि शोथ होता है।

इस रोग का कारण एक प्रकार का विशेष दण्डाकार कीटाणु होता है जिसे 'वेसीलस पैस्टिस' कहते हैं। यह रोग चूहों के पिस्सुओं द्वारा फैलता है। पिस्सू जब चूहों को काटते हैं तो इसके वैसिलस को भी चूस लेते हैं। यह वैसिलस और कीटों की तरह कुछ दिन चूहों के पिस्सुओं में बढ़ता है पश्चात जिसको पिस्सू काटता है उसी को रोग हो जाता है। पिस्सू चूहों पर ही रहते हैं इसलिये यह रोग पहले चूहों में महामारी के रूप में फैलता है। इसमें बहुत से चूहे तो मर जाते हैं और वहुत से भाग जाते हैं। चूहों के न रहने पर पिस्सुओं को आहार नहीं मिलता अतः यह मनुष्यों को काटने से और उनमें रोग फैलता है। फुपफुस प्रदाहिक प्लेग में श्वास और श्लेष्मा द्वारा भी यह भेद फैलता है।

पिस्सू डेढ़ फीट से ऊपर नहीं उछल सकता अतः यह मनुष्य को डेढ़ फीट से नीचे ही काटता है। कभी कभी सोये हुए मनुष्य के गर्दन पर भी काटता है या झुकने पर ऊपर के अङ्गों को भी काट लेता है। जिस भाग पर काटता है वहीं से कीटाणु मानव देह में प्रविष्ट होकर लसीका वाहिनियों द्वारा रक्त में जा मिलते हैं। लसीका वाहिनियों से लसिका में ग्रंथियां हो जाती है जिनका कार्य कीटाणुओं के और विष को रक्त में जाने से रोकना है जिससे संभवतः वे स्वयं ही उनसे वही निपट लें। प्लेग का कीट और उसका विष जब लसीका ग्रन्थियों में पहुँचता है तो वे उसको वहीं रोक कर उदासीन और मारने का यत्न करती हैं। इसी कारण से ग्रन्थियां वढ़ जाती है। ग्रंथियों का वढ़ना तथा पूय का पड़ना और फट जाना शुभ लक्षण हैं। इसके कीटाणु रक्त में नहीं जाने पाते, वे कुछ वहीं मर जाते हैं और कुछ पूय द्वारा वाहर निकल आते हैं। ज्वर उन्हीं के विष से होता है।

जव कीट लसीका में न रुक कर रक्त में चला जाता है तो सैप्टीमिया हो जाता है। यह रोग की वड़ी भयानक अवस्था है। इसमें अंग विशेष की ग्रंथियां अधिक नहीं सूजती क्योंकि विष और कीटाणु सारे शरीर में फिर रहे होते हैं। इसलिये शरीर की ग्रन्थियां थोड़ी थोड़ी सूज जाती हैं।

फुफ्फुस प्रदाहिक प्लेग के रोगी के पास जो व्यक्ति जायगा उसे भी इस रोग के होने का भय रहेगा। इस अवस्था के कीटाणु अधिक वलवान और उग्र होते हैं। वड़ी शीघ्रता से फुफ्फुसों में जाकर घोर प्रदाह उत्पन्न कर देते हैं, और रक्तष्ठीवन होने लगता है।

इस रोग के प्रधान चार भेद हैं। (१) ग्रंथिक (२) विष प्रकोपज (३) फुफ्फुस प्रदाहज (४) मस्तिष्कावरण प्रदाह।

(१) ग्रन्थिक—यह सवसे अधिक होने वाला प्रकार है जिसका चय काल २४ घंटे है। अनुमानतः २४ घंटे वाद ग्रन्थियां निकल आती हैं। शीत लगकर तीव्र ज्वर, सिर-शूल, सिरोभ्रम, वमन, उत्क्लेश दुर्वलता आदि लक्षण होते हैं। रोगी में चलने का सामर्थ्य नहीं होता, नाड़ी तीव्रतर होती है। यह ग्रंथियां शीघ्रता से सूजती हैं। पीड़ा होती है तथा पूय पड़ जाता है। ८-१० दिन में ग्रंथि पक जाती हैं। कभी कभी स्वयं फूट जाती हैं। इनका पकना तथा फटना शुभ है। साध्यावस्था में १३ से १५ दिन में ज्वर उतर जाता है।

(२) विष प्रकोपज—यह ग्रंथिक के वाद होती है। चौथे दिन प्लेग के वेसिलस रक्त में चले जाते हैं। या कभी कभी आरम्भ से ही सेप्टीसीमिया रूप धारण कर लेता है। इसमें

ज्वरादि लक्षण अति तीव्र रूप में हो जाते है। रोगी देखने से ही मृत्यु शैया पर पड़ा मालूम होता है। अंग विशेप की ग्रन्थियां विशेषतः सूजती नहीं परन्तु सारी लसीका ग्रन्थियां थोड़ी थोड़ी सूजी हुई नजर आती है। नाड़ी की गति अति तीव्र और दुर्बल होती है। रोगी प्रायः ५-७ दिन में मर जाता है।

(३) फुफ्फुस प्रदाहक—अकस्मात शीत देकर तीव्र ज्वर चढ़ जाता है। साधारण अंगमर्द, सिरशूल, भ्रम, उत्क्लेश लक्षण भासते हैं। रोगी की छाती में पीड़ा होती है। शुष्क कास होता है। श्वास की गति तीव्र होती है। रक्तष्ठीवन प्रायः सदैव हुआ करता है। फुफ्फुस परीक्षण करने पर प्रणालीय फुफ्फुस प्रदाह दिखता है। दोनों ही फुफ्फुसों में मर्मर शब्द सुनाई देता है। जहां फुफ्फुस ठोस हो जाते हैं। कर-कर शब्द सुनाई देता है। यह अति भयानक रोग है। कोई भाग्यशाली ही बचता है।

(४) मस्तिष्कावरण प्रदाहज—में मस्तिष्क और मस्तिष्कावरण के लक्षण प्रकट होते हैं। प्लेग उत्पादक कीटाणु रक्त और मस्तिष्क सुषुम्ना तरल में पाये जाते है।

जिनके टीके लगे हुए हों या रोग ही मृदु अवस्था में हो तो रोग लक्षण मृदु होते हैं रोगी चलता फिरता रहता है। ग्रन्थि थोड़ी सूज कर कुछ ही दिनों में बैठ जाती हैं। ज्वर मन्द होता है या नहीं होता।

इस रोग का पुनराक्रमण अति भयङ्कर होता है। रोग विनिश्चय करते समय कीटाणुओं के संक्रमण की ओर ध्यान देना चाहिए। फुफ्फुस प्रदाहज में अत्यधिक स्वेद, कफ की तरलता तथा रक्तष्ठीवन, साधारण फुफ्फुसावरण में तरल संचय।

इस रोग में ग्रन्थी के फूट जाने से रोगी बचाया जा सकता है। यदि ग्रंथियां मृदु हों, ज्वर कम हो तो रोगी बच सकता है। विपरीत लक्षणों में यह रोग मारक है। महामारी के रूप में फैलने पर यह रोग मारक होता है। रोग के साथ अतिसार, मूत्रावरोध, सन्यास आदि लक्षण मारक हैं। इस रोग को रोकने का उपाय करना चाहिए—

(१) टीके लगवाने चाहिए (२) चूहों को मारने या घर से भगाने का उपाय करना चाहिए। (३) कृमिघ्न छिडकावों द्वारा घर की शुद्धि कर लेनी चाहिए। (४) इसमें छूआछूत का विशेष ध्यान रखना चाहिए। (५) जाना ही पड़े तो १॥ फुट तक ढक कर जाना चाहिए। (६) घर की सफाई, वस्त्रों की सफाई तथा देह की सफाई आवश्यक है।

इस रोग में निश्चित रूप से लाभ करने वाली चिकित्सा उपलब्ध नहीं है। गांठ पर सेक और विष शामक औषधि देते रहने से लाभ होता है। चिकित्सा जितनी जल्दी आराम हो सके उतना ही उत्तम है। मलोत्सर्ग की ओर ध्यान देना चाहिए। रोगी को केवल पंचकोल क्वाथ पर रखें। मौसम्बी तथा नींबू सन्तरे का रस दूध थोड़ा थोड़ा दें।

गांठ पर मल्लादि लेप, ग्रन्थिभेदक लेप, प्रतिसारणीय क्षार प्रकृति को विचार कर लगाना चाहिए।

(१) अफीम तथा शराब मिलाकर लेप करें। (२) हल्दी चूना अण्डे की सफेदी का लेप करें (३) सोमल, लहसुन, अफीम इनको जामुन के रस में या शराब में पीस कर लेप करें। (४) ग्वारपाठे का सेक करें (५) प्याज हल्दी तथा तैल पकाकर सेक करें। (६) बिरोजा, सिन्दूर मौम दालचिकना तथा तैल का मलहम बनाकर पट्टी लगावें। (७) जल धनिया इसका उपचार है (८) अश्वगन्धा का लेप करें।

औषधियों में कालकूट रस, मृत्युञ्जय रस, संजीवनी, अश्वकंचुकी, मल्ल ज्वरांकुश रस हितकर हैं।

उपद्रवों की चिकित्सा आवश्यकतानुसार करें। डाक्टरी चिकित्सा में हाफिकन्स सीरम लगाते है। रोग आरम्भ होते ही वेक्सीन्स सीरम का प्रयोग करने पर रोगी बच सकता है

अभी तक डाक्टरी में भी इसकी कोई निश्चित औषधि नहीं है।

—※—

श्लीपद ज्वर
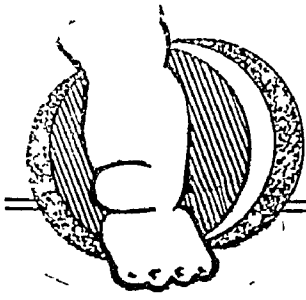
वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयुर्वेद केशरी, विशेष सम्पादक–'धन्वन्तरि'

यह एक प्रसिद्ध रोग है। इसमें पैर हाथ हाथी के समान हो जाते हैं। इसी दृष्टि से इसे Elephentitis एलीफेन्टाटिस भी कहते हैं। इसका प्रारम्भ वृषणों में, शाखाओं में लाली, शोथ के साथ होता है। इसमे करीब १ पक्ष में एक बार ज्वर हो जाता है। ज्वर शीत (कम्प) पूर्वक होता है। सुश्रुत के अनुसार यह रोग आनूप देशों में अधिक होता है।

यह रोग कृमिजन्य होता है। कफ की अधिकता से आक्रान्त अंग गौरव तथा आकृति में बढ़ जाना इसका लक्षण है। इसके कीटाणु Filaria Bancrofti है जो क्युलेक्स मच्छर के दंश द्वारा मानव शरीर में प्रवेश करते हैं। इसके कीटाणु रक्त मे अपनी वंश वृद्धि करते हे। रोगी के रक्त परीक्षण द्वारा ये कीटाणु स्पष्ट हो सकते हैं। इसके कीटाणु रासायनियों में रहकर असंख्य सन्तान पैदा करते हैं। यदि ये नष्ट न हों तो केशिकाओं द्वारा रक्त में संक्रमण कर ज्वर आदि लक्षण दिखाते हैं।

श्लीपद रोग उत्पन्न करने वाले २० प्रकार के कृमि मनुष्य के शरीर में रहते हैं जिनमें ६ अधिक सुलभ हे। रक्त में इनका प्रवेश साय ६ बजे प्रारम्भ होता है। और अप रात्रि तक ये सम्पूर्ण शरीर में फैलते हे। इसी दृष्टि से रात्रि में परीक्षा के लिये रक्त लेना श्रेयस्कर माना गया है। रात्रि में ये इसी तरह रक्त में परिभ्रमण करते रहते हैं और दिन में संभवतः फुफ्फुसों की वाहिनियों में छिपे रहते है। यह ज्वर भी प्रति रात्रि में इनके रक्त प्रवेश का ही कारण माना जा सकता है। अतः नियमित समय पर ही इसका ज्वर चढ़ता है। इसी विषम वेग के कारण इसे भी विषम ज्वर प्रकारों में ही माना गया है।

पैरों में, अण्डकोषो में तथा बाद में हाथों में सूजन तथा चमड़ी का मोटापन इसका लक्षण है जो धीरे-धीरे

दोनों पैरों का श्लीपद

बढ़ता है परन्तु स्थायी रहता है। लसीका वाहिनियों का अवरोध होने से लटकने वाले अंगों में लसीकाओं का संचय हो जाता है। यह रोग जड़ से नहीं जाता फिर भी लाभ हो सकता है।

चिकित्सा -

चिकित्सा करते समय नित्यानंद रस इस रोग में स्मरण योग्य है। लक्ष्मी विलास रस (नारदीय), महायोगराज गूगल, मल्ल सिन्दूर प्रयोग में लें।

गोमूत्र पान, अरण्ड भृष्ट हरीतकी चूर्ण, हरिद्रा गुड, कांजी का प्रयोग लाभदायक है।

श्लीपद गज केशरी रस का सेवन कांजी के साथ पिप्पल्यादि चूर्ण मिलाकर करने से लाभ होता है।

प्रलेप—(१) सोठ, सरसों, पुनर्नवा, गोमूत्र,

(२) सफेद मदार की जड़ कांजी के साथ,

—शेषांश पृष्ठ २५६ पर देखें

कृष्ण मेह ज्वर

(BLACK WATER FEVER)

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयुर्वेद केशरी, विशेष–सम्पादक 'धन्वन्तरि'

इस रोग का कारण स्पष्टतः ज्ञात नहीं है फिर भी यह माना जा सकता है कि इस ज्वर का सम्बन्ध विषम ज्वर से है। संभव है विषम ज्वर में ली गई उग्र आधुनिक औषधियां ही इसे पैदा करती हों। इसे Malarial Haemoglobinuria भी कहते है। यह मारात्मक विषम ज्वर का ही एक प्रकार है। इसमें मूत्र वर्ण काला आने लगता है। संभवतः पित्त वृद्धि ही इसका कारण हो। पित्तज प्रमेह या कालमेह भी इसी जाति में स्वीकार किये जा सकते हैं परन्तु इसमें ज्वर होना आवश्यक नहीं है। इस रोग में रक्ताणुओं का नाश बड़ी तेज गति से होता है परन्तु इसका कारण ज्ञात नहीं है। कभी कभी इस ज्वरी में रक्त परीक्षण में मलेरिया के कीटाणु आते हैं।

इस रोग में पाण्डु कामला के लक्षण भी सामने आते हैं। अतिसार, रक्तक्षय, शीताघात, अंशुघात, वर्षाघात, अधिक परिश्रम, मद्य सेवन आदि के कारण रक्त में अम्लोत्कर्ष होकर रक्ताणु नष्ट हो जाते हैं। जब रोग का प्रभाव वृक्कों तक पहुंच जाता है। तब वृक्क (रक्तमूत्रता) रोग के विषाणुओं को मूत्र द्वारा बाहर फेंकता है जिसका रंग काला होता है। इस रोग में पित्तवमन भी होता है। रोगी का रक्तचाप भी न्यून हो जाता है तथा बेचैनी महसूस करने लगता है। इस रोग में वृक्क के अकर्मण्य हो जाने का भय भी रहता है।

यह रोग अपनी उग्रावस्था में यकृद, प्लीहा तथा वृक्कों पर प्रभाव करता है, यानी पित्ताधिक्य के कारण यह प्रभाव होता है। आगे जाकर अल्पमूत्रता या अमूत्रता भी पैदा हो जाती है। इससे रोगी की मृत्यु भी हो सकती है।

कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि मानवीय आंतियों में शोणांशनकारी तत्व Lytic सदा ही रहता है पर वहीं उसके ठीक विरोधी तत्व मौजूद रहने से यह अपना विनाशकारी कार्य करने में असमर्थ रहता है। इस रोग के कारण यह Lytic विरोधी तत्व समाप्त हो जाता है इस कारण से Lytic अपना काम प्रारम्भ रक्त के रक्ताणुओं का नाश करना प्रारम्भ कर देता है। इसी दृष्टि से यह अवस्था आती है।

इस रोग की चिकित्सा करते समय कारणों का निवारण करना आवश्यक है अर्थात उग्र आधुनिक मलेरिया विरोधी औषधियों का सर्वथा परित्याग कर दे। अन्य सौम्य औषधियों से मलेरिया का प्रतिकार करे। इसके साथ प्रयत्न यह होना चाहिये कि रोगी का मूत्र क्षारीय बना रहे। इस रोग की चिकित्सा पित्तप्रसादक, शीतवीर्य मधुर तिक्त रस प्रधान औषधियों से होनी चाहिये।

मुक्ता पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, गडूची सत्व, 'चन्दनादि' लोह, साधारण सर्व ज्वरहर लोह, साधारण विषमज्वरान्तक लोह आदि औषधियां उपयुक्त हैं। लोहासव, अमृतारिष्ट का प्रयोग उत्तम है।

इस ज्वर में पथ्य की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है। मधुर सुपाच्य भोजन, द्राक्षासर्करा, निम्बू तथा स्वर्जीक्षार उत्तम पथ्य है। यव सक्तुक या यव निम्बुक द्रव देना भी लाभ करता है।

सारांशतः इस रोग में रक्त की रक्षा, यकृद, प्लीहा, वृक्क को बल देना आवश्यक है। ज्वर को उतारने के लिये करंजबीज चूर्ण स्फटिक योग उत्तम है।

एक युद्धकालीन एव दो विदेशी ज्वर—

खाति ज्वर

(TRENCH FEVER)

यह ज्वर जैसाकि नाम से स्पष्ट है Trench खात निवास के कारण होता है। युद्धकाल में सैनिक जब खातों में छुपकर वार करते है या बचाव करते है तब वहाँ के पीडक जानवरों के काटने से यह ज्वर पैदा होता है। जैसे कि विगत विश्व युद्ध में हुआ था। वहीं से इस ज्वर का यह नामकरण हुआ था।

यह उग्र ज्वर है जिसके चढ़ने पर देह की माँसपेशियां तथा अस्थियाँ अत्यधिक पीड़ा महसूस देती है। रोगी शिथिलता तथा दौर्बल्य का अनुभव करता है। पिण्डलियों तथा जांघों में अत्यधिक वेदना होती है। इसका अन्य नाम जंघास्थि ज्वर भी है। ज्वर का दौर पांच-छः दिन के अन्तर से आता है। इसे विषमज्वर के प्रकारों में पंचाहिक ज्वर भी कह सकते है। चिरकालानुबन्धी ज्वर से देह में कोठोत्पत्ति भी होती है।

इस ज्वर के उत्पादक जीवाणु का नाम Reckettsia Quintana है। मतान्तर से इसका वाहन मानव देह पर रहने वाली जू है जिसके पेट में इसके जीवाणु चले जाते है। वे वहां की कला के कीटाणुओं में प्रवेश किये बिना ही सीधे आँतों में पहुंचकर वहाँ अपना प्रसार करने लगते हैं। संक्रान्त जू के पेट में इस रोग के असंख्य जीवाणु पड़े रहते है और कही भी खरोंच या क्षत पाकर वे देह में प्रवेश पा जाते है। जूओं के काटने से भी इसका संक्रमण होता है। ये विषाणु संक्रान्त रक्त के कीटाणुओं में रहा करते हैं, रक्त रस में नही।

रोग के निवारण के लिए इसके कारणभूत जू से बचने का प्रयास करे तथा इसकी चिकित्सा लक्षणानुसार करे। विषमज्वर के प्रकार होने से इसकी चिकित्सा उसी आधार पर की जानी चाहिए।

किं ज्वर

(QUEENS LAND FEVER)

उपरोक्त स्थान आस्ट्रेलिया में है अतः वहां पर आने वाला यह ज्वर इसी नाम से पुकारा गया है। सर्व प्रथम इस ज्वर का ज्ञान इसी स्थान पर हुआ था। इस ज्वर का कारण Reckettsia प्रजाति के जीवाणु हैं जो चूहों में रहते है। चूहों के द्वारा ये जीवाणु मनुष्य देह में संक्रमण करते है। इस रोग का प्रसार दक्षिण भारत के नीलगिरि तथा कोइम्बतूर जिला में पाया जाता है।

इस ज्वर के लक्षण पूप ज्वर के समान होते है। इस ज्वर की अवधि ६ से १० दिन तक होती है। इसमें आध्मान तथा अतिसार नही होता। ज्वर तापमान १०२ से १०४^0 फा, तक रहता है। इसमें श्वसनक ज्वर के उपद्रव देखे गये है। टायफस ज्वर से समानता रखने वाला यह लघु ज्वर है।

इसकी चिकित्सा टायफस ज्वरवत् करनी चाहिये। जिसे तांद्रिक ज्वर की संज्ञा भी दी गई है।

पाताल ज्वर

(ROCKEY MOUNTAIN FEVER)

इस ज्वर का संक्रमण अमेरिका में देखा गया है। अतः अमेरिका (पाताल लोक) के नाम से ही इसे पाताल ज्वर कहा गया है। अमेरिका मे भी इसका प्रसार टीला पर या छोटी पहाड़ियों पर अधिक होने के कारण इसे Rockey mountain Fever कहा गया है। इसका वाहन चींचडी है जिसके द्वारा इसका संक्रमण होता है। इसी दृष्टि से इसका एक अन्य नाम चीचड वाहित पूप ज्वर (Tick Borne Typhus Fever) कहा गया है।

सामान्यतः इसके लक्षण पूप ज्वर के समान ही होते हैं। सिरःशूल रहता है। अंगमर्द, पिडलियों में ऐंठन, आध्मान आदि लक्षण पूप ज्वरवत ही होते है। देह में कोठोत्पत्ति इसमें विशेष रूप से देखी जाती है। अतः इसे स्पोटेड फीवर भी कहते हैं। इस ज्वर का पाक काल ४ से १२ दिनों तक का है। ज्वर प्रायः शीतकम्प के साथ प्रारम्भ होता है। १०३^0 F से १०५^0 F तथा कभी-कभी १०७^0 F भी हो जाता है। प्लीहा वृद्धि इसमें होती है। पीड़न होती है तथा कभी-कभी नाक से रक्त निकलता है।

इस रोग को उत्पन्न करने वाले जीवाणु सामान्यतः पूप ज्वर को उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं के समान ही होते हैं। परन्तु इनकी प्रकृति में थोड़ा भेद है। इसको

शेषांश पृष्ठ २५४ पर

माल्टा ज्वर

(MALTA FEVER)

आदरणीय डॉ० गोविन्द घाणेकर जी ने इस ज्वर का नाम "ऊर्मिमान ज्वर" रक्खा है। इसे ब्रूसेलोसिस, माल्टा ज्वर, भूमध्य सागरीय ज्वर आदि नामों से भी पुकारा जाता है। आचार्य रघुवीर प्रसाद जी त्रिवेदी ने इसे तरङ्ग ज्वर (Vudulant Fever) नाम दिया है। तरङ्ग की तरह ज्वर का उतरना तथा चढ़ना सम्भवत: इस नामकरण का आधार है। उनके मतानुसार यह मैलीटेन्सिस तथा अबोटर्स नामक दो दण्डाणओं के द्वारा दो रूपों मे देखा जाता है।

—सम्पादक।

चिरस्थाई संक्रामक रोग के रूप में यह ज्वर बकरी के दूध द्वारा संक्रमण पाता है। इस ज्वर में सन्धिशूल, स्वेदाधिक्य, प्लीहावृद्धि तथा तापांश में अनियमितता होती है।

इस रोग का कारण माईक्रो कोकस मेंलिटेन्सिस कीटाणु है जो विन्दु के आकार का होता है। यों तो यह रोग बकरियों का है परन्तु उनके माध्यम से यह मानव शरीर में व्याप्त हो जाता है। यह विन्दु कीटाणु उनके (बकरियों के) रक्त, पित्त, मल मूत्र तथा दूध के द्वारा फैलता है। रुग्ण बकरियों का दूध एक ऐसा माध्यम है जो सरलता से मनुष्यों को इस रोग से संक्रमित कर देता है। माल्टा रोग से आक्रान्त मनुष्य दूसरे स्वस्थ मनुष्य में रोग फैलाने का कारण हो सकता है परन्तु इसके अवसर कम आते है।

यह रोग माल्टा द्वीप में अधिक होता है अतः इसे माल्टा ज्वर की संज्ञा दी गई है। यह आबाल, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी में समानतया व्याप्त हो सकता है। पंजाब में भी इसके रोगी देखे गये है।

इस रोग के कीटाणु आंतों में जाकर फिर रक्त में परिभ्रमण करते हैं और इस प्रकार के ज्वर पैदा करते हैं। इससे प्रत्यक्ष रूप में आंतों मे कोई विकार दृष्टिगत नहीं होते परन्तु उदरक कला की लसीका ग्रन्थियों में शोथ हो जाता है। इसका परिपाक काल करीब एक पखवाड़ा है।

रोगी को कुछ दिन शिरःशूल रहता है फिर अंगमर्द, उत्क्लेश, वमन आदि लक्षण होते है। यह धीरे-धीरे आरम्भ होता है। कभी-कभी पतिश्याय, गले मे जलन तथा कास लक्षण भी प्रकट होते है। फिर धीरे-२ अनियमित ज्वर रहता-रहता अकस्मात तीव्र ज्वर हो जाता है जो अत्यधिक स्वेद आकर उतरता है। इसमें सन्धि-शोथ तथा सन्धि-पीड़ा भी होती है। कभी-कभी कोष्ठबद्धता भी देखी गई है। प्लीहा वृद्धि भी हो जाया करती है।

इस रोग के अवस्थानुसार चार भेद किये गये है— (१) मृदु, (२) साधारण, (३) विषम तथा उग्र।

मृदु में ज्वर कम होता है। रोगी नियमित कार्य करता रहता है। सन्धिशूल आदि लक्षण नहीं प्रकट होते, केवल प्लीहा वृद्धि होती है।

साधारण के प्रकट लक्षण ऊपर लिखे जा चुके हैं। तीन चार मास तक ज्वर आता रहता है फिर थोड़े दिन रुक कर, फिर आने लगता है। अन्ततः ज्वर के आवर्तन का काल आगे बढ़ता रहता है और अन्त में ज्वर स्वतः ही शान्त हो जाता है।

विषम स्थिति में ज्वर बढ़ता है, कम होता है, ऐसी स्थिति में विषम ज्वर से इसके लक्षण मिलते रहते हैं और चिकित्सक को भ्रान्ति उत्पन्न करते रहते है। कभी-कभी प्रातः ज्वर उतर कर फिर मध्यान्ह में शीत लगकर तेज हो जाता है तो कभी प्रातः ही तीव्र रहता है, कभी सायं उग्र होकर पीड़ित करता है। हर बार उग्र ज्वर आकर उतरता है। इस समय सन्धि पीड़ा अत्यधिक रहती है।

उग्र स्थिति में ज्वर अकस्मात तेज होता है। सम्पूर्ण देह पीड़ा से व्यथित हो जाती है। देह में पीड़िकायें उभर जाती है। कभी अतिसार तथा कभी फुफ्फुस प्रदाह भी हो जाता है। यह अवस्था मारक होती है।

—शेष पृष्ठ २५५ पर देखें।

कर्णमूलिक रोग

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु० केशरी, विशेष सम्पादक–'धन्वन्तरि'

इस रोग को पाषाण गर्दभ रोग माना है। यह विषाणु अन्य तीव्र संक्रामक रोग है। कान की जड़ों में शोथ होकर ज्वर होता है। यह एक या दोनों ओर हो सकता है। यह बालकों तथा युवा लोगों में होता है।

इसका उत्पादक कीटाणु (Filtrbblt Virus) जो श्वास (मुख तथा नासा) द्वारा संक्रमित होता है। शिशिर तथा हेमन्त ऋतु इसके फैलने का समय है। यह वात श्लेष्मा का प्रकोप है। एक वार ठीक होकर फिर दुवारा भी आ सकता है।

कान के नीचे स्तब्धता, शूल प्रतीत होता है। मन्द ज्वर, अंगमर्द लक्षण होते हैं। ज्वर यों ३ दिन रह कर उतर जाता है तथा शोथ भी कम होजाती है। इस रोगी के शोथ पर हाथ रख कर वही हाथ बिना धोवे आप किसी अन्य व्यक्ति के लगाते हैं तो वह भी रोगाक्रांत हो जाता है। शोथावस्था में मुंह से खाना पीना कठिन हो जाता है।

यह दो प्रकार का होता है—(१) साधारण (२) पूय संचारी, कभी कभी इस शोथ में पूय भी हो जाता है।

उपद्रव–प्राय: सातवे आठवे दिन अण्डशोथ हो जाती है जो कुछ दिन रहकर उतर जाता है। स्त्रियों में स्तन शोथ अथवा भगनासाशोथ भी होजाता है। क्लोम शौना शीर्षावरणशोथ तथा अर्दित की सम्भावना रहती है।

यों यह एक सुखसाध्य रोग है। स्वयं आराम होजाता है। रोगी को वायु से बचना चाहिए तथा लेटे रहना चाहिए जिससे अंडशोथ आदि उपद्रव न हों।

इस रोग की चिकित्सा सामान्य ज्वरवत् ही होती है। इसमें मृदुरेचन देना उपयुक्त है।

शोथ पर Balladona Plaster, दशांग लेप लगाना उपयुक्त है।

हिंगुलेश्वर रस या त्रिभुवन कीर्ति रस देना चाहिए।

आधुनिक चिकित्सा में सल्फा औषधियां तथा पैनसलीन उत्तम है।

पूयोपचार में पूय निष्कासन तथा कर्णोपचार किया जाना चाहिए।

यह तीव्र संक्रामक रोग है अतः इससे बचने के लिये रोगी से सावधानीपूर्वक सम्पर्क करना चाहिए। रोगी के कर्ण मूल को ऊनी वस्त्र से ढके रहना चाहिये जिससे रोग न फैले।

पृष्ठ २५२ का शेषांश

पाताल पूप सन्धिपाद जीवी (Dermacentxenus Rickettsi) कहते हैं। इसके जीवाणु चिरी हुई लकड़ी के त्वक पर निवास करते हैं।

इस रोग से बचने के लिए इन जीवाणुओं के संक्रमण से बचना जरूरी है। नूसार, तारपीन के तेल फिनायल के प्रयोग से लकड़ी को सुरक्षित कर दें। इसके टीके भी लगते हैं उन्हें लगवाओ।

इसकी चिकित्सा भी पूप ज्वरवत ही होगी। विशेष लक्षणों में लाक्षणिक चिकित्सा भी की जा सकती है।

ग्रन्थि ज्वर

(GLANDULAR Fever)

अकस्मात ही आक्रमण करने वाला यह ज्वर एक विषाणु जन्य संक्रामक रोग है। यह रोग पुरुष, स्त्री, बालक सभी को जनपद रोग की तरह पकड़ लेता है। इसमें देहिक तापमान १०१° से १०३°F तक रहता है। इसका पाक काल ५ से १२ दिन तक का है। इस रोग में तीव्र-शिरःशूल-हाथ पैरों में ऐंठन होती है। दूसरे या तीसरे दिन गले की गांठों में शोथ होजाता है जिससे ग्रीवा को छूने में भी असह्य पीड़ा होती है। कभी कभी ये ग्रंथियां बहुत बढ़ जाती हैं तथा साथ ही कांख तथा पैरों के जोड़ों की ग्रन्थियां भी सूज जाती है। पेट स्पर्श करने पर शूल का महसूस होना तथा अधिक शूल तथा अफरा होने से इस बात का संकेत देता है कि पेट की गांठें भी अन्दर से सूज गई हैं। प्लीहा तथा यकृद वृद्धि भी देखी गई है। कष्ट-दायक कास भी हो जाता है।

इसका एक और प्रकार भी है। इसमें गलशुंडी (टांसिल्स) के ऊपर एक झिल्ली बन जाती है। इससे गले के अन्दर चारों ओर सूजन आजाती है। इससे कभी कभी रोहिणी (डिपथीरिया) का भ्रम हो जाता है। यह युवाओं में अधिक होता है।

इस रोग में अधिकतर शीत लगकर ज्वर होता है साथ ही दारुण सिरशूल भी होता है। पीड़िकायें तथा फफोले पहले पेट तथा छाती पर दिखते हैं। इस रोग में ग्रंथियों में शोथ बाद में होता है। पहले दूसरे लक्षण सामने आते है। कभी कभी यह शोथ तीसरे सप्ताह में होता है जो ३-४ सप्ताह तक बना रहता है। सन्ताप अवस्थानुसार विसर्गी अविसर्गी तथा विषम होता है। प्लीहा वृद्धि अत्यल्प होती है। ग्रन्थि शोथ ५ से ७ दिनों में न्यून होने लगता है परन्तु ज्वर २ से ३ सप्ताह तक बना रहता है। उपद्रव में रक्तमेह, ज्वर का पुनरावर्तन तथा कामला हो सकता है।

इसमें वाशरमैन टेस्ट अस्त्यात्मक प्रायः होता है और ल्यूकोलाइटोसिस ६००० से बढ़ कर २०००० तक होजाते हैं। इसमें मोनोन्यूक्लियर सेल्स भी अप्रौढ तथा प्रौढ रूप से अधिक हो जाते हैं जो ६० से ७५ प्रतिशत तक रहते हैं।

इसकी चिकित्सा भी प्रायः लाक्षणिक होती है। मल्ल योग-मल्ल ज्वरांकुश, मल्ल वटी इसमें अच्छा लाभ करती है। इस रोग में पैनसलीन या सल्फा औषधियां काम नही आती।

पथ्य में—सुपाच्य भोजन, नमक, कम तरल पौष्टिक आहार तथा फलों का रस लेना उपयुक्त है।

माल्टा ज्वर :: ::

पृष्ठ २५३ का शेषांश

रोग की पहिचान के लिए सन्धिशोथ, बकरी का दूध, प्लीहा, ज्वर का विषम वेग आदि लक्षण पर्याप्त है। परन्तु यह स्पष्ट न होने पर विडाल टेस्ट से यह रोग पहिचाना जा सकता है।

रोग की चिकित्सा की विशेष आवश्यकता नही पड़ती, अपने आप ही परिपक्व होकर समय पर ज्वर उतर जाते हैं। इसमें मृत्यु संख्या कम होती है। यदि बकरी का दूध उबालकर पीया जाय तो इस रोग के कीटाणु मर जाते है और रोग फैलने का भय नहीं रहता। यदि बकरी का दूध पीवे ही नहीं या यह जांच कर पीवे कि बकरी स्वस्थ है तब भी रोग रोका जा सकता है।

इस रोग की चिकित्सा लाक्षणिक होती है। सामान्य ज्वर की चिकित्सा देनी चाहिए। रोगी की पाण्डुतानाश तथा शक्ति संरक्षण का प्रयास करना चाहिए।

पीत ज्वर

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु० केशरी, विशेष सम्पादक—'धन्वन्तरि'

अथर्व वेद में इसे बभ्रु ज्वर कहते हैं। वागभट्ट ने इसे हारिद्रिक ज्वर कहा है। अंग्रेजी में इसे Yellow fever भी कहते है। यह रोग मेक्सिको, मध्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका तथा पूर्वी तट, अफ्रीका का पश्चिमी किनारा आदि स्थानों पर होता है। इस रोग का कारण एक मच्छर है जो इडीस इजिप्टी कहलाता है। यह मच्छरी जब पीतज्वर पीड़ित रोगी को प्रथम तीन दिन में काट लेती है तब रोग के इतने विषाणु उसके शरीर में प्रवेश पा लेते हैं कि उसके बारह दिन बाद से आजीवन वह पीत ज्वर का उपसर्ग कर सकती है। यह मषक अक्षत त्वचा को भी बींध डालता है। इसका संक्रमण काल ३-५ दिन का माना गया है।

इसका सर्वाधिक प्रभाव यकृत पर हुआ करता है। इससे शरीर पीला पड़ जाता है। उच्च सन्ताप तथा उग्र कामला के लक्षण भासित होते हैं। मानव देह का रंग पीला पड़ जाता है। मूत्र तथा मल पीले आते हैं। यह रोग घातक माना गया है। इस रोग में वृक्क शोथ, त्वचा आमाशय तथा आंत्र आदि से रक्तस्राव भी होता है जिसका रंग काफी के समान होता है। इसमें प्रायः सिरःशूल, छर्दि तथा ज्वर १०४ डिग्री के करीब होता है।

इसके दो प्रकार हैं—मृदु, सामान्य। मृदु में शिरःशूल, छर्दि के साथ ज्वर होता है और कुछ दिन बाद उतर जाता है।

सामान्य की तीन अवस्थायें होती है। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय—

प्रथमावस्था–शीत देकर ज्वर होता है, सामने मस्तिष्क में पीड़ा होती है, पृष्ठ में अकड़न होती है, शाखाओं में पीड़ा, मुख मण्डल उभरा हुआ, जिह्वा शुष्क तथा उसका प्रान्तभाग लालिमा लिये होता है। मूत्र में अल्बूमिन आता है, वर्ण पीला, परीक्षण में पित्त लवण, पित्त रंजक होता है। नाड़ी की गति पूर्व में तीव्र तथा कालान्तर में मन्द हो जाती है।

द्वितीयावस्था—तीसरे या चौथे दिन तापमान उतर कर प्रायः सामान्य हो जाता है।

तृतीयावस्था—ज्वर का संताप उतर कर पुनः चढ़ने लगता है। यह अवस्था दो तीन दिन तक बनी रहती है। इस अवस्था में यकृद वृद्धि तथा पीडनासह होता है। हिक्का तथा कामला के लक्षण व्यक्त होते है।

प्रतिकार—

(१) मषक नाशक धूम्र, घोल छिड़कना चाहिए।
(२) प्रतिरोधात्मक सूचिका लगानी चाहिए।
(३) विषम ज्वर के समान चिकित्सा व्यवस्था।
(४) पित्त शामक औषधियों का प्रयोग।
(५) मूत्रल औषधियों का प्रयोग।

गोदन्ती मिश्रण, प्रवाल पिष्टी, मुक्तापिष्टी, शंशमनी वटी, सूतशेखर आदि आयुर्वेदीय औषधियों का प्रयोग उचित है।

इस रोग में श्वेत कणों की रक्त में वृद्धि हो जाती है अतः रक्तवर्धक या रक्त प्रसादक औषधियों का प्रयोग भी आवश्यक है।

यह रोग भारतीय जलवायु का रोग नहीं है। यह विदेशी है फिर भी कभी कोई रोगी भारत में इस रोग से पीड़ित मिल ही जाता है। यह रोग कभी कभी मस्तिष्क पर भी प्रभाव डालता है—रक्तस्राव होने की आशंका रहती है।

श्लीपद ज्वर :: :: पृष्ठ २५० का शेषांश

(३) पुनर्नवा राई तथा गोमूत्र का प्रलेप।

पथ्य—मधु, साठी चावल, जौ, कुलथी, परवल भण्टा, करेला, अद्रक, मिर्च, लहसुन, मूली, सूरन-कन्द, पपीता। पुनर्नवा, बकरी दूध में सोंठ पका कर दें। लघु रूक्ष तथा कटु उष्ण आहार दें। लंघन यथा संभव करा दें। नित्य कोष्ठशुद्धि करें। रक्तमोक्षण करायें।

अपथ्य—कफकारक, गुरुपदार्थ, मिठाई, घी, दूध, मावा, उर्द, गुड़, चीनी, भैंस का दूध नहीं दें।
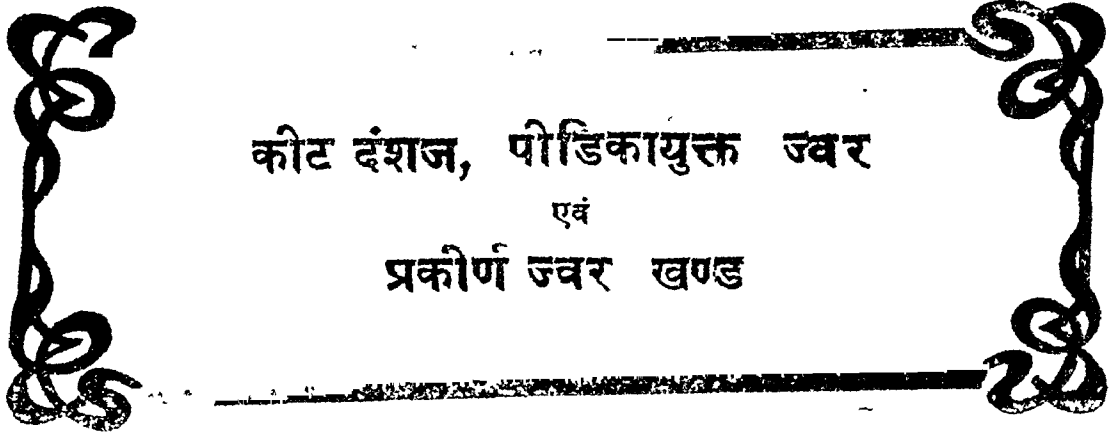
कीट दंशज, पीडिकायुक्त ज्वर

एवं

प्रकीर्ण ज्वर खण्ड

फरवरी + मार्च १९८२

--प्रकाशक--

मूषक दंशज ज्वर और उसकी सफल चिकित्सा

प्राणाचार्य श्री पं० हर्षुल मिश्र प्रवीण, पेंशनवाड़ा, रायपुर
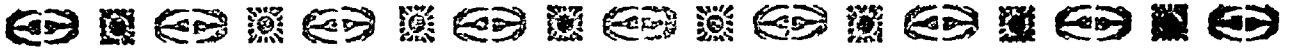
सामान्यतः मूषक दंश ज्वर के रोगी हमेशा नहीं मिलते। यदा कदा ही वर्ष दो वर्ष में, प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में मूषक दंश ज्वर के रोगी मिल जाते है,परन्तु जब मूषक दंश ज्वर की अवहेलना की जाती है और समय के अन्दर उसकी समुचित चिकित्सा नही हो पाती, तब मूषक दंश ज्वर भयंकर सन्निपात ज्वर का रूप धारण कर लेता है और प्राणलेवा बन जाता है। मूषक प्रायः सोते समय पैरों में और हाथों में दंश कर देते हैं। छोटे दूध पीते बच्चों के कोमल मांस को कुतरने की घटना होती रहती हैं। मूषक दंश होते ही तुरन्त उपाय करने से ज्वर नही आता। मूषक दंश का उपाय तत्काल न होने पर १२ घंटे से ७२ घंटे के अन्दर ज्वर आता है। ज्वर ठीक मंथर ज्वर की तरह धीरे धीरे बढ़ता हुआ चढ़ता है और धीरे धीरे कम होते हुए उतरता है। जब तक दंश स्थान की त्वचा स्वाभाविक रंग वाली होती है,तब तक ज्वर आने की संभावना नही रहती, परन्तु ज्यों ही त्वचा स्वभाविक रंग से ज्यादा काली वा सांवली पड़ जाती है तब ज्वर प्रारम्भ हो जाता है। इसमें सर्वप्रथम वात पित्त का उल्वण होता है। अंगमर्द और अंगदाह के साथ ज्वर चढ़ता है। प्रति दिन ज्वर उत्तरोत्तर बढ़ता है। ज्वर बढ़ने की क्रिया लगातार ३ दिन तक होती है। तीन दिन तक ज्वर एक सा बना रहता है। न चढ़ता है और न उतरता है। ज्वर की इस अवस्था में शिरःशूल, विकलता, श्वसनक पीड़ा (निमोनिया), प्रलाप प्रारम्भ होजाता है। इस ज्वर को देखकर उस समय मंथर ज्वर की प्रतीति होती है, परन्तु अन्तर इतना ही होता है कि सवेरे ज्वर उतर जाता है अर्थात नार्मल होजाता है और पसीना छूटने लगता है। इस अवस्था में शीतांग होजाने का खतरा रहता है। इसमें मूत्रावरोध और मलावरोध बना रहता है। २४ घंटे में प्रयत्न करने से बहुत कम मात्रा में मूत्र विसर्जन होता है। मल भी स्नेहन वस्ति के प्रयोग से थोड़ासा मटीले वर्ण का बदबूदार होता है। मूषक दंश ज्वरी को भयङ्कर सन्निपातावस्था में भी बचा लिया जा सकता है, यदि चिकित्सक मूषक दंश का होना जान जाय। मूषक दंश ज्वर में सभी ज्वरनाशक औषधियां असफल हो जाती हैं। केवल फलत्रिकादि क्वाथ और दशमूल क्वाथ मूषक दंश ज्वर की सफल औषधि है। साथ में दंश स्थान पर, शीतल जल के साथ मृत्तिका लेप अनिवार्य है।

सफल चिकित्सा—

(१) सर्व प्रथम काली मृदु मृत्तिका को शीतल जल में गाढ़ा घोलकर और उसमें कपड़े की पट्टी भिगोकर दंश स्थान में लगातार २४ घंटे रखना चाहिए। सिर्फ ये ही एक उपाय रोगी के प्राण को बचा लेता है, इसमें बिल्कुल संदेह नहीं।

(२) उपर्युक्त उपचार के साथ साथ योगेन्द्र रस बच्चों को १/४ से १/२ रत्ती, बड़ों को १ रत्ती से २ रत्ती तक शहद से प्रति आठ घंटे के बाद चटावें। इसके सेवन से हृदय और नाड़ी गति क्षीण नहीं होने पाती। ज्वर का वेग भी बढ़ता नहीं। हृदय बलवान बने रहने से चिकित्सा करने के लिये समय मिल जाता है। मूषक दंश में हृदयावसाद का खतरा सदा रहता है। योगेन्द्र रस चटाने के २ घंटे के बाद दशमूल क्वाथ चाय के चम्मच से दो चम्मच बच्चों को और ४ से ८ चम्मच तक वयस्कों को बार-बार पिलाना चाहिए। पानी की जगह दशमूल क्वाथ मधु मिश्रित वा ग्लुकोज मिश्रित पिलाना श्रेयष्कर है। इस चिकित्सा से रोगी १२ घंटे में मरणासन्न अवस्था अथवा सन्निपातज अवस्था से मुक्त हो जाता है। ज्वर का बेग कम होकर विकलता दूर हो जाती है। रोगी को सुख की नीद आने लगती है। प्रलाप की हालत में योगेन्द्र रस के साथ सर्पगंधा १/२ रत्ती से १ रत्ती तथा गोमेद रत्न भस्म १/२ रत्ती से १ रत्ती अवश्य मिलाकर देनी चाहिये।

(३) मूसक दंश जनित ज्वर में यकृत (लीवर) अचानक थोड़ा बढ़ जाता है। शरीर मे पाण्डुता आ जाती है।

—शेषांश पृष्ठ २६० पर देखें।

घूण दंशज ज्वर

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु० केशरी, विशेष सम्पादक—धन्वन्तरि

यह ज्वर अधिकतर विश्व के पूर्वी भागों में जैसे सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, आस्ट्रेलिया, भारत, वर्मा तथा अन्य पूर्व के टापुओं में पाया जाता है। इसे जापानी सन्निपात ज्वर (Japan: River Fever) भी कहते हैं।

घूण (माइट) नामक कीटाणु के दंश के बाद ५ से १५ दिनों के अन्दर यह ज्वर होता है। इसमें पीड़िकायें उभर आती हैं। प्रारम्भ में कम्प, सिरःशूल, भ्रम के साथ ज्वर होता है जो तीन सप्ताह तक रहता है। प्रथम तो यह अविसर्गी होता है परन्तु धीरे धीरे यह विसर्गी बन जाता है। दंश स्थान पर एक छोटा सा श्याम फोड़ा उभर आता है जो विस्फोट के साथ दिखता है।

इसमें लसीका ग्रन्थियों में सूजन आ जाती है। पांचवें से सातवें दिन शरीर के मांसल प्रदेश पर रक्त वर्ण के दाने निकल आते हैं। ये दाने मुख मण्डल में, मध्य देह हाथ पैरों में भी निकले हुए दीखते हैं। इस रोग में प्लीहा विदग्ध होती है। विस्फोट के छाले जब फूट जाते हैं तब व्रण रोपण में भी सप्ताह से अधिक समय लग जाता है।

इस रोग का कारण R. Orcantalis नामक जीवाणु है जो घूण दंश के माध्यम से मानव देह में प्रवेश प्राप्त करते हैं। घूण दंश से उसका अण्डा (Larva) त्वचा में प्रविष्ट हो जाता है तथा स्थानीय व्रण उत्पन्न करता है। ये बहु संख्यक होते हैं। इसके बाद ही इस विष के प्रभाव से लसीका ग्रन्थियों में शोथ पैदा हो जाता है।

इस रोग से बचने के लिये माइट के काटने से बचने का उपाय करना चाहिये। इसके बचने के लिये टीकों का (Vaccine) प्रयोग भी किया जाता है।

चिकित्सा—

रोगानुसार लाक्षणिक चिकित्सा करनी उपयुक्त है। व्रण रोपण का प्रयत्न, ज्वर कम करने का प्रयास तथा अन्य उपद्रवों के शमन का प्रयास आवश्यक है।

मृग मक्षिका ज्वर

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु० केशरी, विशेष सम्पादक–'धन्वन्तरि'

नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि यह ज्वर किन्हीं हिरणों के साथ रहने वाली मक्खियों के द्वारा फैलाया जाता है। परन्तु यह उन मक्खियों के दंश से उत्पन्न होता है जो घोड़ों के साथ रहती है। अवश्यमेव यह ज्वर भी विषाणु ज्वर ही है। अंग्रेजी में इसको Deer Fly Fever तथा पह्वन्ट मेली फीवर कहते हैं। यह 'पक्युरेलिया टुलरेन्स नामक जीवाणुओं के कारण पैदा होता है। इसीलिए इस ज्वर का नाम टुलरेमिया भी है। इसके दो मुख्य भेद उपलब्ध हैं। (१) ग्रन्थिक तथा (२) टाइफाइड़- दोनों ही लाक्षणिक हैं।

ग्रन्थिक (Grandular) में शीत कम्प के साथ, अंगमर्द, शिरोरुक, शरीर पर स्फोटों का उभार, जो पीछे फट जाते हैं, यथा प्रदेशिक लसीका ग्रन्थियों का शोथ होता है। यह विशेषतः कसाइयों में तथा चीर घरों में काम करने वालों में पाया जाता है।

टाइफायड़ प्रकार में लंबे अर्से तक ज्वर विभिन्न-तापांशों में पाया जाता है। इसमें कोई स्थानीय लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते। यह टाइफायड के साम्य का होता है।

इस ज्वर की चिकित्सा लाक्षणिक होती है। इसके एक सीरम आता है उसका प्रयोग किया जाता है। स्ट्रेप्टोमायसीन से भी लाभ होता है। आयुर्वेदीय चिकित्सा विषमज्वरवत होती है। उपद्रवों तथा रोग की उग्रावस्था में तद्‌तद् चिकित्सा की जानी चाहिए।

यह रोग भी भारत में कम ही पाया जाता है। विदेशों में इसका प्रभाव अधिक देखा गया है।

मरु मक्षिका दंशज ज्वर

वैद्य अम्बालाल जोशी आयुर्वेद केशरी, विशेप सम्पादक-धन्वन्तरि'ज्वर चिकित्सांक'

मरु प्रदेश में एक प्रकार की मक्षिका जिसे फ्लेवेटोमस पपारसी कहते हैं। यह विषैली मक्खी होती है। इसके दंश से मनुष्य पर विष प्रभाव होता है। फलस्वरूप रोगी को शीत लगकर ज्वर हो जाता है। इस ज्वर में शिरःशूल, अंगमर्द, मुख मण्डल पर लालिमा, नेत्रों में लाली तथा ग्रीवा प्रदेश में लाली रहती है। ज्वर का तापमान १ ४ डिग्री एफ तक हो जाता है। यह ज्वर तीन दिन तक रहता है, इसके वाद स्वयं ही उतर जाता है।

साधारणतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह वात ज्वर तथा मलेरिया ज्वर से सम्वन्धित कोई रोग है। परन्तु विष प्रभाव कम पड़ने से तीन दिन वाद यह ज्वर विना औषधि के स्वयं उतर जाता है। इस ज्वर में पित्त का प्रभाव भी लक्षित होता है।

इस ज्वर में तापमान को कम करने के लिये ठंडे पानी या वर्फ का सेक करना चाहिये। इससे धीरे-२ तापांश कम पड़ जावेगा। शिरःशूल के लिए चन्दन का लेप कपूर मिलाकर किया जाना उत्तम है। अंग मर्दन में समीर गज केशरी तथा वेदनान्तक देना उत्तम है। अंग्रेजी औषधियों में ए.पी.सी. या एस्प्रीन देना चाहिये।

सारांशतः यह ज्वर व्यापक नहीं है। मरु प्रदेश तक सीमित है तथा इसकी चिकित्सा भी अधिक जटिल नही है। मक्षिका दंश से उसका विष प्रभाव मानव शरीर में व्याप्त कर सम्पूर्ण शरीर में बेचैनी पैदा कर देता है और कालान्तर में उसकी प्रतिकृति ज्वर के रूप में देह में ऊष्मा पैदाकर देती है और ज्वर भासने लगता है। सभी उपरोक्त चिन्ह स्पष्ट पीड़ित करने लगते हैं।

यह रोग मिश्र देश, मेसापोटामिया में अधिक देखा गया है तथा भारत में भी होता है। कभी-कभी यह पांच दिन तक भी रह जाता है।

मूषक दंश जन्य ज्वर :: :: पृष्ठ २५८ का शेषांश

मलावरोध, मूत्रावरोध की स्थिति कायम हो जाती है। इस स्थिति पर कावू पाने के लिये फलत्रिकादि क्वाथ बच्चों को २ चाय चम्मच भर और वड़ों को ८ चाय चम्मच भर मधु मिलाकर प्रति ४ घंटे के अन्तर से पिलाना चाहिये। ऐसी स्थिति में योगेन्द्र रस, गोमेदरत्न भस्म और सर्प गंधा का प्रयोग २४ घंटे में दो वार करना चाहिए दशमूल क्वाथ भी २४ घंटे में दो वार पिलाना चाहिए, परन्तु। फलत्रिकादि क्वाथ थोड़ा वढ़ा देना चाहिये। इससे तुरन्त मल का विसर्जन होता है।

(४) मूत्रावरोध के लिये नाभी से वस्ति तक कलमी सोरा, मूषक लैंडी और नौसादर को समान भाग जल में मिलाकर लेप करना चाहिये। इससे तुरन्त मूत्र विसर्जन होता है और रोगी को राहत मिलती है।

उपर्युक्त औषधि और उपचार से मूषक दंश ज्वरी निश्चयपूर्वक स्वस्थ हो जाता है।

वृहन्मसूरिका तथा लघु मसूरिका विवेचन

प्राणाचार्य श्री पं० हर्षुल मिश्र प्रवीण बी ए. आचार्य, पेन्शन बाड़ा रायपुर (म.प्र.)
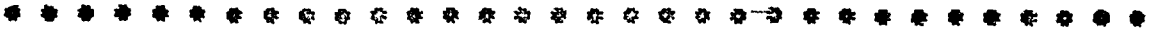
मसूरिका की परिभाषा—

मसूराकृति संस्थाना: पिडिकास्ता मसूरिका: ।

शरीर में मसूर की आकृति की पीडिकायें उत्पन्न हों तो उसे मसूरिका कहते है । मसूरिका रोग को ही अंग्रेजी भाषा में Smoll Pox कहते है । आयुर्वेद मतानुसार तिक्त, अम्ल, लवण, क्षारीय आहार अधिक सेवन करने से विरुद्ध आहार, अध्यशन बार-बार होने से, कच्चा आहार रस (आम) रक्त में मिल जाने से मसूरिका रोग होता है । मसूरिका रक्त में एक प्रकार के विजातीय तत्वों व दोषों के द्वारा लाये हुए उफान का परिणाम है, जो सामान्यत: बाल्यावस्था में कम से कम एक दो बार होता है । यह वयस्कों को भी होता है । महामारी के रूप में तो यह बालक युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सबको होता है । मसूरिकाकरण (Variolat on) अथवा टीका (Vaccination) पद्धति से कृत्रिम मसूरिका उत्पन्न कर रक्त में कृत्रिम उफान लाकर, रक्त की मसूरिकारोधक शक्ति बढ़ा दी जाती है, जिससे मसूरिकाकरण और टीकाकरण के बाद मसूरिका का आक्रमण भयंकर वेग से नहीं होता ।

आयुर्वेद में वातज मसूरिका, पित्तज मसूरिका, कफज मसूरिका, त्रिदोषज मसूरिका, रसगत मसूरिका, रक्तगत वा

वृ० मसूरिका अविकृत (चेचक) का तापमान चार्ट

रुधिरज मसूरिका, मांसगत मसूरिका, मेदोगत मसूरिका, अस्थिमज्जागत मसूरिका, शुक्रगत मसूरिका, चर्मज मसूरिका, रोमान्तिका मसूरिका आदि लगभग १२ प्रकार की मानी गयी है । पाश्चात्य वैद्यक मतानुसार भी ६ प्रकार की मसूरिका (Small pox) मानी गई है । (१) सौम्य (Mild) (२) असम्मीलित (Discre'e) (३) सम्मिलित (Confluent) (४) कृष्ण मसूरिका (Black Small pox) (५) रक्त स्रावी मसूरिका (६) मृदुल मसूरिका (Modified Small pox) (७) अप्रौढ़ मसूरिका (८) क्षुद्रमसूरिका (९) गार्भिकी मसूरिका (Foetal small pox) ।
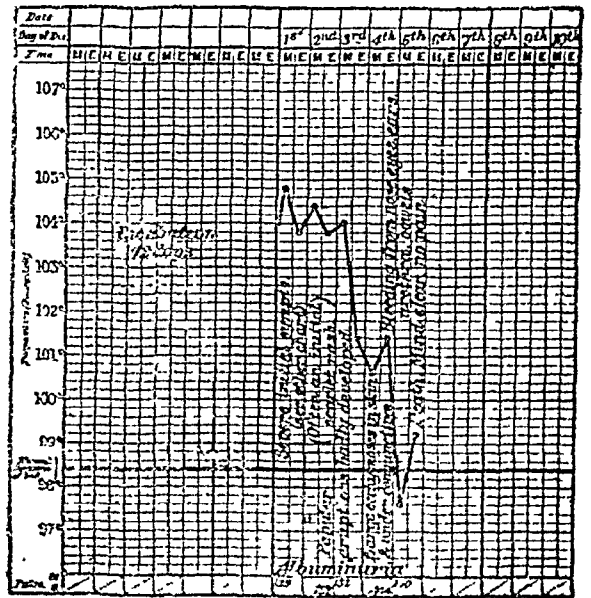
कृच्छ्रसाध्य रक्तस्रावी चेचक में ज्वर का तापमान चार्ट
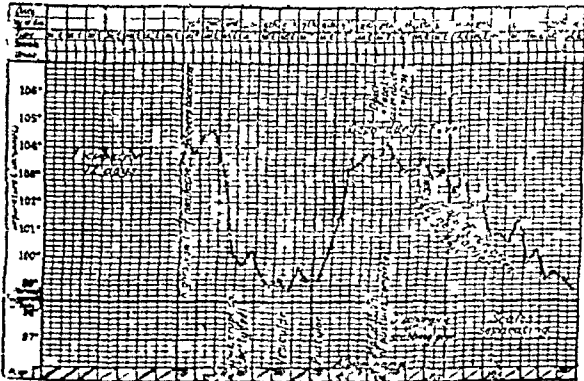
उपर्युक्त सभी मसूरिकायें लघु मसूरिका कहलाती हैं "ज्वरापूर्वा वृहत्स्फोटै: शीतला वृहती भवेत" मसूर्येव ही शीतला आदि शास्त्रोक्त वचन इस बात के प्रतीक है कि जब मसूरिका के स्फोट बड़े और भयंकर हो जाते हैं, तब उसे

बृहती मसूरिका वा शीतला कहते हैं। मसूरिका में पूर्व ज्वर आकर छोटे-छोटे मसूरिकाकृति की पीडिकायें होती हैं। बृहती मसूरिका में ज्वर आने के बाद बड़े-बड़े स्फोट उत्पन्न होते हैं। बृहती मसूरिका का एक भेद कोद्रवाकृति मसूरिका है। इसके विस्फोट कोदों की आकृति के अपूय होते हैं, जो अपने आप दश बारह दिन में शांत होजाते हैं।

खसरा (लघु मसूरिका) का तापमान चार्ट

मसूरिका के संक्षिप्त सामान्य लक्षण—

मसूरिका और शीतला का आक्रमण ज्वर के साथ होता है और अंगमर्द, कण्डु, नेत्र रक्तवर्ण हो जाना, अरति, भ्रम, त्वचा में विवर्णता, शोथ आदि लक्षण होते हैं। ज्वर का वेग कम से कम १०३° और ज्यादा से ज्यादा १०५° तक रहता है। तृषा, मलावरोध, तीव्र नाड़ी, गरमी, विकलता, मलीन जिह्वा, चेहरे में भरभराई हुई ललाई आदि लक्षण मसूरिका नामक पीडिका के निकलने के पूर्व होते
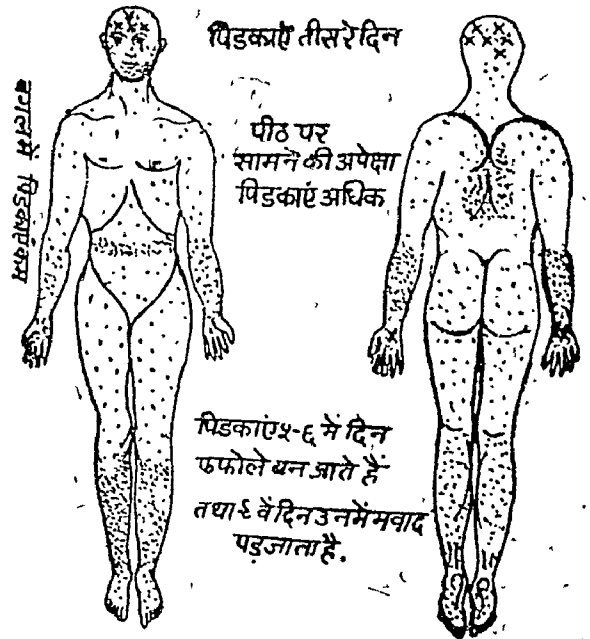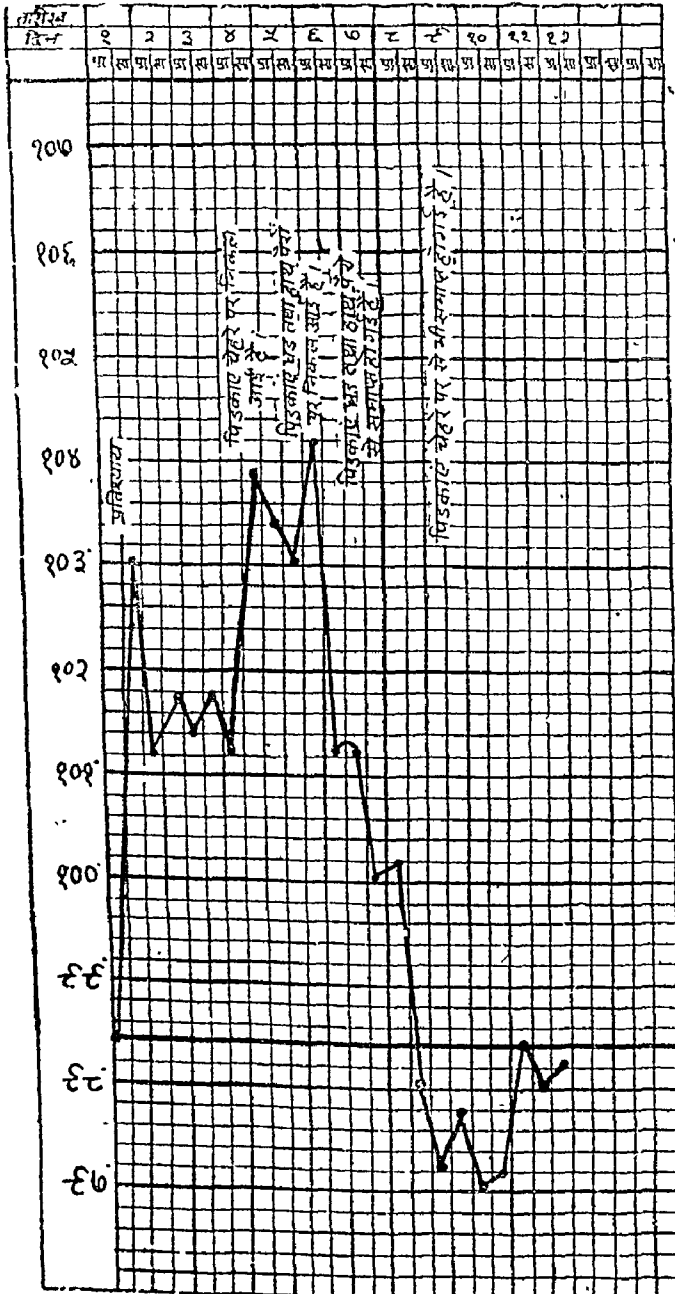
विभिन्न स्थलों पर चेचक की पिडिकाओं के निकलने का क्रम तथा विभिन्न स्थलों में उनकी स्थिति

हैं। सामान्यावस्था में ७२ घंटे ज्वर रहने पर मसूरिका नामक पीडिकायें निकलने लगती हैं। पहिले यह उदर्द के समान लाल होती हैं। फिर ये ऊपर को उठकर पककर पीली होने लगती हैं। पीडिकायें वहुत नजदीक होने पर चार पांच पीडिकायें पककर आपस में मिल जाती हैं। जव पीडिकायें पकती हैं, तव शरीर से विशिष्ट प्रकार की गंध आने लगती है। कण्डु और दाह वढ़ जाता है। रोगी ज्वर और दाह से विकल होने लगता है। एक क्षण चैन नहीं पाता। तीन दिन के वाद ज्वर की अवस्था, तीन दिन उदर्द जैसे लाल रंग की पीडिकाओं के उभरने की अवस्था, तीन दिन तक पीडिकाओं में पूय भरने की अवस्था अर्थात नौ दिन में मसूरिकायें पूय से भर जाती हैं। सारा शरीर भयंकर आकृति धारण कर लेता है। जब ये
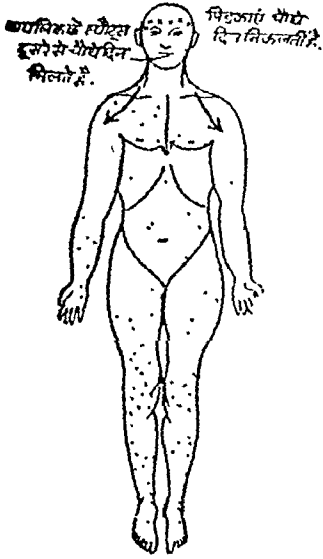
लघु मसूरिका में पिडिकाओं के निकलने की स्थिति

विस्फोट पूय भरते समय साँवले रंगके होते जाते हैं,तो रोग असाध्य हो जाता है। रोगी की हालत अत्यन्त कष्टमय हो जाती है। यदि आंख में विस्फोट हो गये तो रोगी को अंधा बना देते हैं। गले में विस्फोट बढ़ जाने से सन्निपातज रोहिणी (डिपथेरिया) होकर कंठावरोध हो जाता है। फेफड़ों में विस्फोट उभर आने से निमोनियाँ होकर रक्त ष्ठीवन होने लगता है। आंतों में विस्फोट बढ़ने से मल मूत्र से रक्तस्राव होने लगता है। आंत्र प्रदाह भयंकर होता है। दशवें दिन से विस्फोट अपने आप सूखने लगते हैं। ३ दिन में वे प्रायः अधिकांश सूख जाते हैं ज्यों ज्यों स्फोट सूखने जाते हैं, ज्वर का वेग शांत हो जाता है। १२ दिन में ज्वर प्रायः नहीं के बराबर होता है। अगले तीन दिन तक विस्फोट की पपड़ी की मसूर की आकृति लिए हुए झड़ने लगती है। रोगी को चैन पड़ जाता है और वह प्रायः रोग मुक्त हो जाता है, यद्यपि उसका शरीर कोमल दुर्बल और असहिष्णु हो जाता है।

मसूरिका की असाध्यवस्था —

मसूरिका का रंग सांवला और कृष्ण वर्ण हो जाना प्राणघातक है। मसूरिका में श्वसन पीड़ा (निमोनिया), रक्तातिसार, रक्तष्ठीवन, नाक से मुंह से रक्तस्राव, मसूरिकाओं से व त्वचा से रक्तस्राव होना असाध्यावस्था का प्रतीक है। अग्नि विसर्प (गैंगरिन) का होना तो अरिष्ट लक्षण है और मारक है।

चिकित्सा—

(१) ज्वर के आते ही यह अनुमान हो जाय कि मसूरिका निकलने वाली है तो रोगी को पथ्य के रूप में गधी का दूध पिलाना प्रारम्भ कर देना चाहिये। रुद्राक्ष को गधी के दूध में घिसकर ४ रत्ती की मात्रा में पिलाना चाहिये। केले के बीजों का चूर्ण ४ रत्ती से १ माशा तक शहद के साथ चटाना चाहिये, निम्ब की छाल का महीन कल्क जल में घोल कर पिलाना चाहिये। इन उपायों से मसूरिका शांत हो जाती है। ज्वर कम हो जाता है। मसूरिका के दाने उभरने नहीं पाते। यदि उभरते भी हैं तो नाम मात्र को। रोगी हँसते बोलते आराम से अच्छा हो जाता है। उपर्युक्त औषधियां हमारी अनुभूत हैं। कभी असफल नहीं हुई।

(२) मसूरिका निकल आने पर दाह और तीव्र ज्वर की खतरनाक स्थिति में आशु गुणकारी योग—

विस्फोटांतक वटी—जंगली केले के बीज का चूर्ण १० तोला, रुद्राक्ष चूर्ण ४तोला, निम्बत्वक घनसार ५तो०, मुक्तापिष्टी चन्द्रपुटी २॥ तोला कुकुभत्वक घनसार २॥ तोला दशमूल घनसार २॥ तोला सब द्रव्यों को निम्ब पत्र स्वरस से खूब मर्दन करके चार-चार रत्ती की गोलियां बनालें। मात्रा—बच्चों को १/२ गोली से १ गोली, वयस्कों को २ गोली से ४ गोली तक दिन रात में प्रति ६ घंटे के अन्तर से तीन चार बार मधु में चटावें। पथ्य में केवल गाय का क्वथ्यमान सुखोष्ण दुग्ध पिलावें। नमक मिर्च खटाई और अन्न सेवन न करावें। दूध पीते बच्चों को सिर्फ मातृ दुग्ध ही पथ्य है।

गुण—उपरोक्त औषधि योग, मसूरिका के पूर्वरूप प्रगट होते ही अथवा ज्वर की अवस्था में मसूरिका निकलने के पूर्व देने से मसूरिका या तो शांत हो जाती है या उसका वेग नाम मात्र को रह जाता है। मसूरिका (स्माल पाक्स) के संक्रमण काल में इसके सेवन से मसूरिका का आक्रमण होता ही नहीं। मसूरिका निकलने पर इसके प्रयोग से रोगी निश्चयपूर्वक बिना किसी उपद्रव और शारीरिक क्षति के निःसन्देह अच्छा हो जाता है।

मसूरिका के सूख कर झड़ जाने के बाद काली तिल, चिरौंजी दाना को गोदुग्ध में पीसकर उबटन लगाने से शरीर में मसूरिका के दाग नष्ट हो जाते हैं।

मसूरिका से अच्छे होने पर आमला चूर्ण १ माशा, प्रवाल पंचामृत मुक्तायुक्त २ रत्ती, कान्त लौह भस्म १ रत्ती मधु के साथ नित्य प्रातः चटानी चाहिए। इससे रोगी का बल और रक्त शीघ्र बढ़ता है। मसूरिका के बाद कैल्शियम की कमी से जो छोटे-मोटे फोड़े-फुन्सी होते हैं, वे भी नहीं होते। शरीर की त्वचा उपर्युक्त उबटन और उपर्युक्त मिश्रण से कांतिवान हो जाती है।

मसूरिकाशामक कुछ अनुभूत उपचार —

(१) जब मसूरिका के दाने पूय से भरे हुए हों तथा उनमें कंडू दाह जोरदार हो तो निम्ब पत्र के स्वरस का बार-बार लेप करना चाहिए। इसके लेप से कंडू दाह तुरन्त शान्त होते हैं।

(२) हुर-हुर के पत्तों के स्वरस में मधु मिलाकर बार-बार पिलाने से भी कंडु और दाह शान्त होते है। मात्रा—बालकों को एक चाय चम्मच से दो चाय चम्मच र, वयस्कों को चार चाय चम्मच भर।

(३) गुडूची स्वरस २ चाय चम्मच भर, हुर-हुर स्वरस २ चाय चम्मच भर, अमृता स्वरस २ चाय चम्मच भर, चौलाई स्वरस २ चाय चम्मच भर, मधु २ चाय चम्मच भर। सबको मिलाकर मिश्रण तैयार कर लें और धीरे-धीरे बच्चों को आधा चम्मच बड़ों को एक-एक चाय चम्मच भर दस-दस मिनट में दो-तीन बार पिलावें तो दाह और ज्वर शान्त होते है।

(४) क्लेदवान मसूरिका में अथवा अग्निबिसर्प की दशा में पंचवल्कल महीन चूर्ण बार-बार बुरकना चाहिए। इससे क्लेद शोषित होकर रोगी को राहत मिलती है। २६४

(५) गले में और आंतों में मसूरिका उत्पन्न हो गई हो और उससे दाह और पीड़ा होती हो तो त्रिफला के सुखोष्ण क्वाथ में गोघृत मिलाकर चाय के चम्मच से एक-एक चम्मच बार-बार पिलाना चाहिए। कंचनार के सुखोष्ण क्वाथ में किंचित गोघृत मिलाकर पिलाने से भी राहत मिलती है।

इन्दुकला वटी

—विस्फोटक अधिकार (भैषज्य रत्नावली)

कविराज स्व० धर्मदत्त चौधरी वैद्यशास्त्री आयुर्वेदाचार्य, चण्डीगढ़—१८

शुद्ध शिलाजीत (सूर्यतापी)	१० ग्राम,	लोह भस्म (शतपुटी)	१० ग्राम
स्वर्ण भस्म (निश्चन्द्र)	३ ग्राम,	स्वर्ण माक्षिक भस्म	६ ग्राम
तुलसी घनसत्व	१० ग्राम	मुक्तापिष्टी	३ ग्राम

सब द्रव्यों को मिलाकर खरल कर साधारण जल अथवा अर्क गाजवांन से १०० मिलीग्राम की वटियां बना छाया मे सुखा ले। मात्रा—साधारणतया १—२ वटी दिन में २—३ बार अवस्थानुसार। अनुपान—अर्क गाजवांन, साधारण अथवा तुलसीपत्रयुक्त चाय।

गुण —इसके सेवन से मसूरिका, विस्फोटक, लोहित ज्वर तथा सम्पूर्ण व्रण रोग हट जाते है। "भैषज्यरत्नावली" के योग को हम अपने अनुभव से इस प्रकार बनाते है। कई वर्ष से हमारा अनुभव चला आ रहा है। इस प्रकार योग कुछ सस्ता भी हो गया है और अधिक हृद्य तथा लाभकारी भी है। इस योग को हमने टाईफाइड ज्वर में ज्वरांकुश रस तथा द्राक्षा के साथ मिलाकर सैकड़ों रोगियों को देकर यश प्राप्त किया है।

क्लोरोमाइसिटिन कैपसूल अथवा सीरप, जो आधुनिक समय की अचूक औषध है, के स्थान पर यह योग कही अधिक गुणकारक है। हमने बीसियों उन रोगियों पर इसका प्रयोग किया है जो क्लोरोमाइसिटिन से पित्ताधिक्य में बिगड़े हुए थे। यह योग हृद्य है और पुष्टीकारक भी। तीन चार दिन में रोगी का ज्वर उतर जाता है और विकार रहित हो जाता है।

श्री वैद्य पं. गोपाल जी द्विवेदी

यह बीमारी दूषित आहार, अम्ल, लवण, क्षार आदि विरुद्ध आहार से होती है। सार्वजनिक रूप से दूषित पेय, जलवायु ऋतु परिवर्तन, ऋतु विकृति एवं संक्रमण द्वारा इसका प्रकोप होता है। चूंकि वसन्त ऋतु मे चेचक अधिक होती है, अत. इसे वासन्तिक रोग भी कहते है।

सामान्य लक्षण

ज्वर के तीव्र वेग के साथ दाह, प्यास, शिरः शूल आदि होता है, चेहरा तमतमाया सा होता है। दो या तीन दिन में ही सारे शरीर विशेषकर मुख मंडल पर दाने निकल आते है। दाने मसूर के दाने के समान होने से मसूरिका कहते है। रोमान्तिका की अपेक्षा इसमे अधिक कष्ट और उपद्रव होते है। यदि दाने बड़े-बडे फफोलों के रूप में हों तो उसे विस्फोटक या बड़ी माता कहते हैं। अन्याय उपद्रवों के साथ ही यह रोग यदि उग्र हुआ और उचित चिकित्सा न हुई तो दाने मुख के भीतर, गला और आंख आदि के भीतर भी हो जाते है। आंख मे दाना पड़ कर फुन्सी उत्पन्न कर देता है, और चेहरे पर दाग डाल देता है।

सामान्य चिकित्सा

इसमें उष्ण, अहृद्य और दूषित औषधियां तथा गंदगी बहुत हानिकारक होती है। इन सारी परिस्थितियों को विचार कर इनकी भावनाओं के अनुकूल आयुर्वेद में अपेक्षित औषधियां उपलब्ध है जैसे गुलाब जल, चन्दन कपूर, निम्बपत्र, घी अदि सभी पवित्र एवं हृद्य है।

आंख, कान, हृदय और मस्तिष्क की सुरक्षा पर ध्यान देना और जरूरी है। आंख में गुलाबजल प्रतिदिन तीन चार बार डालें। कानों में गुलाब का, चन्दन का इत्र दो बार डालें। मस्तिष्क और छाती पर पुराना घृत एक दो बार अवश्य मलें। घृत में कपूर भी मिला रहे तो अति उत्तम।

नीम के कोमल पत्तों से रोगी की हवा करे। रोगी की शय्या पर व चारों ओर निम्ब पत्र या सुगन्धित पुष्प रखें। कमरे को स्वच्छ रखें तथा फर्श को कपूर वासित जल से एक दो बार अवश्य धो दें।
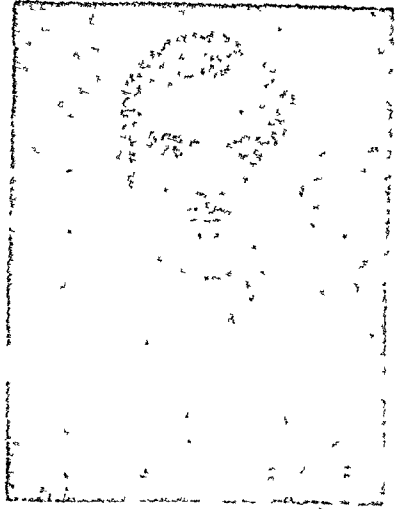
रोगी को दाह प्यास अधिक लगे तो लाल चन्दन पानी के साथ घिसकर पिलावें। निम्ब पत्र स्वरस भी मिश्री मिलाकर देने से लाभ मिलता है। बासी जल मधु मिला कर भी रोगी को ऐसे समय विशेष लाभप्रद होता है। कास, श्वास हो जाय तो शीतोपचार बन्द कर दें और छाती पर पुराण घृत का मर्दन चालू कर रखें।

आँख, कान, नाक, मुख के अलावा अन्य स्थानों में दाने अधिक निकलें तो उत्तम है। इसमें योग्य वैद्य से राय लेकर "भैषज्य-रत्नावली" का निम्बादि क्वाथ (निम्बछाल, पित्त पापड़ा, पाठल, परवल की पत्ती, कुटकी,

अडूसा की छाल, यवासा, आंवला, खस, लाल चन्दन और सफेद चन्दन) का प्रयोग शकर डालकर दिन में दो बार करें। स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती की मात्रा में कचनार की छाल के क्वाथ से ३-४ बार देने से दाने अधिक निकल आते है।

दानों मे पानी पड़ने लगे तो रोगी के बिस्तरे पर उपलों की स्वच्छ राख छिड़कें। दानों या शरीर के किसी अंग को धोने की आवश्यकता हो तो कपूरयुक्त निम्ब पत्र क्वाथ से धोयें।

मुह में दाना हो जाने पर खैरसार के काढ़े या फिटकरी गर्म जल में मिलाकर कुल्ला करावें और गीला कत्था लगावें। आँख में यदि दाने पड़ जाय तो गुलाब जल छोड़ते रहे। दाने सूखने लगें तो उनके छिलकों से अत्यन्त सावधान रहें। इन्हीं से रोग का संक्रामण होता है। इन्हे जला दें। मुख और सर्वांग में दाग पड़ने का भय
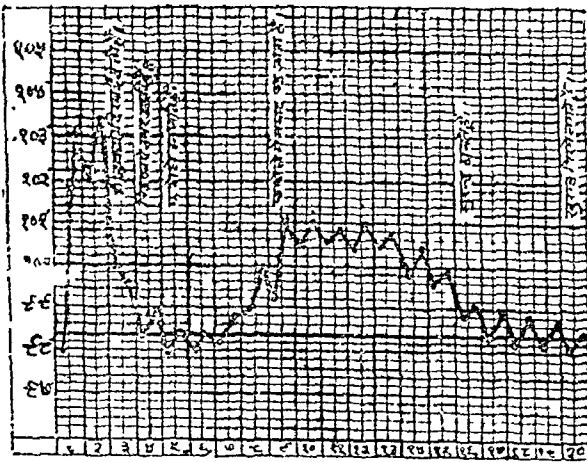
चेचक मे ज्वर का सामान्य-तापक्रम

रहता है। इनमें गधी का दुग्ध मलने से दाग मिट जाता है, इसके अभाव मे छिले मसूर या खरबूजा के बीज का उबटन करें। नागरमोथा से खौलाये हुए जल से मह धोवें।

शीतला के जनपदव्यापी प्रसार की सम्भावना में निम्ब के बीज, रुद्राक्ष और हल्दी का समभाग चूर्ण १ माशा की मात्रा में प्रातः सायं शीतल जल से १ सप्ताह तक लेने से शीतला (चेचक) के प्रकोप की सम्भावना नहीं रहती और होने पर प्रकोप कम से कम होता है। गधी का दुग्ध पीने से रोग नहीं होता।

स्कन्द पुराण के अनुसार गधा पर आरुढ़ शीतला देवी की अराधना भी भारतीय जनता में प्रचलित है इसका भी वैज्ञानिक रहस्य है, जो आप जान गये होंगे। गधे में शीतला का प्रकोप नहीं होता।

मसूरिका में औषधि चिकित्सा—

विशेष उपद्रव में दोषानुसार चिकित्सा करें। संक्रमण से बचने के लिए टीका लगवाना विशेष जरूरी है। टीका ३ मास की आयु से १ साल के बच्चों को भी लगवा देना चाहिये।

आयुर्वेद की निम्न औषधियों से लाभ मिलता है—

इन्दुकला वटी १ रत्ती तुलसीपत्र रस से, दुर्लभ रस १ रत्ती असमान घृत मधु से, सर्वतोभद्र रस १ रत्ती अनुपान दोषानुसार। हृदय को बल देने और दाह को कम के लिए मुक्ता पिष्टी १/२ रत्ती या अभाव में प्रवाल भस्म २ रत्ती देने से बड़ा लाभ मिलता है।

(१) **बसन्तसुन्दर रस**—स्वर्ण माक्षिक भस्म, रौप्य भस्म, अभ्रक भस्म, वंसलोचन और सौंठ इन ५ औषधियों को समभाग मिला ३ दिन सिरस के क्वाथ की भावना देकर १/२ की रत्ती गोलियाँ बनावें। १—१ गोली दिन में २—३ बार दुग्ध से देवें।

२. **शीतलाशासक वटी**—ब्राह्मी, काली मिर्च, हंसराज तुलसी के पान २-२ तोले, गोरोचन ३ माशा लेकर सबको मिला तुलसी के रस में १२ घंटे खरल कर आधी-आधी रत्ती की गोलियां बनावें। १ से २ गोली ४—४ घंटे पर तुलसी के रस के साथ देवें। (र० तं० सा० सि० सं०)

३. **गोरोचन मिश्रण**—गोरोचन १ तोला, प्रवाल पिष्टी, श्रृङ्ग भस्म और अमृतासत्व २-२ तोले तथा सोना गेरू ३ माशे लेकर सबको मिलाकर खरल में घोंट लें। १ से ३ रत्ती दिन में ३ बार शहद या तुलसी के रस के साथ दें।

४. मसूरिकान्तक रस, इन्दुकलावटी, मसूरिकान्तक वटिका का उपयोग सद्यः लाभदायक है। इनके विषय में रसतन्त्र सार व सिद्ध प्रयोग संग्रह भाग देखना चाहिए।

५. ओरियोमाइसीन, क्लोरोमाइसेटीन कैपसूल, पेनिसिलीन के इंजेक्शन (साथ में विटामिन सी आदि) देने से रोग शांत हो जाता है।

६. त्वचा पर चन्दन का तेल या पेनिसिलीन की मरहम लगानी चाहिए।

—श्री वैद्य पं० गोपाल जी द्विवेदी
नरहनकलां पो० मैढ़ी (चन्दौली) जिला वाराणसी

रोमान्तिका

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु०, विशेष सम्पादक 'धन्वन्तरि—ज्वर चिकित्सांक'

यह एक अति तीव्र संक्रामक रोग है। इसमें नासा कंठ और श्लैष्म कला का प्रदाह होता है। चौथे दिन शरीर पर रक्त पीडिकायें निकल आती हैं। यह अधिकतर बच्चों का रोग है।

आरम्भ से लेकर रोग मुक्ति तक एक वर्ण की गहरी पीडिकायें घने रूप से देह पर फैल जाती हैं। अधिकतर इसके निकलने का समय शीत तथा वसन्त ऋतु है। प्रथम दिन से ही तापमान १०२–१०३ डिग्री तक हो जाता है। यह कफज रोग है जिसमें नासा, मुख तथा श्वसनमार्ग पीडित हो जाता है। दूसरे तथा तीसरे दिन ज्वर कम हो जाता है। परन्तु चौथे दिन फिर तेज होकर पीडिकायें निकलती हैं, फिर तीन दिन ज्वर एकसा बना रहता है। फिर उतरने का क्रम होता है।

इस रोग में प्रतिश्याय के लक्षण मिलते हैं। परन्तु इसमें तापमान अधिक होता है। नेत्रों में लाली, अश्रुस्राव, नासास्राव, श्वास प्रणाली प्रदाह, कास तथा स्वरयन्त्र का पीडित रहना इसके लक्षण हैं।

रोगारम्भ के चौथे दिन पीडिकायें निकलती हैं। आरम्भ में कपाल के दोनों ओर बालों के किनारे, कान के पीछे तथा तदनन्तर शीघ्रता से सारे शरीर में फैल जाती हैं जो दबाने से अदृश्य हो जाती हैं। पीडिकायें घनी तथा पिंगलाभ होती हैं। स्वरयन्त्र प्रदाह, अतिसार, वमन, शिरःशूल, तृषावृद्धि, व्याकुलता, निद्रानाश, प्रलाप आदि लक्षण होते हैं।

सामान्यतः कोई उपद्रव न होने पर पीडिकायें १० दिन में मुर्झा जाती हैं और भुसी सी उतरने लगती है। यह बिना उपद्रव सुखसाध्य रोग है। परन्तु उपद्रवावस्था में भयानक तथा मारक रूप धारण कर लेता है। जिनमें फुफ्फुस प्रदाह सबसे भयानक तथा मारक है।

रोमान्तिका, मृदु, रक्तस्रावी, वातिक, पीडिकारहित तथा कृष्ण होती है। इनमें वातिक, पीडिकारहित, रक्तस्रावी तथा कृष्ण कृच्छ्र साध्य अथवा असाध्य हैं।

इस रोग में श्वसन प्रदाह, आमाशय प्रदाह, मुखपाक, मध्यकर्ण प्रदाह, अतिसार, मस्तिष्क प्रदाह आदि उपद्रव हो सकते हैं जिनका तत्काल उपचार आवश्यक है अन्यथा ये लक्षण मारक सिद्ध हो सकते हैं। इसके सिवाय वृक्क प्रदाह तथा हृदय श्लैष्मिक कला प्रदाह भी कभी-कभी हो जाते हैं। अधिक उग्र होने पर पीडिकायें पूय से भर जाती है। चिरकारी कास रहता है। इससे बालक क्षीण देह होने लगता है।
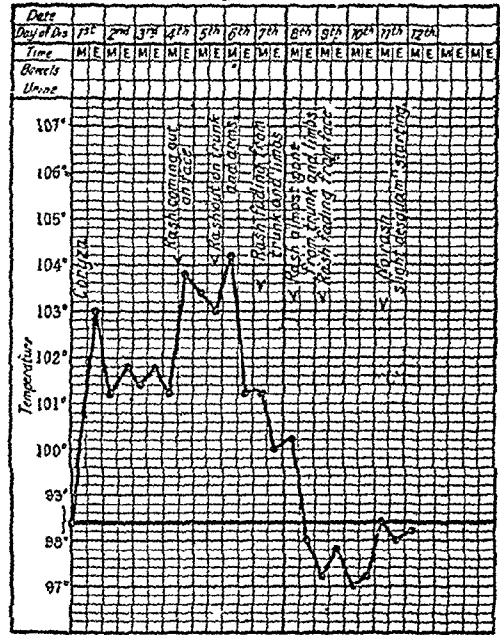
इस रोग में शृङ्ग भस्म + रसमाणिक्य उत्तम औषधि है। त्रिभुवन कीर्ति रस भी हितकर है। लक्ष्मीविलास रस नारदीय लाभ देता है। उपद्रवों की चिकित्सा तदनुसार करें।

पथ्य में—नमक नहीं दिया जाता तथा शीत वीर्य पथ्य नहीं देते। ज्वर उतरने पर शीतल पदार्थ दे सकते हैं।

रोग से सुरक्षित रखने के लिये वे सभी उपाय करें जो संक्रामक रोगों में किये जाते हैं जैसे एकान्त सेवन, कमरे

—शेषांश पृष्ठ २६६ पर देखें

अरुण ज्वर (SCARLET FEVER)

श्री वैद्य अम्बालाल जोशी, आयु०, विशेष सम्पादक 'धन्वन्तरि'

इसे लोहित ज्वर भी कहते हैं। यह एक तीव्र संक्रामक रोग है। इसमें ज्वर, कण्ठ पाक तथा रक्तपीडिकायें निकलती हैं। ग्रामीण भाषा में इसे (रातद्रिया) कहते हैं।

इसके कीटाणु स्ट्रेप्टोकोकस नासा, मुखमार्ग से संक्रमित होते हैं। इन स्थानों से ये कीटाणु संसर्ग से, दूषित वस्तुओं से परिचारकों द्वारा, दूसरे व्यक्ति के नासामुख द्वारा पहुंच कर रोग उत्पन्न करते हैं। इसका कीटाणु दीर्घ आयु वाला है। खाट, वस्त्र, तथा अन्य स्थानों में चिपका हुआ अधिक जीवित रहता है। वाहक भी रोग फैलने के साधन बनते हैं।

यह रोग १० वर्ष से कम के बच्चों को अधिक होता है। यह वर्षाऋतु का रोग है, वसन्त में बहुत कम होता है। भारत में यह रोग कम होता है।

अकस्मात ही तीव्र ज्वर होकर सिर:शूल, अङ्गमर्द, वमन, उत्क्लेद व दाह आदि लक्षण होते हैं। गल शोथ इस रोग का प्रथम लक्षण है। नाड़ी की गति ज्वर की अपेक्षा अतितीव्र होती है।

गला तालु शोथ युक्त रक्तिम होते हैं। मन्यास्तम्भ हो जाता है और ग्रीवा की लसीका ग्रन्थियां बढ़ जाती हैं। इसमें रोहिणी का भ्रम सदा बना रहता है। जिह्वा शुष्क, मैली होती है और तीन चार दिन बाद मैल उतर जाने से सुर्ख दीखती है जो २४ घंटे में सारे देह में फैल जाती है। पीडिकायें निकलते हुए शरीरमें खुजली जलन तथा दाह होती है। पीडिकायें तीन दिन रह कर मुर्झा जाती हैं। ठीक होने पर चमड़ी उतरती रहती है।

आरम्भ से ज्वर १०० से १०४'फा' तक होता है। पीडिकाये निकलते रहने पर वेग तीव्र रहता है परन्तु पीडिकायें मुरझाने पर ज्वर कम होकर ७ दिन में उतर जाता है।

इसमें कास, मध्यकर्ण शोथ, लसीका ग्रन्थियों में विद्रधि तथा शोथ होजाते हैं। इसलिये लसीकागत ज्वर भी कहते हैं।

कण्ठ प्रदाह, तीव्र ज्वर, प्रथम दिन से ही पीडिकाओं का निकल आना ये रोग परिचायक लक्षण हैं। रोमांतिका लघुरोमान्तिका, वात श्लेष्मिक ज्वर तथा तीव्र गल ग्रंथि शोथ से यह रोग साम्य रखता है। मुख पर पीडिका इसमें नहीं होतीं। उभरा हुआ दीखता है।
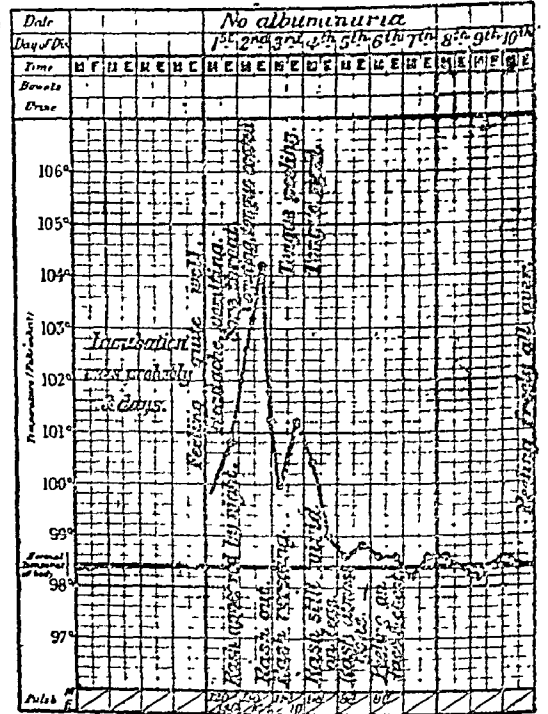
इसके मुख्य चार प्रकार हैं—(१) सामान्य (२) विशिष्ट (३) दूषित (४) विषात्मक। परन्तु प्रथम प्रकार ही अधिक देखा जाता है। इसमें उपरोक्त लक्षण स्पष्ट दिखाई नहीं देते। दूसरे प्रकार में स्कारलेटिकल ऐण्टी टोक्सिन के प्रयोग पर एक या दो दिन में लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। तीसरा प्रकार ग्रीवा पाक से प्रारम्भ होता है।

—शेषांश पृष्ठ २७० पर देखें

रूबेला (RUBELLA) या जर्मन रोमान्तिका

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी, आयु०, विशेष सम्पादक—'धन्वन्तरि-ज्वर चिकित्सांक'

यह मृदु संक्रामक पीडिकामय ज्वर है जिनमें लसीका ग्रन्थियों का शोथ प्रायः हो जाया करता है। इसे ही जर्मन रोमान्तिका कहते है। यह मृदु प्रकार की रोमान्तिका है। इसमें रोमान्तिका के समान अधिक कष्ट नही होते है।

वाल्यावस्था के अन्तिम भाग या किशोरावस्था में यह अधिक होता है। रोमान्तिका तथा शोथ ज्वर के समान यह संक्रमित नही होता। यह मृदु सक्रामक है। एक बार हो जाने पर देह सक्षम हो जाता है। इसमें उपद्रव नही होते। यह विषाणु से उत्पन्न होने वाली व्याधि है (Virus fever।

यह जनपदिक रूप से फैलता है। इसके लक्षण भी तदनुसार ही होते है। इसके सक्रमण का परिपाक काल १४ से १९ दिन का होता है। देह का तापमान ९९° से १०१° F होता है। ज्वर होने पर सिर.शूल.शाखा मर्दन तथा अंगमर्द होता है। कभी-कभी कफ वृद्धि होकर प्रतिश्याय भी हो जाता है। ग्रीवा की लसीका ग्रन्थियो मे शोथ होता है। रोगी अधिकतर ग्रीवा स्तम्भ की शिकायत करता है। कभी-कभी अन्य स्थानों की ग्रन्थियों में भी शोथ उत्पन्न हो जाता है। शरीर पर पीडिकायें तथा चकत्ते २४ घंटों मे ही निकल आते है। पीडिकायें गुलावी रंग की अंडाकार होती है। ये पिन की नोक के प्रमाण से मटर प्रमाण तक होती है। ये पीडिकायें कान के आस-पास, गर्दन पर तथा सम्पूर्ण मुख मंडल पर होती है फिर अन्य स्थानों पर भी उभर आती हे। ये रोमान्तिका की प्रारम्भिक अवस्था में होने वाली पीडिकाओं के समान होती है। ये २ से ४ दिनों में लुप्त हो जाती है।

रोमान्तिका से यह रोग अधिक साम्य रखता है। इसी दृष्टि से इसे भी रोमान्तिका ही कहा गया है जो स्थान भेद के कारण जर्मन नाम से पुकारा जाता है। इसका निदान करते समय रोमान्तिका का भ्रम हो सकता है परन्तु प्रतिश्याय न होना तथा पीडिकाओं की आकृति से यह भ्रम निवारण हो जाता है। इस रोग मे अरुण ज्वर का भ्रम भी हो सकता है परन्तु कंठ शोथ, ज्वर की अवस्था से यह स्पष्ट हो जाता है।

इसका उपचार तथा व्यवस्था रोमान्तिकावत् होता है। यह एक संक्रामक रोग है अतः वे सभी सतर्कतायें वरती जानी चाहिये जो संक्रामक रोगों में वरती जाती हैं।

रोमान्तिका :: :: पृष्ठ २९७ का शेषांश

का वातावरण ४०°सी. उत्तापित, अशुद्धता निवारण, शीतल वायु प्रवेश निषिद्ध, अशुचि, वस्त्रों का त्याग आदि।

रोगी को आग्रह पूर्वक स्नान तथा शीत वायु से बचावें। पथ्य में—खजूर, मुनक्का बादाम काजू दिये जा सकते हे।

लघुरोमातिका रोमान्तिका तथा लोहित ज्वर के संयुक्त लक्षणों से युक्त होते हुए भी दोनों से भिन्न है। इसका परिपाक काल अधिक (१७-२० दिन), लक्षण मृदु तथा रोग अवधि थोड़ी होती है। प्रसार में रोमान्तिका की भांति कण्ठ नासादि श्लेष्मा तथा उपचर्म के संसर्ग से दूषित वस्तुओं और परिचारिकों द्वारा होता है।

मन्द ज्वर, सिरःशूल, कण्ठदाह, ग्रीवा की लसीका ग्रंथियां शोथ एवं पीडा युक्त आदि लक्षण प्रकट होते हैं। पीडिकायें पहले या दूसरे दिन निकलती है। पहले ग्रीवा तथा तदनन्तर शीघ्र ही सम्पूर्ण शरीर पर व्याप्त होजाती है। पीडिकायें प्रथक प्रथक, छोटी-छोटी, गुलाबी रङ्ग की होती हैं। तीसरे दिन पीडिकायें मुरझा जाती है और ज्वर उतर जाता है। यह सुख साध्य है। चिकित्सा रोमान्तिकावत होती है।

विस्फोटक ज्वर (Pemphigus)

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु० केशरी विशेष सम्पादक–'धन्वन्तरि ज्वर चिकित्सांक'

यह रोग बच्चों में होता है। इसमें ज्वर होकर विस्फोट शरीर त्वचा पर निकलते हैं। पुंज गोलाणु (Staphylococcus) इस रोग के संक्रामक कारण हैं।

प्रकुपित पित्त और रक्त वातानुगत हो त्वचा में ज्वर तथा दाह पूर्वक फफोले के समान स्फोटों को उत्पन्न करता है ऐसा भोज का मत है।

अम्ल तीक्ष्ण, उष्ण, कटु विदाही रूक्ष तथा क्षारीय पदार्थों के सेवन से, अजीर्ण, अध्यशन, धूप, ऋतु दोष से वातादि दोष कुपित होकर जब त्वचा में आश्रित हो रक्त मांस तथा अस्थियों की दूषित करते हैं तब ज्वर के साथ विविध रूप में भयंकर विस्फोट उत्पन्न होते हैं। अर्थात उपरोक्त कारणों से दुर्बल त्वचा में पूयजनक जीवाणुओं का उपसर्ग होने से शरीर के एक देश में अथवा सम्पूर्ण शरीर में फफोले निकलते हैं।

रक्तपित्त के प्रकोप से जो ज्वर के साथ फफोले (अग्निदग्ध जैसे) शरीर पर के किसी भाग में या सम्पूर्ण शरीर में उत्पन्न होते हैं उसे विस्फोटक ज्वर कहते हैं। इसमें सिरःशूल, अंगमर्द या देह शूल, ज्वर तृष्णा, सन्धिभेद तथा स्फोटों का कृष्णवर्ण का होना वातिक स्फोट के लक्षण हैं। ज्वर दाह, पीडा स्राव, पाक, तृष्णा इन लक्षणों से युक्त पीले तथा रक्त वर्ण के विस्फोट पित्तज होते हैं। छर्दि, अरुचि, जड़ता, कंडू, कठोरता, पांडुता कफज विस्फोट के लक्षण हैं। इसमें रोगी को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती और विस्फोट देर में पकते हैं। वात पित्तज विस्फोट में तीव्र वेदना होती है। कंडू, स्तिमितता, गौरव वात कफज स्फोट के लक्षण हैं। कंडू दाह वमन तथा ज्वर का होना पित्त कफज स्फोट के चिह्न हैं। त्रिदोषज स्फोट मध्य में दबा हुआ किनारों पर उठा हुआ कठिन और अल्प प्रपाकी होता है। इसमें दाह, तृष्णा, ललाई, मोह, छर्दी, मूर्छा, पीड़ा, तीव्र ज्वर, प्रलाप, कम्प तथा तन्द्रा लक्षण होते हैं। यह असाध्य है। रक्तज विस्फोट रक्त प्रवाल अथवा गुंजा के समान लाल होता है। यह रक्त पित्त दोनों की दुष्टि से उत्पन्न होता है। यह भी साध्य नहीं है।

इस प्रकार विस्फोट आठ प्रकार के होते हैं। इनमें एक दोषज विस्फोट साध्य होता है, द्विदोषज कृच्छ्र साध्य तथा त्रिदोषज तथा रक्तज असाध्य होते हैं।

इनकी चिकित्सा विसर्प के समान की जानी चाहिये ऐसा सुश्रुत का मत है। मधुर औषधियों से सिद्ध घृत का प्रयोग उत्तम है।

दशमूल, देवदारु, खस, यवासा, गुडूची, धनिया, नागर मोथा का क्वाथ लाभप्रद है। इसकी चिकित्सा में रक्त दोष को दूर करने वाले पित्तहर प्रयोग करने चाहिये।

लंघन, वमन, विरेचन रोगी की तथा रोग की अवस्था (बलाबल) अनुसार कराने चाहिये।

पथ्य में जीर्णशाली, यव, मुद्ग देने चाहिये।

इसकी चिकित्सा विसर्प के अनुसार करने से लाभ होता है।

पृष्ठ २६८ का शेषांश

चौथे प्रकार का अरुण ज्वर अति भयङ्कर होता है। इसमें ज्वर अधिक, सन्ताप, प्रलाप होते हैं। वमन उग्र रूप धारण करता है इससे हृदय भी दुर्बल हो जाता है। चकत्ते अति गम्भीर रूप से निकलते हैं। रोगी एक सप्ताह में मर जाता है।

इस रोग का संक्रमण न होने देने का उपाय करें। चिकित्सा में त्रिभुवनकीर्ति, कस्तूरी भैरव, शृङ्ग भस्म आदि का प्रयोग एकाकी या संयुक्त रूपसे रोगी की अवस्था के अनुसार किया जाना चाहिये। गले के लिये क्षीरी वृक्ष क्वाथ का गरारा करना चाहिये।

विसर्प ज्वर (ERYSIPELAS)

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु०, विशेष सम्पादक 'धन्वन्तरि ज्वर चिकित्सांक'

यह भी एक संक्रामक ज्वर है। यह माला गोलाणुओं के कारण उत्पन्न होता है। ये गोलाणु लसीका वाहनियों में उग्र शोथ उत्पन्न कर देते हैं इसी से लाल विसर्प पैदा होते हैं। अपने फैलने वाले गुणों के कारण विसर्प नाम दिया गया है। आयुर्वेद में इसके अनेक भेदों का वर्णन मिलता है।

आयुर्वेद के अनुसार इसकी उत्पत्ति त्रिदोष, तथा चार दूष्य–रक्त लसीका, त्वचा और मांस के दुष्ट होने से मानी गई है।

सुश्रुत ने इसे शोथ का एक रूप माना है। इसकी संप्राप्ति में कहा है कि त्वचा, मांस, रक्त में प्रविष्ट दोष सर्वांग सारी शोथ उत्पन्न करते हैं। यह शोथ फैलने वाला होता है। यह शोथ अधिक उठा हुआ नहीं होता। चरक के अनुसार यह सात प्रकार का होता है। त्रिदोष, लसीका, रक्त, मांस और त्वचा को दूषित करता है। ये दोष जब शरीर के अन्तः प्रदेश में कुपित होते है तो शरीर के अन्तराश्रयों में तथा जब शरीर के बहिः प्रदेश में प्रकुपित होते हैं तो बहि प्रदेश की त्वचा में विसर्प उत्पन्न करते हैं। जब उभय भाग में प्रविष्ट करते हैं तब सर्वत्र विसर्प उत्पन्न करते हैं। चरक ने उपर्युक्त प्रकार के विसर्पो की प्रथक-प्रथक संप्राप्ति तथा लक्षण बताये हैं। यह चरक चिकित्सा स्थान अध्याय २३ में देखी जा सकती है।

लवण, कटु उष्ण आहार के सेवन से दोष कुपित हो कर सात प्रकार के विसर्प उत्पन्न करते हैं। ये प्रकुपित तीनों दोष त्वचा, मांस, रक्त एवं लसीका में प्रवेश कर तथा उन्हें दूषित कर शीघ्र ही सम्पूर्ण शरीर की त्वचा पर विस्तृत तथा अनुन्नत शोफ उत्पन्न कर देते हैं। यह शोफ प्रसरणशील होने से विसर्प कहा गया है।

विसर्प आठ प्रकार का—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आग्नेयज (वात पित्तोल्वण), ग्रन्थिक (कफ वातोल्वण), कर्दम (पित्त कफोल्वण) और क्षतज। आधुनिक मत से इनके पांच भेद होते हैं। (१) सामान्य प्रकार कोपतन्तु शोथ (Cellulitis) इसे एरीसीपेलो सेल्युलाइटिस कहते हैं। ये वातज, पित्तज तथा कफज विसर्प के अन्तर्गत आते हैं। (२) फ्लेग्मोनस या ग्रैंडगीनस एवीसिपेलज यह कर्दम विसर्प से साम्य रखता है।

(३) ऐरीसीपेलास नेयोनेटोरम—यह परम संघातिक होती है। यह आग्नेय विसर्प या सन्निपातज विसर्प से साम्य रखता है। इसमें मृत्यु का कारण उदरच्छद कला का शोथ (Peritonitis) होता है।

(४). ऐरीसीपेलस—यह कण्ठ और श्वास नलिका का होता है जो भयंकर व्याधि है। श्वासावरोध से मृत्यु हो जाती है। यह सन्निपात विसर्प से साम्य रखता है।

(५) क्षतज विसर्प—आघात आदि के कारण होता है। इसे ट्रामेटिक ऐरीसिपेलस कहा है।

आयुर्वेद के मतानुसार—

वातज विसर्प में—वातज्वर के लक्षण तथा त्वचा शोथ स्फुरण, तोद, भेद, आयास, अतिरोमांच होता है।

पित्तज विसर्प—पित्त ज्वर के लक्षण तथा चकत्ते अधिक लाल, शीघ्र बढने वाला होता है।

कफज—कफ ज्वर के लक्षण, स्निग्ध शोथ तथा कंडु।

सन्निपातज—त्रिदोष लक्षण प्राप्त होते हैं।

आग्नेय—तीव्र ज्वर, वमन, मूर्छा, अतिसार, तृष्णा, भ्रम, ग्रन्थियों तथा सन्धियों के फटने जैसी पीड़ा, अग्निमांद्य, तमकश्वास तथा अरुचि। अति दाहक होता है। मर्म स्थानों को आघात पहुंचाता है।

ग्रन्थिक विसर्प—कफावृत, त्वग, मांस, रक्त में लसीका में फैलकर उन्हें दूषित करता है। इसमें श्वास कास अतिसार, मुखशोष, हिक्का, भ्रम लक्षण होते हैं। इस प्रकार मोह, वैवर्ण्य, मूर्च्छा, अङ्गभेद, अग्निसदन आदि से युक्त ग्रन्थियों से माला वाले विसर्प को ग्रंथि विसर्प कहा जाता है। इस विसर्प में छाले नहीं होते।

(७) यह कफ पित्तजन्य है। इसमें ज्वर, अङ्ग स्तब्धता, निद्रा, तन्द्रा, सिरशूल, अङ्गशैथिल्य, अङ्ग विक्षेप, अरुचि, भ्रम, अग्निनाश, प्यास, देह गौरव आदि लक्षण होते हैं। यह आमाशय में पहुंच कर एक देशव्यापी हो जाता है। इसमें पीड़ा अधिक होती है। इसमें शव के समान दुर्गन्ध आती है।

(८) क्षतज—वाहरी आघात से प्रकुपित वायु रक्त सहित पित्त को प्रेरित कर सरुक, सदाह शोथ एवं ज्वर उत्पन्न करता है।

उपरोक्त विसर्पो में वातज, पित्तज, कफज विसर्प साध्य, सन्निपातज, क्षतज असाध्य तथा अग्निक, ग्रन्थिक अति कृच्छ्रसाध्य है। उपद्रवयुक्त होने से ये भी असाध्य हो जाते हैं।

विसर्प की प्रमुख भूमि मुखमंडल, सिर, ग्रीवा है। गोलाणु यहां आसानी से संक्रमण कर सकते हैं। विसर्प का प्रसार वाह्य देशों से अधिक से अधिक होता रहता है।

आधुनिक चिकित्सा में पैनसिलीन तथा सल्फा औषधियां इसमें लाभ करती हैं। आयुर्वेद मतानुसार निम्न चिकित्सा उपयोगी है—इस रोग में पंचकर्म चिकित्सा समझदारी से की जानी चाहिए। तिक्त घृत का प्रयोग लाभदायक है। सिरामोक्ष का भी विधान है। जलौकावचरण अलावु द्वारा रक्त मोक्षण उत्तम है। यह दोषानुसार किया जाना चाहिए। त्रायमाण घृत का प्रयोग उल्लिखित है। मुक्ता, प्रवाल, गुडूची, शुद्ध पीरोजा भस्म, गन्धक रसायन उत्तम योग हैं। खदिरारिष्ट, सारिवाद्यरिष्ट का पान उत्तम है। माँस्यादि लेप तथा निशादि लेप करें।

रक्त दोषहर, पित्तशामक औषधियों का प्रयोग उत्तम है।
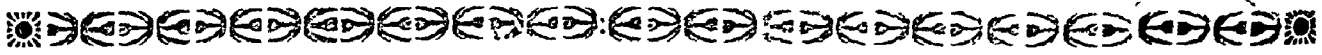
सन्धिपाद जीवीय विस्फोटिका (Recketisia Pox)

वैद्य श्री अम्वालाल जोशी आयु०, विशेष सम्पादक 'धन्वन्तरि—ज्वर चिकित्सांक'

यह ज्वर लघु मसूरिका के समान लक्षण वाला एक ज्वर है। इसमें ज्वर के साथ देह पर विस्फोट निकलते हैं जो मसूरिका से समानता रखते हैं। इसका उत्पादक जीवाणु सन्धिपाद जीवी होता है जो मूषकघूण (रक्तचूसक) के दंश से शरीर में संक्रमित होता है। इसी दृष्टि से इसका नाम सन्धिपाद जीवीय विस्फोटिका रखा है।

सर्व प्रथम यह १९४६ में न्यूयार्क में फैला था। यह प्रायः साध्य रोग है। इसके संक्रमण का वाहक एक अन्य प्रकार का चींचड़ भी होता है। इस कीटाणु के दंश से यह संक्रान्त होकर रोग फैलता है। इसके काटने से पहले रक्त वर्ण की एक गंभीर पीडिका उत्पन्न होती है पश्चात मन्द ज्वर होता है जो एक सप्ताह तक रहता है। कोठ के साथ इसमें कंठ शोथ भी रहता है। किसी किसी रोगी को लसीका ग्रन्थियों में शोथ तथा प्लीहा वृद्धि भी हो जाती है। प्रथम यह कोठ पीडिका के रूप में होता है परन्तु वाद में यह विस्फोट का रूप धारण कर लेता है। शोथ उतरने पर काले दाग पड़ जाते हैं। सिरःशूल, पृष्ठरुक, वमन तथा प्रकाश न सह सकना लक्षण होते हैं।

इस रोग की चिकित्सा सामान्यतः लाक्षणिक होती है। इसमें कफ पित्त नाशक औषधि देना उपयुक्त है। शृङ्ग भस्म देनी चाहिए।

इस रोग में नमक विहीन पथ्य देना चाहिये। फलों का स्वरस, दूध, चाय, द्राक्षा रस, यूप आदि द्रव पदार्थ पथ्य में देना चाहिए।

इस से वचने के लिए टीके का प्रयोग भी किया जाता है। स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

काल स्फोट (ANTHRAX)

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु०, विशेष सम्पादक--'धन्वन्तरि-ज्वर चिकित्सांक'

यह भी एक पीड़िकामय ज्वर है जो एन्थरैक्स नामक कीटाणु से उत्पन्न होता है। यह रोग भारत में अत्यल्प पाया जाता है। यों तो यह पशुओं का रोग है। मनुष्य में इसके दाने खुले शरीर पर (हाथ, पैर, मुख मंडल पर) होते हैं। यह रोग ऊन, केश तथा चमड़े का व्यापार करने वाले मनुष्यों में अधिक देखा गया है।

इसका संक्रमण काल २४ से ७२ घन्टे का है। यह छोटे दाने के रूप में निकलकर विस्फोटक रूप धारण कर लेते हैं। विस्फोटक में रस या रक्त भर जाता है। आसपास में शोथ हो जाता है। तीसरे दिन ये विस्फोट फूट जाते हैं और रक्त या द्रवस्राव होकर व्रण हो जाते हैं। व्रणित स्थान रक्त तथा शुष्क हो जाता है तथा आसपास सूजन रहती है। इस सूजे हुए स्थान पर चौथे दिन गोल लाल फफोले उभर आते हैं। शोथ आसपास फैलता है तथा पास की लसीका ग्रन्थियां भी शोथ युक्त हो जाती हैं। पीड़ा मन्द होती है। प्रायः दसवें दिन के पूर्व पूय सन्चार नहीं होता। ज्वर मन्द रहता है। इतना मन्द कि कभी-कभी पता भी नहीं चलता कि ज्वर है। परन्तु कभी-कभी ज्वर शीघ्र आकर आन्त्रिक ज्वर का रूप धारण कर लेता है। इस रोग में आन्त्र तथा फुफ्फुस कभी-कभी आक्रान्त हो जाते हैं। आंतों को खराब होने पर वमन तथा अतिसार हो जाते है। रोगी अत्यधिक शिथिलता अनुभव करता है। अवसाद सा हो जाता है। किसी-किसी रोगी को श्वास कष्ट तथा मुख मंडल का नीलाभ हो जाना तथा आक्षेप लक्षण प्रकट होते है। प्लीहावृद्धि होती है। फुफ्फुस के आक्रान्त होने पर भयङ्कर श्वास कष्ट हो हो जाता है। अक्स्मात ही छाती में पीड़ा होने लगती है। ज्वर तापमान १०२ से १०३ डिग्री तक पहुंचता है। ऐसे रोगी की २४ घन्टे में मृत्यु हो जाती है।

इस रोग के निश्चय के लिये रक्त परीक्षण सर्वोत्तम उपाय है। रक्त में Anthrax जीवाणु प्राप्त होते हैं। अन्य रोगों से प्रथकीकरण करने के लिये इस रोग के लक्षणों एवं निदान का सूक्ष्मतया अध्ययन करना जरूरी है।

इस विकार में ग्रीवा तथा मुख मंडल आक्रान्त हो तो ४० प्रतिशत तथा अन्य स्थान आक्रान्त हो तो १२ प्रतिशत मृत्यु निश्चित देखी गई है।

रोग चिकित्सा करते समय रोगी को विश्राम आवश्यक है। हल्का तथा सुपाच्य भोजन देना चाहिए। आधुनिक चिकित्सा में पैनसलीन तथा सल्फा औषधियां इस उपयोग में ली जाती हैं। इस रोग के लिये बनी टीका भी लगाते हैं।

आयुर्वेदीय चिकित्सा में काञ्चनार गूगल, त्रिफला गूगल तथा तालकेश्वर रस उत्तम औषधियां हैं। इन औषधियों से कोई विकार उत्पन्न नहीं होता और समय पर रोग शमन होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

जाल गर्दभ

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु०, विशेष सम्पादक 'धन्वन्तरि--ज्वर चिकित्सांक'

यह विसर्प के समान ही फैलने वाली व्याधि है। यह अल्पपाक युक्त है। दाह, ज्वर के साथ होने वाली पित्त-जन्य व्याधि है। इसमें शरीर की त्वचा पर श्याम, रक्त-वर्ण की तनु शोथ होती है। यह विसर्प का ही एक रूप है।

पित्तज होने से चक्रपाणिदत्त ने अपाकवान का अर्थ ईषत् पाक वाला किया है परन्तु प्रत्यक्षतः इसकी उपलब्धि बिना पाक के ही होती है। इसीलिए कुछ आचार्य इसे त्रिदोषज मानते हैं और कहते है कि दोषों में पित्त उत्कट होता है।

सुश्रुत ने इसका उपचार भी विसर्प के समान ही माना है। मधुर औषधियों से सिद्ध घृत, पित्त ज्वरोक्त ज्वर-नाशिनी औषधियां, किरातादि क्वाथ, महामन्जिष्ठादि क्वाथ लाभदायक हैं। त्रिभुवन कीर्ति रस लाभ करता है।

मूलतः पित्तशामक ज्वरघ्न चिकित्सा इसमें लाभ-करती है।

सन्धिक ज्वर-आमवातिक ज्वर

(Rheumatic Fever)

आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य, बी० ए०

साधारण परिचय –

जिस रोग में ज्वर के साथ शरीर की बड़ी बड़ी संधियों में वेदना और शोथ होता है उसे आमवातिक ज्वर कहते हैं। इसके पर्याय संधिक ज्वर, संधिक सन्निपात ज्वर भी हैं। यह बार बार हो जाता है। जब इस रोग का रोगी प्राप्त हो तब सर्व प्रथम देखना चाहिए कि इसमें कौन सी अवस्था है। पूर्वरूप में कौन सी अवस्था है।

पूर्वरूप –

आमवातिक ज्वर होने से पूर्व रोगी में निम्नलिखित प्रधान चिन्ह पूर्वरूप के रूप में होते हैं—

(१) आशु दौर्बल्य व अंगमर्द—[1]शरीर में भारीपन रहने लगता है और बिना कारण के दुर्बलता अचानक प्रतीत होने लगती है। ज्वर होने के पूर्वरूप सर्वांग ग्रहणादि लक्षण होंगे ऐसा जान पड़ता है।

(२) शूलसम्भव—संधिप्रदेशों में गौरव (भारीपन), हल्का दर्द रहने लगता है। ऐसा ज्ञात होता है कि दर्द होने वाला है। फिर दर्द होने लगता है।

(३) हृदय-गौरव—हृदय प्रदेश में भारीपन, दर्द की अनुभूति की तरह सह्य दर्द होता है। हृदय प्रदेश पर बोझ सा महसूस होता है।

(४) गात्रस्तब्धता—शरीर की बड़ी संधियों (जैसे त्रिक संधि) में स्तब्धता (जकड़ाहट) मालूम होने लगती है।

ऐसे लक्षणों के साथ ही ज्वर तीव्र होजाता है और रोग के लक्षण प्रकट होजाते हैं जो निम्नलिखित हैं—

सामान्य लक्षण[2]—

पूर्वरूप की दशा को पार करके रोग रूप की दशा में आ जाता है और तब उसमें निम्नलिखित लक्षण मिलते हैं—

अंगमर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, कायगौरव, ज्वर, संधिशोथ व अपाक, सर्वांग शोथ। इनमें सबसे प्रारम्भ में क्रमशः अनन्नाभिलाप, अरुचि, अंगमर्द, आलस्य, कायगौरव, संधिशोथ यह लक्षण मिलते हैं। शोथ की जगह पाक नहीं होता। यह लक्षण क्रमशः एक दूसरे के बाद होते हैं। (आगामी पृष्ठ का चित्र देखें)।

यह सामान्य लक्षण हैं। सर्वप्रथम शरीर भारी होकर सन्धि प्रदेशों में हल्की वेदना होती है ज्वर तीव्र होजाता है और सन्धियों में शोथ व पीड़ा होती है। प्रारम्भ में पैर की नीचे की सन्धि में शोथ होता है। इसका कारण यह है कि सन्धि प्रथम से ही रुग्ण होती है। चलने फिरने से श्रम
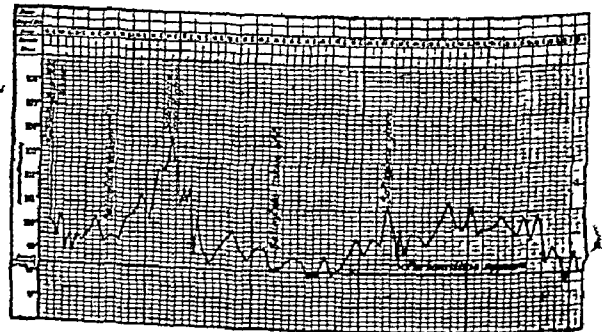
आमवातिक ज्वर का तापमान चार्ट

---

1 जनयत्याशु दौर्बल्यं, गौरवं हृदयस्य च। व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः॥
युगपत् कुपितावन्तस्त्रिकसंधिप्रवेशकौ। स्तब्धं च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते॥ [माधव]

2 अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा आलस्यं गौरवं ज्वरः। अपाकः शूनताऽङ्गानामामवातस्य लक्षणम्॥

से प्रभाव पड़ने से गुल्फ की सन्धि प्रथम संक्रमित होती है। ऐसे ही मणिवन्ध की सन्धि किसी-किसी में संक्रमित होकर तीव्र वेदना हो जाती है। कभी-कभी सर्वाङ्ग की सन्धियों में पीड़ा होकर भयंकर तीव्र ज्वर हो जाता है। इसे सन्धिक सन्निपात ज्वर कहते है। इसकी अवधि ७ दिन की होती है।

टिप्पणी—ज्वर के साथ सन्धियों में वेदना होना—इस लक्षण के रोग ज्वराधिकार में कम मिलते हैं। त्रयोदश सन्निपात ज्वरों में सन्धिक सन्निपात के लक्षण इससे मिलते जुलते हैं। आमवातिक या Rheumatic fever के नाम से जो ज्वर आधुनिक चिकित्सक मानते हैं वह लक्षण सबके सब इससे नही मिलते, किन्तु सामान्य लक्षण जो माधवकार ने आमवात के लिखे हैं प्रायः सब मिलते हैं। इसी आधार पर इसे आमवातिक ज्वर संज्ञा ऊपर दी गई है। यह व्याधि श्लेष्म व वातप्रधान त्रिदोष से होती है।

प्रधान लक्षण—

सन्धियों में दोष प्रकुपित होकर तीव्र ज्वर के साथ किसी सन्धि में शोथ व पीड़ा हो जाती है। तीव्र वेदना होती है। ज्वर कभी-कभी शीतपूर्वक आ जाता है। जहां जहां दुष्टि अधिक होती है वहां वहां की सन्धि में पीड़ा बढ़ जाती है। तीव्र ज्वर, सन्धि वेदना, प्रस्वेद, रक्ताल्पता यह प्रधान लक्षण होते हैं। हृदय भी इससे प्रभावित होकर रुग्ण हो जाता है।

यह बाल और तरुणों में होने के भेद से २ प्रकार का होता है। बालकों में २–१६ वर्षीय आयु में व युवकों में १६ से ३० वर्ष की आयु तक में अधिक होता है। वृद्धों में किंचित् ही होता है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक पाया जाता है। एक बार आक्रमण होकर बार-बार होने का भय रहता है।

अवधि—७ दिन की अवधि सामान्य दोष में। उग्रावस्था में २-३ सप्ताह तक चिकित्सा करने पर लाभ हो जाता है। उचित चिकित्सा न होने पर पुनः पुनः आक्रमण होता है।

१. ज्वर—सन्धिवेदना के साथ ज्वर तीव्र होकर सन्तत रूप में रहता है, चिकित्सा न होने पर ज्वर दीर्घकाल भी लेता है। हृदय या प्रत्येक सन्धि की नवीन शोथ में ज्वर बढ़ जाता है। युवकों को होने पर पसीना बहुत आता है। कभी-कभी किसी-किसी रोगी में ज्वरकाल में विस्फोट या छाले भी दिखाई पड़ते हैं।

२. सन्धि शोथ—सन्धियां विशेष रूप से रुग्ण होकर शोथयुक्त Artarıtis) हो जाती हैं। कई सन्धियों में विकृति एक साथ भी होती है और अधिकतर पर्याय क्रम से भी होती है। यथा गुल्फ, जानु, कटि, स्कन्ध की सन्धि। संधि-शोथकाल में वह उष्ण, शोथयुक्त, पांडु वर्ण की दिखाई पड़ती है। स्पर्श से भी पीड़ा होती
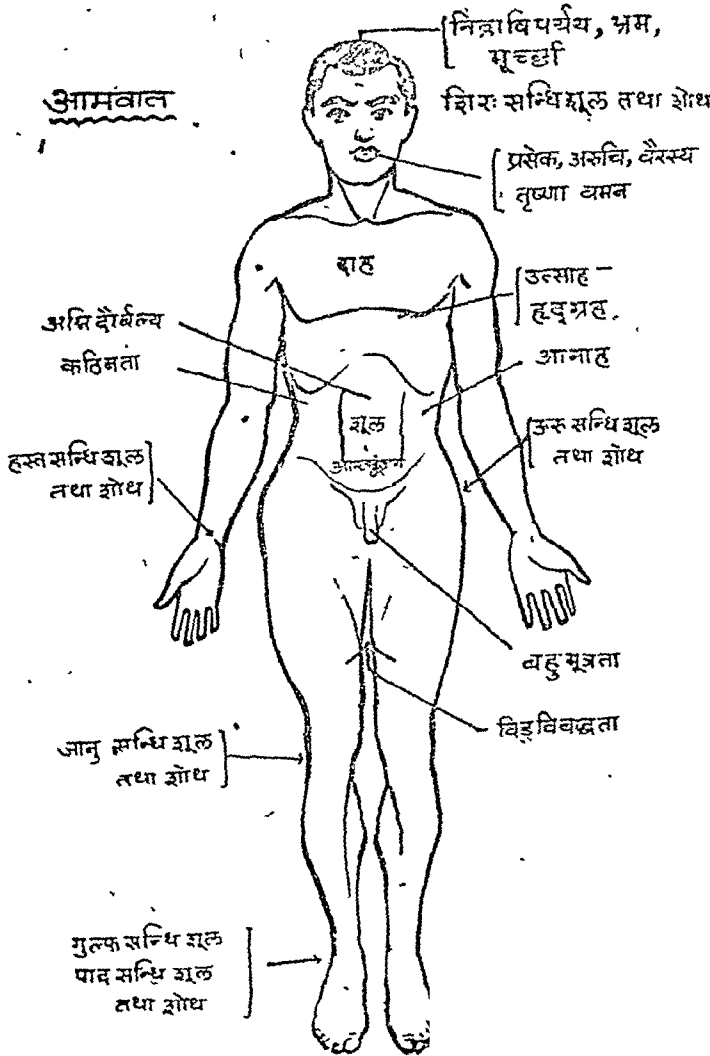
हैं। कभी-कभी सन्धि में द्रव पूरण भी होता है।

३. हृदय विकृति[1]—हृदय की पेशी में शोथ (myocarditis तथा हृदय कोष्ठ वृद्धि (dilatation of the heart), यह उपद्रव इस रोग में हो जाते है। बाल्यावस्था में होने वाले ज्वर मे हृदय विशेष रूप से प्रभावित होता है। हृदयावरण विकृति, हृदय के कपाटों की भी विकृति हो जाती है।

४. आशुदौर्वल्य या रक्ताल्पता—ज्वर की अवधि में तीव्रता से रक्ताल्पता होती है, इतनी रक्ताल्पता हृदयशोथ, वृक्कशोथ व गलरोहिणी इत्यादि में भी नहीं होती। इस कारण ही आशु दुर्वलता ज्ञात होती है।

५. प्रस्वेद—पसीना ज्वरकाल में या विज्वर काल मे भी अधिक आता है और उसमें एक विशेष प्रकार की दुर्गन्धि ज्ञात होती है। शरीर के सन्धिस्थलों में सौत्रिक ग्रन्थियां भी टटोलने पर मिलती हैं।

६. वहुमूत्रता—ज्वरावस्था में प्रस्वेद आने पर मूत्र कम आता है किन्तु ज्वर के वेग कम रहने पर मूत्र अधिक आता है और इसमें भी विशेष गन्ध होती है।

७. अग्निमांद्य—भूख समाप्त हो जाती है, खाने की इच्छा नहीं होती, मुख से लार टपकती है वा थूकने की प्रवृत्ति होती है, मुख-विरस, अरुचि, गौरव व कुक्षिशूल के लक्षण उपस्थित हो जाते है, अनिद्रा अधिक हो जाती है।

उपद्रव[2]—तृषा, छर्दि, भ्रम, मूर्च्छा, हृद्ग्रह, विड्विघात, जाड्य, अन्त्र कूजन, आनाह इत्यादि हो जाते हैं। फुफ्फुसावरण, उदरावरण प्रदाह भी हो सकते हैं। कम्प भी कभी-कभी होता है।

निदान—

विरुद्ध आहार करने. परिश्रम न करने से मंदाग्नि वाले पुरुष जब स्निग्ध पदार्थ खाते हैं और व्यायाम नहीं करते तो पाचन न होकर आमरस संग्रहीत होने लगता अम्लता को प्राप्त होता है। श्लेष्म स्थानों यथा संधिकला कोष्ठावरण, श्लेष्मल कलाओं में संग्रहीत होकर विकृति प्रारम्भ करता है। वात पित्त व कफ की विकृति द्वारा यह रस स्रोतसोंमे रुकता हुआ दुर्वलता, भारीपन, हृद् रोगों को उत्पन्न करता है। संधि स्थानीय श्लेष्मकला व हृदय अधिक व प्रधान रूप में संक्रमित होते हैं और रोग भयङ्कर हो उठता है। मुखवैरस्य, अग्नि हानि प्रधान होते हैं। हृदय का द्विपत्रक कपाट प्रथम विकृत होता है।

सम्प्राप्ति—

रस का शोषण आंतों में होकर वह रस रसायनी व लसीका वाहिनी द्वारा सूक्ष्म स्रोतस मुखों द्वारा रसकुल्या में पहुंचता है तथा लसीका कोष में जाता है। लसीका वाहिनी तथा रस वाहिनी के सूत्रों में विकृति अधिक रस संचय होकर होती है। अन्तर्हृदय, हृदयावरण और सन्धिकला व लसीका वाहिनी की रचना साम्य होने से विकृति होती है और वही स्थल रुग्ण होकर विशेष लक्षण पैदा करते हैं। अधिक पीड़ा होने पर संधियों की कलाओं में रस का भरण होता है। कभी कभी पित्त की तीव्रता में पूय भरण भी हो जाता है।

विशेष लक्षण—

१. ज्वर शीतपूर्वक १०२ से १०४ डिग्री तक, तीव्र १०५-१०६।
२. अनन्नाभिलाप।
३. संधि शोथ-तीव्र वृश्चिकदंशवत पीड़ा।
४. मूत्र-स्वेदादिक-विशेष गंधी, (यूरिक एसिड की अधिकता से) मूत्र परीक्षा से शीघ्र ज्ञान होता है। स्वेद युक्त वस्त्र वदवू करता है।

उपद्रवों म—

५. कुक्षी कठिनतां, शूलम्—हृद पेशी की विकृति, हृदयावरण शोथ, फुफ्फुसावरण शोथ—वृक्कशोथ परिचायक लक्षण है।
६. हृद्ग्रह—हृदय कपाट विकृति-हृत्स्पन्द।
७ अंत्र कूजन, आनाह—आंत्र की विगुणता व पाचन क्रिया हानि।
८. निद्राविपर्यय—शूलकी तीव्रता-ज्वरताप परिचायक। अग्निसाद, अरुचि।
९. नाड़ी—तीव्र-भारी।

[1] हृद् ग्रह—यह उपद्रव स्वरूप होता है—ज्वरोघोरः सहृद्रोगः संधिको नाम कथ्यते।
[2] तटछर्दिभ्रममूर्च्छाश्च, हृद्ग्रहं विड् विवद्धताम्। जाड्यांत्रकूजनानाहं कण्टांश्चान्यानुपद्रवान्॥

१०. जिह्वा-सफेद मल युक्त ।

आमवात चिकित्सा –

सामान्यतया ज्वर चिकित्सा में लंघन, दीपन, पाचन क्रियायें की जाती है। वात व श्लेष्म दोष प्रधान होने के कारण आमवातिक ज्वर में लंघन, दीपन, पाचन के साथ स्वेदन, स्नेह-विरेचन, स्नेहपान, वस्ति का प्रयोग शास्त्र विहित प्रयोग है। संधिशोथ व वेदना के शान्त्यर्थ स्वेदन, लेप, तैल मर्दन भी किया जाता है।

लङ्घन—दोषोल्वण होने या ज्वर के प्रारम्भ होते ही लङ्घन काल में दीपन पाचन योगों द्वारा आमदोष का पाचन आवश्यक है। लङ्घन रोगी के बलाबल के अनुसार किया जाता है। ज्वर होने पर रोगी स्वयं कुछ लेना नही चाहता।

दीपन—पंचकोल द्वारा अर्धश्रृत जल पीने को देना चाहिए।

पाचन—ज्वर के वेग प्रशमनार्थ, पीड़ा शोथ व हृदय को शक्तिशाली बनाये रखने के लिए निम्न योग लाभदायक हैं। इस रोग में बलहानि भी तीव्रता से होती है अत. नीचे का योग इनको सतर्कतापूर्वक देना चाहिए। यह ज्वर शामक व बल्य होता है।

१—मृत्युंजयरस ५ वटी, समीरपन्नगरस २॥ रत्ती, मल्लसिंदूर २ रत्ती।
—पांच मात्रा, ४ घंटे के अन्तर से।

अनुपान–दशमूल क्वाथ के साथ देना चाहिए या रास्नादि क्वाथ से देना चाहिए।

वेदनाधिक्य ज्वराधिक्य में दशमूल क्वाथ का उपयोग औषधि के अनुपान के रूप में देना हितकर है। विवन्ध सहित ज्वराधिक्य में रास्नादि क्वाथ लाभप्रद होता है। रास्नादि क्वाथ मलभेदक है अतः मल त्याग कराता है। दशमूल उष्ण होता है। दीपन पाचन क्रिया तीव्र कर दोष पाचन शीघ्र कराता है। स्वेदकर होकर दोष स्राव कराता है।

२—आमवातारि गुटिका ५ वटी, वातगजांकुश ५ रत्ती, श्रृंग भस्म २ रत्ती।
—५ मात्रा, ४-४ घंटे के अन्तर से।

अनुपान—दशमूलकषाय, रसोननिर्गुंडी कषाय। यह योग ज्वरवेगशामक, लघु, मलनिस्कासन करने वाला तथा वेदनाहर भी है।

३—वैश्वानर चूर्ण १ तोला, समीरपन्नग रस १ माशे —५ मात्रा। अनुपान—उष्णोदक, रास्ना-दशमूलकषाय, उष्ण जल। यह योग तीव्र पाचक, स्वेदकर, वेदनाशामक व ज्वरसंतापहर है।

स्वेदन—(१) सैंधवादि तेल की मालिश करके लवण या रेत की पोटली से स्वेद। विवन्ध में–५ तोला, दशमूल क्वाथ या रास्नादि कषाय में एरण्ड तैल १ औंस मिलाकर देना चाहिए, पाचन व रेचन दोनों कार्य करता है।

(२) कार्पास बीज, एरन्ड, कुलत्थ, तिल, यव, अलसी, पुनर्नवा, शणबीज को कांजी के साथ पीसकर गर्म कर शंकर स्वेद की तरह प्रयोग लेप व स्वेद दोनों के रूप में होना चाहिए।

लेप—(१) हिंस्रादि लेप—हैंस की जड, कंटकारी केमुआं (केवुक), सौजने की छाल को पीसकर लेप लगाने से वेदना कम होती है।

(२) सोया, वच, सोंठ, गोखरू, वरुण की छाल, पुनर्नवा, देवदारु, कचूर, मुन्डी, प्रसारणी, अरनी की छाल व मैनफल को कांजी या सिरका के साथ पीसकर लेप लगाना चाहिए।

(३) कालीजीरी, सोंठ, पीपल को अदरख रस के साथ पीसकर लेप करने से पीड़ा शीघ्र शान्त होती है।

(४) हलिनी तैल (वैद्यसहचर) का मर्दन करने से वेदना शान्त करता है।

(५) धुस्तूर प्रलेप—धत्तूर के घनसत्व व गूगल को पकाकर कपड़े पर फैलाकर गरमागरम ही शोथ-युक्त स्थान पर रखने से व सेक कर रुई बांध देने से दर्द व शोथ कम होती है।

ज्वर का वेग शान्त हो जाने व केवल सन्धियों में शोथ व वेदना रहने पर निम्नलिखित योग लाभदायक हैं—

(१) रसोनपिन्ड—शुन्ठ्यादि कषाय से पीना चाहिए। दिन में ३ बार।

(२) आमवातारि वटी—शुन्ठ्यादि कषाय से ३ बार।

(३) वृ० योगराज गुग्गुल—दशमूल कषाय से प्रातः सायंकाल। भोजनान्तर दशमूलारिष्ट २ तोला प्रति बार। लेप सेक पूर्ववत्।

(४) विडंगादि लौह ८ रत्ती, हृदयार्णव रस ४ रत्ती, समीरपन्नग रस ४ रत्ती, प्रवाल पंचामृत १ माशा—४ मात्रा।

दशमूलकषाय के साथ हृदय दुर्बलता व हृत्स्पंद अधिक होने की दशा में या हृदय को रोगी होने से बचाने के लिए—

(५) सिंहनाद गुग्गुल- १ माशे नित्य प्रातःसायं रास्नादि कषाय के साथ दशमूलारिष्ट या पुनर्नवाद्यरिष्ट २ तोला, भोजनोत्तर प्रति बार।

पुनः पुनः रोग के आक्रमण होने पर या रोग के आक्रमण से बचने के लिए—

(१) वृ. योगराज गुग्गुल—नित्य दूध या दशमूलार्क के साथ।

(२) लक्ष्मीविलास रस व समीरगज केशरी को रास्नादि सप्तक के साथ।

(३) हरीतकी चूर्ण ३ माशे को एरन्ड तैल के साथ केवल एक बार।

(४) वैश्वानर चूर्ण ३ माशे को कांजी के साथ या उष्णोदक से।

(५) अमृतादि कषाय के साथ समीर पन्नग।

(६) आरग्वधादि कषाय के साथ समीरगज केशरी।

हृदय की दुर्बलता में—

(१) वृ. वात चिन्तामणि, प्रवालपंचामृत को दुग्ध के साथ।

(२) चिन्तामणि चतुर्मुख व वातकुलान्तक उष्णोदक या उष्ण दुग्ध से।

(३) वातविध्वंसन रस व लक्ष्मीविलास-गव्यदुग्ध से।

(४) वातकुलान्तक, हृदयार्णव-दशमूलकषाय से।

स्नेह विरेचन—

(१) दशमूलकषाय में एरन्ड तैल (५ तोला+२॥ तोला)।

(२) रास्नादिकषाय में एरन्ड तैल (५+२॥ तोला)

(३) एरन्ड तैल, अलम्बुषादि चूर्ण—दशमूल कषाय के साथ।

(४) त्रिवृत घृत व एरन्ड तैल एवं दुग्ध से (२॥+२॥ तोला+१० तोला)

वस्ति—

(१) दशमूल कषाय में सैंधवादि तैल (३० तोला+१० तोला)।

(२) दशमूल कषाय में नाराच घृत (२० तोला+५ तोला)।

(३) दशमूल कषाय में एरन्ड तैल (२० तोला+५ तोला)।

(४) रास्नादि कषाय में एरन्ड तैल (२० तोला+५ तोला)।

पथ्यापथ्य—

पथ्य—पुराने जौ, कोदों, तक्र, लवा के मांस, कुलत्थ, मटर व चने की दाल या यूप, बथुआ, नीम के पत्र, पटोल, गुड़ूची शाक, करेला इत्यादि तिक्त रस वाले शाक।

दही, मछली, गुड़, दुग्ध, उड़द, पोईशाक, पिठ्ठियां, जागरण, विषमाशन, आनूपदेशज जीवों के मांस, देर में पचने वाले पदार्थ आमवात में अपथ्य हैं।

ग्रंथाधार—चरक संहिता।
सुश्रुत संहिता।
हारीत संहिता।
माधव निदान।
रसरत्न समुच्चय।
रसेन्द्रसार संग्रह।

—आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी आयु. शास्त्राचार्य, बी.ए.,
शिवपुरी कालोनी, नगवा, वाराणसी।

आमवातिक ज्वर

श्री वैद्य आर वी० त्रिवेदी आयु०, जसराना पो० सासनी (अलीगढ़)

यह एक उग्र पीड़ादायक रोग है। इसमें ज्वर के साथ सन्धिशोथ तथा उग्र वेदना आदि लक्षण पाये जाते हैं। इसमें प्रायः हृदय की रक्तधरा कला शोथमय हो जाती है।

इस रोग का कारण संयोग विरुद्ध आहार, विरुद्ध विहार, अधिक व्यवाय, मन्दाग्नि, अधिक श्रम तथा अधिक व्यायाम आदि करने वाले मनुष्यों में वायु से प्रेरित होकर आम श्लेष्मा स्थान में आता है। यह आम पित्त स्थान में न जाने के कारण वायु से अधिक दूषित होकर धमनियों के मार्ग से गति करता है। पुनः तीनों दोषों से दूषित हो कर रक्त वाहिनियों के मार्ग को अवरुद्ध करता है। तब इस आम रस से अग्निमन्दता और हृद्गौरवता उत्पन्न होती है। इस व्याधि में संधियों में भयंकर शोथ तथा इससे श्लेष्मा की वृद्धि होकर भयंकर दाह होता है। कफ मात्रा में अधिक होने से उसका पचन नहीं हो पाता।

आधुनिक मत से इसका स्पष्ट कारण ज्ञात नहीं है फिर भी ये तीन मत इस रोग के कारण में अलग-अलग निर्देश करते हैं—

(१) स्ट्रेप्टोकोकस विरडस नामक जीवाणु इस रोग को उत्पन्न करता है।

(२) निस्यन्दनशील जीवाणुओं को कुछ शास्त्रज्ञ इसका कारण मानते है।

(३) कुछ विद्वान एलर्जी द्वारा उत्पन्न रोग मानते हैं।

इनमें प्रथम मत अधिक वजन रखता है।

इस रोग (ज्वर) के होने के २–३ सप्ताह पूर्व गल ग्रन्थि प्रदाह होता है। शीतसह ज्वरोत्पत्ति के साथ सन्धि शोथ हो जाता है। दैहिक तापमान १०२° से १०३° एफ रहता है। हृदयावरण तथा अन्य स्थानों पर प्रदाह, अतिस्वेद, अरुचि, शिरःशूल, निद्रानाश, हृदय में पीडा, क्वचित प्रलाप लक्षण होते हैं। ज्वर अधिक उग्र होने पर सभी लक्षण अधिक तीव्र हो जाते हैं।
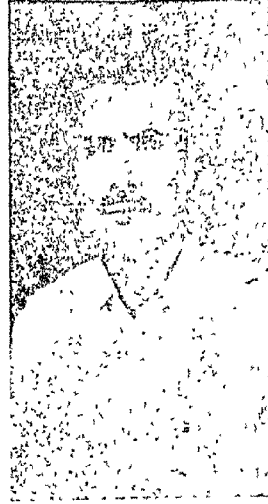
आधुनिक मत से स्ट्रेप्टोकोकस के संक्रमण के कारण शरीर की रोग अवरोधक शक्ति घट जाती है और कीटाणु देह में प्रवेश कर जाते है। इस रोग में त्वचा में तथा संधियों की श्लेष्मक कला में और हृदपेशी में छोटी-छोटी गाठें पड़ जाती है इन्हें ऐस्चाफ्ज नाड्स कहते हैं। इनमें बहुकेन्द्रीय तथा एककेन्द्रीय कण जमा होते हैं। अन्त में

वहां फिर तन्तुमय धातु बनती है। सन्धि तथा हृदय इस रोग में विशेषतः प्रभावित होते हैं। सन्धियों में रक्ताधिक्य श्लेष्मल कला स्नायुओं में शोथ और कला के ऊपर लसीका की पतली तह जमजाती है। संधियों में स्थित जल मटमैला हो जाता है। उसमें श्वेत कण तथा फाइब्रीन मिलते हैं। इस रोग में पाण्डुता तीव्रता से बढ़ती है। यह ध्यान देने की बात है कि रोहिणी (कण्ठ) के अतिरिक्त किसी भी रोग में इतनी शीघ्रता से रक्त का ह्रास नहीं होता।

इस रोग में उपद्रव स्वरूप न्युमोनिया, फुफ्फुसावरण शोथ, मस्तिष्कावरण शोथ, वृक्क शोथ आदि हो जाते हैं। कभी-कभी इस रोग में सन्धिशूल कम तथा हृदय विकार अधिक होता है। ज्वर भी उग्र हो उठता है और रोगी बेहोश होकर प्रलाप करने लगता है।

इस रोग के समान अन्य रोग भी हैं जिनको इस रोग से अलग कर पहिचानना कठिन है अतः इनके पृथक लक्षण दिये जा रहे हैं—

आमवात	वातरक्त
१. यह रोग ३० वर्ष की आयु पर्यन्त होता है।	यह ४०, वर्ष से ऊपर की आयु वालों को होता है।
२. ज्वर सह सन्धि शूल होता है।	ज्वर होना आवश्यक नहीं है।
३. ज्वर तथा पीड़ा साथ साथ रहती है।	पीड़ा से ज्वर हो सकता है।
४. पीड़ा भ्रमणशील होती है।	पीड़ा भ्रमणशील नहीं होती।
५. आराम में पीड़ा कम महसूस होती है।	आराम की स्थिति में भी पीड़ा होती है।
६. बड़े जोड़ों से आरम्भ होता है।	पैरों के अंगूठे से आरम्भ होता है।

आमवात	तीव्र अस्थि मज्जा शोथ
१. सम्पूर्ण देह की जोड़ें आक्रान्त होती है।	इसमें ऊर्वस्थि तथा अन्तर्जंघास्थि का निचला भाग आक्रान्त नहीं होता।
२. सन्धिशूल आवश्यक।	सन्धिशूल नहीं होता। एक ही सन्धि प्रभावित होती है।

आमवात	सन्धि प्रदाह (Osteo Arthr tis)
१. यह बड़ी सन्धियों का रोग है।	यह छोटी सन्धियों का रोग है।
२. चिरकारी रोग नहीं है बार-बार आ सकता है।	यह चिरकारी रोग है।
३. ज्वर आवश्यक है।	ज्वर रहना आवश्यक नहीं है।

आमवात	पूयमयता.
१. सदा शीत नहीं मालूम होता।	सदा शीत मालूम होता है।
२. पीड़ा भ्रमणशील होती है।	पीड़ा भ्रमणशील नहीं होती।

आमवात	पूयमेहजन्य शोथ
१. पूर्ववृत्त आमवात का।	पूर्ववृत्त आवश्यक है जो रोग बताता है।
२. मूत्र मार्ग में प्रदाह नहीं।	मूत्र मार्ग में रक्त स्राव, प्रदाह।
३. सन्धिशूल मात्र।	सन्धिशूल के साथ पार्श्ववर्ती धातुओं के विकार
४. ज्वर तेज तथा और अधिक।	ज्वरादि मृदु।
५. सन्धिशूल अधिक।	विकृत सन्धियां अल्प।

इस रोग में स्पष्ट लक्षण ये हैं जिनसे यह रोग पहचाना जा सकता है—

(१) एकाएक शीत के साथ ज्वर का आक्रमण साथ ही सन्धि पीड़ा, देह के पसीने में खट्टी गन्ध।

(२) परम्परागत आमवात का इतिहास।

(३) बार-बार रोग का आक्रमण।

(४) सोडा सेलिसलास से देने से रोग में शान्ति होना।

उपरोक्त लक्षणों के आधार पर रोग को पहिचाना जा सकता है।

रोग चिकित्सा न कराने पर १॥ मास में स्वयं ठीक हो जाता है। परन्तु इसके कारण हृदय में कुछ खरावी आ ही जाती है। इस का पुनरावर्तन हो जाया करता है। कभी-कभी उग्र दौरा होकर हृदय विकार, फुफ्फुसविकार हो जाया करते है। परन्तु पूर्ण चिकित्सा हो जाने पर ऐसा नहीं होता। इस रोग में मृत्यु संख्या २ से ३ प्रतिशत से अधिक नहीं होती।

चिकित्सा—

इस रोग में निम्न औषधियों का सेवन उपयोगी है—

(१) कैशोर गूगल (२) सिंहनाद गूगल (३) महारास्नादि क्वाथ अथवा रास्ना सप्तक क्वाथ (४) हिंगुलेश्वर रस (५) शुण्ठ्यादि क्वाथ (६) आमवात प्रमथिनी वटी (७) महायोगराज गूगल (८) सुवर्ण भूपति रस (९) अजमोदादि चूर्ण (१०) रसौन पिण्ड।

पाश्चात्य चिकित्सा में इसकी चिकित्सा सोडा सैलिसिलास ही है। सोडा सैलिसिलास २० ग्रेन + सोडावाईकार्व ४० ग्रेन। प्रत्येक ३ घंटे वाद तथा रात्रि में ४-४ घंटे वाद देना।

ऊपरी उपचार—

लिनिमेन्ट वैलाडोला तथा टिंचर ओपियाई लगाकर रूई रखकर पट्टी कर दे। स्वेदन भी लाभ करता है।

आयुर्वेदीय उपचार—इस रोग में लंघन, स्नेहन, स्वेदन तथा वस्ति लाभ देती है।

इस रोग में हृदय को पुष्ट करता रहे। एरण्ड स्नेह की वस्ति चमत्कार दिखाती है। तैल अधिक लाभ करता है।

ज्वर की तेजी को कम करने में मृत्युंजय रस लाभ करता है। शुद्ध भिलावा, तिल तथा हरड़ का चूर्ण गुड़ में गोली बनाकर देने से ३-३ दिन में ही आमवात मिटता है।

संधियों में अधिक वेदना होने पर कदली क्षार, अपामार्ग क्षार तथा यवक्षार ६-६ रत्ती घृत में देने से शूल शान्त होता है।

पथ्यापथ्य—

पथ्य—लंघन, स्वेदन, चरपरे, कटु, दीपन, विरेचन, स्नेहन, निरूह वस्ति, रूक्ष स्वेद, लेप, विन्टरग्रीन तैल, सूठ, मिरच, पीपल, अजवायन, हीग, हल्दी आदि।

अपथ्य—दही, मछली, गुड़, पोई का शाक, उड़द, पिष्टी पदार्थ, आनूप देशीय जीवों का मांस, अभिष्यन्दी, गुरू, पिच्छिल भोजन, दुष्टजल, शीतल वायु तथा जल, वेगावरोध, स्नान हानिकर हैं।

रोग की उग्रावस्था में तो रोगी को आराम करना ही है। ठीक होने के वाद भी काफी समय तक पथ्य से रहना आवश्यक है अन्यथा रोग का पुनरावर्तन हो जावेगा जो अति भयंकर होगा। इस रोग के जितने अधिक दौरे पड़ें उतना ही रोग भयंकर हो जाता है तथा हृदय को आघात पहुंचाता जाता है। जो अपनी उग्रावस्था में मारक भी हो सकता है।
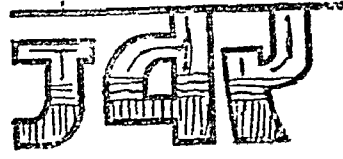
डा० (मिस) कमला पाण्डेय
राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार)।

सूतिका ज्वर के निम्न कारण—

(१) अधारणीय वेगों को रोकना (२) रूक्षता (३) व्यायाम, (४) रक्त का अत्यधिक क्षय, (५) शोक, (६) अग्नि के सन्ताप से, (७) कटु, अम्ल और उष्ण पदार्थों का अति सेवन, (८) गुरु और अभिष्यन्दी (स्रोतोरोध करने वाला भोजन, (९) स्तन्य का प्रवृत्ति, (१०) ग्रह पीड़ा, (११) अजीर्ण (१२) प्रसव सम्यक न होना।

यह जीवाणुजन्य व्याधि है। इसमें रोगोत्पादक जीवाणु व्रण या अन्य किसी मार्ग द्वारा शरीर में प्रविष्ट हो। सर्व प्रथम ताप के लक्षण प्रकट करते हैं। जीवाणु पूय की उत्पत्ति कर लक्षण विकार उत्पन्न करते हैं। उस समय सर्वप्रथम ताप के लक्षण उत्पन्न होते हैं। सूतिका शीत का अनुभव करती है। मस्तिष्क में वेदना, अंगों जाड़यता, मुख में विरसता, बेचैनी, नाड़ी और हृत्स्पन्दन की द्रुतगति होने लगती है। निद्रा का अधिक आना, जिह्वा का जलिन होना, कोष्ठवद्धता आदि इसके लक्षण है।

ज्वरों के लक्षण काश्प के अनुसार निम्न हैं—

(१) वातज ज्वर लक्षण—संताप का विषम (कभी अधिक कभी कम) होना, अंगमंद, जृम्भा रोमांच, मुख का स्वाद कषाय या विरस (स्वाद हीन-फीका) होना, शीत से द्वेष उष्ण की इच्छा, दंत हर्ष, प्रलाप, उद्गार, निद्राल्पता, आध्मान, अंगों में सङ्कोच।

(२) पित्तज ज्वर लक्षण—तृषा, दाह, प्रलाप, वमन, मुख का स्वाद कटु होना, चेहरा, नस, दन्त, नेत्र, मल और मूत्र का पीत वर्ण होना, कंठ का शोष, मारा शरीर जलता हुआ प्रतीत होना भ्रम, शीतेच्छा ?

(३) कफज ज्वर—उष्ण, की इच्छा कास, शिरःशूल, गुरु मांसता, संताप कम होना, प्रतिश्याम, मल-मूत्र श्वेत वर्ण होना निद्रा, तन्द्रा, शीत द्वेष, ष्ठीवन, मु स्वाद मधुर होना, शरीर में थकावट प्रतीत होना, अन्न द्वेष।

(४) सन्निपात के लक्षण—कभी शीत दाह की प्रती ताप, कभी सम कभी विषम होना, वातमूत्र पुरीष क कठिनाई से प्रवृत्ति, वायु से अंगों में वेदना, पित्त दाह, तृष्ण प्रलाप और चित्त का विक्षिप्त पागल (जैसा) होना, क से गौरव, कंठ का रुंध जाना, शीत की प्रतीति होना।

(५) स्तन्य ज्वर (स्तन्यगमोत्थ ज्वर) लक्षण—प्रस के तीसरे या चौथे दिन स्तनों में दुग्ध पूर्ण रूप से भ जाता है और उसका निष्क्रमण शिशु के दुग्धपान की वक्र माता या अन्य कारण जैसे शिशु मृत्यु आदि से नहीं हो पाता। उधर दुग्ध वाहिनियों में निरन्तर दुग्ध आता रहता है ऐसी दशा में स्तनों के अन्य निम्न प्रान्तों में भरक धीरे धीरे कठोर होकर ग्रन्थियों का रूप धारणकर लेता है जिससे माता को अत्यन्त बेचैनी, त्वचा में, खिचाव, स्पर्श में अत्यन्त पीड़ा, हृदय कुक्षि पार्श्व कटि और शिरःशूल होता है और ज्वरोत्पत्ति हो जाती है।

चिकित्सा—

१—गर्म जल से स्तनों पर स्वेदन करना चाहिए।

२- दुग्धाकर्षण यन्त्र से दुग्ध निकाल देना चाहिये। नहीं तो माता में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

३—दशांग लेप या नालुका लेप का धृत मिश्र प्रलेप कराना चाहिए।

४—१०८ बार धोये गोघृत में मुरदारसंग कपड़ छान पीस कर मिलाकर लेप करना चाहिए।

५—विशेष प्रवाही मूत्रोत्पादक द्रव्यों का प्रयोग बन्दकर देना चाहिए।

८—दुग्धोत्पति की कमी के लिये इस्ट्रोजिन जैसे द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

९—ज्वर हर प्रताप लंकेश्वर, श्रृंग भस्म, संजीवनी, त्रिभुवन कीर्ति सुदर्शन चूर्ण आदि का तथा स्तन्य शोधक, पाठादि चूर्ण आदि योगों के प्रयोग से रोग ठीक हो जाता है।

ग्रह बाधा जनित ज्वर लक्षण –

इसे भूताभिषंगज या आगन्तुज भी कहते हैं। आधुनिक में सूतिकोपसर्गज ज्वर (Septic Or Puerperal Fever) कहते हैं। ग्रहों के अवलोकन से, श्रम से, वायु से, आघात से, कम्पन से, प्रसूता स्त्री में ज्वर होने पर शरीर में कंपकपी, अंगों में पीड़ा, नेत्र विभ्रम, श्रम, (थकान) हाथ व नेत्रों का कांपना, मुख व नेत्रों का हारिद्र वर्ण (पीला होना) क्षण भर में अंगों का श्याम होना पुनः क्षण भर में प्राकृत वर्ण हो जाना, चिल्लाना, बाल नोंचना ये ग्रहोत्थ ज्वर के विशेष लक्षण हैं। आधुनिक सम्प्राप्ति के अनुसार यह रोग प्रसव के पूर्व, मध्य या पश्चात काल में गर्भ स्राव, पात अथवा पूर्ण प्रसवकाल में जीवाणुओं के प्रवेश के कारण जनन मार्ग के कारण संक्रमित होने से होता है। उक्त संक्रमण से उत्पन्न होने वाली अवस्था को सूतिकोपसर्ग करते हैं।

सूतिकोपसर्ग का ज्वर प्रसव के बाद ७ घंटे से लेकर तीसरे या चौथे दिन तक हो सकता है। प्रायः शीतके साथ ज्वर का आक्रमण होता है जो क्रमः सोपान क्रम (Ladder Like) से कुछ दिनों में उच्चतम मर्यादा पर पहुंच जाता है। यदि ज्वर के साथ अतिसार, आध्मान और उदर के निचले भाग पर स्पर्शनाक्षमता हो उदरावरण शोथ की आशंका होती है। सप्ताहों तक बना रहने वाला ज्वर श्रोतग अन्तस्त्वक पाक अथवा सिरा शोथ होता है।

गर्भाशयान्तरावरण शोथ की दशा में ज्वर के साथ गर्भाशय बढ़ा हुआ मिलता है।

गलितगर्भाशयान्तर शोथ में (Putrid Endometritis)—

यह पीड़ायुक्त व पिलपिला प्रतीत होता है। गन्दे रक्त रञ्जित, दुर्गन्धित, सूतिका स्राव (Lochial Discharge) की मात्रा बढ़ी रहती है।

दूषित प्रकार में (Septic Endometritis)—गर्भाशय न उतना मृदु रहता है न स्राव में उतनी दुर्गन्ध रहती है। सूतिका स्राव बढ़ सकता है परन्तु बहुत सी रुग्णाओं में इसकी मात्रा कम भी हो जाती है या पूर्णतया अभाव हो जाता है।

जीवाणुमयता की अवस्था गम्भीर होती है। उपसर्ग के रक्त द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलने पर विषमयता के तीव्र लक्षण मिलते हैं। पूयमयता में दूरस्थ विभिन्न अङ्गों में विद्रधियां भी बनती हैं। ज्वर के साथ नाड़ी की तीव्रता व बेचैनी भी बढ़ती है। कभी-२ ज्वर का पूर्णतया अभाव भी मिलता है। कई बार निर्ज्वर अवस्था में भी नाड़ी की गति तीव्र मिलती है। कुछ रुग्णाओं में दो दिन के भीतर ही ज्वर प्राकृत हो जाता है। उपरोक्त विकृतियों में शिरा शोथ (Thrombo-Phlebitis) अपने स्वरूप के कारण विचित्र प्रकार का दिखलाई देता है। यह शोथ रक्त के उपसृष्ट थक्के के शिराओं में पहुंचने से होता है। शोथ का प्रसार बीज कोषानुगा व अधिश्रोणिगा शिराओं से होकर अधो महाशिरा में अथवा नीचे और्वी (Femoral) तथा अधोगा (Saphenous) शिराओं से हुआ बढ़ता है। रोगिणी का पूरा पैर श्वेत चमकीला तथा कफज शोथ से युक्त ठोस सा प्रतीत होता है दबाने से गड्ढा नही पड़ता। इस कफज शोथ को श्वेत बाद (White Leg or Phlegmasia-Albadolens) भी कहते हैं।

चिकित्सा—

१-प्रतापलंकेश्वर रस (यो.र.) २४० मि.ग्रा., संजीवनी १० मि. ग्रा., शुद्ध टंकण १२० मि. ग्रा.। १×३ प्रातः दोपहर सायंकाल आद्रक रस व मधु से लें।

२-देवदार्वादि क्वाथ ८ तो. / १ मात्रा-प्रातः लें।

३-सौभाग्य वटी २४० मि. ग्रा. / १×२

४-दशमूलारिष्ट (क०) २० मि.ली. १×२ सौभाग्यवटी खाकर। सम जल मिलाकर दशमूलारिष्ट पियें।

५-सूतिका दशमूल तेल मालिश के लिए प्रयोग करें।

—शेषांश पृष्ठ २९३ पर देखें।

सूतिका ज्वर

कविराज श्री राजेन्द्रप्रकाश आ० भटनागर बी० ए० भिषगाचार्य (स्वर्णपदक प्राप्त), आयुर्वेदाचार्य एच० पी० ए०। प्राध्यापक-राजकीय आयुर्वेद कालेज, उदयपुर (राज०
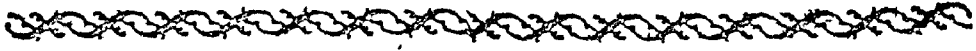
सूतिका रोगों में यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

'सर्वेषामेष रोगाणां ज्वरः कष्टतमोमतः।'

(का. सं. खिल ११)

क्योंकि यह सबसे अधिक पीड़ाकर होता है।

निज और आगन्तुज भेद से यह छः प्रकार का है— वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, स्तन्योद्भव और ग्रहोत्थ।

सडविधस्तु प्रसूतानां नारीणां जायते ज्वरः।
निजागन्तुविभागेन × × ×॥

इनमें से सन्निपातज ज्वर अत्यन्त भयंकर और दुश्चिकित्स्य होता है।

सन्निपातज्वरो घोरो जायते दुरुपक्रमः।

सन्निपात ज्वर के निम्न कारण हैं-

१ अधारणीय वेगों को रोकना २ रूक्षता ३ व्यायाम ४ रक्त का अत्यधिक क्षय ५ शोक ६ अग्नि का सेवन ७ कटु, अम्ल और उष्ण पदार्थों का अति सेवन ८ दिवास्वप्न ९ पुरोवात (पूर्व दिशा की वायु) १० गुरु और अभिष्यन्दी (स्रोतोरोध करने वाला) भोजन ११ स्तन्य की प्रवृत्ति, १२ ग्रहपीड़ा १३ अजीर्ण १४ प्रसव सम्यक् न होना।

लक्षण—६ प्रकार के ज्वरों के लक्षण काश्यप संहिताकार के अनुसार निम्न हैं-

(१) वात ज्वर के लक्षण-सन्ताप का विषम (कभी अधिक कभी न्यून) होना, अङ्गमर्द, जृम्भा, रोमांच, मुख का स्वाद कषाय या विरस (स्वादहीन-फीका) होना, शीत द्वेष, उष्ण की इच्छा, दन्तहर्ष, प्रलाप, सूखे उद्गार, निद्राल्पता, आध्मान, अङ्गों में संकोच।

(२) पित्तज्वर लक्षण—तृष्णा, दाह, प्रलाप, वमन, मुँह का स्वाद कटु होना, मुंह, नख, दन्त, नेत्र मल और मूत्र का पीतवर्ण होना, कण्ठ का शोष, सम्पूर्ण शरीर जलता हुआ प्रतीत होना, भस्म, शीतेच्छा।

(३) कफ ज्वर लक्षण—उष्णेच्छा, कास, शिरःशूल, गुरुगात्रता, संताप कम होना, प्रतिश्याय, मल मूत्र का श्वेत वर्ण होना, निद्रा, तन्द्रा, शीत द्वेष, ष्ठीवन, मुख का स्वाद मधुर होना, शरीर में थकावट प्रतीत होना।

(४) सन्निपातिक ज्वर के लक्षण—कभी शीत, कभी दाह की प्रतीति, ताप कभी सम, कभी विषम, वात मूत्र पुरीष की कठिनाई से प्रवृत्ति, वायु से अङ्गों और अन्त्रों में वेदना (अभिघर्षण) की प्रतीति, पित्त से दाह, तृष्णा, प्रलाप और चित्त का विक्षिप्त (पागलपन जैसा) होना, कफ से गौरव, कण्ठ का रुंध जाना, शीत की प्रतीति होना।

(५) स्तन्यागमोत्थ ज्वर—इसका वर्णन विशेष रूप से पृथक करेंगे।

(६) ग्रहोत्थ ज्वर लक्षण-ग्रहों के अवलोकन से, भय से, वायु से, आघात् से, कम्पन से, प्रसूता स्त्री में ज्वर होने पर, शरीर में कम्पकपी, अङ्गों में पीड़ा, नेत्र विभ्रम, श्रम, हाथ व नेत्रों का कांपना, मुख व नेत्रों का हारिद्रवर्ण (पीला) होना, क्षण भर में अङ्गों का श्याम होना, पुनः क्षण भर में प्राकृत वर्ण हो जाना, पूर्ण संज्ञावान् हो जाना (सुप्रबोध) चिल्लाना, बाल नोचना, ये वात ज्वर के लक्षण विशेष है।

स्तन्यागमोत्थ ज्वर—

तृतीयेऽह्नि चतुर्थेवा नार्याः स्तन्यं प्रवर्तते।
पयोवहानि स्त्रोतांसि संवृतान्यभिघट्टयेत्॥
करोति स्तनयोः स्तम्भं पिपासां हृदयद्रवम्।
कुक्षि पार्श्वे कटिशूलमङ्गमर्द शिरोरुजाम्॥
सतत् स्तन्यागमोत्थस्य ज्वरस्योक्तं स्वलक्षणम्।
सहि पीयूष संशुद्धौ क्रममात्रेण तिष्ठति॥

(का. सं. खिल ११/६३-६५)

प्रसव के अनन्तर तीसरे या चौथे दिन स्त्री के स्तनों में स्तन्य की प्रवृत्ति होती है। उस समय स्तन्यवाही स्रोतों के संकुचित होने से उत्पन्न होने वाला स्तन्य उनको पीड़ित करता है जिससे स्तनों में जकड़ाहट, तृष्णा, हृदय द्रव (धड़कन) कुक्षि, पार्श्व, कटिशूल, अङ्गमर्द, शिरःशूल ये लक्षण होते हैं। दुग्ध की शुद्धि होने पर क्रमशः ज्वर ठीक हो जाता है।

प्रारम्भिक तीन चार दिन तक स्तनों से निकलते वाला दूध गाढ़ा होता है। उससे स्तन्यवाही स्रोत उपलिप्त हो जाते हैं। पूर्व से ही स्रोतों का मार्ग संकीर्ण होने से स्तन्य का मार्ग रुक जाते हैं। परिणामस्वरूप स्तन कठिन और शोथमय हो जाते हैं। तनाव, खिचाव और पीड़ा के कारण हल्का सा ज्वर हो जाता है। यह विना चिकित्सा के ही चार पांच दिन वाद शान्त हो जाता है।

चिकित्सा सूत्र—

उपर्युक्त ६ प्रकार के ज्वरों में से केवल वातज, पित्तज, कफज और ज्वरों की चिकित्सा का वर्णन नीचे करेंगे। ग्रहोत्थ ज्वर में ग्रह नाशक उपचार और वातज ज्वर की चिकित्सा हितकर होती है। (विधिग्रहघ्नोऽस्य ... क्रमोयश्चानिलज्वरे।) स्तन्यागमोत्थज्वर स्तन्य की शुद्धि होने पर क्रमशः स्वयं ही शान्त हो जाता है।

सूतिका ज्वर में वात और कफ दोषों की प्रधानता होती है। अतः चिकित्सा क्रम भी तदनुसार भिन्न होता है।

(१) कफ प्रधान होने पर लङ्घन और (२) वात प्रधान होने पर शमन उपचार करना चाहिये।

इसी प्रकार आहार क्रम में भी अन्तर होता है—

(१) कफ प्राधान्य में लङ्घन कराने के वाद मण्डादि क्रम से और—

(२) वात प्रधान्य में शमन कराने पर पेयादि क्रम से उसी दिन प्रसूता को भोजन देना चाहिये।

> श्लेष्माभिष्यन्दिनीं स्थूलामक्लिन्नांमल्पनिःस्रुताम्।
> विदग्धभक्तां स्निग्धां च लङ्घनेनोपपादयेत्॥
> रूक्षां निस्रुतरक्तां च कृशां वातज्वरादिताम्।
> क्षुतृष्णाभिहतां क्लान्तां शमनेनोपपादयेत्॥
> तस्यातस्तदेहरेवेह पेयादिः क्रम इष्यते।
> लङ्घितायाश्च मन्डादिरित्येष द्विविधः क्रमः॥

(का. सं. खिल. ११/७०-७२)

पेया—अग्नि को प्रदीप्त करती है तथा धातुओं का शमन करती है।

मण्ड—गर्भ के अवशिष्ट दोषों को नष्ट करता है तथा दोषों का पाचन करता है। अतः आहार क्रम में सर्व प्रथम पेया या मंड दिया जाता है। इसके वाद दो या तीन वार दिन तक अकृत और कृत यूप (निरामिष भोजी हेतु) या मांस रस (आमिष भोजी हेतु) देना चाहिये।

(का. सं. खिल. ११/७५-७४)

'सिक्थकै रहितो मण्ड पेया सिक्थसमन्विता।'

(सु. सू. अ. ४६)

ज्वरघ्न उपाय—स्वेद युक्तिपूर्वक अपतर्पण, पाचन, औषधि सेवन, कषाय, अभ्यङ्ग और घृत ते ६ उपाय उत्तम ज्वर नाशक हैं। अतः सूतिका ज्वर में पथ्य है।

ज्वरवर्द्धक उपाय—शीत (शीतल जल आदि वस्तुओं का सेवन या शीतल वातावरण में रहना), उपवास, व्यायाम, परिश्रम, अहितकर भोजन, ज्वरोत्पादक हेतु का सेवन ये ६ भाव ज्वर को बढ़ाते हैं। ये सूतिका ज्वर में अपथ्य है।

(का. सं. खिल ११/७५–७६

अव ज्वर में शोधन और शमन चिकित्सा का अवस्थिक क्रम वताते हैं—

शोधन चिकित्सा–प्रसूता में शोधन कर्म नहीं कारना चाहिये। तीक्ष्ण औषधियों का प्रयोग भी निषिद्ध है। क्योंकि ज्वर की ऊष्मा से संतप्त शारीरिक धातुओं का तीक्ष्ण औषधियों से अधिक पाक हो जाता है। फिर भी अवस्था विशेष (आययिक स्थिति) में मृदु वमन व नस्य दिया जा सकता है।

कफज ज्वर में हृदय में उत्क्लेश होने पर, वक्ष में कफ संचित होने पर तथा शरीर सहनशील (बलवान) होने पर मृदु वमन देना चाहिये। अरुचि, कण्ठरोध, शिरोगत कफ होने पर और कवल का प्रयोग शक्य न होने पर नस्य वरतें।

शमन चिकित्सा—संसर्गित दोषों के पक जाने पर और ज्वर के मृदु हो जाने पर कषाय (क्वाथ) पान कराया जाय। पांच या सात दिन वाद पाचनीय कषाय और पांच या सात सप्ताह वाद अनुलोमिक मलमूत्रादि को अनुमोलन करने वाला कषाय पिलाया जाय।

कफज और पित्तज ज्वर में पांचवें दिन शमन औषधि का प्रयोग करें। पित्त की स्वाभाविक तीक्ष्णता, धातुओं की दुर्बलता और रोग के कुछ निकल जाने के कारण इस ज्वर में अल्पकाल में ही दोषों का परिपाक हो जाता है।

वात ज्वर में अभ्यङ्ग और मांस रस के भोजन से शान्त हो जाने पर तथा पक्वाशय स्थित दोष (वायु) के शुद्ध हो जाने पर अनुलोमन कराना चाहिये। फिर लघु अन्न पतले जांङ्गलमांस रस के साथ खिलायें।

उपर्युक्त उपचार से वातज और पित्तज (या द्वन्द्वज, वातपित्तज) ज्वर शान्त न होने पर घृत का प्रयोग करें। जठराग्नि के शुद्ध होने पर और व्याधि के मन्द पड़ जाने पर दुष्प्रजाता की व्याधियां स्नेह से ही शान्त होती है। सन्निपातिक ज्वर में वायु प्रबल होने पर मांस रस या यूष के साथ पुराना घी पिलावें।

योग—शरीर की धातुओं के तीक्ष्ण और निःसार होने से सूतिका रोगों में वायु प्रकोप की प्रधानता होती है—

वायोर्धातुंक्षयात् कोपो मार्गस्यावरणेन च।
देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली॥
करोति विविधान व्याधीन सर्वाङ्गकङ्गसंश्रयान्॥
—मा० नि०

अतः सामान्यतया वातनाशक उपचार करने का विधान है।

'सूतिका रोग शान्त्यर्थं कुर्याद वातहरी क्रियाम्।'

कल्प की दृष्टि से क्वाथ, तेल और रसयोग इसमें अधिक उपयोगी हैं। क्वाथों का प्रयोग कोष्ण रूप में किया जाता है अतः प्रायः वात कफशामक होते है। सूतिका रोगों विशेष कर सूतिका ज्वर में दशमूलक्वाथ, सहचरादि क्वाथ, सूतिकादशमूल क्वाथ, अमृतादि क्वाथ और देवदार्वादि क्वाथ का प्रयोग किया जाता है। इनमें देवदार्वादि क्वाथ उत्तम है (कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम्) यह वात पित्त कफ से उत्पन्न तथा प्रलाप, तृष्णा, दाह, तन्द्रा, अतिसार, वमन से युक्त सूतिका रोग में लाभकर है। इससे शूल, कास, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, शिरः शूल भी शान्त होते है। पित्तानुबन्धन होने पर अमृतादि क्वाथ देना चाहिये। कफाधिक्य होने पर सहचरादि क्वाथ या दशमूल हितावह होता है। वात प्रधान होने पर सूतिकादशमूल क्वाथ या केवल दशमूल क्वाथ का प्रयोग करना चाहिये।

तेलों का प्रयोग प्रायः अभ्यङ्गार्थ किया जाता है। सूतिकादशमूल तेल, नारायण तेल का उपयोग कर सकते है. यह भी वातशमन करता है। अतिसार और संग्रहणी की दशा में सौभाग्य शुण्ठी, पंचजीरक गुड़ या जीरकादि मोदक का प्रयोग किया जाता है। इससे अन्नवह स्रोत को बल मिलता है, अग्नि वृद्ध होती है और स्तन्यप्रवृत्ति बढ़ती है। ये सब अवलेह-योग है। इनसे वायु का अनुमोलन भी होता है।

सूतिका रोग की प्रताप लंकेश्वर रस अव्यर्थ औषधि है। यह सब प्रकार के सूतिका रोगों में प्रयुक्त होता है। इसमें वत्सनाभ होने से स्वेदल व ज्वरघ्न, चित्रकमूल या काली मिर्च के होने से दीपन पाचन तथा अभ्रक भस्म और लौह भस्म होने से बल्य, रक्त पोषक, श्वासकास में लाभप्रद है। इसके अतिरिक्त सूतिकारि रस, सूतिकाघ्नरस, सूतिका हर रस, रसशार्दूल, महाभ्रवटी, सूतिकान्तकरस, सूतिका भरण रस, सूतिका वल्लभरस भी है। इनका आवस्थिक प्रयोग किया जाता है। सूतिका विनोद रस में तुत्थ त्रिकुट होने से उदर सम्बन्धी विकार जैसे शूल, विष्टम्भ, अजीर्ण के साथ ज्वर में लाभप्रद है। सूतिकारस ताम्र योग है अतः शोथ में देना चाहिये। अतिसार, संग्रहणी, अग्निमांद्य की उपस्थिति में सूतिकान्तक रस, सूतिकाघ्नरस और सूतिकाहर रस विशेत उपयोगी है। रसशार्दूल और महाभ्रवटी में अभ्रक ताम्र और लौह की भस्म, संखिया के योग तथा हरताल या मनः शिला का योग होने से पाण्डु (रक्ताल्पता) कास, अङ्गमर्द और ज्वर में बहुत प्रशस्त है। सोफ के साथ साथ प्लीहावृद्धि होने पर सूतिकारि रस द्वितीय देना चाहिये। भयंकर संग्रहणी या अतिसार होने पर सूतिका वल्लभ रस या वृ० सूतिका वल्लभ रस सर्वोत्तम है। वातिक लक्षणों की प्रधानता, धनुर्वात होने पर सूतिका भरण रस या चतुर्मुख रस दे। यह अच्छा लाभ करता है। सूतिका रोग में अग्निमांद्य, संग्रहणी और अतिसार होने पर जीरकाद्यरिष्ट भोजनोत्तर देना चाहिए। शोथ, शूल ज्वर मे दशमूलारिष्ट विशेष प्रयोज्य है।

व्यवहार में सूतिका रोग की दो मुख्य अवस्थायें मिलती हैं तीव्र और जीर्ण। उपयुक्त समस्त चिकित्सा तीव्र रोग में उपयुक्त है। जीर्णावस्था में बल, मांस और अग्नि

क्षीण हो जाने से इसमें क्षयरोग के समान उपचार करना चाहिये। इसमें सुवर्ण और मुक्ता के योग अधिक उपयोगी हैं। सूतिकारि रस द्वितीय, वसन्तमालती, मृगाङ्क रस, मकरध्वज (पूर्ण चन्द्रोदय रस), मुक्ता पंचामृत, अभ्रक भस्म आदि। क्योंकि जीर्णावस्था में मन्दज्वर, अग्निमांद्य, शोप और क्षीणता विशेष रहती है। अभ्यंगार्थ शतावरी तेल (शा० सं०), चन्दनवला लाक्षादि तेल (यो० र०) वला नारायण तेल का प्रयोग उत्तम।

सूतिका रोग में पथ्यापथ्य—

पथ्य—(१) उपक्रम—लङ्घन, मृदुस्वेद, गर्भकोष्ठ शुद्धि (douche), अभ्यंग, तेलपान।

आहार—कटुतीक्ष्ण उष्ण पदार्थों का सेवन, दीपन, पाचन, मधु, शाली और साठी चावल, कुलथी, लहसुन, संहिजना, बैंगन, कच्चीमूली परवल, बिजौरा नींबू, ताम्बुल, खट्टे-मीठे दोनों प्रकार के अनार।

सामान्य—समस्त कफ वातशामक आहार। सात दिन के वाद कुछ वृंहण और १२ दिन के वाद मांस का सेवन।

इस प्रकार के आहार आदि की यन्त्रणा (प्रतिबन्ध) १॥ माह बीत जाने पर छोड देनी चाहिये।

रसयोग

(१) प्रतापलंकेश्वर (वंगसेन)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ, अभ्रक भस्म १-१ भाग, कालीमिर्च ३ भाग, लौह भस्म ४ भाग, शङ्ख भस्म ७ भाग वन्योपल की राख १६ भाग। निर्माण विधि—सब को मिलाकर रख लें। मात्रा—३ से ६ रत्ती, दिन २ या ३ वार, आर्द्रक स्वरस और तुलसी के रस के साथ।

उपयोग—प्रसूता का सन्ताप, उन्माद, कास, शिरःशूल, वमन, कफदोष, आध्मान, दांतभिचना, गृध्रसी, धनुर्वात, प्रतिश्याय, शूल, त्रिदोष, अतिसार।

विशेष—कुछ लोग काली मिर्च के स्थान पर चित्रकमूल मिलाते हैं। यह योग गर्भाशय के दूषित रक्त को बाहर निकाल कर उसे निर्मूल करता है। विशेषकर वात और कफजन्य सूतिका रोगों में लाभदायक है। शंख भस्म से उदर विकार शान्त होते हैं।

(२) सूतिका विनोद रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध तुतिया प्रत्येक समान भाग। भावना—प्रथम ३ दिन जम्बीरी निम्बू के स्वरस से घोटें। पश्चात त्रिकटु क्वाथ से ३ वार भावना देवें। फिर २-२ रत्ती की गोलियां वना लें। मात्रा—२ से ४ रत्ती शहद से प्रातः सायं। उपयोग—गर्भिणी का शूल, विष्टम्भ, ज्वर, अजीर्ण रोग।

(३) सूतिकारि रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कृष्णाभ्रक भस्म १-१ भाग, ताम्रभस्म १/२ भाग। भावना—मण्डूकपर्णी का स्वरस। मात्रा—२ से ३ रत्ती, अनुपान—आर्द्रक स्वरस।

उपयोग—सूतिका का ज्वर, तृष्णा, अरुचि, शोथ, अग्निदीपक।

(४) रसशार्दूल—अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, लौह-कान्तपाषाण भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध टंकण, कालीमिर्च चूर्ण, यवक्षार, शुद्ध हरताल, त्रिफला चूर्ण, शुद्ध वत्सनाभ सभी समभाग। ७ वार नागर वेल के पान के स्वरस से भावना। मात्रा—२ रत्ती मधु।

उपयोग—ज्वर, कास, अंगमर्द, सूतिका रोग, शोथ।

(५) महाभ्रवटी—अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, लौह-भस्म, शु. गन्धक, शु. पारद, मैनसिल, शु. टंकण, यवक्षार, त्रिफला चूर्ण प्रत्येक ४ तोला, शु. वत्सनाभ ४ माशा।

भावना—ग्रीष्मसुन्दर (गूमा), अडूसा, नागरवेल पान का स्वरस। जब कुछ द्रवांश रहे तब मरिच चूर्ण १ पल मिलाकर रख लें। मात्रा—२ से ६ रत्ती। उपयोग—सूतिका रोग, शोथ, पाण्डु, सभी प्रकार के ज्वर में।

(६) सूतकारि रस (द्वितीय)—शुद्ध टंकण रससिन्दूर, शु. गन्धक, स्वर्ण भस्म, रजत भस्म, जायफल, जावित्री, लवंग, छोटी इलायची, धातकी पुष्प, कूड़ा की छाल, इन्द्र जौ, पाठा, काकड़ासिंगी, सोंठचूर्ण, अजवायन चूर्ण प्रत्येक समभाग। भावना—गन्धप्रसारणी स्वरस। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—प्रसारणी स्वरस या क्वाथ।

उपयोग—सूतिका रोग, जीर्ण ज्वर, शोथ, कास, संग्रहणी, प्लीहा वृद्धि।

सूतिका ज्वर चिकित्सा—

निम्न सिद्ध योग इसमें लाभप्रद है—

(१) देवदार्वादि क्वाथ—(शा. सं.)—देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनियां, हरड़, गजपीपल, छोटी कटेरी, गोखरू, जवासा, बड़ी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकड़ासिंगी, काला जीरा ये सब

द्रव्य समभाग लेकर सोलह गुना जल डालकर अष्टमांश (दुगुना) शेष रखें।

यह क्वाथ वात-कफज लक्षणों की प्रधानता में विशेष उपयोगी है। शूल, कास, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प और शिरःशूल को नष्ट करता है।

(२) वलादि तेल—(शा. सं.) प्रसूता के बात रोगों में अभ्यंग और पान के रूप में प्रयोग करें। इस तैल का निर्माण निम्न प्रकार से किया जाता है—

तिल तेल १ भाग को क्रमशः आठ-आठ गुने (१) वलामूलक्वाथ से (२) दशमूलक्वाथ से (३) कुलथी जौ-बेर के मिलितक्वाथ (४) गोदुग्ध से चार बार पाक करने के बाद फिर जीवन्त्यादि द्रव्यों का कल्क १/४ भाग और जल ४ भाग मिलाकर पांचवी बार पाक करें। पाक सम्पन्न होने पर छान कर प्रयोग करें।

प्रसूताओं के अतिरिक्त यह गर्भिणी स्त्रियों, क्षीण वीर्य पुरुषों में भी लाभप्रद है।

(३) सूतिकादशमूल तेल—(भै. र.) घटक—कटु-तेल ४ सेर, क्वाथ के लिए शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी-कटेरी वड़ी कटेरी, गोखरू, झिण्टी, गन्धप्रसारिणी, गुडूची, सोंठ और नागरमोगा सम भाग लेकर मिलित १२॥ सेर, जल ५० सेर, अवशिष्ट १२॥ सेर. कल्क उपर्युक्त द्रव्य मिलित १ सेर। दुग्ध १६ सेर। सब मिला विधिवत पाक करें। ज्वर दाह युक्त सूतिका रोग में उपयोगी है।

(६) सूतिकान्तक रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, त्रिकटु चूर्ण, स्वर्ण माक्षिक भस्म, शुद्ध वत्स-नाभ समभाग। मात्रा—४ रत्ती मधु से। उपयोग—सूतिका रोग, संग्रहणी, अतिसार, कास, खांसी।

(८) सूतिका वल्लभ रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, स्वर्ण माक्षिक भस्म, अभ्रक भस्म, कर्पूर, स्वर्ण भस्म, रजत भस्म, शु. हरताल, शु. अफीम, जावित्री, जायफल।

भावना—मोथा, खरेंटी और शालमली मूल का स्वरस या क्वाथ। मात्रा—२ रत्ती।

उपयोग—समस्त सूतिका रोग, दुश्चिकित्स्य संग्रहणी, भयंकर अतिसार, दौर्बल्य, अग्निमांद्य, शीघ्र ही शरीर की पुष्टि, कान्ति, मेधा और स्मृति को बढ़ाता है।

(६) सूतिकाभरण रस—(यो. र.) सुवर्ण भस्म, रजत भस्म, ताम्र भस्म, प्रवाल भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, सोंठ, मिर्च, पीपल, कुटकी चूर्ण सभी समभाग में।

भावना—अर्कदुग्ध, चित्रकमूलक्वाथ, पुनर्नवास्वरस, टिकियां बनाकर गजपुट में दें। मात्रा—१/२ रत्ती।

उपयोग—सूतिका रोग, धनुर्वात, त्रिदोषज रोग।

(१०) जीरकाद्यरिष्ट—सफेद जीरा २ तोला, पाकार्थजल ८ द्रोण, शेष क्वाथ २ द्रोण, गुड़ ३ तुला, धातकी पुष्प चूर्ण १६ पल, सोंठ २ पल- जायफल १ पल, मोथा १ पल, दालचीनी १ पल, तेजपात, छोटी इलायची १ पल, नागकेशर १ पल, अजवायन १ पल, शीतल-चीनी १ पल, लवङ्ग चीनी १ पल। मात्रा—१ से २ तोला समान जल मिलाकर भोजनोत्तर देवें। उपयोग—सूतिका रोग, संग्रहणी, अतिसार, अग्निमांद्य।

(११) सूतिकादशमूल क्वाथ—शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, नीलझिण्टीमूल, गंध प्रसारणी, सोंठ, गिलोय, मोथा। ये सभी समभाग में।

उपयोग—ज्वर, हस्तिपादादि, सर्वाङ्गदाहयुक्त सूतिका रोग।

(१२) जीरकादि मोदक—सफेद जीरा ८ पल, सोंठ ३ पल, धनियाँ ३ पल, सौंफ १ पल, अजवायन १ पल, काला जीरा १ पल, दुग्ध २ प्रस्थ, खांड ५० पल, घृत ८ पल। प्रक्षेप-त्रिकुट ३ पल, त्रिजात ३ पल, विड़ंग १ पल, चव्य-१ पल, चित्रक १ पल, मोथा १ पल, लवंग १ पल।

नि० वि०—अजवायन पर्यन्त द्रव में घृत में भून लें। फिर दुग्ध मिलाकर गाढ़ा होने तक पका लें। खाँड की चाशनी में उसे डालकर अवलेहवत होने तक पकावें। फिप प्रक्षेप डालें। नीचे उतार मोदक बना लें।

मात्रा—६ माशा से २ तोला, मन्दोष्ण दुग्ध, जल से।

(१३) सौभाग्य शुंठि पाक—सोंठ ८ पल, गौघृत ८ पल, दुग्ध ४ प्रस्थ, खाँड ३० पल। प्रक्षेपार्थ—कशेरु, सिंघाड़ा, कमलगट्ठा, मोथा, सफेद जीरा, काला जीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, छैलछबीला, नागकेशर, तेजपात २-२ कर्ष, दालचीनी. कचूर, धाय के फूल, छोटी इला-यची, सौंफ, धनियाँ, गजपीपल, छोटी पीपल, कालीमिर्च, शतावरी, लौहभस्म, अभ्रक भस्म, प्रत्येक २ कर्ष। मात्रा—४ से ८ माशा। अनुपान-मन्दोष्ण दुग्ध। उपयोग—पाच-काग्नि बढ़ती है। सूतिका रोग, अतिसार, संग्रहणी।

अंशुघात : कारण-निवारण

श्री कविराज गिरिधारी लाल मिश्र M.Sc. (A) A.B.S.
आयुर्वेद वाचस्पति, साहित्य आयुर्वेद रत्न,
प्रधान चिकित्सक—केदारनाथ आयुर्वेदिक हास्पिटल तेजपुर (असम)
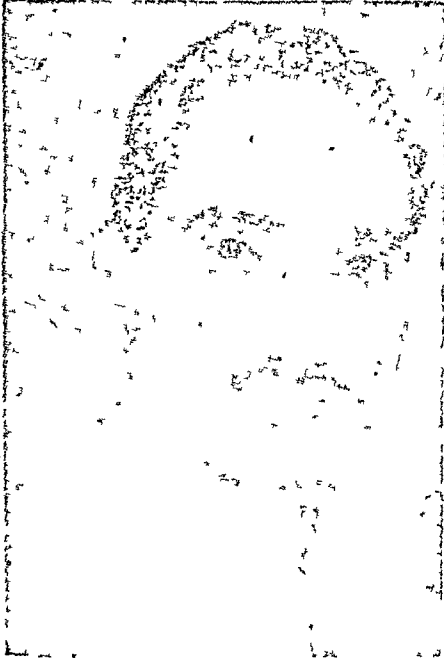
रोग नाम—अंशुघात, आतपाघात, ऊष्माघात, उष्ण-वातातप दग्ध, आतप ज्वर, Sun-stroke, Heat stroke, लू लगना।

ससन्दर्भ परिचय—अंशु सूर्य रश्मि का नाम है, अतः सूर्य की तीव्र किरणों के आघात से होने वाला रोग 'अंशुघात' है। Sun stroke का अर्थ सूर्य द्वारा आघात पहुंचना है। सूर्य अपनी किरणों द्वारा ही आघात पहुंचाता है इसलिए अंशुघात कहते हैं।

कारण—

देश—उष्ण कटिवन्ध देश, भारत में राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, विहार व विश्व के सभी गर्म राष्ट्रों में यह रोग पाया जाता है।

काल—इस रोग का आक्रमण काल ग्रीष्म ऋतु है।

पात्र—जो व्यक्ति ज्येष्ठ के महीने में बिना छाता, जूता, नग्न शरीर घूमते हैं।

लगातार धूप मे, इन्जनों में, टीन की छत वाले मकानों में कार्यरत रहते है, किसान लोग ज्येष्ठ की कडाके की धूप मे ईख के खेतों मे पानी देते रहते है उन्हें तथा गायें चराने वाले ग्वालों तथा कभी-कभी कैदियों व सैनिकों को भी यह रोग हो जाता है अतः ग्रीष्म ऋतु मे सूर्य की अत्यन्त तप्त किरणों के प्रभाव से शिर के अधिक तप जाने पर यह रोग हो जाता है—यथोक्तम्—

> चंडांशोश्चण्डकिरणैस्तप्ते मूर्घ्नि प्रजाग्ते।
> अंशुघातत्रिधो व्याधिर्देहिनां देहमर्दनः॥
> पादत्रच्छत्र हीनानां ग्रीष्मचंडांशु सेविनाम्।
> कारागार निवद्धानां सैनिकानाञ्च जायते।

ऊष्मा की उत्पत्ति और विनाश—शरीर मे चल रहे धातुपाक के परिणामरूप मे जो ऊष्मा उत्पन्न होती है वही शरीर के तापमान के रूप मे विद्यमान रहती है। वाहर सर्दी हो तो शरीर की ऊष्मा की उत्पत्ति बढ़ जाती है तथा गर्मी हो तो शरीर मे ऊष्मा की उत्पत्ति घट जाती। इसके लिए Hypothalamus मे एक ऊष्मा नियामक केन्द्र है जो अपने अन्दर आए रक्त के तापमान द्वारा प्रभावित होकर त्वचा में विद्यमान रक्तवाहिनियों तथा स्वेद-ग्रंथियों को नियन्त्रण में रखता है। फलतः जब वाहर का वायुमंडल शरीर की अपेक्षा अधिक शीतल होता है तब यह केन्द्र त्वचा की रक्तवाहिनियों में रक्त की मात्रा कम कर देता है तथा वाहर का वायुमंडल शरीर की अपेक्षा अधिक गरम होता है तब यह केन्द्र त्वचा की रक्तवाहिनियों को फैलाकर चौड़ा (Vasodilataion) कर देता तथा स्वेदग्रंथियों के कार्य को बढ़ा देता है। धूप में काम करने से वहुत सा रक्त मांसपेशियों में खप जाता है, त्वचा में रक्त कम पहुंचता है जिससे स्वेद कम हो जाता है। साथ ही धूप में श्रम करने से इतना स्वेद निकल जाता

रक्त में निर्जली भवन (Dehydration) हो जाता है और फिर स्वेद आना बन्द हो जाता तथा आतप ज्वर (Heat stroke) का आक्रमण हो जाता है। अत: व्यक्ति धूप में श्रम करने का अभ्यासी न हो तथा उसे प्रमुक्तरूप में विषम ज्वर भी रहता हो या दूसरे रोग के कारण हृदय और नाड़ी बल निर्बल हो, अतिसार के कारण शरीर में द्रव भाग कम हो या मद्य सेवन करता हो जिससे स्वेदोत्पत्ति कम हो या वायु मंडल का तापमान १०० फा. से १०४ फा. हो तो शरीर के अन्दर उष्मा बढ़ कर १०४ फा. तक हो जाती है और अंशुघात का आक्रमण हो जाता है।

पूर्वरूप—

रोग के प्रारम्भ में रोगी अचेत हो जाता है, उससे पूर्व मस्तिष्क में क्षोभ के लक्षणों के साथ शिर:शूल, वमन, हृल्लास, आक्षेप, भ्रम, रक्त नेत्र, नाड़ी की गति दुर्बल, त्वचा, शुष्क एवं उष्ण हो जाती है। रक्तचाप घट जाता है तथा ज्वर का तापमान बढ़ने लगता है।

लक्षण—

अंशुघात की तीन अवस्थायें (Stage) होती हैं—(१) शैत्यावस्था (२) सामान्यावस्था (३) तीक्ष्ण सन्तापावस्था।

सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के शरीर पर पड़ने से सन्तप्त सुषुम्नाकाण्ठ में स्थित तापकेन्द्र उत्तेजित होकर के ताप सन्चित करता रहता है जो समय पर रोग के लक्षण उत्पन्न करता है।

(१) शैत्यावस्था—सूर्य की तप्त किरणों के शरीर पर पड़ने से मानव रोगाक्रांत होने पर मूर्च्छित होकर गिर जाता है तथा नाड़ी की गति क्षीण व दुर्बल होजाती है। त्वचा विलन्नता एवं शीतलता से युक्त हो जाती है तथा तत्काल उचित चिकित्सा से मानव बच जाता है किन्तु उचित चिकित्सा न होने पर हृत्कार्यनिरोध (Heart failure) के कारण मृत्यु हो जाती है—

> अस्यां दशायां नहि जातु मृत्यु
> प्रदश्यते रोगीजस्यननम् ॥
> चिकित्सया जीवनमेव रोगी
> हृत्कार्यरोधान्तु लभेत् मृत्युम् ॥

(२) सामान्यावस्था—रोगाक्रान्त मूर्च्छित रोगी के शरीर का तापमान १०१ से १०२ तापांश तक बढ़ जाता है तथा शिर:शूल, वमन, हृल्लास, आक्षेप वेदना भ्रम, रक्तनेत्र तथा नाड़ी की गति दुर्बल क्षीण व तीव्र प्रभृति लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं तथा त्वचा शुष्क एवं उष्ण हो जाती है। श्वास की गति दुर्बल होजाने से हृदय अति दुर्बल हो जाता है तथा हृदय की गति रुककर मृत्यु होने का भय बराबर बना रहता है।

(३) तीक्ष्ण सन्तापावस्था—अचानक ज्वर का तापांश १०४ से ११० तक पहुँच जाता है तथा रोगी प्रलाप करने लगता है। श्वास की गति-तीव्र तथा शरीर का वर्ण नीला पड़ जाता है। यह एक गंभीर अवस्था है जिसमें रोगी बिना बताये मल-मूत्र विसर्जन कर देता है। पेशियों में बार-बार स्फुरण होने लगता है तथा अपस्मार जैसे आक्षेप आने लगते हैं एवं कुछ घण्टों सन्यास (Coma) की अवस्था होकर रोगी पञ्चत्व (मृत्यु) को प्राप्त होता है।

> तृष्णा तीव्रतरामूर्च्छा भ्रमश्चारक्तनेत्रता।
> हृल्लासो वमनं मूत्र वेगाऽथविषमाधरा ॥
> त्वचिरौस्थं स्पर्श हानिराक्षेपश्च प्रजायते।
> एव मद्यानिजायन्ते लक्षणानि विशेषतः ॥

अरिष्ट लक्षण—यदि हाथ पैर नीले पड़ जायं तथा नाड़ी क्षण क्षण में विलुप्त होती हो तब शरीर में आक्षेप हो तो ये अशुघाती के लिए मारक चिन्ह हैं—

> क्षणाद्विलुप्यते नाड़ी नीलत्वं हस्तपादयो।
> एवमद्यानि जायन्ते त्वक्षणानि विशेषत:।

आतप मूर्च्छा (Heat Cramps)—

जब कोई व्यक्ति तेज धूप में या इन्जन, भट्टी आदि के पास ऐसे वायु मण्डल में जहां तापमान ११५ फा० का या इससे भी ऊपर हो, काम करता रहता है तब उसका बहुत-सा रक्त त्वचा की रक्तवाहनियों की तरफ जाने लगता है ताकि स्वेद अधिक बन सके जिससे शरीर की बढ़ी हुई ऊष्मा बाहर निकल सके तथा २४ घण्टे में लगभग १४ लिटर तक पसीना निकल जाता है जिसके साथ २॥ ग्राम प्रति लिटर के हिसाब से लगभग ३५ ग्राम सोडियम तथा क्लोराइड भी निकल जाते हैं। यद्यपि स्वेद के अधिक निकलने से प्यास अधिक लगने लगती है और व्यक्ति अधिक पानी पीने लगता है पर अधिक पानी पीने से भी मूत्र यद्यपि कम ही निकलता है तथापि मूत्र के साथ भी लवण निकलता रहता है फलस्वरूप शरीर में जलीयांश की कमी होजाने से

रक्त गाढ़ा हो जाता है तथा मूत्र द्वारा अधिक लवण निष्कासन होजाने से लवण की कमी से हाथ पैरों, पिंडलियों तथा पेट पर विष्टम्भ (Crapms) होने लगते हैं। पहले अरुचि और वमन के लक्षण होते हैं। आंखें अन्दर धसी हुई एवं त्वचा शीतल गीली होती हैं, नाड़ी तीव्र रक्त भार कम होकर रोगी मूर्च्छित हो जाता है।

साध्यासाध्यता—

शैत्यावस्था में रोग साध्य होता है और सामान्यावस्था में भी तत्काल उचित चिकित्सा करने पर रोग साध्य हो जाता है किन्तु तीक्ष्ण सन्तापावस्था में रोग असाध्य हो जाता है फिर भी उचित चिकित्सोपचार परिचर्या से रोग यदि शान्त हो जाय तो भी रोगी कई महिनों या वर्षों तक धूप नहीं सहन कर सकता है तथा सामान्य धूप में भी शिरःशूल होने लगता है तथा मस्तिष्क की रक्षा के विषम हो जाने से अपस्मार आदि रोग हो जाते हैं। जब तक जन्तुओं की प्रत्यावर्तन क्रिया न होने लगे तब तक रोग के पुनराक्रमण का भय बना रहता है।

अतः रोग की तत्काल उचित चिकित्सा होने से सामान्यतया अंशुघात के प्रत्येक रोगी को बचाया जा सकता है पर अधोलिखित उपद्रव असाध्य है।

प्राणमांस, क्षय, श्वास, तृणाशोषवमी ज्वरैः।
मूर्च्छातिसार हिक्काभिः पुनश्चैतैरुपद्रुताः॥

चिकित्सा—

प्रतिरोधक उपाय—

धूप में काम करने वालों को थोड़ी प्यास लगने पर ही जल पीते रहना चाहिए यथा सिर, ग्रीवा, कटिभाग को धूप से बचाना चाहिए। अधिक प्यास लगने पर नींबू की सिकन्जी थोड़ा नमक डाल कर पीना अत्यन्त हितकर है। प्याज का सेवन भी अंशुघात से बचाता है। मद्य का प्रयोग सर्वथा निषेध रखना चाहिये तथा हमेशा पेट को साफ रखने का प्रयत्न करना चाहिये। जलजीरा, आम्रपानक एवं शीतल पेय (Cold drinks) का प्रयोग करते रहना चाहिए। पाचक चूर्णों में लवण अवश्य रहता है अतः इनको जो लोग समय पर लेते हैं उनको भी यह रोग नहीं सताता है।

चिकित्सा सिद्धान्त—

उष्णवातातपैर्दग्धे शीत कार्यो विधिसदा।
रक्तजायां तु मूर्च्छायांहितः शीतक्रियाविधिः॥

आतप ज्वर मे स्वेदावरोध वातवृद्धि का तथा अति ज्वर पित्तवृद्धि का सूचक है। अतः इस रोग की चिकित्सा में वायु और पित्त दोनों की चिकित्सा करनी चाहिए। बढ़े हुए पित्त में सर्व प्रथम पित्तकर्म की शांति के लिए शीत उपचार—शरीर को ठण्डा करना, पंखे की हवा देकर पानी छिड़क कर व शरीर पर बर्फ रगड़ व बर्फ के पानी एनिमा देकर व आचार्य सुश्रुतानुसार उत्पलादि शीत द्रव्यों के शीत कषायों में रोगी को गर्दन तक बैठाकर उसे मल कर स्नान कराना चाहिए। आतप विष्टम्भ (Cramps) में वात की शांति के लिये शीतल जल के साथ लवण देना चाहिए व लवणोदक को गुदा द्वारा देना चाहिए। प्याज का रस भी अत्यन्त उपयोगी है।

अंशुघात में कफ क्षीण और पित्त की आकस्मिक वृद्धि होकर अति तीव्र ज्वर तथा पिपासा होती है अतः स्वेदक्षय, कफक्षय, रसक्षय और मूत्रक्षय के साथ पित्त प्रकोप को दृष्टिगत रखते हुए चिकित्सा करनी चाहिए।

आचार्य डल्हण लिखते हैं—

इक्षु मांसरस मन्थं मधुसर्पि गुडोदकम्।
असृङ्मांस यवागुञ्च रसक्षीणऽभिवाञ्छति॥

अतः गुडोदक, मधूदक व मांसोदक, यवागु पिलाने का प्राचीन विधान व आधुनिक चिकित्सकों का ग्लूकोजवाटर व बार्लीवाटर पिलाना, नमक का जल चटाना, व मांसोदक व गुडोदक स्थान में ५ प्रतिशत डेक्स्ट्रोज नार्मल सलाइन मिली हुई बोतलें सिरा द्वारा १० से ३० बूंद प्रति मिनिट के हिसाब से चढ़ाने का विधान पूर्णतः आयुर्वेद सम्मत है। उष्ण देशों में बाजार में जलजीरा, गोलगप्पे खूब बिकते हैं क्योंकि जो लोग—गर्मियों में इनका प्रयोग करते हैं व भोजन के बाद नमक मिली हुई तक्रपान करते हैं उन्हें नमक की कमी नहीं हो पाती और लवण एवं जल निःशेषन आतप कष्टों से बचे रहते हैं। उसीर या खश का शर्बत व ठण्डाई पीना बड़ा लाभदायक है। राजस्थान जैसे उष्ण देशों में प्रातःकालीन जलपान में दही, मठा व मठा-राबड़ी में प्याज मिलाकर खाते हैं। इससे किसान लोग कड़ाके की गर्मी में भी काम करते रहते हैं। प्याज का प्रयोग अंशुघात में सर्वोपरि है। खीरा, ककड़ी, खरबूज, तरबूज भी गर्मियों में बहुत पैदा होते हैं तथा उष्ण प्रदेशों में विशेषत पैदा होते हैं तथा ऋतुचर्या के अनुसार जो

व्यक्ति उनका प्रयोग करता है वह अंशुघात से बचा रहता है।

अतः गर्मी की ऋतु में धूप में काम करने से पहले भोजन कम किया जाय तथा जलपान अधिक लिया जाय तथा जलपान में भी दही, मट्ठा में प्याज मिलाकर सेवन किया जाय तो तीव्र धूप के दुष्प्रभाव से बचा रह सकता है। तथा अंशुघात से सुरक्षित रह सकता है।

तत्काल करणीय चिकित्सा—

धूप या अग्नि के पास के गर्म स्थान से रोगी को तत्काल हटाकर छाया में चारपाई पर लिटा कर उसके पांयते को ऊंचा कर देना चाहिए। रोगी के वस्त्रों कमीज आदि का बटन खोलकर उतार दें तथा महीन सूती वस्त्र पहना कर उसका स्वेद पोंछ दें तथा सिर पर वर्फ के टुकड़े (Ice Bag) में भर कर रखें एवं गीले वस्त्र से सम्पूर्ण शरीर को आच्छादित करते हैं। अति तीक्ष्ण सन्तापावस्था में मूर्च्छा, रक्तपित्त नाशक, हृदय बलप्रद तथा तर्पण चिकित्सा (Cold Bath) देना श्रेयष्कर है। आज बड़े-बड़े आधुनिक होस्पिटलों में कोल्ड बाथ या हिप बाथ की उचित व्यवस्था रहती है अतः अति तीक्ष्णावस्था में रोगी को शीतल जल के भरे हुए पात्र में सिर को बाहर रखकर लिटादें तथा सहस्र धारा स्नान (Cold Shawar Bath) करना चाहिए।

पिपासा—प्यास की अधिकता में बार-बार अधिक जल न पिलावें बल्कि वर्फ के टुकड़े चूसने को देवें व चन्दन सिद्ध किया हुआ जल पिलावें। अमृतधारा ५ बूंद गुलाब जल में डालकर पिलावें व सौंफ का अर्क भी तृष्णा शमनार्थ देना हितकर है। जलजीरा, नींबू, सन्तरा, मौसमी आदि फलों का रस, ग्लूकोज, खांड, शहदयुक्त जल पिलाना चाहिए। द्राक्षा काश्मरीफल के क्वाथ में गुड़ मिलाकर देना तथा लवणोदक तथा प्याज का रस पिलाना चाहिए। शीतल जल में नमक डालकर पिलाना तथा वस्ति यन्त्र (कैथीटर) द्वारा नार्मलसलाइन को शीतल ही आंत डाल देना व (Isotonic Saline) में ५ % ग्लूकोज धीरे धीरे शिरा द्वाना देना चाहिए।

मूर्च्छा—रोगी को मूर्च्छा होने पर—मूर्च्छानाशक उपचार करना चाहिए। उसके मोटे कपडे को अत्यन्त गर्मपानी से भिगोकर निचोड़ देवें तथा कुछ बूदें तारपीन तेल की डालकर गर्दन पर बांध देवें तथा इसे तब तक बांधे रखो तब तक दाह का अनुभव न होवे। इस प्रकार शीघ्र मूर्च्छा दूर होती है।

मूर्च्छान्तिक रस—रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्णभस्म, शिलाजीत, लौह भस्म समभाग को शतावरी स्वरस की भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें तथा १-१ गोली मधु से चटाने से मूर्च्छा दूर हो जाती है।

रोगी को पानी से भरे हुए टब में बिठाकर पानी को रोगी के शरीर पर मलें। पानी में थोड़े वर्फ के टुकड़े डाल देने चाहिये। शीतोपचार से भी मूर्च्छा जाती रहती है। मूर्च्छावस्था में नार्मल सलाइन को शीतल ही आंत में डालना व नार्मल सलाइन को ५ % ग्लूकोज मिलाकर धीरे-धीरे शिरा द्वारा देना चाहिए। यदि रोगी को विषम ज्वर भी हो या पहले रहा हो तो क्विनीन हाइड्रोक्लोराइड १० ग्रेन का २५ मि. लि. नार्मल सलाइन में मिला कर शिरा में देवें।

स्वेद प्रयोग—उपरोक्त शीतोपचार से जब गुदा का तापमान १०२ डि. तक आ जावे तब शरीर को पोंछ कर और कम्बल को ओढ़ाकर उसे लिटा दें ताकि इसका रुद्ध हुआ स्वेद प्रवृत्ति, स्वेद की प्रवृत्ति को इस रोग में एक शुभ लक्षण माना जाता है। रोगी का सर्वाङ्ग शैत्य (Collapse) होने पर बालुकास्वेद करें व प्रज्वलित अङ्गारों की अंगीठी की गर्मी से शरीर को गर्म रखें।

अंशुघात और आम—मार्तण्ड की तीव्र किरणों से उत्पन्न होने वाले अंशुघात रोग में सूर्य की प्रचंड किरणों में परिपक्व होने वाला आम्रफल एक सात्म्य औषधि है तथा कच्चे आम को पकाकर प्रयोग करना अतीव हितकर होता है—

आम्र पानक—कच्चे आम को कंडों की अग्नि में भूनकर शीतल जल में छोड़ दें, जब शीतल हो जावे तब जल डालकर हाथ से मर्दन कर गुठली वल्कल अलग कर फिर मिश्री मिलाकर पानक बना लेवें। यह पानक ४-५ बार पिलाने से रोग के उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

आम का वाह्य प्रयोग—२-४ कच्चे आम को पकाकर शरीर पर मलने से दाह शान्त होती है।

शास्त्रीय सफल प्रयोग—

(१) जय मङ्गल रस—१-१ गोली मधु से चटाकर ऊपर से जलजीरे का पानी पिलाने से जटिल रोगी तीव्र ज्वरा-

वस्था में भी स्वास्थ्य लाभ करता है।

(२) महाशंख वटी—शरीर में लवण की कमी को पूर्ण करती है तथा जठराग्नि को सुधार कर पाचन क्रिया को सुधार कर पाचन रस की वृद्धि करती है।

(३) सौभाग्य वटी—अंशुघात के सभी उपद्रवों में उपयोगी औषधि है।

(४) चित्रकादि वटी—राजगुटिका—भी लवण योग हैं जो लवण पूर्ति कर अंशुघात में प्राण रक्षा करते हैं।

(५) लवण भास्कर चूर्ण, हिंग्वाष्टिक चूर्ण, अग्निमुख चूर्ण आदि प्रयोग भी हितकर हैं।

पथ्यापथ्य—

अन्नपानादिकं बल्यं सरं स्निग्धश्च पोषणम्।
हितंस्यादंशुघातिभ्यो विपरीतं विवर्जयेत्॥

अंशुघात के रोगियों को बलकारक, स्निग्ध, विबन्ध-नाशक, सुखपूर्वक मल को निकालने वाले पुष्टिकारक अन्न-पान पथ्य है। जब तक बल न आवे तब तक हितकर आहार और मन को प्रसन्न रखने वाले कार्य करने चाहिए तथा पर्वतीय स्थानों व शीत स्थानों में कुछ दिन तक रोग शान्त हो जाने पर ठहरना चाहिए। शीतल जल स्नान, शीतल जल पान, नारियल जल का पान, चन्दन लेप, चांदनी रात में नौका विहार, बर्फ का प्रयोग व लवण मय पदार्थ प्रयोग से रोगी स्वस्थ हो जाता है।

अपथ्य—मिथ्या आहार-विहार और अपथ्य सेवन प्राणघातक है तथा अपस्मार, उन्माद आदि रोग हो जाते हैं। धूम्रपान, धूप सेवन, गुरु पदार्थों का भोजन, मैथुन, दूषित जल, तीक्ष्ण पदार्थ अपथ्य है। अतः अपथ्य को त्याग कर पथ्यमय उपचार करने से रोगी रोगमुक्त होकर आरोग्यमय जीवन व्यतीत कर सकता है।

सूतिका ज्वर :: :: पृष्ठ २८३ का शेषांश

विशेष—

ज्वर की तीव्रता में सञ्जीवन के स्थान पर श्रीजय-मंगलरस दें। जीर्ण सूतिका रोग में पुटपक्व विषम ज्वरांतक लौह, वसन्त मालती अथवा वृ. सर्वज्वर हर लौह, वृ. सौभाग्य शुण्ठी का प्रयोग करें। बला तैल, शतावरी तैल, बला लाक्षादि तैल का भी अभ्यंग के लिये प्रयोग किया जा सकता है।

सूतिका दशमूल क्वाथ, दशमूल क्वाथ, अमृतादि क्वाथ, वातहर क्वाथ (शा.) का प्रयोग हितकर है।

रस योगों में सूतिकान्तक रस (भै. र.) सूतिकान्तक (र. सा.), महा सूतिका वल्लभ रस (भै. र.) सूतिका भरण रस (यो. र.) लक्ष्मी नारायण रस, सूतिका विनोद रस, (र. सा. स.) तथा सूतिकाहर रस (भै. र.) जीरका-द्यरिष्ट आदि औषधियों का भी प्रयोग कर सकते हैं।

जीवनीय, बृहणीय और मधुर द्रव्यों का सेवन हित-कर होता है। अग्निमांद्य हो तो पञ्चजीरक पाक (यो. र.) जीरकादि मोदक देना चाहिये।

जीर्ण सूतिका ज्वर की चिकित्सा—

१—प्रतापलंकेश्वर रस २ रत्ती, वसन्तमालती १रत्ती, मिश्र १ मात्रा। पीपर चूर्ण २ रत्ती मधु के साथ प्रातः ७ बजे दें।

२—दशमूलारिष्ट ४ तोला। २ मात्रा समभाग जल के साथ भोजनोत्तर दें।

३—अपर सूतिकारि रस २ रत्ती (र. सा. स.), वृ. सर्वज्वर हर लोह २ रत्ती, मिश्र १ मात्रा। शेफाली (हारसिंगार) की पत्ती के रस ३ माशा और मधु के साथ २ बजे सेवन करें।

४ सूतिकाघ्न १ रत्ती, मुक्तापञ्चामृत १ रत्ती, मिश्री १ मात्रा। अतीस चूर्ण ४ रत्ती और मधु के साथ साथ ६ बजे दें।

५—सूतिका दशमूल तैल—इसका अभ्यंग करायें।

विशेष—स्वर्ण वसन्त मालती के स्थान पर राज-मृगांक और नम्बर ३ व ४ में ऊपर अपर सूतिकारि रस और सूतिका रस के स्थान पर सूतिका भरण रस दे सकते हैं। संख्या ५ स्थान पर शतावरी तैल (शा. स) या चन्दन-बला लाक्षादि तैल यो, र. का प्रयोग कर सकते हैं। विशेष बढ़ने पर इसकी चिकित्सा क्षय रोगवत करनी चाहिए।

आतप ज्वर—एक विवेचन

आयुर्वेदाचार्य डा० वेद प्रकाश शर्मा त्रिवेदी, ए० एम० बी० एस०, एच० पी० ए०,
अ० रिसर्च आफीसर, अध्यक्ष—मानसिक चिकित्सानुसन्धान एकक, भारतीय काय चिकित्सा संस्थान, पटियाला।

इस ज्वर की प्रवृत्ति ग्रीष्म ऋतु (मई+जून में विशेषकर) पाई जाती है। यद्यपि माधव निदान में आतप ज्वर से अङ्कित नहीं है तथापि आगन्तुज कारणजन्य पैत्तिक लक्षणों से युक्त सहसा आक्रान्त करने वाला ज्वर है। यदि समय पर उपयुक्त चिकित्सा उपलब्ध नहीं हो सकी तो एक के बाद एक अवस्था अविलम्ब परिवर्तित होने लगती हैं। अन्ततोगत्वा हृदयातिपात अथवा सन्यास जन्य मृत्यु की स्थिति आ जाती हैं।

आतप ज़्वर के पर्याय—सामान्य बोलचाल में 'लू' लगना कहते हैं। चिकित्सा शास्त्रों में आतप ज्वर, अंशुघात, उष्माज्वर उष्मामूर्च्छा, लू लगना, हीट स्ट्रोक (Heat stroke), सनस्ट्रोक (Sun stroke), सनबर्न (Sun Burn), हीट एपोप्लेक्सी (Heat Apoplexy) आदि।

निदान—

(क) मई, जून की ग्रीष्म वेलस के मध्यान्ह काल में जब भगवान भास्कर की प्रचंड अंशु से सम्पूर्ण वातावरण दग्धवत रहता है। उस काल अधिकांश संरक्षणार्थ गृह, वृक्ष आदि की छाया का आश्रय लेते हैं। किन्तु इसके विपरीत परिस्थितियों से प्रेरित कदाचित प्राणी व्यवसाय में व्यस्त सूर्य के प्रचंड आतप (धूप) अर्थात् धूप में बिना छाता, बिना पगड़ी या अन्यरक्ष साधन नंगे पैर निर्वाह करते हैं। यथा कल कारखानों में कार्यरत श्रमिक, तप्त घरों में रहने वाले, पक्के और टीन की छत वाले तप्त घरों में आवास, जंगलों में पशु चराने वाले, तापस, बन्दीगृहों में रहने वाले बन्दी, सैनिक व कृषक, राजस्थान मरुस्थली में कार्यरत श्रमिक वर्ग, रिक्शा चालक आदि।

(ख) क्षुधा, तृषा आदि ग्रसित, दुर्बल, मद्यपान करने वाले, कोष्ठबद्धता के अभ्यासी, शीत स्थान से सहसा उष्ण सदन में अथवा स्थल में प्रवेश भी इसके निदान हैं।

लक्षणानि—

आतप ज्वर

प्रथमावस्था या शीतावस्था

१. क्लिन्नता
२. शीतस्पर्शीत्वक
३. मूर्च्छा
४. श्रम का बोध नहीं होता
५. दुर्बलता की अनुभूति
६. नाड़ीगति तीव्र

साध्यावस्था

द्वितीयावस्था या सामान्यावस्था

१. शिरःशूल
२. वमन
३. हृल्लास
४. आक्षेप
५. वेदना
६. भ्रम
७. रक्तनेत्र
८. नाड़ीगति दुर्बल, क्षीण, तीव्र या चंचल
९. शुष्क, उष्ण त्वक्
१०. श्वासगति दुर्बल
१०. दुर्बल हृदयगति
११. हृदयातिपातज मृत्युभय
१२. तापमान १०१°–१०२° फ़ै०

तृतीयावस्था या तीव्रावस्था

१. तापमान १०८°–११०° फा.
२. प्रलाप
३. श्वासगतितीव्र
४. नीलवर्ण शरीर
५. कुछ घन्टों में सन्यास
६. मृत्यु

ज्वर चिकित्सांक

सम्प्राप्ति—

मिथ्याहार अथवा विहार के परिणामस्वरूप भगवान भास्कर की प्रचंड अंशु से सिर सन्तप्त हो जाता है। परिणामस्वरूप ताल नियन्त्रण केन्द्र प्रभावित होता है तथा सहसा ज्वर की उत्पत्ति होती है। जिसका निदान आतप होने से 'आतप ज्वर' कहलाता है। चिकित्सा भी विशेष प्रकार से की जाती है।

प्रतिरोधक चिकित्सा—

१. जहां तक सम्भव हो ग्रीष्म मध्यान्ह में बाहर न निकलें।

२. यदि निकलना आवश्यक हो तो निम्न उपाय करें—

(क) पर्याप्त जल पीकर व साथ लेकर प्रस्थान करें।

(ख) खाली पेट प्रस्थान न करें।

(ग) प्रायः मोटे, श्वेत वस्त्र धारण करें।

(घ) सिर पर वस्त्र व छाता धारण करे।

(च) पैर में जूता धारण करें।

(ज) अत्युष्ण स्थिति में सहसा अतिशीतल पान न करें।

३. जेब में कपूर, पुदीना, प्याज रखें।

४. चने के पत्तों का शाक, चनापत्र स्वरस, इमली का शर्बत, आमपानक, जौ के सत्तू का आहार में सेवन करे।

प्रमुख चिकित्सा—

आतप ज्वराक्रान्त रोगी को निम्न चिकित्सा देवें—

(१) अति शीत स्थान में निर्वस्त्र करें। पसीना साफ कर दें।

(२) वृक्षों की छाया, उद्यान, जलप्रपात, सरोवर, नदी, तालाब आदि के सान्निध्य में रखना चाहिए। केला, कुमुदनी आदि के पत्तों पर आतुर शयन कराये। खुले स्थान पर रखे।

(३) पीली मुल्तानी मिट्टी या पिन्डाले का घोल शरीर पर अनुलेपित करे।

(४) शीत जल के टब में आतुर को कटि स्नान कराये।

(५) सिर पर शीतजल का वस्त्र रखें, आइस बैग (बर्फ की थैली) रखें।

(६) कच्चे दूध या दही की लस्सी, कच्ची खांड मिलाकर दे।

(७) दही या आम का शरीर पर लेप करें।

(८) नीबू की शिकंजी, चनापत्र कषाय, इमली का शर्बत, शर्बत खस, आमपानक सेवन करायें। पेड़े का शर्बत देवें।

(९) खस के पंखे पानी में भिगोकर हवा करायें।

(१०) शीतावस्था हो तो निर्धूम अग्नि चारों ओर रखें। उष्ण वस्त्र लपेटें।

(११) हृदय की दुर्बलता में मौसमी, सन्तरे के जूस में ग्लूकोज या मुनक्का का रस डालकर देवें।

(१२) चन्दन घिसकर या चन्दन तैल या ककड़ी, खरबूजा के बीज पानी में पीसकर या शतधौत घृत या आम का पुट पाक करके उसका गूदा शरीर पर लगावें।

शास्त्रीय योग—

(१) तीक्ष्ण संताप या मूर्च्छा की अवस्था में रक्त पित्तनाशक व हृद्य योगों का प्रयोग उपचार व तर्पण किया जाता है।

(२) रसेश्वर रस १२५-२५० मि.ग्राम। अनुपान त्रिफला क्वाथ या षडंग पानीय। अधिकार—वमन, ज्वर, तृषा, बेचैनी। पुनः पुनः (१/२—२ घन्टे बाद) सेवन

(३) प्रवाल पिष्टी ५०० मिग्रा., मुक्तापिष्टी ५० मिग्रा., दुग्ध पाषाण १ ग्राम। २—२ घन्टे के बाद।

अनुपान— गुडूची स्वरस, मधु। अधिकार - हृदय की दुर्बलता।

आधुनिक चिकित्सा—

(१) आइस कैप (या बैग) का प्रयोग।

(२) वैट स्पंजिंग।

(३) कोरामीन ड्राप या सूचीवेध।

(४) विबन्ध निवारणार्थ लवण वस्ति।

(५) नार्मल सैलाइन का सूचीवेध (शिरान्तर्गत)

(६) यूडीकोलीनयुक्त जल से स्पांजिंग करें।

पथ्यापथ्य—

पथ्य—बाल्य, साठी, यव, ज्वार, गोधूम, मूंग, मसूर, अरहर, तरबूज, खरबूज, खीरा, ककड़ी, परवल, पेठा, कच्चा आम, इमली, लौकी, शाक, दही, मट्ठा, फलरस, दलिया, साबूदाना।

अपथ्य—उष्ण, तीक्ष्ण, गरिष्ठ भोजन, लालमिर्च, मद्य, आतप, मैथुन।

श्री वैद्य छगनलाल समदर्शी आयुर्वेद रत्न

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्छितौ,
प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् ।
गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहंत्यसून्,
व्याधिरियं हि रोहिणी ॥ सुश्रुत ॥

यह एक तीव्र औपर्गिक रोग है जिसमें गले में खराबी होकर एक झिल्ली वन जाती है और विषमयता

के कारण हृदय दौर्वल्य, पेशियों का घात, वृक्क शोथ इत्यादि उपद्रव होते हैं। मृत्यु प्रायः गले की झिल्ली के कारण श्वासावरोध से या हृद्भेद से होती है।

हेतु—इस रोग का कारण रोहिणी द.(B.Diphtheria) या क्लेब्स लौफर का दण्डाण है। यह सलाई के आकार का ३-४ णु लम्बा और आधा णु चौड़ा होता है।

रोहिणी शीत और समशीतोष्ण प्रदेशों का रोग है। जहां पर यह तीव्र जानपदिक स्वरूप धारण करता है। भारतवर्ष में यह रोग बड़े शहरों में और पहाड़ों पर शीतकाल में और वर्षाऋतु में कभी-कभी हुआ करता है। यह बचपन का रोग है जो दस-वारह साल की आयु तक अधिक हुआ करता है। रोमान्तिका, कुकुर खांसी, इन्फ्लुएन्जा तथा गले के अन्य रोगों से पीड़ित लोग इसके जल्दी शिकार वन जाते हैं और उनमें यह रोग अधिक घातक भी होता है। रोगलब्ध क्षमता अल्पकालीन होने से कई लोग इससे दोवारा पीड़ित हो जाते हैं। कुछ बालक स्वभाव से ही इसके लिए अक्षम होते हैं। इस अक्षमता का ज्ञान शिक की कसौटी (Schick's test) द्वारा किया जाता है।

संक्रमण—रोगी के गले में जो कला होती है उसमें असंख्य दण्डाण होते हैं। ये खांसने, छींकने और वोलने के समय थूक और कला के सूक्ष्म कणों या विन्दूत्क्षेपों के साथ वाहर हवा में आते हैं और समीपस्थ मनुष्यों के मुख में श्वास द्वारा प्रवेश करके रोग उत्पन्न करते हैं। वालकों में प्रायः यह रोग पेन्सिल, रूमाल, तौलिया, गिलास

मांसतान (डिफ्थीरिया-रोहिणी) कंठरोग

इत्यादि मुख के साथ सम्बन्ध रखने वाली चीजों से तथा चुम्बन से फैलता है। दूध से भी यह रोग फैलता है।

वाहक इस रोग को फैलाने में बहुत भाग लेते हैं। रोगी के सम्पर्क में आने वालों में से बहुतेरे बालक स्वस्थ वाहक बन जाते हैं। प्रत्येक रोहिणी पीड़ित मनुष्यों के मुख में रोग-निर्मुक्त होने के पश्चात् एक महीना तक दन्डाणु होते हैं। तदनन्तर वे आप से आप नष्ट होते हैं। क्वचित् ये दो-तीन महीनों तक भी गले में रहते है। दन्डाणु उपस्थित होने की इस अवस्था मे ये लोग अन्य मनुष्यों पर रोग का संक्रमण करते हैं।

प्रतिषेध—(१) प्रथकीकरण—रोगी को हवादार स्वतन्त्र कमरे में या अस्पताल में अलग करना तथा गला, नाक, कान, मुख इनके स्राव से दूषित वस्त्रपात्रादि को अच्छी तरह विशोधित करना या जला देना।

(२) टीका—रोहिणी में क्षमता बढ़ाने के लिए सक्रिय और निष्क्रिय दोनों पद्धतियों का उपयोग किया जाता है। रोगी के सम्पर्क में आए हुए लोग, जिनमें रोग की क्षमता नहीं है, जल्दी रोग से पीड़ित होने की सम्भावना होती है, इसलिए उनको प्रतिविष का टीका लगाया जाता है। इसकी मात्रा वयनिरपेक्ष १०६०-२००० एकक होती है। इस टीका से २४ घन्टे में क्षमता उत्पन्न होती है और ३-४ सप्ताह तक रहती है।

सक्रिय क्षमता जनन—रोहिणी की क्षमता प्रतिविष जन्य होने के कारण इसमें शरीर में प्रतिविष उत्पन्न करने का प्रयत्न निम्न टीका द्रव्यों से किया जाता है—

(१) विष—प्रतिविष मिश्रण। (२) विपाभ—प्रतिविप मिश्रण। (३) विपाभ-प्रतिविष उर्णिकायें (T.A.B.) (४) स्फटीनिस्सादित विपाभ-(A. P. T.), (५) विपाभ (F. T.) इनमें विपाक्त प्रतिविप ऊर्णिकायें और स्फटी निस्सादित विपाभ इन दोनों का प्रयोग अधिक होता है क्योंकि इनमें औरों की अपेक्षा क्षमताजनन की शक्ति अधिक नौर तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करने की शक्ति कम होती है।

(३) व्यक्तिगत उपाय—जिस घर में कोई व्यक्ति रोहिणी से पीड़ित हो उस घर में बच्चों को न भेजें तथा उस घर के लोगों के साथ उनका सम्बन्ध बन्द करें। मरक के दिनों में बच्चों को पाठशाला में न भेजें तथा प्रतिदिन नीरजी, पोटास परमेंगनेट या हाइड्रोजन पेरोक्साइड के घोल से कुल्ला करावें।

रोहिणी चिकित्सा निर्देश—(१) डिप्थीरिया एन्टीटोक्सीन सीरम (Diphtheria Antitoxin Serum) २००० यूनिट से ३०००० यूनिट तक व्याधि की तीव्रता के अनुसार उचित मात्रा में करने से अभीष्ट लाभ होता है। प्रतिविप लसिका की मात्रा व्याधि का अधिष्ठान, उसकी गम्भीरता, विपमयता तथा उपद्रव आदि पर अधिक निर्भर करती है, अवस्था पर कम। व्याधि की तीव्रता आदि का निर्णय कर यथाशक्ति लसिका का प्रयोग एक ही पूर्ण मात्रा में करना चाहिए। इसके प्रयोग से रोहिणी दन्डाणु के विष का निर्विपीकरण होता है।

(२) पेनिसिलीन या आइलोटायसिन का प्रयोग करने से द्वितीयक उपसर्गों का प्रतिकार होता है।

—श्री वैद्य छगनलाल समदर्शी आयु०रत्न,
चिकि०-राजकीय आयु० चिकित्सालय,
सैलारपुरा (राजस्थान)

* * * *

कण्ठ रोहिणी

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयुर्वेद केशरी, विशेष–सम्पादक 'धन्वन्तरि'

यह अति तीव्र संक्रामक रोग है। इसमें गले में एक झिल्ली बन जाती है और वही से विष रक्त में जाकर हृदयावरोध, पक्षाघात आदि मारक लक्षण कर देता है। यह अधिकतर बच्चों का रोग है। इसका संक्रमण क्लैब्स लोफ-लर वेसिली द्वारा होता है। भारत में शरद ऋतु का रोग है। मृत्यु संख्या ८० प्रतिशत।

यह रोग अति संक्रमणशील है—वायु, स्पर्श तथा संसर्ग से यह रोग फैलता है। स्कूल में बच्चों के पास पास बैठने से भी यह रोग होजाता है। रोगी बालक ठीक होने के वाद भी एक लम्बे अर्से तक इसके वाहक होते है। इससे बचने के लिये एक टीके का प्रयोग किया जाता है जो ५-६ सप्ताह वाद रोग निरोधक शक्ति को उत्पन्न कर देता है जिससे रोग होने का भय नही रहता।

कीटाणु गले में जाकर विष उत्पन्न करते है। इससे गले में शोथ हो जाता है। इससे श्लेष्मिक कला की सैल भर जाती है और स्राव निकलता है। स्राव जमने से तथा मृत सैलों से, श्वेताणु रक्ताणुओं के आजाने से गले में एक झिल्ली सी बन जाती है जो दृढ़, श्वेत तथा चमकीली होती है। इस झिल्ली में अनेक कीटणु होते है और इसी के टुकड़े वाहर निकल कर रोग फैलाते है। झिल्ली जितनी मोटी होती है रोग उतना ही भयङ्कर होता है। इसका विष रक्त में मिलकर निम्न अंगों को प्रभावित करता है–

(१) हृदय की माँसपेशियां क्षीण हो जाती है और विस्तृत हो जाता है। रोगकाल में हृदय गति रुकने का हर समय भय रहता है।

(२) फुफ्फुस—कभी कभी फुफ्फुस प्रदाह, कास, वायु कोष विस्तृति आदि होती है। फुफ्फुसावरण प्रदाह कीटाणुओं के कारण होता है।

(३) वृक्क—की सूक्ष्म प्रणालियां भी जैसे क्षीण होकर भर जाती हैं। कम अवस्था में मूत्र प्रणाली का प्रारम्भिक भाग प्रभावित हो जाता है।

(४) वात संस्थान मस्तिष्क की सैलों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु परिधि की सैलें क्षीण होजाती हैं और तदाधीन मांसपेशियों का आघात हो जाता है।

(५) इसके अतिरिक्त रक्त, वृक्क, यकृद, प्लीहा आदि में भी परिवर्तन आता है। परन्तु प्रकृति निर्देशक नहीं है। रक्त में श्वेताणुओं की निश्चित वृद्धि और उनके सम्बन्धी वहुजीव केन्द्रमय घटकों की उपस्थिति। वृक्कों की रसाप-क्रान्ति और किंचित वृक्क प्रदाह। यकृद प्लीहा का विषज परिवर्तन—

प्रथम रोगी को थोड़ा थोड़ा ज्वर आता है। ग्रीवा जकड़ी सी रहती है। कुछ दिन वाद गले में झिल्ली दिखाई देती है। झिल्ली कभी कभी सर्व प्रथम संकेत होता है। *प्रारम्भ मे यह झिल्ली सुगमता से उखाड़ी जा सकती है।* परन्तु धीरे धीरे यह वढ़ती जाती है और वहुत दृढ़ हो जाती है। यह झिल्ली स्वर यन्त्र तक फैल जाती है तथा वायु मार्ग को रोक देती है। यह रोगियों का मारक कारण वन जाता है। ज्वर मन्द होता है कभी होता भी नहीं है। नाड़ी मन्द और तीव्र होती है। यह आवश्यक नहीं कि शोथ और झिल्ली कण्ठ में ही हो। यह कभी स्वर यंत्र, नासा, आंखों तथा योनि मार्ग आदि की श्लेष्मिक कला में या कर्णों पर भी हो सकती है।

मृदु अवस्था में रोगी के लक्षण भी साधारण रहते हैं और कुछ दिन कष्ट रहने के पश्चात रोगी स्वयं ही ठीक हो जाता है। परन्तु उग्रावस्था में अति उग्र लक्षण होते है। देह क्षीण हो जाती है और रोगी तन्द्रावश रहता है। कुछ दिन वाद ही वायु मार्ग अवरुद्ध होकर, हृदयावरोध होकर रोगी मर जाता है।

इस रोग के उपद्रव भी उतने ही चिन्ता जनक हैं—

(१) श्वासनलिका प्रदाह-यह गम्भीर स्थितिका उपद्रव है। इसमें श्वास प्रणाली प्रदाह भी हो जाता है जो चिन्ता जनक है।

२) हृदयगति में अति अनियमितता । नाड़ी मन्द, रक्त चाप हीन, शक्ति का ह्रास तथा तदनुगामी अकस्मात मृत्यु ।
३) लसीका मेह या गम्भीर मूत्राघात । वृहद प्रदाह सह ।
४) अति भयदायक वमन ।
५) विसर्प ।
६) लसीका ग्रन्थियों का पूयपाक ।
७) एक प्रतिशत में रोग की पुनरावृत्ति ।

इस रोग से स्वस्थ हो जाने के बाद भी कभी कभी हृदयावरोध हो जाता है । इसमें कभी कभी स्पष्ट पूर्व लक्षण सामने आते हैं कभी कभी अकस्मात भी हो जाता है । इस रोग से मुक्त हो जाने के बाद दूसरे अथवा तीसरे सप्ताह में १०-१५ प्रतिशत रोगियों को पक्षाघात भी हो जाता है ।

रोग की पहिचान झिल्ली देखकर की जा सकती है । परन्तु रक्त में कीटाणु परीक्षा इसका स्पष्ट परिचय दे देता है । प्रारम्भ में लसीका मेह की प्राप्ति तथा जानूक्षेप का अभाव प्रायः रोग निर्णय करा देता है ।

इस रोग के समान अन्य रोग भी हैं जिनसे इसका परीक्षात्मक प्रथंकीकरण करना आवश्यक है । गलतोरणिका रोहिणी को पीटिकामय उप जिह्वा प्रदाहिक ज्वर, दानेदार श्वेताणुओं की उत्पत्ति का अभाव, श्वेताणु वृद्धिमय पांडुरोग, गौण फिरङ्ग, आमाशय-प्रदाहज कंठ क्षत, आशुकारी पूयमय उपजिह्वा प्रदाह, उपजिह्वा का सौम्य आक्षेप कंठक्षत, तालुका कक्षारोग आदि रोगों से इसका प्रभेद करना आवश्यक रहता है । निदान में यह भूल भी संभव है कि रोगी ने गरम दूध पीलिया है, या अन्य गर्म पेय पीने से ग्रसनिका जल गई है ।

पीटिका युक्त उपजिह्वा प्रदाह का आक्रमण शीघ्र होता है । उत्ताप अधिक होता है । मुख पर तेज रहता है । उप जिह्वा पर किसी प्रकार की कला आच्छादित भाग में विद्यमान सतह पर रक्तस्राव का अभाव आदि लक्षण प्रथक होते हैं ।

प्रदाहिक ज्वर में रक्त के भीतर एक जीव केन्द्रमय श्वेताणु विद्यमान होता है ।

आशुकारी पूयमय उपजिह्वाप्रदाह में पूय की प्रधानता होती है ।

स्वर यंत्रस्थ रोहिणी से भेद—इसे स्वर यंत्र प्रदाह, रोमान्तिका, विद्रधि, श्वास प्रणालिका प्रदाह, स्वर यंत्र आक्षेप, स्वर यंत्र अर्बुद से प्रथक करना पड़ता है ।
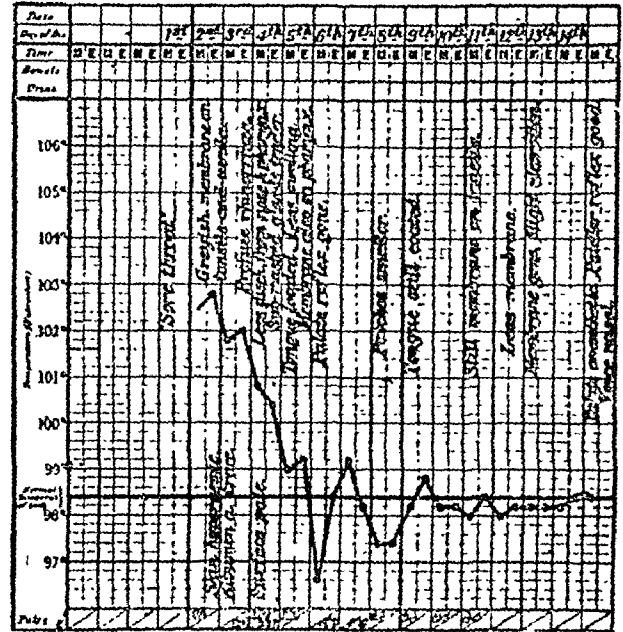
डिफ्थीरिया ज्वर का तापमान चार्ट

आशुकारी स्वरयंत्र प्रदाह से इसका भेद कठिन है । रोमान्तिका में प्रसेकमय लक्षण, कोपलिक का चिन्ह, कृत्रिम कला का अभाव, जीर्णावस्था में त्वचा व पीटिका भेदक चिन्ह हैं ।

विद्रधि में स्पर्श से ज्ञात हो सकता है ।

श्वास प्रणाली प्रदाह में निश्वास, शीत्कार ध्वनि और पर्शुकाओं के खिचाव विभेदक चिन्ह हैं ।

स्वर यंत्र के आक्षेप में रात्रि को श्वास कृच्छता, अकस्मात आक्रमण, पुनः पुनः आक्रमण, कृत्रिम कला का अभाव सर्वांगिक लक्षण मन्द लक्षण भेद करते हैं ।

स्वर यंत्र का मस्सा रक्तस्राव करता है ।

कण्ठ रोहिणी	कृत्रिम झिल्लीमय स्वरयंत्र प्रदाह
(१) प्रदाह तालु से आरम्भ होकर समीपस्थ स्थानों तक फैलता है।	(१) प्रदाह का आरम्भ स्वर यन्त्र और श्वास नलिका में से होता है।
(२) प्रारम्भ में ज्वर होता है।	(२) प्रारम्भ में प्रतिश्याय तथा कास होता है।
(३) यह संकामक जनपद व्यापी रोग है	(३) यह संक्रामक जनपद व्यापी नहीं है
(४) कृशता और शक्ति का ह्रास। फिर जीवनीय शक्ति में क्षीणता से मृत्यु।	(४) इसमें अधिक शक्तिपात नही होता
(५) रोगियों की स्वर यन्त्र प्रदाह तथा श्वासावरोध से मृत्यु।	(५) मृत्यु बहुधा श्वासावरोध से होती है।
(६) हनुनिम्नस्थ ग्रन्थि की वृद्धि	(६) यह वृद्धि नहीं होती
(७) अनेकों को नासिका से रक्तस्राव, मूत्र से शुभ्र प्रथिन जाता है।	(७) रक्तस्राव नही होता तथा शुभ्र प्रथिन भी नही जाता

कण्ठ रोहिणी	पीटिकामय उपजिह्वा प्रदाह
(१) सामान्य गुप्त रूप से आक्रमण	अकस्मात आक्रमण
(२) शारीरिक उत्ताप की क्रमशः वृद्धि	प्रारम्भ से ही ज्वर वृद्धि तथा ज्वर तीन दिन रहता है।
(३) विशेप विकार न होने पर भी दुर्बलता अधिक आती है।	दुर्बलता अधिक नही आती। शारीरिक अति विकृति
(४) नाड़ी द्रुतगामिनी होने पर भी क्षीण और अव्यवस्थित	नाड़ी द्रुतगामिनी तथा भारी
(५) समीप की ग्रंथियों की स्फीति	नही—
(६) ४-६ दिनों में रोग की पूर्ण वृद्धि	२४ से ३६ घंटों मे ही रोग की पूर्ण वृद्धि
(७) किसी किसी को निगलने पर नासिका से पेय पदार्थ और आहार वाहर आता है	यह नही होता
(८) ज्वर कम होने पर मूत्र में शुभ्र प्रथिन	ज्वर वढ़ने पर शुभ्र प्रथिन
(९) सम्पूर्ण कण्ठ नलिका अति लाल	केवल उपजिह्वा लाल
(१०) कला प्रथक प्रथक विन्दु आकार में होकर पहले धूसर फिर पीली सी फिर एकीभूत होती है।	प्रथक प्रथक पीत विन्दु। कुछ भाग मे फैली हुई झिल्ली
(११) उप जिह्विका, अधि जिह्वा, ग्रसनिका में कृत्रिम झिल्ली	केवल उपजिह्वा आक्रान्त
(१२) झिल्ली निकालने पर रक्तस्राव। हठात् निकालने से पुनः निर्माण,	झिल्ली निकाल लेने पर रक्तस्राव नही, नूतन झिल्ली का पुनः निर्माण नही
(१३) दो दिन तक सामान्यतः कंठ की एक एक ओर झिल्ली	दोनों ओर एक साथ झिल्ली

— शेषांश पृष्ठ ३०५ पर देखें

नासा ज्वर

वैद्य अम्बालाल जोशी आयु० भिष० केशरी विशेष सम्पादक धन्वन्तरि

आयुर्वेद संहिता ग्रन्थों में इसका विवरण प्राप्त नहीं है। आधुनिक चिकित्सा ग्रन्थों में इस रोग का वर्णन मिलता है। ऐसा माना गया है कि यह रोग Allergy अनूर्जता की अवस्था में पैदा होता है। किसी घास के कारण, किसी गन्ध से यह रोग उत्पन्न होता है। यह रोग अप्रैल, मई, जून और अगस्त मास में दृष्टिगत होता है। यह मान्यता है कि यह रोग व्यक्ति की अनूर्जता की विभिन्नता के अनुसार होता है। हर व्यक्ति की अपनी अपनी अनूर्जता होती है, तदनुसार ही यह रोग होता है। इसका प्रभाव नासा की श्लेष्मिक कला पर और नेत्रवर्त्म की उत्तेजना पर निर्भर है।

चार वर्ष से बीस वर्ष तक को यह रोग संभव है। इसमें नासा, कंठ और नेत्र के भागों पर उत्तेजना होती है। छींक बार बार आती है। नासा स्राव और नेत्र स्राव पर्याप्त मात्रा में होता रहता है। शिरःशूल, मनःसाद और थकान का अनुभव रोगी करता है। अधिक वेग होने पर कास, श्वास कष्ट भी होते देखे गये हैं। इसके लक्षण उष्ण वायु के संकेत से अधिक बढ़ते है और शीत वायु के सम्पर्क से कम होते है। इसमे नासा की श्लेष्म कलायें प्रभावित होती हैं। श्वासावरोध, नासा कला जल पूरित तथा नासाकला शोथयुक्त होती है। पांडुवर्ण दीखता है।

अनिच्छित वातावरण घास-पुष्प आदि पर जाने से ही तत्काल यह रोग हो जाता है। होता अनूर्जता वाले व्यक्तियों को ही है।। यह रोग प्रतिश्याय अथवा दुष्ट प्रतिश्याय के अन्तर्गत आता है। इसमें वातज तथा पित्तज प्रतिश्याय के लक्षण अधिक मिलते हैं। यह घास (Hay) से उत्पन्न होने के कारण Hay Fever कहा गया है।

भैषज्य रत्नावली में आहकादि रस तथा आहकादि नस्य। दूर्वा तैल के गुणों में इस ज्वर का उल्लेख दिया है।
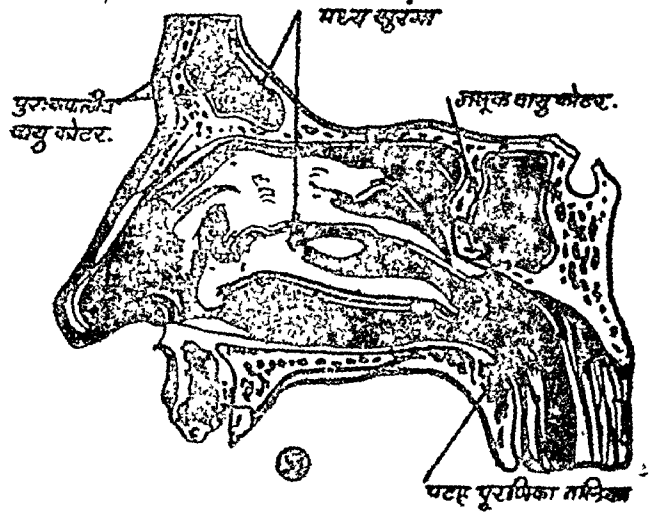
इस ज्वर की चिकित्सा करने के पूर्व घास तथा पुष्प गन्ध, जिनके कारण यह रोग हुआ है, उस वातावरण से रोगी को दूर रखना आवश्यक है। इसकी चिकित्सा वातज, पित्तज प्रतिश्याय की चिकित्सा दोषानुसार करें।

दूर्वा तैल अथवा अणु तैल का नस्य देना उत्तम है। अहकादि रस का प्रयोग करना चाहिए। लक्ष्मीविलास रस नारदीय का प्रयोग उत्तम है।

व्याघ्री हरीतकी, सुरसादि फांट यथावसर प्रयोग करें। रोगी के तथा रोग के अनुसार चिकित्सा की जानी चाहिए। हरिद्रा खण्ड उत्तम दवा है।

आधुनिक चिकित्सक इसकी चिकित्सा अनूर्जतानाशक (Anti-Allergic) चिकित्सा करते है। इसमें Ephedrine–Hydrochloride का प्रयोग करते हैं। कास-श्वास का उपचार पृथक करते हैं।

वेदों में उपलब्ध कुछ वैदिक ज्वर

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयुर्वेद केशरी, विशेष सम्पादक—'धन्वन्तरि'

हमारे प्राचीन ग्रन्थ वेदों में कुछ ज्वरों का वर्णन मिलता है। इनमें अभ्रजा ज्वर एक है।[1] आयुर्वेदीय ग्रंथोंमें इस ज्वर का नाम नही मिलता। सायण ने इसे मेघ द्वारा उत्पन्न होने वाला ज्वर माना है। वेदों में या अन्य ग्रंथों में इसका वर्णन प्राप्त न होने से अनुमान ही लगाया जा सकता है कि यह ज्वर मलेरिया हो। एक अन्य ज्वर जिसे बदलोका कहते है लौकिक में प्रचलित है। यह ज्वर बच्चों का ज्वर है, जिसे डब्बा उत्फुल्लिका भी कहते हैं।

अन्यत्र वार्षिक ज्वर[2] का भी उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है। सायण ने इसे वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाला ज्वर बताया है। ये दोनों ही ज्वर एक ही है या अलग-अलग कहा नहीं जा सकता। परन्तु वार्षिक ज्वर से मलेरिया के प्रकार में हमारा ध्यान आकर्षित होता है। विषम ज्वरों के तृतीयक आदि भेद ज्वरों का वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है। उत्फुल्लिका का भी परिचय पूर्व में किया जा चुका है। मलेरिया वर्षा ऋतु में अधिक होता है तथा उत्फुल्लिका वसन्त, हेमन्त, शरद ऋतुओं में जब बादल होते है तब अधिक होता है। प्रश्न यह उठता है कि क्या इन ऋतुओं में अन्य प्रकार के ज्वरों की उत्पत्ति संभव नहीं है? संभव है उन ज्वरों में से किसी का नाम वेदों में अभ्रजा या वार्षिक रक्खा गया हो।

अन्य किसी स्पष्ट तथ्य के अभाव में उन ज्वरों को वर्षा के कारण उत्पन्न होने वाला मान लेना ही पर्याप्त है।

उपरोक्त दोनों ही ज्वरों के बाद शुष्मा[3] नाम का ज्वर भी वेदों में बताया गया है। इस ज्वर का विवरण देते हुए सायण ने लिखा है देह को सुखाने वाला ज्वर। आयुर्वेद में भी "शोष का वर्णन" प्राप्त होता है जिनमें ज्वर एक अनिवार्य लक्षण है। यदि इन दोनों शब्दों को एक दूसरे का पर्याय मान लिया जावे तो यह सामंजस्य हो सकता है। शोष ज्वर राजयक्ष्मा के अन्तर्गत आता है।

इसी प्रकार 'अङ्ग ज्वर तथा अङ्ग भेद ज्वर[4] का नाम भी वेद में आया है। ये संज्ञायें ज्वर मे सन्तापित अङ्गमर्द विशेष लक्षण को लक्षित कर कही गई है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में भी इस प्रकार की संज्ञायें लिखी मिलती हैं। अङ्गमर्द वातज्वर का एक लक्षण है अतः इसी दृष्टि से इस प्रकार के ज्वर को अङ्ग भेद ज्वर कहा गया है। इस प्रकार के भेद ज्वर की पहिचान तथा चिकित्सा सौकर्य की दृष्टि से किये गये हों।

इसी प्रकार अर्ध नारीश्वर ज्वर मे आधे अङ्ग में ज्वर तथा आधा अङ्ग शीत लक्षित है। ऐसे ज्वर का वर्णन आयुर्वेदीय ग्रंथों में उपलब्ध है। इसे आयुर्वेद में अर्धांग ज्वर कहा गया है। अर्धांग नारी नटेश्वर ज्वर भी सम्भवतः इसे ही माना है।

अन्यत्र परूप ज्वर[5] त्वचा में रूक्षता पैदा करने वाला ज्वर बताया गया है जो वात दोष का एक लक्षण है उपरोक्त तथ्यों की तरह यहां भी यह माना जा सकता है कि वात की रूक्षता को ध्यान में रखते हुए तथा ज्वर के प्रभाव से त्वचा की रूक्षता को देखकर इस प्रकार के ज्वर को परुष ज्वर संज्ञा दी गई है।

'रूरू ज्वर[6] यह ज्वर व्यक्ति को अधिक सन्तापित कर रुला देता है। चरक चि. ३. में दाह ज्वर के नाम से एक ज्वर प्राप्त होता है जिसे इस श्रेणी में रखा जा सकता है। एक अन्य ज्वर जिसे कफ ज्वर की श्रेणी में

—शेषांश पृष्ठ ३१२ पर देखें

---

1 अथर्व १-८२/३-४ 2 अथर्व ५-२२/२४ 3 अथर्व १-२२/३-४ 4 अथर्व ६-८/५
5 अथर्व ६-२२/३ 6 अथर्व ५-२२/१०

कुछ अन्य ज्वरों का संक्षिप्त वर्णन

वैद्य श्री अम्बालाल जी जोशी आयु० केशरी, विशेष 'सम्पादक–धन्वन्तरि'
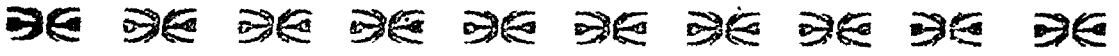
यहां हम कुछ ऐसे ज्वरों का उल्लेख करेंगे जो शास्त्रों में यत्र तत्र उपलब्ध है। इन ज्वरों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है। अतः इनका संक्षिप्त उल्लेख ही यहां किया जा रहा है।

शीतज्वर—इस ज्वर का वर्णन काश्यप संहिता में प्राप्त होता है। माधवकर तथा अन्य आचार्यो ने भी इसका उल्लेख किया है। ज्वर ठंड देकर चढ़ता है। यह विषम ज्वर का ही एक शीतपूर्वक ज्वर चढ़ने वाला भेद है। यह लाक्षणिक संज्ञा है। इस ज्वर में शीत भंजी रस तथा शीतादि रस आदि चिकित्सा व्यवस्था की गई है।

शीताभिप्राय ज्वर—इस ज्वर का उल्लेख माधव कर तथा चरक ने भी किया है। इस ज्वर में रोगी शीत वस्तुओं का प्रयोग पसन्द करता है यह चरक का मत है। यह पित्त प्रधान ज्वर है जिसमें रोगी शीत व्यवस्था को पसन्द करता है। विषम ज्वर का ही प्रकारान्तर है। (च. सू. १६. ७.)

उष्णाभि प्राय ज्वर—यह ज्वर शीत कारणों से उत्पन्न होता है और उष्ण उपचार द्वारा शान्त होता है। रोगी उष्ण आहार विहार की इच्छा करता है। वात कफ की प्रधानता वाले ज्वरों में ऐसे लक्षण रहते है।

स्नेह विभ्रमज ज्वर—मनुष्य के अति स्नेहयुक्त पदार्थ सेवन करने से तथा पंचकर्म कराते समय स्नेहन कर्म के समय होने वाली त्रुटि से यह ज्वर पैदा होता है। स्नेह सेवन करने से होने वाले इस ज्वर में 'निदान परिवर्जयेत्' कर तदनुसार ही उपचार करना चाहिये। (च. सू. अ. १३)

सन्तर्पणज ज्वर—सन्तर्पण से मन्दाग्निकर आम दोष की उत्पत्ति होती है। आम दोष रसवह स्रोतों में संचरण करता हुआ जब स्वेदवह स्रोतों में अवरोध उत्पन्न करता है, और कोष्ठाग्नि को मंद कर देता है और आमाशयिक दोष ज्वर कोष्ठाग्नि की ऊष्मा को अपने स्थानों से बाहर निकाल कर उसे रसानुगत कर देता है तो ज्वर उत्पन्न होता है। ऐसे ज्वरों की चिकित्सा लंघन प्रधान होती है। लंघन में उपवास स्वेदन तथा रूक्षन्न ग्रहण करना चाहिये।

अपतर्पणज ज्वर—चरक ने अपतर्पण से भी ज्वर की उत्पत्ति मानी है। शरीर में धातुओं को वल भोजन से तथा आहार से प्राप्त होता है। भोजन का अभाव धातुओं में पुष्टि प्राप्त न होने के कारण धातुऐं शरीर की ऊष्मा को शुद्ध कर देती हैं। इससे शरीर में सन्तापोत्पत्ति पैदा होती है यही सन्ताप वृद्धि ज्वर होती है। इस प्रकार से यदि धातुओं को आहार द्वारा सम्यक् पुष्टि न मिले तो शरीरोष्मा धातुओं को दग्ध करने लग जाती है। इसीलिये इस ज्वर की चिकित्सा करते समय सम्यग आहार की ओर ध्यान देना आवश्यक है। सन्तर्पण चिकित्सा की जानी चाहिये।

रोगोत्थानज ज्वर—यह ज्वर अन्य रोगों के कारण होता है। जैसे किसी स्थान पर पूय पड़ जाना, विद्रधि होना, उपांत्र शोथ आदि होना। सुश्रुत ने इस प्रकार के ज्वर का उल्लेख किया है। ऐसे ज्वरों में होने वाले रोगों का पूर्व परिचय भी प्राप्त हो सकता है अतः हो सके तो समय पर उपचार भी किया जा सकता है। रोग का उपचार हो जाने से ज्वर चला जाता है। जैसे पूय निकाल देने से ज्वर शान्त हो जाता है। इस प्रकार के ज्वर में ज्वरोपचार न कर उसके आधारभूत (उत्पादक) रोग का उपचार करना चाहिये।

सात्म्य विपर्ययज ज्वर—सुश्रुत ने इस ज्वर का वर्णन किया है। देश, काल, वय, प्रकृति आदि के अनुसार पथ्य व्यवस्था विहार व्यवस्या शास्त्रों ने बताई है। उन आहार विहार सम्बन्धी नियमों का समुचित पालन न करने से तथा उनका उल्लंघन करने से जो ज्वर की उत्पत्ति होती है उसे सात्म्य विपर्ययज ज्वर कहा है। इस ज्वर का ज्ञान चिकित्सक को चिकित्सा सौकर्य की दृष्टि से आवश्यक है। ऐसा ज्ञात होने पर उसका निदान परिमार्जन करना आवश्यक है। इससे चिकित्सा करने में सुविधा रहती है।

ऋतु विपर्ययज ज्वर—आयुर्वेद शास्त्रों में कुछ नियम

लिखे गये है, जिनको विधिवत् पालन करने से रोग नहीं आता और मनुष्य स्वस्थ रहता है। उन्हीं नियमों की एक शाखा ऋतुचर्या है। ऋतु के अनुसार आचरण खानपान करना इन नियमों में इष्ट है। यदि ऋतु सम्वन्धि नियमों की अवमानना की जायगी तो मनुष्य रोगी होगा। इसी को ऋतु विपर्ययज ज्वर कहा गया है। प्रावृत ऋतु का उल्लंघन करने से वात ज्वर,शरद ऋतु का उल्लंघन करने से कफ ज्वर होता है। इसे प्रकृत ज्वर भी कहा गया है। इसके विपरीत दोपज ज्वर को वैकृत ज्वर कहा गया है।

इस प्रकार के उत्पन्न ज्वर की चिकित्सा ऋतुचर्या विधान के अनुसार होनी चाहिये।

श्रमज ज्वर—अधिक परिश्रम करने से तथा थकान के कारण यह ज्वर हो जाया करता है। इस ज्वर में विश्राम, सुपथ्य तथा हल्का अभ्यंग तथा गर्म जल से स्नान कराना आवश्यक है। वहुत थोड़ी सी अफीम रोगी के वलानुसार चाय के साथ सेवन कराने से श्रम व्यथा समाप्त हो जाती है।

विपज ज्वर—आचार्य सुश्रुत ने ज्वरों के कारणों में विष का प्रभाव भी माना है। विप के सेवन से अन्य लक्षणों के सिवाय ज्वर भी हो सकता है। डल्हण ने इसकी व्याख्या करते हुए औपधि सेवन, पुष्प गन्ध सेवन आदि के फलस्वरूप ज्वर होने का संकेत किया है। संभव है यह आजकल की ऐलर्जी से सम्वन्धित हो। प्राणिज, खनिज, उद्भिज विषों के प्रसंग से भी ज्वर होता है। जीवाणु, कीटाणु तथा वियाणु के द्वारा भी ज्वर होता है। यह ज्वर अपने कारणभूत विषों के गुण, धर्म, प्रभावों के अनुसार ही दर्शित होता है। अतः इन ज्वरों की चिकित्सा विष चिकित्सावत ही करनी चाहिए। ज्वर उसी से उतर जाता है।

रात्रि ज्वर—अष्टांग संग्रह के मतानुसार रात्रि ज्वर तथा पूर्व रात्रि ज्वर वताये गये हैं। कहा है कि हीन पित्त पुरुष के कफवात दोप जब समावस्था में रहते हैं तो तीक्ष्ण वा मन्दरूप में रात्रि ज्वर उत्पन्न होता है। इसी प्रकार सूर्य के अति वल रहने पर व्यायाम से शारीरिक धातुओं के अधिक शोपित होने पर वायु के कारण पूर्व रात्रि ज्वर होता है। इसे निशा ज्वर भी कहते हैं।

भैपज्य रत्नावली के अनुसार विश्वेश्वर रस इसकी औषधि है। योग रत्नाकर ने कुरण्टकादि लेह्य को उग्र रात्रि ज्वर की औपधि वताया है। इसज्वर सेआक्रान्त रोगी दिन भर ज्वरमुक्त रहता है परन्तु रात्रि में ज्वराक्रान्त रहता है। इसका वेग भी विपम है।

अजीर्ण ज ज्वर—अन्न के पाचन न होने से आम दोप की उत्पत्ति होती है। आम दोष के कारण रस वह तथा स्वेदवह स्रोतों में अवरोध उत्पन्न होता है। इस प्रकार आमाशयस्थ दोप प्रकुपित होकर कोष्ठाग्नि को मन्द कर तथा उसे यथा स्थान से विचलित कर रस धातु के साथ मिला देता है इससे ज्वर की उत्पत्ति होती है। यह ज्वर संप्राप्ति का आयुर्वेदीय पुरातन सिद्धान्त है। इसे आम ज्वर भी कह सकते हैं क्योंकि इसमें आम ज्वर के लक्षण होते हैं।

इस रोग में आम दोष का पाचन कराना आवश्यक है। अतः लंघन कराना उत्तम है। पश्चात अग्निदीपनार्थ अग्निकुमार रस का प्रयोग प्रशस्त है। लंघन के बाद आम दोषों का पाचन हो जाने पर ज्वर न्यून हो जाता है। ऐसी अवस्था में सुपाच्य लघु भोजन देना चाहिये। इसमें धान्य पंचक क्वाथ, पंचकोल क्वाथ तथा पंचभद्र क्वाथ देना उत्तम है।

प्लीहा ज्वर—विभिन्न प्रकार के ज्वरों में प्लीहा वृद्धि होती है, विशेपकर विपम ज्वर में। काला ज्वर, आन्त्रिक ज्वर में भी प्लीहा वढ़ती है। आधुनिक चिकित्सा में भी प्लीहा ज्वर का उल्लेख मिलता है। मृत्यूत्तर परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि जीवाणुओं के उपसर्ग से जब प्लीहा में अति रक्त संचय हो जाता है तो प्लीहा शोथ उत्पन्न होकर उसकी वृद्धि हो जाती है जीर्ण ज्वरों की अवस्था वन जाती है। यह स्वतंत्र रोग नहीं है। अतः इसका प्रतिकार भी कारणभूत रोगों का होना चाहिए।

विपम ज्वर की जीर्णावस्था में प्लीहा रक्ताणुओं का संचय कर कुछ काले वर्ण की हो जाती है और उसका आकार भी बढ़ जाता है। अधिक जीर्ण विपम ज्वर में उसका आकार और भी स्थूल हो जाता है। कभी-कभी प्लीहा मोटी और अपारदर्शक हो जाती है। समीपस्थ अंगों को भी प्रभावित करती है। ज्वर में वृद्ध तथा ज्वर उतरने पर कुछ कम होती है।

कालाजार में भी प्लीहा वृद्धि होती है। तृतीयक में भी प्लीहा वृद्धि होती है। विषम ज्वर के कारण वने प्लीहोदर में प्लीहा वहुत कोमल हो जाती है। थोड़ा आघात लगते ही विकीर्ण हो जाती है। इस प्रकार यह मृत्यु का कारण वन जाती है। ज्यों-ज्यों रोग वढ़ता जाता है प्लीहा का प्रभाव अधिक दिखता है। रोगी के श्वेताणु वढ़ते है। इस रोग में प्लीहा साढे तीन सेर तक वढ़ जाती है। प्रसंगवश प्लीहा का भार सामान्यत: २॥ छटांक ही हुआ करता है।

आन्त्रिक ज्वर में प्लीहा आकार तथा भार मे दो से तीन गुनी तक वढ़ जाती है। इसमें अत्यधिक रक्ताधिक्य हो जाता है। कभी कभी यह नहीं भी होती है। कभी कभी आन्त्रिक ज्वरजन्य प्लीहार्वुद भी हो जाता है। प्रथम सप्ताह में यह काफी कठोर तथा दूसरे सप्ताह में मृदु होने लगता जो तीसरे सप्ताह में पर्याप्त मृदु हो जाती है।

इस प्रकार अनेक ज्वरों के कारण प्लीहा वृद्धि हो सकती है। इस रोग में कारणभूत रोग की चिकित्सा की जानी चाहिए। साथ ही प्लीहा पर लेप तथा प्लीहोदरारि रस आदि दिये जाने चाहिये।

कण्ठ रोहिणी :: :: पृष्ठ ३०० का शेषांश

कभी कभी कंठ रोहिणी के साथ रोमान्तिका भी आ जाती है।

इसमें मृत्यु संख्या ५ प्रतिशत। गम्भीर प्रकार में मृत्यु ३० प्रतिशत। अन्य प्रकारों में मृत्यु संख्या २ से १०%।

असाध्य लक्षण—अतिअनियमित नाड़ी, विशेषत: मन्द, शक्ति का अति ह्रास सह न्यून उत्ताप, लसीकामेह, आक्षेप कण्ठ, स्फीतसह गंभीर शोथ आदि।

गल तोरणिका प्रकार में विशाल कला तथा ग्रन्थियों की अति वृद्धि, स्वर यंत्र प्रकार में अवरोध और फुफ्फुस के लक्षण, नासा प्रकार में मुक्त रक्तस्राव, पक्षवध, नाड़ी वध, श्वास क्रिया साधक पेशियों का पीड़ित होना। हृदय की निर्वलता, भयङ्कर वमन, ये लक्षण चिन्ताजनक हैं।

धन्वन्तरि ने इसकी चिकित्सा लिखते हुए रक्तमोक्षण को उचित कहा है। वमन, धूम्रपान, गंडूप वताया है।

वातज रोग में अधिक मोक्षण कराकर सैंधा नमक जवड़ों पर घिसने का लिखा है। गर्म सुहाते तैल । गंडूष वताया है।

पित्तज रोहिणी में रक्तमोक्षण कराकर रक्त चन्दन, शक्कर, मधु का प्रतिसारण करें। भावमिश्रानुसार द्राक्षा फालसे का फान्ट वनाकर उससे कुल्ले करा दें।

कफ प्रकोपक में ग्रह धूम्र सूठ, मिरच पीपल का चूर्ण घिसें। अपराजिता, विडंग, दन्तीवीज के तैल का नस्य करावें।

वालकों का उपचार सौम्य हो। वच का चूर्ण पानीमें देने से वमन होकर झिल्ली उतरती है। फिर त्रिभुवनकीर्ति लक्ष्मी नारायण रस आदि अल्प मात्रा में दें।

नासिका तथा स्वरयंत्र में ह्रास होने पर केशर मिश्रित निवाये गोघृत या षड्विन्दु तैल का नस्य दें।

अन्य उपद्रवों में तदनुसार ही उपचार करें।

आधुनिक चिकित्सक श्वासावरोध होने पर कृत्रिम श्वास नलिका वनाकर जीवनदान देते है।

प्रतिरोधक सीरम (Prophylactic serum) १/२-१/२ c. c. का मांसगत इन्जेक्शन करना चाहिए। प्रतिरोधार्थ एन्टी डिफ्थीरिया सीरम ५००-१००० यूनिट तक दिया जा सकता है परन्तु रोग होने के वाद यह सीरम देना भयावह है। इससे सीरम रोग हो जाता है जो एक भयानक अवस्था है।

चिकित्सा में एन्टीडिफ्थीरिक सीरम ४००० से १२००० यूनिट (४० से १२० c. c.) तत्काल मासांतर्गत सूची देने से लाभ होता है। १२ घंटे वाद पुन: २००० से ६००० यूनिट तक तथा पुन: १२ घंटे वाद इतनी ही मात्रा में सूची देनी चाहिए। जितनी देर के वाद इस रोग की चिकित्सा प्रारम्भ की जावे उतनी ही अधिक मात्रा में सूची लगानी चाहिए।

गले को शुद्ध करना आवश्यक है।

रोग निवृत्ति के वाद भी रोगी को सुरक्षित रखना चाहिए अन्यथा पक्षाघात आदि ऊपर वताये रोग आक्रमण कर देते हे। रोगी को एकान्त में अन्य लोगों से अलग रखना आवश्यक है।

कुछ ज्वरों की होम्योपैथ चिकित्सा

डा० वी. के. भट्टर एम. आई. एस. एस., एम. डी., एम. डी. एस.
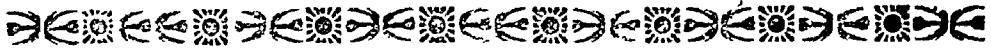
एक ज्वर (Conintued Fever)

इस प्रकार के ज्वर का कोई विशेष कारण नहीं होता, यह बहुत ही हल्के ढंग का होता है, थोड़ी देर ठहरता है। इसमें कोई विशेष डर की बात भी नहीं होती। प्राण-घातक भी नहीं होता। सर्दी लगना, बहुत ज्यादा खाना-पीना, परिश्रम अधिक, मानसिक वेदना आदि कारणों से यह ज्वर आता है। विशेषतः यह रोग बच्चों में होता है। अंग्रेजी में इसे बिलियस फीवर, गैस्ट्रीक फीवर आदि नामों से जाना जाता है।

लक्षण—सर्दी, कम्पन, पूरे शरीर मे दर्द, सिर दर्द, उल्टी या जी मिचलाना, लक्षणों के साथ ज्वर होना, एकाएक ताप में वृद्धि होना, सिर में तेज दर्द, ज्यादा प्यास, मिचली, भूख का न लगना, बेचैनी, धीमा बड़-बड़ाना, शरीर की त्वचा का सूखा सा महसूस होना। नाड़ी की गति तेज वेग के साथ, जीभ पर मैल, ताप १०२° से १०४° डिग्री तक होना। इस तरह ताप कई घन्टे अथवा कई दिनों तक रहता है। देखा ऐसा जाता है कि यह ५ या ७ दिन में उतर जाता है। १० दिन से ज्यादा भी नही रहता।

ओषधि—एकोनाईट, बेलाडोना, ब्रायोनिया, फेरम-फास, रसटक्स इयुपोटोरियम पर्फो, जेलसिमियम, वेराटा-विरीडी, इपीकाक, नक्स, पल्सेटीला, मर्क्युरियस, बेप्टी-शीया, आईरीन वर्स, एन्टीम टार्ट आदि।

एकोनाईट—यह प्रथम अवस्था की दवा है। बेचैनी, प्यास, करवट बदलना। मृत्यु भय। नाड़ी कड़ी मोटी तेज चाल आदि।

ब्रायोनिया—रोगी चुपचाप, शरीर में दर्द चुभने वाला, हिलने-डुलने पर दर्द का बढ़ना, मुंह का स्वाद कड़वा, सिर उठाने पर चक्कर आना, पित्त वमन, जीभ पर पीली मैल, कब्जियत, ओठ फटे आदि।

बेलाडोना—शरीर गर्म लाल, तेज ज्वर, शरीर का अङ्ग जो दबा रहता है, वहां पसीना होना, पसीना होने के बाद भी बुखार का कम न होना, सिर में तेज दर्द, आंख लाल, भूत आदि का डर व चौंकना, मुंह का स्वाद खट्टा, पित्त की वमन। एक बार सर्दी, एक बार बुखार, गले की गांठों का फूलना आदि।

फेरमफास एकोनाईट की तरह और एकोनाईट जेलसिमियम के बीच की दवा है।

रसटक्स—सर्दी या पानी में भीगने से पैदा हुए बुखार में। शरीर में दर्द, खास कर कमर में दर्द। छटपटी रहना—एकोनाइट, आर्सेनिक की तरह, हिलने या करवट बदलने से दर्द में कमी आती है। बुखार के साथ खांसी प्यास रहती है।

इयुपोटोरियम पर्फ—शरीर में हड्डी तोड़ दर्द, ऐंठन, पित्त की उल्टी, सर्दी का लगना, शरीर में जलन, शीत एवं ताप अदल-बदल कर, लिवर की जगह दर्द। पेशाब थोड़ा, पित्त के दस्त आदि।

जेलसिमियम—साधारणतया यह बच्चों में या हिस्टरिया प्रकृति की महिलाओं के ज्वर में या स्नाय-विक व्यक्ति में व्यवहार होती है। चेहरा लाल तमतमाया, आंखें जलभरी सुस्त, आंखें बन्द, रात में ज्वर का बढ़ना, सोना चाहना, इसके रोगी का पैर ठंडा, माथा गर्म, बातचीत पसन्द नही, अकेला रहना चाहता है, आदि।

वेरेट्रम विरिडी—इसका व्यवहार १०५°, १०६° डिग्री पर होता है। इसकी ज्यादा खुराक भी नहीं दी जा सकती। क्योंकि हार्ट की क्रिया में गड़बड़ करता है।

इपीकाक—जीभ सफेद, उल्टी, खांसी, कफ की अधिकता, गले में सांय सांय की आवाज, हरे-पीले दस्त।

नक्स वोमिका—शीत पित्त ऐंठन, सीने में जलन, अजीर्ण, स्वाद कड़वा, खाये पदार्थ की उल्टी, थोड़ा दस्त, जीभ पर सफेद मैल, नाभी की जड़ में घड़-घड़ की आवाज व दर्द आदि।

पल्सेटिला—शाम के ४-५ बजे ज्वर का बढ़ना, हाथ पांव में जलन, खुली हवा पसन्द, प्यास नहीं, गरिष्ठ

भोजन की इच्छा, मुंह में पानी भर आना, जीभ पर पीला सफेद लेप आदि।

वेप्टीशीया—इसका टाइफाईड एवं इन्फ्लूएन्जा में व्यवहार अधिक होता है। बुखार सवेरे कम, तीसरे प्रहर ज्यादा, रात में नींद न आना, प्रलाप, जीभ के नीचे का भाग थोड़ा पीला, किनारे लाल, ज्यादा प्यास, शरीर में दर्द सर्दी आदि।

आईरीस वर्ष—पित्त की अधिकता के समय छाती में तीव्र जलन, वमन, शरीर ढकने के वाद भी सर्दी मालूम होना।

ऐन्टीम टार्ट—वसन्त एवं वर्षा के समय का बुखार। गले में गडगड़ की आवाज, ओकाई, बच्चा मां की गोद से उतरना नहीं चाहता, शरीर पर कोई हाथ लगाता है तो रोता है।

कैमोमिला—रोगी क्रोधी चिड़चिड़ा, केवल टें-टें करना। कोई चीज हाथ में दे तो तोड़कर फेंक देना, गोद में शान्त। दांत निकलने के समय के लक्षणों के साथ बुखार।

स्वल्प विराम ज्वर (Remittent Fever)—

अक्सर यह ज्वर एक ज्वर के लक्षण के साथ होता है। इसके वाद दूसरे लक्षण प्रकट होते है। इसको पैत्तिक (विलीयस) व मैलेरियल रेमिटेन्ट फीवर आदि नामों से पुकारा जाता है। यह ज्वर स्वस्थ होने के समय इन्टरमिटेण्ट फीवर में वदल जाता है।

लक्षण— उल्टी, भूख का न लगना, सारे शरीर में दर्द, जलन, सिर दर्द, चक्कर, मुंह-आंख लाल, वेचैनी, नींद न आना। हल्का वड़वड़ाना, खाये पदार्थ पानी या तरलीय पदार्थ आदि की। वमन, पित्त, जीभ सूखी, होंठ फटे, सविराम ज्वर एकदम उतर जाता है परन्तु यह नहीं उतरता। सवेरे १-२ डिग्री कम होने के वाद फिर वढ़ जाना। ज्वर १०२ अंश से १०५ अंश-१०६ अंश तक आता जाता है। आधी रात के वाद ज्वर घटता भी है वढ़ता भी है। रेमीटिण्ट फीवर का भोगकाल १४-१५ दिन का होता है। हल्का वुखार रहने पर ५-७ दिन में ठीक हो जाता है। यह वुखार कभी-कभी घटने वाली अवस्था में आकर इन्टरमीटेन्ट बुखार में वदल जाता है। इसके अलावा कभी-कभी अधिक दिनों तक रहने के वाद यह सन्निपातिक टाईफाइड में आ जाता है। इ[illegible] समय अन्य उपसर्ग के कारण मृत्यु होती है तो तीस[illegible] सप्ताह के वीच होती है।

मृत्यु के निम्न कारण वनते हैं—मेनिंजाईटी[illegible] निमोनिया, पक्वाशय प्रदाह, एकाएक ज्वर वढ़कर एकद[illegible] उतर जाना, ये लक्षण मूल रोग की अपेक्षा ज्यादा भय[illegible]ङ्कर होते हैं।

लाक्षणिक दवाईयां—

एकोनाईट, एन्टीमक्रूड आर्स वेलाडोना, व्रायोनिय[illegible] चाइना; सिना, पोडोफाइलम, हायोसाइमस, जेलसिमियम, इपीकाक, मार्कसोल, ऐ० नाईट्रिक, नक्स, पल्सेटील[illegible] रसटक्स, इयुपोटोरियम पर्की, वेप्टीशिया. ओपीयम, फा[illegible] ग्लोवाईन आदि।

आन्त्रिक ज्वर (Typhoid Fever)—

इसको ऐन्टरीक फीवर याने मियादी वुखार क[illegible] हैं। यदि किसी अविराम ज्वर में सामने कपाल में भ[illegible]नक दर्द होना, वकना वहुत, वेहोशी, पेट फूलना, तल[illegible] दवाने पर गड़गड़ाना, कब्ज या अतिसार, जल्दी ज[illegible] कमजोर होते जाना। धीरे-धीरे वुखार का वढ़ना, दे[illegible] से स्वास्थ्य लाभ होना, रक्त के दस्त, जीभ पहिले ल[illegible] वाद में क्रम से सूखी, भूरी, फटी-फटी, प्लीहा का वढ़[illegible] आंखों में जख्म, इस तरह के कितने ही लक्षण हों तो [illegible] टाईफाइड ज्वर कहा जायगा। अस्वस्थ या रोगी व्यक्ति की अपेक्षा सवल मनुष्यों पर इसका आक्रमण अधि[illegible] होता है। गर्भावस्था या प्रवल वीमारी के समय श[illegible] ही इसका आक्रमण होता है। १५ से २५ की उम्र [illegible] यह वीमारी ज्यादा होती है। वच्चों या ६० वर्ष के ऊ[illegible] के लोगों में इस वीमारी के होने की संख्या कम ही [illegible] वच्चों की वीमारी में अगर उपसर्ग प्रवल नहीं है तो [illegible] भय नहीं रहता।
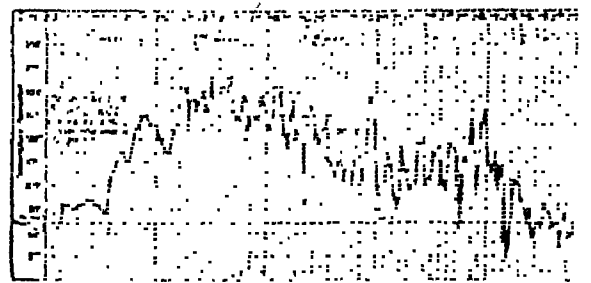
यह छूत वाली बीमारी नहीं है। इसके रोगी के मल में ही टाइफ़ाईड का विष रहता है। यह मल पानी में मिल जाय, कपड़ों पर लग जाय, मल सड़कर वायु के साथ मिल जाय आदि के कारण यह फैलने की आशंका बनाता है।

इसमें ताप की गति निम्न होती है—

प्रथम दिन	सुबह ९९.५ अंश	सन्ध्या १००.५ अंश
दूसरे दिन	,, ९९.५ ,,	,, १०१.५ ,,
तीसरे दिन	,, १००.५ ,,	,, १०२.५ ,,
चौथे दिन	,, १०१.५ ,,	,, १०३.५ ,,
पांचवें दिन	,, १०२.५ ,,	,, १०४.५ ,,

इसके बाद दूसरे सप्ताह के अन्त तक प्रतिदिन ताप १०३ से १०५ डिग्री तक चढ़ता है। सन्ध्या में जितना ताप रहता है सुबह उससे कुछ कम रहता है।

प्रथम सप्ताह—जब-जब त्वचा का सूखापन, नाड़ी की गति तेज, नाड़ी का स्पन्दन १०० से १२०, रात में नाड़ी का वेग बढ़ना, मन की अवस्था गोलमाल अथवा रोगी अपनी अवस्था अच्छी तरह समझा नहीं सकता। सिर दर्द की बात ज्यादा करता है। पेट बड़ा होना, बकना, पेट दबाने पर दर्द, दबाने पर भीतर को, गड़गड़ की आवाज, जीभ के बीच में सफेद मैल, किनारे लाल, इसके अलावा प्यास, कान में आवाज, नाक से खून, मिचली, वमन आदि कितने ही लक्षण पाये जाते हैं।

द्वितीय सप्ताह—इस सप्ताह में रोगी कमजोर हो जाता है। बुखार भी बढ़ जाता है। बुखार सवेरे कम रहता है। दिन में ११-१२ बजे के समय बढ़ता है। सन्धया को कुछ कम हो जाता है। परन्तु रात्रि में बढ़ जाता है। टाइफ़ाइड के बुखार की कोई स्थिरता नहीं होती। कभी १०२^0 तो कभी १०४^0 डिग्री तो कभी १०१ डिग्री होना, ...र ज्वर प्रबल रहता है तो फेफड़ों में कन्जेशन होता ... उसको ब्रांकाइटिस हो जाता है। सीने के भीतर सांय-सांय की आवाज, सिर दर्द, तन्द्रा में पड़े रहना, दांतों पर दूध की मलाई की तरह मैल, रात में बकना, कान में कम सुनाई पड़ना, आंख की पुतलियों का फैलना, ओठ जीभ में सूखापन इत्यादि लक्षणों का प्रकट होना। आंतों में जख्म होना इसके साथ खून के दस्त हो जाना। पखाना ६ से २० तक उस सिझाये मटर की तरह बू रहना, कभी कभी हरे झागदार दस्त, कभी-कभी कब्ज। प्रथम सप्ताह के बाद परीक्षा करने पर मोती जैसे दानों का दिखाई देना, यह पहले सीने तथा पीठ पर दिखाई देते हैं। ये दाने ७ से १५ दिन तक दिखते हैं। प्रायः रोग के अन्त तक रहते हैं। कभी-कभी इसमें मेननजाईटिस, हृदय आवरक कला का प्रदाह आदि भी हो जाते हैं। रोज बुखार रहने पर भी नाड़ी की गति धीमी रहती है। नाड़ी का यह लक्षण भी टाईफाइड के निर्णय का महत्वपूर्ण लक्षण है। श्वास प्रश्वास में चूहे की बू जैसी गंध होती है।

तीसरे सप्ताह—जिन रोगियों में कोई विशेष उपसर्ग नहीं रहते उनका ज्वर इस सप्ताह के अन्त में घट जाता है। सवेरे १००° तीसरे पहर १०१° डिग्री रहने लगता है। इस तरह से रोगी का ज्वर प्रायः २१ दिन में खत्म हो जाता है। अगर कोई अन्य उपसर्ग साथ रहते हैं तो वे चौथे सप्ताह के पास घटने लगते हैं। कभी-कभी ऐसा न होकर बीमारी कठिन रूप धारण कर लेती है।

चौथा सप्ताह—यदि उपसर्ग घट जाते हैं तो इस सप्ताह ज्वर घट जाता है। पेट फूलना दस्त आना आदि भी घट जाते हैं। भूख बढ़ जाती है। इस अवस्था को आरोग्य अवस्था कहते हैं। इस समय रोगी पर सावधानी रखनी चाहिये। अन्यथा दुबारा इसका आक्रमण हो जाता है।

टाईफाइड के प्रधान उपसर्ग—हिचकी, पेट फूलना, स्वरयंत्र में जख्म, पक्षाघात, कर्णमूल प्रदाह, मेनिन्जाईटिस, कामला, खून के दस्त, मानसिक विकृति आदि। जिनकी चिकित्सा तदनुसार ही करनी चाहिये।

टाईफाइड ज्वर के साथ टाईफस ज्वर, टाइफो मलेरिया आदि भी हो जाते हैं।

टाइफस ज्वर—इसमें ताप एवं दूसरे लक्षण एक दम बढ़ जाते हैं। ज्वर १०४°–१०६°–१०७° तक बढ़ जाता है। सवेरे बुखार घटता नहीं। रोगी बहुत भयंकर अवस्था में आ जाता है। मच्छर काटने की तरह गुलाबी दाने आ जाते हैं। ये निकलने के बाद अन्तिम अवस्था तक रहते हैं। अक्सर कब्ज रहता है। दाहिने पुट्ठों को ऊपर दबाने से दर्द या को-को गड़-गड़ शब्द प्रतीत होते हैं। समूचे सिर में दर्द, प्रायः सात आठ दिनों में ज्वर

घट जाता है। इसका समय १४–२१ दिनों का है। इसका प्रधान उपसर्ग निमोनिया रहता है।

टाईफो मलेरिया—इसमें एकाएक शरीर का ताप बढ़ जाता है। १०३°, १०४° डिग्री तक सम्भव है। इसके बाद ताप घटता बढ़ता है। इसमें स्पष्ट जाड़ा देकर बुखार बढ़ता है। ज्वर की गति नियमित टाइफाईड की भांति नहीं होती, शरीर पर अक्सर कोई दाने नहीं निकलते। त्वचा पीली रहती है, यकृत में दर्द, प्लीहा का बढ़ जाना, इसमें मलेरिया-टाइफाइड के मिश्रित लक्षण दिखाई देते हैं। कितनी बार टाइफाइड सम्पति पर मलेरिया के लक्षण प्रकट होते हैं। इसका काल भी ३-४ सप्ताह है। कभी-कभी इसका दुबारा आक्रमण भी हो जाता है। इसमें ५% से १०% तक मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते हैं।

वात ज्वर—इसमें पहली अवस्था में अंग प्रत्यंग में दर्द होने लग जाता है। वात में सन्धि स्थानों में दर्द, दर्द घट जाने पर अविलम्ब ज्वर का बढ़ जाना, इसके साथ ब्रांकाइटिस, टाइफाइड में भी इसी तरह के लक्षण रहते हैं। पर इसमें अन्तर यही है कि टाइफाइड के उदर और आंतों से सम्बन्ध रखने वाले उपसर्ग नहीं रहते। यही देख कर इसका प्रभेद किया जाता है।

उपरोक्त तीनों ज्वरों की औषधि व्यवस्था—

आर्सेनिक एल्बा, बेपटिशीया, रसटक्स आर्निका, ब्रायोनिया, डेलसिमियम, ऐसिड मयूर, ऐसिक नाइट्रिक, ऐसिक फास, नक्स मस्केट, ओपीयम, वेलाडोना, हायोसाइमस, स्ट्रामोनियम. हेलीवोरस, लेकेसीस।

आर्सेनिक एल्बा—(१) किसी बंधे समय पर रोग लक्षणों का प्रकट होना, (२) उत्तेजना अर्थात जैसे सिर में ठण्ड लग जाय, नाक से पानी, छीके आना। कुछ खाने पीने के साथ वमन इत्यादि। (३) मानसिक उद्वेग, मृत्यु भय (४) सुस्ती, कमजोरी, बैचेनी, (५) प्यास, (६) जलन, (७) दोपहर के समय बीमारी का बढ़ना। शरीर की त्वचा कभी गर्म कभी सूखी, बैचेनी, कभी पसीना कभी सुखा इत्यादि।

रसटक्स—(१) प्रलाप, हल्का छटपटाना, (२) अधीर भाव का बढ़ना, उस समय बात का जवाब न देना, (३) शरीर में कुचलने जैसा दर्द। (४) जीभ पर लाल तिकोना दाग (५) होठ, दांतों पर लाल रंग का मैल, (६) चर्म सूखा लाल आभायुक्त, (७) शरीर पर मोती की तरह दाने एवं पसीने में अजीव बदबू। (८) पेट फूलना, दाहिने पुट्ठे के ऊपर दर्द, प्लाही फुली हुई। वायु के साथ आंव मिला दस्त, कभी खून आना इत्यादि।

बेपटिशीया—(१) लाल रंग का तमतमाया चेहरा (२) जीभ के बीच में सफेद या भूरा मैल (३) सारे शरीर में भयंकर दर्द (४) ओठ दांतों पर मैल का जमना (५) सिर में भयंकर दर्द (६) पुकारने पर जवाब नहीं (७) वहुत ही वदवू वाले दस्त, पेशाव आदि में भी वदवू।

आर्निका—करीब २ बेपटिशीया के लक्षण रहते है। कुछ विशेष लक्षण निम्न हैं—(१) त्वचा सूखी लाल-आभायुक्त (२) अनजाने में पखाना पेशाव वदवू वाला (३) मस्तिष्क में रक्त संचय होना। (४) एकदम विज्ञान भाव में पड़े रहना (५) हमेशा टकटकी लगाकर देखना।, (६. चेहरे का रंग चमकीला लाल (७) माथा मुह गर्म, हाथ पैर ठंठे रहना। (८) ज्वर के साथ खांसी, बलगम खून मिला निकलता है।

ब्रायोनियां—हिलने डुलने पर लक्षणों का बढ़ना। इसलिए रोगी चुपचाप पड़ा रहता है। शरीर दर्द, दबाने पर आराम मिलता है। नाक से खून आना। ज्वर के साथ ब्राकाईटीस, सीने में सूई गड़ने की अनुभूति। कब्ज, अनजान में दस्त तन्द्रा, प्रलाप जैसेकि मै घर जाऊंगा कह कर बैठ जाता है

जेलसिमियम—जब तक यह निर्णय न हो तब तक इस पर निर्भर रहा जा सकता है। परन्तु ज्वर के साथ ठंड का भाव, चेहरा लाल, वदन में दर्द, तीसरे पहर से ज्वर का बढ़ना, जहां बीमारी हल्के ढङ्ग में हो वहां जेलसिमियम, प्रचंडता पर बेपटिशीया का व्यवहार होता है।

टाईफाईड के साथ मस्तिष्क विकार के लक्षण प्रकट होने पर इन दवाओं का विशेष महत्व है।

(१) वेलाडोना, हायोसाइमस, स्ट्रामोनियम, हेलिबोरस आदि। टाईफस ज्वर में भी करीब-२ टाईफाईड वाली दवाईयों की व्यवस्था की जाती है। परन्तु ज्वर की तीव्रावस्था में निम्न दवाईयों का प्रयोग किया जाता है—

(१) ऐसिटैनिलिडीयम ३×. (२) विरेट्रम विरिडी. ३, ६ की व्यवस्था है।

मलेरिया ज्वर —

मलेरिया की उत्पत्ति "प्लैस्मोडियम मैलेरि" नामक एक प्रकार के मच्छर से ही इस रोग की पैदाईश होती है। यह रक्त में अपना विषैला प्रभाव छोड़ देता है। इससे रक्त दूषित हो जाता है। इससे मनुष्य में रक्तहीनता पैदा हो जाती है। शरीर का रङ्ग पीला पड़ जाता है। मलेरिया विष हवा और पानी द्वारा तथा कितने ही स्थानों पर मच्छरों द्वारा यह विष शरीर में छोड दिया जाता है। मलेरिया ज्वर के कुछ विशेष नाम हैं—(१) सविराम ज्वर Intermittent Fever (२) एग्यू ज्वर Ague (३) Climalic Fever ऋतु ज्वर (४) Remittent Fever स्वल्प विराम ज्वर, आदि।

मलेरिया बुखार की तीन अवस्थाएँ होती है। (१) शीतावस्था, (२) उष्णावस्था (३) पसीने वाली अवस्था। किसी भी बुखार में इन तीनों अवस्थाओं का स्पष्ट समावेश प्रकट होता हो तो उसे मलेरिया ज्वर कहते हैं।

प्रथम अवस्था—कंपकंपी होकर बुखार आना, हाथ पांव ठंडे रहना, शीत किसी के हाथ किसी के पैर, किसी के सीने से प्रारम्भ होती है। शीत अर्थात जाड़े का दौरा होने पर रजाई, कम्बल आदि का ओढ़ना। दांत कट कटाना, वमन होना, वारवार पेशाब होना हाथ पांव ठंडे पर थर्मामीटर लगाने से ज्वर प्राप्त होगा।

दूसरी अवस्था—इस अवस्था में शरीर गर्म होता है। एक बार जाड़ा एक बार गर्म, ताप १०६°-१०७° डिग्री तक होता है। किसी दूसरे बुखार में इतने ताप पर जान जाने का खतरा बन जाता है, इसमें नहीं होता। माथे में दर्द, प्यास, पित्त वमन, दाह, भूलना, बकना, वस्त्र उतार के फेंक देना, हाथ पैर में मरोड़ इत्यादि, यह अवस्था ३-४ से ७-८ घंटे तक रहती है।

तीसरी अवस्था—इस में पसीना अधिक आता है। . से रजाई, तकिया आदि भीग जाते हैं। सिर का . घट जाता है। भूख लग जाती है। प्यास कम हो जाती है। ताप भी घट जाता है। रोगी स्वस्थ होकर . जाता है। ज्वर घटकर ९७° से ९८° तक आ जाता है। रोगी कमजोरी के अलावा कोई तकलीफ नहीं महसूस करता। इस प्रकार की अवस्था १४-१५ घंटे रहती है।

यह भी देखा जाता है कि मलेरिया ज्वर किसी न किसी बंधे समय पर आता है। इसलिए इसको भी तीन श्रेणियों में बांटा जाता है—
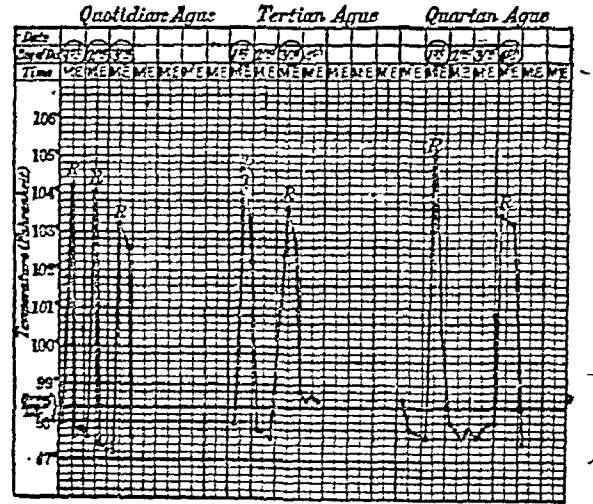
तीन प्रकार का मलेरिया ज्वर

(१) एकाहिक बुखार—याने २४ घंटे वाद ज्वर

(२) तृतीयक बुखार—याने ४८ घन्टे वाद ज्वर का आ आना।

(३) चातुर्थिक ज्वर (Quartan)—याने ७२ घन्टे के वाद आना। इस प्रकार देखा जाता है बुखार १ दिन २ दिन ३ दिन छोड़कर पारी वांध कर आता है। इस में भी कभी कभी इन नियमों का भी उलङ्घन होता है जिसको अनियमितता कहा जाता है।

मलेरिया ज्वर में साधारणतया व्यवहार में आने वाली दवाईयां–आर्सेनिक एल्वा, अन्टीम क्रूड, आर्सेनिक आयोड, चायना सिड्रोन सिनोयक, इयुपोटोरियम पर्फ, जेलसीमियम, कार्वोभेज, नेट्रम म्यूर, नेट्र सल्फ, नक्सवोम, मलेरिया ऑफ, सेवाडिला आदि।

काला ज्वर—

इस बुखार में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं। परन्तु इसकी चिकित्सा मलेरिया की तरह ही की जाती है।

(१) प्लीहा खूब बड़ी हो जाती है। (२) रक्तहीनता (३) धीमा अनियमित ज्वर (४) शीत, कम्पन, और सिर दर्द के साथ २४ घन्टे में दो वार ज्वर होना। (५) शरीर का क्रमशः सूखते जाना, रात्री को पसीना आना। (६)

नाक एवं दांत के मसूड़ों से खून का आना। (७) शरीर में लाली यिये हो जाना। (८) निम्नाग का फूल जाना। (९) पेट का फूलना। ये काला ज्वर के लक्षण हैं।
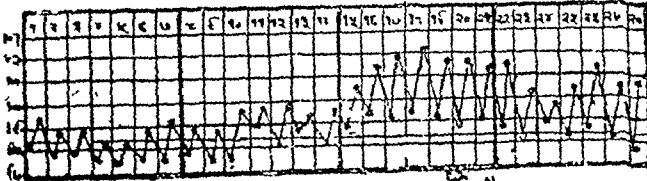
चित्र नं. १० काला-ज्वर (Kala ajar) का चार्ट-प्रौम्द प्रकार

इसमें बुखार एकदम नही टूटना, प्लीहा के अलावा यकृत भी खूब बढ़जाता है। किसी किसी रोगी के शरीर में जलन एवं राक्षसी भूख रहती है। कभी कभी दो वर्ष तक यह बीमारी भोगने के कारण पैदा हुई कमजोरी न्यूमोनिया आदि बीमारी हो कर रोगी की मृत्यू तक संभव रहती है। बहुत दिनों पतले दस्त या आमाशय की बीमारी से भुगतना बहुत ज्यादा रक्तस्राव होना। फूलना आदि खतरनाक दूसरे लक्षण हैं। शुभ लक्षण,—रोग के साथ कोई उपसर्ग न होना। ज्यादा रक्तहीनता न होना। इस बीमारी में थिलीनाइन और आर्सनिक से कोई लाभ नही होता। इसमें भी मलेरिया वाली दवाईयों की व्यवस्था रहती है। अक्सर निम्न औषधियां अनिवार्य है—

एपीस, आर्सनिक, सिनोथक, चायना, क्रोटलस, फासफोरस फेरसमेट, अर्स, आयोड, कार्डुअस, इत्यादि।

इन्फ्लुएन्जा (श्लैष्मिक ज्वर)—

इस रोग का कारण 'बैसिलस इन्फ्लुएंजा' नामक कीटाणु है जो रोगी की थूक में रहता है।

लक्षण—जाड़ा लगना, ज्वर, सिरदर्द, पलकों में दर्द, आंख नाक से पानी आना छींकें, खांसी देह टूटने जैसा दर्द, इस रोग के प्रधान लक्षण है। इसमें तापमान १०३ डिग्री होना।

कितनी ही बार अतिसार, आमाशय, पेशाब की गड़बड़ियां मौजूद रहने पर भी इन्फ्लुएंजा का प्रधान उपसर्ग-सर्दी खांसी, ब्राकाइटिस, निमोनिया है।

इन्फ्लुएंजा की ब्राकाटिस, निमोनिया में जो बलगम निकलता है, वह गाढ़ा गोंद की तरह लसदार होता है। रोगी लगातार खांसता है। रोगी बेचैन हो जाता है, तब कहीं थोड़ा सा बलगम निकलता है। साधारणतया इसका ज्वर ४-५ दिनों में सामान्य हो जाता है। यदि इसके साथ निम्न उपसर्ग साथ होजाय तो जल्द आरोग्य होने मे बाधायें आती है। जो बहुत कमजोर हो अथवा वृद्ध में इस बीमारी का आक्रमण हो तो डर की बात हो जाती है। बहुत कमजोर रोगी बार बार बलगम निकाल नहीं सकता उसकी वजह से खांसी रुक कर मृत्यु होजाती है। इन्फ्लुएंजा आराम होने के बाद भी कुछ गौण उपसर्ग प्रकट हो सकते है। जैसे—मुंह में घाव, कान की जड़ का फूलना, कान में पीब आदि।

एक तरह का इन्फ्लुएंजा और होता है जिसमें सिर में भयंकर तेज दर्द, रोगी विकार ग्रस्त होजाता है। मानसिक विस्मृति हो जाती है। सिर दर्द के साथ कान में दर्द होता है, उसको सेरिब्रोस्पाइनल इन्फ्लुएंजा कहते हैं।

इन्फ्लुएंजा में औषधि—एकोनाइट— खूब तेज ज्वर बेचैनी प्यास सूखी खांसी।

जेलसियम—शीत कंपकंपी, माथा गर्म, नाक से पानी, छींकें, हल्का सिर दर्द, जलन, देह में मरोड की तरह दर्द, चुप चाप नींद में पड़े रहना।

इयुपटोरियम पर्फो— शरीर में हड्डी टूटने की तरह का दर्द, पित्तवमन, जी मिचलाना, बहुत कमजोरी, प्यास आदि।

आर्सेनिक आयोड— इन्फ्लुएंजा की सर्दी बुखार की प्रधान दवा है। कभी शीत कभी ताप, मुंह नाक, आंख से जलन पैदा करने वाला पानी गिरना जिससे चमड़ी का गल जाना, घाव हो जाना। छटपटी एवं प्यास।

एलियम सिपा आंख नाक से बहुत ज्यादा पतला स्राव, गले में आंखों के ऊपर, सिर के पिछले भाग में दर्द, सूखी तकलीफदेह खांसी।

कैलीबाई-क्रोम—सर्दी पतली रहती है। परन्तु स्राव जहां लगे वहां की खाल उधड़ जाती है। आंख से गर्म ज्वाला निकलती है। फैरिंग्स में प्रदाह हो जाता है। सीने की बीच की हड्डी से पीठ तक दर्द रहता है। गोंद की तरह बलगम निकलता है जो तार की तरह लम्बा होकर भूल जाता है।

नेट्रम सल्फ—सर्दी लगकर रोग उत्पति, ज्वर के साथ साथ हाथ पैर, आंख, मुंह में जलन, छींकें होने पर दिया जाता है।

बेप्टीशीया—यह ऐपिडिमिक फ्लू की बढ़िया दवा है और प्रतिपेधक भी। फ्लू की नई अवस्था में, जाड़ा

शरीर दर्द शीत एवं गर्म, ११ वजे जाड़ा लग कर बुखार आना इत्यादि पर इसका प्रयोग किया जाता है।

इन्फ्लुइजम—यह वेप्टीशीया की तरह प्रतिषेधक दवा है। दूसरी दवाओं के बीच बीच मे इसका प्रयोग विशेष लाभदायक होता है। कई वार यही दवा काम कर जाती है। इनके अलावा निम्न दवाओं का भी व्यवहार किया जाता है—व्रायोनिया, वेलाडोना, नक्स, हीपर सल्फ, पल्सेटिला, अर्जेन्ट मेटाली। इसके साथ अगर ब्रांकाईटिस, निमोनिया आदि के हो जाने पर निम्न व्यवस्थ की जाती है—

नया ब्रांकाइटीस Acute form—एकोनाईट, ब्रायोनिया, फास ऐन्टीम टार्ट, इपीकाक सेन्जुनेरिया, एमोन कार्ब, पाइलोकर्पिन—

पुराने रोग में निम्न व्यवस्था औषधि की होती है—एमोनियेकम, आर्सेनिक, सेनेगा क्यू. सल्फर, फास, एमोन म्यूर, स्क्रूयूला इत्यादि औषधियां दी जा सकती हैं।

वेदों में उपलब्ध कुछ वैदिक ज्वर :: :: पृष्ठ ३०२ का शेषांश

रखा जा सकता है जिसमें आंखों में से, नाक से अधिक पानी गिरता है उसे भी विचाराधीन किया जा सकता है। दोषानुसार इनका उपचार किया जाना उत्तम है। दाह ज्वर में शीतोपचार तथा कफ ज्वर में उष्णोपचार। रूरु ज्वर की व्याख्या करते हुए सायण ने इसे दाहपूर्वक होने वाला ज्वर माना है। इसे पित्तज्वर कह सकते हैं।

एक ज्वर को अथर्व में शारद ज्वर[7] भी कहा गया है। इसका वर्णन भेल ने भी लिखा है। जनपद विभक्ति या अध्याय (भे. सू. १२) मे भेल ने लिखा है। वर्षा ऋतु के अन्त में सूर्य के सन्ताप से सहसा संचित हुआ पित्त-उद्रेक होकर देह धारियों मे शरद ऋतु मे ज्वर उत्पन्न करता है। यह जानपदिक या (महामारी) का ज्वर है। अथर्व वेद में विश्व शारद ज्वर का वर्णन भी है। सायण ने इसे शरद ऋतु मे व्यापक रूप मे फैलने वाला ज्वर कहा है। इससे यह स्पष्ट है कि शरद ऋतु मे यह शारद ज्वर दो प्रकार से होता था—प्रथम सामान्यत: रोग होता था तथा दूसरा व्यापक रूप से फैलता था। ये दोनो ही अपने नाम से शारद ज्वर तथा विश्व शारद ज्वर से सुस्पष्ट है। शरद ऋतु में पित्त दाह के कारण ज्वर होता है। सम्भव है यह आंत्रिक ज्वर भी हो, परन्तु स्पष्ट संकेतों के अभाव में स्पष्टतया कुछ भी कहना सम्भव नहीं है।

ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होने वाले ज्वरों मे वेदों में ग्रीष्म ज्वर का नाम प्राप्त होता है। अथर्व वेद में वन्य ज्वर का नाम भी प्राप्त होता है।[8] यह जंगल ज्वर या वनका ज्वर स्थान परक नाम हो। इनका नाम ही प्राप्त है। आज भी जंगल ज्वर मान्य है।

च्यवन ज्वर का उल्लेख भी[9] वेदों में मिलता है। सायण ने इसे प्रसेकाधिक्य लक्षणों वाला ज्वर माना है। कई ज्वरों में स्वेदाधिक्य लक्षण भासते हैं। विशेषत: विषम ज्वर में तथा पित्त ज्वरों मे। इसी लक्षण को लक्षित कर इस ज्वर का लाक्षणिक नामकरण किया गया हो। चाद्रेन ज्वर को सायण ने इधर-उधर दौड़ने वाला ज्वर कहा है जिसका उल्लेख वेदों में है। इसका तात्पर्य तेज तथा शक्ति कम होकर वार वार चढ़ने वाला ज्वर जा सकता है।

इसके सिवाय धृष्णुज्वर तथा हायन[10] ज्वर का उल्लेख वेदों मे प्राप्त है। इसकी व्याख्या करते हुए सायण ने कहा है धृष्टतापूर्वक चढ़ने वाला ज्वर तथा धान्य काटते समय चढ़ने वाला ज्वर। धृष्णु ज्वर लक्षण संज्ञा प्राप्त है तथा हायन ज्वर समय संज्ञा प्राप्त है। आधुनिक शास्त्र में हार्वेस्ट फीवर का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार वेदों में कुछ ज्वरों का नामोल्लेख मिलता है। परन्तु स्पष्ट वर्णन उपलब्ध न होने के कारण अधिक कुछ कहना सम्भव नहीं है।

---

[7] अथर्व ८।२२।२३ [8] अथर्व ६-२०-३ [9] अथर्व ७।११८।१६ [10] अथर्व ७।११६।१८।

डा० 'श्याम'. एन. डी., नाथ नगर

चिकित्सा प्रणालियों में प्राकृतिक चिकित्सा अपना महत्व रखती है। आधुनिक युग के अनेक नेताओं का समर्थन इसे प्राप्त है। इस चिकित्सा पद्धति के प्रसार को देखते हुए हम यहां कुछ ज्वरों का उपचार प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा करने की विधि का उल्लेख कर रहे है।

ब्रांकाइटिस (श्वास नलिका प्रदाह)—

प्राकृतिक चिकित्सा की मान्यता के अनुसार कण्ठ में या श्वास नलिका में कुछ विजातीय पदार्थ संक्रमण कर लेते है और यह रोग पैदा हो जाता है। इसमें शुष्क कास, स्वरभंग, श्वास कष्ट तथा छाती और गले में दर्द, गाढ़ा कफ निस्सरण आदि लक्षण होते हैं। इस रोग में ज्वर १०४-१०५ डिग्री तक होता है। पुराना तथा नया दो प्रकार का माना गया है।

नये ज्वर में दो दिन का उपवास, फिर रसाहार, पश्चात् फलाहार, दिन में दो बार गर्म जल का एनीमा, छाती पर उष्ण जल की गीली पट्टी के प्रयोग से लाभ होता है। गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल एक औंस ऐसी दिन में ६ मात्रा पिलाना। इसी जल से पट्टी भिगोकर गले पर रखने से नवीन ब्रांकाइटिस चला जाता है।

पुराने ज्वर में क्षार धर्मी आहार तथा कुछ व्यायाम आवश्यक है। रसाहार ३-४ दिन देकर कब्ज न टूटने तक नित्य एनीमा, फिर सादा भोजन। मौसम्बी, फल, शाक, सब्जी, सूखे मेवे, धारोष्ण दूध, चोकर समेत आटे की रोटी, छिलकेदार दाल, सलाद देनी चाहिए। शाक तरकारियों को न अधिक पकाना चाहिए न अधिक मिरच मसाले ही डालने चाहिए। कच्ची सब्जी को काटकर उसमें कागजी नीबू का रस मिलाकर सलाद के रूप में लेना चाहिए।

व्यायाम में प्रातः स्वच्छ वायु में टहलना, गहरी श्वास लेना, अलग-अलग करना चाहिये।

गर्म पानी रोगी को पिलाकर सिर पर ठंडे पानी में तौलिया को भिगोकर रखना चाहिये तथा पैरों पर गरम पानी का नहान देना चाहिये। फिर उदर स्नान दें। तत्पश्चात् गरम सूखी कम्बल ओढाकर पूर्ण विश्राम दें। ऐसा दिन में दो बार करें। बढ़े रोग की दशा में छाती पर वाष्प स्नान, कन्धों पर उष्ण गीली पट्टी ३-३ घन्टे के अन्तर से दें। गरम जल पिलावें तथा वाष्प नाक तथा मुख द्वारा सेवन करें। नीबू का रस मिला जल अधिकाधिक पिलावें। खुली हवा में रक्खें।

नारङ्गी रंग की बोतल में सूर्य किरण का जल १-१ औंस दिन में ४ बार पिलावें।

पीलिया (कामला)—

इस रोग में पेशाब का रङ्ग पीला होता है। धीरे-धीरे आंख, नाखून, चमड़ी भी पीले पड़ जाते है। इसमें ज्वर तापमान १०६ डिग्री से १०७ तक हो जाता है। इस रोग में वमन तथा कण्डू और देह मर्द होता है। रोग का मुख्य कारण यकृद दोष है। पित्त छोटी आंत में न आकर रक्त में मिलना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार यह पित्त सम्पूर्ण देह में भ्रमण करने लगता है।

जब तक रोग का जोर रहे तब तक अवस्थानुसार. रोगी को ७ दिन तक उपवास रखाकर नीबू के पानी तथा सन्तरे के रस पर ही रखना चाहिए। आवश्यक होने पर अन्य फलों का रस भी दिया जा सकता है। ऐसा १४ दिन करना उचित है.। एनीमा नित्य लगा दें। धीरे-धीरे रोग ठीक होने की अवस्था में फलों का प्रयोग तथा फिर उबली हुई या कच्ची सब्जी, रोटी देनी चाहिए। सप्ताह में एक बार गुनगुने पानी से स्नान कराना चाहिये तथा नित्य ही स्पंज स्नान देना चाहिए।

हल्के व्यायाम तथा सांस सम्बन्धी श्रम करने से लाभ होने में प्रगति होती हैं। यकृद शोथ कम करने के लिए उस स्थान पर गरम पानी का कपड़ा रखकर २०-२० मिनट तक सेक करना चाहिए। खुजली की अवस्था मे गोले के तैल में नीबू डालकर मथकर फिर देह पर मलना चाहिये। कटि स्नान दिन में दो बार, पैरों पर गरम स्नान सप्ताह में दो बार कराना चाहिए। कब्ज टूटने तक कटि पर भीगी पट्टी लगाकर सोना चाहिए। यदि कफ के संग्रहीत होने से पित्तवाहक नली में रुकावट हो तो गरम पानी में नमक डालकर कै करना चाहिए। हल्की नीली बोतल में जल डालकर सूर्य किरण से तप्त कर नित्य दिन में ६ बार पीना चाहिए।

बेरी बेरी—

यह रोग गरम देशों का है। मानव देह मे विटामिन 'बी' की कमी के कारण होता है। स्नायु मण्डल शिथिल हो जाता है। भूख नही लगती। कब्ज रहता हे तथा पचन संस्थान कमजोर हो जाता हे। इस रोग मे स्नायु संस्थान नेत्र तथा हृदय विशेष रुप से प्रभावित होता है। इस रोग मे कमजोरी, रक्तहीनता, सांस का फूलना, शोथ, अतिसार, ज्वर, रक्तस्राव, हृदय रोग तथा यकृद दोष सामान्य पाये जाते है। यह रोग कई प्रकार का होता है।

प्रथम दो तीन फलों का ताजा रस तीन-तीन घन्टे में देना चाहिये। नित्य एनीमा लेकर पेट साफ करना चाहिये। फिर एक सप्ताह सूखे फल, रसदार फल, दूध तथा सायं कभी कभी हरी भाजी का सलाद या उबली तरकारी देनी चाहिये। फिर सुबह फल तथा दूध, दोपहर में रोटी तरकारी तथा रात्रि में फल तरकारी लेना चाहिये।

प्रात: नित्य वाष्प स्नान, रात्रि में कमर में भीगी पट्टी लगाकर सोना। सप्ताह में एक बार एप्सम साल्ट बाथ, कब्ज रहने पर एनीमा। हृदय पर प्रभाव होने पर आराम। सम्पूर्ण देह पर तेल मालिश आवश्यक है।

इन्फ्लूएन्जा—

ठंड लगकर हल्का ज्वर, गले में खराश, कभी तेज ज्वर, नाक में शोथ, सर्दी, सिर दर्द, पीठ, टांगों में घोर पीड़ा, कास कफ वृद्धि लक्षण होते है।

नीबू मिश्रित गरम जल का प्रयोग करें। उपवास रखे। फिर फलों का रस या सब्जी का गर्म सूप दो-दो दिन बाद सब्जी का सूप। सुधार होने पर रोटी का प्रयोग करें। साधारण गरम जल एनीमा। ५-६ मिनट के लिए वाष्प स्नान, पावों में गर्म जल का स्वेदन। ज्वर अधिक होने पर मिट्टी को ठंडे पानी मे भिगोकर पेड़ू पर रखें। दो तीन बार सिर धोकर तौलिया मे स्नान देना चाहिये। दिन में एकबार १ घन्टे के लिये गीली लपेट भी लगायें।

सहायता के लिये १-४ बूंद रसौत का रस गर्म जल मे मिलाकर ४-४ घन्टे से पिलाना चाहिये। गर्म जल में अजवायन की पोटली डालकर उबालकर अर्धावशेष रहने पर थोड़ा थोड़ा पिलाने से लाभकारी है।

सौंठ, कालीमिरच, पीपर, दालचीनी, जीरा सब बराबर लेकर चूर्ण बना ले। मात्रा—३ माशा से ६ माशा तक गर्म जल मे लेने से लाभ होता है।

मलेरिया—

यह मच्छरों का रोग है। अंगमर्द, शीत देकर ज्वर होना, पसीना देकर उतरना, फिर चढ़ना आदि लक्षण
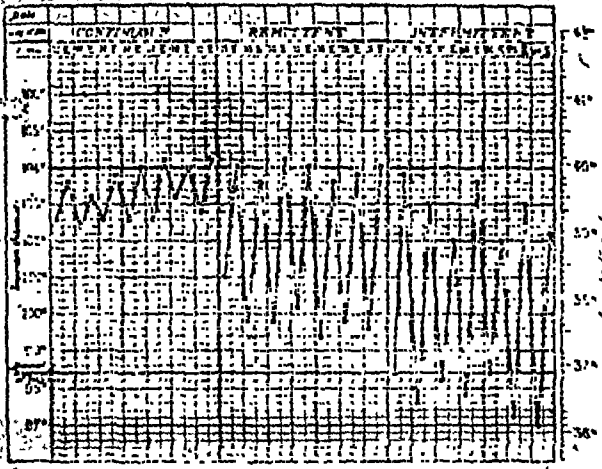
मासते हैं। ज्वर १०५ डिग्री तक हो जाता है। यह नित्य, एकान्तर, तिजारा, चौथिया आदि प्रकार का होता है।

मलेरिया की उत्पत्ति पेट की खरावी से होती है। अनियमित आहार तथा गन्दगी भी इसके कारण हैं। यदि हमारा मेदा वा खून साफ हो तो यह रोग नहीं आ सकता। यह वर्षा ऋतु का रोग है।

सर्वप्रथम भोजन का त्याग। पैरों को गर्म स्नान देकर कटि स्नान देना चाहिये। ज्वर जब तक उतर न जाय तब तक गर्म जल में नीवू का रस डालकर २–२ घन्टे के अन्तर से देना। कुछ दिन बाद ठंडे जल में नीवू का रस दें। यदि मल साफ न आता हो तो दोनों समय एनीमा गर्म जल का देना चाहिए। फिर एक वार, एकन्तर इस प्रकार कम कर देना चाहिए। सोते समय पैरों में गर्म जल लगाना।

ज्वर तेज होने की दशा में पेडू पर गीली मिट्टी रखना। ज्वर कम होने तक मिट्टी वदल कर लगानी चाहिये। और अधिक होने पर सिर पर ठंडे पानी की पट्टी रखें। सिर अधिक गर्म होकर बैचेनी वढ़ने पर बर्फ की पट्टी रखनी चाहिए। तीन दिन वाद ऊपर लिखे उपचार दें। जाड़ा कम्प आने के १५ मिनट पूर्व समूचे शरीर पर भीगी चादर लपेट कर न्यूट्रल बाथ देनी चाहिए। आधा घंटे पूर्व वाष्प स्नान देना चाहिए।

ज्वर कम होने पर रोगी को वाष्प स्नान, उदर स्नान २० मिनट तक दें। चार पांच घंटे वाद एक मेहन स्नान २५ मिनट का देवें। जिस दिन वारी न हो आतप स्नान दें। गत दिन में एक वार स्पंज स्नान तथा रात को सोते समय कमर पर गीली पट्टी लगा कर सोना चाहिए।

१ औंस नीली वोतल का सूर्यतापी जल दिन में ३–४ वार पिलाना चाहिये। कब्ज होने पर पीली वोतल का जल रात में सोते समय पीवें। जाड़ा लगने की अवस्था में गहरी नीली बोतल में सूर्य तप्त तैल की मालिश वक्ष पर करनी चाहिये।

वारी के दिन घी के साथ लसुन खिला देने से ज्वर नहीं आता। तुलसी पत्र ३–४ पीस कर गर्म जल में पीने से लाभ होता है। ज्वर उतरने के वाद भी खाने पीने में जल्दी नहीं करनी चाहिए। ज्वर विल्कुल न रहने पर टमाटर, संतरा, मौसमी, अंदरक रस पीना चाहिए। फिर हरी तरकारी का सूप लेना चाहिए। फिर फल दूध लेकर सादे अन्न पर रोगी को लाना चाहिए।

टाइफाइड—

यह मयादी बुखार है। इसमें पेट की खरावी का प्रभाव पड़ता है। इस रोग में छोटी आंतों के निचले हिस्से में मल सड़ने से छाले पड़ जाते हैं। छाले ठीक होने पर ही टाइफाइड ठीक होता है। इस प्रक्रिया में ३ सप्ताह लग जाते हैं। इससे अधिक समय भी लग सकता है। टाइफाइड तथा टायफस फीवर में पहले दिन से ही भयकर ज्वर नहीं होता अपितु ५–७ दिन तक ज्वर आता है और उपचार ठीक न होने पर टाइफाइड में बदल जाता है। इस रोग में ज्वर हर समय वना रहता है। ज्वर ९९-१०१ से १०२ या १०३ तक रहता है। विशेष दशा में १०५ तक हो जाता है। ज्वर अधिक होने पर वेहोशी आ जाती है। कभी कभी अतिसार भी हो जाता है। खून का दस्त आना चिन्ताजनक अवस्था है। इस ज्वर में सन्ताप को
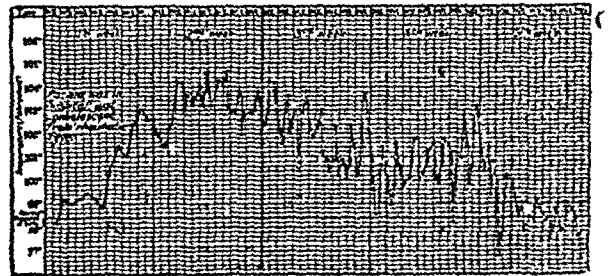
आंत्रिक ज्वर का तापमान चार्ट

देखते हुए नाड़ी की गति मन्द होती है। जिह्वा का अग्र भाग लाल-लाल दानों से युक्त हो जाता है।

उपचार करते समय रोगी को पूर्ण विश्राम, मल मूत्र की सुविधा निकट ही होनी चाहिये। स्थान तथा देह की सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए। औटाकर ठंडा पानी पिलाना चाहिये। यह ज्वर मयादी है परन्तु यदि प्रारम्भ से ही उपवास, गर्म जल पान एनीमा एवं नित्य स्पंज बाथ दिया जाय तो यह भयंकर रूप धारण नहीं करता और निरन्तर रोगी को आराम मिलता रहता है। रोगी यदि अधिक शिथिल है तो २-३ दिन उपवास देकर फिर फलों का रस पिलाते रहना चाहिये। किशमिश पानी में भिगोकर वह पानी पिलादें तथा दूध को फाड़ कर उसका पानी पिलावें तो उत्तम रहता है।

ज्वर उतरने के बाद भी सावधानी की आवश्यकता है। प्रथम दिन दूध पानी मिलाकर दें। दूसरे दिन दूध पानी के साथ फलों का रस दे। फिर केवल दूध। इसके बाद फुल्के की पपडी, उबली सब्जी। फिर ग्यारहवें दिन रूखी रोटी तथा सब्जी फल दूध देना चाहिए।

गहरी नीली बोतल का सूर्य तप्त जल, पीली बोतल का सूर्य तप्त जल देते रहना चाहिए। अतिसार की अवस्था में भी नीली बोतल का जल लाभ देता है।

हठी टाइफाइड का उपचार करते समय पेट साफ करने के लिए एनीमा, २ घंटे बाद गीली चादर लपेटनी ६ घंटे तक रखनी। इसके बाद स्पंज बाथ ३ दिन बाद पेडू स्नान ४-५ बार पेडू पर आध आध घंटे के लिए गीली पट्टी। एक दो सप्ताह बाद पैरों में गर्म पानी रख कर मेहन स्नान देना चाहिए। दिन में २ बार प्रातः सायं पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखने के पूर्व ५-७ दिन तक वाष्प देना चाहिए। बेहोशी की स्थिति में दिल पर ठंडे पानी की भीगी पट्टी बदल बदल कर १५-२० मिनट तक कर्ण। तेज ज्वर में भी पेडू पर गीली मिट्टी रखनी चाहिए। पेट में दर्द होने पर पेट पर गर्म तथा ठंडे पानी का सेक करना चाहिए।

प्लेग—

यह भयंकर मारक रोग है जो महामारी की तरह फैलता है। यह चूहों का बुखार है। ४ प्रकार का होता है

(१) ब्यूबोनिक—गिल्टी वाला—जांघ बगल में गांठें पड़ जाती है। एक के बाद दूसरी फिर तीसरी इस प्रकार फूटती हैं। कभी कभी एक साथ कई गांठे उपड़ आती हैं। गांठ का फूटना शुभ है बैठना मारक।

(२) न्यूमोनिक—फेफड़ों से होता है। इसमें न्यूमोनिया के लक्षण होकर फैफड़ों से रक्त स्राव होता है। यह घातक है।

(३) सेप्टीसीमिक—शरीर में सड़ांद पैदा कर देता है। रक्त विपाक्त हो जाता है। शरीर की क्रियायें बन्द हो जाती हैं, जीना मुश्किल हो जाता है।

(४) इंटेस्टिनल—यह आंतों का प्लेग है। इसमें रोगी की आंतों पर आघात होता है। पेट फूलता है। वमन तथा अतिसार, उदर आध्मान इसके लक्षण हैं।

यह रोग उग्रता से फैलता है।

प्लेग होने का भ्रम होते ही गिल्टी निकली हो या ज्वर हो, एनीमा देकर पेट साफ कर ले। शरीर में स्टीम बाथ आध घन्टे तक देवें। वाष्प स्नान लेते समय कभी-कभी मुख खोलकर वाष्प को पेट में उतारने का यत्न करें। स्टीम बाथ के बाद ४-४ घन्टे से मेहन और उदर स्नान बारी-बारी, आध-आध घन्टे तक करें। पहला स्नान तो स्टीम बाथ के तुरन्त बाद ही लेवें। यदि प्रथम दिन की स्टीम बाथ से पसीना काफी न आवे तो दूसरे दिन एक स्टीम बाथ और लेवें। यदि फिर अधिक पसीना न निकले तो गीली पट्टी लगावें। यदि गिल्टी निकल आई हो तो उस पर २-२ घन्टे से १५ मिनट तक वाष्प देकर बाकी समय में उस पर गीली मिट्टी, बर्फ जल या खूब ठंडे पानी में भीगे कपड़े की पट्टी बांध दें। उष्ण पट्टी भी बांधी जा सकती है।

आसमानी रङ्ग की बोतल का सूर्यतापी पानी पिलावें। यह पानी १ ग्राम की मात्रा में ५-५ मिनट से पिलाना चाहिए। जब तक रोग न जावे, उपवास आवश्यक है। रोग की उग्रावस्था में पैर व शरीर की भीगी पट्टी एक घंटे तक रखकर उसके बाद स्पंज स्नान लाभकारी है।

न्युमोनियां प्लेग में मिट्टी की गीली पट्टी पूरी छाती पर दिन में २-३ बार बांधनी चाहिये। सिर दर्द में सिर पर गीले कपड़े की ठण्डी पट्टी रखे तथा बदलता रहे।

पथ्यादि साधारण ज्वरवत ही रखना चाहिए।

बचने के उपाय—

चूहों के मकान को छोड़ दें। साफ मकान में रहें। नालियों को साफ रखें। भोजन सुपाच्य लेवें। कोष्ठबद्धता न होने दें। एनीमा आवश्यकतानुसार लेते रहे। बाजार की चीजें नहीं खावे। देह में विजातीय द्रव्य उत्पन्न न होने देवें। प्लेग के मरे हुये चूहों को मिट्टी का तैल डालकर जला देना चाहिये। नंगे बदन होकर धूप सेवन करें। रोगी से परेज रखें। प्लेग के मुर्दे को भी जलाना चाहिए और कपूर की माला पहने, प्याज खावें। नीबू का पानी पीवें।

डेंग्यू फीवर—

यह रोग शरीर में विजातीय द्रव्यों का संग्रह होने से होता है। यह ज्वर अचानक आता है, तेजी से बढ़ता है तथा अच्छा होकर पुनः पुनः आक्रमण करता है। जोड़ों तथा हड्डियों में दर्द होकर ज्वर आता है। मुख लाल होकर सम्पूर्ण देह में लाल लाल फुन्सियां उभर आती है। बेचैनी बढ़ जाती है तापमान १०२ से १०५ तक रहता है। तीन दिनों में रोग शान्त हो जाता है। फिर ज्वर आता है कभी कभी यह क्रम १ मास तक रहता है।

इस ज्वर में एनीमा, उपवास, नीबू का रस युक्त जल गर्म पानी, ठंडा पानी प्रचुर मात्रा में दें। साफ हवादार कमरे में रखना, दिन में तीन चार बार सिर धोना, भीगे तौलिये से शरीर को पोंछना, कटि स्नान मेहन स्नान, नीबू तथा मधु मिश्रित शीतल जलपान देना उत्तम है। फल का रस सूप उचित समय पर देवें।

पीली तथा आसमानी बोतल का पानी पिलावें।

फाइलेरिया—

यह गरम जलवायु वाले देशों का रोग है। कीटाणु जन्य रोग है जिसके कीटाणु जल द्वारा पेट में प्रवेश करते हैं। जिस व्यक्ति के शरीर में विजातीय द्रव्य होते हैं उनके शरीर में यह रोग पैदा होता है। इस रोग में तापमान १०५ डिग्री होता है। इसके दौरे पड़ते है। फोतों तथा गुर्दों की चमड़ी मोटी हो जाती है और उनमें फटने जैसा दर्द होता है।

उपचार करते समय दोनों समय एनीमा लगाना चाहिये। १ से २ सप्ताह तक उपवास चलाना चाहिये। इसके बाद १ से १॥ मास तक फल रस तथा तरकारियों का सूप लेना चाहिये। कुछ दिन रखकर फिर फलाहार तथा दुग्ध देना चाहिये। दो मास बाद सब्जी पक्की तथा दलिया तथा चोकर की रोटी देनी तथा फिर धीरे २ साधारण भोजन पर आ जाना चाहिये।

इसकी पूरक चिकित्सा पूर्व लिखित विधि से की जानी चाहिये।

कालाजार तथा अरुण ज्वर—

उपरोक्त दोनों ही ज्वर विजातीय द्रव्यों के संग्रह से ही आते है। प्रथम ज्वर में वेग होता है तथा अरुण ज्वर में देह लाल पीडिकायुक्त हो जाता है। इन दोनों ही ज्वरों का कारण साधारण ज्वरों की तरह ही होता है। अतः इनका उपचार भी उसी तरह होना चाहिये।
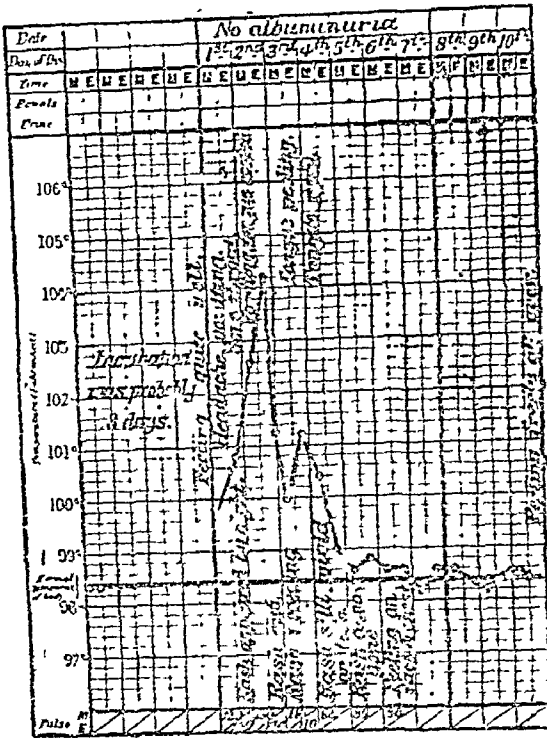
अरुण ज्वर का तापमान चार्ट

उपवास, पट्टी, फलरस, सूप, शीतजल प्रसेक, स्पंज स्नान, कटि स्नान, एनीमा आदि सभी उपचार साधारण ज्वरवत होने चाहिये।

इस ज्वर में भी नीली बोतल का सूर्यतप्त पानी दिन में ३-४ बार पिलाना चाहिये।

गर्दन तोड़ बुखार—

रीढ़ और मस्तिष्क जिस झिल्ली से ढका रहता हैं उसमें प्रदाह होने से यह ज्वर होता है। रोग होने के पूर्व से ही भूख बन्द हो जाती है। सिर दर्द बेचैनी होती है। जोर का ज्वर रहता है जो १०३ डिग्री से ज्यादा होता है। ज्वर सर्दी लगकर होता हैं। वमन तथा हृल्लास प्रतीत होते हैं। सिर, पीठ तथा सम्पूर्ण देह में वेदना होती है। प्रलाप तथा मूर्च्छा रहती है। गर्दन तथा पीठ की मांस पेशियां कठोर हो जाने के कारण मस्तक एक ओर झुक जाता है। कभी कभी वहरापन तथा अन्धापन के चिन्ह भी दीखते हैं।

रोग लक्षण प्रकट होते ही रोगी को किसी हवादार कमरे में लिटा दें। रोगी को एनीमा लगाकर पेट साफ रखना चाहिये। शीतल स्वच्छ परन्तु अधेरे कमरे में रोगी को लिटावें। गीली चद्दर लपेटे। फिर घर्षण स्नान करावे फिर दो घण्टे के वाद सिर तथा पृष्ठवंश पर ५-७ मिनट तक वाष्प स्नान दें। वाकी समय में बर्फ जल की गीली पंट्टी रखे। बर्फ का प्रयोग नंगे चमड़े पर हरगिज न करें। शीतल पट्टी का प्रयोग करते समय पैरों पर गर्म कम्बल आदि लपेट रखे। पसीना हो जाने पर उतार दे। यह क्रिया डेढ़ घन्टे तक करे। नित्य दो वार मेहन स्नान भी इस रोग में आवश्यक है। कठोर मांसपेशियों पर वाष्प स्नान, गरम पट्टी का लेप, गरम मिट्टी का लेप, गरम जल का प्रसेक देना। यह क्रिया दिन में २-३ वार, ५-७ मिनट तक करे। पेड़ू तथा कमर पर गीली पंट्टी रात भर रखें।

उपवास पथ्यादि नियमित सामान्य ज्वरों के समान ही करे।

राजयक्ष्मा—

यह रोग छूत का है तथा वंशगत भी है। प्रथम अवस्था में फुफ्फुसों में गांठें उत्पन्न होती हैं। दूसरी अवस्था में गांठें कमजोर हो जाती हैं तथा तीसरी अवस्था में गांठों की कठोरता मिटने लगती है। वहां छोटे छोटे गढ़े वनकर पीव पड़ने लगती है। चौथी अवस्था में रोगी के मुख से कफ रक्त आदि निकलने लगते हैं। रोग पुराना होने पर सम्पूर्ण शरीर में रोग व्याप्त हो जाता है और मुख मण्डल पीला पड़ जाता है। रक्ताल्पता, शिथिलता
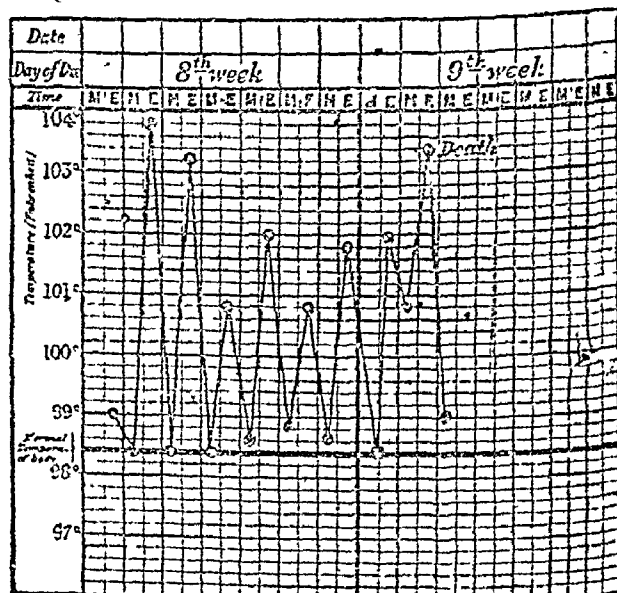
स्पष्ट दृष्टिगत होती हैं। शरीर सूखने लगता है। वजन घटता है।

इस रोग में पूर्ण विश्राम आवश्यक है। शुद्ध वायु, सूर्य प्रकाश तथा मानसिक चिन्ता त्याग आवश्यक है। प्रातःकाल सूर्योदय के समय श्वास व्यायाम तथा दैहिक व्यायाम करना उत्तम है। शौच से लौटने के बाद ७ दिन तक एनीमा लेना चाहिए। फिर आवश्यकतानुसार दूसरे, तीसरे या चौथे दिन लेवे। एनीमा के बाद १० मिनट तक घर्षण कटिस्नान, शाम को मेहन स्नान १० मिनट। दिन में २ बार, दो घन्टे तक छाती पर गीला लपेट तथा ज्वर न हो तो कटि पर गीली लपेट लगानी चाहिए। ज्वर हो तो पेड़ू पर गीली मिट्टी ३० मिनट तक लगावे। नित्य दिन में एकबार १५-२० मिनट तक छाती पर नीले कांच में होकर सूर्य किरण लगा वें। नित्य शरीर को गीले कपड़े से पोंछना चाहिए।

आवश्यक होने पर १ घन्टे तक पैरों पर गीली तौलिया लपेट रखें। दिन में एक या दो बार २०-३० मिनट तक ठंडे तैल की मालिश करें। मालिश छाती व पीठ पर नहीं करनी चाहिए तथा पैरों के तलवे के नीचे गरम पानी की थैली रखनी चाहिये।

राजयक्ष्मा के रोगी को उपवास जहां तक हो नहीं कराना चाहिये। एक सप्ताह तक खट्टे फलों का रस, मक्खन, क्रीम मिली तरकारी सूप, बकरी का दूध. छेने का पानी मधु आदि पौष्टिक तरल पदार्थ देने चाहिए। इसके बाद धीरे धीरे उबली सब्जी आदि देनी चाहिये। नीबू का रस पानी में कई बार पिलाना चाहिए। तेज मिरच मसाले का त्याग आवश्यक है।

काली गाय का दूध, मक्खन, बाजरा की रोटी तथा आम देना चाहिए। लहसुन तथा शहद देना उत्तम है। लहसुन को सूंघना भी लाभप्रद है। पवन मुक्तासन इस रोग में लाभकारी है।

केले का थम्मे के निचले हिस्से का रस निकाल कर आधी छटांक रस बकरी के दूध में मिलाकर २-२ घन्टे से छः बार पिला दें। रोगी को १-१ तोले गौमूत्र प्रति घन्टा पिला दें। इसके सिवाय खाने-पीने को कुछ न देवें।

प्लूरिसी—

यह भी फुफ्फुस का रोग है फेफड़े की झिल्ली में शोथ या रस भर जाता है। यह दो प्रकार की होती है—सूखी तथा रसभरी। वक्ष में दर्द, कंपकपी देकर ज्वर, सूखी कास ये इसके लक्षण हैं।

इस रोग का उपचार करते समय सर्व प्रथम रोग का पता चलते ही रोगी को गर्म जल में नीबू का रस मिलाकर पिलावें। उपवास दें। तदन्तर धीरे धीरे फल रस, सूप तथा भोजन देवें। इस रोग में भी पूर्ण विश्राम आवश्यक है।
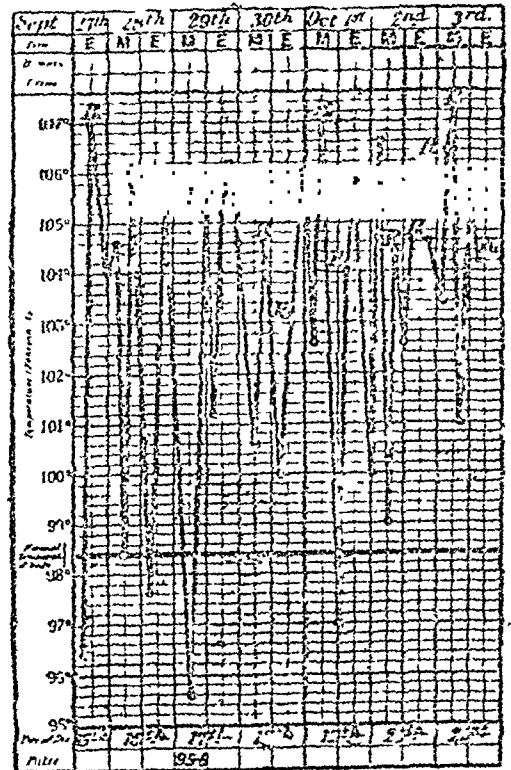
प्लूरिसी ज्वर का तापमान चार्ट

ऊपर जीर्ण प्रकार —दायें तीव्र प्रकार

—शेषांश पृष्ठ ३२४ पर देखें
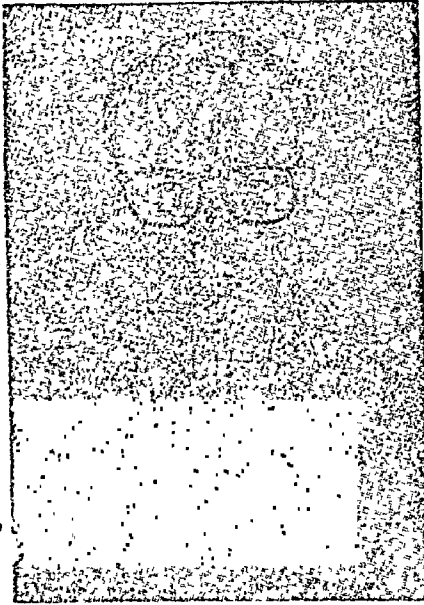
असाध्य ज्वर

आयुर्वेदाचार्य डा. दाऊदयाल गर्ग ए., एम. बी.एस.,
आयु० वृह
प्रधान सम्पादक– धन्वन्तरि
गुलजार नगर, रामघाट रोड, अलीगढ़

* * * * * * * * * * * * * * * * * * *
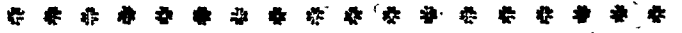
हेतुभिर्वहुभिर्जातो वलभिर्वहु लक्षणः ।
ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रिय नाशनः ।।
ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गम्भीरो दैर्घरात्रिकः ।
असाध्यो वलवानयश्च केश सीमन्तकृज्ज्वरः ।।
—च० चि० ३

जो ज्वर वहुत अधिक तथा वलवान कारणों से उत्पन्न हो तथा लक्षणों की प्रचुरता हो, इन्द्रियों की ज्ञान शक्ति शीघ्र ही नष्ट होजाये वह ज्वर प्राणघातक या असाध्य होता है। क्षीण तथा शोथयुक्त रोगी का ज्वर भी असाध्य होता है। गम्भीर (अन्तर्वेग तथा गूढ़ लक्षणों वाला) ज्वर दीर्घ काल तक वने रहने पर तथा जिसमें अकस्मात् वालों में मांग निकली दिखाई दे ऐसा वलवान ज्वर भी असाध्य होता है।

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया ।
आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वास कासोद्गमेन च ।।
—सु. उ. ३९

अन्तर्दाह, प्यास, मल और वायु का अत्यन्त अवरोध, तथा कास की अधिकता से गम्भीर ज्वर का ज्ञान करना चाहिए।

आरम्भाद्विषमो यस्तु यश्च वा दैर्घरात्रिकः ।
क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गम्भीरो यस्य हन्ति तम् ।।
विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा ।
शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ।।
—सु. उ. ३९

आरम्भ से ही यदि ज्वर विषम स्वरूप का हो अथवा जो दीर्घ कालानुवन्धी हो वह भी असाध्य होता है। क्षीण एवं अतिरूक्ष शरीर वाले रोगी का गम्भीर या अन्तर्दाह युक्त ज्वर भी असाध्य होता है। जो रोगी संज्ञाहीन (वेहोश) होकर पड़ा रहता है, वाहर से शीत के कारण पीड़ित लेकिन अन्दर उष्णता रहे तो ऐसा ज्वर असाध्य ही होता है।
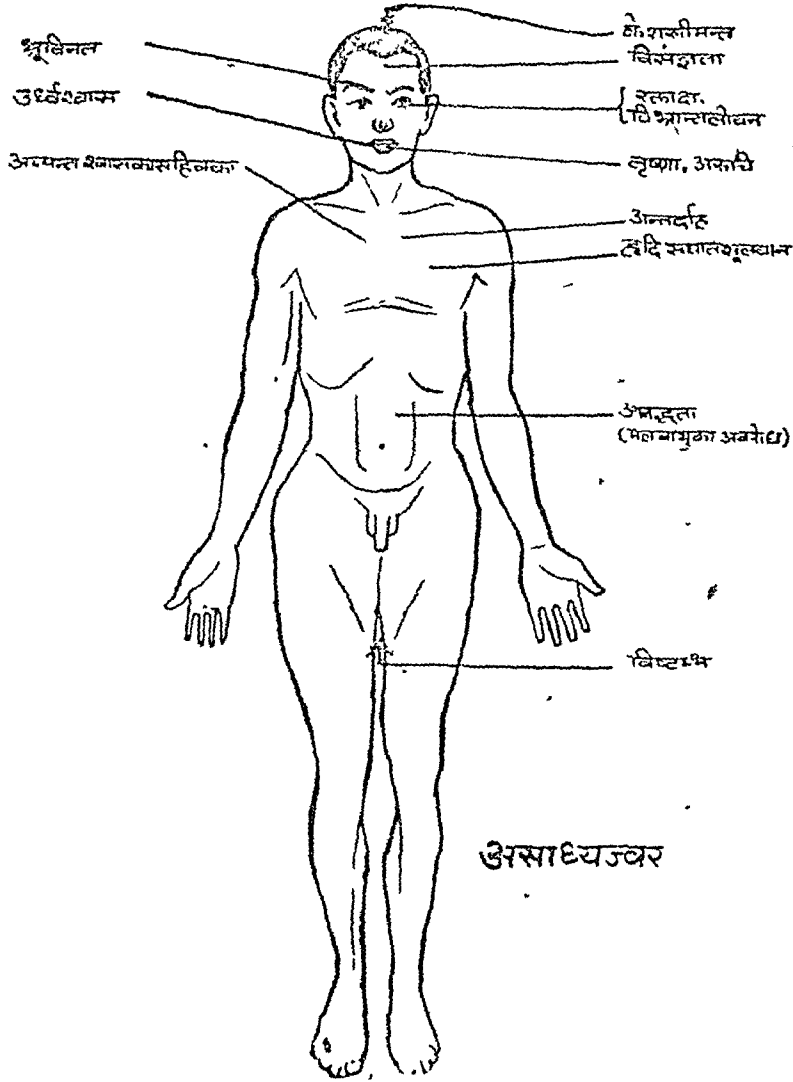
असाध्यज्वर

यो हृष्ट रोमा रक्ताक्षो हृदिसंघात शूलवान् ।
वक्त्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम् ।।
हिक्का श्वास तृपायुक्तं मूढं विभ्रान्त लोचनम् ।
सन्ततोच्छ्वसिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ।।
हृत प्रभेन्द्रियं क्षीणमरोचक निपीडितम् ।
गम्भीर तीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं व परिवर्जयेत् ।। —सु० उ० ३९

जिस ज्वर रोगी के रोम हर्षित हों अर्थात् खड़े हों, आंखें लाल हों, हृदय में पत्थर की चोट के समान अथवा विविध प्रकार का शूल हो तथा जो मुंह से ही श्वास लेता हो वह असाध्य होता है।

हिचकी, श्वास तथा प्यास मे युक्त, मूर्च्छित तथा जिसके नेत्र अस्थिर हों और जो निरन्तर दीर्घ श्वास ले रहा हो एवं क्षीण हो ऐसा ज्वर रोगी असाध्य है।

जिसकी प्रभा एवं इन्द्रियों की विषय ग्रहण शक्ति नष्ट हो गई हो जो क्षीण हो, अरुचि से पीड़ित हो एवं जो अन्तर्दाह के तीक्ष्ण वेग से पीड़ित हो वह ज्वर रोगी असाध्य होता है।

ज्वर के उपद्रव और उनकी चिकित्सा

आयु० वृह० कवि० श्री शिवकुमार शास्त्री D. S.c. A.
भू० पू० सदस्य—इं० मै० वोर्ड तथा धार्मिक एवं आयुर्वेदिक ग्रंथों के रचयिता, रावतपाड़ा, आगरा

जिस प्रकार समस्त प्राणियों में मानव शरीर की महत्ता है ठीक उसी प्रकार से ही रोगों में ज्वर रोग की प्रधानता मानी जाती है। आचार्य पं. भाव मिश्र जी ने स्वरचित प्रसिद्ध ग्रन्थ भाव प्रकाश मे ज्वर प्रकरण के प्रारम्भ मे ऐसा ही निम्नलिखित श्लोक द्वारा वर्णन किया है—

यतः समस्त रोगाणां ज्वरे राजेति विश्रुतः।
अतः ज्वराधिकारोत्र प्रथमं लिख्यते मया॥

धन्वन्तरि मासिक पत्र के अध्यक्ष एवं प्रधान सम्पादक महोदय तथा श्रद्धेय वन्धु आयुर्वेद केशरी श्री जोशी जी विशेष सम्पादक ज्वर चिकित्साक दोनों ही विद्वान वन्धु को ज्वर चिकित्सा अंक से धन्वन्तरि का वृहत विशेषांक इस वार प्रकाशित करना अभीष्ट हुआ है। मुझे उक्त विशेषांक में अपने द्वारा ज्वर के उपद्रव और उनकी चिकित्सा का संक्षेप में वर्णन करना अभीष्ट हुआ है। ज्वर स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न होने वाला रोग जहां होता है वहा यह प्राणियों को होने वाले रोगों तथा कष्टों के साथ मे भी अवश्य उपस्थित हो जाने वाला होता है। एतदर्थ ही ज्वर को रोगराट् अर्थात रोगों का सम्राट माना जाता है।

प्रथम यहां उपद्रव की व्याख्या लिखी जाती है। 'रोगारम्भक दोष प्रकोप जन्योऽन्यविकारः सः उपद्रव उच्यते। (माधव निदान)।' वह रोग जो किसी दूसरे रोग के साथ उत्पन्न होने के पश्चात् मूल व्याधियों के आरम्भ करने के कारण उत्पन्न होता है तथा जिसकी चिकित्सा मूल व्याधि की चिकित्सा के साथ विना किसी प्रकार के प्रतिवन्ध उपस्थित हुए हो जाती है, उसे ही उपद्रव सम्वोधन किया जाता है।

संसार में जिस प्रकार उपद्रव नाम वड़े विघ्न एवं भय का वोध कराने वाला है ठीक इसी प्रकार से आयुर्वेदीय शास्त्र का उपद्रव भी सांसारिक उपद्रव शब्द से कम भयावह नही होता है। चिकित्साकाल में उपद्रव होने का समाचार ज्ञात होते ही रोगी, रोगी के सम्वन्धी, परिचारक और चिकित्सक सवको ही भयभीत कर देता है। किन्तु वास्तव मे सदैव ऐसी स्थिति नही मान लेनी चाहिये। आचार्य पं० भाव मिश्र जी ने इस भय के निवारणार्थ ही निम्नलिखित श्लोक द्वारा ऐसा ही उपदेश किया है—

सजातोपद्रवो व्याधिस्त्याज्योनस्य चिकित्सकैः।
व्याधौ शान्ते प्रणश्यन्ति सदस्यः सर्वोपद्रवः॥

अर्थात् उपद्रवों के उत्पन्न होने पर वैद्य को रोगी की चिकित्सा करते समय अधीर न होना चाहिये। उपद्रवों को सदैव भयावह नहीं मानकर उपद्रवों का ध्यान रखते हुये मूल व्याधि की चिकित्सा करने पर मूल व्याधि शांत होने पर उप्रद्रव भी स्वयमेव शांत हो जाते हैं।

स्मरणीय—कभी-कभी मूल व्याधि से उपद्रव अधिक वलवान कष्टकर एवं अनिष्टकारी स्थिति में होने पर उपद्रवों को चिकित्सा द्वारा प्रथम शान्त करना आवश्यक हो जाता है। साथ ही रोगी की सान्त्वना हेतु भी ऐसा करना

आवश्यक हो जाता है। उपद्रव की उपेक्षा करने से यदा-कदा सङ्कटापन्न स्थिति हो जाना भी सम्भव हो जाता है। अतः जिन उपद्रवों की आशुकारिता के साथ अधिक हो जाने की आशङ्का हो, उनकी चिकित्सा तुरन्त करनी चाहिये। मूल व्याधि की चिकित्सा के साथ उपद्रवों की अवहेलना करना कदापि उचित नही समझना चाहिये। चिकित्सा करने में यह सुविधा अवश्य रहती है कि इन दोनों प्रकार के रोग के कष्टों के जन्मदाता दोप एक ही होते हैं। यहां अब हम ज्वर में होने वाले उपद्रवों की संख्या का वर्णन प्रथम कर रहे है। इसके पश्चात् उपद्रवों की चिकित्सा का वर्णन किया जायगा। आचार्य प्रवर अग्निवेश ऋषि ने निम्नलिखित श्लोक द्वारा ज्वर के उपद्रवों की संख्या दस बतलाई है—

विरेको विड्ग्रहोवातृट् कासः श्वासोङ्ग रुग्वहि।
हिक्का मूर्च्छारुचिश्चापि ज्वरस्योपद्रवादश ॥

१. ज्वर में दस्त पतले हो जाना २. अथवा विबन्ध हो जाना ३. प्यास अधिक होना ४. खांसी अधिक हो जाना ५. श्वास अधिक हो जाना ६. शरीर में दर्द अधिक हो जाना ७. उल्टी होना ८. हिचकी होना ९. बेहोशी होना, १०. अरुचि होना आदि। ज्वर मे उपरोक्त उपद्रवों के हो जाने पर इनके द्वारा होने वाले कष्टों से प्रायः सब लोग ही अच्छे प्रकार से परिचित होते हैं। इस कारण से ही आयुर्वेद के आचार्यों ने बिना उपद्रवों के ज्वर को अधिक सुविधा से साध्य होने वाला बतलाया है।

बलवत्स्वल्प दोषेषु ज्वर अल्पोऽनुपद्रवः।

अर्थात् रोगी बलवान हो ताकि उपद्रवों के कष्टों को सहन कर सके। रोग को प्रारम्भ करने वाले दोप अधिक विकृत एवं अधिक शक्तिशाली न होवें तथा ज्वर के रोगी के साथ में अधिक उपद्रव नही होवें तब ज्वर रोगी की चिकित्सा अधिक सुविधापूर्वक हो जाती है।

उपर्युक्त उपद्रवों की संख्या के अतिरिक्त ज्वर रोगी को ज्वर अधिक तीव्र होना। अथवा एकदम झटके के साथ न्यून हो जाना, मूत्र का अवरोध होना, अति स्वेद आना, प्रलाप आदि उपद्रव भी चिकित्सा काल में चिकित्सक के सम्मुख प्रायः आते रहते है। इनमें से ज्वर का अति तीव्र होना भी भयंकर परिणाम वाला होता है। अतः ऐसी स्थिति में खाने की औपधियों के साथ बाह्य उपचार चन्दनादि तैल को कटोरी में बरफ पर रख ठण्डा करके शिर पर मर्दन करके शीतल जल में भिगोकर वस्त्र की पट्टी तैल मर्दन के पश्चात बारबार मस्तिष्क पर रखना तथा अधिक आवश्यकता होने पर बरफ को कूटकर दोहरे वस्त्र में पोटली बनाकर दिमाग अर्थात् शिर के आगे के भाग पर बार-बार रखें। एवं आइस कैप में बरफ कुटी भर कर इसे दिमाग पर ज्वर की तीव्र दशा में जब तक ज्वर कम न हो जावे, तब तक बराबर रखते रहना चाहिए। ज्वर की तीव्रता न्यून करने के लिए मुख द्वारा सेवन करने वाली औपधियों में संतापशामक मिश्रण का प्रयोग करें। संताप शामक मिश्रण की निर्माण विधि— गोदन्ती भस्म ८ तोला प्रवाल पिष्टी ४ तोला, जहर मोहरा खताईपिष्टी २ तोला शुद्ध पारद शुद्ध गंधक की कज्जली समान भाग वाली २ तोला जटामांसी १ तोला दाने छोटी इलायची १ तोला नईखस वस्त्रपूत १ तोला चन्दन असली १ तोला भीमसैनी कपूर ६ माशे सबको पक्के खरल में खरल करके (घोंटकर) पक्के कार्क की शीशी में भरलें। मात्रा ४ रत्ती से १ मासे तक १।-१। घन्टे या दो-दो घंटे बाद तक रोग की अवस्थानुसार निम्नलिखित ज्वर पाचक अर्क में घोलकर प्रयोग करावें—

ज्वर पाचक अर्क की निर्माण विधि—रक्त चन्दन, पदमाख, धनियाँ खाने वाला नया, गिलोय हरी, नीम की अन्तर छाल प्रत्येक ३-३ छटांक रात्रि को ११ सेर जल में भिगोकर प्रातः भवका यन्त्र द्वारा १० बोतल अर्क निकाल ले। यही ज्वर पाचक अर्क की निर्माण विधि है। मात्रा २॥ तोले से ५ तोले तक एक बार में सन्ताप शामक मिश्रण मिलाकर पिलावें। यदि रोगी को अधिक तृषा बेचैनी आदि हो तब इस अर्क में १ से २ तोला तक शर्बत गुल बनफ्सा उत्तम बनाया हुआ भी साथ मे मिलाकर पिलावे। ज्वर की अति तीव्रावस्था में अतिसार का वेग अधिक होना भी बड़ा मारक तथा भयप्रद हो जाते हुए देखा जाता है। अतः उसका उपचार भी यहां लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। यदि ज्वर की तीव्रावस्था में रोगी को बार-बार पानी से तीव्र विरेचन होते हों तब बरफ कूट पोटली में बांध रोगी की नाभि पर लगभग २०-२५ मिनट तक बार-बार रखते रहे। इसके पश्चात् २ रत्ती अहिफेन, ३ मासे जायफल, ६ मासे मोचरस, सूक्ष्म चूर्ण जल में पीसकर रोगी की नाभि के चारों ओर पतला सा लेप करके शीतल जल में भिगोया हुआ पतला

दोहरा वस्त्र वार-वार रखते रहें तथा दिमाग पर चन्दनादि तेल भी रखते रहें। उपरोक्त लिखित सन्तापशामक मिश्रण के साथ खाने की औषधि भी पूर्वलिखित अनुसार वरावर प्रयोग कराते रहें। अधिक आवश्यक होने पर हम १ से २ गोली तक सूर्य वटी की भी जल के साथ सेवन करा देते हैं। इस प्रकार चिकित्सा करने पर मन्थर
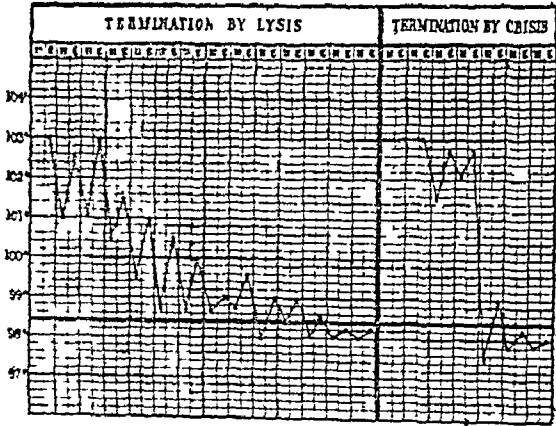
दायें– ज्वर का एकदम तेजी से गिर जाना

ज्वर से ग्रसित मरणासन्न रोगियों को हमने अनेकों वार प्राण रक्षा होते हुए पाई हैं। ज्वर के एकदम न्यून होने पर ठंडा पसीना आदि होने पर वृहद कस्तूरी भैरव रस एवं लघु कस्तूरी भैरव रस का यथा स्थिति प्रयोग कराना चाहिये। साथ में जवाहर मोहरा एवं खमीरा गाजवां, अम्वरी यथा आवश्यक मात्रा में देते रहना उचित होता है ताकि हृदय दौर्वल्यता के कारण रोगी का अनिष्ट न हो जाये। चिकित्सक वन्धु रोगी के अन्य साधारण उपद्रवों की चिकित्सा करके ज्वर रोगी को रोगमुक्त करें। (इससे विशेष अधिक चिकित्सा विधि लिखने में विशेषांक में स्थानाभाव हो जाने की आशंका से पूर्णरूप से लिखना उचित नहीं समझा गया है। अतः इतना ही ज्वर के उपद्रवों के विषय में लिखना उचित प्रतीत हुआ।)

विशेष—हृद्दौर्वल्य एवं हृद्कम्प के कारण स्वेद और हाथ पैर, चेहरा अथवा समस्त शरीर पर यदि शीतलता एवं जकड़न आदि होने की दशा हो जावे तव संजीवनी सुरा उत्तम १० से २० बूंद तक का सेवन कराना भी वड़ा चमत्कारी गुणकारी होता है। किन्तु शीतांग स्वेद के साथ यदि अतिसार भी रोगी को चल रहे हों तव संजीवनी सुरा के स्थान में कर्पूरासव, कर्पूरासव की १० से २० तक बूंदों में वृ० कस्तूरी भैरव, सिद्ध मकरध्वज आदि मिलाकर १५-१५ मिनट के पश्चात् ३-४ मात्रा में सेवन कराना प्रभावशाली परमोपयोगी अर्थात् प्राण रक्षक सिद्ध होता है।

विभिन्न ज्वरों की प्राकृतिक चिकित्सा :: :: पृष्ठ ३१९ का शेषांश

पेड़ू पर गर्म ठंडी सेक दिन में ३ वार। नित्य साधारण एनीमा। छाती पर १० मिनट गर्म सेक, फिर २–२ घण्टे वाद १-१ घण्टे के लिये छाती पर गीली पट्टी लपेटे। जब तक ज्वर न उतर जाये तथा छाती में दर्द रहे यह व्यवस्था चालू रखनी चाहिए। दिन में एक दो वार पैरों पर १०-१५ मिनट तक गीली तौलिया रखें। शरीर में विजातीय द्रव का अधिक भार हो तो सातवें दिन या पन्द्रहवें दिन गीली चद्दर अवश्य लपेटनी चाहिए। फेफड़े के जमे रस को सुखाने के लिये दिन में एक वार धूप स्नान कराना चाहिये। इस रोग में जल का (पान) उपयोग कम करे। छाती पर गहरे नीले शीशे से सूर्य किरण १० मिनट तक डालनी चाहिये। यह समय धीरे-२ वढ़ाते जाना चाहिए। दिन में सोना वर्जित है।

पीली बोतल का सूर्य तप्त जल आधा छटांक दिन में ३-४ वार पिलाना चाहिये। पैरों में गरम स्नान, घर्षण कटि स्नान तथा पेड़ू पर गीली पट्टी का प्रयोग करना चाहिये।

ताजे आंवले का रस नित्य प्रातः पिलाना उत्तम है। लहसुन का ४ बूंद रस जल में डालकर ४-४ घण्टे से रोगी पिलाना चाहिये। छाती पर कपूर सैंधव तथा गौ घृत की मालिश करनी चाहिए।

कुछ ज्वर नाशक वनौषधियां

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु० केशरी, विशेष सम्पादक–'धन्वन्तरि'
मकराना मोहल्ला, जोधपुर (राजस्थान)

गिलोय—

यह गुडूची, गिलो, गिलोय आदि नामों से सभी की जानी हुई वल्लरी है। इसे लेटिन में टिनोस्पोरा कार्डी-फोलिया मायर्स कहते हैं। यह हर जगह उपलब्ध होती है। जितना पानी उपलब्ध होगा उतनी ही पुष्ट होगी। वही गुणप्रद होती है।

इसकी शाखाओं से डोरें निकलकर जमीन की ओर लटकते है। इसके पत्ते पान की तरह बड़े, गोल नुकीले निकले होते है। वसन्तऋतु मे इसके पत्ते पीले पड़कर गिर जाते है और जेठ तक नवीन पत्ते निकल आते है। फूल पीले होते है। फल मटर के समान तथा पकने पर लाल होते ही बीज टेढ़े मेढ़े होते तथा चिकने होते है।

इसका मूल तथा काण्ड औषधि प्रयोग मे आता है। प्रयोग करते समय इसकी ऊपर की छाल उतार दी जाती है। यह कड़वी होती है। मई के माह में इसका संग्रह करना उत्तम रहता है। इसी की एक दूसरी जाति और होती है जिसे टिनोस्पोरा मलाबारिका मायर्स कहते हैं। इन दोनों के गुणों में विशेष अन्तर नही है। कुछ विद्वान इसे सुदर्शन कहते है।

गुण—कटु, तिक्त, कषाय रसयुक्त। विपाक में मधुर। रसायन, संग्राही। उष्ण वीर्य, लघु, वलकारक, अग्निदीपक, त्रिदोष, आम, तृषा, दाह, मेह, कास पांडु, कामला, कुष्ठ, वातरक्त, ज्वर, क्रिमी, वमन को मिटाती है।

रसायनिक संगठन काडत्वक मे गिलोइन, ग्लूका-साइड, वर्वेरिन गिलस्ट्रोनाक पदार्थ मिलते है।

गुडूची सत्व—इसकी डण्डी को साफ कर, छोटे-छोटे टुकड़े कर लें। फिर कूटकर चौगुने जल मे डालकर २४ घन्टे भीगा रहने दो। फिर अच्छी तरह मसल कर पतले कपड़े में छान ले। सत्व नीचे बैठने के बाद ऊपर का जल धीरे-धीरे निकाल दें। नीचे के सफेद सत्व को सुखाकर वोतल में रखलें।

गुडूची घन सत्व—उपरोक्त प्रकार से गिलोय को टुकड़े कर भिगोकर छान ले, फिर उस छने हुये जल को उबाल कर ठन्डा दें। पीछे रहने वाला चूर्ण धूप में सुखा-कर काम में लें।

ये जीर्ण विषम ज्वर, प्रसूति ज्वर, जीर्ण ज्वर आदि समस्त ज्वरों में काम में आती है। यह स्वेदल है। आम-वातज्वरनाशक, कामलानाशक है। कामला मे इसके डंठल की माला बनाकर गले में रखनी चाहिए। इसका स्वरस पिलाने से रक्त मूत्रता (Blood urea) ठीक होता है। वंशलोचन, इलायची, नागरकेशर, गिलोय सत्व मिलाकर शहद में चटाने से क्षय रोग मिटता है। गुडूची फाट पित्त ज्वर को नाश करता है। ज्वर के अन्य उपद्रव वमन आदि में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

चिरायता—

इसे किरात कहते हैं। लेटिन में इसे Swertia Chirata कहते हैं। यह औषधि भी सुप्रसिद्ध है।

यह हिमालय पहाड़ के गरम प्रान्तों में होती है। पृथ्वी के सब देशों में २८० प्रकार का चिरायता पाया जाता है। हमारे देश में इसके ३७ प्रकार है।

यह वर्षायु क्षुप है। यह २ से ५ फिट ऊँचा होता है। काण्ड नारङ्गी, फालसा, या जामुनी, मूल की तरफ गोल मोटा, बहु शाखी होता है। पत्र चौड़े मालाकार होते हैं। प्रत्येक स्थान पर दो दो हरिताभ और रोमश ग्रन्थियां होती हैं। पुष्पित होने पर इसे उखाड़ कर बेचते हैं। यह अत्यन्त कड़वा होता है।

गुण—कटु तिक्त, ज्वर नाशक, सारक, रूक्ष, शीतल, लघु, सन्निपात, श्वास, कफ पित्त रक्त दोष, दाह, कास, शोथ, प्यास, कुष्ठ ज्वर, व्रण और कृमि नाशक है।

यह दो प्रकार का होता है कड़वा तथा मीठा। कड़वा अति तिक्त होता है तथा मीठा अर्ध तिक्त।

रसायनिक संगठन—इसमें चिरातीन, और ओफेलिक एसिड नामक कड़वे पदार्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त यवक्षार, चूना, राल, ओलिक् पामिटिक और स्टियरिक अम्ल भी इसमें पाये जाते हैं।

प्रयोग—दीपक, पाचक, पौष्टिक, ज्वरहर, दाह शामक, पित्त विरेचक, कृमिघ्न है। भूख लगाता है, कब्ज तोड़ता है। जीर्ण ज्वर में लाभदायक है।

महानुदर्शन चूर्ण का यह एक बड़ा घटक है। यूनानी में इसका अर्क भी काम में आता है। आयुर्वेद में फान्ट तथा क्वाथ काम में आते हैं। भू-निम्बादि चूर्ण भी इसी का योग है। अधिकतर यह अन्य औषधियों के साथ प्रयोग होता है। जीर्ण ज्वर में इसका तैल मालिश करते हैं।

पित्त ज्वर में दाह होने पर इसका फान्ट मधु मिला कर देने से लाभ होता है। गिलोय सत, चिरायता फान्ट रूप में लाभ करता है। पारी के ज्वर में इनका फान्ट दिया जाता है। ज्वर की शिथिलता को भी यह हटाता है।

करंज—

इसके २ भेद होते हैं। कण्टक करंज तथा घृत करंज। भाव प्रकाश में तीन भेद हैं तीसरा है करंजी। वृक्ष करंज का नाम नक्तमाल है। इसे लेटिन में पोन्गेमिया ग्लाब्रानेण्ट कहते हैं।

यह सभी प्रान्तों में पाया जाता है। सड़कों के किनारे, बगीचे में नदी के किनारे यह वृक्ष होता है। यह साधारण ऊंचा वृक्ष है। पत्ते पशवत हरे रंग के चमकीले, चिकने, संख्या में ५-७ आयताकार, नुकीले होते हैं। फल जरा गुलाबी आसमानी छाया लिये हुए होते हैं। एक दलपत्र बड़ा होता है और अन्य चार दल पत्रों को ढंके रखता है। पुष्प जमीन पर बिछ जाते हैं। फलियां चिकनी, चपटी, कठोर, एक बीजयुक्त, धूसर रंग की होती हैं। बीज चपटे कृष्णाभ तैलयुक्त होते हैं।

गुण—यह कुष्ठघ्न, आमवात नाशक, क्रिमि नाशक, व्रणरोपक, कासहर, पाचन, हृदय रोगों में लाभदायक है। मलेरिया ज्वर की यह उत्तम औषधि है।

रासायनिक संघठन—इसमें पोन्गेमाल, या होंगे तैल, करंजीन। नामक रवेदार पदार्थ प्राप्त होता है।

कटकरंज जिसे लेटिन में Caesalpinia Bonducella Fleming कहते हैं, के बीज विषम ज्वर की उत्तम औषधि है।

यह कांटेदार सघन गुल्म होता है। सीधे तीक्ष्ण तथा पीले रङ्ग के कांटे होते हैं। पत्ते संयुक्त द्विपक्षाकार तथा १-२ फीट लम्बे होते हैं।

फलियां चौड़ी आयताकर २-३ इंच लम्बी—१-२ बीजों से युक्त होती हैं। ऊपर कांटों से ढकी रहती है। बीजों में पीताभ श्वेत गूदा होता है जो कड़वा होता है। इसमें मज्जा ४२ प्रतिशत तथा छिलका ५८ प्रतिशत होता है।

रासायनिक संघठन—इसके बीजों में बेण्डुसीन नामक कड़वा ग्लूकोसाइड चूर्ण रूप में पाया जाता है। यह श्वेत रङ्ग का होता है जल में नहीं घुलता। बीजों में २० से २४ प्रतिशत तक दुर्गन्धित तैल निकलता है। इसके सिवाय स्टार्च, शर्करा, सिटोस्टेराल, फाइटोस्टेराल, हेप्टोकोसेन पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण—इसके बीजों की मज्जा उष्ण, रूक्ष, बल्य, ज्वर प्रतिबन्धक, ज्वर हर, शोथघ्न, अल्पस्तम्भक, रक्त स्तम्भक, वेदनाहर, क्रिमिघ्न है। विषम ज्वर, सूतिका ज्वर में लाभ करता है।

इसके बीज अर्ध विसर्गी ज्वर, साधारण ज्वर, सन्तत ज्वर, शीत ज्वर, मलेरिया में लाभदायक है। इसे खाली पेट नही देना चाहिए।

सूतिका ज्वर में बीजों का चूर्ण अति लाभदायक होता है। ज्वर कम होता है, गर्भाशय संकोचन करता है शूल कम होता है, आर्तव शुद्धि होती है तथा व्रणों में भी लाभ होता है।

इसकी जड़ की छाल का क्वाथ पिलाने से बारी से आने वाला ज्वर उतरता है। चढ़े ज्वर को उतारने के लिये ३–६ ग्राम इसके बीजों का चूर्ण गर्म पानी से देना चाहिए।

सप्तपर्ण—

इसे सतौना या छितवन कहते है। इसका लेटिन नाम Alstonia Scholaris (एल्सटोनिया स्कोलेरिस)।

यह वृक्ष सभी जगह मिलता हे। इसमें सात पत्ते एक साथ होते है। बागों में, सड़कों के किनारे यह मिलता है। आर्द्र प्रान्तों में होते हैं।

वृक्ष सुन्दर, विशाल, सीधा, छायावाला, सदा हरा, क्षीरयुक्त होता है। पत्ते चिकने आयताकार, ऊपर से चमकीले परन्तु नीचे से श्वेताभ ४–८ इंच लम्बे होते है। पुष्प हरिताभ श्वेत गुच्छों में आते हैं। फली एक साथ दो नीचे लटकती है।

इसकी छाल गहरे धूसर रङ्ग या भूरे रङ्ग की, पुरानी बहुत खुरदरी होती है। स्वाद में तिक्त होती है।

गुण—छाल उष्ण, तिक्त पौष्टिक, कषाय, स्तम्भक, क्रिमिघ्न, स्तन्य जनक, दीपक, कुष्ठघ्न है। विषम ज्वर में लाभकारी है।

आधुनिक परीक्षणों के अनुसार यह ज्वर कम करती है विशेषतः मलेरिया को रोकती है। पाचन में सुधार होता है। मन्द ज्वर चला जाता है।

प्रसूति के पश्चात इसका क्वाथ देने से दुग्ध की मात्रा बढ़ती है तथा ज्वर नहीं आता।

पर्पट—

पित्तपापड़ा—विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न वृक्षों को पर्पट कहते है अतः इसका एक नाम नही है। कटु रस प्रधान होने से सभी प्रकार के पित्त पापड़ों में कुछ न कुछ गुण तो मिलते ही है। यह संग्राही, शीतवीर्य, तिक्तरस युक्त, दाहनाशक, वात कारक, लघु होता है। यह पित्त, रक्तदोष, श्रम रोग, तृषा, कफ और ज्वर में लाभप्रद है। विभिन्न प्रान्तों में पाये जाने वाले पित्त पापड़ों के नाम ये है—

(१) ओल्डेन्लेण्डिआ, कोरिम्बोसालिन (२) फ्यूमेरिय इण्डिका (३) पोली कार्पिया कोरिम्बोसा लिन (४) जस्टीसिया प्रोकम्बेन्स लिन (५) ग्लासोकार्डिया लिनी ऐरी फोलिया (६) मोल्युगो स्ट्रिक्ट लिन।

इसमें संख्या (१) पित्त ज्वर नाशक, वात ज्वर नाशक, रोमान्तिका में लाभदायक, अर्धविसर्गी ज्वर जीर्ण मलेरिया नाशक है। प्रसेक लाता है। सन्तत ज्वर में इसका प्रयोग होता है।

संख्या (२) स्वेदजनक, मूत्रल, तिक्त पौष्टिक। ज्वर प्रतिश्याय, गंडमाला, राजयक्ष्मा, कफ ज्वर, पित्त ज्वर, विबन्ध नाशक है।

संख्या (३) विष नाशक है। सर्प विष निवारक।

संख्या (४) मूत्रल, मृदु विरेचक, स्वेदकारक, पित्त ज्वर नाशक, दाह शामक है।

संख्या (५) स्वेद जनक, ज्वर नाशक, गर्भाशय संकोचक। शेष गुण पित्तपापड़े के समान।

संख्या (६) दीपक, अनुलोमक, विषम ज्वर हर, आर्तव जनक प्रसूता को इसकी साक खिलाई जाती है। भूख बढ़ाता है। मलावरोध नाशक है। आर्तव शोधक है।

ये पर्पट अकेले काम में नहीं आकर अन्य औषधियों के साथ काम आते हैं।

निम्ब—

एक सुप्रसिद्ध वृक्ष है। लेटिन नाम एजाडिरेक्टा इन्डिका।

गुण—शीतवीर्य, लघु, ग्राही, कटु पाकी, अग्नि मन्दकारक, हृदय अहित क्रूर। वात, श्रम, तृषा, खांसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह नाशक है।

इसके सभी अङ्ग काम में आते हैं—पत्र, पुष्प, छाल, मूल, फल।

रासायनिक संघठन—काण्डत्वक में कड़वा मार्गोसीन, लिम्बिडिन, निम्बीन, निम्बिनिन, निम्बोस्टेरराल, पुष्पों में उडनशील तैल। करीव ६ प्रतिशत टेनिन, इसके वाह्यत्वक में टेनिन अधिक रहता हैं। पत्रों में कड़ुवा पदार्थ छाल से कम। बीजों में ३१ प्रतिशत तैल, जो साबुन बनाने के काम में आता है।

प्रयोग—इसका ज्वरघ्न गुण सिकोना की तरह होता है। यह क्रिमी नाशक है। इसकी छाल का चूर्ण मलेरिया में प्रयोग में आता है। शोथ युक्त ज्वर, विषम ज्वर तथा ज्वर के पश्चात की दुर्बलता में लाभ करता है। चूर्ण या क्वाथ के रूप में इसकी छाल काम में आती है।

निरन्तर रहने वाला ज्वर जब किसी भी औषधि से नहीं छूटे तब नीम की छाल का क्वाथ देने से छूट जाता है।

वारी से आने वाले ज्वर में भी यह क्वाथ लाभ करता है। नीम की अन्तर्छाल का चूर्ण पानी में देने से भी वारी का बुखार छूटता है। शीत ज्वर में भी यह क्वाथ लाभ देता है। नीम के तैल का मर्दन ज्वरावस्था में लाभ करता है। यही क्वाथ ज्वरातिसार में काम आता है। नीम की छाल, पत्ती, काली मिरच, सैंधा नमक को पीसकर जलमें पिलाने से ज्वर उतरता है।

रात्रि में नीम के नीचे सोने से ज्वर मिटता है। नीम के २१ पत्ते, २१ काली मिर्च सान्द्रित वस्त्र में बांध कर पोटली आधा सेर जल में उबालें। आधापाव रहने पर छान कर दोनों समय ७ दिन तक देने से ज्वर जाता रहता है। नीम के पत्तों के रस में नीबू का रस डालकर पीने से दाह युक्त ज्वर ठीक होता है।

इस प्रकार नीम एक सस्ता तथा उत्तम मलेरिया नाशक वृक्ष है। इसका सत्व भी निकाला जा सकता है।

उपरोक्त औषधियों के सिवाय—भी अनेक औषधियां हैं जो ज्वरघ्न मानी जाती हैं। उन सबका विवरण यहां प्रस्तुत नहीं किया जा सक रहा है। समयाभाव तथा स्थानाभाव ही इसका कारण समझा जावे।

ज्वर चिकित्सांक

प्रयोग खण्ड

[ज्वर रोगोपयोगी विभिन्न विद्वानों के परीक्षित प्रयोग एवं ज्वर रोगोपयोगी शास्त्रीय सिद्ध योगों का संग्रह]

फरवरी+मार्च : १९८२

—प्रकाशक—

धन्वन्तरि आयुर्वेद संस्थान अलीगढ़

ज्वर नाशक आशुगुणकारी-सफल प्रयोग

वैद्य श्री प्राणाचार्य हर्षुल मिश्र, रायपुर (म. प्र)
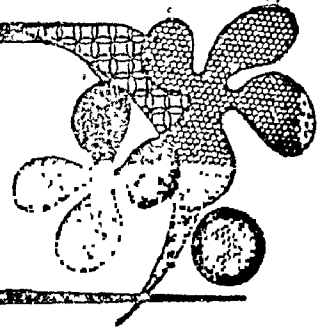
हर्षुल दोपरोधांतक—

रुक्तेल में भ्रष्ट किये हुए बाल हरड़ चूर्ण, मधुयष्ठी चूर्ण, दालचीनी चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, पिप्पलामूल चूर्ण, चित्रक मूल चूर्ण, अर्जुनत्वक् घनसार, आमलकी रसायन, कामदुधा मुक्तायुक्त प्रत्येक १-१ तोला, मिश्री २ तोला, सत्व पिपरमेंट २ माशा।

विधि—सब द्रव्यों को पत्थर के खरल में डालकर १० तोला मीठे अनार के स्वरस की, १० तोला सेव फल के स्वरस की, १० तोला मीठे अंगूर के स्वरस की, १० तोला हरे आमले के स्वरस की भावना देकर ६ रत्ती की गोलियां बना छाया में सुखाकर सुरक्षित शीशी में भरकर और डाट लगाकर रखलें।

मात्रा—बच्चों को आधी गोली से १ गोली, वयस्कों को १ गोली से २ गोली तक मुंह में डालकर धीरे-धीरे चूसना चाहिए। इससे बढ़ते हुये ज्वर का वेग थम जाता है, दोष अनुलोम होने लगते हैं।

दोषानुलोमा वटी—

मुक्तापिष्टी चन्द्रपुटी, पबाल पिष्टी चन्द्रपुटी, गोदंती हरताल भस्म, अर्जुनत्वक घनसार, निम्वपत्र क्षार, दशमूल घनसार, इलायची बीज चूर्ण, अकीक भस्म, संगयशव भस्म, गोमेदरत्न भस्म प्रत्येक १-१ तोला, जटामांसी घनसार २ तोला, सर्पगन्धा ४ तोला।

सब द्रव्यों को पत्थर के खरल में डालकर चौलाई स्वरस की भावना देकर चार-चार रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर सुरक्षित रखलें। मात्रा–बच्चों को आधी गोली, बड़ों को एक गोली से दो गोली मधु से चटाके ऊपर से दशमूल का सुखोष्ण काढ़ा पिलावें। ६ घन्टे के अन्तर से दिन रात भर तीन चार बार सेवन करावें। इससे ज्वर उतरने लगता है। प्रलाप, अनिद्रा, विकलता और सन्ताप दूर होते हैं। हिक्का, श्वास वृद्धि, हृद्स्पन्दन वृद्धि थमती है। इस अवस्था में सम्यक्, लाघवकर द्रव्यों का लंघन के रूप में प्रयोग करना चाहिये।

हर्षुल ज्वर रुर्कतक—

१. अमृता के स्वरस को सूर्यताप में सुखाकर उसका महीन सफूफ, २. निम्बत्वक् घनसार, ३. भूनिम्ब (चिरायता) घनसार, ४. दशमूल घनसार, ५. गौदन्ती हरताल भस्म, ६. सर्पगन्धा चूर्ण. ७. अर्जुनघनसार, ८. कटुकी घनसार, ९. स्वर्णक्षीरी मूलत्वक् चूर्ण, प्रत्येक ५-५ तोला, १०. धत्तूर पंचांग स्वरस सूर्यताप में सुखाया हुआ महीन सफूफ, ११. कटेरी स्वरस सूर्यताप में सुखाया हुआ महीन सफूफ, १२. मधुयष्ठी घनसार, १३. टंकण भस्म, १४. अतीस कटु चूर्ण, १५. दालचीनी चूर्ण, १६. शुद्ध कुचला चूर्ण, १७. हिंगुल अग्निपक्व, २॥-२॥ तोला।

समस्त द्रव्यों को पत्थर के खरल में डालकर कृष्ण तुलसी पत्र १ सेर स्वरस की भावना देकर चार-चार रत्ती की गोलियों बना छाया में सुखाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—बच्चों को आधी गोली से एक गोली मातृ दुग्ध वा मधु से। वयस्कों को २ गोली जल से अथवा सुखोष्ण गोदुग्ध से ज्वर उतरते समय सेवन करना चाहिए। इसे ज्वरांत में मधुर फलों के रस से भी लिया जा सकता है। इसे मुंह में रखकर ऊपर से मधु मिश्रित सुखोष्ण जल पीना अधिक लाभप्रद है।

गुण—इसके सेवन से दोषज ज्वर, विषम ज्वर, शीत पूर्वी ज्वर' शीतान्त ज्वर (मलेरिया), जीर्ण ज्वर निःसंदेह रुक जाते हैं। मन्थर ज्वर में ज्वर के वेग को रोकता है। ज्वर की मुक्तावस्था में–अश्व कंचुकी १ रत्ती से २ रत्ती + जीरा चूर्ण ४ रत्ती से १ माशा + शर्करा १ माशा से २ माशा। सबको मिलाकर १ मात्रा बनालें। मुंह को छोड़कर ऊपर से उबाला हुआ, किन्तु ठंडा पानी तीन घूंट पी लें, तो खुलकर २-३ दस्त हो जावेंगे।

ज्वर के लिए अनुभूत प्रयोग

कवि० श्री बी० एस० प्रेमी, आयु० यूनानी तिब्बिया कालेज, करौल बाग, नई दिल्ली-५

१—अभिघातज ज्वरारि अनुभूत प्रयोग—

यह प्रयोग सभी प्रकार के चोट-फेंट, आपरेशन, आघात-प्रतिघात आदि के पश्चात् होने वाले नये तथा पुराने अभिघातज ज्वर को समूल नष्ट करने में अचूक है।

प्रयोग—चन्दनादि लोह २ रत्ती, सप्तविंशति गूगल-१ माशा, शृङ्ग भस्म २ रत्ती, संजीवनीवटी २ रत्ती, कस्तूरी भैरव रस २ रत्ती। योग २ माशा।

विधि—उक्त सभी द्रव्यों को मिश्रित करके मधु में मिलाकर दिन में दो बार सेवन करावें। यदि रोग अधिक तीव्रावस्था में हो तो चौबीस घण्टों में चार बार प्रयोग करें। यदि रोग पर्याप्त जीर्ण हो तो चौबीस घंटों में पांच बार प्रयोग करें किन्तु ऊपर से मंजीठ, मुनक्का और अनन्तमूल का शीत कषाय अवश्य पिलावें।

२—अभिषंगज ज्वरारि प्रयोग—

यह प्रयोग काम क्रोध, शोक, भय आदि मानसिक एवं बौद्धिक उद्वेगों के कारण होने वाले प्रत्येक ज्वर का समूल नाशक है।

प्रयोग—माहेश्वर रसायन २ माशा, प्रवाल पिष्टी २ माशा, ब्राह्मी चूर्ण २ माशा, शङ्खपुष्पी चूर्ण २ माशा, बचा चूर्ण २ माशा, स्मृतिसागर रस २ रत्ती, कृष्णचतुर्मुख रस २ रत्ती, मुक्तापिष्टी २ रत्ती। योग १० माशा ६ रत्ती।

विधि—उक्त द्रव्यों को मिश्रित करके मधुयष्टी के क्वाथ में घोटकर एक एक रत्ती की गोलियां बनालें। चौबीस घण्टों में आठबार मधुयष्टी के शीतकषाय के साथ देना चाहिए। यदि रोग विशेष प्रभावी हो तो मधुयष्टी के गरम क्वाथ से देवें।

३—बिषम ज्वरान्तक रस—

ताम्रभस्म १ तोला, रजत भस्म १ तोला, शुद्धवत्सनाभ ६ माशा, शु. पारद १ तोला, शु. गंधक १ तोला योग—४ तोला ६ माशा।

विधि—प्रथम पारद और गंधक की भली प्रकार से घुटाई करलें। फिर सभी द्रव्यों को खरल में डाल कर अमलतास की ताजी छाल के रस में क्रमशः तीन बार भावना देकर एक रत्ती की गोलियां बनाकर छाया में सुखालें। तदनन्तर प्रातः-सायं, रात्रि को एक एक गोली जल से देनी चाहिए। यह पांचों प्रकार के विषम ज्वर तथा मलेरिया को शत प्रतिशत नष्ट करता है। अधिकांश ज्वरों को तीन अथवा सात दिन में स्थायी रूप से रोक देता है।

४—जीर्णज्वरान्तक रस—

वसन्तमालती रस १ माशा, शु. हरताल ३ माशा. शु. वत्सनाभ ३ माशा, शु. मैनसिल २ माशा, शु. सुहागा ५ माशा, निर्विषी चूर्ण १० माशा, फिटकरी का फूला ३ माशा, श्वेतमल्लपुष्प १ माशा, अकरकरा १ तोला, काली मिर्च ६ माशा, लौंग ३ माशा, पीपल १ तोला, हलदी ७ माशा। योग—४ तोला।

विधि—प्रत्येक द्रव्यों को खरल करके धतूरे के स्वरस की क्रमशः तीन भावनायें देकर एक एक रत्ती की गोलियां बनाकर छाया शुष्क करके प्रातः-सायं, रात्रि को एक एक गोली त्रिकटु जल, त्रिफला जल, मधु अथवा साधारण जल के साथ देने से कितना ही भयङ्कर जीर्ण ज्वर क्यों न हो तत्काल नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त विषम ज्वर, सप्तधातुगत ज्वर तथा आगन्तुज ज्वरों को चौबीस घण्टों में समाप्त करता है।

५—सन्निपात ज्वरान्तक रस—

बृहत् वात चिन्तामणि रस २ रत्ती, वेताल रस २ रत्ती, चन्द्रकलारस २ रत्ती; कृष्णचतुर्मुख रस २ रत्ती, रस चन्द्रोदय २ रत्ती, महालक्ष्मीविलास रस २ रत्ती, बृहत् कस्तूरी भैरव रस २ रत्ती, सौभाग्यवटी २ रत्ती, अभ्रक भस्म हजार पुटी २ रत्ती। योग—१८ रत्ती।

विधिः—सम्पूर्ण द्रव्यों को खरल में घोट एक रूप करलें—फिर अदरख का रस, निर्गुंडीपत्र रस, कालीमिर्च जल, गोरोचन जल, इन चारों की क्रमशः एक एक भावना देकर एक एक रत्ती की गोलियां बनालें। फिर प्रातः सायं तथा आधी रात के कुछ बाद एक एक गोली

पीस कर साथ में चौथा रत्ती सन्निपात भैरवरस वटी मिलाकर मधु और अदरख के साथ देवें। यदि पित्त की प्रधानता हो तो दवाई चाटने के ५ मिनिट बाद ब्राह्मी जल या स्वरस या अनार का रस एक तोला पिला दें। विविध प्रकार के सन्निपात ज्वरों की यह अन्तिम औषधी है। शत प्रतिशत सफल है। यदि वात प्रधानता हो तो इसमें एक रत्ती प्रलापान्तक रस मिलाकर आर्द्रक रस से सेवन करें। यदि कफ को प्रधानता हो तो यह प्रयोग अपने शुद्ध रूप में ही प्रयुक्त किया जाये। पूर्ण सफल है।

६-श्वसनक सन्निपात ज्वरान्तक रस—

यह रस निमोनिया या न्यूमोनिया ज्वर की अचूक दवा है।

बृहत् कस्तूरी भैरव रस त्रिभुवनकीर्ति रस, विश्वेश्वर रस, रस सिंदूर, शृङ्गाराभ्ररस, मयूर पिच्छ भस्म अपामार्गक्षार, यवक्षार सैंधा नमक, पिप्पली चूर्ण, काकड़ासिंगी चूर्ण। हर एक २-२ रत्ती लें। श्वास कास चिंतामणि रस ४ रत्ती, शृङ्ग भस्म ४ रत्ती, शु. नृसार ४ रत्ती, सौभाग्यवटी ६ रत्ती। योग—४० रत्ती।

विधि—सभी द्रव्यों को मिश्रित करके शुद्ध वत्सनाभ के पानी से घोटकर एक एक चावल के तुल्य भार की गोलियां बनाकर छाया में सुखालें। आवश्यकतानुसार यथोचित अनुपान से प्रयोग करें। यह दवा कभी भी रोगी तथा चिकित्सक को निराश नहीं करती।

७-पुनरावर्तक ज्वर संहाररस—

शु. पारद १ तोला, शु. गंधक १ तोला, सुवर्ण भस्म २ माशा, ताम्र भस्म २ माशा, शु. हरताल २ माशा, शु. शिलाजतु ३ माशा, हिंगुल भस्म ३ माशा, खर्पर भस्म ५ तोला। योग—८ तोला।

विधि—सम्पूर्ण द्रव्यों को खरल में एकरूप करके तुलसी रस, निर्गुंडी रस और अदरख रस इनको प्रत्येक की प्रथक प्रथक एक एक भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया में शुष्क करके आवश्यकतानुसार एक एक गोली पानी से देते रहें। वारी से आने वाले तथा सभी प्रकार के पुनरावर्तक ज्वरों को यह तत्काल नष्ट करता है।

८-आन्त्रिक ज्वर संहाररस—

शृङ्गभस्म २ रत्ती, मुक्ताशुक्ति २ रत्ती, सौभाग्यवटी ४ रत्ती, वसन्तमालती २ रत्ती, प्रवालभस्म २ रत्ती, सतगिलोय ४ रत्ती, सर्वज्वरहरलोह ४ रत्ती, बृहत् वातचिन्तामणि रस २ रत्ती, मुक्तापिष्टी २ रत्ती, कस्तूरीभैरव २ रत्ती। योग—३ माशा २ रत्ती।

विधि—सभी द्रव्यों को खरल में मिश्रित करके मधु में मिश्रित करके थोड़ी थोड़ी मात्रा में चार चार घंटे बाद चटाते रहें और ६-६ घण्टे बाद चौथाई चम्मच मुनक्का का काढ़ा पिलाते रहें। टाईफाइड की यह अचूक दवा है।

९—सर्वज्वरान्तक रस—

यह योग परम दुर्लभ है। गुरु कृपा से प्राप्त हुआ था। इसकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करना साधारण काम नहीं है। क्योंकि यह योग अनुपान भेद से किसी भी ज्वर को क्षमा नहीं करता। चाहे वह ज्वर कोई सा भी हो, किसी भी कारण से हुआ हो, चाहे जैसा हो, वह कितना ही जीर्ण एवं उपद्रवयुक्त हो, चाहे वह कितनी ही तत्काल मारक शक्ति रखता हो, चाहे वह नया हो और बालक, वृद्ध, युवक, स्त्री, किसी को भी और किसी भी स्थिति में हो यह दवा उसे चन्द मात्राओं में धराशायी कर देती है। यह हमारा चालीस वर्ष का विशेष अनुभूत गुप्त प्रयोग था जो कि कविराज श्री अम्बालाल जी जोशी विशेष सम्पादक ज्वर चिकित्सा विशेषांक के कारण जनता में और आयुर्वेद हितार्थ यहां दिया जा रहा है। इस रस का प्रयोग प्लेग, विषम ज्वर (सभी प्रकार के) मलेरिया, सन्निपात ज्वर, सभी प्रकार के जीवाणुओं से उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण ज्वर, विषाणुओं से उत्पन्न होने वाले सभी ज्वर, मसूरिका आदि पिडिका शीत ज्वर, दाह ज्वर, रात्रिज्वर, किसी भी रोग के कारण होने वाला ज्वर, बेरी बेरी ज्वर, माल्टा ज्वर, अंशुघात ज्वर आदि सभी) प्रकार के ज्वरों पर पूर्ण सफल है। किन्तु जिस ज्वर के लिए जो अनुपान या सहपान परम आवश्यक है उसका प्रयोग करना सर्वथा अनिवार्य है अन्यथा जो प्रशंसा की गई है वह सत्य सिद्ध न हो सकेगी।

प्रयोग निर्माण विधि

पारद भस्म १० माशा, रजत भस्म १० माशा, ताम्र भस्म १० माशा, अभ्रक भस्म १०० पुटी १० माशा,

सुवर्ण भस्म १० माशा, नाग भस्म ५ माशा, लोह भस्म शतपुटी ५ माशा, हिंगुल भस्म ५ माशा, गोदन्ती हरताल भस्म ५ माशा, शुद्ध मनःशिला ५ माशा, भुना सुहागा ५ माशा, यशद भस्म ६ माशा, शु. वत्सनाभ ६ माशा। योग—७ तोला ८ माशा।

निर्माण-विधि—समस्त द्रव्यों को खरल में घोट कर एक रूप करें—तदनन्तर चित्रकमूल, गंभारी और अदरख स्वरस या क्वाथ से तीन तीन दिन की तेरह भावनायें देनी चाहिए। पश्चात् दो दो रत्ती की गोलियां बनाकर तीव्र धूप में सुखा कर रख लें।

सेवन-विधि—एक वर्ष तक के बालक को चौथाई गोली दिन में एक बार देवें। रात्रि को गोली का आठवां भाग देवे। एक वर्ष के बालक से लेकर आठ वर्ष तक के बालक को गोली का तीसरा भाग चौबीस घंटों में दो बार देवें। नौवर्ष की आयु से लेकर सोलह वर्ष की आयु तक के बालकों को एक गोली का तीसरा भाग चौबीस घंटों में तीन बार देवें। सत्रह वर्ष की आयु से लेकर तीस वर्ष की आयु तक के युवकों को आधी गोली से लेकर एक गोली तक चौबस घंटों में दो बार देवें। तीस वर्ष से लेकर सत्तर वर्ष तक के रोगियों को चौबीस घंटों में एक एक गोली चार बार देवें। सत्तर वर्ष से लेकर सौ वर्ष की आयु के रोगी को यह दवा सर्वथा वर्जित है नहीं देनी।

मन्थर ज्वर एवं जीर्ण ज्वर पर
दो-बहुपरीक्षित सफल प्रयोग

वैद्य श्री चैतन्य स्वरूप दाधीच

(१) मन्थर ज्वर हर काढ़ा—खूबकला असली १ ग्राम, अमृता (गिलोय) ४ ग्राम, काली मुनक्का बीज रहित ७ दाने, कड़वी अतीस २ ग्राम, तुलसी की डन्डी २ ग्राम, २५० ग्राम पानी में मिट्टी के पात्र में उबालें। मिट्टी के पात्र का मुंह ढके नही। मन्द अग्नि पर क्वाथ करें। १/४ रहने पर सुबह ७ ग्राम शहद मिलाकर पिलावें। एक सप्ताह में मन्थर ज्वर से छुटकारा दिलाता है। बहुःपरीक्षित प्रयोग है।

(२) जीर्ण ज्वरहर मिश्रण—वृहत वसन्त मालती रस १२५ मि.ग्राम, चतुःषष्टी पहरी पीपल १२५ मि.ग्राम, प्रवाल भस्म १२५ मि.ग्राम, गिलोय सत्व २५० मि.ग्राम. सितोपलादि चूर्ण १ ग्राम, मिश्रित १ मात्रा।

ऐसी प्रति मात्रा दिन में दो या तीन बार रोग की तीव्रतानुसार देने से एक सप्ताह में जीर्ण ज्वर से निश्चय रूप से मुक्ति प्राप्त होती है। यदि रोगी हृदय दौर्बल्यवश घवड़ाहट व बेचैनी अनुभव करता हो तो मुक्तापिष्टी का साथ में सम्मिश्रण उपयुक्त रहेगा। कोई अन्य उपद्रव न होकर पूर्ण शान्तिपूर्वक रोग से मुक्ति मिलेगी। शतशः अनुभूत है।

—वैद्य श्री चैतन्य स्वरूप दाधीच
बी.एस सी., बी.एड., आयुर्वेदरत्न, आर एम.पी.
श्री मारुती चिकित्सालय, बैंक ऑफ इन्डिया,
इण्डस्ट्रियल एरिया ब्रांच, कोटा (राजस्थान)

मंत्र की तरह लाभकारी जड़ी का चमत्कार

मामेजवा सूचीवेध—

घटक व निर्माण विधि—मामेजवा की छायाशुष्क जड़ों का वस्त्रपूत चूर्ण १ तोला तथा ४ औंस शोधित सुरासार दोनों को एक साफ कांच की शीशी में डालकर कस कर डाट लगाकर एक सप्ताह तक धूप में रखें। इसके बाद ३ बार फिल्टर पेपर से छानकर एक साफ शीशी में कसकर डाट लगाकर सुरक्षित रख लें।

औषधि मात्रा—उक्त सुरासार द्वारा निर्मित द्रव ३ से ४ बूंद शेष परिश्रुत सलिल २ सी.सी. एक दिन छोड़कर अथवा आवश्यकता पड़ने पर प्रतिदिन प्रातः नितम्ब प्रदेश की मांसपेशी में लगाना चाहिये।

औषधि गुण—सब प्रकार के नये पुराने विषम ज्वर, इकतरा, तिजारी, चौथिया, नित्य आने वाला मन्द ज्वर, काला ज्वर, जीर्ण विषम ज्वर, रक्त में स्थित मलेरिया और जीर्ण ज्वर के कीटाणु नाशक, प्लीहा, पांडु, अरुचि रक्तदोषों में अत्युपयोगी है। गर्भिणी की मलेरिया में क्विनीन का सूचीवेध देने से गर्भ गिर जाता है, इससे नहीं। एलोपैथिक की कोई भी सुई इसकी समता नहीं कर सकती।

इसके अतिरिक्त इस बूटी का सूचीवेध मधुमेह जैसे विनाशकारी व हठीले रोग को समूल नष्ट करने में पूर्ण समर्थ हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि वैद्य बन्धु हमारे इस अनुभव से पूरा-२ लाभ उठावेंगे।

नोट—अधिक परिचय के लिये हमारा लेख धन्वन्तरि के सफल सिद्ध प्रयोगांक ३६९ पेज पर फरवरी+मार्च १९७४ में अङ्कित है।

चमत्कारिक ज्वरवेगांतक वटी—

घटक—महासुदर्शन घन सत्व, मामेजवा घन सत्व, गोदन्ती भस्म, स्फटिका भस्म, अमृता सत्व प्रत्येक ५०-५० ग्राम लेकर एक पत्थर के खरल में डालकर ताजे जल के साथ खूब खरल करें। सब एक जीव हो जाने पर आधा ग्राम की वटी या मशीन द्वारा टेबलेट बनाकर छायाशुष्क कर एक मजबूत डाटदार शीशी में रख लें।

मात्रा—एक से दो गोली प्रति ४ घन्टे के अन्तर से जल के साथ सेवन करें।

गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से किसी भी प्रकार का विषम ज्वर जब किसी दवा से न रुकता हो तब इसके प्रयोग से शीघ्र आशातीत लाभ होता है। यह क्विनीन की तरह अधिक सेवन करने पर भी हानिकारक नहीं हैं। जो ज्वरनाशक औषधियां सेवन करते-करते निराश हो चुके हों वह इस औषधि को प्रयोग कर चमत्कार देखें।

इस वटी के सेवन से एक दोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, आगंतुक एवं सभी विषम ज्वर, सन्निपात ज्वर, मानसिक ज्वर, पारी से आने वाला ज्वर, प्राकृतिक ज्वर, वैकृत ज्वर, अन्तरदाहक ज्वर, बहिर्दाहक ज्वर आदि नष्ट होते हैं। वे ज्वर जिनका कोई कारण न समझ आता हो देने से लाभ होता है। इसके सेवन से सभी ज्वर निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

—आयुर्वेदाचार्य श्री पं० करुणाशंकर बाजपेयी
आयुर्वेद रत्न, ए.एस.बी.
अध्यक्ष—वी. एम. फार्मेसी,
महारानी गंज, रायबरेली।
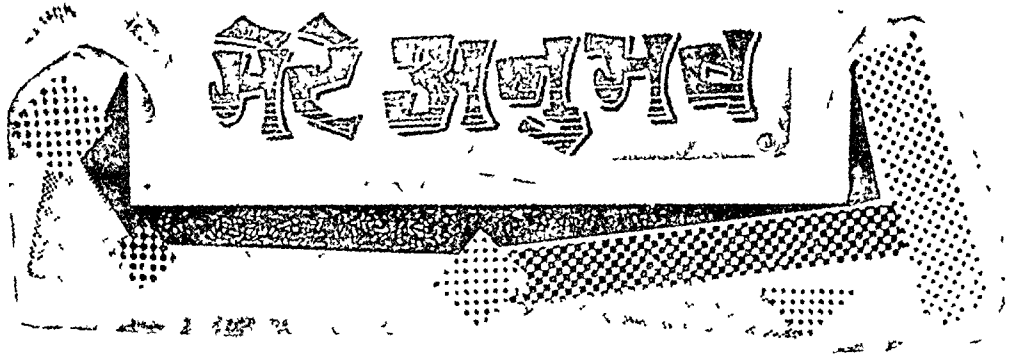
तापान्तक कैंपसूल—

घटक—उदक मंजरी रस १ रत्ती, मृत्युञ्जय रस १ रत्ती, शुद्ध स्फटिका भस्म ३ रत्ती।

निर्माण विधि—सबको एक पत्थर के खरल में खूब महीन घोटकर कैंपसूल में बन्द कर ले। यह एक कैंपसूल की मात्रा है। इसी अनुपात से अधिक मात्रा में कैंपसूल बनाकर शीशी में बन्द कर रख लें।

औषधि मात्रा—प्रत्येक ६-६ घन्टे में शुद्ध जल के साथ १-१ कैंपसूल प्रयोग करें।

गुण और उपयोग—ज्वर की तीव्रतर अवस्था में देने से तत्काल ज्वर वेग को कम कर रोगी को ज्वरमुक्त करता है। ज्वर चाहे वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सन्निपातिक तथा मलेरिया आदि आगन्तुज कोई भी ज्वर हो, ज्वर के वेग को शीघ्र शान्त करने में अद्वितीय है।

जहां पर ज्वर के वेग को शान्त करने मे पाश्चात्य औषधियां असफल हो वहां पर हमारे वैद्य बन्धु इस कैंपसूल का निर्माण कर सेवन कराकर चमत्कार देखे।

(२) मलेरिया मान मर्दन योग—

शुद्ध सोमल भस्म १/६४ रत्ती, करन्ज बीज मज्जा चूर्ण ४ रत्ती।

निर्माण विधि—उपरोक्त घटकों को पत्थर के खरल में खूब घोटकर मिश्रित करें। यह एक मात्रा है।

औषधि मात्रा—ज्वर वेग आने के एक घन्टा पूर्व जल से उपरोक्त मात्रा दें।

उपयोग—इस औषधि का प्रयोग करने से एक ही मात्रा में विषम ज्वर शान्त हो जाता है।

(३) क्विनाइन की बेजोड़ हानिरहित महौषधि—

घटक—धत्तूरे के पंचांग का क्षार १ रत्ती, गोदन्ती भस्म २ रत्ती, करञ्ज बीज मज्जा चूर्ण २ रत्ती।

निर्माण विधि—उपरोक्त घटकों को पत्थर के खरल में खूब मर्दन कर मिश्रित करें। यह एक मात्रा है।

प्रयोग—उपरोक्त मात्रा को समान भाग खांड़ मिलाकर ज्वर आने के १ घन्टे पूर्व उष्णोदक के साथ सेवन करावें।

उपयोग—इस औषधि का सेवन करने से एक ही मात्रा में मलेरिया ज्वर शान्त हो जाता है और यह औषधि पाश्चात्य औषधि क्विनाइन की तरह हानिकारक नही है।

—वैद्य श्री रामकुमार सिंह चौहान आयुर्वेदाचार्य
प्रेमचक, पो० बीजेमऊ (रायबरेली)

विषम ज्वर पर हमारे सात सफल प्रयोग

डा० कपूर चन्द जैन आयु० बृहस्पति, सुभाष चिकित्सालय, हीरापुर (सागर) म. प्र.

१—महा मृत्युंजय रस १ से ४ रत्ती, तुलसी का स्वरस ३ माशा और शहद ३ माशा मिलाकर दिन में तीन बार प्रयोग करना चाहिए। जिन रोगियों को पसीना नही आता उनको इससे स्वेद आकर ज्वर उतर जाता है।

२—प्रवाल पिष्टी ४ रत्ती, अमृतासत्व ८ रत्ती, मिश्री १२ रत्ती, सब मिश्रण कर ४ पुडिया बनाकर ३-३ घंटे बाद एक एक पुड़िया जल से प्रयोग करावें।

३—लक्ष्मी नारायण रस आधी से १ रत्ती, तुलसी का स्वरस ३ माशा, भृङ्गराज स्वरस ३ माशा, मुरब्बा

—शेषांश पृष्ठ ३३८ पर देखें

ज्वर शमन के विभिन्न उपचार

वैद्यरत्न कविराज श्री पं. शंकरलाल गौड "शम्भु कवि" साहित्य सम्राट
तयस्थली दूरा (आगरा) उ. प्र.

ज्वर के बारे में वाग्भट्ट में कहा है।

रोगास्तु दोष वैषम्यं दोष साम्यमरोग्यता।
रोगाः दुखस्यदातारो ज्वर प्रभृतयोहिते ॥

महर्षि चरक के मतानुसार 'सर्वरोगाधिपति ज्वर' है अतः इसका शीघ्रतिशीघ्र उपचार कर देना चाहिए। शीत ज्वर के लिये पटोल पत्र, नागरमोथा, कुटकी, नीम की छाल, गिलोय, कुड़े की छाल, करंज, नीम के पुष्प। उष्ण ज्वर के लिये इन्द्रजौ, पटोल पत्र, नीम की गुठली, नेत्रवाला, त्रायमाण, काला जीरा, चौलाई की जड़, बड़ी इलायची आदि। इसी प्रकार मलेरिया (विषम ज्वर) नाशक हवन सामिग्री हैं। तुलसी, जायफल, इलायची, कपूर, पटोलपत्र, नागरमोंथा कुटकी, नीम की छाल, कुड़े की छाल, करंज, नीम के फूल, इस प्रकार शीत ज्वर, मलेरिया नाशक हवन सामिग्री तैयार हो गई। घी शक्कर यथाशक्ति मिलाकर निम्न वेद मन्त्र से हवन करना चाहिये। शीघ्र लाभ होता है—

मन्त्र—इयमन्त वेदति जिह्वा वद्धापनिष्पदा।
त्वया यक्ष्मा निरोवचं शतं रोपीश्च तक्मनः ॥
—अथर्व० ५।३०।१६

ज्वर हरण मन्त्र—

ओ३म् नमो महाज्वराय विष्णु रुद्र गणाय भीममूर्त्तये सर्वलोक भयंकरायमम तापं हर हर स्वाहा।

विधि—ज्वर हरण के लिये रुद्र की मूर्त्ति स्थापितकर स्वरूप का ध्यान धर पूजन कर इस मन्त्र का उच्चारण करे, निश्चयपूर्वक लाभ होगा।

ज्वरनाशक यन्त्र तिजारी—

७१	७१	७१	ति
७१	७१	७१	जा
७१	७१	७१	री

प्रयोग विधि—लाल चन्दन से लिखकर धूप देकर दाहिने हाथ में बांध दें, तिजारी जाय। यह परीक्षित प्रयोग है।

विषम ज्वर—

अपामार्ग (ओंगा) की जड़ को ५-१० मिनट देखने को कहे, दूसरे दिन १ घन्टा देखने को कहे, ज्वर शीघ्र ही चला जायेगा। यह परीक्षित अनुभवी प्रयोग है।

ज्वर झाड़ने का मन्त्र—

ओ३म् नमो नर हरये रोगापहारिणे ज्वरं नाशाय सुखमारोग्यं कुरु कुरु स्वाहा।

ओ३म् नमो अर्जपाल की दुहाई, जो ज्वर रहे तो महादेव की दुहाई फुरोमंत्र ईश्वरोवाच।

विधि—इस मन्त्र को सात बार पढ़कर झाड़े तो ज्वर न रहे। इस मन्त्र को दिवाली की रात्रि में सात बार पढ़कर धूप दीप देकर सिद्ध कर लेना चाहिये।

इकतरा तिजारी ज्वरनाशक मन्त्र—

ओ३म् नमो भगवते रुद्राय नमः क्रोधेश्वराय नमो ज्योति पतङ्गाय नमो नमः ॥ सिद्धि रुद्र आज्ञापयति स्वाहाः।

विधि—इस मन्त्र को पढ़कर सरसों के दाने लेकर शरीर पर फेंकता जाये। इस प्रकार ७ वार मन्त्र पढ़कर दाने फेंके।

त्रिशूली यन्त्र—
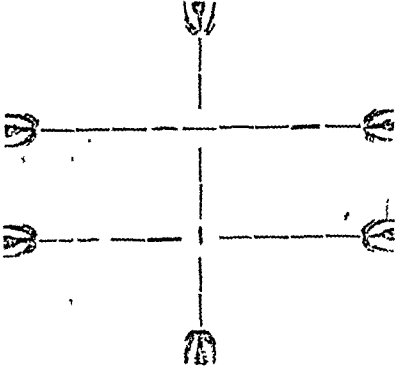
विधि—इस त्रिशूली यन्त्र को कागज पर स्याही से लिखकर रोगी के कण्ठ या भुजा में बांधने से सर्व तरह के ज्वर दूर हो जाते हैं।

ज्वरनाशक टोटके—

(१) रविवार के दिन सफेद कनेर की जड़ दाहिने कान में बांधने से विषम ज्वर दूर होगा।

(२) रविवार को अपामार्ग की जड़ को लेकर सात डोरों में लपेट हाथ में बांधने से विषम ज्वर दूर होता है।

(३) सफेद कनेर की जड़ दाहिने भुजा में रविवार के दिन बांधने से शीत ज्वर दूर होता है।

(४) काले सांप की केंचुली कमर में बांधने से तिजारी ज्वर की वारी रुक जाती है।

(५) ताजी स्वर्णक्षीरी की जड़ हाथ में रखने से तथा अपामार्ग की पत्तियों को बांधने से ज्वर उतरता है।

ज्वर शमन सिद्ध प्रयोग—

गरुण पुराण में ज्वर का स्थान 'यमराज' के समीप बतलाया गया है। अतः इसका उपचार शीघ्र करना चाहिए। भैषज्य रत्नावली में ज्वर शान्त्यर्थ कुछ प्रयोग भी दिये हैं। जिनमें से एक प्रयोग इस प्रकार है—

प्रयोग विधि—चावल का चूर्ण कर एक पुतला बनाकर मुख, हृदय, कंठ नाभि पर कौड़ी लगावे, खस के आसन पर विराजमान करे, हल्दी से पुतला पोतकर उस पुतले के समक्ष संकल्प ज्वर शमनार्थ करे।

संकल्प—मम चिरकालीन ज्वर प्रशमनार्थ ज्वर हर बलिदानं करिष्ये। इस संकल्प को कर पुतले का पूजन करे, निम्न मंत्रों से ज्वर वाले की सात आरती उतारे—

मन्त्र—ओ३म् नमो भगवते गरुड़ासनाय त्र्यम्बकाय स्वस्तिरस्तु स्वस्तिरस्तु स्वाहा, ओ३म् कंठ गं सं वैनताय नमः ॥ ओ३म ह्रीं क्षः क्षेत्र पालायनमः ॥

ओ३म् ठः ठः भो ज्वर शृणु शृणु हल हल गर्ज गर्ज नैमि तिक्तं मौहर्त्तिकं एकाहिकं द्वपादिकं, त्र्यादिकं, चातुर्थिकं, पाक्षिकादिकं च फट् हल हल मुंच मुंच भूम्यां गन्छ गच्छ स्वाहा ॥ पुतले को किसी वृक्ष की मूल में स्थापित कर दे जहां चौराहा हो।

ज्वर के बारे में विद्वानों का कथन है कि ज्वरेण मृत्यु विज्ञयोन मृत्युः स्याज्ज्वरं विना ॥ कहने का तात्पर्य है कि कोई रोग कठिन से कठिन क्यों न हो देह छूटते समय ज्वर आ ही जाता है। इसीसे प्राणी उस समय अद्भुत महा भयदायक दृश्य देखता है। जन्मकाल में ज्वर रहता है। इसीसे प्राणी अपने पूर्वजन्म के लौकिक कृत्यों को भूल जाता है। मरणकाल में प्राणी ज्वर से वेहोश हो जाता है। अतः वह कह सुन नहीं सकता है।

इकतारा तिजारी का सिद्धि यन्त्र—

७	२	८
८	६	४
३	८	५

विधि—रविवार में, मंगल में सुवह पीपल के पत्ते या भोजपत्र पर पीपल की लाख या लाल चन्दन से लिख इस यंत्र को पारी के रोज कलाई में बांध देने से ज्वर रुक जाता है।

विषम ज्वर के साधारण अनुभूत योग

(१) अर्क (आक) के पीले पत्ते की राख (भस्म) जलाकर ज्वर से चार घन्टे पहले शहद में ४ रत्ती दे दें।

(२) लाल फिटकरी भूनकर पीसकर शहद के साथ २ से ४ रत्ती बतासा भर या शहद में लेने से विषम ज्वर दूर होता है।

(३) हर्र, जीरा, अजवायन बराबर-बराबर लें, पीस छानकर चूर्ण बना लें, ३ माशा सेवन करने से विषम ज्वर भाग जाता है।

(४) तुलसी की हरी पत्तियां, कालीमिर्च ६ नग, काला नमक २ रत्ती ले १ पाव पानी में पका विषमज्वर नष्ट हो जाता है।

(५) वाय विडंग, नेत्रवाला, चिरायता, कुटकी, पीपल, निशोथ, कड़वी तुम्बी, वड़ी हर्र का काढ़ा पीने से विषम ज्वर दूर होता है।

ज्वर .... परीक्षित प्रयोग

वैद्य कालूराम सेन "सविता" वैद्य विशारद आयुर्वेद वारिधि
सविता आयुर्वेदिक औषधालय हाजीपुर, पो. सिरोज (विदिशा) म.प्र.

(१) वात पित्त ज्वर में लघु पंचमूल, गुडूची, मोथा, सोंठ और चिरायता का क्वाथ शीघ्र ही शान्ति देता है।

(२) त्रिदोषज ज्वर में–पीपलामूल, इन्द्रजव, देवदारु, गुग्गुल, वायविडङ्ग, वभनेटी, भृङ्गराज, त्रिकटु, कायफल, पुष्करमूल, रासंना हरड भटकटैया वनभंटा, अजवान, जटामांसी, चिरायता, वच, पाठा का समभाग क्वाथ सभी त्रिदोषज ज्वरों में फायदा करता है।

(३) लाल चन्दन, धनियां, सोंठ, खस पीपल तथा मोथा इन सबका क्वाथ शहद और मिश्री के साथ सेवन करने से तृतीयक ज्वर शान्त करता है।

(४) हींग को घृत के साथ पकाकर नस्य लेने से चातुर्थिक ज्वर नष्ट होता है।

(५) परवल के पत्ते, कुटकी, मुलैठी, हरड तथा मोथा का क्वाथ विषम ज्वर को नष्ट करता है।

(६) वैद्य जीवन में लिखा है कि पीपल वृक्ष की सेवा हवन, मन्त्र का जाप, शंकर भगवान, ब्राह्मण, देवता तथा गुरुओं की पूजा, विष्णु सहस्र नाम का जाप, पद्मराग आदि मणियों का धारण करना, घृत कुम्भ आदि दान, यह सब आठों प्रकार के ज्वरों को अच्छी तरह नाश करने वाले हैं। (वैद्य जीवन से साभार एवं अनुभूत)

(७) चौलाई मूल शिखा में बांधें।

(८) हड्डी के ज्वर मे—नीम की सीक का छीलन (छिलका) १० ग्राम, काली मिर्च ५ नग, बताशा १, घृत ५ बूंद, इन सबको उबालकर चतुर्थांशावशेष रख १ सप्ताह सेवन करने से शान्त होता है।

(९) चिरायता १० ग्राम, पित्तपापड़ा ५ ग्राम, नाय १० ग्राम, गुडूची १० ग्राम का क्वाथ चतुर्थांश एक सप्ताह सेवन करने से प्रायः सभी ज्वर शान्त होते है।

(१०) यह तान्त्रिक प्रयोग वन्शानुगत अनुभूत है। जिस दिन पारी हो उसीदिन अखंडित पीपल पत्र पर स्याही से लिखकर घृत व धूप की धूनी देकर दाये हाथ में बांधे (ज्वर चढ़ने से पूर्व बांधे) प्रयाग निम्न है। प्रयोग गुप्त रखें, रोगी को न बतावें। स्वस्थ होने पर श्रद्धानु-

श्री	सी	ता	राम
ह	नू	मन्‌	ते
ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
स्वा	हा	रा	म

सार श्री बजरङ्ग स्वामी को प्रसाद चढ़ावें।

उक्त प्रयोग मेरे कई वर्षो के अनुभव सिद्ध हैं। प्रयोग अचूक हैं।

पृष्ठ ३३५ का शेषांश

आंवला ६ माशा मिश्रण कर दिन में ३ वार प्रयोग करें।

महाज्वरांकुश १/४ से १ रत्ती निर्गुंडी स्वरस ३ माशा खांड का शीरा ६ माशा मिलाकर प्रयोग करें।

४—चन्द्रकला रस आधी से १ रत्ती का शर्बत अनार ३ से ६ माशा मिलाकर चटावें।

५—प्रवाल पंचामृत रस १ से २ रत्ती तक शर्बत अनार ३ से ६ माशा मिलाकर वार वार चटावें।

६—अद्रक स्वरस ३ माशे शहद ३ माशा मिलाकर दिन में ३ वार प्रयोग करें। अश्वनी कुमार रस आधा से १ रत्ती अदरख का रस ३ माशा के साथ सेवन करें।

७—फिटकरी की खील मिश्री मिलाकर दूध से दिन में ४ वार प्रयोग करें। मच्छरदानी का उपयोग करें। मच्छरों को नष्ट करने का उपाय करें। गन्दी नाली या दरवाजे के पास वाले गड्डों पर डी. टी छिड़कवाइये। मिट्टी तैल का प्रयोग सफाई के कार्य में विशेष बर्ते। जल गर्म शुद्ध प्रयोग करें।

विषम ज्वर पर मेरे अनुभूत प्रयोग

वैद्य उमाशङ्कर शरण तिवारी मातनपुरा पो. मोठ (झांसी) उ. प्र.

(१) करंज (कन्जा) की गूदी १ तोला, कृष्ण तुलसी की पत्ती २ तोला, काली मिर्च १ तोला। इन सबको महीन पीस चने बराबर गोलियां बनाकर एक एक गोली प्रातः, दोपहर, सायं ताजे जल अथवा दुग्ध से लेने से मलेरिया ज्वर नहीं चढ़ता। बच्चों को आयु अनुसार मात्रा घटाकर देवें।

(२) रक्त स्फटिका (लाल फिटकरी) अग्नि पर फुला कर भस्म तैयार करलें (स्फटिका शुद्ध होना चाहिए) यह भस्म २ से ४ रत्ती की मात्रा में बतासे में रखकर अथवा मधु के साथ पारी के दो घंटे पूर्व देने से मलेरिया (विषम ज्वर) नहीं चढ़ता।

(३) तुलसी की ताजी हरी पत्तियां ७, कालीमिर्च नग ३, काला नमक दो रत्ती एक पाव पानी में क्वाथ कर चतुर्थांश रहने पर पारी आने से पूर्व सेवन कराने से विषम ज्वर चढ़ने का भय नहीं रहता। बहुत सस्ता सरल अनुभूत योग है।

(४) पटोल पत्र, अडूसा, दाख, नागरमोथा, मुलैठी, ताजी गिलोय (गुरवेल), देवदारु, इन्द्र जौ आदि नौ चीजों का क्वाथ (काढ़ा) बनाकर सेवन करने से बिगड़ा हुआ पुराना विषम ज्वर नष्ट हो जाता है।

(५) महाज्वरांकुश रस १ गोली, गोदन्ती भस्म ५०० मि. ग्रा. तथा गिलोय सत्व २५० मि. ग्रा.। यह एक मात्रा है। इसे मधु अथवा सुदर्शन के अनुपान से सेवन करने से विषम ज्वर एक दो दिन में ठीक हो जाता है। उक्त मात्रा सुबह, दोपहर सायं प्रयोग करानी चाहिए।

आश्चर्यजनक अनुभूत चुटकुले—

(१) लगाने मात्र से विषम ज्वर दूर—

कड़ुवे करोंदे की जड़ पानी में महीन पीस कर सारे शरीर पर लगा देने से मलेरिया बुखार नहीं चढ़ता।

(२) जड़ी बांधने मात्र से विषम ज्वर दूर—

(क) श्वेत धतूरा रविवार के दिन उखाड़ कर दाहिने हाथ पर प्रातः बांध लेवें मलेरिया ज्वर शर्तिया चला जावेगा।

(ख) रविवार के दिन स्नान करके सहदेवी की जड़ लाकर ज्वर चढ़ने से पूर्व रोगी के कण्ठ अथवा कान पर बांध देवें। मलेरिया उसी दिन विदा ले जावेगा।

(ग) रविवार के दिन अपामार्ग (ओंगा, चिरचिटा), हमारे यहां बुन्देल खण्ड में इसे अज्जाझारा कहते हैं। की जड़ लाकर ७ लाल धागों में लपेट कर सूर्योदय से पूर्व रोगी की बांह में बांधने से त्रितियक (तिजारी) की पारी उसी दिन रुक जावेगी।

उक्त चुटकुलों के बाद किन्हीं गरीब भूखे बच्चों को घर पर बुला भोजन करवादें। अथवा गरीब ब्राह्मण को सीधा दे देवें।

(३) जड़ी दातून मात्र से मलेरिया दूर—

पहले इस प्रयोग पर मुझे विश्वास नहीं होता था लेकिन जब इसे अजमाया तो सफलता हाथ लगी। पीपल वृक्ष की दातून ज्वर आने के १ घन्टे पूर्व से करना शुरू कर दें तथा थोड़ा थोड़ा उसका रस भी चूसते जावें। मलेरिया ठीक उसी दिन रुक जावेगा। पूर्ण परीक्षित प्रयोग है।

(४) बूटी देखने मात्र से मलेरिया दूर—

यह बिल्कुल गुप्त रहस्य तथा आश्चर्यजनक तत्काल फलदायी प्रयोग पाठकों की सेवा में अर्पित कर रहा हूं। श्वेत पुनर्नवा इसे हमारे यहां बुन्देल खंड में पथर चटा कहते हैं इसका करीब ३ पाव रस निकालकर कोरे मिट्टी के पात्र में डालकर मरीज से कुछ दूरी पर रख देवें तथा मरीज से कहें कि वह बर्तन में रखे हुए रस को एक टक निगाह से एक घन्टे तक देखता रहे। बस उसी दिन बुखार न चढ़ेगा। इस प्रयोग को ज्वर चढ़ने से पूर्व करें।

मलेरिया उपद्रवों की सरल अनुभूत चिकित्सा—

प्राचीन (पुराने) वैद्यों में प्रचलित विषम ज्वर उपद्रव शामक तत्काल आराम देने वाले प्रयोगों को भी पाठकों को बताने से क्यों भूलूं। लीजिये—

वमन व घबड़ाहट—(क) पीपल वृक्ष की छाल (त्वक

जलाकर औटाकर रखे हुए जल में बुझा दें। यह जल थोड़ा थोड़ा करके रोगी को देने से वमन बन्द होकर हृदय शक्ति बढ़ती है। सैंकड़ों बार का परीक्षित है।

(ख) मक्का के भुट्टे की आगे वाली पूछ जला कर मधु के साथ रोगी को चटाने से वमन (छर्दि) दूर होकर जी का मिचलाना आदि में अपूर्व लाभ होता है।

(ग) मोर के पंख के चांद के आकार वाले भाग को कैंची से काट कर जला कर भस्म बना लेवें। इसे १ रत्ती मधु के साथ चटाने से भयंकर वमन शांत हो जाती है। एक रोगी जो ग्लूकोज की बोतल चढवाकर आया था फिर भी उल्टियां बन्द न होती थीं मैंने उक्त भस्म १ रत्ती मधु के साथ दी फिर उसे वमन नही हुई।

ज्वर की अधिकता—ज्वर की अधिकता में बेरी, अथवा झड़बेरी के कोमल हरे ताजे पत्तों को पीस लुगदी बना लें तथा कांसे के कटोरे में ठंडा पानी भर यह बेरी की लुगदी घोल कर पानी भरे कटोरे हाथ की हथेलियों तथा पैर पर मलें सिर पर ठंडे पानी में भीगा कपड़ा रक्खें जब तापक्रम १०२^{0}F तक आ जावें तो उपरोक्त सभी क्रियायें बन्द कर देनी चाहिए।

शिरःशूल (Head Ache)—(अ) शतधौत घृत शिर पर मलने से शिरःशूल में अवश्य लाभ होगा।

(ब) श्वेत चंदन की लकड़ी से जल डालकर कपूर को घोटें तथा मालिस करें सिर दर्द जाता रहेगा।

क्षुधा नाश—(अ) एक मिट्टी के पके कुल्लड़ को उपलों की अग्नि में दवा दें जब वह लाल होवे तो उसे निकाल कर अन्य मिट्टी के चौड़े पात्र में रखकर, कुल्लड़ में ताजा कच्चा गौ दुग्ध धार बांध कर डालें। गौदुग्ध तुरन्त उफन कर चौड़े वाले पात्र में आ जावेगा। इसे नित्य प्रातः सायं लेने से क्षुधा वृद्धि होती है। पुराने वैद्यों का चुटकुला है। इसे बुन्देल खंड में डबुलिया का दूध कहते हैं।

(ब) पंचकोल पोटली में बांधकर उबलती मूंग की दाल की हांड़ी में डाल दें। इस दाल के सेवन से आश्चर्य जनक लाभ होता है। भूख बढ़ाने के लिए ज्वर के बाद पथ्य रूप में पुराने वैद्यों का चुटकुला है। परीक्षित है।

प्लीहा, यकृतदोष—मलेरिया ज्वर में प्रायः प्लीहा आक्रांत होकर यकृत् (Liver) में दोष आजाता है। डाक्टर लोग इसे 'हिपाटाइटिस' कन्डीशन बतलाते हैं। एलोपैथी में इसकी कोई सफल दवा नहीं है। डाक्टर लोग केवल आयुर्वेदिक फार्मेशियों के पेटेन्ट योग Liv ५२ तथा Livomin आदि देकर रोगियों को स्वस्थ बनाते हैं। वैद्य कम मूल्य में केवल नवायस लोह अथवा लौह भस्म के साथ गिलोय सत्व अथवा लोहासव का प्रयोग कर शीघ्र रोगियों को स्वस्थ बनाते हैं।

संपूर्ण ज्वर नाशक महासुदर्शन सिरप

आयुर्वेदाचार्य श्री पं० करुणाशंकर वाजपेयी आयु०, ए० एस० बी०,
श्री बजरङ्ग व्याधि मोचन फार्मेसी, महारानी गंज, रायबरेली

योग घटक—आंवला, हरड़, बहेड़ा, हल्दी, दारुहल्दी, दोनों कटेरी, कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, पिपरामूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्त पापड़ा, नागरमोथा, भायमाण, नेत्रवाला, नीम की छाल, पोहकर मूल, मुलैठी, कुड़ा की छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारङ्गी, सहिजन के बीज, फिटकरी, बच, दालचीनी, पद्माख, खश, सफेद चन्दन, अतीस, खरेंटी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वायविडंग, तगर, चित्रक मूल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, जीवक, (अभाव में (शतावरी), ऋषभक (अभाव में असगन्ध), लौंग, बन्सलोचन, कमल, काकोली (अभाव में शकाकुल मिश्री), तेजपत्र, तालीशपत्र और जावित्री, ये ५३ दवायें समभाग, आधा भाग चिरायते का चूर्ण लेकर जबकुट चूर्ण करें और शाम को आठ गुने पानी में भिगोकर प्रातः नलिका यन्त्र द्वारा अर्क निकाल लें। जितना अर्क हो उसका आधा भाग मिश्री या खांड़ मिलाकर शर्बत की चाशनी बनाकर ठंडा होने पर फलालैन के मोटे कपड़े से छानकर शीशियों में भरकर दृढ़ कार्क लगाकर सुरक्षित रक्खें। अगर रङ्गीन सिरप बनाना चाहते हैं तो मनचाहा फूड कलर मिलाकर रङ्गीन बनाले। यह काफी समय तक

—शेषांश पृष्ठ ३४४ पर देखें

ज्वर रोगों पर

वद्य श्री पं० अम्बालाल जोशी आयु० केशरी साहि० आयुर्वेदाचार्य.
विशेष सम्पादक—"धन्वन्तरि ज्वर चिकित्सांक"
मकराना मौहल्ला, जोधपुर (राज०)

भस्म एवं पिष्टी

अकीक पिष्टी

अकीक के टुकड़ों को आग पर खूब तपाकर गुलाब जल में २१ वार बुझा दें तो यह पत्थर खिल जाता है और मुलायम हो जाता है। अकीक के टुकड़ों को आग पर खूब तपा तपाकर ७ वार त्रिफला क्वाथ में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

शुद्ध अकीक को इमामदस्ते में महीन कूट कपड़ छन कर १०-१२ दिन तक लगातार गुलाब जल में घोटें, फिर इसे महीन कपड़े में छानकर सुखाकर के सुरक्षित रख लें। यह भस्म सौम्य होती है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती, प्रातःसायं मधु, मक्खन या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग—रक्तपित्त, शारीरिक उत्ताप तथा ज्वर की गर्मी, हृदय की दुर्बलता आदि में लाभदायक है।

अभ्रक भस्म

निश्चन्द्र किये हुए अभ्रक को आक के पत्तों के रस में घोटकर टिकिया बना लें, जब टिकिया खूब सूख जाय, तब गजपुट में सम्पुट को रखकर फूंक दें। ऐसे तीन पुट देने से रक्तवर्ण की भस्म बनेगी। इसे सब रोगों में प्रयुक्त करें। मात्रा—१ से २ रत्ती दिन में दो समय।

गुणधर्म—अभ्रक भस्म. कषाय, मधुर, शीतल, योगवाही, आयुवर्द्धक और धातुवर्द्धक होने से त्रिदोष, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहावृद्धि, उदरग्रन्थि, विष और कृमि आदि रोगों को दूर करती है। शरीर को दृढ़ बनाती है और वीर्य की वृद्धि करती है।

क्षय, पाण्डु, ग्रहणी, शूल, आम, श्वास, दुर्घर कास, मन्दाग्नि, उदर व्यथा, कामला, ज्वर, गुल्म, अर्श आदि रोगों को अनुपान भेद से दूर करती है। त्रिदोषशामक और सर्वरोगनाशक है।

कासीस गोदन्ती भस्म (ताल कसीस भस्म)

विलायती हरा कसीस और गोदन्ती १०-१० तोला मिला घी कुंवार के रस में ६ घन्टे तक घोटकर छोटी-२ टिकियां बांधे फिर टिकियों को सुखा, सम्पुट करके गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार २-३ पुट देने से सिंदूर जैसी लाल भस्म हो जाती है।

माता—१ से ३ रत्ती। मिश्री और दूध या शहद के साथ दें। विषमज्वर में अद्रकरस और शहद के साथ।

उपयोग—यह भस्म आम प्रकोप में उत्पन्न नवीन ज्वर मलेरिया, जीर्ण ज्वर, पाण्डु, श्वेतप्रदर, मन्दाग्नि और आमवृद्धि को दूर करके शरीर में रक्त की वृद्धि करती है। सगर्भा और प्रसूता स्त्रियों और वालकों के लिए भी हितकर है। मलेरिया आने के ४ घन्टे पूर्व १ मात्रा और दूसरी मात्रा २ घन्टे पहिले देने से ज्वर रुक जाता है। विषम ज्वर में आम प्रकोप से पीड़ित रोगियों को यह भस्म विशेष हितावह है।

विषम ज्वर में प्लीहावृद्धि होकर मन्द मन्द ज्वर रहता है। थोड़ा सा अपथ्य या आहार विहार में भूल हो जाने से ज्वर वढ़ जाता है। उन रोगियों को पथ्य पालन सह कासीस गोदन्ती भस्म ४ से ६ रत्ती की मात्रा में अमृतारिष्ट के साथ थोड़े दिनों तक देते रहने से प्लीहा-गत कीटाणु और विष नष्ट होकर स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

गोदन्ती भस्म

४० तोले गोदन्ती के टुकड़ों को इससे दूने आक के पत्तों की लुगदी पर विछा दें फिर उतनी ही लुगदी उन टुकड़ों के ऊपर रख दें। पोटली वांध मजवूत कपड़-मिट्टी करें। (हर टुकड़े के चारों ओर लुगदी रहनी चाहिये संभाल करें) कपड़-मिट्टी सूखने पर गजपुट अग्नि देने में सफेद रङ्ग की मुलायम भस्म तैयार होती है। (आक के पत्तों की लुगदी के स्थान पर ग्वारपाठा भी काम में ले सकते हैं। नीम के पत्तों के रस की भावना देने से अधिक ज्वरघ्न होती है)।

मात्रा—२ रत्ती से ८ रत्ती सुदर्शन चूर्ण के क्वाथ, मिश्री या शहद के साथ दें। वालकों को १ रत्ती भस्म माता के दूध या शहद के साथ दें।

उपयोग—पित्त ज्वर, आम ज्वर, शिर दर्द, जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, स्त्रियों के श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, रक्त-स्राव और सूखी खांसी में अति लाभदायक है। दाह, रक्त-दबाव वृद्धिजन्य शिर दर्द, निद्रानाश, व्याकुलता आदि में लक्षणों को तुरन्त शमन करती है। यह सगर्भा और बच्चों के लिये अति निर्भयता से प्रयोग की जा सकती है

जहरमोहरा भस्म

हल्के वजन वाले जहर मोहरा को पानी से धो स्वच्छ कर इमामदस्ते में कूट कपड़छन कर चूर्ण तैयार करें, फिर दूध में ६ घन्टे खरल कर टिकियां वांध सूर्य के ताप में सुखावें। सम्पुट कर गजपुट देने से भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से ४ रत्ती दिन में तीन समय शहद के साथ (गुलाव जल में या चन्दनादि अर्क में घोटकर पिष्टी वनालें)।

गुणधर्म - यह सौमनस्यजनक, उत्तमांगों को बल देने वाला तथा ओजोवर्द्धक है। सन्तापहर तथा विषहर है। पित्त साधक तथा पौष्टिक है। ज्वर के सन्ताप को यह कम करता है। छर्दि भी नष्ट करता है। यह रक्त-चाप वृद्धि को न्यून करता है। यह पित्तज होने से ज्वरहर होता है। प्रवाहिका, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, आन्त्र के रोग, अर्श और रक्तपित्त आदि रोगों में रक्तप्रवाह बन्द करने के लिये उत्तम और निर्भय है।

तुत्थ खर्पर भस्म

जसद का फूला अथवा भस्म ९८ तोला, नीला थोथा २ तोला।

विधि—दोनों को मिला आंवलों के स्वरस में खरल कर गोला वनावें। सराव सम्पुट कर अग्नि में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर पुनः २ तोला नीला थोथा मिला-कर आंवले के स्वरस में खरल कर गोला वना सराब सम्पुट कर दो सेर गोवरी में फूंक दें। इस प्रकार ९ पुट देवें। दसवीं वार विना तूतिया मिलाये आंवले के स्वरस में २ दिन तक घोट २-२ तोले की टिकिया वनाकर पूरा गजपुट देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर पीस लें। इसे चीनी या मृत्तिका पात्र में डाल पृथ्वी में १ हाथ गहरे गड्ढे में ऐसे स्थान पर गाढे जो सदा सूर्य चन्द्र की (रोशनी) रश्मियों से प्रभावित रहता है। ४० दिन बाद निकाल शीशियों में भर ले। पश्चात् १ वर्ष पड़ा रहने के वाद प्रयोग में लें।

यह जीर्ण ज्वर, जीर्ण अतिसार और संग्रहणीनाशक होने से युक्तियुक्त संशोधक है।

नोट—एक साल पूर्व काम में लेने से वात, भ्रम, उन्माद आदि उपद्रव होते हैं।

ताम्र भस्म

शुद्ध किये तांवे को चूर्ण करें, फिर चौथा हिस्सा शुद्ध पारद मिला तीन घन्टे नीवू के रस में खरल करें, फिर तांवे के वजन से दूनी शुद्ध गन्धक की नीवू के रस में घुटाई करें। इस पारदयुक्त तांवे के चूर्ण को मिलाकर गोला वनावें। पश्चात् मचेछी, खट्टाचूका अथवा सांठी

को पीस कर चटनी बनावें। इस चटनी का तांबे के गोले पर दो-दो अंगुल मोटा लेप करें। फिर गोले को हाँडी में रख ऊपर रेत भर मुंह पर ढक्कन रखकर राख और नमक से सन्धि बन्द करें। तत्पश्चात् चूल्हे पर चढ़ाकर बारह घन्टे तक आंच दें। पहिले मन्द, फिर तेज, बाद में तीव्र आंच दें। बारह घन्टे बाद स्वांग शीतल हो जाने पर हांडी को खोल संभाल कर रेत और कल्क की राख को दूर कर तांबे के भस्म के गोले को निकालें। फिर छः घन्टे जमीकन्द के रस में खरल कर कपड़मिट्टी कर गजपुट में आंच देने से उत्तम प्रकार की मोर के कंठ के जैसे रङ्ग की नीली ताम्र भस्म बन जाती है। जमीकंद के अभाव में नीबू के रस में गोला बनाकर फूंक देवें।

नोट—इस ताम्र भस्म को दही के साथ खरल कर २० पुट तथा जमीकंद और सफेद पुनर्नवा के चालीस-चालीस पुट देकर सौ पुटी ताम्र भस्म बनाने से तत्काल गुण दर्शाती है।

मात्रा—१/२ रत्ती और शुद्ध बच्छनाग १ चावल भर मिलाकर शहद में देवें अथवा कालीमिर्च और तुलसी के रस के साथ दें।

उपयोग—विषम ज्वर (एकाहिक, द्वियाहिक, तृतीयक और चातुर्थिक) पर उपयोगी है।

गुण—रस में कषाय, मधुर, तिक्त और अम्ल, विपाक में कटु, सारक, पित्तहर, श्लेष्मनाशक, शीतवीर्य, लघु और लेखन है। उदर रोग, प्रमेह, जीर्ण ज्वर, सन्निपात, कफोदर, प्लीहोदर, यकृद् विकार, परिणाम शूल, दाह, हिचकी, अफारा, विबन्ध, उदरशूल, अम्लपित्त, उदरकृमि, गुल्म अतिसार, संग्रहणी, पांडु, पीनस, मांसार्बुद इत्यादि रोगों को ताम्र भस्म नष्ट करती है।

त्रिश्वेत रसायन (ज्वरारि त्रिश्वेत)

बंग भस्म २० ग्राम (अर्कदुग्ध पुटित), गोदन्ती भस्म २० ग्राम (निम्ब पत्र स्वरस पुटित), नृसार पुष्प ५ ग्राम। मिश्रित खरल कर सूक्ष्म चूर्ण बनावें।

मात्रा—२-४ रत्ती। कफ ज्वरे उत्तम।

पन्ना भस्म

(१) शुद्ध पन्ना के छोटे-छोटे कण १२ तोले।

विधि—लोह खरल में शुद्ध पन्ना खरड को बारीक पीसकर जंगली तुलसी के रस में ३ दिन खरल करें। फिर उसे २ सेर लकड़ी की अग्नि दें। इस प्रकार ५ पुट देने से भस्म तैयार हो जाती है।

(१) शुद्ध पन्ना के बारीक चूर्ण में समभाग मेनसिल व हरताल और गन्धक मिला कटहल के रस में खरल कर टिकिया बांध सूर्य के ताप में सुखा २ सेर अरण्य कन्डों की अग्नि दें। ऐसे आठ पुट देने से उत्तम भस्म बनती है।

(३) मेनफल के रस में अलसी और सोंठ को पीस कर कल्क बनावें। इस कल्क के बीच में शुद्ध पन्नों को रख सम्पुट कर २ सेर गोबरी से फूंक दें। ऐसे २० पुट देने से उत्तम भस्म बनती है। पन्ना बिखर जाय तब मेनफल के रस में टिकिया बांध सम्पुट करके गजपुट देना चाहिये।

(४) घी ग्वार के रस में खरल कर टिकिया बना १० सेर अरने कन्डों से एक ही समय फूंक कर भस्म को उपयोग में लें।

मात्रा—१/४ से १ रत्ती रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

गुण—ज्वर, सन्निपात, वमन, तृषा, विषविकार, अम्ल पित्त, श्वास, कास, पाण्डु, मलावरोध, अर्श और शोथादि को दूर करती है तथा अग्नि प्रदीप्त करके ओज को बढ़ाती है। शीतल गुण वाली है। उष्ण प्रकृति वालों को हितकर है। आमाशय और हृदय की निर्बलता दूर करती है। क्षय, बहुमूत्र और मधुमेह मे लाभदायक है। आयु और स्मरण शक्ति की वृद्धि करती है।

दरद सुधा भस्म

द्रव्य—हिंगुल और कलई का बिना बुझा चूना ३-३ तोले।

विधि—पहले हिंगुल को सेहुन्ड के दूध मे ३ दिन खरल करें और पेड़े के समान चक्रिका बना लें। इसे सूर्य के ताप में सुखाकर समान भाग वाले, घिसी हुई किनारी वाले दो शरावों के बीच रखकर भली प्रकार मुख मुद्राकर फिर दृढ़ कपड़मिट्टी कर १ गड्ढे मे २॥ सेर कंडों की अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर सम्पुट खोल टिकिया निकाल पीस लेवें। यह भस्म मुलायम मैले सफेद रङ्ग की होती है।

नोट—योग्य सम्पुट या कपड़ मिट्टी न करने और अग्नि तेज लगने पर हिंगुल उड़ जाता है। जिससे भस्म का गुण कम हो जाता है और कम अग्नि लगने पर

हिंगुल की लाली बनी रहती है, जिससे भस्म मे उबाक, वमन और विरेचन कराने का दोष रह जाता है। साव-धानी वरतें।

मात्रा—१ से २ रत्ती मसाला लगे हुये नागरवेल के पान में दिन मे २ या ३ बार।

उपयोग—सुकुमार स्त्री, पुरुष और बालकों के ज्वर को दूर करती है। किसी-किसी को २-३ दस्त लग जाते हैं। उदर शुद्धि न हुई हो तो मात्रा २ रत्ती देवें और आवश्यकता पर ३-३ घन्टे बाद दिन में ३ बार देवें। अपचन जनित ज्वर और शीत प्रधान ज्वर को दूर करने में यह हितावह है। शीत ज्वर में इस भस्म को शीत लगने से पहिले दे दी जाय तो शीत लगना और ज्वर आना दोनों रुक जाते हैं। अमीरों के जीर्ण विषम ज्वर कोदूर करने के लिए यह भस्म कुछ दिनों तक देते रहना चाहिये। यदि क्षय ज्वर मे मलावरोध हो तो १-१ रत्ती दिन मे दो बार देते रहने से ज्वर शमन हो जाता है। इसका विशेष गुण केलोमल (Calomal) के सदृश पित्त को उत्तेजित कर यकृत की शक्ति को बढ़ाना है।

सूचना—नूतन ज्वरों में रोगी को दूध पर रखें। उबाल करके शीतल किया हुआ देवें। औषध सेवन करने पर २ घन्टे तक जल न देवें।

नीलमणि (नीलम्) भस्म

शुद्ध नीलमणि के सूक्ष्म चूर्ण में समभाग गन्धक, हरताल और मेनसिल को मिलाकर पक्के कटहल के रस में १२ घन्टे खरल कर टिकिया बांध सूर्य के ताप से सुखा सम्पुट कर ५ सेर गोबरी की अग्नि दें। इस रीति से ८ पुट देने से भस्म हो जाती है।

मात्रा—आधी रत्ती से १ रत्ती दिन में २ बार शहद और पीपल के साथ अथवा मक्खन मिश्री के साथ।

उपयोग—वृष्य, आयुवर्द्धक, वल्य, पाचक और त्रिदोषघ्न है। उन्माद, वातरोग, श्वास, कास, त्रिदोषघ्न, विषम ज्वर और अर्श आदि रोगों को दूर करती है। अग्नि प्रदीप्त करती है और सर्व धातुओं को पुष्ट बनाती है। आयु व कान्तिवर्द्धक है।

नाग शर्करा—

मुर्दासङ्ग (Plumbi oxidum) ३४ औस, सिर्का (Acetic Acid) २ पिंट या आवश्यकतानुसार तथा वाष्प जल १ पिंट। —आगे पृष्ठ ३४५ पर देखें

महा सुदर्शन सीरप : : पृष्ठ ३४० का शेषांश

नहीं बिगड़ता और एलोपैथिक के टेरामाइसीन सिरप से अधिक प्रभावशाली तथा निरापद सिरप है। (महासुदर्शन) चूर्ण को रोगी अधिक कड़वाहट के कारण खाना नहीं चाहते। इसी कारण में इसको सिरप रूप में बनाकर रोगियों को देता हूं और चूर्ण की अपेक्षा शीघ्र लाभ-कारी है।

मात्रा—१ से २ चम्मच दिन में तीन चार बार जल के साथ अथवा चिकित्सक के मतानुसार।

संक्षिप्त गुण और उपयोग—यह सिरप निस्सन्देह समस्त ज्वरों को नष्ट करने वाला है। इसके सेवन से एक दोषज, द्विदोषज, आगंतुक और विषम ज्वर एवं सन्निपात ज्वर, मानसिक ज्वर, पारी से आने वाला ज्वर, प्राकृतिक ज्वर, सूक्ष्म रूप से रहने वाला ज्वर, अन्तर-दाहक ज्वर, बहिर्दाहक ज्वर, दवा अनुकूल न पड़ने वाला ज्वर, जल विकार से उत्पन्न ज्वर, यकृत और प्लीहा-जनित ज्वर, शीतज्वर, पाक्षिक ज्वर, विषम ज्वर, सम्पूर्ण ज्वर नष्ट करने की इसमें कितनी महानशक्ति है। आज के चिकित्सक बन्धु आधुनिक औषधियों की चकाचौंध में पड़कर अपनी प्राचीन महान गुणकारी औषधियों को घृणा की दृष्टि से देखते है। आज तक कोई भी आधुनिक औषधि ज्वर के लिये नहीं आविष्कृत हुई जिसमें इतने योग घटक हों और एक ही दवा से सम्पूर्ण ज्वरों की चिकित्सा की जा सके। इस योग को मै १० वर्ष से सिरप रूप में बनाकर अपने रोगियों की चिकित्सा सफलता के साथ कर रहा हूं। लोकहित के लिये यह प्रकाशनार्थ भेज रहा हूं।

पृष्ठ ३४४ से आगे

विधि—जल और सिर्के को मिला लेवें उसमें मुर्दासंग डालकर मन्दाग्नि पर डालकर द्रव करें फिर गाढ़ा करे। ऊपर में मलाई आने पर द्रव स्पष्ट अम्लगुण विशिष्ट न हुआ हो तो थोड़ा सिर्का अम्ल मिलाकर रखदें। दवा तैयार होने पर ब्लोटिंग पेपर पर सुखा लें। यह शर्करा सफेद वर्ण की उज्वल, दानेदार, मधुर, कषाय स्वाद वाली तथा सिर्के की गन्धयुक्त होती है।

वक्तव्य—इस नाग शर्करा के साथ सिर्का के अतिरिक्त द्रावक और अम्ल खनिज तैजाब और टेनिक एसिड उनके क्षार अफ़कनीर, चूने के जल, क्लोराइड आयोनाइड आदि एसिड से बनती हुई कृति, बबूल का गोंद एल्व्युमिन युक्त जल और भारी जल (Heavy water) नहीं मिलाना चाहिए।

नाग शर्करा का प्रयोग जल मिश्रित सिर्का के साथ विना कष्ट दीर्घ काल पर्यन्त हो सकता है। यदि यह शर्करा वटी रूप में दी जाय तो ऊपर से अनुपान रूप से सिर्के का जल पिलाना हितकारक है। यदि इस औषधि के सेवन करने पर मसूड़े काले हो जायं, उदर में वेदना आमाशय मे दाह, छाती में भारीपन हो जाय तो इसका सेवन बन्द कर दें। सिर्के के साथ होने पर ये उपद्रव उपस्थित नहीं हो सकते। नेत्र की पुतली के क्षत के ऊपर इस शर्करा के धावन का उपयोग नहीं होता अन्यथा मलिन श्वेत दाग हो जाता है।

मात्रा—१/४ से १ रत्ती जल से गला कर या गोली रूप से।

उपयोग—यह शर्करा स्रावण क्रिया के आधिक्य के दमनार्थ और रक्तरोधार्थ प्रयुक्त होती है। इसके अवसादक गुण होने से प्रदाह पर प्रयोग होती है। इस शर्करा का बाह्य प्रयोग करने पर संकोचक और अवसादक गुण होने से यह प्रदाह की प्रथमावस्था में उपकार करती है। इसके धावन में वस्त्रों को लपेट कर पट्टी के रूप में बांधी जाती है।

उदर सेवन—विविध प्रकार के रक्त स्राव पर यह सत्वर लाभ पहुंचाती है। भयंकर बढ़ा हुआ अतिसार, राजयक्ष्मा तथा मधुरा रोग में अन्त्र और आमाशय में रक्त स्राव होने पर यह व्यवहृत होता है। ऐसी अवस्था में अफीम के साथ मिलाकर देने से प्रतिकार दर्शाती है। गुदनलिका मे रक्तस्राव होने पर अफीम मिश्रित वर्त्ति (सपोजिटरी) चढाते हैं या एनीमा देते है। इस तरह जीर्ण प्रवाहिका रोग में इसकी वर्त्ती चढाते हैं। जिन स्थानों में औषधि चिपककर कार्य करती है उन स्थानों के रक्तस्राव में नाग शर्करा की अपेक्षा फिटकरी ही श्रेष्ठ हैं किन्तु शोषण होकर द्रव्य यन्त्रादि रक्तस्राव दमनार्थ नाग शर्करा हितकर मानी गई है। रक्तवमन, रक्त कास रक्तातिसार, रक्तस्राव आदि रोगों में नाग शर्करा आधी से १ रत्ती और अफीम १/४ रत्ती मिलाकर सेवन करना चाहिए। यदि सगर्भा को गर्भाशय मे से अधिक रजस्राव या रक्तस्राव होने लगे और गर्भपात की शंका होती हो तो १/४ रत्ती नाग शर्करा, १/३२ रत्ती अफीम (या शंखोदर रस १/४ रत्ती) के साथ मिलाकर बार बार दी जाती है। आमाशय मे क्षत होकर रक्त वमन होने पर यह अति हित-कारक है। यह वमन को बन्द करती है एवं क्षत को शुष्क बनाती है।

अतिसार रोगों में यदि अन्त्र प्रदाह न हो तो यह महोपकारक है। मधुरा की अन्तिम अवस्था में अतिसार होजाने पर नाग शर्करा का अवलोकन किया जाता है। किन्तु इसका प्रयोग दीर्घ काल तक नहीं करना चाहिए। इस तरह दो दो वर्ष के बालकों के भयङ्कर अतिसार में इसका प्रयोग होता है।

महाधमनी और अन्य बृहदधमनी में वायु के प्रकोप से अर्बुद (Aneurysm) पर नाग शर्करा किञ्चित अफीम के साथ कुछ दिन तक सेवन कराई जाती है एवं यक्ष्मा रोग में अति प्रस्वेद अति पूयमय कफ नि:सरण तथा सुजाक में पूयस्राव आदि पर भी यह उपकारक है। नाग शर्करा १/४ रत्ती को १ औंस बष्पजल मे मिलाकर चक्षु प्रदाह में इसके धावन का प्रयोग होता है। अक्षि पल्लव के भीतर रोहे उत्पन्न होने पर नाग शर्करा का चूर्ण लगाया जाता है। सुजाक और श्वेत प्रदर रोग में १-२ रत्ती नाग शर्करा २॥ तोले वाष्प जल में मिलाकर दिन में ४-६ बार पिच-कारी लगाई जाती हैं।

पारद के प्रयोग से मुख में लाला निःसरण होने पर इसके कुल्ले कराये जाते हैं। विविध प्रकार के चर्म रोग प्रदाह जनित और आघात जनित दोनों पर इसके द्रव की पट्टी लगाने से संकोचक और अवसादक गुण की प्राप्ति

होकर लाभ पहुंचता है। इसके अतिरिक्त विसर्प (Ervthema) कंडुमम पीडिकायें (Prurigo) ग्युची, शीतपित्त के ददोरे आदि पर नाग शर्करा और नौसादर को समभाग मिला धावन करके उपयोग में लेते हैं। दन्तशूल होने पर नाग शर्करा का चूर्ण गह्वर में रक्खा जाता है। एवं गुदा पर चर्म कट जाने पर इसका मलहम लगाया जाता है।

सूचना—मात्रा अत्यधिक लेने पर प्रदाहिक विष क्रिया दर्शाती हैं। कंठ और आमाशय में दाह, उदर में वेदना और मरोड़ा आना, वमन, कभी आक्षेप, अचेतना कभी पक्षाघात, आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। ऐसा होने पर यशद लवण (Sulphate of zinc) द्वारा सल्फेट ओफ Magnesia द्वारा विरेचन कराना चाहिए। फिर प्रदाह निमित्त योग्य चिकित्सा करनी चाहिए।

मनःशिला भस्म—

२ तोले शुद्ध मेनसिल को थूहर के पत्तों के रस में १२ घंटों तक खरल कर टिकिया बनाकर सुखावें। फिर दो शरावों में कलई चूने के भीतर रख संपुट कर ३ कपड़ मिट्टी करके ५ सेर कंड़ों के भीतर फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर संपुट निकाल कर खोलें, चने का रङ्ग पीला हो जाता है और मेनसिल सफेद हो जाती है।

मात्रा—१ से २ चावल भर तक मिश्री के साथ दें।

उपयोग—विषमज्वर और कफ प्रधान ज्वर को दूर करती है। मेनसिल के भीतर सोमल होने से इस भस्म को सोमल का सौम्य कल्प कहा जायगा। जिन जिन रोगियों को सोमल देने में भीति रहती है और सोमल देने की आवश्यकता हो उन रोगियों को ये भस्म अमृत समान हितकारक होती है। वात विकार, उपदंश, शूल, कास श्वास, क्षय ज्वर तथा कीटाणु जनित विविध व्याधियों में यह निर्भयतापूर्वक दी जाती है।

पंचामृत भस्म—

शुद्ध पीला सोमल, शु. हरताल, शु. मनःशिला, कलई चूना, शु. गंधक और फिटकरी १।-१। तोला।

विधि—सबको मिला घी क्वार के रस में ३ दिन खरल कर एक गोला बना लें सूखने पर सम्पुट कर तीन कपड़मिट्टी करके २॥ सेर गोबरी की आंच देवें।

मात्रा—१/८ से १/४ रत्तीसोंठ के घासे से सन्निपात ज्वर की बेहोशी में ३ बार या २-२ घंटे पर देवें। श्वासावरोध में अदरक और पोदीने के १-१ तोला स्वरस को गुनगुना कर ३ माशे शहद मिलाकर दें।

उपयोग—सन्निपात में बेहोशी, कफ प्रकोप, देहकी शीतलता, हृदय और नाडी की मन्दगति, अनियमित नाड़ी आदि लक्षण होने पर इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें हृदय उत्तेजित होता है शीतलता दूर होती है। कंठ में कफ बोलता है वो निकल जाता है और रोगी होश में आ जाता है।

यह भस्म पार्श्वशूल, श्वासावरोधका दौरा होने पर तत्काल लाभ पहुंचाती है। एक घन्टे में घबराहट दूर हो जाती है—कफ प्रकृति वालों को यह भस्म दी जाती है।

प्रबाल भस्म—

प्रवाल शाखा २० तोले को १ सेर गोमूत्र में डाल मंदाग्नि पर उबालें। गो मूत्र चतुर्थांश शेष रहने पर हांड़ी को नीचे उतार लें। शीतल होने पर प्रवाल को जल में धो नीबू के रस में ३ दिन तक डुबो देवें। चौथे दिन प्रवाल को जल से धो लेने पर ऊपर से सफेद हो जाती है। पश्चात सराव संपुट में वन्द कर लघुपुट देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल घी क्वार के रस में १२ घन्टे खरलकर २-२ तोले की टिकिया बनाकर सूर्य के तेज ताप में सुखावें। पश्चात सराव सम्पुट कर गजपुट में फूंक देने से मुलायम श्वेत भस्म बन जाती है। इस भस्म को जिह्वा पर डालने से खारापन नहीं जाना जाता जिह्वा भी नहीं फटती।

मात्रा—१ से ४ रत्ती दिन में २ से ३ बार रोगानुसार अनुपान से देवें।

उपयोग—ज्वरों में दोषपाचन के लिए अति हितावह है। कब्ज हो तो उसे भी दूर करती है। जीर्ण ज्वर से अधिक निर्बलता आ जाती है ज्वर धातु में लीन होजाता है जब मज्जागत ज्वर बनता है, तब चक्कर आना मन्द-मन्द ज्वर बना रहना, संधियों में दर्द होना, नाड़ियों का खिंचना अरुचि वान्ति आदि होते हैं—गिलोय सत्व, आंवले, गिलोय, नागरमोथा मिला शहद के साथ दिन में २-३ बार दें। ज्वर निवृत हो जाता है।

प्रबाल पिष्टी—

अच्छे रक्त वर्ण छिद्र रहित प्रवाल की शाखाओं को

लेकर उष्ण जल से अच्छी तरह धोलें। पुनः कपड़े से पोंछकर सुखालें। फिर इमामदस्ते में कूटकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें। पश्चात् इस चूर्ण को न घिसने वाले पत्थर के खरल में डाल नीबू के रस में २ दिन खरल करें। पुनः अर्क गुलाब में या चन्दनादि अर्क मे मर्दन करे। जब यह आंख में लगाने योग्य सुर्मा की तरह सूक्ष्म एवं मसृग होजाय तो सुखाकर कपड़छान कर शीशी में भर लें।

मात्रा—१ से ५ रत्ती मधु, मक्खन या दूध से।

उपयोग—जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, पाण्डु रोग, रक्त-पित्त और कास में उपयोगी है। विशेष पित्तशामक, पित्त, विकारघ्न और सौम्य होने से पित्त युक्त शुष्क काम, रक्त, प्रदर, रक्त पित्त, अम्लपित्त, नेत्रदाह में हितकर है।

शीतला, छोटी माता, रोमान्तिका, अन्य संक्रामक ज्वर हो तो प्रवाल देनी चाहिये। विष प्रकोप व ज्वर शान्त हो जाते हैं।

मल्ल पुष्प—

विधि—पुरानी ईंट के बीच खड्डा करें। उस खड्डे के चारों ओर ताम्बे की कटोरी को बैठाने के लिए गोल काप करें, जिसमें कटोरी का किनारा ठीक उस काप में बैठ जाय। पश्चात् ५ वा १० तोले सोमल का टुकड़ा खड्डे में रख कटोरी को ईंट के काप में बैठाकर सन्धि पर दृढ़ मुद्रा लेप करें। सूखने पर ईंट को चूल्हे पर चढ़ाकर बेर की लकड़ी की मन्दाग्नि देवे। कटोरी के ऊपर गीला कपड़ा रक्खें। कपड़े बार बार बदलते रहे जिससे कटोरी के भीतर पुष्प लगते रहेंगे। बारह घन्टे अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर पुष्प निकाल लेवें।

मात्रा - १/८ रत्ती सोंठ के क्वाथ के साथ। आवश्यकता पर २ घन्टे बाद पुनः देवें या दिन मे २ बार देवें।

उपयोग—सन्निपात में कफाधिक्य, नाड़ी की शिथिलता, कम्प, बेहोशी आदि लक्षण होने पर इस पुष्प का उपयोग होता हैं। कफाधिक्य श्वास रोगी को मलाई व मिश्री के साथ दिया जाता है। कुछ दिनों तक श्वास रोगी को सेवन कराने पर संग्रहीत कफ निकल जाता है। नई उत्पत्ति रुक जाती है, श्वास प्रणालियां सुदृढ़ बन जाती है जिससे श्वास रोग निवृत्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त अनुपान विशेष से जीर्ण मन्दाग्नि, संग्रहणी, जीर्ण ज्वर, त्वचा के जीर्ण रोग, कन्डु आदि जो वृद्धावस्था में होने वाले हैं, उनका यह नाश करती है।

मल्ल भस्म –

संखिया, कलमी शोरा, चूना, सीप भस्म, सुहागे का फूला प्रत्येक २-२ तोले और नौसादर मलाई वाला १६ तोले लेवें। सबको महीन पीस ८ तोले आक के दूध में खरल कर २-२ तोले की टिकिया बना शराव सम्पुट में रख कपड़-मिट्टी करें। सूखने पर २॥ सेर कण्डों की अग्नि देने से काले रङ्ग की भस्म बन जाती है। भस्म वजन में कम उतरती है पर लाभ अच्छा करती है।

मात्रा—आधी रत्ती में एक रत्ती तक अदरक के रस या दूध मिश्री अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म वात व्याधि, अर्धाङ्ग वायु, गठिया, जीर्ण ज्वर, नया वात ज्वर, कफ ज्वर, सन्निपात आदि मिटाती है। निमोनियां रोग में खूब फायदा करती है। स्वेद लाकर ज्वर को घटाती है एवं गलगंड और बवासीर में भी लाभदायक है।

मल्ल शंख भस्म

विधि—शुद्ध किये हुये बड़े शंख को तपातपाकर ३ बार आक के पान के रस में बुझावें। फिर उस शङ्ख के भीतर सोमल का चूर्ण ५ तोले भर कर ऊपर से आक का दूध भर देवें। पश्चात् छोटी हांडी में चारों ओर आक के पत्तों के कल्क के भीतर उस शङ्ख को रख कर दृढ मुख मुद्रा करें। सूखने पर गजपुट मे रख अग्नि दें। स्वाग शीतल होने पर शङ्ख को निकालकर पीस लेवें। पुनः आक के दूध में ६ घन्टे खरल कर २-२ तोले की टिकियां बना शराव सम्पुट कर गजपुट देने से मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा—१ से ४ रत्ती दिन में दो बार गोघृत के साथ देवें।

उपयोग—यह भस्म श्वास, कास, मलेरिया, उदर-शूल, निमोनियां, पक्षाघात अर्दित और बार-बार आक्षेप आना आदि वात प्रकोप को दूर करती है। इस भस्म में सोमल अधिकांश में उड़ जाता है। फिर भी भस्म कुछ उग्र बन जाती है। श्वास रोग मे कफ को सरलता से निकालने और कफ की उत्पत्ति बन्द करने के लिए यह निर्भयतापूर्वक प्रयुक्त होती है। रुचि और पाचन शक्ति को भी बढ़ाती है।

मलेरिया अथवा जीर्ण ज्वर जो वार वार आक्रमण करता है ऐसे रोगियों को यदि मुख पाक, छाती में दाह आदि हों तो कुनेन नहीं दें। कुछ दिन इसका सेवन कराने से ज्वर शूल व पचन विकार दूर हो जाते है। गुड़, शीतल जल से स्नान, नया अन्न, खट्टा दही, भारी भोजन और सूर्य ताप में भ्रमण वन्द करना चाहिये।

मुक्ता पिष्टी—

मोती को पहिले सिमाक की खरल में सूक्ष्म चूर्ण कर सीमाक के खरल में गुलाव जल के साथ २१ दिन तक खरल करने से पिष्टी तैयार हो जाती है।

मात्रा—आधी से १ रत्ती। दूध गुलकन्द, चन्दन का शर्वत, गुलाव का शर्वत या सितोपलादि चूर्ण, चांदी के वर्क और शहद के साथ।

उपयोग—नेत्र रोग धातु क्षीणता, क्षय, उरःक्षत, हृदय की निर्वलता, नेत्रदाह, शिरदर्द, पित्तवृद्धि, दाह, प्रमेह और मूत्रकृच्छ आदि दोषों को दूर करती है। पित्त की तीव्रता और अम्लता कम होती है, नेत्र ज्योति वढ़ती है, शीतवीर्य और मृदल है। मूत्रमार्ग और सर्वाङ्ग दाह और पित्तवृद्धि का शमन करती है। निद्रानाश के समय किसी भी रोग में मुक्तापिष्टी से निद्रा लाने में सहायता भी मिलती है। ज्वर के सन्ताप को दूर करती है। वल्य गुण के कारण वात का भी शमन करती है। त्वचा, हृदय, क्लोम, यकृत प्लीहा, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के विकारों में यह अच्छा लाभ करती है।

शम्बूक भस्म –

छोटे शङ्खों को शोधन कर कूट सूक्ष्म चूर्ण कर ले। फिर पित्त पापड़ा के क्वाथ मे ३ दिन खरल कर टिकिया बांध सूर्य के ताप में सुखावें। फिर शराव सम्पुट कर गजपुट अग्नि देने से सफेद रङ्ग की मुलायम् भस्म वन जाती है। (मीठे जल में उत्पन्न छोटे शङ्खों की भस्म अधिक गुणप्रद नहीं होती)।

मात्रा—१ से ६ रत्ती दिन में दो समय दें।

उपयोग—कफ ज्वर, विषम ज्वर, अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी, कफ पित्तात्मक, परिणामशूल, मन्दाग्नि, शीतपित्त, विस्फोटक आदि को दूर करती है। अन्त्र के क्षतो का रोपण सत्वर होता है। प्रवाहिका प्रधान संग्रहणी में विशेष उपयोगी है।

शुभ्रा भस्म –

१० तोले श्वेत फिटकरी को ३ घन्टे भेड़ के मूत्र में खरल करके टिकिया वना सूर्यताप में सुखा लें। फिर ६० तोले या इससे अधिक जल रह सके उतने बड़े मिट्टी के सराव में रख सम्पुट कर गजपुट में फूंक दें। श्वेत रङ्ग की मुलायम भस्म वन जाती है।

मात्रा—१ से ४ रत्ती शक्कर, शहद, शरवत वनफ्सा या रोगानुसार अनुपान के साथ दें। दिन में २-३ वार देते रहना चाहिये।

उपयोग—रक्त स्तम्भक और स्रोत संकोचक है। नाड़ियों में रहे हुये दोष को वाहर निकालता है और बढ़े हुये कास और श्वास के वेग को कम करती है। पार्श्व पीड़ा को कम करती है। रक्तप्रदर, श्वेत प्रदर, विसर्प, योनिशिथिलता आदि विकारों को दूर करती है। आन्त्रिक ज्वर, नाना विषजन्य शूल, जीर्ण अतिसार आदि में हितकर है।

मधुरा रोग में अन्त्रस्थ श्लेष्मिककला शिथिल वन जाती है। उनमें क्षत हो जाते हैं। क्वचित् दस्त में रक्त भी आने लगता है। १-१ रत्ती भस्म शक्कर के साथ दिन में ४ या अधिक समय देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। क्षत दूर होते हैं। श्लेष्मिक कला सवल होती है और आन्त्रविकार का भी शोधन हो जाता है।

सूचना—अधिक मात्रा में अधिक दिनों तक इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

स्फटिका शम्ब मल्ल भस्म –

लाल फिटकरी १६ तोले, सफेद सोमल १॥ तोले।

विधि—समान नाप वाले किनारे घिसे हुये दो वड़े सराव ले। एक सराव में फिटकरी का आधा चूर्ण डाले। उसमें खड्डा कर सोमल चूर्ण रख, ऊपर शेष फिटकरी चूर्ण डाले और अंगुली से इस तरह दवा देवे कि ऊपर से फिटकरी नीचे गिरकर सोमल न दीखें। फिर मुख मुद्राकर १॥ सेर कन्डों की अग्नि देकर फूला (भस्म) वना लेवें। स्वांग शीतल होने पर सम्पुट को खोल फूले को पीस लेवें। इस भस्म में से संखिये का अल्प अंश उड़ जाता है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिन मे २ वार शहद मिश्री या नागर वेल के पान के साथ।

उपयोग इस भस्म का उपयोग नूतन कफज्वर शीत प्रधान ज्वर, एकाहिक, तृतीयक और चातुर्थिक आदि विषम ज्वर तथा पूय जन्य ज्वरों में होता है। मलेरिया में ज्वर चढ़ने से ४ घन्टे पहिले एक बार दें। फिर दो घन्टे पहिले दूसरी बार देने से ज्वर रुक जाता है। जीर्ण विषम ज्वरों में दिन में २ बार ४-६ दिन तक देते रहने से ज्वर निवृत हो जाता है। पित्त प्रकृति वालों को, खुश्की, सिर भारी होना चक्कर आना, व्याकुलता आदि हो तो दूध अथवा नीबू की शिकंजी पिलावें।

हरताल गौदन्ती भस्म

५ तोले उत्तमवरकी हरताल के एक टुकड़े को पीले फूल वाली हुलहुल (कागला खेत) के एक सेर स्वरस में डालकर एक मिट्टी की हांडी में भरें। हांडी को एक छोटे चूल्हे पर चढ़ाकर १२ घन्टे तक बहुत मन्द आंच देवें। कदाचित बीच में रस समाप्त हो जाय तो और डालें। पश्चात एक सराव मे गौदन्ती भस्म २५ तोले के बीच हरताल को रखकर ऊपर दूसरा सराव ढककर मजबूत कपड़ मिट्टी करें। उसे सूर्य के ताप में सुखाकर ५ सेर अरन्य कंडों की आंच दें। स्वाँग शीतल होने पर निकाल घी क्वार के रस में १२ घन्टे खरल कर गोला बांध सुखा सम्पुट कर ५ सेर कन्डों की अग्नि दें। इस प्रकार तीन बार गजपुट देने से भस्म तैयार हो जाती है। टिकिया कठोर प्रतीत होती है। परन्तु पीसने से मुलायम हो जाती है। (गौदन्ती के संयोग से इसका उपयोग निर्भयता से होता है)।

मात्रा—आधी से चार रत्ती दिन में तीन बार दें।

उपयोग—सन्निपात में अदरक का रस और शहद मिलाकर चटावें। एक ही बार देना हो तो ४ से ८ रत्ती तक देवें। अन्यथा २-२ रत्ती, २-२ घन्टे पर देते रहें। विषमज्वर में तुलसी, सहदेई या द्रोणपुष्पी के रस में देवें। नूतन ज्वर, शीतज्वर, श्वसनक ज्वर, प्रलापक सन्निपात, मोतीझरा, उलट उलट आने वाला ज्वर, रक्तविकार, विस्फोटक, कुष्ठ, उपदंश. वात रक्त, श्वास, कास, कुकर खांसी आदि को दूर करती है। सन्निपात में तुरन्त अपना प्रभाव दिखाती है।

हरताल भस्म

क्षार जल से शोधित तपकिया हरताल २ तोले और शुक्ति भस्म २ तोले को ३ घन्टे घी कुंआर रस मे खरल कर पूरी जैसी टिकिया बनाकर धूप में सुखावें। फिर सराव में सम्पुट कर २ २ र कडों की अग्नि देवें। शीतल होने पर भस्म निकाल लेवें। इसमे हड़ताल कुछ उड़ जाती है तो भी काम अच्छा देती है।

मात्रा—आधी से २ रत्ती, दिन में दो बार।

उपयोग—यह भस्म कुष्ठ, नवीन ज्वर, जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर को दूर करती है। विषम ज्वर आने के ३ घन्टे पहिले ३ माशे मिश्री के साथ देवे। पुन. २ घन्टे बाद देवें। कुष्ठ पर विशेष हितावह है।

हरताल भस्म

तपकिया हरताल चूर्ण कर अभ्रक के २ पत्तों के बीच फैला, दोनों पत्तों को बन्दकर गोबरी की निर्धूम अग्नि पर रखें। ३-३ मिनट पर ३ बार पलटने से माणिक के समान हरताल का रङ्ग हो जाता है। साफ रङ्ग होने पर माणिक रस निकाल लें।

मात्रा—१-१ रत्ती जुकाम और कफज ज्वर में नागर वेल के पान के साथ दें।

कुष्ठ और रक्तविकार में गोघृत या शहद में दे ऊपर से बेर की छाल का क्वाथ दें। वात श्लेष्म ज्वर, विषम ज्वर, सन्निपात में कफ प्रकोप, हृदयावरोध, गलित कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, नाडी व्रण, दुष्ट व्रण, उपदंश, भयङ्कर क्षत और त्वचा रोगादि को दूर करती है।

शृङ्ग भस्म

मृग शृङ्ग के टुकडे-२ कर नींबू के रस में शुद्ध कर लें। पश्चात आक के पत्तों की लुगदी में रख कपरौटी कर अग्निदग्ध कर लें। इसमें काले रङ्ग की भस्म बनेगी। उसे फिर अर्क पय, अर्क पत्र रस या घी क्वार के रस में खरल कर टिकिया बना, सुखा सराव पुट कर गजपुट में फुंक लें। श्वेत रङ्ग की उत्तम भस्म बनेगी।

मात्रा—१ से ३ रत्ती दिन में ३ बार।

गुणकर्म—ज्वरघ्न है। हृदय और फुफ्फुस को बल प्रदान कर उनकी गति का नियमन करती है। फुफ्फुस में जमे कफ का विलयन कर उसका स्राव कराती है। श्वसनक ज्वर तथा अन्य फुफ्फुस विकारों में भी स्वतन्त्र रूप तथा अन्य औषधियों के साथ उपयोग में आती है। क्षय के कीटाणुओं पर भी प्रभावी है, देह में उत्पन्न कीटाणु

जन्य विषों को उदासीन करती है। हृदय के विकारों में लाभ करती है। जीर्ण ज्वर, सेन्द्रिय विषजनित अस्थिक्षय, राजयक्ष्माजन्य ज्वर, प्रतिश्याय प्रभृति में इसका सफलतापूर्वक उपयोग होता है। ये विशेष रूप से कफ दोष, रस-रक्त अस्थि. इन धातुओं की दुष्टि में, श्वसनेन्द्रिय, हृदय तथा वृक्क के विकारों में लाभप्रद है।

ज्वर नाशक

रस

अग्नि कुमार रस

शु. पारद, शु. गन्धक, शु. टंकण ये सब समान भाग लेवें। शु. वत्सनाभ ३ भाग लेवें। कपर्द भस्म और शंख भस्म प्रत्येक २ भाग लेवें। कालीमिर्च ८ भाग लेवे। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनालें। पुनः शेष द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण बनाकर सबको एकत्र मिलाकर खरल में भली प्रकार मर्दन करे। फ़िर जम्बीरी रस की भावना देकर ७ दिनों तक मर्दन करे और २-२ रत्ती की वटी बनाले।

मात्रा—१ से २ गोली जल छाछ या नींबू के रस से यथावश्यक देवें।

प्रयोग—अग्निमांद्य, अजीर्ण तथा तज्जन्य ज्वरों में इससे उदर शूल शांत होता है और अग्नि प्रदीप्त होती है।

अचिन्त्यशक्ति रस

शु. शोमल, शु. हरताल और शु. हिंगुल १-१ तोला मिलाकर करेले के २॥ सेर रस मे खरल कर १/८-१/८ रत्ती की गोलियां बनाले। करेले का रस थोडा थोडा मिलाकर १॥ सेर आत्मसात करना चाहिए।

मात्रा—१ से २ गोली दिन मे दो बार बलाबल देख कर देवें।

अनुपान और उपयोग—इस रस को श्वसनक, सन्निपात, फुफ्फुसशोथ, श्वास कास कफ ज्वर और सन्निपात आदि में शक्कर के साथ देने से सत्वर चमत्कारिक लाभ दिखाता है। भोजन में केवल दूध ही दें। अन्य भोजन नही देना चाहिए। रोग का वेग शांत होने पर थोड़े दिनों तक प्रातः सायं शृङ्गभस्म और अभ्रक भस्म १-१ रत्ती मिला, घृत शक्कर या केवल घृत के साथ चटाना चाहिये। श्वसनक सन्निपात के समान यह रसायन विषम ज्वरों में लाभ पहुँचाता है। सतत, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक इन पर सत्वर प्रभाव पड़ता है। पारी के ज्वर दिन में ३ समय औषधि सेवन करने पर बहुधा रुक जाता है। ज्वर रुक जाने पर भी ४-६ दिन इसका उपयोग करना चाहिए। अनुभव करने पर यह अचिन्त्य शक्तिशाली ही सिद्ध हुआ है।

अर्धनारी नटेश्वर

काला सुरमा, पीपल, कांसी, सीसा, ताम्र, जसद खपरिया, शीतलमिर्च, समुद्र झाग, मोतीपिष्टी, शुद्ध सुवर्ण रौप्य और लोह इन १३ औषधियों को १-१ तोला तथा पीपल, सफेद मिर्च और छोटी इलायची के बीज ६-६ माशे लें। स्वर्ण, रौप्य सीसा और जसद का वर्क बना लेवें। ताम्र, पीपल और कांसी को बारीक रेती से घिसवा कर कपड़छन चूर्ण करा लेवें। शेष औषधियो को कूट कपड़छन चूर्ण करे। आठ प्रकार की धातुओं के चूर्ण या भस्मों को मिला सफेद पुनर्नवा के साथ लोह खरल मे १४ दिन तक खरल करे। चमक रहित सूक्ष्म चूर्ण बन जाने पर मोती पिष्टी सुरमा, खपरिया, समुद्र झाग और काष्टादिक औषधियां मिलाकर २१ दिन तक सफेद पुनर्नवा के रस में पत्थर के खरल में मर्दन कर सुखा मसृण अञ्जन बना कर बोतल में भरलें।

उपयोग—इस रसका उपयोग अंजन करने के लिए होता है मियादी ज्वरों को छोड शेष ज्वरों में उदर शुद्धी करा एक नेत्र में करेले के रस, बकरी के दूध सफेद पुनर्नवा के रस या जल के साथ अथवा केवल सूखा अंजन करदे और गरम कपड़े ओढा देवें जिससे थोड़े ही समय में प्रस्वेद आकर ज्वर दूर हो जाता है। कदाचित् आत दोष से पुनः ज्वर आजाय तो फिर दूसरे नेत्र में अंजन कर देने से ज्वर की निःशेष निवृति हो जाती है। इसके अंजन करने पर भी ज्वर न उतरे तो समझना चाहिये कि यह मुद्दती है अथवा अभिचार आदि बलवान कारणों से हुआ है।

अश्वकंचुकी रस

विधि—शु. पारद, शु. गन्धक, शु. बच्छनाग, सोहागे का फूला, शु. हरताल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपर और शु. जमालगोटा सबको समभाग मिला भांगरे के रस में २१ दिन तक घुटाई कर १-१ रत्ती की गोलिया

बना लें ।

मात्रा—१ से ४ गोली सुवह जल के साथ देवें । बालक को आधी गोली देनी चाहिए ।

उपयोग ज्वर केसरी में सुहागा और हरताल मिलाने पर अश्वकंचकी रस तैयार होता है। इस रसायन में भांगरे के रस की जितनी अधिक भावना लगती हैं उतनी सौम्यता आती है तथा दाहक और विरेचक गुण कम होता है। भांगरे के रस की अधिक भावना से यकृत को अधिक लाभ पहुँचा है एवं जमालगोटे की उग्रता शमन होकर दाह, उबाक और वमन करने की शक्ति का ह्रास होता है तथा हरताल की उग्रता भी कम होती है। अनुपान भेद से अनेक रोगों में हितकारक है।

चतुर्थिक ज्वर में दोष, रस आदि धातुओं से मेद धातु पर्यन्त पहुँच जाता है। इस विकार में कोष्ठबद्धता, प्लीहा वृद्धि आदि विकार होते हैं। यदि चौथे दिन ज्वर आने के समय कोष्ठ में जड़ना और छाती में कफ संचय आदि लक्षण हों और अनेक दिनों से ज्वर त्रास पहुंचाता हो तो इसका प्रयोग आस्त्य के पत्तों के रस से करना चाहिये। अन्य विषम ज्वरों में भी तीव्रता कम हो जाने प्लीहावृद्धि पाण्डुता अग्नि मांद्य हो तो इसका प्रयोग करो पित्त प्रधान प्रकृति वालों को नहीं दें। गर्भिणी, सूतिका बच्चे व कमजोरों को नही दें।

अष्ट मूर्ति रस

शु. पारद १ तोला, शु. गन्धक ६ तोला मिला घोट कर कज्जली बना लें। पुनः शु. हिंगुल १ तोला, शु. मनमिला १ तो., शु. सोमल १ तो. शु. हरताल ६ माशे फिटकरी का फूला १ तो.; सोने वर्क ६ माशे लेवें और सब एक साथ मर्दन करे। पश्चात इस मिले हुए औषध को कपड़ मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरकर वालुका यन्त्र में यथाविधि ३० घन्टे तक (मंद, मध्यम और तीव्र आंच पर) सिद्ध करे। स्वांग शीतल होने पर शीशी में लगे हुए रस को सावधानी से निकाल लें और खरल में पीस कर शीशी में रख छोड़े।

मात्रा—१ से २ रत्ती आद्रक स्वरस तथा मधु ले।

उपयोग—सब प्रकार के विषम ज्वर, पुनरावर्तक ज्वर, जीर्ण उपदंश, क्षय, सन्निपात उन्माद, अपस्मार, तथा वात व्याधि में लाभ करता है। यह कृष्ण ज्वर जिसमें त्वचा कृष्णवर्ण की हो जाती है, शीतज्वर आदि में भी लाभ करता है। अरुण ज्वर या शोण ज्वर में भी लाभ दायक हैं। उपदंश तथा फिरङ्ग के विष को नष्ट करता है। फिरङ्गजन्य वाय रोगों में अच्छा लाभ करता है। यह शक्ति वर्द्धक ओजस्कर हृदयोत्तेजक, जन्तुघ्न, बल मांस वर्द्धक, एवं आक्षेपघ्न औषधि है।

आनन्द भैरव रस

शु. हिंगुल, सोंठ, काली मिर्च, पीपर, शु. टंकण, शु. वत्सनाभ और शु. गन्धक, समभाग १० घन्टे नीबू के रस में घोटें। १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। छाया शुष्क कर कांच की शीशियों में भर सुरक्षित करलें।

मात्रा—१ से २ वटी दिन में २ से तीन वार।

अनुपान—लक्षणानुसार, जल, छाछ, चावल के धोवन तथा अनार शर्वत।

उपयोग—कफ ज्वर, ज्वरातिसार, अतिसार, कास, श्वास, प्रतिश्याय. मंदाग्नि, अजीर्ण प्रभृति। इसके प्रयोग से ज्वरों में जिनमें जजीर्ण अतिसार, आदि उदर विकार के रूप में उपस्थित हो करना चाहिये। इसका प्रभाव आंतों की क्षुब्ध श्लैष्मिक कला पर होता है। जिससे अजीर्ण आदि लक्षण शांत हो जाते हैं।

आह्कारि रस

छोटी इलायची का चूर्ण, हरीतकी चूर्ण, पिप्पली लोह भस्म अभ्रक भस्म. खर्पर भस्म प्रत्येक १ तोला लेवें और रस सिंदूर २ तोला लेवें। इनको एकत्र कर खरल में अच्छी प्रकार मर्दन करे। पुनः द्रोणपुष्पी के स्वरस की भावना देकर अच्छी प्रकार घोटे और २-२ रत्ती की गोलियां बना ले।

मात्रा—१ वटी दिन में २ से ३ वार।

अनुपान—पुनर्नवा स्वरस में।

उपयोग—यह नासा ज्वर (Hay Fever) की विशिष्ट औषधि है। इसके प्रयोग से प्लीहारोग, यकृद्रोग, अग्निमांद्य, अरुचि तथा विषमज्वर नष्ट होते हैं।

कल्प तरु रस

शु. पारद १ तोला, शु. गन्धक १ तोला, शु. मीठा तेलिया १ तो. शु. मैनसल १ तो., विमल भस्म १ तो., खील सुहागा १ तोला, सोंठ, पीपर २-२ तोला, काली

मिर्च १० तोला लेवे। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना फिर अन्य दवाओं को कूट कर कपडछन चूर्ण कर कज्जली में मिला आठ घन्टे तक घोटे। जब दवा एक रस होजाय तब शीशी में भर कर रखले।

मात्रा अनुपान—१ से २ रत्ती अदरक रस और मधु के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान से दे।

उपयोग—यह रस खाने और सूंघने दोनों कामों में आता है। इसके सेवन से वात-कफ ज्वर, खांसी, श्वास प्रतिश्याय एव बुखार से अंगों का जकड़ना यथा दर्द होना मुख और नाक से पानी टपकना, अग्निमांद्य, अरुचि आदि नष्ट हो जाते हैं। इसका नस्य लेने से कफ और वायु से उत्पन्न शिरदर्द दूर होता है तथा मूर्च्छा प्रलाप छींक की रुकावट आदि में लाभ होता है। ज्वर पीड़ित रोगी की छाती में कफ भरा हो श्वास प्रकोप, घबडाहट आदि लक्षण हों तो इस रस के सेवन करने से उत्ताम लाभ होता है।

कस्तूरी भूषण रस

शु. पारद, अभ्रक भस्म, शु. टकण, सोंठ. कस्तूरी, दन्तीमूल, भांग के बीज, कर्पूर, मिर्च सब समान भाग लेवे। अलग अलग बारीक चूर्ण करे फिर मिलाकर खरल में घोटे और आदी के रस ७ भावनाएं देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा—१ वटी दिन में २ या ३ बार यथा आवश्यक आद्रक स्वरस तथा मधु से

नोट—पारद से पारद भस्म या रस सिंदूर तथा कज्जली का ग्रहण करना चाहिये।

उपयोग—वातश्लेष्मोल्वण सन्निपात में करते है। कास, श्वास, क्षय तथा उर्ध्वजत्रु विकार में प्रयुक्त होता है। विषम ज्वर तथा शोथ रोग में इसका प्रयोग विहित है। यह शुक्र ओज तथा बल को बढ़ाती है। पित्तश्लेष्माधिक विकरों में भी यह अच्छा कार्य करती है।

कस्तूरी भैरव बृहत्

उत्तम कस्तूरी, कपूर, ताम्र भस्म धाव के फूलों का चूर्ण, केवांच बीज का चूर्ण, रजत भस्म, स्वर्ण भस्म, मुक्ता भस्म, प्रवाल भस्म लोह भस्म, पाठा चूर्ण, वायविडङ्ग चूर्ण, नागरमोथा चूर्ण, मीठ चूर्ण, ह्रीवेर चूर्ण, शुद्ध हरताल अभ्रक भस्म, आंवले का चूर्ण, प्रत्येक १-१ भाग। सबको खरल में मिला भली प्रकार घोट ले और आक के पत्तो के रस की एक भावना दे, १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा—१-२ वटी दिन में २-३ बार यथावश्यक, अनुपान—अद्रक स्वरस तथा मधु।

उपयोग सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। आद्रक स्वरस के अनुपान से सब प्रकार के विषम ज्वर नष्ट होते हैं। द्वन्दज तथा सन्निपातज ज्वरों में पर्याप्त लाभ होता है। मानसिक कारणों से उत्पन्न ज्वर भूताभिषंगज ज्वर, आक्षेपक ज्वर आदि को भी यह रस नष्ट करता है। बिल्वशलाद्र चूर्ण तथा जीरक के अनुपात से ज्वरातिसार आमातिसार तथा ग्रहणी रोग को भी यह दूर करता है। अग्निदीपक है। फुफ्फुस में संग्रहीत कफ का निःसरण कर कास को नष्ट करता है। श्वसनक ज्वर में इसके प्रयोग से पर्याप्त लाभ होता है।

कस्तूरी भैरव रस (मध्यम)

बंग भस्म, यशद भस्म, कस्तूरी, स्वर्ण भस्म, रजत भस्म ये सब १-१ भाग लेवें। कान्त लोह भस्म, धत्तूरे का घन सत्व, पारद भस्म (पारद सिंदूर), लौंग, जायफल, इन द्रव्यों का चूर्ण प्रथक-प्रथक २ भाग। पश्चात् सबको मिला गूमा और नागर बेल के पान की ७-७ भावना देवें। और पुनः ६ भाग कपूर और २ भाग त्रिकटु का बारीक चूर्ण डालकर मर्दन करें और ३ रत्ती से १ माशे तक की वटी बनाकर छाया शुष्क कर लें।

मात्रा—१ वटी दिन में २-३ बार यथावश्यक।

उपयोग—वातोल्वण सन्निपात ज्वर, महाश्वास, श्लेष्मज्वर, सूतिका ज्वर, गर्भाशय विकृति. कास-श्वास तथा राजयक्ष्मा प्रभृति में लाभ करता है। शीतांग सन्निपात ज्वर में उपकारी है। प्रसूता के (सन्निपात) धनुर्वात में भी यह अच्छा लाभ करता है। हृदय को बल प्राप्त होता है। सन्निपात में उपद्रव (प्रलाप आदि) शान्त होते हैं। इसका उपयोग विषम ज्वर नष्ट शुक्र, प्रमेह, गुल्म तथा क्षय प्रभृति में भी होता है। यह कामोत्तेजक तथा वृष्य भी है।

स्वल्प कस्तूरी भैरव रस

शुद्ध हीगलू, शुद्ध बच्छनाग, सुहागा खील, जावित्री, जायफल, कालीमिर्च, पीपर, कस्तूरी समान भाग।

कस्तूरी को छोड़कर सभी द्रव्यों के चूर्ण को ब्राह्मी के रस में घोटें। फिर कस्तूरी मिलाकर पान के रस में मर्दन कर गोली बनावे। यदि इसको और अधिक वीर्यशाली बनाना हो तो भीमसैनी कपूर समान भाग तथा कुचले का सत्व १/१६ भाग और मिला दे।

गोली १/२ रत्ती की मात्रा—१-२ गोली सन्निपात ज्वर की हर अवस्था में लाभ करता है।

कफ कुठार रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोंठ, मिर्च, पीपर, ताम्र भस्म और लोह भस्म सब समभाग। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली तैयार कर ले, फिर भस्में मिला घोट ले और त्रिकुटे का सूक्ष्म चूर्ण मिला प्रथम कंटकारी के फलों के स्वरस में ६ घन्टे तक घुटाई करे। फिर कुटकी क्वाथ में तथा धतूरे की पत्तियों के स्वरस की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—१-२ वटी पान के रस के साथ।

उपयोग—यह रस कफ ज्वर को नष्ट करने वाली अति तीक्ष्ण औषधि है। कफ ज्वर में जब छाती में अत्यधिक कफ जमा हो गया हो तो इसका प्रयोग करे। इससे जमा हुआ कफ द्रव होकर निकल जाता है तथा कास का वेग न्यून होता है। यह स्रोतो विशोधक है, श्वास वाहिनियों पर इसका अच्छा प्रभाव होता है। उद्रित कफ और तज्जन्य कास के साथ ज्वर पर इसे प्रयोग में लेते है। वेदनाशामक, आक्षेपनाशक और कफोत्पत्ति को कम करता है।

कामदुधा रस

मुक्ता पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, शुक्ति भस्म, वराटिका भस्म, शङ्ख भस्म, स्वर्ण गैरिक और गिलोय सत्व सब समभाग ले खरल करलें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दिन में ३ बार जीरा मिश्री के साथ अम्ल पित्त में आंवले के चूर्ण और घृत के साथ।

उपयोग—शीतवीर्य, क्षोभनाशक और शक्तिदायक है तथा पचन क्रिया, रुधराभिसरण, वातवहन क्रिया और मूत्रमार्ग पर शामक असर पहुँचाता है। कामदुधा से जीर्ण ज्वर, पित्तविकार, अम्लपित्त, दाह मूर्च्छा, भ्रम, चक्कर, उन्माद, अपस्मार, मस्तक शूल, सोमरोग, प्रदर, रक्त गिरना आदि शीघ्र नष्ट होते है। मगज की निर्बलता, मूत्रदाह, मुखपाक, रक्तार्श, सगर्भा स्त्री का वमन, मानसिक त्रास इत्यादि भी शमन होते हैं।

कामधेनु रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, सोंठ, काली मिरच, पीपर, लोह भस्म, अभ्रक भस्म। इन ८ औषधियों को समभाग मिला त्रिफला के क्वाथ में एक दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा—१ से २ रत्ती। शहद पीपल के साथ देवे।

उपयोग—यह रस धातु क्षय, पांडु रोग, जीर्ण विषम ज्वर, प्रमेह, रक्तपित्त, अम्ल पित्त, सन्निपात, घोर वात व्याधि, गुल्म, अर्श, ग्रहणी आदि नष्ट करता है। इसके योग से रस क्षय में रस धातु बनने की क्रिया सम्यक होने लगती है। एक से बने रहने वाले ज्वर, सर्वाङ्ग में जड़ता, विशेषतः उदर में जड़ता, उबाक मुंह में जल भर जाना, अङ्गसाद, विशेष ग्लानि, वमन, वमन में मीठा सा जल गिरना, अरुचि, मलिनदीन मुख मुद्रा आदि लक्षण होने पर इसकी योजना करनी चाहिये। सतत ज्वर में रस धातुक्षीण होने पर दाह, कड़वी खट्टी वमन, विभ्रम शरीर पर पिटिकायें दाह, तृषा, कुछ कुछ प्रलाप, निस्तेजता, दीनवाणी, चिन्ताग्रस्त सा बने रहना आदि लक्षण होने पर इस रस का प्रयोग करना चाहिये। अम्ल पित्त में जब खाया हुआ अन्न दुर्गन्धित और क्लेदयुक्त बन बाहर निकल जाता है, घबराहट और बेचैनी रहती है इस रस की योजना करनी चाहिये। भोजन में पथ्य हल्का अन्न फल रस आदि देना चाहिए।

कालकूट रस

शुद्ध बच्छनाग १ भाग, शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध आंवलासार गंधक ५ भाग, शुद्ध मेनसिल ६ भाग, ताम्र भस्म ४ भाग सुहागे का फूला ६ भाग शुद्ध हरताल ६ भाग चित्रक मूल ६ भाग त्रिकटु १२ भाग त्रिफला १० भाग भुनी हींग १ भाग और बच १ भाग लेवे। पारद गन्धक मिला कज्जली कर ताम्र भस्म मेनसिल हरताल सुहागा और बच्छनाग क्रमशः मिलावें। बाद में शेष औषधियों का चूर्ण मिला अदरक का रस चित्रक मूल का

क्वाथ जम्बीरी नीबू का रस लहसुन का रस करञ्ज के पत्तों का रस आक के मूल का क्वाथ धतूरे के मूल का क्वाथ नागरवेल के पान का रस अकोल के मूल का क्वाथ सहजने के मूल का क्वाथ पंचकोल का क्वाथ वृहद् पंचमूल का क्वाथ। इन १३ औषधियों की १-१ प्रहर तक भावना देकर आध आध रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्रा—१-१ गोली अदरक के रस में दिन में ३ बार देवे।

उपयोग—अनेक ज्वरों और सन्निपातों का नाश करता है। यह अति उग्र है। इसके सेवन के बाद स्नान करा चन्दन का लेप करने का विधान है। पथ्य मे दही खजूर आदि तथा ताम्बुल देवे। जब हृदय अवसादकत्व की साक्षी देता हो किसी स्थान में रक्तस्राव न होता हो तब इसका उपयोग करना चाहिए। इसमें उत्तेजना आकर नाड़ी की गति सुधरने लगती है। रक्त दबाव बढ़ जाता है। नेत्रों में लाली आदि लक्षण हों तो ये रस नही देना चाहिए। दुष्परिणामों को समझ कर इसका प्रयोग करे। कफ प्रधान वात संसर्गी सन्निपात की सर्वोत्तम औषधि है।

कालाग्नि भैरवो रस

पारद १ भाग गंधक २ भाग इनकी कज्जली करके गोक्षुर रस में मर्दन करे। शुष्क होने पर श्लक्ष्ण चूर्ण करले फिर ताम्र भस्म ३ भाग ताम्र के अष्टमांश कृष्ण सर्प विष हिंगुल १ भाग बबूर के बीज २ भाग गोदन्ती भस्म ५ भाग मनशिला ३ भाग टंकण ३ भाग खर्पर भस्म ६ भाग जयपाल १ भाग हलाहल (स्थावर विष) ३ भाग स्वर्ण माक्षिक भस्म ३ भाग लोह भस्म १ भाग वंग भस्म १ भाग इन सबको खरल में डाल कर अर्क क्षीर में मर्दन करे। तदन्तर दशमूल क्वाथ एवं पंचमूल क्वाथ में क्रमशः १-१ प्रहर मर्दन करके १-१ रत्ती की वटी बनावे।

मात्रा १ से दो रत्ती।

उपयोग—इसके सेवन से दारुण सन्निपात शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। पूर्ववत् चावल दही आदि पथ्य दें।

कालारि रस

शु. पारा ३ तो., शु. गन्धक ५ तो., शु. वच्छनाग ३ तो. कालीमिर्च ५ तो., पीपल १० तो., धतूरे के शुद्ध बीज ३ तो. सुहागे का फूला ५ तो., जायफल ५ तो., और अकलकरा ३ तोले ले। पहिले पारद गन्धक की कज्जली कर अन्य औषधियों का चूर्ण मिलावे फिर करीर के स्वरस और अदरक के रस में २-२ दिन खरल करके १ १ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा—१ से २ गोली दिन में २ से ३ बार जल अथवा रोगानुपान से देवे—कतिपय चिकित्सक अदरक के रस के साथ भी देते है। सन्निपात में प्रलाप आदि लक्षण होने पर वैद्य जीवनोक्त अर्कादि क्वाथ या योगरत्नाकर के तगरादि कषाय के साथ दिया जाय तो उन विकारों को दूर करता है।

उपयोग यह रस सन्निपात मे उत्पन्न श्वास, कास, हिक्का और प्रलाप आदि लक्षणों का शमन करने में बहुत उपयोगी है। कफ प्रधान और वात प्रधान सन्निपात में विशेष हितकर है। अन्त्र के शोधन और वात कफ को शमन करने के साथ सेन्द्रिय विष को सत्वर जलाकर रोग को दूर करता है। इसके अतिरिक्त यह रस कफ ज्वर तथा शीत ज्वर पर भी तत्काल गुण दर्शाता है।

कुल वधू

शु. पारद, नागभस्म, ताम्र भस्म, शु. मनसिल तथा नीला थोथा, इन सबको बराबर लेकर इन्द्रवारुणि के रस में दिन भर अच्छी प्रकार मर्दन करके चने के बराबर गोलियां बना लें। जल में घिस कर नस्य लेने से अचेतनता को हटाता है।

गदमुरारिरस

शु. पारद, शु. गन्धक, शु. मेनसिल, लोह भस्म, अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म प्रत्येक १-१ तोला, तथा शुद्ध वच्छनाग तीन माशा लेवे। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करले। फिर भस्म और वत्सनाभ मिला अदरख के रस में १२ घंटे खरल करके आध आध रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्रा—१-१ गोली दिन में २ समय निवाये जल, अदरक के रस, तुलसी के रस अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवे।

उपयोग—आम प्रधान जीर्ण ज्वरों का शमन करता है। अनेक दिनों तक रहने वाले ज्वरों में धातु परिपोषण क्रमको धीरे धीरे सुधार रोग को शमन करता है। जिन ज्वरों में दोष धातुओ के भीतर लीन रहता है उनमें इस रस का उपयोग अत्यन्त हितकारक है। रसगत ज्वर

पित्त ज्वर, जिन सन्निपातों की अच्छी तरह चिकित्सा न हुई हो ऐसे बहुत समय के पुराने विषम ज्वर क्षय की प्रथमावस्था का ताप, अतिसार सहित जीर्ण ज्वर आदि पर यह रसायन प्रयुक्त होता है।

गुडूच्यादि रसायन

खस, वासा के पान, तेजपात, कूट, आंवले, सफेद, मूसली, छोटी इलायची के दाने, रेणुका बीज, मुनक्का, केशर, नागकेशर कमल का कंद, कपूर सफेद चन्दन का बुरादा लाल चन्दन, काली मिर्च, सोंठ, पीपर, मुलहठी धान का लावा, असगंध, शतावर, गोखरू, कोंच के बीज जायफल, शीतल मिर्च और तगर प्रत्येक १-१ तोले, रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म बङ्ग भस्म और लोह भस्म १-१ तोले गिलोय सत्व ३१ तोले ले।

विधि—प्रथम भस्मों को मिलावे फिर गिलोय सत्व और शेष काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलादें।

मात्रा—३ माशे में ३ माशे मिश्री, ३ माशे घी और शहद ४ माशे मिलाकर दिन में ३ वार सुबह शाम तथा रात्रि को देवे, ऊपर से गौ का दूध पिलावे।

उपयोग—इस रसायन के सेवन से क्षय, रक्तपित्त, पैरों की जलन, रक्तप्रदर मूत्राघात, मूत्रकृच्छ, सब प्रकार के प्रमेह दारुण सोमरोग और जीर्ण ज्वर आदि दूर होते हैं। यह रसायन बल्य, वृष्यों में उत्तम, मेध्य और राज-रोग (दृढ घोर रोगों) का नाशक है। १ वर्ष या ६ माह तक प्रयोग करावे। उत्तम कल्प है।

सेवन काल में सज्जीखार आदि क्षार व तेज खटाई त्याग देना चाहिए।

कफ विकार हो या मूत्र में पूय जाता हो तो रससिंदूर नहीं मिलाना चाहिए।

गुडुच्यादि रसायन

गिलोय सत्व और खूबकला ४-४ तोले तथा प्रवाल पिष्टी और छोटी इलायची के दाने २-२ तोले और शृंग भस्म १ तोले लेवे—सबको मिलाकर मिश्रण कर लेवे।

मात्रा—१-१ माशा दिन में ३ वार शहद के साथ देवें ऊपर से वनफशा अर्क पिलावे।

उपयोग—यह रसायन क्षय के बढे हुए ज्वर के विष दूर करने के लिए अति उपयोगी है। इसके सेवन से क्षय ज्वर अधिक नही बढ़ता, कफ सरलता से निकल जाता है और शारीरिक शक्ति का क्षय नहीं होता। जीर्ण ज्वर में इस रसायन के सेवन से अच्छा लाभ पहुँचता है।

चतुर्मुखरस

शु पारद, शु. गंधक, लोह भस्म और अभ्रक भस्म, ४-४ तोले स्वर्ण भस्म १ तोला। सबको यथाविधि मिला कर ७ दिवस घी क्वार के रस में खरल करे। फिर सोंठ हरड़ और पुनर्नवा का क्वाथ कौच बीज और लौग का क्वाथ तथा चित्रक मूल और पदमकाष्ठ का क्वाथ इन तीनों की क्रमशः तीन-तीन भावनाएं देकर खूब गाढ़ा करे और एक गोली बना एरण्ड पत्र में लपेट कर धान्य राशि में तीन दिन दबादें। तत्पश्चात निकाल चित्रकमूल और पद्मकाष्ठ के क्वाथ में ६ घंटे खरल कर आध-आध रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्रा—१ से २ गोली दिन में दो वार त्रिफला और शहद से दे।

उपयोग—इसके सेवन से राजयक्ष्मा का शमन होता है। अग्नि प्रदीपक, पाचक, बल्य, रसायन और पौष्टिक है। प्रमेह और अग्निमांद्य दूर होकर शरीर बलवान बनता है।

चतुर्थकारि रस

शु हरताल, शु. मेनसल, शु. तूतिया, शंख भस्म, शुद्ध गन्धक प्रत्येक १ तोले लेवे। सबको खरल में बारीक पीस घृत कुमारी के रस में मर्दन कर टिकिया बनाले। पश्चात उस टिकिया को शराव संपुट में रख गजपुट में फूंक ले। स्वाग शीतल होजाने पर सम्पुट से रस और औषधि को निकाल कर महीन पीसकर पुनः घृत कुमारी के रस में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियां बना ले।

मात्रा—आधी से एक रत्ती। मरिच को तक्र में मिला कर घृत से पीये।

उपयोग—चातुर्थिक ज्वर। इसके प्रयोग से कभी कभी वमन होता है।

चन्दनादि लोह

रक्त चन्दन, नेत्रवाला, पाठा, खस, पीपल, हरड़, सोंठ कमल कन्द, आवला, नागर मोथा, चित्रक मूल, वायविडंग

इन १२ औषधियों को १-१ तोला प्रमाण लेकर वारीक चूर्ण करले और इनमें १२ तोला लोह भस्म मिलाकर भली प्रकार खरल करले ।

मात्रा—दो से चार रत्ती मधु के साथ दिन में २ से ३ वार देवे और ऊपर से तुलसी पत्र काली मिर्च और नागर मोथा का क्वाथ १ औंस पीवे ।

उपयोग—सब प्रकार के विषम ज्वरों में लाभदायक है । जीर्ण विषम ज्वरों में विशेष प्रयोग होता है । इसके सेवन से नेत्र की जलन, प्लीहा वृद्धि, यकृद्विकार, मंदाग्नि, पांडुरोग, शिःरशूल, दाह उदर कृमि आदि दूर होते हैं ।

चन्द्रशेखर रस

शुद्ध पारद १ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, कालीमिरच १ तोले, सुहागे का फूला १ तोले और मिश्री ५ तोले लें।

विधि—प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करे । फिर शेष औषधियों का कपड़छान चूर्ण मिला अच्छी तरह मर्दन कर ३ दिन तक मत्स्य पित्त के साथ खरल करे । आध-आध रत्ती की गोलियां बनाले । (मत्स्य पित्त की भावना के पश्चात नींबू और अदरक के रस की ३-३ भावनायें देवे तो रस विशेष गुणदायक बनता है)।

मात्रा—१ से २ गोली तक अदरक के रस के साथ दिन में ३ वार दे । फिर ऊपर कोष्ण जल पिलावे ।

उपयोग—यह रस श्लेष्म पित्त प्रधान अति उग्र ज्वर को मात्र तीन दिन में दूर कर देता है । इस रस के सेवन करने वालों को ज्वर उतर जाने पर मठ्ठे के साथ भात तथा वेंगन का साग खाने को दे । यह रस श्लेष्मिक विकृतियों को दूर करता है (बच्चों के ब्रोकोनिमोनियां में भी अच्छा लाभ पहुंचाता है) । जिससे आमाशयस्थ पाचक पित्त अच्छी तरह अपना कार्य करने लगता है । इस औषध से प्रस्वेद अधिक आकर स्रोत और रक्त में रहा हुआ विष निकल जाता है जिससे शरीर हल्का बन जाता है । नाड़ी का वेग मर्यादित हो जाता है और पेशाव की शुद्धि होती है । श्लेष्म और पित्त दुष्टि का नाश होता है । मस्तिष्क आवरण प्रदाह (Meningitis) को दूर करने में भी विशेष प्रभावशाली है ।

चिन्तामणि रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, तीनों समभाग ले । शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध पारद से आधा लेवे । जायफल विष से तीन गुना (डेढ भाग) लेवे । प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर ले । फिर १ तोले अभ्रक मिलावे और शुद्ध वत्सनाग चूर्ण आधा तोले तथा जायफल आधा तोले मिलाकर खूब घोटे । कांजी की भावना देकर इनका गोला बना ले और इस गोले को पान के पत्तों में लपेट कर शराव सम्पुट में बन्द कर कुक्कुट पुट में फूंक दे । स्वांग शीतल होने पर निकाल ले । पुनः इसे खरल में पीसकर शीशी में सुरक्षित रक्खे ।

मात्रा – १ रत्ती दिन में २ से ३ वार आवश्यकतानुसार ।

उपयोग—इसके उपयोग से सब प्रकार के सन्निपात में लाभ होता है । इसका प्रयोग विशेष कर ऐसे सन्निपात में जिसमें शूल ग्रहणी आदि उदर विकार उपद्रव के रूप में हों, अच्छा लाभ करता है । इस रस के सेवन के पश्चात यदि सन्ताप का अनुभव हो तो मस्तिष्क को शीतल जल से धोना चाहिये और क्षुधा लगने पर दही भात खिलाना चाहिये ।

जयमंगल रस

शुद्ध हिंगुल से निकाला हुआ पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध टङ्कण, ताम्र भस्म, बङ्ग भस्म स्वर्णमाक्षिक भस्म, सैंधव लवण, सफेद मिरच प्रत्येक १-१ तोले । स्वर्ण भस्म २ तोले लोह भस्म १ तोले और रजत भस्म १ तोले लेवे । प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर ले फिर अन्य वस्तुओं के कपड़छन चूर्ण व भस्मों को मिला खूब घोटें । पुनः धतूरे के पत्तों के रस हारसिंगार के पत्तों के रस दशमूल क्वाथ और चिरायते क्वाथ की ३-३ भावना देकर आधी रत्ती की वटी बनावे । सूखने पर शीशी में रख ले ।

मात्रा—आधी से १ रत्ती दिन से २ से ३ वार । जीरक चूर्ण और मधु के साथ ।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करने वाली यह दिव्य औषधि है । इसका प्रभाव मस्तिष्क के उष्मोत्पादक केन्द्र पर होता है । यह जीर्ण ज्वर के लिये महौषध है । धातुगत ज्वरों में इससे अच्छा लाभ होता है ।

जयन्ती वटी

शुद्ध वच्छनाग पाठा असगन्ध वच तालीस पत्र काली मिरच पीपर और नीम की छाल का समान भाग चूर्ण

लेकर सबको बकरी के मूत्र में घोटकर चने के बराबर गोलियां बना ले।

मात्रा-अनुपान—१-१ गोली सुबह शाम पित्तज्वर में गौ दुग्ध के साथ दे। विषम ज्वर मे घृत के साथ और सब प्रकार के ज्वरों मे त्रिकटु के चूर्ण के साथ दे। ज्वर युक्त रक्त पित्त में चन्दन के काढ़े के साथ दे।

ज्वर केशरी

कज्जली २ भाग, शुद्ध वत्सनाभ १ भाग, त्रिकटु चूर्ण ३ भाग, त्रिफला चूर्ण ३ भाग, शुद्ध जमाल गोटा १ भाग। सभी औषधियों को यथोक्त प्रमाण मे लेकर बारीक चूर्ण कर १२ घन्टे भांगरे के रस मे खरल करें। १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा—१ से २ वटी दिन में २ या ३ बार आवश्यकतानुसार।

अनुपान—जल, नारिकेल जल तथा मधु।

गुणधर्म इसका उपयोग प्रधानरूपेण पित्त ज्वर में होता है। परन्तु अन्य नवज्वरों मे भी जिनमें कोष्ठबद्धता हो, ज्वर के सन्ताप को दूर करने के साथ-साथ कोष्ठ शुद्धि के लिए इसका प्रयोग होता है। ज्वर का सन्ताप, दाह तथा कोष्ठबद्धता दूर होती है। अग्निमाद्य, शूल, अजीर्ण तथा अत्यधिक विकार शान्त होते है।

ज्वर मुरारि रस

शुद्ध पारद शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, प्रत्येक १-१ तोले लौंग ६ माशे, कालीमिरच ४ तोले, शुद्ध धतूरा बीज ८ तोले, निशोथ १ तोले लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनावे। फिर अन्य चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण करे, पश्चात हिंगुल मिला सब द्रव्यों को एकत्र मर्दन कर दन्तीमूल क्वाथ की एक भावना देकर दृढ़ मर्दन करे। १-१ रत्ती की गोली बनाले।

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली प्रात.सायं अदरक रस और मधु के साथ दे।

गुण और उपयोग—ज्वर मे अजीर्ण, अपचन और अतिसार भी हो तो इस रस का उपयोग करना चाहिए। इसके उपयोग से दोषों का पाचन होकर दोषों का परिपाक हो जाता है जिससे ज्वर भी छूट जाता है और ऐंठन आदि भी अच्छी हो जाती है। गुल्म आमवात और उदर रोग में भी इसका उपयोग किया जाता है। यह रसायन जीर्ण ज्वरों को दूर कर धीरे धीरे धातुओं की पुष्टि करता है। दोषों के पचन कराने के लिए नवीन तथा तरुण ज्वर में भी अत्यन्त लाभ होता है। पित्ताधिक्य हो तो प्रवाल चन्द्र पुटित अथवा चन्द्रकला रस में मिलाकर अडूसा के क्वाथ या दूर्वा स्वरस के साथ अथवा शङ्खाहुली चूर्ण के साथ देने में बहुत लाभ होता है। पुराने विषम ज्वर में रोगी निर्बल और कान्तिहीन हो जाता है, मलावरोध, मन्दाग्नि हो जाती है। इस रस को अर्क सुदर्शन अथवा सुदर्शन चूर्ण के फांट के साथ देने से तथा शरीर में लाक्षादि तैल की मालिश करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

ज्वरारि अभ्र

अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, पारद, गन्धक, मीठा विष प्रत्येक १-१ तोला, धतूर के बीज २ तोला, त्रिकटु मिश्रित ५ तोला इन्हें जल में मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियां बना ले। यथा दोष अनुपान द्वारा प्रयोग कराना चाहिये। वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, सन्निपातिक, विषमज्वर, द्वंद्वज आदि ज्वरों तथा प्लीहा, यकृत, गुल्म, मन्दाग्नि, शोथ, कास, श्वास, पिपासा, दाहशीत, भ्रम इत्यादि को नष्ट करता है।

ज्वर संहार रस

नीम की अन्तर छाल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, कूट, नागरमोथा, शुद्ध टङ्कण, पीली सरसो, इन्द्रयव, लाल चन्दन, काली जीरी, कुटकी, अतीस, इन सभी द्रव्यों को समभाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले तथा कपड़छान कर ले। सभी द्रव्यों के चूर्ण के समभाग रस सिंदूर लेवे और इसे भी खूब महीन चूर्ण कर ले और काष्ठादिक तैयार किये चूर्ण मे मिला भलीप्रकार घोट ले। पश्चात सम्भालू की पत्ती, तुलसी, धतूरे की पत्ती और अदरक के स्वरस की यथा विधि १-१ भावना देवे और २-२ रत्ती की गोलियां बनावें तथा उन्हे छाया में सुखा ले।

मात्रा—१ से २ वटी मधु तथा किसी ज्वरहर कषाय के अनुपान से दे।

उपयोग—नव प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। कफज्वर और वातज्वर में विशेष उपयोगी है। अनुपान भेद

से सभी ज्वरों में उपयोग होता है। इसके साथ गोदन्ती भस्म का उपयोग करते हैं। गोजिह्वादि क्वाथ के अनुपानसे कफ ज्वर में और यदि पार्श्वशूल हो तो शृङ्ग भी मिलाना चाहिये। श्वसनकज्वर में इसके साथ शृङ्ग भस्म ४ से ८ रत्ती तथा अभ्रक भस्म १ रत्ती मिलाकर देने से लाभ होता है। इसके अनुपान में गोजिह्वादि क्वाथ अथवा भार्ग्यादि क्वाथ नवसादर तथा यवक्षार का प्रक्षेप देकर देने से अधिक लाभ होता है।

ज्वरान्तक रस

ताम्र भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, सौराष्ट्रमृत्तिका स्वर्ण माक्षिक भस्म, लोह भस्म, शुद्ध हिंगुल, अभ्रक भस्म, शुद्ध रसांजन, स्वर्ण भस्म इन द्रव्यों को यथोक्त प्रमाण में लेकर सर्व प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करे। पुन. शेप द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करे। पश्चात भूनिम्बादि गण की औषधों के क्वाथ की भावना देकर ३ दिन तक मर्दन करे। पुनः मधु मिलाकर घोटे और २ रत्ती की वटी वनावे। सूखने पर कांच की शीशी में रख लें।

मात्रा—१ वटी दिन में २ से ३ बार।

उपयोग—यह रस चातुर्थिक, तृतीयक, सन्तत, आमज्वर तथा भूत ज्वरों में विशेष लाभ करती है। इसका प्रयोग सभी विषम ज्वरों में होता है। भूनिम्बादि गणमें १८ द्रव्य है। 'चिरायता, देवदारु, दशमूल की दशों औषधियां, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रयव, धनियां और गज पीपल', इन १८ द्रव्यों को समान भाग लेकर अष्ट गुण जल में उवाले और चतुर्थांश शेप रह जाय तब उतार कर छान ले। इसे भावना देने में प्रयुक्त करे।

जवाहर मोहरा

माणिक्य पिष्टी, मुक्ता पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, प्रत्येक २-२ तोला, संगेयशव पिष्टी ४ तोला, कहरवापिष्टी २ तोला, चांदी वरक १ तोला, सोने का वरक १ तोला, दरियाई नारियल चूर्ण ४ तोला, आवरेशम कतरा हुआ २ तोला, मृगशृङ्ग भस्म४ तोला, जदवार चूर्ण २ तोला, कस्तूरी १ तोला, अम्वर दो तोला। प्रथम पिष्टियों को दृढ़ खरल में भलीप्रकार घोटे। पश्चात अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को उसमें खूव खरल करे। फिर सोने और चांदी के वर्कों को १-१ कर घोटते जांय और मिलाते जांय। जब सब मिल जाय तब अर्क गुलाव थोड़ा-थोड़ा डाल १४ दिन तक मर्दन करे। १५ वें दिन उसमें कस्तूरी और अम्वर को मिलाकर पुनः एक दिन गुलाब के अर्क में घोटे और १-१ रत्ती की वटी वनाकर छाया शुष्क कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—१ वटी दिन में दो तीन वार मधु तथा अन्य यथायोग्य अनुपान करे।

त्र्याहिक रस

शुद्ध खर्पर भस्म ४ तोला, शङ्खभस्म ४ तोला, तुत्थक भस्म १ तोला, इन द्रव्यों को लेकर खरल में महीन पीस लें और गोजिह्वा, जयन्ती पत्र और चौलाई प्रत्येक के रस की ७-७ भावना देकर ४-४ रत्ती की वटी बनालें।

मात्रा—१ वटी। भुना जीरक तथा किसी ज्वरघ्न घृत के साथ देवें। दिन में दो वार।

उपयोग—तृतीयक ज्वर में लाभप्रद है।

ताप्यादि लोह

हरड़, वहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रकमूल, वायविडंग प्रत्येक २॥-२॥ तोले, नागरमोथा १॥ तो., पीपरामूल, देवदारु, हल्दी, दालचीनी चव्य प्रत्येक १-१ तो., शुद्ध शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिक भस्म, रौप्य भस्म, लोह भस्म—प्रत्येक १०-१० तो. मण्डूर भस्म २० तो., मिश्री ३२ तो. सबको वारीक पीसकर छान ले।

मात्रा अनुपान—३-३ रत्ती दिन में दो वार मूली के रस या गो मूत्र के साथ दे।

गुण और उपयोग-इसके सेवन से पांडु कामला यकृत एवं प्लीहा के विकार रक्त की कमी सूजन स्त्रियों के मासिक धर्म की गड़वड़ी आदि रोग अच्छे होते हैं। मलेरिया के वाद उत्पन्न रक्ताल्पता में वहुत लाभदायक है। इससे रक्त की वृद्धि होकर शरीर बलवान होजाता है। वालकों के धनुर्वात एवं वालग्रह के लिये भी अत्युपयोगी है। आंतों की निर्वलता दूर करने के लिये इसका उपयोग लाभप्रद है।

नोट—उपरोक्त योग में रौप्य भस्म के स्थान में रौप्य माक्षिक भस्म डालकर भी बनाया जाता है। मात्रा अनुपान गुण धर्म समान ही हैं।

त्रिभुवन कीर्ति रस

शु. हिंगुल, शु. वत्सनाभ, शु. टंकण, सोंठ, काली-

मिर्च, पीपर, पीपरामूल सबको समभाग चूर्ण कर यथा विधि तुलसी स्वरस, आद्रक स्वरस और धतूर पत्र स्वरस की क्रमशः ३-३ भावनाएं देकर आधी आधी रत्ती की गोलियां बना ले। (कई वैद्य इसमें जीरा और सोंफ भी मिलाते है) छाया में सुखा कांच की शीशियों में भरले।

मात्रा—१ से २ गोली दिन में ३ बार आद्रक स्वरस और मधु के साथ।

गुणकर्म—ज्वरघ्न, कफघ्न, स्वेदल तथा वेदनाहर है। सब प्रकार के वात तथा कफ प्रधान नव ज्वरों में, वात कफ ज्वर, संतत तथा सततक ज्वर मे लाभ करता है। रोमान्तिका के ज्वर में जब त्रास अधिक हो और कुछ दाने बाहर आगये हों तो आभ्यन्तर विष को बाहर निकालने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। वत्सनाभ प्रधान औषधि में सर्वोत्तम ज्वर हर योग है।

इसके सेवन से हृदय, मस्तिष्कस्थित हृदय केन्द्र पर इसकी प्रक्रिया होती है। इसके प्रयोग से त्वगस्थित स्वेद ग्रन्थियां उत्तेजित होती हे जिससे प्रचुर मात्रा में स्वेद निकलता है और ज्वर का सन्ताप न्यून होता है। इससे मूत्र का परिमाण बढ़ जाता है जिससे मूत्र प्रवृति अधिक होती हैं। यह वेदना हर है, श्वास कष्ट मे भी लाभ होता है, प्रतिश्याय होकर शुष्क कास सहित ज्वर में भी लाभ होता है। कंठ की श्लेष्मिक कला में उत्पन्न शोथ को तथा फुफ्फुस प्रदाह एवं फुफ्फुसावरण शोथ को शांत करता है।

त्रिपुर भैरव रस

शुद्ध बच्छनाग १ तो., सोंठ २ तो., पीपर ३ तो., कालीमिर्च ४ तो., ताम्र भस्म ५ तो. और शुद्ध हिंगुल ६ तो. लेकर सबको अदरक के रस में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना सुखाकर रख ले।

मात्रा अनुपान—१-१ गोली प्रातः, दोपहर, शाम मधु से।

उपयोग—साधारण नवीन ज्वर के लाभकारी है। कफ और वात जन्य ज्वर के लिए उपयोगी है। इससे ज्वर दोषों का पाचन होता है। प्रतिश्याय मे गोदन्ती भस्म और शृङ्ग भस्म मिला कर अदरक या पान के रस में मधु के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। पित्त ज्वर तथा उष्ण प्रकृति के रोगियों को इसका सेवन नही करना चाहिये क्यों कि इसमें ताम्र भस्म पित्त वर्द्धक एवं तीक्ष्ण तथा उग्रवीर्य है। जिसमे ज्वर का एवं दाह, प्यास आदि बढ़ जाते है।

दाहान्तक रस

शु. पारद ५ तो., शु. ताम्रपत्र १ तो., शु. गन्धक १ तो.। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना ले और उसे जम्बीरी नीबू के रस और पान के रस में क्रमशः दो-दो पहर तक घोटे। पश्चात कज्जली को उक्त ताम्र पत्र पर लेप दे। पुनः इस ताम्र पत्र को सराव सम्पुट में बन्द कर कपड मिट्टीकर सुखा ले और इस सम्पुट को वालुका यन्त्र में रख पाक करे। पाक हो जाने पर जब स्वांग शीतल होजाय तो सम्पुट को निकाल ले और उसे तोड़ अन्दर से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में पीस कांच की शीशी मे रखले।

मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—त्रिकटु चूर्ण ३ रत्ती, आद्रक स्वरस १/४ तो. और मधु के साथ मिलाकर देने।

उपयोग—यह रस दाह और पित्तज मूर्च्छा को शांत करता है।

नारायण ज्वरांकुश

सोमल, गन्धक, पारद कज्जली वछनाग, शु. हरताल, सोंठ, मिर्च, पीपर, पीत कपर्द भस्म, भांग, धतूरे के बीज टंकण सभी का चूर्ण खरला में डालकर अद्रक स्वरस में मर्दन कर गोली १-१ रत्ती की बनावे।

ज्वर नाशनार्थ यह उत्तम दवा है। विषम ज्वर श्लेष्म ज्वर में लाभ करती है। औषधि उग्र है अतः ध्यान पूर्वक व्यवहार करे।

नागवल्लभ रस

कस्तूरी, दालचीनी, शु. टंकण, प्रत्येक १-१ तो., केशर, शु० हिंगुल, छोटी पीपर प्रत्येक २-२ तो., अकरकरा, जावित्री जायफल और शुद्ध वत्सनाभ प्रत्येक ४-४ तो. लेवे। प्रथम हिंगुल को खरल में खूब घोट ले पश्चात द्रव्यों का कपड़ छन चूर्ण १-१ करके मिलाते जावे और घोटते जावे। फिर पान के रस की एक भावना देकर खूब मर्दन करले और १-१ रत्ती की गोलियां बना सुरक्षित रखले।

मात्रा—१ वटी दिन में तीन बार आद्रक स्वरस और

मधु। इसका प्रयोग वात कफ ज्वरों में तथा श्वास और कास में भी लाभदायक हैं।

नित्यानन्द रस

हिंगुल से प्राप्त किया पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म वंग भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध तुत्थक, शंख भस्म, कांस्य भस्म, कपर्द भस्म, लोह भस्म, त्रिफला भस्म, त्रिकुटा, वायविडंग, सेंधा नमक, काला नमक, बिड़ नमक, कांच नमक, समुद्र नमक, चव्य, पीपलामूल, हाउवेर, वच, कपूर, पाठा, देवदारु, छोटी इलायची, विधारा, इन ३१ द्रव्यों को समभाग में लेवे। प्रथम पारद गंधक की कज्जली करे पश्चात अन्य भस्मों के सूक्ष्म चूर्ण को मिलाकर त्रिवृत, चित्रकमूल, दन्तीमूल, हरड़ के क्वाथमें क्रमशः १२-१२ घंटे खरल कर २ २ रत्ती की गोलियां वना ले।

मात्रा-१ से २ गोली। दिन में २ से ३ वार जलसे।

उपयोग—यह श्लेष्मिक ज्वर और श्लीपद की विशिष्ट औपध है। इसका प्रयोग अन्य ग्रन्थि शोथों पर भी जिसके साथ ज्वर आता हो किया जाता है। इस व्याधि (Filaria) में इसका सेवन दीर्घकाल तक किया जाता है। इसका प्रभाव श्लैपदिक जीवाणु पर पड़ता है। गंडमाला, अण्डवृद्धि आदि पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। जल दोप से उत्पन्न अन्य शोथों पर भी इसका प्रभाव होता है।

निद्रोदय रस

अहिफेन शुद्ध ६ माशा, वंशलोचन ६ माशा, धाय के फूल २ तो., आमलकी चूर्ण २ तो., मुनक्का वीज निकली १२ तोला। सर्व प्रथम भांग के स्वरस में अहिफेन को घोल लें। वंशलोचन, धाय के फूल और आमलकी चूर्ण को अलग अलग चूर्ण कर मिला ले और अहिफेन मिले भांग के स्वरस के साथ घोट ले फिर मुनक्का मिला भांग के स्वरस की तीन भावनाएं देकर ४-४ रत्ती की गोलियां वना ले।

मात्रा—१ वटी १ सें २ वार आवश्यकतानुसार।

उपयोग—सन्निपात ज्वर में तथा अन्य ज्वरादि विकारों में जब निद्रा नहीं आती तब इसका प्रयोग किया किया जाता है। कोष्ठवद्धता में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए—सावधानी वरतनी चाहिए। शुक्र स्तम्भन तथा वृष्यकर्म के लिए भी इसका उपयोग होता है।

पचवक्त्र रस

शु. पारद, शु. गंधक, सुहागे का फूला, पीपल, काली मिर्च और शुद्ध वच्छनाग इन छः औषधियों को समभाग मिला काले धतूरे के पत्र रस में एक दिन खरल करके मूंग के वरावर गोलियां वांधे। (कोई कोई वैद्य ७ भावनाएं देते हैं)।

मात्रा १ से २ गोली दिन में ३ वार अदरक के रस और शहद के साथ देवें, ऊपर त्रिकटु मिला हुआ आक के मूल की कषाय मिलावे।

उपयोग—ये अति उष्ण वीर्य है, तीक्ष्ण व्यवायी और पीड़ाहर है। कफ प्रधान सन्निपात में वातानुवन्ध होने पर इसका उपयोग अति लाभदायक है। पित्तानुवन्धन में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। कफ वातात्मक सन्निपात और वात श्लेष्म ज्वर में यह रस विशेप लाभदायक है। पूयमेह में तीक्ष्ण दर्द, मूत्रावरोध, पूय और शोथ आदि में देने से पेशाव साफ आकर तीक्ष्ण दर्द सत्वर दूर हो जाता है।

(सात भावना युक्त रस से किसी को धतूरे का नशा आवे तो दही भात खिलावे या नीवू का रस जल मिलाकर पिलावे)।

पंचामृत रस

शुद्ध पारद १ तो., शुद्ध गंधक १ तो., शुद्ध टंकण ३ तो., शुद्ध वत्सनाभ १ तो. कालीमिर्च. चूर्ण ३ तो., इन द्रव्यो को यथोक्त प्रमाण मे लेकर, सर्व प्रथम पारद गंधक की कज्जली करे। पुनः शेप द्रव्यों को मिलाकर जल से अच्छी तरह घुटाई करे। फिर २-२ रत्ती की गोलिया वना छायाशुष्क कर सुरक्षित कांच की शीशियों में भर ले।

मात्रा—१ वटी दिन में २ से ३ वार आद्रक स्वरस से।

उपयोग—यह रस तथा जल के दोप में उत्पन्न ज्वर एवं शोथ में लाभकारक है। वात वलासक (वेरीवेरी) ज्वर मे यह अच्छा लाभ पहुंचाती है। अन्य शोथ सहित विकारों में भी यह प्रयोग मे आता है। शिर.शूल नासारोग, पीनस आदि मे भी इसके प्रयोग से लाभ होता है।

प्रताप लङ्केश्वर रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, वत्सनाग इन तीनों को १-१ तोला लेवे। काली मिरच ३ तोला, चित्रकमूल ३ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, लोह भस्म ४ तोला, शङ्ख भस्म ८ तोला, चिञ्चात्वक् क्षार १६ तोला लेवे। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर लें। पश्चात् शेष द्रव्यों के बारीक चूर्ण को मिलाकर भली प्रकार मर्दन करें।

मात्रा—३ से ६ रत्ती दिन में २-३ बार मधु या तुलसी पत्र स्वरस से।

उपयोग - इस रसायन का उपयोग प्रसूता के ज्वर, कास, शिरःशूल, प्रतिश्याय, छर्दि, मस्तिष्क विकार, आनाह अतिसार, कफ विकार, गृध्रसी, धनुर्वात, शूल प्रभृति विकारों को शान्त करने के लिए होता है। यह सूतिका ज्वर की परमोत्तम औषधि है। इसके प्रयोग से गर्भाशय में अवशिष्ट दोष का निर्हरण होता है तथा गर्भाशय की शुद्धि होती है। यह वातवाहिनी के क्षोभ को शान्त करता है। प्रलापादि उपद्रवों को दबाता है। प्रसवान्तर ज्वरादि के उत्पन्न होने पर इसका शीघ्र प्रयोग करने से अनेक संक्रमणों का भय दूर होता है। सूतिकाजन्य वातविकारों के लिए यह परमोपादेय रसायन है।

प्रलापान्तक रस

शुद्ध धत्तूर बीज ६ माशा, शुद्ध पारद ६ माशा, शुद्ध गन्धक ६ माशा, त्रिकटु चूर्ण १ तोला, शुद्ध टंकण १ तोला लेवें। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्यों के कपड़छन चूर्ण को खरल में मिला नीबू के रस में अच्छी तरह घोट १-१ रत्ती की गोली बनालें।

मात्रा—१ वटी।

अनुपान—रोग तथा अवस्थानुसार दिन मे २ से ३ बार यथावश्यक।

उपयोग—ज्वरादि रोगों में प्रलाप को शान्त करने में प्रयुक्त होता है। अग्निदीपक और पाचक है। अग्निमांद्य को नष्ट करता है।

पर्पटपक्व विषमज्वरान्तक लौह

हिंगुलाकृष्ट पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला; दोनों की कज्जली बनालें, पुनः इसकी पर्पटी बना लें। पर्पटी को खरल में बारीक पीस लें। जब वह सूक्ष्म हो जाय तब सोने का वर्क या भस्म १/४ तो., लोह भस्म २ तो., ताम्र भस्म २ तो., शुद्ध टंकण आध तो., शु. स्वर्ण गैरिक आध तो., बंग भस्म आध तो., प्रवाल भस्म आध तो., मुक्ता पिष्टी आध तो., शंख भस्म चौथाई तो., मुक्तासीप भस्म चौथाई तो. लेवे, सबको खरल में एकत्र घोटे पुनः निर्गुंडी पत्र स्वरस, धत्तूर पत्र स्वरस और कालमेघ पत्र स्वरस इन तीनों की १-१ भावना देकर दिन भर खूब घोटे। पश्चात दो सीपों के मध्य में भर इसका संपुट बना संधि बन्द करदे। पुनः इस संपुट को कपड़ मिट्टीकर निर्धूम कंडों की आंच मे फूंके। जब ऊपर की मिट्टी लाल हो जाय और भीतर से गधक के गरम होने की गंध निकलने लगे तब अग्नि से उसे बाहिर निकाल ले। स्वांग शीतल होने पर मिट्टी हटा संपुट से औषधि निकाल खरल में पीस काच की शीशी में रख ले।

मात्रा—१-२ रत्ती दिन में दो से तीन बार।

उपयोग—जीर्ण विषम ज्वरों में जब यकृत तथा प्लीहा वृद्धि हो जाती है तब इसका उपयोग किया जाता है। जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा पांडु रोग तथा प्रमेह में विभिन्न अनुपान से परमोपयोगी है।

वेताल रस

शु. पारद, शु. गन्धक, शु. विष, शु. हरताल शु. काली मिर्च चूर्ण समभाग। पारद गन्धक की कज्जली कर शेष दवाओं को मिलादे फिर पान के रस की भावना देकर सुखाना।

मात्रा—१-२ रत्ती, प्रलाप युक्त सन्निपात ज्वर में।

भूतभैरव रस

शुद्ध हरताल ६ तोला, शुद्ध भस्म ६ तोला, शुद्ध नीला थोथा २ तोला, इनको मिला घी क्वार के रस में तीन दिन खरल करके टिकिया बना ले। सूखने पर सराव सम्पुट में रखकर २॥ उपलों की अग्नि में फूंके। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर सराव को तोड़ रसौषध को निकाल ले और खरल में महीन पीसकर शीशी में रखले।

मात्रा—१ रत्ती। ३ माशे शर्करा के साथ ज्वर आने के तीन घन्टे पहिले १-१ घन्टे के अन्तर से तीन बार दें।

उपयोग—विषम ज्वर, शीतज्वर।

मधुरान्तक वटी

मुक्ता पिष्टी १ भाग, कस्तूरी २ माशे, केशर ३ माशे जायफल ४ माशे, जावित्री ५ माशे, लवङ्ग ६ माशे अभ्रक भस्म ८ माशे, इन सबके चूर्ण को अदरक के स्वरस मे घोटकर (तीन घन्टे तक) १-१ रत्ती की गोलियां वनाले। सुरक्षित रखले।

मात्रा—१ वटी दिन मे २ से ३ वार आद्रक स्वरस से।

उपयोग—आन्त्रिक ज्वर मे इसके प्रयोग मे मथरी दाने शीघ्र प्रकट हो जाते है तथा ज्वर का सन्ताप न्यून होता है। यह आंतरिक ज्वर मे उत्पन्न विप को शान्त करता है।

मल्ल सिंदूर

शुद्ध सोमल ५ तोला, शुद्ध पारद १० तोला और शुद्ध गन्धक १० तोला लेवे। प्रथम पारद, गन्धक की कज्जली वनाले। पुनः सोमल का चूर्ण मिलाकर ६ घन्टे तक खरल करे। पश्चात घृत कुमारी के रस की भावना देकर सुखा लें और इसे आतशी शीशी मे भर कर वालुका यन्त्र मे यथाविधि पकावे। इसके तैयार होने में ३८ से ४८ घन्टे लगते है। तैयार हो जाने पर स्वांग शीतल होने देवे। पुनः शीशी को तोड़कर औपध निकाल खरल में पीस कर कांच की शीशी मे सुरक्षित करे।

मात्रा—१/४ से १/२ रत्ती तक। दिन में २ वार मधु तथा पिप्पली चूर्ण के साथ।

उपयोग—यह भी श्लैपदिक ज्वर तथा अन्य सशोथ ज्वरो पर लाभ करता है। यह एक तीक्ष्ण वीर्य औषध है फुफ्फुस, वातवाहिनी और हृदय पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है। कफ वृद्धि तथा आम वृद्धि से उत्पन्न विकारों पर यह अच्छा लाभ करता है। कफोल्वण सन्निपात, जीर्ण श्वास तथा कास, आमवात तथा वालकों के डब्बा रोग में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है।

महाज्वरांकुश रस

शु पारद, शु. गन्धक, शु. वत्सनाभ प्रत्येक १ भाग शु. धतूर वीज ३ भाग, काली मिर्च का चूर्ण ४ भाग, छोटी पीपल ४ भाग लेवे। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली वनावे। पश्चात शेप द्रव्यो के कपड़छन चूर्ण को मिला कर सत्यानाशी के रस की ४ भावना देकर दो दो रत्ती की गोली वनाले। पुनः उन्हें छाया शुष्क कर कांच की शीशी में सुरक्षित करे।

मात्रा—१ से २ गोली। नीबू तथा अदरक स्वरस।

उपयोग—विपम ज्वरों में इसके प्रयोग मे लाभ होता है। इसका प्रयोग ज्वर के वेग उतरने पर ही किया जाता है। ज्वर वेग न रहने पर इसका प्रयोग ३ घन्टे के अन्तर से करना चाहिए।

मृत्युञ्जय रस

शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, पिप्पली चूर्ण, मरिच चूर्ण, शुद्ध टंकण चूर्ण इन सव ो सम-भाग लेकर तीन दिन आद्रक रस की यथाविधि भावना देवे और आधी रत्ती की वटी वनाकर सुखा ले और सूखने पर कांच की शीशियों में सुरक्षित करे।

मात्रा—१ वटी दिन में तीन वार। अदरख स्वरस, जल या मधु।

गुण कर्म—सब प्रकार के ज्वर के संताप को दूर करता है। वात ज्वर, पित्तज्वर, फुफ्फुस शोथ युक्त ज्वर तथा प्रवाहिका को शान्त करता है। औध्मान तथा अफीम युक्त ज्वरों मे इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। इन्फ्लुऐन्जा तथ निमोनिया की प्रथम अवस्था में इसके प्रयोग से लाभ होता है। इसका प्रयोग विशेप रूपेण नव ज्वर में ही होता है।

मृतसंजीवनी रस

शु हिंगुल ४ भाग, शुद्ध जमालगोटा, ३ भाग, शुद्ध टंकण २ भाग, शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण १ भाग लेवे और खरल से घोट ले। एक प्रहर घोटने के वाद अदरख के स्वरस की भावना देकर दिन भर घोटे। सूखने पर शीशी मे रखे।

मात्रा—१ रत्ती दिन मे २ से ३ वार। त्रिकटु, चित्रक चूर्ण तथा सैंधव के अनुपान से।

उपयोग—उक्त अनुपान के साथ सेवन करने से ज्वर का संताप नष्ट होता है। इसका प्रभाव २ मास के अन्दर दृष्टिगोचर होता है। इस रस के सेवन करने के बाद कर्पूर, चन्दन आदि का लेप करने से शीघ्र लाभ होता

है। पर के तलवे में पुराना गोघृत लेप करने कांस्य पात्र के पेंदे से मर्दन करने पर ज्वर शीघ्र उतरता है।

मृतोत्थापन रस

शुद्ध पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, शुद्ध मनःशिला, शु. वत्सनाभ, शुद्ध हिंगुल, कान्तलोह, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म, शुद्ध हरताल, स्वर्ण माक्षिक भस्म प्रत्येक १ भाग। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला खूब घोट ले, पश्चात अम्लवेत, जम्बीरी नीबू चांगेरी, निर्गुण्ड, हस्ति शुण्डी के स्वरस में प्रथक प्रथक मर्दन करे। इस प्रकार २-३ दिन तक मर्दित एवं सुभावित औषध द्रव्यों को शुष्क होने पर भूधर यन्त्र से एक दिन तक पकावे, संध्याकाल स्वांग शीतल होने पर यन्त्र से पाक हुई औषधि को निकाल ले और चित्रक स्वरस मे पुनः दो पहर तक खरल करे फिर सूख जाने पर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा—१ से २ रत्ती अनुपान घृत भर्जित शुद्ध हिंगु ३ रत्ती, त्रिकटु चूर्ण ३ रत्ती आर्द्रक स्वरस आधा तोला मिलाकर सेवन करे। पश्चात् पान के बीड़े में कर्पूर डाल कर भक्षण करावे।

उपयोग—सन्निपात ज्वर में जब रोगी संज्ञाहीन हो मृतवत प्रतीत होता हो तो इसके प्रयोग से सही चेतना आ जाती है।

मुक्ता पंचामृत रस

मोती पिष्टी या भस्म ८ तोले, प्रवाल भस्म या पिष्टी ४ तो., उत्तम.वंग भस्म २ तो. मुक्ता शुक्ति भस्म या पिष्टी १ तोले ले।

विधि—सबको खरल में डाल ईख के रस में ६ घंटे घोट कर गोला बनावे और शराब संपुट में बन्द करके लघुपुट में फूंके। इसी प्रकार ईख के रस, गाय के दूध, विदारी कन्द के रस, घृत कुमारी, शतावरी, तुलसी या सम्भालू और हंसपदी के रस में ६-६ घंटे खरल करके ५-५ लघु पुट लगावे। बाद में घोट कर बारीक कपड़छन चूर्ण सा बना कर शीशी में भर ले।

मात्रा—२ से ४ रत्ती तक सुबह शाम पीपल के चूर्ण में मिलाकर गाय के दूध के साथ।

उपयोग इसके सेवन से जीर्ण ज्वर, चिरकालिक मन्द ज्वर वात बलासक ज्वर तथा राज यक्ष्मादि रोग दूर होते हैं। यह उत्तम कोटिका सौम्यसुधा कल्प है। यह शरीर में कैलशियम की कमी की पूर्ति करता है। यह रसायन अस्थि क्षय, मांस क्षय, तथा बच्चों के बाल शोष अस्थि-मार्दव में तथा शिरःशूल, परिणाम शूल तथा संग्रहणी आदि विकारों में भी प्रभावशाली देखा गया है।

याकूती

माणिक्य पिष्टी, पन्नापिष्टी, मुक्तापिष्टी, प्रवाल पिष्टी, चन्द्रोदय, सोने क वर्क, अम्बर, कस्तूरी, आबरे-शम कतरा हुआ और केशर प्रत्येक २-२ तोला लेवे। बेहमन सफेद, बेहमन लाल, जायफल, लौंग और सफेद मिर्च प्रत्येक का चूर्ण १-१ तो.। प्रथम चन्द्रोदय को अच्छी प्रकार खरल मे पीस ले। पश्चात अन्य द्रव्यों को तथा सोने के वरक को मिलाकर खूब मर्दन करे। पश्चात १-१ रत्ती की वटी बनाले और छाया शुष्क कर कांच की शीशी में भर ले।

अववेय—कस्तूरी और अम्बर को अन्त में गुलाब जल से घोट कर मिलाना चाहिए।

मात्रा—१ वटी। पोदीना स्वरस, मधु तथा अन्य आवश्यक अनुपान से।

प्रयोग—सन्निपात ज्वर आदि में उत्पन्न हृदय दौर्बल्य को दूर करता है। नाडी की क्षीणता, शरीर का शीतल होना, स्वेदाधिक्य तथा दौर्बल्य में परमोपादेय औषध है। हृदय के सब प्रकार के दौर्बल्य में यह अच्छा कार्य करता है। हृदय के बढ़े हुये धड़कन पर उत्तम लाभ पहुंचाता है।

रत्नगिरी रस

शु. मेनसल, शुद्ध हिंगुल, लौंग और जायफल सम-भाग मिलाकर अदरक के रस की दो भावनायें देवे फिर १-१ रत्ती की गोलिया बना ले—

मात्रा—१ से ३ गोली बालकों को चौथाई से आधी रत्ती तक देवे।

अनुपान—धनिया और मिश्री को जौकूट चूर्ण आधा आधा तो. लेकर १ छटांक जल मे एक घण्टे तक भिगो

देवे। फिर मसल छानकर औषधि के साथ मिला दे। जीर्ण ज्वर में दूध के साथ।

उपयोग—यह औषधि बड़े मनुष्य और बालकों के बने रहने वाले ज्वरों को उतारने केलिये अमोघ है और निर्भयतापूर्वक दी जा सकती है। इस रस को धनिया मिश्री के हिम के साथ देने पर स्वेदल गुण दर्शाता है। रक्त मे रहे हुए विष को जलाकर प्रस्वेद के साथ बाहर निकाल देता है। एवं कोष्ठ मे संचित आम विष का पाचन कर ज्वर को समूल नष्ट कर देता है।

रत्नेश्वर रस

हीरक भस्म, वैक्रांत भस्म, अभ्रक भस्म, रससिंदूर स्वर्ण माक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म मुक्ता भस्म रजतभस्म, इन्हें सम प्रमाण में लेकर ईख, शतावर तथा विदारी कन्द स्वरस की प्रथक प्रथक ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा—१ वटी दो या तीन बार त्रिफला जल के अनुपान से देवे।

उपयोग—अंशुघात ज्वर, मस्तिष्क तथा स्नायुगत रोग को यह शांत करता है।

रुक्मीश रस

हरड़ का चूर्ण १ सेर और नीबू के रस में शोधित जमाल गोटा १६ तोला।

विधि—इनको मिला चूर्ण बना २० तो. थूहर के दूध में १२ घण्टे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा—१-१ गोली प्रातःकाल जल के साथ लेवे।

उपयोग—उत्तम विरेचन है। इसके सेवन से दाह मूर्च्छा चक्कर आना, थकावट आदि कोई उपद्रव नही होता। वेग सहित दस्त आते है। आमको दूर करने में यह श्रेष्ठ औषधि है। देह शुद्ध हो जाती है—बल का भी विशेष ह्रास नहीं होता। वर्ण, बल और आयु को बढ़ाने से उत्तम है।

कोष्ठबद्धता, दारुण उदर रोग, अर्श रोग और जो रोग अधोभाग के शोधन से शमन होते हैं उन पर महौषधि है। इसकी सर्वत्र योजना करनी चाहिए। यह आम नाशक कामवर्द्धक और देह को शुद्ध बनाने वाली औषधि है।

वक्तव्य—सगर्भा स्त्री और अति सुकुमार, क्षत और क्षयी पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

लक्ष्मीनारायण रस

शु. हिंगुल, अभ्रक भस्म, शु. गन्धक, शु. टंकण, शु. वत्सनाभ, निर्गुंडी बीज, अतिविषा, पीपल, कुटज त्वक्, सैंधा नमक प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर दन्ती मूल क्वाथ और त्रिफला क्वाथ की ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की वटी बना ले।

मात्रा—१-२ वटी दिन में ३-४ बार मधु से।

उपयोग—यह दुष्ट ज्वर, विषम ज्वर तथा सन्निपात ज्वरों में प्रयुक्त होता है। इसका प्रभाव सूतिकाजन्य ज्वरों में अत्यधिक होता है। यह रस ज्वरघ्न, पाचन तथा सेन्द्रिय विषों को नष्ट करता है। धातुगत ज्वरों में इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। प्रसवानन्तर नानाविध संक्रमणों के कारण जो ज्वर उत्पन्न होते है उसमे इससे शीघ्र लाभ होता है। यह स्वेदल होने पर भी हृद्य है। इससे धनुस्तम्भ, अपतानक, आक्षेप आदि वात विकार भी शान्त होते है। यह सूतिका ज्वर की विशिष्ट औषधि है। गर्भाशय तथा योनि मार्ग में संक्रमणवश उत्पन्न विकारों में यह परमोपादेय है। यह सभी प्रकार के अनियमित ज्वरों को नष्ट करती है। यह पित्त को शान्त करता है। इसका प्रभाव अन्त्र, यकृत प्लीहा तथा रस रक्त मांस और त्वग्गात स्वेद पिंडों पर होता है।

लक्ष्मीविलास रस (नारदीय)

अभ्रक भस्म ४ तो., शु. पारद २ तो., शु. गन्धक २ तो, कपूर जायफल, जावित्री, विधारा के बीज, धतूरा के शु. बीज, गांजे के बीज, विदारीकन्द, शतावरी, नागबला अतिबला, गोखरू, जल वेतस के बीज—सबको १-१ तो. प्रमाण में लेवे। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना, अभ्रक भस्म मिला घोटे। पश्चात शेष द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण एक एक कर मिलाते जांय, भली प्रकार खरल करते जांय। पुनः पान के रस में १२ घन्टे तक घोटे और २ रत्ती की वटी बनाकर सुखाले—सुरक्षित रखले।

मात्रा—१ से २ वटी दिन में २ से ३ बार रोगानुसार दूध या मधु से।

उपयोग—सभी प्रकार के सन्निपात ज्वरों मे अनुपान भेद से लाभ करता है। हृदय बलवर्द्धक है। श्वसनक और श्लेष्मिक सन्निपात ज्वर में हृदय दौर्वल्य को नष्ट करता है। इसके प्रयोग से फुफ्फुस का शोथ दूर होता है। यह तन्द्रा, बेहोशी, प्रलाप आदि उपद्रवों को दूर करता है। आन्त्रिक सन्निपात में हृदय क्षीणता, सर्वांग शूल, भ्रम शुष्ककास प्रभृति को नष्ट करता है। यह इन्फ्लुएन्जा में अच्छा लाभ करता है।

लक्ष्मीविलास रस

स्वर्णभस्म, रजत भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, वंग भस्म, लोह भस्म, मण्डूर भस्म, नाग भस्म, शुद्ध वत्सनाभ और मुक्ता भस्म इन सबको समभाग लेवे और सबके बराबर रससिंदूर लेवे। एक साथ खरल में भली प्रकार घोटाई करें। फिर मधु में घोट धूप में सुखावे। ३-४ दिन में सूख जाने पर शराव में बन्दकर तार्क्ष्य पुट अर्थात ८-१० उपलों की अग्नि में फूंक ले। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर चित्रक क्वाथ में ८ प्रहर तक खरल करे। पुनः आधी आधी रत्ती की वटी बना ले सूखने पर सुरक्षित रखले।

मात्रा—आधी से एक रत्ती तक दिन मे २ से ३ बार।

अनुपान—रोगी की अवस्थानुसार मधु आद्रक स्वरस तथा पान के स्वरस से।

उपयोग—यह परमोत्कृष्ट रसायन है। सब प्रकार के सन्निपात ज्वरों में विभिन्न अनुपान से (अवस्थानुसार) यह परम उपयोगी है। ज्वर के संताप को तथा तज्जन्य उपद्रवों को भी शान्त करता है। श्वास, कास तथा प्रतिश्यायोपद्रुत सन्निपात ज्वर में इससे अधिक लाभ प्राप्त होता है।

यह हृदय बलवर्धक है। प्राणवह स्रोतों को शुद्ध करता है। टायफाइड, श्वसनक ज्वर तथा आक्षेपक ज्वर में भी लाभ पहुंचाता है।

गुणधर्म—रसायन, त्रिदोषहर, हृदय बलवर्द्धक, प्राणवह स्रोतों का शोधक, अग्निदीपक, शक्तिवर्द्धक, क्षय रोग निवारक, कीटाणु नाशक, धातु बृंहण, इन्द्रियों को बल प्रदान करता, फुफ्फुस की क्रिया को सुधार करने वाला, पाचक रस का स्रावक, यकृत की क्रिया का नियामक रक्त, निर्मापक, क्लैब्य दोषहर, रक्ताभिसरण क्रियोत्तेजक, नाड़ी गति नियामक आदि गुणों वाला है।

इन उपर्युक्त गुणों के कारण इसका उपयोग ज्वरातिरिक्त अन्य अनेक रोगों में यथावश्यक अनुपान भेद से होता है। कुशल चिकित्सक वात के प्रायः सभी विकारों में इसका प्रयोग अनुपान भेद से करते है। राजयक्ष्मा, जीर्ण ग्रहणी, पांडु कामला शोथ, मांसक्षीणता, कार्श्य, इन्द्रिय दौर्वल्य, नपुन्सकता आदि विकारों में इसका सफलता से व्यवहार होता है। सेवनकर्त्ता को रोगमुक्त कर सबल एवं कार्यशील बनाता है। नाडी दौर्वल्य को दूर कर मांसपेशियों को बल प्रदान करता है।

लोकेश्वर पोटली

रस सिंदूर ४ तोले, सुवर्ण भस्म १ तोला, शुद्ध गंधक ८ तोला ले। सबको मिला कज्जली कर चित्रक मूल के क्वाथ में तीन दिन मर्दन करे। फिर उसे रस सिन्दूर से चौगुनी शुद्ध पीली कौड़ियों मे भरे और सोहागे को आक के दूध में घोटकर सब कौड़ियों के मुंह बन्द कर दे। पश्चात उसको चूना पोती हुई मिट्टी की छोटी हांडी या तांबे के सम्पुट में रखकर दृढ़ मुख मुद्रा करे। सब कौड़ियों का मुंह नीचे रहना चाहिये अन्यथा पारा उड़ जाने की सम्भावना है। सूखने पर शाम को १५ इन्च के खड्डे मे अग्नि देवे (आंच कम होने पर कौड़िया कच्ची रह जायेगी। अधिक अग्नि होगी तो पारा उड़ जायगा)। स्वांग शीतल होने पर निकाल कौड़ियों समेत पीस ले।

मात्रा—१ से २ रत्ती पुष्टी के लिये शहद पीपल और क्षयादि रोगों पर कालीमिरच और घी के साथ दिन में २ या ३ बार देवे।

उपयोग—यह दीपन, पाचन, क्षयनाशक, कृमिघ्न, उग्र पौष्टिक और वीर्यवर्द्धक है। शारीरिक कृशता और अग्निमाद्य कास कफ पित्त प्रकोप और राजयक्ष्मा आदि दूर करता है। अति कृश विषम भोजन जनित क्षय तथा कास, हिक्का, पांडु, मूर्ख वैद्यों के उपचार में क्षीण और रोग ग्रस्त बने हुये मनुष्य विविध प्रकार के ज्वर में सन्तप्त जिन्हें चक्कर आते रहते हों, मदात्यय रोगी और उन्माद से ग्रसित सब इस लोकेश्वर पोटली के रस से स्वस्थ होते है।

सूचना—इस रसायन के सेवनकाल में नमक बन्द

करना चाहिये अन्यथा पारद भस्म का रूपांतर होकर यथोचित लाभ नही दे सकता, भोजन घी और दही के साथ करना चाहिये। वैंगन, वेनफल, तैल, करेले, मैथुन, और क्रोध का त्याग करना चाहिये। औषध सेवन कर चित्त लेटे और पैर ऊंचे रक्खे जिससे उदर में रक्ताभिसरण क्रिया अधिक होकर दोष को जलाने से सुविधा रहती है। आमाशय पित्त तेज होने अथवा रसायन अति तेज होने जाने से वमन हो जाय तो गिलोय का स्वरस, बिजोरे की जड का स्वरस अथवा सैंधव नमक लगे हुये लाजा चूर्ण (भात की लाही) या शहद पीपल का सेवन करे। पित्त प्रकोप उपस्थित होने पर शीतल जल से स्नान करावे या शरीर पर शीतल जल की धार डाले और केले खावे। कफ वृद्धि होने पर भोजन में कालीमिरच का चूर्ण या गुड मिला हुआ अदरक का पाक देवे। वमन होने पर धनिये का मगज या छोटी इलायची और कालीमिरच का चूर्ण घी शक्कर में देवे। कृमि प्रकोप मे अजमोद और वायविडङ्ग मट्ठे में देवे। या एरन्ड मूल और नागरमोथे का क्वाथ पिलावे। विरेचन होने पर छोटी दुधी का रस गुनगुना कर या भांग का चूर्ण शहद के साथ देवे। हडफूट होने पर घी की मालिश करा उष्ण जल से स्नान करावे।

यह लोकेश्वर रस अत्यन्त वीर्यवान उत्तम औपध है। यह कफ प्रकोप पर और कफ प्रकृति वालो के लिये हितकर है। इस लोकेश्वर रस मे स्वर्ण होने से इन्द्रिय विप, गर विप और राजयक्ष्मा के कीटाणुओं के नाश के लिये यह विशेप कार्य करता, आमवृद्धिजन्य शारीरिक कृशता, संग्रहणी, अन्त्र क्षय फुफ्फुस क्षय, कफ प्रकोप, देह में विविध स्थानों पर व्यवहृत होता है।

वान्तिशामक मिश्रण

एसिड साइट्रिक (Citric Acid) १६ ग्रेन, एसिड हाइड्रोस्पेनिक डिल. (Hydrocyandil) १ बूंद, सर्वत संतरा (Syrup Aurântii) आधा ड्राम, जल (Aqua ad) आधा औंस।

विधि—इन सब को मिला मिश्रण तैयार रे। फिर निम्न मिश्रण तैयार करे। सोडावाई कार्व(Sodabicarb) २० ग्रेन, शर्वत नीबू (Syrup lemon) आधा ड्राम, जल (Aqua ad) आधा औस, इन दोनों मिश्रणों को मिलावे। उफान आने पर तुरन्त पिलाने से वमन और उवाक का निवारण हो जाता है।

विषमज्वरान्तक लोह

चिरायता, पित्तपापड़ा देवदारु, पृश्निपर्णी त्रिकटु, त्रायमाण, पटोलपत्र, निम्बपंचांग, मूर्वा, शुद्ध मन.शिला, गडूचीसत्व, खर्पर भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक १-१ तो. लेवे। प्रथम काष्ठादिक औपधियों का प्रथक प्रथक चूर्ण वना सवको मिलावे। फिर सवके समान भाग (१३ तो.) तीक्ष्ण लोह भस्म मिला खरल में जल के साथ घोटे। जव सूख जाय तो कांचकी शीशी मे भर कर रख ले।

मात्रा—१ से ४ रत्ती। अनुपान चिरायता का क्वाथ।

उपयोग—सव प्रकार के विषम ज्वरों को शांत करता है। विपम ज्वर में उत्पन्न प्लीहा वृद्धि, यकृद् वृद्धि, अग्निमांद्य, शोथ तथा कार्श्य आदि दूर होते हैं।

विषम ज्वरांतक लोह (द्वितीय)

शु. पारद शु. गन्धक १-१ भाग ले कज्जली करे। पुनः ताम्र भस्म आधा भाग, स्वर्णमाक्षिक भस्म आधा भाग और सवके वरावर अर्थात ३ भाग लोह भस्म लेकर एकत्र मिला खरल मे मर्दन करे। पश्चात जयंती पत्र स्वरस, ताल मखाने का क्वाथ, वासापत्र स्वरस, आद्रक रस तथा पान के पत्तों के रस की ५-५ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां वनालें। सूखने पर शीशी मे भरले।

मात्रा—१ वटी दिन मे ३ वार। विपम ज्वर को नष्ट करती है।

विश्वताप हरण रस

शु. पारद शु. गन्धक, शु. वत्सनाभ, सोंठ, मिर्च, पीपर, अकरकरा सव समभाग। प्रथम पारद, गन्धक की कज्जली करे पश्चात सव औपधियों के प्रथक प्रथक सूक्ष्म किये चूर्णो को मिलावे और भली प्रकार घुटाई करे। पुनः केला पत्र स्वरस की भावना देकर १२ घण्टे तक घोटे और १-१ रत्ती की गोलिया वना छायाशुष्क कर शीशी मे भर ले।

मात्रा—१ से २ गोली जीरा और मिश्री के अनुपान से देवे।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वरों के संताप को उतारता है। विषम ज्वरों में तथा धातु गत ज्वरों में इसका प्रयोग लाभप्रद होता है। जो मलेरिया किसी औषधि से नहीं रुकता इसके प्रयोग से अच्छा हो जाता है।

चन्द्रेश्वर रस

शु. पारद, शु. गन्धक, खर्पर भस्म तीनों समभाग ले। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनाए फिर खर्पर भस्म मिला पीपल की अन्तरछाल के क्वाथ में घोटे। बैर की अंतर छाल के क्वाथ व कटेरी के क्वाथ में प्रथक प्रथक २-२ दिन घुटाई करे। २-२ रत्ती की गोलियां बना ले।

मात्रा—१ से २ वटी। गो दुग्ध में २ या ३ वार देवे।

उपयोग—यह रात्रि में आने वाले ज्वर की विशिष्ट औषधि है।

वेदनान्तक रस

शु. अहिफेन २५ ग्राम, कपूर २५ ग्राम, खुरासानी अजवायन ५० ग्राम, रस सिंदूर २५ ग्राम।

सर्व प्रथम रस सिंदूर को निश्चन्द्र पीस लें। फिर शु. अहिफेन मिलावे। फिर अजवायन का चूर्ण मिलावे। अन्त में भांग के रस में पीसकर गोली बनाने जैसी होजावे तब कपूर मिला कर पीसे फिर १-१ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा—१-२ गोली शूल की अवस्था में तथा निद्रा लाने के लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है।

श्लेष्मकालानल रस

हिंगुलोत्थ पारद और शु. गन्धक समभाग से प्रस्तुत कज्जली २ भाग ताम्र भस्म, शु. तुत्थ, शु. मनःशिला, शु. हरताल, शु. धत्तूरबीज, कायफल का चूर्ण, घृतभर्जित हिंगु, स्वर्ण माक्षिक भस्म कूट, निशोथ दन्ती, जड़, सूंठ, काली मिर्च, पीपर, अमलतास फल मज्जा, बंग भस्म और शु. टंकण प्रत्येक १-१ भाग। प्रथम भस्में और कज्जली को भली प्रकार घोट ले फिर काष्ठादिक औषधियों के चूर्ण एक एक मिला घोट ले। फिर स्नुही दुग्ध की भावना देकर खरल करे। सूखने पर कांच की शीशी में सुरक्षित रखे।

मात्रा—१ रत्ती दिन में २ से वार।

उपयोग इसका उपयोग वातश्लेष्मज तथा पित्त श्लेष्म ज्वर में अच्छा लाभ करता है। इससे मन्दाग्नि, शोथ तथा जीर्ण ज्वर भी नष्ट होता है। श्लेष्मोल्वण सन्निपात में यह रस सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसके प्रयोग से अन्य कफ विकार भी दूर होते हैं। श्लेष्म प्रकृति पुरुष के विकारों में यह अच्छा लाभ करता है।

शीतभंजी रस

शु. पारद, ताम्र भस्म, शु. वत्सनाभ, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च सब द्रव्यों को समभाग लेकर सर्व प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनावे। फिर द्रव्यों के बारीक चूर्ण को मिलाकर चित्रक मूल क्वाथ की तीन भावना, आर्द्रक के रस की ७ भावना और नागरपान के पत्ते के रस की ३ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्रा—१ वटी अदरख के रस से २ या ३ वार दे

उपयोग—शीत ज्वर, कफ ज्वर तथा अन्य विषम ज्वरों में इसका व्यवहार होता है।

शीतांशु रस

शु. मनःशिला और शुद्ध हरताल १-१ तो. तथा त्रिकटु चूर्ण २ तोला।

विधि—इनको अच्छी तरह मिला ६ घण्टे नीबू के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनालेवें। (नीबू के स्थान में द्रोण पुष्पी के रस में खरल करे तो अधिक लाभ पहुंचाता है)।

मात्रा—१-१ गोली दिन में २ वार शहद के साथ देवे। ऊपर चिरायता और कुटकी का या सुदर्शन चूर्ण का क्वाथ पिलावे।

उपयोग—शीत लगकर आने वाले मलेरिया ज्वरों को रोकता है। एक दो दिन तक देने से मलेरिया चला जाता है। एकतरा, तिजारी और चातुर्थिक ज्वरों में ताप आने वाला हो उस दिन ज्वर आने के ४ या ६ घण्टे पहिले

१ वार और २ या (४) घण्टा पहिले दूसरी वार इसका सेवन कर लेने से बुखार उतर जाता है। सामान्य कफ ज्वर और अजीर्ण ज्वर पर भी यह हितावह है।

सन्निपात भैरव रस

शु. हिंगुल ४॥ तो. शु. जिंक २ तोला, शु. वत्सनाभ २ तो. २ माशा शुद्ध धतूरे के बीज का चूर्ण ३ तो. तथा शु. टंकण १ तो. १ माशा इन सबको बारीक कर खरल में पीस ले। पश्चात १ पहर तक जम्बीरी नीबू के रस में घोट १-१ रत्ती की गोलियां बना ले। छांयाशुष्क कर कांच की शीशियों में भर सुरक्षित रखले।

मात्रा—१ वटी दिन में २ या ३ वार अदरख स्वरस से।

उपयोग—घोर सन्निपात ज्वरों में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है।

सन्निपातो सूर्योरस

हिंगुल, गंधक, ताम्र, काली मिर्च, पीपल, मीठाविष सोंठ, धतूरे के बीज, इनको श्लक्ष्ण चूर्ण करके विजया पत्र के स्वरस में तीन दिन भावना दे तथा २-२ रत्ती की गोली बना ले।

मात्रा—१ गोली पान के स्वरस में रख कर सेवन करनी चाहिए।

अनुपान—अर्क मूल क्वाथ।

उपयोग—इसके सेवन से सन्निपात से उत्पन्न होने वाले घोरतर ज्वर आदि रोग (वातिक पैत्तिक तथा विशेषतः श्लेष्मिक ज्वर आदि) नष्ट होते है।

समर पन्नग रस

शु. पारद, गंधक, शु. सोमल, शु. मैनशल, शु. हरताल, प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर यथाविधि कज्जली बनावे। पुनः तुलसी स्वरस या घी क्वार के रस की तीन दिन भावना देकर सुखाले। पश्चात इसे आतशी शीशी में भरकर वालुका यन्त्र में यथा विधि पकावें। स्वांग शीतल होने पर शीशी को निकाल गलमान में लगे हुए औषधि को सावधानी से अलग कर ले।

मात्रा—आधी से दो रत्ती तक। पान, अदरक रस अथवा मधु से यथावश्यक दिन में दो-तीन वार देवे।

उपयोग—यह रसायन त्रिदोषज्वर, श्वसनक ज्वर, आदि मे उत्पन्न घबराहट, सन्धिवात, प्रलाप, उन्माद, कास श्वास, प्रतिश्याय प्रभृति रोगों को दूर करता है। यह श्वास वाहिनियों और फुफ्फुस के वायुकोषों के आभ्यन्तर श्लैष्मिक कला के शोथ को शान्त करता है। तथा जमे हुए कफ का स्राव कराता है। इसके प्रयोग से श्वास नलिकाओं में उत्पन्न दुष्ट व्रण नष्ट होता है। वात कफ भूयिष्ट श्वास रोग मे समीर पन्नग अच्छा कार्य करता है। इसके प्रयोग से शीघ्र श्लेष्मा का स्राव हो कष्ट दूर होता है।

सर्व ज्वर हर लोह

लोह भस्म ८ तो., समान भाग गन्धक में निर्मित कज्जली ४ तो., त्रिफला चूर्ण ३ तोला, त्रिकटु ३ तोला, वायविडंग नागरमोथा, गज पिप्पली पीपलामूल, हरिद्रा दारु हरिद्रा, चित्रक प्रत्येक का प्रथक प्रथक चूर्ण १-१ तो. लेवे। सबको एक साथ खरल में मिला घोटे। पुनः अद्रक के रस की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। छाया शुष्क कर कांच की शीशी में रखले।

मात्रा—१ वटी २ से ३ वार दिन में।

उपयोग - सब प्रकार के जीर्ण ज्वरों में विशेष उपयोगी है। इसके प्रयोग से वातज, पित्तज, कफज तथा सन्निपातज ज्वरों की तथा विषम ज्वरों की शान्ति होती है। यह भूतोत्थ ज्वर मास में १ वार आने वाला, पाक्षिक ज्वर, सम्वत्सरोत्थ ज्वर तथा प्लीहा ज्वर को भी नष्ट करता है।

स्वच्छन्द भैरव रस

शु. पारा, शु. गन्धक, शु. बच्छनाग २-२ तोला जायफल का चूर्ण १ तो. ले। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बनावे। फिर उसमें जायफल का चूर्ण तथा कपड़छान किया हुआ पीपर का चूर्ण ३॥ तोला मिला जल से खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—अनुपान—आधी आधीरत्ती सुबह शाम पान का रस आर्द्रक का रस या गूमा रस मधु के साथ दे।

उपयोग—जाडा देकर आने वाला ज्वर, नवीन ज्वर, विषम ज्वर, हैजा, पीनस प्रतिश्याय, जीर्ण ज्वर, अग्निमांद्य वमन और शिर दर्द अच्छे हो जाते है। ज्वर

की यह प्रधान औषध है। यह रसायन उष्ण वीर्य प्रधान है। यह दोष और दूष्य दोनों को पचाता व अग्नि प्रदीप्त करता है। जीर्ण ज्वर में शरीर कमजोर हो गया हो, हृदय की गति कमजोर हो गई हो, बुखार नहीं छूटता हो, तो इसे देना चाहिए।

स्वर्ण बसन्त मालती रस

स्वर्ण भस्म या वर्क १ तोला, मुक्ता पिष्टी या भस्म २ तोला, शुद्ध हिंगुल ३ तोला, कालीमिर्च का चूर्ण (कपड़छन) ४ तोला, शुद्ध खर्पर भस्म, या यशद भस्म ८ तोला लेवें। प्रथम शुद्ध हिंगुल को खरल में अच्छी प्रकार पीस लें। पुनः यदि स्वर्ण भस्म ली हो तो उक्त पिसे हुए हिंगुल में इसे तथा अन्य भस्मों को भी एक साथ मिलाकर ३ घन्टे तक अच्छी प्रकार मर्दन करे। (यदि स्वर्ण का वर्क हो तो पहले उसे मिलाकर मर्दन करे, पुनः एक-एक करके अन्य भस्मों को मिलाकर मर्दन करे)। पश्चात गो दुग्ध से निकाला मक्खन १ तोला मिला अच्छी प्रकार एक दिन मर्दन करे। पुनः कपड़े से छाना हुआ कागजी नींबू के रस से मर्दन करे (मर्दन करने योग्य रस की मात्रा थोड़ी-थोड़ी डालें और औषध निःस्नेह हो जाय तब तक मर्दन करें। तत्पश्चात १-१ रत्ती की वटिका बनालें और छाया में सुखालें, सूखने पर कांच की शीशी में सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—एक से दो रत्ती। दिन में दो तीन बार यथावश्यक।

अनुपान—छोटी पीपल का चूर्ण २ रत्ती और मधु मिलाकर चटायें और पश्चात दूध पिलायें।

उपयोग – यह जीर्ण ज्वरों, राजयक्ष्मा या अन्य धातुक्षयज ज्वरों में परोपकारी है। रोगांत दौर्बल्य को दूर करने वाली, यह उत्तम औषध है। इसका प्रयोग राजयक्ष्मा, पांडु रोग, ग्रहणी रोग, आन्त्रक्षय, फुफ्फुसकला शोथ, बाल शोष (फक्क रोग) में विशेष लाभप्रद है। यह धातुगत ज्वरों में विशेष लाभ करता है। यह रसायन है और रस वाहिनियों, रसोत्पादक पिंड, यकृत प्लीहा आदि के विकारों को दूर करता है। इससे अग्नि (पाचकाग्नि तथा धात्वग्नि) प्रदीप्त होती है। यह बालक, वृद्ध, स्त्री सगर्भा तथा प्रसूता स्त्री के लिए भी निरापद औषध है। इसमें रसायन, बल्य, क्षयघ्न, कीटाणुनाशक और रक्त प्रसादन गुण हैं। इसका प्रवाह वातवह मंडल, सहस्रार नाड़ी चक्र आदि से लेकर शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयव समूह पर पड़ता है। इसके प्रयोग से इन अवयवों को बल प्राप्त होता है। यही कारण है कि आभ्यन्तरिक अवयवों की निर्बलता से उत्पन्न सभी रोगों पर इसका उपयोग होता है। एकाकी रूप में तथा रोगावस्था के अनुसार अन्य योगों के साथ यथा अभ्र भस्म, प्रवाल पिष्टी, शृङ्ग भस्म, गडूची सत्व, सितोपलादि प्रभृति के साथ चिकित्सक सफलतापूर्वक प्रयोग करते हैं।

सिद्ध प्राणेश्वर रस

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म—प्रत्येक ४-४ तोला, स्वर्जिका क्षार, शुद्ध टंकण, यवक्षार, सेंधव लवण, समुद्र लवण, विड़ लवण, सौवर्चल लवण, रोमक लवण, सोंठ, पीपर, मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आंवला, इन्द्रयव, सफेद जीरा, स्याह जीरा, चित्रक की जड़, अजवायन, घृत में भुनी हींग, विजयसार और सोंफ प्रत्येक एक-एक तोला लेवे। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करले। फिर अभ्रक भस्म तथा अन्य द्रव्यों के बारीक कपड़छन किये चूर्ण को मिलावे तथा खरल में भलीप्रकार घोटे। पुनः पर्ण स्वरस की भावना दे, दो-दो रत्ती की गोलियां बना लें। छायाशुष्क कर कांच की शीशियों में भर लें।

मात्रा—१ वटी दिन में ३-४ बार आवश्यकतानुसार दें।

उपयोग—ज्वरातिसार की परम प्रसिद्ध औषधि है। ऐसे ज्वरों में जब अतिसार उपद्रव या लक्षण के रूप में हो वहां इसके प्रयोग से पर्याप्त लाभ होता है। इसका उपयोग ग्रहणी आदि विकारों में जब ज्वर हो तब करना परम लाभप्रद है।

सूचिकाभरण रस

शुद्ध वत्सनाभ ४ तोला, शुद्ध पारद ४ माशा दोनों को खरल में एक दिन घोटे। फिर इसकी टिकिया बनाकर मिट्टी के सकोरे में बन्द कर कपड़ मिट्टी कर सन्धि बन्धन कर दे। फिर इसे सुखाकर वालुकायन्त्र में रख कर दो प्रहर तक धीरे-२ पाक करे। पाकान्तर स्वांग शीत होने पर सकोरे को खोल उसमें लगे धूम सदृश काले अंश को यत्नपूर्वक निकाल कर कांच की [शीशी] में रखले तथा उसकी डाट अच्छी तरह बन्द कर दे

मात्रा—सुई की नोक पर जितनी

उपयोग—सन्निपात ज्वरो मे जब रोगी संज्ञाहीन हो गया हो तो उसके शिर पर ब्रह्मरन्ध्र प्रदेश में वेतस पत्र से सूक्ष्म छिद्र कर उक्त प्रमाण मे प्रविष्ट करे और उस प्रदेश को अंगुली से मर्दन करते रहे। इससे औषध रक्त में प्रवेश कर अपना प्रभाव उत्पन्न करती है। इसके प्रयोग से संज्ञाहीन रोगी संज्ञायुक्त हो जाता है।

यह प्रयोग प्राय: चिकित्सक ऐसी अवस्था में ही करते थे, जब रोगी मुख द्वारा औषध नही ग्रहण कर सकता था।

सूतराज रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग और सुहागे का फूला १-१ तोला, गाय की छाछ में शुद्ध किये हुए धतूरे के बीजों और वत्सनाभ के क्वाथ की ३-३ भावनाएं तथा त्रिकुटे के क्वाथ की ५ भावनाऐं देकर उड़द के बराबर गोलियां बनाले।

मात्रा—१ से २ गोली दिन मे दो समय। जल, आर्द्रक के रस तथा मिश्री के शर्बत के साथ। ज्वर सहित अतिसार में नागरमोथा के क्वाथ से, ग्रहणी तथा अर्श में मिश्री एवं शहद, वातप्रकोप में त्रिकटु तथा चित्रकमूल का क्वाथ, कम्प वायु अपबाहुक, एकांग वात, अपस्मार तथा उन्माद में शुद्ध धत्तूरे के बीज ५ नग तथा मिश्री का अनुपान दें।

उपयोग—शीताङ्ग सन्निपात, कफ ज्वर, वात ज्वर, वातश्लेष्म ज्वर, फुफ्फुस सन्निपात, प्रतिश्याय, कफ प्रकोप से उत्पन्न रोग, ज्वरातिसार, आमातिसार, कफ प्रधान नया ग्रहणी रोग, अर्श, कम्पवात, अपबाहुक, एकाङ्ग वात तथा अपस्मार एवं उन्माद को नष्ट करने में अति उपयोगी है।

सूतशेखर रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध टंकण, शु. वत्सनाभ, स्वर्ण भस्म, ताम्र भस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, शु. धत्तूर बीज, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची छोटी, बेलगिरी, शङ्ख भस्म तथा कपूर समभाग। पृथक-पृथक चूर्ण कर मिलाले। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना फिर भस्में मिलाकर घोटे। पश्चात अन्य काष्ठादिक औषधियां [illegible]रल में डाल भांगरे के रस में बारह घन्टे घोट क[illegible] [illegible]त्ती की गोलियां बनाले।

आचार्य यादव जी ने इसमे थोड़ा परिवर्तन किया है-रजत भस्म अधिक दिया है तथा २१ दिन तक भावना देने का निर्देश दिया है। मात्रा दो रत्ती की कही है तथा छायाशुष्क करने का विधान किया है।

मात्रा—१ वटी। ३-४ घन्टे के अन्तर से, अनुपान—दुग्ध, घी, मधु आदि।

उपयोग—यह अम्लपित्ताधिकार की उत्कृष्ट औषध है। पित्त के विकारों को शान्त करने के लिये परमोत्कृष्ट औषधि है। यह आमाशय में तथा पित्ताशय में उत्पन्न पित्त प्रकोप को शमन करता है।

अत: पित्तज्वर तथा पित्तोल्वण सन्निपात ज्वर में छर्दि आदि उपद्रव हों तो इसके प्रयोग से अत्यधिक लाभ होता है। पित्त प्रशामक होने से यह ज्वर के सन्ताप को भी कम करता है। सन्निपात ज्वरों मे विशेषत: आन्त्रिक सन्निपात मे सूत शेखर का महत्वपूर्ण उपयोग है। आंत्रिक ज्वर में उत्पन्न पित्त के विकारों को जैसे दाह, अतिसार, छर्दि आदि को शान्त करता है। इसका प्रभाव सहस्रार तथा वातवाहिनियों पर भी शामक रूप से देखा गया है। इनमे भी हृदय, फुफ्फुस, आमाशय तथा आंत्र को अनुप्राणित करने वाली वातवाहिनियों पर इसका विशेष प्रभाव देखा गया है। इसके प्रयोग से भ्रम, आक्षेप, प्रसेक, छर्दि, विदाह, अम्लोद्गार, हिक्का, निद्रानाश, शीतपित्त, अम्लपित्त, नासारक्त, अतिसार, ग्रहणी विकार नष्ट होते है।

यह परमोपयोगी रसायन है और अनुपान भेद से सभी प्रकार के पित्तज विकारों में लाभ करता है। अग्निप्रदीप्त होती है तथा अरुचि, उत्क्लेश, अग्निमांद्य आदि विकार शान्त होते है।

सूतिकाविनोद रस

शु. पारद, शु. गन्धक तथा शु. तुत्थक, इन्हें समभाग मे लेवे। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनाले। पश्चात तुत्थ को मिलाकर जम्बूरी नीबू के रस में ३ दिन तक अच्छी प्रकार मर्दन करे। पुन: त्रिकुटा के क्वाथ की ३ भावना देवे तथा अच्छी प्रकार घोटे। पश्चात ४-४ रत्ती की गोलिया बना सुखा ले।

मात्रा—१ वटी दिन में २ से ३ बार जल के साथ।

उपयोग—सूतिकाज्वर, विष्टम्भ, अजीर्ण, शूल आदि रोगों में।

सूतिकाहर रस

शु. पारद, शु. गन्धक, लवङ्ग, यवक्षार, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म, नाग भस्म प्रत्येक ४-४ तोले लेवे। जायफल, केशराज, त्रिफला, भृङ्गराज, छोटी इलायची, नागरमोथा, धाय के फूल, इन्द्र जौ, पाठा, काकडासिंगी, बिल्व, सोंठ, सुगन्ध वाला, प्रत्येक २-२ तोला लेवे। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर ले। पश्चात भस्मों तथा अन्य द्रवों के बारीक चूर्ण को मिलाकर भली प्रकार मर्दन करे। पुनः गन्ध प्रसारणी के स्वरस में मर्दन करे तथा दो-दो रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—१ वटी दिन में २-३ बार।

उपयोग—सूतिकाज्वर, सातिसार एवं सशूल होने पर इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

सौभाग्य वटी

शु. वत्सनाभ, शु. हिंगुल, शु. टंकण, रससिंदूर, यवक्षार, सज्जीक्षार, सेंधव लवण, सामुद्र लवण, काला नमक, लवङ्ग, जीरा, स्याहजीरा, त्रिकटु, एला, कुष्ठ, त्रिफला, कायफल, लोह भस्म, इन सब द्रव्यों को सम प्रमाण में लेकर बारीक चूर्ण करले। पुनः इन्हे एकत्र कर अच्छी प्रकार से खरल में एकत्र मर्दन करे। पश्चात अपामार्ग, निर्गुण्डी, भृङ्गराज, पान, आर्द्रक इनके स्वरस की पृथक-पृथक भावना देकर भली प्रकार घोटे तथा २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर छायाशुष्क कर कांच की शीशी में भरले। १-२ वटी दिन में २ से ३ बार। अनुपान—रोगानुसार।

उपयोग—यह सूतिका ज्वर की परमोत्तम औषधि है। इसके प्रयोग से प्रसूता स्त्री के सोपद्रव ज्वर भी शान्त हो जाते हैं। कास, श्वास, अजीर्ण, ग्रहणी तथा उदर विकार एवं शोथ आदि सभी विकारों में यह लाभ करता है। इसके प्रयोग से ज्वर का सन्ताप शीघ्र कम होता हे तथा सूतिकाजन्य उपद्रव शान्त होते है। इसका उपयोग सन्निपात ज्वर में भी होता है। विशेष कर आन्त्रिक तथा श्वसनक ज्वर में इसके प्रयोग से लाभ होता है।

हिंगुलेश्वर रस

शु. वत्सनाभ, शु. हिंगुल, पिप्पली चूर्ण, दो-दो तोला

उपर्युक्त द्रव्यों को जल या कागजी नीबू के रस में घोट कर आधी-आधी रत्ती की गोली बनाले। सूखने पर कांच की शीशी में सुरक्षित रक्खे।

मात्रा—१ से ३ गोली दिन में ३ बार।

गुणकर्म—वातज्वर तथा आमवातोत्थ ज्वर में अच्छा लाभ होता है। साङ्गमर्द तीव्र ज्वर में तथा सन्धिशूलयुक्त आमवातिक ज्वर में इसके प्रयोग से लाभ होता है। इसका प्रयोग विशेषकर नवज्वर में ही होता है।

हेमगर्भ पोटली रस

शु. पारद, शु. गन्धक, ताम्र भस्म प्रत्येक १-१ तोला, स्वर्ण भस्म या वर्क, रजत भस्म, लोह भस्म और रससिंदूर प्रत्येक ६ माशे लेकर भेड के दूध की ३ भावनायें देवे। भावना देकर इसकी ऐसी गोली बनावें जो शिखर वाली हों। इन गोली को नये रेशमी कपड़े में दृढ बांधकर सुखायें। पुनः इन्हे कपड़े में रख डोरी से बांधकर ऐसी हांडी में लटकावे जिसमें दंडा गंधक भरा हो, गंधक का प्रमाण इतना होना चाहिये कि उसके पिघलने से पोटली डूब जाय। पुनः कपड़े की वत्ती बनाकर तैल में भिगोलें उसे जलाकर उसके ताप से गंधक को पिघलावे। लगभग आधे घन्टे में गंधक पिघल जाता है तथा पोटलीगत औषध का पाक होने लग जाता है। आधे या एक घन्टे पश्चात पोटली के पाक हो जाने पर पोटली को निकाल ले तथा शीतल होने देवे। पुनः पोटली को उष्ण जल से प्रक्षालन करे। बाद में पोटली पर लगे गंधक को चाकू से साफ करले। मात्रा—आधी से एक रत्ती। अनुपान—रोग की अवस्थानुसार आर्द्रक स्वरस प्रभृति। दिन में २-४ बार।

उपयोग—यह एक परमोत्कृष्ट रसायन है। शरीर तथा मन को बृंहण करने वाली औषधि है। यह हृदय तथा मस्तिष्क को बल प्रदान करती है। इसका उपयोग सन्निपात ज्वर की उग्रावस्था में जब मूर्छा, संज्ञानाश, शीताग आदि लक्षण होते हैं तब होता है। श्वसनक तथा आन्त्रिक सन्निपात ज्वर में जब हृदय की गति अति दुर्बल हो जाती है, शरीर में शीतलता तथा नाड़ी की गति क्षीण होने लगती है तब इसके प्रयोग से आश्चर्यजनक लाभ देखा गया है। रोगी शीघ्र चेतना लाभ करता है, नाड़ी की गति समावस्था में आ जाती है तथा हृदय को बल प्राप्त होता है। यह आंतों में उत्पन्न सेन्द्रिय विषों को उदासीन कर देता है तथा श्वास की गति को प्रकृत अवस्था में लाता है।

वटी

अमर सुन्दरी वटी

शु. पारा, शु. गन्धक, लोह भस्म, शु. बच्छनाग, रेणु-कबीला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पीपरामूल, चित्रक, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, वायबिडङ्ग, अकलकरा, नागरमोथा–सब १-१ तोला। पारद गन्धक की कज्जली करके लोह भस्म तथा बछनाग मिलावें। फिर शेष औषधियों का चूर्ण ४० तोले गुड़ मिलाकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा—१ से ३ गोली दिन में २ से ३ बार जल से देवें।

उपयोग—स्त्री, बालक, वृद्ध आदि को अजीर्ण ज्वर कफ प्रधान, सन्निपात आदि में दी जाती है। अपस्मार, सन्निपात, श्वास, कास, अर्श आदि सब प्रकार के वात रोगों को दूर करती है।

इसमें अभ्रक तथा ताम्र मिलाने से विषम ज्वर, नूतन अजीर्ण ज्वर, तृतीयक ज्वर, जीर्ण ज्वर, सूतिका ज्वर आदि में विशेष उपयोगी है।

आमवात प्रमथिनी वटी

शोरा, आक की जड़ की छाल, शु. गन्धक, लोह भस्म तथा अभ्रक भस्म, इन पांच औषधियों को समभाग मिला ३ दिन तक अमलतास के गूदे में खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। इनमें से २-२ गोली दिन में दो बार सुबह ६ माशे निशोथ के क्वाथ के साथ तथा रात्रि को आर्द्रक के रस तथा शहद के साथ देते रहें।

यह वटी आमवातिक ज्वर में उपयोगी है।

आर्द्रक वटी

मनःशिला, पारद, गन्धक, संखिया, मीठा विष, समभाग। आर्द्रक के रस की ७ दिन में ७ भावनायें देकर छोटी सरसों के बराबर गोलियां बनालें। ज्वर में आर्द्रक रस के अनुपान के साथ प्रयोग करे। पसीना लाने के लिये रोगी को कम्बल आदि भारी वस्त्र ओढ़ाकर सुलाना चाहिये तथा जब पसीना आ जाय पोंछ लेना चाहिये। पथ्य मूंग, दही, गन्ने का रस, अन्य शीतल पदार्थ देवे।

आरोग्यवर्द्धनी वटी

शु. पारा, शु. गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म १-१ तोला, त्रिफला ६ तोला, शु. शिलाजीत ३ तोला, शु. गूगल ४ तोला, चित्रक मूल की छाल ४ तोला तथा कुटकी बाईस तोला। सबको यथाविधि मिला नीम के पत्तों के रस में तीन दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बांधे।

मात्रा - १ से ४ गोली दिन में दो बार दूध, जल, त्रिफला के हिमशोथ पर पुनर्नवा का क्वाथ या मूत्रल क्वाथ, कब्ज सह रक्तविकारों में स्वादिष्ट विरेचन, इस तरह अन्य विकारों में रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

उपयोग– यह वटी कुष्ठ, वात, पित्त कफोद्भूत विविध ज्वरों का नाश करती है। यह पाचक दीपन पथ्यकारक, हृद्य, मेदोहर, मल शुद्धिकर, अत्यन्त क्षुधावर्द्धक तथा सामान्यतः सब रोगों में हितकारक है।

इन्दुकला वटी

शु: शिलाजीत, लोह भस्म तथा स्वर्ण भस्म तीनों को समभाग मिला, वन तुलसी के रस में ३ दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। एक-एक गोली दिन में दो समय निम्बादि क्वाथ या पटोलादि क्वाथ के साथ देते रहने से रक्तविकार, मसूरिका, विस्फोटक ज्वरों में लाभ प्रद है। सब प्रकार के व्रण दूर हो जाते हैं।

कनक प्रभा वटी

धत्तूर बीज, कालीमिर्च, हंसपादी, पीपर, सुहागा, मीठा विष, गन्धक, इन्हें जयन्ती रस से एक दिन मर्दन करके दो-दो रत्ती की गोलियां बना ले। यह वटी ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, मन्दाग्नि आदि रोग समूहों को नष्ट करती है।

करंजादि वटी

(१) भुनी हुई करंज की मज्जा, इन्द्रायण की जड़, बनफसा, अतीस, फिटकरी का फूला, पीपल, बड़ी हरड़—समभाग बारीक चूर्ण कर मधु से दो-दो रत्ती की गोलियां बना ले।

मात्रा व उपयोग—दो-दो गोली दिन में ३ बार जल के साथ दे। विषम ज्वर में जब कोष्ठबद्धता हो तो उदर साफ होकर ज्वर नष्ट हो जाता है।

(२) करंज बीज, पित्तपापड़ा, अतीस, गिलोय सत्व, कटु परवल के बीज तथा कुटकी प्रत्येक एक-एक तोला। सबका बारीक चूर्ण कर द्रोण पुष्पी के रस में खरल कर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा व उपयोग—एक से दो वटी दिन में ३ बार जल से देने से पित्त श्लेष्म ज्वर, शीत ज्वर एवं विषम ज्वर शान्त होता है। ज्वर आने से ४ घन्टे पूर्व, फिर दो घन्टे बाद दें।

ग्रन्थि ज्वरहर गुटिका

द्रव्य—फिटकरी का फूला दस तोला, नौसादर पकाया हुआ, कालीमिर्च, सोना गेरू तीनों ५-५ तोला तथा गुड दस तोला लेवे।

विधि—पहले गुड़ को खरल में घोटे। नरम होने पर औषधियों का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा मिलाकर मर्दन करते जांय। जब सब चूर्ण मिल जाय एक-एक रत्ती की गोलियां बनाकर सोनागेरू के चूर्ण में डालते जांय। गोलियां डालने के लिये दस-बीस तोले सोनागेरू अधिक लेना चाहिये।

मात्रा—एक से दो गोली दो या तीन घन्टे के अन्तर से जल के साथ देते रहें। इस गोली के उपयोग के साथ फिलिपाइन से आने वाले एक प्रकार के जहरीले कुचले का चूर्ण दो-दो रत्ती दिन में तीन बार देना अधिक लाभदायक है।

उपयोग—ग्रन्थिक ज्वर सत्वर काबू में आ जाता है। ४-६ रात्रि देने पर ज्वर उतर जाता है। फिर दिन में ३-४ बार औषधि देते रहें। रोगी को खाने के लिये कुछ भी न दें, केवल जल पर रक्खे। अच्छी क्षुधा न लगे तब तक दूध भी न देना चाहिये। क्षुधा के मारे रोगी छटपटाने लगे तब आधा दूध मिला २-३ प्याले चाय पिलावे। ज्वर उतरने के पश्चात भी अन्न एक सप्ताह तक नहीं देना चाहिए।

ज्वर केसरी वटी

शु. पारद, शु. गंधक, शु. वच्छनाग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, हरड़, बहेड़ा, आंवला तथा शु. जमालगोटा, सब समभाग। प्रथम पारद गंधक की कज्जली करे। फिर वच्छनाग जमालगोटा तथा शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला भांगरे के रस में बारह घन्टे खरल कर एक एक रत्ती की गोलियां बनाले। इनमें से एक से दो गोली ५ या ७ कालीमिर्च के साथ निगलवा ऊपर से एक घूंट जल पिला दे। बालकों को सरसों के बराबर दे।

ज्वर में मलावरोध को नष्ट करने में उपयोगी है। आम का पाचन करती है। स्वेद आकर ज्वर नष्ट हो जाता है (सगर्भा व अतिसार वाले को इसका उपयोग नहीं करावे)।

ज्वरनाशक वटी

सुहागा भुना, फिटकरी भुनी, शु. मल्ल, समभाग चूर्ण कर तुलसी स्वरस में मूंग प्रमाण गोलियां बनावे।

मात्रा—एक से दो वटी।

विषम ज्वर तथा जीर्ण ज्वर में उपयोगी है।

ज्वरारि वटी

मल्ल पुष्प के साथ बना हुआ गुलाबी फिटकरी का फूला एक भाग, पीपल तथा मिर्च २-२ भाग ले सबको मिला घी-क्वार के रस में ६ घण्टे खरल कर आधी-आधी रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्रा—एक एक गोली दिन में २ से ३ बार जल के साथ देवे।

उपयोग—नवीन ज्वर, जीर्ण, विषम ज्वरों को दूर करती है। इसके प्रभाव से नूतन ज्वर २-४ दिन में ही दूर हो जाता है। ज्वर में यदि मलावरोध है तो प्रथम आरग्वधादि क्वाथ आदि से उदर शुद्धि कर आम पाचक औषधि देनी चाहिये या एक दिन लङ्घन करना चाहिये। जिनको कुनेन सहन नही होता उनके लिये अतिउपयोगी है। यदि रोगी का यकृत निर्बल हो तो दही, गुड़, शक्कर, घी, तले हुए पदार्थों का सेवन कुछ दिन नहीं करना चाहिए। सोमल का योग होने से मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिए।

डब्बानाशक गुटिका

सत्यानाशी के बीज और उसारे रेवन्द समभाग मिला कर सत्यानाशी के रस में बारह घन्टे खरल कर चौड़े मुंह की बोतल में भर ले। आवश्यकता पर आध-आध रत्ती एक या दो बार जल या माता के दूध के साथ देवें।

इस वटी के सेवन कराने पर एक दस्त और एक वमन होकर डब्बा रोग शान्त हो जाता है। २ घन्टे में वमन दस्त न हो तो दूसरी मात्रा देवे।

पंचतिक्त घन वटी

सप्तपर्ण की ताजी अन्तर छाल, कांटे वाले करंज के ताजे पत्ते, गिलोय ताजी, चिरायता और कुटकी इन पांच द्रव्यों को १-१ सेर लेवें।

विधि—सप्तपर्ण छाल, करंज पत्र और गिलोय को जल से धोकर मोटा मोटा कूट लें। चिरायता और कुटकी का जौकुट चूर्ण कर सबको मिला १ मन जल के साथ कलईदार बर्तन या मिट्टी के बर्तन मे अष्टमांश क्वाथ कर मसल कर छानले। शीतल होने पर पुन: छान कलई-दार वर्तन में डाल मन्दाग्नि से पकावे। क्वाथ कुरची के इतना गाढ़ा हो तव वरतन को धूप में रखकर सुखा लें। गोली बनने योग्य हो तव अतीस का चूर्ण १० तोले मिलाकर २-२ रत्ती की गोलिया बना ले।

मात्रा—२ से ४ गोली ३-३ घन्टे पर जल से देवें।

इसके उपयोग से विषम ज्वर रुक जाते हैं। पारी के बुखारों में ज्वर आने के ४ घन्टे पहिले और दो घन्टे पहले दो मात्रा (बड़े मनुष्य को ४-४ गोली) दे देवें। तीसरी मात्रा समय निकल जाने पर देवें। अन्य दिनों मे दिन मे तीन वार देवे।

पित्त ज्वरान्तक वटी

कड़वे अतीस का चूर्ण ५ तोला, फिटकरी का लावा २॥ तो., दोनों को खरल कर शहद से २-२ रत्ती की गोली बना सोनागेरू के चूर्ण मे डाल कर सुखा ले। सुरक्षित रखलें।

मात्रा उपयोग—१ से २ गोली दिन मे ३ बार जल से। पित्त ज्वर शांत होता है, पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। अतिसार होने पर मलको बाधता है।

प्लीहान्तक गुटिका

फिटकरी का फूला, सोंहागे का फूला, गिलोय सत्व, लौह भस्म और शंख भस्म १-१ तोला, एलवा और शुद्ध गन्धक २-२ तोला सबको मिलाकर घी क्वार के रस में १२ घंटे खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना ले। इनमें से २-२ गोली दिन मे २ वार निवाये जल से दें।

यह वटी प्लीहा वृद्धि में अति प्रभावशाली है प्लीहा वृद्धि सह ज्वर, यकृदवृद्धि मन्दाग्नि पांडू उदर शूल और मलावरोध को दूर करती है।

मधुरान्तक वटी

मुक्तापिष्टी १ माशा, कस्तूरी २ माशा. केशर ३ ३ माशा जायफल ४ माशा जाविश्री ५ माशा, लौंग ६ माशा, तुलसी पत्र ७ माशा अभ्रक ८ माशा। उपरोक्त द्रव्यों को ३ घंटे आद्रक स्वरस में भली प्रकार घोटें और एक-एक रत्ती की गोलियां बना छाया में सुखा सुरक्षित रखलें।

मात्रा—१ वटी दिन में २ या तीन बार अदरक स्वरस के साथ।

उपयोग—आन्त्रिक ज्वर में इसके प्रयोग से मन्थरी दाने शीघ्र प्रकट होजाते है तथा ज्वर का संताप न्यून होता है। यह आन्त्रिक ज्वर मे उत्पन्न विष को शान्त करता है।

(२) तुलसीपत्र ८ तोला, गिलोयसत्व, लौंग, बंशलोचन घनिया, कासनी के वीज और इलायची के दाने २-२ तोले मिला तुलसी के रस में ६ घन्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां वनालेवे। १ से २ गोली दिन में २ बार जल से दे। मधुरा के विष को बाहिर निकालने में अति उपयोगी है। लक्ष्मीनारायणरस के साथ इस वटिका का सेवन कराने से अच्छा लाभ पहुँचाता है।

मल्लादि वटी

शुद्ध संखिया और शुद्ध हरताल १-१ तो., डीकामारी दो तो., इनको वारीक पीसकर, थोहर के पत्तों के रस में तीन दिन खरल करे। फिर ३ दिन तक आक के पत्तों के रस में खरल करे। पश्चात सिन्गरफ ६ माशा शु. वछनाग ६ माशा वारीक पीस उसमें मिला दे और तीन दिन तक गांजे के रस में खरल करे। फिर तीन दिन नीबू के रस में खरल करके एक पिंड बनाले फिर थोर के १ पाव पत्तों को कूट लुगदी बना उस पिंड को लुगदी में रख कर दो मिट्टी के सकोरों में रख कपड मिट्टीकर २ सेर जंगली छाणों की आग में फूंके। पश्चात निकाल नीबू के रस में खरल कर मूंग प्रमाण गोलियां बनाले।

मात्रा—१-१ गोली प्रात: सायं शीत ऋतु मे बर्षा ऋतु में अदरक के रस मे या सोंठ के काढ़े मे और ग्रीष्म ऋतु में घृत के साथ थोड़ी मिश्री मिलाकर दें। सब प्रकार के ज्वर और त्रिदोष इससे शान्त होते है।

मलेरिया संहार वटी

कल्पनार्थ सत्व, सप्तपर्ण त्वक सत्व, कुटकी सत्व, कुचला सत्व प्रत्येक १-१ तोले, करंज बीज चूर्ण ४ तो., रक्त स्फटिका ४ तो., सबको चूर्णित मिलाकर पानी में ३-३ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा—२-२ गोली दो या तीन बार।

मलेरिया वटी

गोदन्ती भस्म, शु. हरताल, गिलोय सत्व, बंशलोचन और छोटी इलायची सभी वस्तुओं को समभाग लेकर सह-देवी के रस में १२ घंटे तक खरल कर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें। छाया में सुखा सुरक्षित रखलें।

मात्रा—१ वटी ज्वर आने के ४ घण्टे पूर्व, दो गोली २ घण्टे पूर्व शक्कर के साथ देवें।

उपयोग—मलेरिया में उपर्युक्त प्रकार से सेवन करे। विषम ज्वरों में दिन में दो बार दूध के साथ।

संचेतनी वटी

सोंठ, पीपलामूल, वायविडङ्ग, चित्रकमूल दालचीनी तेजपात, जाविञी, शु. वच्छनाग, शुद्ध कुचला, मलल भस्म, ताम्र भस्म और कस्तूरी सब समभाग भांगरे के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। १-१ गोली निवाये जल से ३-३ घण्टे के अन्तर से दिन में ३-४ बार देवे। यह रसायन बेहोशी दूर करने में अति उपयोगी है। मरता हुआ रोगी एक बार होश में आजाता है। कफ, आम, विष और वात प्रकोप को यह वटी तत्काल दूर करती है। हृदय की गति को उत्तेजना देती है और तीनों दोषों को सम बनाती है।

संजीवनी वटी

बिडंग, सोंठ, पीपर, आंवला, बहेड़ा, वच, गिलोय शुद्ध भल्लातक और शु० वछनाग। सबको समभाग लेकर चूर्ण करे। प्रथम गोमूत्र की भावना दें फिर आर्द्रक स्वरस की भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें और सुखालें।

मात्रा—१-१ वटी दिन में ३ बार आवश्यकतानुसार जल तथा आर्द्रक स्वरस से देवें।

उपयोग—जीर्ण ज्वर, विसूचिका कृमि तथा अन्य उदर विकारों में लाभ करती है। इसका प्रयोग ऐसे ज्वरों में जिनमें ज्वर के साथ अजीर्ण अतिसार तथा अन्य उदर विकार हो करना चाहिये। इस वटी को बनाते समय यदि वछनाग के साथ उतना ही शुद्ध हिंगुल भी मिला दें तो यह अधिक प्रभावशाली बन जाती है। उदर शूल और गुल्म में अच्छा लाभ करती है। मन्थर ज्वर की प्रथमावस्था से लेकर अन्तिम अवस्था पर्यन्त यदि इसका सावधानी-पूर्वक प्रयोग किया जाय तो लाभ होता है।

सप्तपर्ण घनादि वटी

सप्तपर्ण घन ४० तो० लेवे एवं कुटकी, चिरायता, कांटेदार करञ्ज के भुने हुए बीजों का चूर्ण १५-१५ तो., कालमेघ १० तो०, शु० कुचला और दालचीनी का चूर्ण २॥-२॥ तोले, सबको मिला २-२ रत्ती की गोलियां बना ले।

सप्तपर्ण घन बनाने की विधि—

सतौने की ताजा छाल को कूट ८ गुने जल में उबाल अर्धावशेष क्वाथ करे। फिर नीचे उतार मसल छान कर कलईदार बर्तन में पकाकर घन बनावे। द्रव्य कड़छी को लगने लगे तब उतार कर सूर्य के ताप से सुखालें। (रबड़ी जैसा बनावे)। यदि सतौने की छाल सूखी हो तो कूट चूर्ण कर चारगुना जल में उबाल अर्धावशेष क्वाथ करे, फिर मसल छान ले। पुनः ४ गुना जल मिल अर्धावशेष क्वाथ कर मसल छान ले। फिर दोनों क्वाथ मिला उप-र्युक्त विधि से घन बनाकर उपयोग में लेवें।

मात्रा—२ से ४ गोली दिन में ३ बार पान से देवे।

उपयोग—ये गोलियां सतत,एकाहिक चतुर्थिक आदि नये विषम ज्वर, अपचन जनित ज्वर, तथा जीर्ण ज्वरों को नष्ट करती है। मलावरोध, अग्निमांद्य, उदर कृमि, अरुचि और निर्बलता को दूर करके शक्ति प्रदान करती है। ज्वर होने पर या न होने पर सब समय दी जाती है, बढ़े हुए ज्वर को उतारती है तथा नये आने वाले ज्वर को रोकती है। ज्वरजन्य यकृत तथा प्लीहावृद्धि को भी यह मिटाती है।

मात्रा—२ से तीन गोली रात को सोने के १-२ घंटे पहिले जल या दूध से दें।

उपयोग—इस औषधि में निद्राप्रद और रक्त दबाव शामक गुण है। जब किसी रोग विशेष में वेदना होवे या

मदात्यय क्विनाइन विष, हिस्टीरिया या शराव उन्माद या मस्तिष्क से अधिक उत्तेजना पहुंचने से निद्रा न आती हो तव निद्रा लाने को इस वटिका का प्रयोग किया जाता है। इसके सेवन से शान्त निद्रा आ जाती है तथा मस्तिष्क में रक्त का दवाव कम हो जाता है।

सर्वज्वरहर वटी

शुद्ध हिंगुल, अभ्रक भस्म, सोहागे का फूला और प्रवाल भस्म १-१ तोला, गिलोय सत्व, वंशलोचन, गुलवनपसा, गुलाब के फूल, वीज निकाली हुई मुनक्का, वीज निकाले हुए उन्नाव, छोटी इलायची के दाने, गाजवां के फूल और शिरोखिस्त—ये प्रत्येक ४-४ तोले लेवे। सवको मिला गुलाव जल के साथ १२ घन्टे खरल कर २-२ रत्ती की गोलियां वना लेवे। मात्रा—१ से ३ गोली दिन में २ वार शर्वत वनफसा या जल से देवें।

इस वटी के सेवन से नये और पुराने वुखार दूर होते है। ज्वर की किसी भी अवस्था में दे सकते है। वालक, वृद्धा, युवा, सगर्भा, प्रसूता सवको निर्भयतापूर्वक दी जाती है। कोष्ठवद्धता, पित्तवृद्धि, दाह, जुकाम और खांसी आदि को भी दूर करती है।

स्वर्णभूपति रस

शु. पारद, शु. गन्धक, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, कांत लोह भस्म, स्वर्ण भस्म, रजत भस्म, शु. वत्सनाभ—प्रत्येक १-१ भाग, ताम्र भस्म २ भाग, सवको दृढ़ खरल में भली प्रकार मिलाकर घोटें। पुनः हंसराज के रस में वारह घन्टे तक मर्दन करे, सूखने पर आतशी शीशी में भर लें और यथाविधि वालुका यन्त्र में पकावे। स्वांग शीतल होने पर शीशी में औषध को यथाविधि निकाल लें।

मात्रा—एक से तीन रत्ती। आर्द्रक स्वरस, मधु. मिश्री आदि अनुपान से देवे।

यह रसायन सर्व प्रकार के सन्निपात ज्वरों में तथा क्षय रोग की दूसरी अवस्था में परमोपकारी है। आमवात, धनुर्वात, उरुस्तम्भ आदि वातरोगों में तथा संग्रहणी, उदावर्त, गुल्म एवं उदर रोगों में अच्छा लाभ करता है। ताम्र का योग होने से प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, जीर्ण ज्वरों में उत्तम कार्य करता है। यह आंतों में उत्पन्न सेंद्रिय विष को उदासीन कर पाचन प्रणाली को कार्यक्षम वनाता है। यह वृक्क के विकारों पर भी लाभ दिखलाता है।

हिंगूकाम्पिल वटी

कवीला एक तोला, भुनी हींग डेढ़ माशा दोनों को मिला दही के जल में ६ घन्टे खरल कर मिर्च समान छोटी-छोटी गोलियां वना लें। इनमें से एक गोली माता के दूध या गर्म जल से दें। वच्चे की आयु १ वर्ष से अधिक हो तो २ गोली दें। आवश्यकता पर ४ घन्टे वाद पुनः दें। इस औषध से डव्वा रोग की शीघ्र निवृत्ति हो जाती है।

गोमूत्र निवाया कर पिलावे या घोड़े की ताजा लीद में थोड़ा जल मिला निवाया करके पिलावें अथवा हृदय की शिथिलता होने पर कस्तूरी एक चावल भर निवाये नागर वेल के पान के रस में मिलाकर पिलावें। इनमें से अनुकूल उपचार करने से पसली रोग दूर हो जाता है।

हिंगु कर्पूर वटी

(१) हींग १ तोला, कपूर १ तोला, कस्तूरी १॥ माशा, तीनों को खरल मे पीसकर गोली वनालें। मात्रा—२-२ रत्ती। ज्वर की सन्निपातिक अवस्था में।

(२) उत्तम असली कच्ची हींग और उत्तम कर्पूर ८-८ तोला तथा कस्तूरी १ तोला लें।

विधि—पहिले हींग और कपूर को मिलावे। फिर कस्तूरी मिला १-१ रत्ती की गोलियां वनावे। कदाचित् गोली न वने तो १०-२० वूंद शहद मिला गोलियां वनाले और उन्हें ६४ प्रहरी पीपर में डालते जायं। तुरन्त शीशियों में भरलें।

मात्रा—एक-एक गोली जल से या २-४ तोले दूध अथवा आर्द्रक के रस और शहद के साथ देवें। रोगी न निगल सके तो गोली को आर्द्रक के रस और शहद में घिसकर जिह्वा पर लगा देवें।

हिंगुलादि गुटिका

शु. सिंगरफ, जायफल, जावित्री और गोरोचन प्रत्येक १-१ तोला व शु.जमालगोटा ४ तोला मिला नीवू के रस में तीन दिन खरल कर चौथाई रत्ती की गोलियां वना लेवे।

मात्रा—१ गोली जल के साथ, आवश्यकता पर ३ घन्टे वाद पुनः १ गोली दें।

उपयोग— यदि डव्वे की वीमारी में पहिले ही पतले दस्त लग रहे हों अथवा कव्ज न हो तो इस औषध का प्रयोग न करें।

ज्वरनाशक

चूर्ण
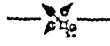
अमृत चूर्ण—

नोसादर और फिटकरी बराबर मिला कर डमरू यंत्र द्वारा उड़ाकर ४० तोला पियावासा क्षार ५ तोला अर्कक्षार ४ तोले मिलाकर तुलसी पत्र स्वरस में ६ घन्टे मिलाकर मर्दन करें फिर अर्कपत्र स्वरस में ६ घन्टे खरल करें। शुष्क चूर्ण होने पर शीशी में भर लें।

मात्रा २ से ४ रत्ती निवाये जल में या चाय या दूध के साथ दिन में ३ वार या दो-दो घन्टे से देवें।

गुण—यह चूर्ण सभी प्रकार के विषम ज्वरों तथा अजीर्ण ज्वर आदि ज्वरों में प्रयुक्त होता है। स्वेदल है, ज्वर को कम करता है। हृदय को भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता।

आमलक्यादि चूर्ण—

आंवला, चित्रकमूल, हरड, पीपल और सेंधा नमक इन पाँच औषधियों को मिला कूट कर ४ माशे निवाये जल के साथ लेने से अपचन, अरुचि और उदर शूल नष्ट होते हैं, डकार आने लगती है। उदर साफ हो जाता है, सरलता से ज्वर शमन हो जाता है।

रिष्टादि चूर्ण—

नीम की छाल १० तोले, त्रिकुटा ३ तोले, सेंधा नमक विड नोंन एक-एक तोले। सज्जी खार, जवा खार, दो-दो तोले। अजवायन ५ तोले। चूर्ण करलें।

इस चूर्ण के सेवन से एकंतरा, द्वयाहिक, तिजारी, चौथिया और संतत ज्वर आदि नष्ट होजाते हैं।

अजवायन चूर्ण—

अजवायन२ माशे और २ रत्ती सेंधा नमक ३-३ घंटे के अन्तर से २-३ वार देने से अपचन अरुचि अफरा उदरशूल, और मलावरोध दूर होने है कीटाणु नष्ट होते है। रक्त में प्रविष्ट विष नष्ट होजाता है पचन क्रिया सवल वन जाती है और ज्वर स्वयमेव दूर हो जाता है।

एलादि चूर्ण—

छोटी इलायची, केशर, भांगरा, तालीस पत्र, वंशलोचन, दाख, अनारदाना, धनिया दोनों पीसें। प्रत्येक मे २-२ तोले लेवें। पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ मिरच अजवायन तितडीक, अमल वेत, अजमोद, असगंध गुद्ध केंवाच वीज प्रत्येक १-१ तोला लेवें। मिश्री १२ तोले मिलावे।

यह चूर्ण रुचिकर है ताप तिल्ली, खांसी, बवासीर श्वास, शूल, ज्वर को दूर करके अग्निप्रदीप्त करता है, वर्ण को सुधारता है, वादी नेत्ररोग, हृदय और कंठ के रोग नष्ट करता है।

कटुरोहिणी चूर्ण—

कुटकी आधा तोले, खांड आधा तोले अथवा कुटकी ६ मासे और खांड २ मासे। इस प्रकार दोनों को मिलाकर आधा तोला परिमाण में फांक कर ऊपर से पानी पीने-कफ, पित्त ज्वरनष्ट हो जाता है।

कृष्णादि चूर्ण—

पीपल, सोंठ, वेलगिरी, नागरमोथा, अजवायन, प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण करें।

मात्रा—३ से ६ रत्ती सुवह शाम तथा दोपहर को शहद और थोड़ा घृत मिलाकर दे।

अथवा

पीपल, अतीस, नागरमोंथा, और काकडासींगी-समभागचूर्ण करें। ३से५ रत्ती मधु में मिलाकर दिन रात में ३-४ वार चटावे।

उपयोग—छोटे बच्चों के ज्वर, अतिसार, अपचन, सर्दी खांसी आदि नष्ट होने हैं।

गगनाशय चूर्ण—

सोंठ, मिरच, पीपर, तज, पत्रज, इलायची, लोंग, जायफल, तवाखीर, कचूर, काकडासींगी, असगध अनारदाना समान भाग मिश्री इसकी मात्रा ४ टंक तक देवें। अग्निदीपक, हृदयरोगनाशक प्रमेह, पथरी, मूत्रकृच्छ धातुओं में स्थित विषम ज्वर, त्रिदोष, राजयक्ष्मा पीनस, श्वास खांसी इनको नष्ट करती है।

गौदन्ती मिश्रण—

गोदन्ती भस्म ८ भाग, जहर मोहरा, पिष्टी २ भाग रसादिवटी २ भाग, ये तीनों द्रव्य एक साथ खरल में मर्दन

कर रख लें। इसे एक माशेकी मात्रा से ठन्डे पानी, लाघमां या ज्वर नाशक क्वाथ के साथ दें।

उपयोग—ज्वर के वेग काल में उसे कम करने के लिए दिया जाता है। इससे संताप घट जाता है। दाह, तृष्णा, वमन, सिर शूल आदि को दूर करता है।

गिलोयसत्व—

ताजी पक्की गिलोय को कूट कर चार गुने जल में ३ घंटे तक भिगो देवें। फिर अच्छी रीति से मसल कर जलको निकाल लें। पुनः दूसरी वार जल मिला, एक घंटे तक मसल कर जल को निकाल लें और इसी तरह तीसरी वार भी करें। जैसे-जैसे जल नितर जाय वैसे-वैसे कटोरी से ऊपर का जल निकालते जांय। अंत में नीचे से गिलोय का सत्व मिल जायगा।

मात्रा—२ से ४ रत्ती दिन में २ या ३ वार शहद के साथ देवें।

उपयोग—गिलोयसत्व अनुपानरूप से या अकेला शहद या दूध के साथ सेवन कराया जाता है। यह शीत वीर्य है। जो जीर्ण ज्वर, निर्वलता, दाह, तृष्णा, प्रमेह, शिरदर्द अरुचि, पित्तविकार, धातु की उष्णता, मूत्र का पीलापन आदि को दूर करता है।

चित्रकादि चूर्ण—

चित्रक, कुटकीं, पाठा, इन्द्रजौ अतीस और गिलोय १ माशे से २ माशे तक प्रतिदिन सेवव करने से आम ज्वर नष्ट होता है।

ज्वर भैरव चूर्ण—

गुलवनफसा, गाजवां, खूव कला, सोंफ और अमृता-सत्व मिलाकर चूर्ण करें। सवके वरावर मिश्री मिला दें। २ माशे से तीन माशे शहद या निवाये जल से दिन में तीन वार पिलावें।

उपयोग—सौम्य, प्रदाहहर, स्वेदल और ज्वरघ्न है। ग्रीष्म काल में धूप में फिरने से प्रतिश्याय सह ज्वर और शुष्क कास सह ज्वर जो मन्द मन्द रहता है दूर करता है।

ज्वर भैरव चूर्ण (द्वितीय)—

सोंठ, त्रायमाण, नीम की छाल, यवासा, हरीतकी, नागरमोंथा, वच, देवदारु, कटेली, काकडासींगी, शतावर पित्तपापडा, पौंकरमूल, इन्द्रायणकीजड, पुष्करमूल, कचूर, मूर्वा की जड, पीपल, हरिद्रा, दारुहल्दी, लोध्र, लाल चंदन केवटी मोंथा इन्द्रयव, कोरैया की छाल, मुलेठी, चीते की जड़, सहजने के वीज, खरैटी, अतीस कुटकी, मूसली, पद्माख, अजवायन, शाल पर्णी, मिर्च, गिलोय, वेल की छाल, सुगन्धवाला, पंक पर्पटी (अथवा फिटकरी) तेजपत्र, दालचीनी, आँवला, पृश्न पर्णी, परवल के पत्ते, शुद्ध गन्धक शुद्ध पारद, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध मैनसिल-इन सव द्रव्यों को सम भाग लेकर चूर्ण वनावें। फिर इन मिश्रित द्रव्यों के आधे भाग चित्रक का चूर्ण मिलावें। इसमें से रोगी के दोप और वलावल का विचार कर दो ग्राम से आठ ग्राम तक प्रयोग कर सकते हैं।

इसके सेवन से विषम ज्वर, प्लीहा और यकृतजन्य मलेरिया भी अच्छा होजाता है।

ज्वरहर चूर्ण योग—

१- हुलहुल के पत्ते १ तोला काली मिर्च १॥ माशा कूट कपड़ छनकर रख लें। जल के साथ पीस, जल मिला कपड़ छनकर पिलाने से, सुंघाने और नेत्र में अंजन करने से सभी प्रकार के विपम ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

२-अंकोल मूल की अंतर छाल का चूर्ण २ से ४ रत्ती तक निवाये जल या चाय के साथ देने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। कभी-कभी वमन होकर ज्वर विप निकल जाता है। औपधि देकर वीमार को सुला देना चाहिये और रजाई अथवा कंवल ओढ़ा देने से पसीना आकर ज्वर छूट जायगा।

३-अतीस, कलमी सोडा, फिटकरी का फूला और काली मिरच ये चारों १-१ तोला कूट कपडे छन कर लें और ३ माशे हिंगुल मिला खरल कर लें। चढे हुए वुखार में २ से ४ रत्ती निवाये जल या अदरक पोदीना और दालचीनी मिली हुई चाय के साथ देने से प्रस्वेद आकर थोडे ही समय में वुखार उतर जाता है।

जव ज्वर न हो तव ज्वर को रोकने हेतु ३-३ रत्ती औपधि ३-३ माशे चीनी के साथ दिन में दो वार जल के साथ १-२ दिन तक देते रहे।

४-गुडूची सत्व और पीपर दोनों को सम भाग खूव घोट लें। एक से तीन मासे प्रातः और सायंकाल ६ माशे

शहद से चटा दें। जीर्ण अथवा साधारण ज्वर नष्ट हो जायेंगे। यदि ज्वर में अधिक प्यास लगे तो पीपल की छाल को जला निर्धूम कोयले को पानी में बुझा उस पानी को छान रोगी को पिलावें।

५—छोटी पीपल ५ तोले का बारीक चूर्ण कर नागर वेल के पान के रस में भली प्रकार ७ से २१ भावनाएँ दे प्रातः सायं १—१ माशा इस चूर्ण को ५ अडूसे के पत्तों का रस और तीन माशे शहद के साथ सेवन करावें। ६० रोज में जीर्ण ज्वर नष्ट हो जाता है।

यदि रोग अति कठिन हो और क्षय की स्थिति हो तो १—१ रत्ती चंद्रोदय अथवा मोती भस्म मिलाकर सेवन करावें।

६—तुलसी पत्र २ तोले, गडुचीसत्व १ तोला, लोंग, वंशलोचन धनिया, कासनी के बीज, और छोटी इलायची प्रत्येक ३—३ माशे कूट कपड़ छन चूर्ण कर ले। पश्चात तुलसी पत्र स्वरस की भावना देकर सुखा ले। १ रत्ती जल से दिन में तीन बार देवें। इसके सेवन से मंथर ज्वर नष्ट हो जाता है।

७—सूरजमुखी के फूलों की पंखुरिया छाया में सुखाकर चूर्ण कर लें। सभी प्रकार के विषम ज्वरों मे १ माशे चूर्ण ज्वर चढ़ने से ३—४ घंटे पूर्व जल से खिलायें। ३—४ मात्रा देने से ज्वर संपूर्ण नष्ट हो जाता है।

८—रुदन्ती के फलों को कूट कपड़छन कर रख ले— २से४ रत्ती की मात्रा में दिन में ३ या ४ बार गाय या बकरी के दूध अथवा ताजा जल से सेवन करायें। १०—१५ रोज में जीर्ण ज्वर से छुटकारा मिल जायेगा। यदि कफाधिक्य हो और रोग क्षय की अवस्था मे हो तो यह प्रयोग कई दिन तक करना चाहिए। निश्चित लाभ होगा।

९—कुटकी को कूटकर खरल कर लें। १माशा में २।। माशा चीनी मिला ताजा पानी से खिलायें—विषम ज्वर नष्ट होजायगा।

१०—बबूल की पत्तियां, सफेद जीरा, करंज की गिरी और पीपर समभाग चूर्ण कर लें। १—१ माशा चूर्ण ज्वर से पूर्व ३ बार ताजे पानी से सेवन करावें—मौसमी बुखार नष्ट हो जाता है।

११—सोंठ, अजवायन खुरासानी, पीपर छोटी, पीपर बड़ी, जवाहरड़, हरडछाल, काली मिरच, नागकेशर प्रत्येक ६—६ माशे, काकड़ा सींगी, छोटी इलायची, गिलोय सत प्रत्येक १—१ तोला, दालचीनी ८माशे, वंशलोचन ९ माशे शीतल चीनी और केशर चार—चार माशे मिश्री चार तोले बारीक चूर्ण कर ले। ६ माशे चूर्ण शहद से प्रातः सायं सेवन करायें। सभी प्रकार के ज्वरों में उपयोगी है।

१२—कालीमिर्च, गिलोयसत्व, छोटी इलायची, वंशलोचन, शुद्धभिलावा सम मात्रा चूर्ण कर ले। प्रातः मध्याह्न और सायं तीनों समय एक एक रत्ती मक्खन अथवा मलाई मे रखकर खिलावे। क्षय जन्य ज्वर नष्ट हो जाता है।

१३—सूंठ, काली मिर्च, पीपर, दालचीनी और जीरा प्रत्येक तीन तीन तोला लेकर बारीक चूर्ण कर ले।

१ से २ ग्राम चूर्ण ३—३ घंटे से पानी के साथ दे। २—३ दिन में ज्वर खासी, हडफूटन, सर्दी आदि मे समुचित लाभ होगा।

१४—अप्रैल मास मे आक की जड ले साफ कर कूट छान कर रख ले। २।। रत्ती की मात्रा मे जल से देवें पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

१५—बढ़े हुए ज्वर में अतीस का चूर्ण ५ रत्ती की फंकी दें। पसीना आकर ज्वर उतर जायगा १से ३ माशे चूर्ण कुछ दिन देते रहने से ज्वर नष्ट हो जायगा।

१६—कुटकी १६ माशे, लवंग ६ नग, अजवाइन २ माशे—तीनों को कूट छानकर तीन मात्रायें बनावे। तीन दिनों तक प्रातः काल एक एक मात्रा देवे। अनुपान-तागा हुआ पानी एक कटोरे में आधा पाव जल डाल दे। उसमें खूब तपाये हुए दो मिट्टी के कंकड डाल दें और छान लें। इस चूर्ण को प्रयोग मे लेने पर बिना नमक व बिना घी की खीचड़ी खावे। पारी का ज्वर नष्ट हो जायगा।

१७—सोंठ, काली मिर्च, पीपर, चित्रक, पीपरामूल, सफेद जीरा, काला जीरा, लोंग, इलायची, भुनी हींग, अजवाइन, अजमोद, सम भाग चूर्ण बना ३ से ६ माशे गरम जल से पिलावें। ज्वर से निवृत्ति मिल जायगी।

१८—सत्यानाशी बीज १ तोला, जल के साथ पीसकर ४ तोला जल मिलावे। पश्चात आधे नींबू का रस मिलावें बुखार आने के ३—४ घंटे पहिले पिलावें। सतत, एका-

हिक तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर रुक जाते हैं। नीबू के रस की जगह तीन रत्ती फिटकरी का फूला भी मिला सकते हैं। यह रेचक भी है। १-२ दस्त होकर ज्वर विष निकल जाता है।

१६—प्रवाल भस्म १ भाग, गोदन्ती भस्म २ भाग सोहागे का फूला २ भाग मिला सुदर्शन के पत्ते के रस की ७ भावनाऐं दे सुखालें। एक माशे चूर्ण को सुदर्शन के पत्तों के १ तोला रस से सेवन करा दें। प्रस्वेद आकर शरीर का उत्ताप कम हो जाता है। निर्वलों को मात्रा वहुत कम देनी चाहिए।

२०—श्वेत फिटकरी को मिट्टी के वरतन के भीतर १६ गुने जल में भिगोकर १ दिन रहने दें। दूसरे दिन जल को छान लोहे की कढ़ाई में डाल पका जल को सुखा वोतल में भर लें। २ से ६ रत्ती की मात्रा में गुड में मिला वुखार आने के ४-६ घंटे पहिले २-२ घंटे के अंतर से लेते रहें। जब वुखार न हो प्रातः सायं देवें, विषम ज्वर नाशक है।

२१—कलमी शोरा, फिटकरी का फूला और अतीस५-५ तोला आक के मूल की छाल २॥ तोला सवको मिला खरल करलें। १ से १॥ माशा निवाये जल, चाय या शहद के साथ २-२ घंटे पर ३-४ वार देने से बढ़ा हुआ ज्वर कम हो जाता है। विविध प्रकार के आमवातिक ज्वर, आम ज्वर, कफ प्रधान ज्वर आदि में विष को जलाकर प्रस्वेद और पेशाव द्वारा वाहिर निकाल देता है।

जीर्ण ज्वरान्तक चूर्ण—

वहेड़ा २० तोला, लौंग ३ तोले, अपामार्ग क्षार, वंग क्षार वच और सोना गेरू ६-६ माशे। वहेडे और लौंग को कूट कर कपड़ छन करके फिर शेष औषधि मिलाकर कपड़ छन चूर्ण कर लें। इस चूर्ण में से (श्वासान्तक चूर्ण) १ तोला चूर्ण में मिश्री ४ तोले मिलाकर ७२ घंटे खरल कर वोतल में भर लें।

मात्रा—१ से २ रत्ती वनप्सादि शर्वत और शाही चूर्ण के साथ दिन में २-३ वार दें।

उपयोग—प्रतिश्याय, क्षय ज्वर, जीर्ण ज्वर, श्वसनक ज्वर पूय ज्वर, और विकृत विषम ज्वर और जीर्ण विष युक्त ज्वर को दूर करता है।

नारायण चूर्ण—

हरड वहेडा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपर, जीरा, हाऊवेर वच अजमोद, पीपरा मूल, सोंफ, अजगंधा, अजमोद, कचूर, धनियां वायविडंग, कलोंजी, स्वर्ण क्षीरी पुष्कर मूल, यवक्षार, सज्जी खार, सेंधा नमक, पंच नमक, विड नमक, सांभर नमक, समुद्र नमक, कूट प्रत्येक एक भाग, इन्द्रायण फल दो भाग, सफेद निशोथ तीन भाग, दन्ती जड़ ३ भाग, सातला ४ भाग, सवका वारीक चूर्ण वना लें। यह चूर्ण समस्त रोगों को दूर करता है। ज्वर पांडु श्वास, कास, भगंदर, मंदाग्नि कुष्ठ ग्रहणी गल ग्रह आदि रोगों में युक्तियुक्त विचार करके उपयुक्त अनुपान के साथ प्रयोग करना चाहिए।

निम्बादि चूर्ण—

नीम की सूखी पत्ती १० छटांक
त्रिफला ३ छटांक त्रिकटु १ छटांक
अजवायन ५ छटांक सेंधा नमक १ छटांक
यवक्षार २ छटांक कूट-कर चूर्ण करें।
सर्व ज्वर हर प्रयोग करें।
(पं० शिव शर्मा)

निर्वेदन चूर्ण—

नौसादर के फूल, फिटकरी का फूला, सुहागे का फूला गौदन्ती भस्म, शुद्ध सोना गेरू, मीठे सहजने की छाल और खुरासानी अजवायन प्रत्येक १-१ तोला। गेहूं अथवा जौ की राख २ तोला।

विधि—सवको मिला चूर्ण कर तुरंत वोतल में भर लें

मात्रा—१-१ माशा निवाये जल से

उपयोग—ज्वरावस्था में या ज्वर न होने पर भी उत्पन्न शिर दर्द और अन्य अंगों का दर्द इसके सेवन से कम हो जाता है। स्वेद आकर ज्वर कम हो जाता है, फिर शान्त निद्रा आ जाती है।

पंचकोल चूर्ण—

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक मूल की छाल और सोंठ एकत्र कूट कपड़ छान चूर्ण कर लें।

मात्रा—१ से ३ माशे दिन में २-३ वार शहद या गरम जल में।

उपयोग—ज्वर, कास श्वास एवं अरुचि नाशक है आनाह प्लीहा, वृद्धि, गुल्म शूल कफ जन्य व्याधियां एवं उदर रोग नष्ट होते है।

पंच सकार चूर्ण—

सोंठ, सोंफ, सनाय, सेंधवनमक प्रत्येक १-१ तोला कूट कपड़छन चूर्ण करलें।

३ माशा से ६ माशा तक गरम पानी के साथ सायंकाल देने से प्रातःकाल साफ पाखाना होगा। प्रथम उदर शुद्धि करके फिर ज्वर नाशक औषधि देने से अधिक लाभ होता है।

पंचसम चूर्ण—

सोंठ, पीपर हरड़, छाल, निसोथ, कालानमक समभाग चूर्ण करें।

मात्रा ३ माशा से ६ माशा कोष्ठवद्धता नाशक

वृहत् सितोपलादि चूर्ण—

दालचीनी १ तोला, छोटी इलायची २ तोला छोटी पीपल, मुलहठी, वनफसा के फूल, गोजिह्वा और तालीसपत्र ४-४ तोले कूट पीस छानकर चूर्ण करें।

मात्रा—३ से ४ माशा दिन मे ३ वार घी और के शहद साथ।

यह चूर्ण खांसी, श्वास, जुकाम, मंदज्वर दाह और मंदाग्नि कोदूर करता है। निमोनिया में अति हितकारी है। यह चूर्ण श्वास वाहिनियों की श्लैष्मिक कला के क्षोभ को दूर करता है जिससे शुष्ककास ज्वर सहित सरलता पूर्वक शमन हो जाता है।

मसूरिका कंठशोधक चूर्ण—

पीपल और हरड़ का समभाग वस्त्रपूत चूर्ण शहद में मिला चटाने से मसूरिका रोगी का कंठ साफ हो जाता है।

मंथर ज्वरहर चूर्ण—

(अ) मिश्री ४ तोले और सोमल ३ माशे दोनो को मिलाकर ७२ घटे खरल करें।

(व) उपरोक्त (अ) में से १ तोला मे पुनः ४ तोले मिश्री मिलाकर ७२ घंटे खरलकर रखलें।

पुनः उपरोक्त (व) मे से १ तोला चूर्ण लेकर उसमें ४ तोला मिश्री मिला ७२ घंटे खरल करके शीशी में भरलें।

१ से २ रत्ती जल के साथ दिन में २ या ३ वार दें। मोतीझरा आदि पित्त प्रधान मुद्दती ज्वर दूर होते हैं।

समशर्कर चूर्ण—

लवंग, जायफल, पीपल १-१ तोला, काली मिर्च ६ तोले, सोंठ १२ तोला, शक्कर १५ तोला लेकर कपड़ छान चूर्ण करें। मात्रा ४ से ६ माशा दिन में २ से ३ वार जल या शहद से दें।

यह चूर्ण वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक ज्वर सह कासको नष्ट करता है, अरुचि, वात गुल्म, श्वास, मंदाग्नि और ग्रहणी को भी नष्ट करता है।

सुदर्शन चूर्ण (लघु)—

गिलोय, पीपरामूल, पीपर, कुटकी, हरड़, सौंठ लोंग, नीम की अंतर छाल, सफेद चंदन प्रत्येक १-१ तोला चिरायता ४॥ तोला सबको मिला कपड़छन चूर्ण करले।

मात्रा २ से ४ माशा दिन में ३ वार जल से

उपयोग—वात, पित्तज, कफज, द्वन्दज और विषम ज्वर आदि सब प्रकार के ज्वरों का नाश करता है अग्नि को प्रदीप्त करता है एवं शिर दर्द, अरुचि थकावट तृषा, मलावरोध और अति स्वेद आना आदि लक्षणों को दूर करता है।

सुदर्शन चूर्ण वृहद्—

हरड़, वहेड़ा, आंवला, हल्दी, दारु हल्दी, कटेरी छोटी, कचूर, सोंठ, काली मिरच, पीपर, सहजने के बीज, फिटकरी का फूला, वच, दालचीनी, पद्माख, खस, सफेद चंदन, अतीस, खरैंटीमूल, शालपर्णी, पीपरामूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापडा, नागर मोथा, नेत्रवाला, नीम की अन्तर छाल, पुष्करमूल, मुलहठी, कुडेकी छाल, अजवाइन, इन्द्रजौ, भारंगी, वायविडंग, तगर चित्रक मूल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक,लोंग, वंशलोचन, कमल, काकोली, तेजपत्र, चमेली के पान तालीस पत्र, प्रत्येक १-१ तोला, चिरायता २६॥ तोला सबको मिला कूटकर चूर्ण करे।

मात्रा—२ से ४ माशा दिन में २ वार प्रातः रात्री को जल से इस चूर्ण का प्रयोग प्रायः सभी ज्वरों में होता है परन्तु वातज और कफ प्रधान ज्वरों मे यह विशेष लाभ करता है। इसका प्रयोग हिम, फाण्ट तथा कषाय इन सभी रूपों में यथावश्यक किया जाता है। जीर्ण ज्वरो मे तथा धातुगत ज्वरों मे भी इसका प्रयोग एकाकी रूप में तथा अन्य औषधों के साथ किया जाता है। यह ज्वर के संताप को कम करता है।

सुदर्शन मिश्रण—

सुदर्शन चूर्ण १० तोला सज्जीखार २ तोला, शुद्ध कुचला चूर्ण १ तोला, आग पर फुलाई लाल फिटकरी १॥ तोला सब को एकत्र मिलाकर रखलें। दिन में २ या ३ बार

मात्रा—३ माशा जल के साथ प्रतिश्याय, ज्वर तथा विषम ज्वर में इसका प्रयोग करें।

हिमरलाकर चूर्ण—

सफेद चन्दन, गुलाब पुष्प, सूखा सेवती गुलाब काहू के बीज, कुलफा, खस धनिया, कासनी, नीलोफर सौंफ, इलायची दाना, खीरा के बीज ककड़ी के बीज, काली मिरच प्रत्येक समान भाग मोटा चूर्ण बनालें।

गुण—वर्षा ऋतु, शरद ऋतु में आनेवाले ज्वर, अपचन से आनेवाले ज्वर, ठंड लग कर आनेवाले ज्वर बार-बार आनेवाले ज्वर, प्रतिश्याय ज्वर में लाभ करता है। मलावरोध अग्निमांद्य, सिरशूल अरुचि आलस्य आम और कफ आदि युक्त ज्वर को ठीक करता है।

ज्वरावस्था में तथा ज्वर न होने पर भी इसे निर्भय प्रयोग करें।

अभयादि क्वाथ

हरडछोटी, नागरमोथा, धनिया, लालचंदन, पद्माक, अडूसा, इन्द्रयव खस, गिलोय, अमलतास का गूदा, पाढ सोंठ, और

कुटकी निर्माणविधि—

इन १३ औपधियोंको समभाग मिला यवकुटचूर्ण कर रखले इनमें से एक तोला क्वाथ ले। उसको १६ तोला जलमें पकायें। जब ४ तोला शेपरहे कपड़ेसे छान उसमें ५ रत्ती पीपल का चूर्ण मिला कर दिन में २-३ बार दें यह क्वाथ त्रिदोषघ्न है। मल मूत्र और वायु के विबंध को दूर करने वाला, प्यास खांसी, दाह,प्रलाप, श्वांस तन्द्रा वमन तथा अन्न पर अरुचि इन लक्षणों से युक्त ज्वर को नष्ट करता है। सब प्रकार के ज्वरों में केवल यह क्वाथ या इसमें ५ रत्ती नौसादर और ५ रत्ती कलमी सोरा मिलाकर अकेला या अन्य ज्वरघ्न सों के अनुपान के रूप में दें।

अमृतादि क्वाथ—

गिलोय, अडूसा, परवल की पत्ती, नागर मोंथा, सप्तपर्ण की छाल, खदिर, निम्ब पत्र, हल्दी, दारू हल्दी।

निर्माण विधि—इन ९ औपधियों को सम भाग मिला यवकुट चूर्ण कर रख लें। इनमें से एक तोला क्वाथ ले और उसको १६ तोला जल में पकायें ४ तोला शेप रहे कपडे से छान लें। ४ तोला दिन में तीन बार पिलायें।

गुण और उपयोग—विविध विप दोप, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोटक, कण्डु, मसूरिका शीतपित्त तथा ज्वर को नष्ट करता है।

अमृता अष्टक क्वाथ—

इन्द्रजौकडवा, पटोल पत्र, कुटकी, गिलोय, नीम की अंतर छाल नागर मोंथा, ,सोंठ और लाल चंदन।

इन आठ औपधियों को सम भाग मिला जौ कूट चूर्ण कर रख लो। इन में से एक तोला चूर्ण लें। १३ तोला जल में पकायें। ४ तोला शेप रहे कपड़े से छान उसमें ५ रत्ती पिप्पली चूर्ण मिला कर दिन में दो-तीन बार दें।

यह क्वाथ पित्त श्लेष्म ज्वर को दूर करता है और उसके लक्षण रूप वमन, अरुचि, उबाक, दाह और तृषा आदि को भी दूर करता है। आम का पाचन कर ज्वर को नष्ट करता है।

अष्टादशांग क्वाथ—

चिरायता, कुटकी, मोंथा, धनिया, इन्द्रजव, सोंठ, दशमूल, देवदारु, मगज पीपर।

सम भाग जौ कूट चूर्ण कर यथा विधि क्वाथ करें।

उपयोग—पसलियों का दर्द, ज्वर, खाँसी श्वास, वमन, हिचकी तंत्रादि दोप दूर होते हैं।

अलसी फांट—

अलसी का आटा १। तोला, मुलहठी ६ माशा, आधा नीबू और १ तोले मिश्री को उबलते हुए २५ तोला जल में डाल कर ४ घंटे ढक दें। पश्चात छानकर ३ भाग करके दिन में तीन बार पिलावें। इस चाय से कफ सरलता से बाहर आ जाता है और मूत्र शुद्धी होती है।

—*—

ज्वरनाशक

क्वाथ

—※—

आम झोरा (आम का पना)—

कच्चा आम को अग्नि में पका कर रात्रि को शीतल स्थान में रख द, सुबह छिलका दूर कर जल में मसल रस निकाल भुना जीरा या थोड़ा सैंधा नमक या थोड़ी मिश्री मिला पिला द।

अंशुघातज ज्वर को नष्ट करता है।

आम लवणादि क्वाथ—

आमला, हरड, पिप्पली, और चित्रक इन चारों के क्वाथ को सेवन करने से संपूर्ण ज्वर तथा कफ रोग नष्ट होते हैं। पाचक एव जठराग्नि वर्द्धक है।

आरग्वधादि कषाय—

अमलतास का गूदा, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी, छोटी हरड

इन पांच औषधियों को सम भाग मिला जौकुट चूर्ण कर रख लें। इसमें से २ तोले क्वाथ को ३२ तोला जल में पकायें। जब ६ तोले शेष रहे छान कर लें। प्रातः सायं दोनों समय तैयार कर पिलाएं।

इस क्वाथ में अमलतास को छोडकर शेष ४ द्रव्यों का प्रथम क्वाथ करके पीछे से अमलतास का गूदा हाथ से मसल कर मिला देना चाहिए क्योंकि अमलतास के क्वाथ करने से गुण हानि होती है।

यह क्वाथ दीपन पाचन और सारक है। यह कफ, वात ज्वर की प्रारम्भिक समावस्था में सफल कार्य करता है। आम को पाचन करता है, मल को बाहर फैंक कर उदर शुद्धि करता है जिस से उदर शूल नष्ट होता है। आम एवं शूल युक्त वात ज्वर में विशेष उपयोगी है।

इमली पानक—

किसी पत्थर या मिट्टी के पात्र में इमली की पकी फलियों के गूदे को १३ गुना जल में मिला आधा घंटे रहने दें। फिर खूब मसल ४ गुनी मिश्री मिला, अग्नि पर चढ़ाकर एक उबाल दें। पश्चात तुरन्त उतार छान लें। शीतल होने पर बोतलों में भर लें। इसमें से २॥ तोला ३–४ समय २–२ घंटे से पिलायें। व्याकुलता शमन हो जाती है।

उशीरादि क्वाथ—

खस, नेत्रबाला, नागरमोथा, धनिया, कच्चे बेलफल मजीठ, धाय के फूल, लोध्र और सोंठ। इन नौ औषधियों को सम भाग मिला जौकुट चूर्ण करें। इसमें से ४ तोला का क्वाथ कर उसका ४हिस्सा कर दिन में ४ वार पिलावें। यह क्वाथ दीपन पाचक है। ज्वर में उत्पन्न आम उदरशूल अतिसार, और रक्तातिसार को दूर करता है। अथवा इस क्वाथ को कुल १०० ग्राम ले १६ गुना जल में मिला चतुर्थांश शेष रहे छान लें। शीतल होने पर १८० ग्राम शहद मिलावें बोतलों में भर लें। इसमें से २५–२५ ग्राम पिलाते रहे।

कट्फलादि क्वाथ वृहत्—

कायफल, नागरमोथा, वच, पाठा, पुष्कर मूल, काला-जीरा, पित्त पापड़ा, काकड़ा सींगी, इन्द्र जव, धनियां, कपूर, भृंग राज, पिप्पली, कुटकी, हरड, चिरायता, भारंगी घी में सेकी हींग, बला पीपलामूल, खंभारी छाल, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, बेल की छाल, शाल पर्णी, पाढल छाल, वनी कटेली, अरलू छाल, पृष्ण पर्णी, अरणी छाल गोखरू।

निर्माण विधि—सम भाग मिलावें। २ से ५ तोला दिन में दो तीन बार पिलाएं। सन्निपात ज्वर, विशेष कर कफ वातोल्वण सन्निपात। ज्वर कास, स्वर भेद, गल रोग, रोग प्रभृति उपद्रव शान्त होते हैं।

कटु त्रिकादि क्वाथ—

सोंठ, पीपर, मिर्च, नागकेशर, हल्दी, कुटकी, इन्द्र-यव इन द्रव्यों को समान भाग में लेकर यव खण्ड कर यथा विधि क्वाथ बनावे।

मात्रा—२ से ४ तोला। दिन में २से ३ बार। इनके उपयोग से कफ ज्वर नष्ट होता है।

कारव्यादि क्वाथ—

काला जीरा, पुष्कर मूल, एरण्ड मूल; त्रायमाण, सोंठ, गिलोय दशमूल, (१०), कपूर, काकड़ा सींगी, धमासा भारंगी, पुनर्नवा इन २१ औषधियों को सम भाग मिला जव कूट चूर्ण करे।

इसमें से तीन तोले चूर्ण को १५ तोले गोमूत्र में मिला अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर इसके तीन भाग कर ३–३ घंटे पर तीन बार पिला दे या ६ तोले का जल

में क्वाथ कर २ हिस्से करें। फिर ३-३ घंटे पर देवें। साथ में एक-एक छटांक गोमूत्र पिलाते रहें तो सब नड़ियां शुद्ध होकर घोर अभिन्यास सन्निपात दूर हो जाता है।

कटुकादि क्वाथ—

कुटकी, चित्रक मूल, नीम की छाल, हल्दी, अतीस वच कुट, इन्द्र जौ, मरवा, परवल के पत्ते, इन १० औषधियों को सम भाग मिला जौ कूट चूर्ण करें।

इसमें से ४ तोले का यथा विधि क्वाथ करें। फिर दो हिस्से कर प्रातः सायंकाल को पिलावें। पीते समय काली मिर्च का चूर्ण ४ रत्ती और शहद ४ माशे मिला लेवें।

उपयोग—इनके सेवन से मलावरोध, अग्निमांद्य, उवाक आदि लक्षणों सहित कफ दूर हो जाता है।

कण्टकार्यादि पाचन (साम ज्वर)—

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सोंठ, धनियां, देवदारु।

उक्त पाँच द्रव्यों को सम भाग मिला जौ कूट चूर्ण करें।

मात्रा—२०-२० ग्राम का क्वाथ प्रातः साय पिलावें

उपयोग—सब प्रकार के ज्वरों की आमावस्था में आम का पाचन कराने के लिए सेवन कराया जाता है। बालक युवा वृद्ध, सगर्भा प्रसूता सबको निर्भय रूप से दिया जाता है।

कण्टकार्यादि क्वाथ (पित्त कफज्वर)—

छोटी कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्र जौ, कडवा अडूसा चिरायता, रक्त चंदन, नागरमोंथा, पटोल पत्र, और कुटकी।

विधि—इन ११ द्रव्यों का सम भाग, जौ कुट चूर्ण करें।

उपयोग—यह क्वाथ पित्त श्लेष्म ज्वर को दूर करता है। साथ में दाह तृषा, अरुचि, वमन, कास, उदर शूल, आदि लक्षण उपस्थित हुए हों वे सब दूर हो जाते हैं।

कणादि क्वाथ (वात कफ ज्वर)

पीपर, लहसुन, गिलोय, सोंठ, कटेरी, संभालू, चिरायता और नागर मोथा। इन सबको सम भाग लेकर जव कूट चूर्ण कर लें। यथा विधि क्वाथ बनायें।

मात्रा—२ से ४ तोले दिन में २ से ३ वार आवश्यकतानुसार।

उपयोग—वात ज्वर, कफ ज्वर, तथा वात कफ ज्वर में हितकर है। इससे अग्निमांद्य, कण्ठ तथा हृदय का अवरोध, स्वेद, हिचकी, शरीर का ठंड़ा होना, मूर्छा आदि विकार शान्त होते हैं।

कणादि क्वाथ (ज्वरातिसार)

पीपल, गज पीपल, लाजा को सम भाग जव कूटकर यथा विधि क्वाथ बना लें। शीतल होने पर मधु और खांड का प्रक्षेपदे कर पिलावें। इससे प्यास की शान्ति होती है।

मात्रा—२से ४ तोला। २से ३ बार।

कफ नाशक कषाय—

कायफल की छाल, भारंग मूल, छोटी कटेरी की जड़, अर्कमूल की छाल, काकड़ा सींगी, मुलहठी, हरड, वहेड़ा, अडूसे के पत्र, गिलोय, नागर मोथा और सोंठ।

विधि—इन १३ द्रव्यों को २०-२० ग्राम लेकर जौ कुट चूर्ण करें। ३ किलो रात्रि में भिगो दें। प्रातः मन्दाग्नि दे चतुर्थांश क्वाथ करें। शीतल होने पर छान २०० ग्राम शहद मिला लें।

मात्रा—२५-२५ ग्राम दिन में ३-४ वार ४-४ घंटे वाद पिलावें।

कफ, जल्दी पक कर वाहर निकल जाता है। कंठ साफ हो जाता है। स्वर सुधर जाता है। कफ, कास, तमक श्वास, पार्श्व शूल, कफ ज्वर, निमोनिया, इन्फ्लूएजा जुकाम, और फुफ्फस, शोथ आदि रोगों में जब कफ का संचय अधिक हो गया हो, छाती जकड़ गई हो तब इस क्वाथ का सेवन अति हितावह होता है।

कागजी नींबू फांट

एक कागजी नींबू लेकर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर उसके वाद तीन गिलास जल मिट्टी के बर्तन में डाल कर उसमें नींबू के टुकड़ों को पकावें। जब जल पक कर सिर्फ एक गिलास रह जाय तब उसको अग्नि से उतार लें। फिर उस जल को साफ कपड़े से छानकर ठंड़ा हो जाय तब पीवें। यह जल विषम ज्वर दूर करने में अतीव लाभ प्रद सिद्ध हुआ है।

किरातादि क्वाथ—

चिरायता, नागर मोंथा पित्त पापड़ा, गडुची इनका कुछ काल तक पिलाने से पुनरावर्तक ज्वर नष्ट होता है

किरातादि क्वाथ (त्रिदोष)—

चिरायता, कुटकी, पीपल, इन्द्रायण कड़वा, कटेरी, कचूर बहेड़ा, देवदारु, हरड, मिरच, कायफल, नागर मोंथा अतीस आंवला, पुष्कर मूल, चित्रक, काकडा सींगी, अडूसा और सोंठ इन १९ द्रव्यों को सम भाग लेकर जव कूट चूर्ण करें। यथाविधि क्वाथ करें।

मात्रा—२ से ४ तोला।

कंठकुब्ज सन्निपात में अच्छा लाभ करता है।

किरातादि क्वाथ (पित्तज्वर)—

द्रव्य—चिरायता, गडुची, धनियां रक्त चंदन, खस पित्त पापड़ा, और पद्माख।

इन सात द्रव्यों का यव खंड चूर्ण कर यथा विधि क्वाथ बनायें।

मात्रा—ढ़ाई से ५ तोला दिन में दो बार।

गुण—इसके उपयोग से पित्त ज्वर शान्त होता है।

किरातादि क्वाथ ३—

द्रव्य—चिरायता, नीमगिलोय, द्राक्षा आमला, और कचूर समभाग यथाविधि क्वाथ करें। गुड़ का प्रक्षेप करके वात पित्त ज्वर में देवें।

मात्रा—ढाई से ५ तोला दिन में दो बार।

गुडूच्यादि क्वाथ—

गडूची नीम की छाल, लाल चंदन, पद्माख

विधि—इन पांच द्रव्यों को सम भाग जौकूट चूर्ण करें। यथाविधि क्वाथ बनावें।

मात्रा—२ से ४ तोला दिन मे दो बार

उपयोग—सभी जाति के तरुण ज्वरों में लाभ होता है। पित्तकफ ज्वर में विशेप लाभदायक है। अग्निदीपन होती है तथा दाह, उत्क्लीश, तृषा, छर्दि और अरुचि की शान्ति होती है। आमाशय की श्लैष्मिक कला के प्रदाह या अपचन के कारण वमन व व्याकुलता के साथ ज्वर उत्पन्न होने पर उपकारक होता है। पाचन क्रिया सुधरती है विष और कीटाणुओं को नष्ट करता है। प्रस्वेद आकर ज्वर शमन हो जाता है।

गडुच्यादि क्वाथ—

गिलोय, मोथा, चिरायता, आंवला, छोटी कटेरी, सोंठ विल्वछाल, अरणीछाल, श्योनाक की छाल, पाढ़ल छाल, कुटकी गभारी की छाल, इन्द्रजी दुर्लभा जौकूट चूर्ण कर संपूर्ण मिलित २ तोले का यथाविधि क्वाथ कर पिप्पली चूर्ण तथा मधुका प्रक्षेप देकर सेवन करने से वात पित्त तथा कफजन्यज्वर, रात्रिज्वर, पुरातनज्वर, वातपित्तज्वर, वातकफज्वर तथा कफपित्तज्वर नष्ट होते हैं।

गोजिह्वादि क्वाथ—

गाजवां, मुलहठी, सोंफ, मुनक्का, अंजीर, उन्नाव, मुनक्का, अडूसा, जूफा, लसोड़ा, खूबकला, हंसराज, गुलबनफसा, अलसी, खतमी की जड़ और भटकटैया प्रत्येक द्रव्य समभाग ले उसमे आधा भाग काली मिर्च डाल यव खंड करलें। दशगुना जल में उबालें।

मात्रा—क्वाथ ४ तोला मिश्री या मधु २ माशा, दिन में २-३ बार

उपयोग—प्रतिश्याय, श्लेष्मज्वर, कास तथा श्वास में जमे हुए कफ को सरलता से निकालने के लिए यह स्वतंत्र रूप से तथा अनुपान रूप से काम में आता है।

ग्रन्थ्यादि क्वाथ—

पीपरामूल, इन्द्रजी कड़वा, देवदारु, वायविडंग, भारंगी, भांगरा सोंठ, काली मिर्च, पीपर, चित्रकमूल कायफल, पुष्करमूल रास्ना, हरड, बड़ी कटेली, छोटी कटेली अजवायन, जटामांसी, चिरायता, वच, चव्य, पाठा,

विधि—उक्त २२ द्रव्यों को समभाग मिला जौकूट करें

मात्रा—२०-२० ग्राम का क्वाथ, ३-३ घटे पर देवें।

उपयोग—कफप्रधान सन्निपात को नष्ट करने में श्रेष्ठ है। त्रिदोष से उत्पन्न लक्षण-बुद्धिभ्रंश, सर्वदेह शीतल हो जाना, मन्द-मन्द प्रलाप, उदरशूल, अफरा विद्रधि, कफप्रधान और वातप्रधान रोग तथा सूतिका रोग को भी दूर करता है।

घनचँदनादि क्वाथ—

मोथा, लालचंदन, पित्तपापड़ा, कुटकी अथवा काली मिर्च खस, पटोलपत्र, गन्धवाला, इनका क्वाथ करके मिश्री डालकर ठंडा होने पर सेवन करने मे ज्वर, वमन-पिपासा अरुचि तथा दाह नष्ट करता है।

चंदनादि क्वाथ—

लालचंदन, अनंतमूल, लोध, किशमिश समवजन २ तोले क्वाथार्थ जल ३२ तोले शेष क्वाथ ८ तोले। इस क्वाथ मे खांड मिला गर्भणी स्त्री को सेवन कराने से उसका ज्वर नष्ट होता है।

चंदनादि क्वाथ (पित्तोल्वण सन्निपात ज्वर)

रक्तचंदन, पद्मकाठ, कुटकी, पिठवन।
विधि—इन चार द्रव्यों का समभाग जौकुट चर्ण करें।
मात्रा—२ से ५ तोला दिन में २ से ३ वार
उपयोग—पित्तोल्वण सन्निपात ज्वर में देने से लाभ होता है इसका प्रयोग दाह को शान्त करता है।

चंदनादि क्वाथ (दाह)

चंदन, पित्तपापड़ा, खस सुगन्धवाला, नागरमोथा, कमल का फूल, सोंफ, धनिया, पद्मकाष्ठ और आँवला समभाग लेकर यथाविधि क्वाथ वनावें।

मात्रा—२॥ से ५ तोला तक मधु मिलाकर पिलावें। सव प्रकार का दाह शान्त होता है।

चातुर्भद्र क्वाथ—

चिरायता नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इन द्रव्यों को समान भाग ले जौकुटकर यथाविधि क्वाथ करलें।
मात्रा—३ से ५ तोला दिन में २ से ३ वार
उपयोग—वातपित्तोल्वण ज्वर शान्त होता है।

छिन्नादि क्वाथ—(विस्फोटक)

गिलोय, चिरायता, नीम की अंतरछाल, नागरमोथा, पटोलपत्र अड्साके पान, पित्तपापड़ा और खदिरकाष्ठ
विधि—इन आठ द्रव्यों को समभाग जौकुट चूर्ण करे
मात्रा—१० से २० ग्राम का क्वाथ प्रतिसमय वनाकर दिन में ३ वार देवें।

उपयोग—ज्वरहर, विपघ्न, कीटाणुनाशक है विस्फोटक ज्वर नष्ट होता है साथ ही शीतला के ज्वर में भी उपयोगी है।

छिन्नादि क्वाथ (जीर्णज्वर)—

गिलोय, नागरमोथा, चिरायता प्रत्येक २० ग्राम सोंठ ३ ग्राम छोटी कटेली मूल १० ग्राम।
विधि—उक्त औषधियों को मिला जौकुट चूर्ण करें।

मात्रा—१०से २० ग्राम का क्वाथ १ समय देवें। दिन दो वार प्रातः और सायं—तीन चार दिवस तक।

तगरादि कपाय—

तगर, आसगंध, पित्तपापड़ा, शंखपुष्पी, देवदारु, कुटकी, ब्राह्ममी जटामांसी, नागरमोथा, अमलतास का गूदा, छोटी हरड़, मुनक्का।

विधि—इन ११ द्रव्यों का सम भाग जौकुट चूर्ण करें।

मात्रा—१० से २० ग्राम का क्वाथ २-२घंटे पर ३–४ वार पिलावें।

उपयोग—सन्निपात में वात प्रधान, और पित्त प्रकोपक प्रलाप को दूर करने में अति हितावह है। यह कपाय मस्तिष्क पर शामक असर पहुंचाता है।

त्रायत्यादि क्वाथ (विद्रधि जन्य ज्वर)

त्रायमाण, हरड,वहेड़ा, आंवला, नीम की अंतर छाल, कुटकी, मुलैठी प्रत्येक १० ग्रामनिशोथ, परवल मूल, प्रत्येक ४० ग्राम, मसूर की दाल छिलके रहित ८० ग्राम सवका जौ कूट चूर्ण करें।

१०–१०ग्राम का क्वाथ कर थोड़ा घृत मिला प्रातः पिलावें।

उपयोग—उत्तम शोधक क्वाथ है। यह विद्रधि, गुल्म विसर्प, दाह, मोह, मद, ज्वर, तृषा, मूर्छा, वमन, हृदय रोग, रक्तपित्त, त्वचा के रोग और कामला को दूर करता है।

त्रायामाणादि क्वाथ (पित्त ज्वरें) यो. चि.—
त्रायमाण, पित्तपापड़ा खस, चिरायता, कुटकी, जवासा सम भाग जौ कूट चूर्ण कर यथाविधि क्वाथ करें। शहद का प्रक्षेप देकर पीने से पित्त ज्वर शान्त होता है।

त्रायमाण क्वाथ वृहत्—

त्रायमाण, पित्त पापड़ा इन्द्र जौ कड़वा, अडूसा, गिलोय, कुटकी चिरायता, पटोल पत्र, नीम की छाल, जवासा, अमलतास, पद्माख, पित्तपापड़ा

इन सव द्रव्यों को सम भाग जौकूट चूर्ण कर यथाविधि क्वाथ करें।

मात्रा—१–२ तोला का क्वाथ प्रायः एवं रात्रि को।

उपयोग—पित्त श्लेष्म ज्वर को नष्ट करता है।

त्रायमाणादि क्वाथ (पित्त ज्वर)

त्रायमाणा, मुलहठी, पिप्पली मूल, चिरायता, मोथा, हुए के फूल और बहेड़ा।

विधि—समभाग जौकूट चूर्ण कर यथाविधि क्वाथ करें। इस क्वाथ में खांड डालकर पित्त ज्वर में पिलावें।

त्रायमाणादि क्वाथ (विसर्प)

त्रायमाण, पटोलमूल, पित्तपापड़ा धमासा, कुटकी इन सब द्रव्यों को समभाग जौकुट चूर्ण करें।

मात्रा—बालक के लिए २ से ३ ग्राम और बड़ों के लिए १० से २० ग्राम रात्रि को ४गुने जल में भिगो सुबह उबाल छान शुद्ध गूगल-मिला पिलादें। आवश्यकता पर रात्रि को को भी दूसरी बार देवें।

उपयोग— सब प्रकार के एक त्रिदोषज, द्वन्दज, त्रिदोषज, और आग्नेय आदि पित्त तथा इसके लक्षण रूप ज्वर तथा विभिन्न उपद्रव आदि को दूर करता है।

तिक्तादि क्वाथ—

कुटकी, नागर मोथा इन्द्र जौ कड़वा, पाढा, कायफल सुगन्ध बाला, समभाग जौ कूट चूर्ण कर यथाविधि क्वाथ बना खांड मिलाकर पिलाने से आम दोष का पाचन हो हर पित्त ज्वर दूर हो जाता है।

तिक्तादि क्वाथ—

कुटकी, मोथा, तथा इन्द्र जौ (कडवा) के क्वाथ में शहद मिला कर पिलाने से पित्त ज्वर नष्ट हो जाता है।

त्रिवृतादि कषाय—

निशोथ सफेद, इन्द्रायण, की जड, हरड, बहेडा, आंवला, अमलतास का गूदा और कुटकी।

विधि—अमलतास को छोड़ सब द्रव्यों को समभाग जौकूट चूर्ण करें फिर अमलतास मिलावें।

मात्रा—१० से २० ग्राम का क्वाथ कर ५ रत्ती जवाखार मिला प्रातः काल पिलावे,

उपयोग—यह त्रिवृदादि कषाय मलावरोध, आम विष कफ आदि विकारों के हेतु से बने रहने वाले जीर्ण ज्वर को दूर करता है। जीर्ण ज्वर त्रिदोषज ज्वर और विषम [illegible] में उपयोगी है।

त्रिफलादि क्वाथ (कफ ज्वर)—

हरड, बहेड़ा, आंवला, पटोलपत्र, वासा, गिलोय, कुटकी, पिप्पली मूल, सब मिलाकर दो तोले। यथाविधि क्वाथ कर आधा तोला मधु का प्रक्षेप दे सेवन करें। इस से कफ ज्वर नष्ट होत है।

त्रिफलादि क्वाथ

हरड़, बहेड़ा, आवला, सेंमल की जड़, रासन और वासा इनका क्वाथ करके अमलतास का गूदा उसमें मसल सेवन कराने से वात पित्त जन्य ज्वर नष्ट होता है।

दशमूलादि क्वाथ—

दशमूल (बेल छाल, गम्भार, गनियार, सोना पाठा, पाढल शालपर्णी प्रश्नपर्णी, छोटी कटेरी, गोखरू,) रास्ना पीमर, पीपरामूल कूठ, सोंठ चिरायता, नग मोथा बला गिलोय, सुगन्ध काला, द्राक्षा, जवासा और सोया। सब द्रव्यों को समभाग जवकूट चूर्ण करें। यथा विधि क्वाथ बनावें।

मात्रा—ढाई से ५ तोला तक दिन में २ से ३ बार पिलावे। वात शलेष्म जल में पिप्पली चूर्ण का प्रक्षेप देकर। ज्वर के साथ विशेष कास होने पर चातुर्जात का प्रक्षेप देकर ज्वर के साथ विबन्ध हो तो त्रिवच्त् चूर्ण का प्रक्षेप देकर, श्वास कास के साथ पार्श्वशूल हो तो पुष्करमूल चूर्ण का प्रक्षेप देकर। ज्वर के साथ अतिसार हो तो सोंठ का प्रक्षेप देकर, मूत्र कृच्छ या मूत्राघात हो तो शिलाजीत और यवक्षार का प्रक्षेप देकर पिलावें। शोथ हो तो पुर्नवा के प्रक्षेप के साथ दें।

इसके प्रयोग से सोपद्रव वात ज्वर तथा कफ ज्वर नष्ट होता है।

दार्वादि क्वाथ—

देवदारु, पित्तपापड़ा, भारंगी नागर मोथा, वचा धनिया, कायफल, हरड, सोंठ, शुद्ध करंज बीज, समान भाग लेकर यव खंड कर यथाविधि क्वाथ बनावें। घृत में भुनी हींग २ रत्ती तथा शहद ६ माशे मिला पिलावें। २ से ४ तोला।

उपयोग—कफ वातोल्वण ज्वर, हिक्का, शोष, गल-ग्रह श्वास, कास, आदि नष्ट करता है।

दार्वादि क्वाथ—(यो० चि०)

दारु हल्दी, देवदार, इन्द्र जौ मजीठ, अमलतास, पाठ, कच्चूर, पीपल, खस, चिरायता, गज पीपल, त्रायमाण पद्माख, काकड़ा सींगी धनिया सोंठ, मोथा निशोथ पियावांसा, हरड, कटेरी पित्त पापड़ा कुटकी, जवासा गिलोय, पोंकर मूल इनका अष्टावशेष क्वाथ लेने से धातु गत ज्वर एकाहिक, द्वाहिन, त्रिदोप महा ज्वर, पित्त ज्वर प्रलापादि दूर होते हैं।

दास्यादि क्वाथ—

कट सरैया, देवदार, इन्द्र जौ, मजीठ, कालीस, पाठा, कचूर सोंठ, खस, चिरायता, गज पीपल, त्रायमाण पद्माख, अस्थि संहार, धनिया, सोंठ, मोथा, सरल काष्ट, सहजना, की छाल, गध वाला, बड़ी कटेरी, हरड छोटी कटेरी, पित्त पापडा, दर्भ मूल कुटकी अनंत मूल, गिलोय पुष्कर मूल। सब समभाग जौ कूट चूर्ण करें।

मात्रा—२ तोला क्वाथ को ३२ तोला पानी में उबाल ८ तोला रहे छान सेवन करावें।

उपयोग—धातुगत विषम ज्वर, सन्निपात ज्वर में एकाहिक ज्वर, द्वयाहिक ज्वर, कामज शोकज, तथा वीर्य युक्त ज्वर, क्षय ज्वर, सतत ज्वर, चातुर्थक ज्वर, एव भूत ज्वर में उपयोगी है। यह विशेषतया जीर्ण ज्वर में अत्यन्त हितकर है।

देवदार्व्यादि क्वाथ—

देवदारु, वच, कूट, पीपल, सोंठ, कायफल, नागर मोथा चिरायता कुटकी धनिया छोटी हरड़ गज पीपल छोटी कटेरी गोखरु धमासा बड़ी कटेरी अतीस गिलोय काकड़ा सींगी और काला जीरा। इन २० द्रव्यों को समान भाग लेकर जौ कूट चूर्ण कर लें और यथाविधि क्वाथ बनावें।

मात्रा—२ से४ तोला दिन में २ से ३ वार।

उपयोग—यह प्रसूता के सब प्रकार के (त्रिदोष) ज्वर आदि विकारों को दूर करता है। इसके प्रयोग से प्रलाप शूल कास श्वास दाह तृषा मूर्च्छा अतिसार आदि विकारें शान्त होते हैं। (नोट—क्वाथ में ४ रत्ती सेंधा नमक और आधी रत्ती हींग का प्रक्षेप देकर प्रसूता को पिलाना चाहिए।

द्राक्षादि क्वाथ—

द्राक्षा गडुची गंभारी की जड़ की छाल त्रायमाण व अनंत मूल सम भाग लेकर यथाविधि क्वाथ करें।

मात्रा—२ से ४ तोला दिन में दो वार।

क्वाथ में गुड़ का प्रक्षेप देकर पिवावें। इसके प्रयोग से वात ज्वर तथा पित्त ज्वर शान्त होते हैं।

द्राक्षादि फांट—

द्राक्षा हरड नागर मोथा कुटकी अमलतास का गूदा और पित्त पापड़ा सम भाग यव खंडकर यथा विधि क्वाथ करें। या फांट बनावें।

मात्रा—क्वाथ की दो से ४ तोला की फांट की ढ़ाई से ५ तौला दिन में २ या ३ वार आवश्यकतानुसार।

इसके प्रयोग से पित्त ज्वर नष्ट होता है पिपासा मुख शोष प्रलाप अन्तर दाह भ्रम तथा मूर्च्छा को करता है। यह रक्त पित्त में भी उपकार करता है।

द्राक्षादि कषाय—

मुनक्का (बीज रहित) खजूर नीम की अंतर छाल धान का लावा धमासा गंभारी फल पटोल पत्र वासा पत्र और आंवले। सम भाग जौकुट कर यथा विधि क्वाथ करलें।

मात्रा—२० ग्राम क्वाथ में ६ माशा मिश्री का प्रक्षेप देकर दिन मे २ या तीन वार देवें।

उपयोग—पैत्तिक और रक्तज मसूरिका को दूर करता है। मस्तिष्क को शान्त बनाता है तथा आम विषः दाह तृषा और व्याकुलता का भी निवारण करता है।

धान्यकादि क्वाथ—

धनिया मुलहठी रास्ना हरड द्राक्षा सोंफ गिलोय पित्तपापड़ा सब मिलाकर १ तोला सनाय १ तोला इनका क्वाथ करके खांड अथवा गुड़ आधा तोले प्रक्षेप करके पान करावें। घोर वात पित्त ज्वर को नष्ट कर देता है।

नागरादि क्वाथ—

सोंठ अतीस कड़वी नागर मोथा चिरायता गिलोय और इन्द्र जौ कड़ुआ। सम भाग मिला जौकुट चूर्ण करें।

मात्रा—१०-१० ग्राम का क्वाथ कर दिन में ३ वार पिलावें।

उपयोग—यह नागरादि क्वाथ दीपन पाचन ग्राही और ज्वरघ्न है। इसके सेवन से ज्वरातिसार सब प्रकार के नये ज्वर और सब प्रकार के अतिसार निवृत होते है।

निदिग्धकादि क्वाथ

छोटी कटेली की जड़ ताजी १०० ग्राम, गिलोय ताजी १० ग्राम, सोंठ ५ ग्राम जौकुट चूर्ण करें।

विधि—उक्त को २०० ग्राम जल में मिला क्वाथ करें फिर छान २०० मि.ग्रा पीपल का चूर्ण मिलाकर रात्रि को सोते समय पिलाने से जीर्णज्वर अरुचि, कास, शूल, श्वास, अग्निमान्द्य, अर्दित व पीनस आदि रोग नष्ट होते हैं। यह क्वाथ जत्रु से ऊपर होने वाले रोगों का नाश करता है।

मनोतर से रात्रि ज्वर में सायंकाल तथा अन्य ज्वरों में प्रातः काल इस क्वाथ का सेवन करना चाहिये। यदि पित्तप्रधान हो तो पिप्पली के चूर्ण के बदले मधु प्रक्षेप देना चाहिये। पुराने प्रतिश्याय में यह योग अत्यन्त लाभकर है।

निम्बादि क्वाथ—

१—नीम की छाल सोंठ गिलोय देववारु कचूर चिरायता पुष्कर मूल पीपर गज पीपर बड़ी कटेरी इन सबको समभाग लेकर जौकुट कर यथा विधि क्वाथ बनावें।

मात्रा—२ से ३ तोला दिन में २ से ३ वार

यह कफ ज्वर में अच्छा लाभ करता है।

३—नीम की अन्तर छाल पटोल पत्र धमासा श्वेतचंदन पित्तपापड़ा कुटकी आंवला रक्त चंदन पाठा खस अडूसे के पान। इन ११ द्रव्यों को समभाग मिला जौ कूट चूर्ण करें।

मात्रा—१०-१० ग्राम के क्वाथ कर छान कर ५ ग्राम मिश्री मिलाकर पिलावें दिन में तीन वार।

उपयोग—त्रिदोपज शीड़ला पित्त प्रधान तथा रक्त-प्रधान मसूरिका विपर्स ज्वर आदि को नष्ट करता है। इस क्वाक्ष से शीतला कालीन ज्वर जल जाता है। और उत्तान विष बाहर फेंक दिया जाता है। जिससे फफोले शीघ्र बैठ जाते है। अथवा सूख जाते है।

निशादि क्वाथ—

हल्दी सिरस की छाल श्वेत चंदन अतीस कड़ुआ दारु हल्दी नागर मोथा नागकेशर चौलाइ की जड़ खस लोध पठोल मूल

विधि—उक्त द्रव्यों का जौ कूट चूर्ण करें।

मात्रा—१०-१० ग्राम का क्वाथ कर छान फिर हल्दी और आंवले का कल्क खिलाकर ऊपर से क्वाथ पिलावें दिन में तीन वार।

उमयोग—यह निशादि क्वाथ मसूरिका विस्फोट विसर्प तथा वमन और ज्वर युक्त रोमान्तिका को दूर करता है।

पंच तिक्त क्वाथ—

छोटी कटेली की जड पुष्कर मूल चिरायता गिलोय और सोंठ। सम भाग जौ कूटकर चूर्ण करें।

तात्रा—१०-१० ग्राम का क्वाथ कर तिन मे तीन वार पिलावें।

उपयोग—आठों प्रकार के ज्वर नष्ट होते है।

पंचभद्र क्वाथ—

गिलोय पित्त पापड़ा मोथाचिरायता सोंठपांचों मिलाकर पंचभद्र कहलाता है। इनका क्वाथ वात पित्त ज्वर में देना चाहिए।

पंच मूली क्वाथ—

विल्व अरणी श्योनाक गम्भारी और पाढ़ल इन सबकी जड़ की छाल का क्वाथ वात ज्वर मे प्रयोग करन चाहिए।

पंच मूलादि क्वाथ—

शाल पर्णी पृश्नपर्णी छोटी कटेरी बड़ी कटेरी गोखरू गिलोय नागर मोथा सोंठ और चिरायता।

समान भाग लेकर खण्ड कर जौकूट चूर्ण बनावे ।

मात्रा—आधा से ५ तोला तक दिन मे दो वार ।

उपयोग—वात पित्त शामक आम पाचक विष हर तथा ज्वरघ्न है । इसका प्रयोग वाद पित्त ज्वर में होता है । यह दोनों को पका कर ज्वर को नष्ट करता है ।

पच मूल्यादि क्वाथ—

नागरमोथा खरेटी बेलगिरी गिलोय सोंठ चिरायता नेत्रवाला कुडेकी छाल इन्द्र-जौ प्रत्येक १ भाग पचमूल ५ भाग—सवको जव कूट चूर्ण कर यथाविधि क्वाथ करे ।

मात्रा—१०–१० ग्राम का क्वाथ कर प्रातः मध्याह्न सायं काल दिन में २ वार पिलावे ।

उपयोग—ज्वर और अतिसार दोनों को दूर करता एवं सर्व प्रकार के अतिसार ज्वर वमन उदर शूल प्रवल कास और श्वास आदि को दूर करता है ।

नोट—पित्त प्रधान होने पर लघु पंचमूल वात प्रधान होने पर वृहत पंच मूल का उपयोग करना चाहिए ।

पंचक्वाथ—

१. इन्द्र जौ, पटोलपत्र, कुटकी मिलित २ तोला, जल ३२ तोला शेष ८ तोला ।

२. पटोलपत्र अनंतमूल मोथा पाठा कुटकी मिलित २ तोला जल ३२ तोला । शेष ८ तोला

३. नीमछाल पटोलपत्र किशमिश हरड़ वहेड़ा आंवला मोथा इन्द्रजौ मिलित २ तोला जल ३२ तोला शेष ८ तोला ।

४. चिरायता गिलोय लालचंदन सोंठ मिलित २ तोला जल ३२ तोला । शेष ८ तोला

५. गिलोय, आंवला मोथा मिलित २ तोला जल ३२ तोला शेष ८ तोला ।

ये पांचो क्वाथ सतत संतत अन्येद्युष्क तृतीयक तथा चतुर्थक पांचों प्रकार के विषम ज्वरों को नष्ट करते हैं ।

पटोलादि क्वाथ—

१. पटोलपत्र लालचंदन मूर्वामूल पाठा कुटकी गिलोय इनका क्वाथ पित्तश्लेष्मज्वर वमनदाह कण्डू तथा [illegible]प को नष्ट करता है ।

२. पटोलपत्र नीमछाल हर[illegible]

[illegible]वला इनका क्वाथ पित्तश्लेष्म ज्वर मे प्रयोग किया जाता है ।

३. परवल के पत्ते हरड़ वहेड़ा आंवला तथा नीम की छाल के क्वाथ मे मधु का प्रक्षेप देकर रोगी को पिलाना चाहिए । इसके सेवन से कफ पित्त ज्वर छर्दि दाह तथा शूल शान्त होते है ।

४. पटोलपत्र गिलोय मोथा अडूसाछाल धमासा चिरायता नीमछाल कुटकी पित्तपापड़ा मिलित २ तोला पाकार्थ जल ३२ तोला । शेष ८ तोला । इस क्वाथ के पीने से मसूरिका के अपक्व दाने बैठ जाते है और पक्के सूख जाते है । विस्फोट ज्वर की शान्ति के लिए इससे वढकर अन्य औषध नही ।

५. परवल की पत्ती हरड़ वहेडा आवला नीम की अंतर छाल गिलोय नागरमोथा, सफेद चदन मूर्वा कुटकी पाठा हल्दी धमासा समभाग सव कूट चूर्ण करलें

मात्रा—२॥ से ५ तोला-शीतल होने पर दिन में दो वार । यह क्वाथ श्लेष्मज्वर कण्डु त्वचा के रोग विस्फोटक त्रिपजन्य विसर्प को नाश करता है ।

पटोलमूलादिक्वाथ—

पटोलमूल हरड आंवला वहेड़ा इन्द्रायन मूल प्रत्येक ४० ग्राम कुटकी त्रायमाण २०-२० ग्राम सोंठ १० ग्राम जौकूट चूर्ण करे ।

मात्रा—२० से ४० ग्राम का क्वाथ कर सुवह रोज पिलावे । सुवह २-३ दस्त होंगे ।

उपयोग—सव प्रकार के कुष्ठ, शोथ, ग्रहणी, अर्श हलीमक, हृदयशूल वस्तिशूल और विषम ज्वर आदि ६ रात्रि में निवृत हो जाता है ।

पथ्यादि क्वाथ—

हरड़, वहेडा, आंवला, हल्दी, गिलोय, चिरायता नीम की अंतर छाल समभाग जौकूट चूर्ण करे ।

मात्रा—१० से २० ग्राम का क्वाथ कर आधा तोला गुड़ मिला प्रातःकाल और आवश्यकता हो तो रात्रि को भी ।

उपयोग—उदर शोधक और शिर दर्द शामक है । भ्रू भाग में पीडा, शख भाग मे पीड़ा, कर्णशूल व नेत्रशूल, आधाशीशी, मस्तिष्कशूल आदि को दूर करता है । दीपन, पाचन, शूलहर और विषघ्न है । विषम ज्वर और जीर्ण ज्वर पर प्रयुक्त होता है ।

पर्पटकादिक्वाथ—

[illegible] तोले पाकार्थ जल ३२ तोले शेष ८ तोले इस क्वाथ को पीने से पित्त[illegible] शान्त हो जाता है ।

यदि पित्तपापड़े के साथ लाल चंदन, गधवाला और सोठ मिला कर क्वाथ किया जाय तो इसके सेवन से पित्तज्वर से में शीघ्र लाभ होता है।

२. पित्तपापड़ा, गिलोय तथा आंवला इनका काढ़ा पित्त ज्वर को नष्ट करता है।

३. पित्तपापड़ा, जायफल, कूट, खस, रक्त चंदन, सुगन्ध बाला, सोंठ, नागरमोथा, काकड़ासींगी और पीपल ये सब समभाग ले जौकुट कर यथाविधि क्वाथ करले।

मात्रा—३ से ५ तोला २ से ३ बार।

उपयोग—इसके प्रयोग से पित्तकफोल्वण सन्निपात ज्वर शान्त होता है यह तृष्णा, दाह, अग्निमान्द्य को नष्ट करता है।

४. पित्तपापड़ा, वासा, कुटकी, चिरायता, धमासा, प्रियंगु समभाग मिला जौकुट चूर्ण करें।

मात्रा—१० से २० ग्राम का चूर्ण दिन में २ बार लें।

उपयोग—पित्तप्रकोप और ज्वरहर है। तृषा, दाह रक्तपित्तयुक्त पित्तज्वर शमन होता है।

पाठादिक्वाथ—

पाठा, इन्द्रजौ, चिरायता, मोथा, पित्तपापड़ा, गिलोय इनके क्वाथ में सोंठ के चूर्ण का प्रक्षेप देकर सेवन करने से आमज्वरातिसार को हटाता है।

पारिजातक स्वरस प्रयोग

२ तोला पारिजातक के पत्तों के स्वरस में शहद मिलाकर पिलाने से सब प्रकार के विषम ज्वर तथा अन्य ज्वर भी नष्ट हो जाते हैं।

पाट सप्तक क्वाथ

पाठा, इन्द्रजौ कडुआ, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापड़, गिलोय सोंठ समभाग मिला जौकुट चूर्ण करें।

मात्रा—४० ग्राम का क्वाथ कर तीन हिस्से करें दिन में ३ बार पिलावें।

उपयोग—दीपन, पाचन, आम विनाशक, ज्वरघ्न और ग्राही है आम सह ज्वर और अतिसार दूर हो जाते हैं

भूनिम्बादि अष्टादश क्वाथ—

चिरायता, देवदारु, दशमूल की औषधियां, सोंठ, नागर मोथा, कुटकी इन्द्र जौ, धनिया, गजपीपल, समान भाग जौ कुट कर यथाविधि क्वाथ बना २ से ५ तोला दिन में २ से ३ बार।

उपयोग—सन्निपात ज्वर में उत्पन्न तंद्रा, प्रलाप कास, अरुचि, दाह मोह, श्वांसादि उपद्रव सहित ज्वर की शान्ति होती है।

नागर्यादिकषाय (कफज्वर)

भारंगी, नीम की अन्तर छाल, नागरमोथा, हरड़, त्रायन्ती, कुटकी, बच, सोंठ रास्ना, धमासा, पटोल, पाढल ब्राह्मी, पुष्करमूल, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गिलोय चिरायता, वासामूल, अतिविष, कालीमिर्च, पीपर, अरल, कूडा छाल, निशोथ, दारुहल्दी, इन्द्रायन हल्दी-कपूर, आवला, बहेड़ा, देवदारु। इन ३२ औषधियों को समभाग जौकुट चूर्ण करे।

मात्रा—१०-१० ग्राम का क्वाथ दिन मे ३ बार

अनुपान—उरस्तोय में तरलता गया हो तो नौसादर ३ रत्ती और यवक्षार ६ रत्ती। कफज्वर से शहद १ तोला पीपर ४ रत्ती निमोनिया और सन्नीपात मे अभ्रक और श्रृंगभस्म आधी आधी रत्ती इस क्वाथ मे अनुपान के रूप में दे।

उपयोग—कफ प्रधान त्रिदोषज ज्वर, तथा उसके लक्षण रूप श्वास, व्यास, अर्श, हृदयरोग, अर्दित मलावरोध आदि दूर हो जाते है। उरस्तोय से उत्पन्न पार्श्व शूल कफ-कास श्वास आदि को भी दूर करता है।

मधुकादि कषाय— (कफ ज्वर)

मुलहटी अमलतास का गूदा मुनक्का कुटकी हरड़ बहेडा आवला पटोल पत्र। समभाग मिला जौकुट चूर्ण करें।

मात्रा—१० से २० ग्राम का क्वाथ कर रात्रि को या सुबह पिलादें। अथवा दोनों समय दे।

उपयोग—आम युक्त पित्त ज्वर मे शोधनार्थ दिया जाता है। ३–४ घंटे में २–३ दस्त साफ आ जाता है फिर ज्वर शमन हो जाता है। नूतन ज्वर के समान मलावरोध होने पर जीर्ण ज्वर मे भी दिया जाता है।

मधुर ज्वरांतक क्वाथ—

रक्तचंदन खस धनिया नेत्र वाला पित्तपापडा नागर मोथा सोंठ सम भाग कूट चूर्ण करें २ से ३ तोले का क्वाथ दिन में ३ बार पिलावे।

उपयोग—पाचन, कीटाणुनाशक आम विष हर अमनशोधक और ज्वर शामक है। यह क्वाथ अकेले या लक्ष्मीनारायण या संजीवनी के साथ अनुपात से सेवन कराने से बिगड़े हुए रोगी सुधर जाते है। दबे या विलीन दाने जल्दी बाहर आ जाते है और बिना कष्ट मोतीदाने नष्ट हो जाते है।

अनेक रोगों में शीघ्र
लाभ करने वाली.
बिजली की मशीन
सिरदर्द
दांतदर्द
वातशूल
दाऊ मैडीकल स्टोर्स (अलीगढ़)
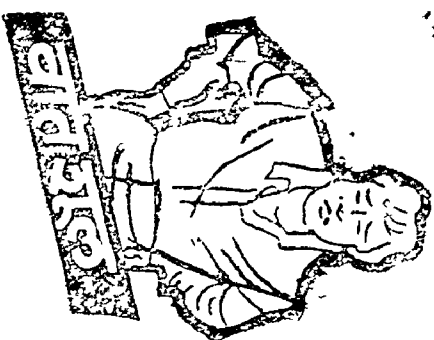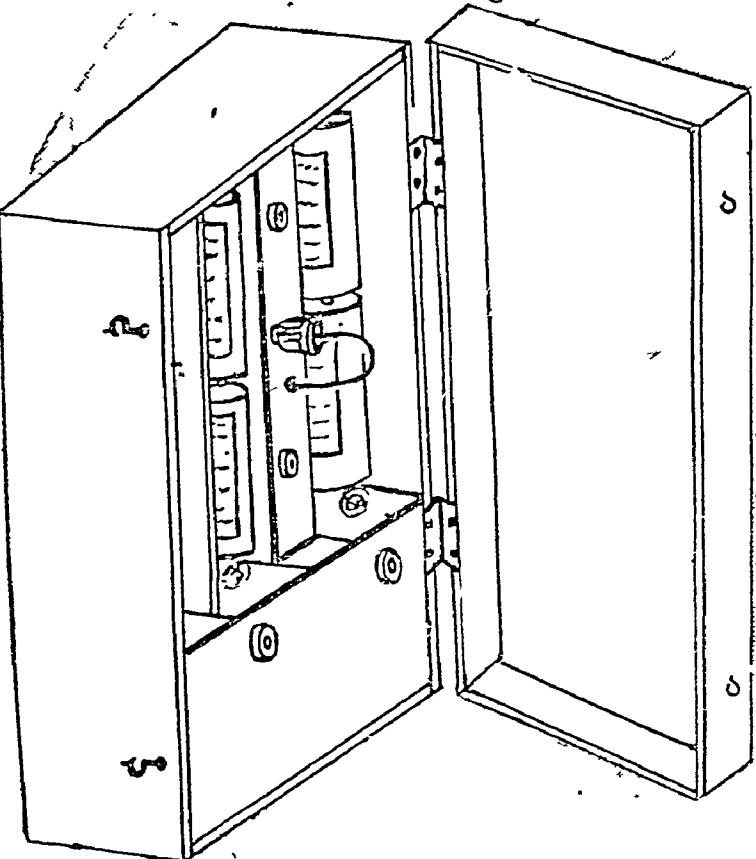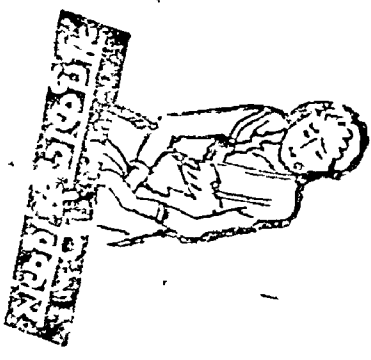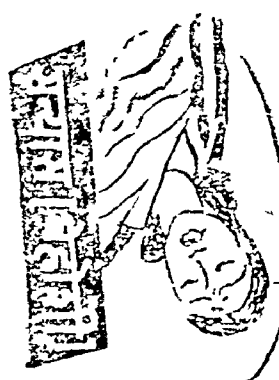
मरिच्यादि कषाय (कफ ज्वर)

कालीमिर्च, पीपरामूल, सोंठ, काला जीरा, पीपर, चित्रक मूल, कायफल, कूठ, नागरमोथा, वच, हरड़, छोटी कटेरी, जटामांसी, काकड़ासिंगी, अजवायन. नीम की अन्तरछाल। सबको समभाग मिला जौकुट चूर्ण करे। १०-१० ग्राम का क्वाथ कर दिन में ३ बार देवे।

उपयोग—कफ प्रधान ज्वर उपद्रव सह निवृत हो जाते हैं।

मुस्तादि क्वाथ

नागरमोथा, इन्द्रयव, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कुटकी तथा फालसा। समभाग जौकुट कर चूर्ण बना यथाविधि क्वाथ बनावें।

मात्रा— २ से ४ तोला दिन में २ से ३ बार।

उपयोग—यह कफज्वर में अच्छा लाभ करता है।

महाबलादि क्वाथ

सहदेई की जड़ तथा सोंठ के क्वाथ को २-३ दिन सेवन करने से शीत कम्प तथा दाहयुक्त विषम ज्वर नष्ट हो जाता है।

महौषधादि क्वाथ

सोंठ, गिलोय, मोथा, लाल चन्दन, धनिया सब मिला २ तोला। पाकार्थ जल ३२ तोला। शेष ८ तोला। प्रक्षेप-शर्करा तथा मधु मिश्रित आधा तोला। यह क्वाथ तृतीयक ज्वर में प्रत्यक्ष फल दिखलाता है।

योगराज क्वाथ

सोंठ, धनिया, भारङ्गी, पद्मकाठ, रक्त चन्दन, परवल की पत्ती, नीम की छाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुलहठी, बला, कुटकी, नागरमोथा, गजपीपल, अमलतास, चिरायता, गिलोय, दशमूल की औषधियां तथा कटेरी, इन सबको समान भाग में लेकर यव खण्ड कर ले। यथाविधि क्वाथ तैयार होने पर मिश्री मिलावे।

मात्रा—२ से ५ तोला दिन में २ से ३ बार।

उपयोग—सब प्रकार के सन्निपात में लाभप्रद है। त्रिदोषोल्वण सन्निपात में इसका प्रयोग होता है।

रास्नादि क्वाथ

(१) रास्ना, द्राक्षा, वच, हरड़, अजवायन, मुलेठी, सोंठ, इन्द्रयव, सोंफ, कुटकी तथा गिलोय, समभाग यवकुट चूर्ण करले। २ तोला क्वाथ को ३२ तोले पानी में पकावे। ८ तोला शेष रहे, शीतल कर छान लें। इसमें २ तोले मधु मिला अनेक बार में एक दण्ड के अन्तर से पीवें। ज्वर का सन्ताप दूर हो जाता है। वात ज्वर में विशेष उपयोगी है।

मात्रा—ढाई तोला। दिन में ४ से ६ बार।

(२) रास्ना, बंदाल, देवदारु, सरल, एलवालुक, सबको जौकुट कर यथाविधि क्वाथ करें।

मात्रा—२ तोले के क्वाथ में ३ तोले गुड़ तथा ३ ग्राम घृत डालकर पिलावें। इससे वातज्वर शान्त होता है।

रास्नादि दशमूलादि क्वाथ

रास्ना, सोंठ, वायविडङ्ग, एरण्डमूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, निशोथ काली तथा दशमूल (सब मिलाकर) जवकुठ कर यथाविधि क्वाथ करें।

मात्रा— २ तोले का क्वाथ दिन में दो बार पिलावें।

उपयोग—आमवात, अर्धावभेदक, आढ्यवात, अर्दित खंजवात, नेत्रशूल, शिरःशूल, ज्वर, अपस्मार तथा वात प्रधान मनोभ्रंश आदि पर हितावह है।

लवंगादि क्वाथ

लौंग १ माशा, कालीमिर्च ३ माशा, सोंफ, पोदीना, मुलहठी तथा गिलोय १-१ माशा मिलाकर ६ गुने जल में क्वाथ कर तीन हिस्से करें। दिन में ३ बार ३-३ माशे मिश्री मिला पिलाने से आम का पचन होकर स्वेद आ जाता है तथा वात प्रकोप उत्पन्न लक्षण शमन होकर ज्वर दूर हो जाता है।

रोहिषादि कषाय

रोहिष घास, धमासा, अडूसा, पित्तपापड़ा, प्रियंगू तथा कुटकी, समभाग यवखंड चूर्ण कर लें। फिर ६ तोले का क्वाथ कर तीन हिस्से कर दिन में तीन बार पिलावे। इस कषाय के सेवन से पित्तप्रकोपज उष्णता तथा न्यूमोनियां में होने वाला रक्तमय कफस्राव दूर होता है।

लोध्रादि क्वाथ

लोध्र, नील कमल, गिलोय, कमल तथा अनन्त मूल, इनके क्वाथ में खांड डालकर पिलाने से पित्तज्वर नष्ट हो जाता है।

वज्र क्वाथ

पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, अजवायन,

काला जीरा, हल्दी, दारु हल्दी, विड़ नमक, काला नमक, यथाविधि क्वाथ कर दिन में दो बार पिलावें।

उपयोग—जिस प्रसूता को अम्ल रस अनुकूल न रहता हो या ज्वर आता हो लाभप्रद है।

वर्धमान पिप्पली

आध सेर दूध में ४ गुना जल मिलाकर दूध शेष रहे, पर्यन्त मन्दाग्नि से पकायें। प्रथम दिन १ पिप्पली से आरंभ करके प्रतिदिन १-१ या ३-३ पिप्पली बढ़ाते जांय। इस क्रमशः दस दिन बढ़ायें। जो अधिक मिर्च खाते हों वे एक-एक बढ़ावे। पीपल को पीसकर दूध में मिलावें और चूल्हे पर रखकर उबाले। पानी जल जाने के बाद दूध मात्र शेष रहने पर उतार, शीतल होने पर पी जायें। दस दिन बढ़ाने के क्रम ही से क्रमशः कम करते जांय। इस प्रकार यह क्रम करने से विषम ज्वर शीघ्र पीछा छोड़ देता है, पचन क्रिया सुधर जाती है और शरीर बल की प्राप्ति हो जाती है। यदि सूखी खांसी हो जाय तो पीपल का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए।

वासादि कषाय

अडूसे के पत्र, छोटी कटेरी तथा गुडूची का क्वाथ, यथाविधि बनाकर मधु मिलाकर सेवन करने से कफ ज्वर में दोष का पाचन शीघ्र होता है।

विश्वादि कषाय

सोंठ, सुगंध वाला, पित्तपापड़ा, खस, नागरमोथा और रक्त चन्दन। यथाविधि क्वाथ बना, स्वांग शीतल होने पर पिलावें। ज्वर, तृषा, वमन और दाह नष्ट होती है। (ढाई से पांच तोला तक दिन में २-३ बार)।

विषम ज्वरांतक फांट

खूबकला ३ माशा, पीपल एक माशा, कालीमिर्च एक माशा, अजवायन डेढ़ माशा, कासनी ६ माशा, नीम के पत्ते २१ नग, वासा के पीले पत्ते ५ नग।

विधि—उपरोक्त सब औषधियों को मिलाकर पीसकर २ छटांक पानी में छान लें। फिर खूब गर्म किये हुये एक सकोरे में उसे छोड़ दें, ऊपर से दूसरा सकोरा ढक दें। फिर उसमें एक माशा काला नमक मिलाकर कुछ गर्म ही पीले। प्रतिदिन प्रातःकाल पीने से विकृत विषम ज्वर, जीर्णज्वर आदि नष्ट हो जाते हैं।

शठ्यादि कषाय

कचूर, हल्दी, दारुहल्दी, सोंठ, पुष्करमूल, छोटी इलायची, गिलोय, कुटकी, पित्तपापड़ा, घमासा, काकड़ासिंगी, चिरायता और दशमूल (सब मिश्रित) सबको समभाग जौकुट चूर्ण कर यथाविधि क्वाथ करें।

मात्रा—२ तोले क्वाथ को दिन में २ या ३ बार दें।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वरों को जो दिनों तक बने रहते हैं इससे निसंदेह दूर हो जाते हैं।

शृंग्यादि क्वाथ

काकड़ा सींगी, भारङ्गी, हरड़ छोटी, जीरा, पीपल, चिरायता, पित्त पापड़ा, देवदारु, वच, कूट कड़वा, जंवासा कायफल, सोंठ, नागर मोथा, धनिया, कुटकी, इन्द्र जौ कड़वा, पाठा, निर्गुण्डी बीज, गजपीपल, अपामार्ग जड़, पीपरामूल, चित्रक मूल, इन्द्रायण की जड़, अमलतास का गूदा, नीम की अन्तर छाल, कचूर, बीजबावची, वायविडंग, हल्दी, दारू हल्दी, अजवायन और अजमोद। समभाग मिला जौ कुट चूर्ण करे। यथाविधि क्वाथ बना प्रति मात्रा २ रत्ती हींग और डेड माशा अदरक रस का प्रक्षेप देकर दें।

उपयोग—अति घातक अभिन्यास, सन्निपात का नाश करता है एवं उसके तंद्रा, प्रमेह, कर्णशूल, हिक्का, श्वास, कास आदि उपद्रव नष्ट होते हैं।

सन्निपातिक क्वाथ

१. पीपरामूल, देवदारु, इन्द्र जौ, वायविडंग, ब्राह्मी, भांगरा, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, कायफल और कमल का कंद प्रत्येक समभाग मिला जौकुट चूर्ण करे।

मात्रा—२-२ तोले का क्वाथ दिन में तीन समय (आवश्यकता पर दो-दो घन्टे पर १-१ माशा शु. गुग्गुल मिला कर देवें)।

उपयोग—यह क्वाथ वात प्रकोप शामक है। इसके सेवन से सन्निपात के उपद्रव, शीत, प्रलाप, अति प्रश्वेद, शूल और कफ आदि (विशेष कर संधिक सन्निपात) सत्वर दूर होकर रोग निवृत हो जाता है। सूतिका ज्वर में भी अति हितकारक है।

२. रास्ना हरड, छोटी कटेरी, वड़ी कटेरी, निर्गुंडी पाठा, वच और चव्य सबको समभाग मिला जौकुट चूर्ण करलें।

मात्रा—२ तोले का क्वाथ कर तीन समय १-१ माशा शुद्ध गूगल मिलाकर देवे ।

उपयोग—सन्निपात में वात और कफ प्रकोप सत्वर शांत होते हैं । अति स्वेद आकर शीतल हो जाना, प्रलाप, उदरशूल, कंठ में से कफ की आवाज आना, श्वास का वेग बढ़ना, सूतिका रोग और आम ज्वर दूर होते हैं ।

सतत ज्वर नाशक क्वाथ

परवल की पत्ती, अनन्तमूल, नागर मोथा, पाठा, कुटकी । इन द्रव्यों को दो-दो तोले समान भाग में मिला, आधा सेर जल में पकावें । २ छटाक जल शेष रहने पर इसे छान कर पीलें । इससे सतत ज्वर नष्ट हो जाता है ।

षडंग पानीय

नागर मोथा, पित्तपापड़ा, उशीर, लाल चन्दन, सुगन्धवाला, शुण्ठी प्रत्येक १-१ तोला ।

सबका चूर्ण कर १ तोले दवा १ सेर जल में पकावे आधा शेष रहने पर छान कर थोड़ा-थोड़ा पिलावें ।

सप्तच्छदादि कषाय

सतौना की छाल, गिलोय, नीम की छाल, तेन्दु की छाल इनके क्वाथ को मधु सहित पीने से कफ ज्वर नष्ट होता है ।

स्वल्प भार्ग्यादि कषाय

भारङ्गी, मोथा, पित्त पापड़ा, धनिया, दुर्लभा, सोंठ, चिरायता, कुटकी, पीपल, बड़ी कटेरी और गिलोय का यथाविधि क्वाथ करें । जीर्ण ज्वर एवं सम्पूर्ण विषम ज्वरों का नाशक है ।

सहचरादि कषाय

(१) कटसरैया मूल, पुष्कर मूल, वेतस की जड़, विकन्त की जड़, देवदारु, कुलथी, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, सुगन्ध वाला समान भाग ले यथाविधि क्वाथ बना पिलावे । चार तोला दिन में २ से ३ बार ।

उपयोग—सूतिका ज्वर में इसके प्रयोग से शान्ति होती है और शूलादि विकार नष्ट होते हैं ।

(२) कटसरैया, मोथा, गिलोय, भादखेड़, सोंठ, गंध वाला के क्वाथ में मधु मिला पीने से शीघ्र सूतिका के ज्वर और शूल नष्ट होते हैं ।

(३) पियावासा, पुष्करमूल, वेंत के मूल, विकङ्कत, देवदारु, कुलथी । समभाग जौकुट कर चूर्ण करे ।

मात्रा—१० से ३० ग्राम का क्वाथ कर सेंधा नमक १ माशा और भुनी हींग २ रत्ती प्रक्षेप देकर पिलावे । सूतिका ज्वर, सन्निपात, मक्कल शूल, कटि वेदना आदि दूर करता है ।

सुदर्शनादि कषाय

महासुदर्शन चूर्ण १० ग्राम, काली मुन्नका बीज रहित ६ ग्राम, ताजी नीम गिलोय १० ग्राम, मुलहठी ६ ग्राम, अडूसे के पत्ते २० नग ।

मात्रा—एक किलो जल में भिगोकर क्वाथ करें । २५० ग्राम जल शेष रहने पर उतार मसल कर छान ले । इसके तीन हिस्से कर प्रातः, मध्यान्ह और रात्रि को दस-दस ग्राम शहद मिला पीवें ।

उपयोग—क्षय पीड़ितों के ज्वर, प्रधान जीर्ण ज्वर, उरःक्षत और मलावरोध दूर होते हैं । संग्रहीत कफ निकल कर ज्वर दमन होता है । रक्तस्राव रुक जाता है और उदर शुद्ध हो जाता है ।

सुरसादि फांट

तुलसी पत्र, भार्गी, वासा, छोटी कटेरी, मुलेठी, जंबीरी तृण, गोजिह्वा, सौंफ, कालीमिर्च समभाग यवकूट कर यथाविधि फांट बना रोगी को पिलावे ।

मात्रा—२॥ से ५ तोले दिन में २ या ३ बार मधु या खांड मिलाकर ।

उपयोग—प्रतिश्याय तथा तज्जन्यज्वर, शिरःशूल आदि ।

सुरसादि कषाय

तुलसी पत्र एक, वेलपत्र एक, गिलोय ६ माशा, कलंबी ३ माशा, मिश्री ६ माशा इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर दिन में २ बार पिलावे । वातश्लेष्मिक ज्वर में शारीरिक वेदना कम हो जाती है ।

सूतिकाज्वरहर कषाय

हरड़, बहेड़ा, गिलोय, मुलेहठी, आंवला, वच प्रत्येक ६-६ ग्राम, अफीम का डोडा एक ग्राम । जौकुट चूर्ण करे । पश्चात आधा किलो पानी में उबाले, चौथाई रहने पर छान ले । फिर दो हिस्से कर प्रातःकाल और रात्रि को पिलावे । प्रक्षेप रूप से गुड़ और हल्दी २-२ ग्राम मिलावे । यदि मलावरोध हो तो कुटकी भी मिला लेनी चाहिये ।

उपयोग—एक सप्ताह में प्रसूता की देह में लीन विष जल जाता है और आम का पचन हो जाता है । रक्त

—शेषांश पृष्ठ ३९९ पर देखें ।

प्रचलित एलोपैथिक औषधियां

डा० मधुकान्त मित्तल

यहां हम कुछ एलोपैथिक औषधियों के गुण धर्मों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं जो नित्य चिकित्सा कार्य में आती हैं।

सल्फा औषधियां (SULPHA DRUGS)

आधुनिक युग में सल्फा औषधियों का प्राधान्य रहा है। विभिन्न सल्फा औषधियां ज्वर, अतिसार आदि रोगों में काम में आती हैं। सल्फानिलामाइड इनका प्रधान घटक है। इनके निर्माण में विभिन्न रसायनिक प्रक्रिया निश्चित है। वैन्जिन गोलक (Benzine Ring) से एक हाइड्रोजन को हटा कर ऐमीन वर्ग को व्यवस्थित ऐमीनो वैन्जीन अथवा एनिलीन बनाई जाती है। इसके बाद वैन्जीन संगठन के दूसरे हाइड्रोजन को हटा कर सल्फोनिल स्थापित करते हैं। इससे सल्फानिलिक ऐसिड की प्राप्ति होती है। फिर जब सल्फानिलिक ऐसिड में मिलओं एच. को हटाकर ऐमीन वर्ग नामक रसायन तैयार होता है। इस औषधि को सल्फानिलामाइड कहते हैं। इस प्रकार सल्फानिलामाइडस तथा सल्फा कम्पाउण्ड आते हैं।

ये औषधियां जीवाणुओं का नाश कर इनकी संतति वृद्धि को रोकती हैं तथा भविष्य में पैदा नहीं होने देने की स्थिति लाती हैं। आजकल सल्फानिलेमाइड तथा सल्फा पाइरेडीन के स्थान पर सल्फाथायाज़ोल (Sulpha Thiazole) तथा सल्फाडायजीन (Sulpha Diazine) आदि प्रयोग की जाती हैं। इसका प्रयोग गोली के रूप में मुख से खाकर किया जाता है। कभी इसका सूचीवेध भी प्रयोग होता है। व्रण पर भी इसका चूर्ण लगाया जाता है। आवश्यकता होने पर इसे बार बार याने ४-४ घंटे से भी दिया जाता है। इस औषधि को लेने के बाद जल का प्रयोग अधिक करना चाहिए जिससे यह फूलकर रक्त में व्यापक रूप से मिल सके। यह औषधि मूत्र प्रणाली पर विपरीत असर कर सकती है अतः ध्यान से इसका प्रयोग करना चाहिए। इसका प्रयोग १ सप्ताह से अधिक नहीं करना चाहिये अथवा एक सप्ताह तक औषधि प्रयोग कर फिर इसे कुछ काल रोक कर फिर प्रयोग आवश्यकतानुसार करना चाहिए। त्रुटिपूर्ण प्रयोग से सिर चकराना, घबराहट, प्रसेक, वमन, शीतांगता, नाड़ी गति मन्द, मूर्च्छा त्वचा पर चकत्तों का निकलना, ज्वर वृद्धि आदि उपद्रव संभव हैं। सल्फा पायरिडीन भी इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में काम करती है।

श्वसनक ज्वर में सल्फाडायजीन युवावस्था वालों के लिये २-२ गोली ४-४ घंटों से प्रथम ३६ घंटों तक देवे। इसी प्रकार सल्फाथायजोल भी प्रयोग में लेवे। ५ वर्ष वालों के लिये आधी-आधी गोली इसी अवधि से देवें। तीन वर्ष की आयु वालों के लिए चौथाई-चौथाई गोली ४-४ घंटे से दें। इससे छोटी वय वालों के लिये इसी अनुपात से औषधि व्यवस्थित करें।

सूतिका ज्वर में—प्रथम २४ घंटे में १-१ गोली २-२ घण्टे से दें। फिर १-१ गोली ६-६ घंटे से, तदन्तर २४ घंटे तक मृदु प्रकृति वालों के लिये उचित व्यवस्था करें। इसके सिवाय ये औषधियां माल्टा ज्वर, फीलपाव, सौपुम्निक ज्वर में भी दी जाती हैं।

सौपुम्निक ज्वर में भी ये औषधियां काम करती हैं परन्तु इस घातक रोग में इसका सूचीवेध दिलाना पड़ता है। इन्जेक्शन के रूप में इनका नाम सल्फाडायजीन सोडियम साल्ट है।

इस ग्रुप में अलग अलग कम्पनियों ने अपने नाम से कुछ भिन्नता से औषधियां बनाई है जिनमें कुछ जो ज्वर के काम आती हैं इनके नाम ये हैं—

१—सल्फा निलामायड। २—सल्फा सिटामायड सोडियम। ३—सल्फा पायरिडिन। ४—सल्फा डायमिडीन। ५—सल्फा सोमिडीन। ६—सल्फा मेराजीन। ७— सल्फा मेथाक्सीन।

उपरोक्त औषधियां अकेली या मिश्रित—दो-तीन के मिश्रण से अधिक प्रभावशाली मानी गई हैं।

पैनसलीन (PENICILLIN)

आज के युग में जीवाणुनाशक औषधियों (Antibiotics) में यह प्रमुख औषधि है। एक समय था जब इसका आविष्कार चिकित्सा जगत में एक वरदान समझा जाता था। इसके आविष्कार की पृष्ठभूमि पाठकों को रुचिकर प्रतीत होगी इस दृष्टि से यह संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। सन् १९२८ में लन्दन के सेन्ट मैरी अस्पताल में डाक्टर सरअलेग्जेण्डर फ्लेमिंग द्वारा अपनी प्रयोगशाला में कुछ परख नलियों में स्टेफिलोकोकस जीवाणुओं का परिवर्धन किया जारहा था। एकदिन उन्होंने एक परखनली में कुछ फफूंदी देखी जहां ये जीवाणु नष्ट हो गये तथा उनकी वृद्धि भी रुक गई। यह देखकर फ्लेमिंग ने अनुभव किया कि इस फफूंदी में कोई ऐसा तत्व है जो इन जीवाणुओं को नष्ट कर सकता है। फ्लेमिंग ने और भी प्रयोग इस दिशा में किये जिससे उनकी यह धारणा और पुष्ट हुई।

कालान्तर में सन १९४० में आक्सफोर्ड प्रयोगशाला में डा• फ्लोरे तथा उनकी टीम ने इसी आधार पर इस चमत्कारी औषधि का निर्माण कर लिया और प्रयोग किया। संसार के अन्य वैज्ञानिकों ने भी इस निर्माण को स्वीकार किया। द्वितीय महायुद्ध में इस औषधि का प्रयोग किया गया और इसके चमत्कारों के प्रति संतोष व्यक्त किया गया। फलस्वरूप इस औषधि का प्रयोग आमतौर पर होने लगा।

यह औषधि निम्न जीवाणुओं को प्रभावित करती है तथा अन्य प्रकार के जीवाणु इससे अप्रभावित रहते है—

प्रभावित—स्टेफिलोकोकस ओरस, स्टेफिलोकोकस इपिडर्मिक, स्टेफ्लोकोकस हीमोलिटिक, स्टेफ्लोकोकस, न्यूमोकोकस, गोनोकोकस, मैनिंगो कोकस, माइक्रोबेक्टीरियम केटारलिस, बेसिलस एन्थ्रेसिस, कोनिबेक्टोरियम डिफथीरिया, माइक्रोकोकाई (वायु के), सारिसिना, एक्टीनोमाइसिस, बेसीलियम टिटेनी, स्पाइरोंकीट्स, वेलची, सेप्टिक, एडीमा, बेसीलस मारेक्स एक्सनफील्ड।

अप्रभावित—राजयक्ष्मा के जीवाणु, टाइफाइड के जीवाणु, आंतों के जीवाणु, अतिसार के जीवाणु, कालरा के जीवाणु, बी. कोलाई, बेसिलस पायोसाईनस बेसिलस प्रोटियस, बेसिलस फ्रीडलेण्डर, वायरस रोग (चेचक, रोमान्तिका आदि), गर्भपातक जीवाणु, मेलीटेन्सिस, पेश्चेरूला।

इस औषधि का प्रयोग सूचीवेध द्वारा होता है। इसके प्रतिगामी प्रभाव भी देखे गये है अतः पूर्ण सतर्कतापूर्वक इस औषधिका प्रयोग करना चाहिये। यह औषधि वटी, मल्हम आदि में भी प्रयोग आती है। सोडियम तथा पोटेशियम योग इसमें रहते है। इसका प्रभाव ५ से ७ घंटे तक रहता है अतः इसे इस अन्तर से बार बार लगना आवश्यक है। पेनसलीन का एक अन्य योग प्रोकेन पैनसलीन बनाया गया जिससे प्रोकेन पानी में घुलनशील न होने से इसका प्रभाव अधिक समय तक रहता है। घुलनशील सूची का प्रभाव २४ घंटे तक रहता है।

अन्य योग डाईक्रिस्टसिन होता है। इसमें स्ट्रेप्टोमाइसीन भी मिश्रित होता है अतः दोनों ही द्रव्य अपने अपने क्षेत्र में संयुक्त रूप से प्रभाव करते है।

स्ट्रेप्टोमायसिन—

यह औषधि राजयक्ष्मा के कीटाणुओं को नाश करने में समर्थ है। यह भी Anti biotics श्रेणी की औषधि है। चिकित्सक रोगी तथा रोग के बलाबल के अनुसार ही परीक्षण कर इस औषधि की मात्रा निर्धारित करे। सामान्यतः युवा मनुष्यों में इसकी मात्रा ६ से १२ लाख यूनिट है। रोग बलानुसार इससे अधिक भी हो सकती है। यह औषधि २४ घंटे तक अपना प्रभाव कायम रखती है अतः इसके बाद इसका पुनः प्रयोग करना आवश्यक है। यह मांसपेशीगत सूची ही प्रशस्त है। मस्तिष्क प्रदाह में जब तरल मस्तिष्क में अधिक संचित हो जाता है तब इसका अन्त.कंचुकी सूचीवेध देना पड़ता है। १५००० से ६० हजार तक इसकी मात्रा ५-१० मिलि० सैलाइन द्रव में देना निरापद है।

क्लोरोमायसिटिन (क्लोरमफ़ेनीकोल)—इस औषधि का निर्माण स्ट्रेप्टोमाइसे वेनेफुले नामक द्रव्य से हुआ है। परन्तु इसे कृत्रिम रूप से भी निर्माण किया जारहा है। इस औषधि का मुख्य प्रभाव आंत्रिक ज्वर के कीटाणुओं पर पाया जाता है। इसका उपयोग टाइफाइड, वायरस तथा न्यूमोनियां पर भी होता है। इसका प्रयोग मुख द्वारा किया जाता है। कैपसूल के रूप में इसका पाउडर आता है। इसका प्रयोग भी रोग तथा रोगी के बलाबल के अनुसार ही किया जाता है।

इस औषधि का आचूषण आमाशय से होता है और निस्सरण शीघ्र ही होता है। अतः इसका प्रयोग भी ४-४ घन्टे से किया जाता है। इसकी अल्प मात्रा शरीर में प्रभाव करती है शेष मूत्र द्वारा या अन्य रास्तों से बाहर आ जाती है। .२५ ग्राम की मात्रा प्रभाव करती है। ज्वर उतरने के बाद इस औषधि की मात्रा धीरे-धीरे कम कर दी जाती है और अन्त में २४ घन्टे में दो या एक कैपसूल देकर बन्द करवा दी जाती है। इस औषधि के साथ विटामिन 'बी' कम्पलेक्स देना आवश्यक होता है।

फिनेसिटीन—यह तापमान कम करने वाली औषधि है इसकी मात्रा ५ ग्रेन से १० ग्रेन तक की होती है। ज्वर को पसीना लाकर कम करती है। इस औषधि का प्रभाव सीधा तापमान केन्द्र पर ही पड़ता है। यह हृदय पर कुप्रभाव करती है अतः इसका प्रयोग ध्यान रखकर करना चाहिये। गात्र पीड़ा को भी यह औषधि कम करती है।

एस्परीन—यह औषधि भी गात्र पीड़ा तथा ज्वर के तापमानको कम करती है। यह सैलिसिलिक एसिड का योग है। इसकी मात्रा .५ से १ ग्राम तक होती है। यह भी वटी, पाउडर तथा शर्वत के रूप में बनाई जाती है। यह एक औषधि तथा अन्य औषधियों के साथ भी इसका प्रयोग होता है। अनुचित उपयोग से यह औषधि अपचन, जलन, शूल, आमाशय से रक्तस्राव कर देती है। अतः इसका प्रयोग भी समझकर करना चाहिये। यह औषधि भी हृदय पर विपरीत प्रभाव डालती है। यह शिरःशूल, सन्धिवात, आमवात आदि पर भी प्रभाव करती है। डंडक ज्वर में इसका प्रयोग पीड़ा शान्ति के लिये किया जाता है। हृदय पर कुप्रभाव से बचने के लिए इसका प्रयोग कैफीन के साथ किया जाता है। उपरोक्त दोनों ही औषधियों के साथ कैफीन मिला कर सुप्रसिद्ध ए.पी.सी. मिश्रण तैयार किया जाता है जो ज्वर, सन्ताप को हल्का करने तथा पीड़ाशमन करने में उत्तम कार्य करता है।

एनेल्जिन—वेदनाहर औषधियों में यह औषधि आज बहु प्रचलित है। यह Analgesic है। इसकी .५ ग्राम की टिकिया बाजार में उपलब्ध हैं। मात्रा—१-२ टिकिया है। अन्य नामों से भी कुछ टिकियायें प्राप्त होती हैं जो एनेलजेसिक होती हैं जैसे नोवाल्जिन आदि।

कोडोपायरीन—

यह भी टेबलेट के रूप में उपलब्ध होती है। इसमें कोडीन भी होता है। इसकी मात्रा भी १-२ गोली ही है। ज्वर को कम करने, वेदना शमन करने में इसका प्रयोग होता है। इसी श्रेणी में एन्टीपायरिक औषधियां जैसे मेटासीन, अल्ट्राजीन, क्रोसीन आदि उपलब्ध हैं जो ज्वर के ताप को नीचे उतार देती हैं।

टेट्रासाइक्लीन—

इसी औषधि में ओरियोमाइसीन, टेरामाइसीन और माइस्टेक्लीन शामिल हैं। केपसूल, इन्जेक्शन आदि के रूप में प्राप्त है। इनमें ओरियोमाइसीन सब प्रकार के न्यूमोनिया, पुनरावर्तक ज्वर तथा स्ट्रेप्टो स्टेफिलो-कोकाई से उत्पन्न ज्वरों में लाभदायक है। तथा टेरामाइसीन. फैफड़ों के रोग, आमाशय के रोग तथा अन्य संक्रामक रोग में लाभ करती है। तीसरी दवा माइस्टेक्लीन वी. न्युमोनिया, सूतिका ज्वर, गर्भाशय दोष जन्य ज्वर, मस्तिष्कावरण प्रदाह में उपयोगी है।

ये सभी औषधियां विभिन्न कम्पनियां विभिन्न नामों से बनाती हैं तथा गोली, केपसूल, सूची, मल्हम तथा पेय आदि के रूप में प्राप्त होती हैं। अनावश्यक प्रयोग से ये औषधियां हानि भी कर देती हैं। मियाद खतम होने के बाद की औषधि लेना भी प्राण लेवा है। जहां ये लाभ करती हैं वहां अनावश्यक प्रयोग से हानि भी कर देती है। ऐसा होने पर दवा तुरन्त ही बन्द कर दीजिये और लिक्विड एड्रीनलीन हाइड्रोक्लोराइड १:१००० की मात्रा में मांसगत सूची लगाइये। हिस्टाडाइल आदि सेवन कराइये। घबराहट में गार्डिनल की गोली देवे। दुर्बलता में Vitamin B. देवें।

क्वीनाइन—

अमेरिका में सिंकोना नामक वृक्ष की छाल का सत्व होता है। इसका प्रयोग चूर्ण, गोली, पेय तथा सूची द्वारा

होता है। मलेरिया की यह अमोघ औषधि मानी गई है। इसकी मात्रा ५-१० ग्रेन तक है। यह औषधि तिक्त रस प्रधान है। यह मलेरिया ज्वर को रोकती है। यह उष्ण वीर्य औषधि है जो दाह उत्पन्न करती है। नीबू तथा दूध इसके दर्प को कम करते हैं। गर्भवती स्त्री पर इसका प्रयोग निषिद्ध है। यह गर्भपात करा देती है। ज्वर की उग्रावस्था में इसे एस्परीन के साथ दिया जा सकता है इससे ज्वर उतर जाता है तथा पुनः आक्रमण को रोकती है। मस्तिष्कगत विषम ज्वर में इसे ग्लूकोज के साथ मिलाकर शिरान्तर्गत सूची दी जाती है।

क्वीनीन में अन्य औषधियां मिलाकर अनेक योग बनाये जाते हैं। क्विनीडोन सल्फास योग ज्वर के साथ हृदय विस्तृति में लाभ करता है।

अन्य मलेरिया की औषधियों में मेपाक्रीन, पैलूड्रीन, केमोक्वीन, रोसाचीन, नीवाक्लीन आदि ली जा सकती है। ज्वर उतारने को क्रोसीन, मेटासीन, अल्ट्राजीन आदि लें।

अब हम कुछ योग निरोधक वैक्सीन (टीके) का उल्लेख कर देना उचित समझते हैं जो ज्वरों में उपयोगी है। ये मानव देह में जाकर रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं तथा रोगों के कीटाणुओं को निष्क्रिय तथा निर्बीज कर देते हैं।

(१) वेक्सीन टाइफो पैराटाइफोसम (ए. एट. वीवी. पी. टी. ए. वी.)। इसकी प्रथम मात्रा ·२५ मिलि. की देकर ७–२८ दिन वाद पुनः ·५ मिलि. दे।

(२) टी. ए. वी. सी,—अन्तस्त्वक् सूची। आरम्भिक मात्रा—·२५ मिलि. तथा द्वितीय मात्रा ७–२८ दिन की अवधि वाद ·५ मिलि. (सुरासम्पादित)।

(३) प्लेग वेक्सीन (वैक्सीनम पैल्ट्रीन)–प्लेग जीवाणुओं द्वारा निर्मित। मात्रा–प्रथम ·५ मिलि. और द्वितीय ७-२१ दिन वाद १ मिलि.।

(४) एन्टी माइरल मीरा—रोमान्तिका, कर्णमूल शोथ, जर्मन रोमान्तिका पर उपयोगी है। मात्रा औषधि पर निर्देशित है जो शरीर भार पर निर्धारित की गई है।

(५) मसूरिका वेक्सीन—यह मसूरिका पर लाभदायक है। ज्ञात हुआ है कि मलेरिया पर भी कोई टीका प्रारम्भ किया जा रहा है जो अभी प्रयोगाधीन है।

(६) बी सी. जा.—यह क्षयके निरोध के लिये दिया जाता है। इसकी मात्रा तथा अवधि भी निर्धारित है।

उपरोक्त टीकों के सिवाय भी अन्य टीके अनुसन्धान पथ पर है। अतः इन पर विचार नहीं किया जा रहा है।

ज्वर रोगोपयोगी शास्त्रीय योग विवेचन : : पृष्ठ ३९५ का शेषांश

प्रसादन होता है। वात प्रकोप शान्त हो जाता है। ज्वर, कास, शिरदर्द, अपचन, हाथ पैरों में शून्यता, नाड़ियों का खिचाव और पांडुता आदि लक्षण दूर हो जाते है।

सूतिका दशमूल कषाय

शालपर्णी पृश्नपर्णी छोटी कटेरी बड़ी कटेरी गोखरू नीले फूल का पियावांसा गन्ध प्रसारणी सोंठ नागरमोथा गिलोय। दस से बीस ग्राम का क्वाथ कर प्रातः-रात्रि को पिलावे। दाह सह ज्वर को शमन करता है। वमन अतिसार श्वास आदि उपद्रवों को नष्ट करता है। आमविष एवं गर्भाशय विष को जला देता है।

स्वल्पभार्ग्यादि कषाय

भारङ्गी मोथा पित्त पापड़ा धनिया दुर्लभा सोंठ चिरायता कूठ पीपर बड़ी कटेरी गिलोय इनका क्वाथ जीर्ण ज्वर तथा सम्पूर्ण विषम ज्वरों का नाशक है

ह्रीवेरादि कषाय

गन्धवाला, नीलोत्पल धनिया रक्त चन्दन मुलहठी गिलोय खस निसोत सत्व का जोकुट चूर्ण २ तो. यथाविधि क्वाथ बना खांड या शहद मिला देने से ज्वर दाह तृष्णा और रक्तपित्त शान्त होते है।

क्षुद्रादि कषाय

कटेरी की जड़ गिलोय सोंठ पुष्कर मूल प्रत्येक ३-३ माशे लेकर जौकुट चूर्ण कर एक पाव पानी में क्वाथ करे। एक छटांक शेष रहे उतार छान शहद मिला दिन में २-३ वार आवश्यकतानुसार पिलायें।

उपयोग—कफवातज्वर श्वास कास अरुचि पार्श्वशूल युक्त ज्वर, श्लैष्मिक ज्वर आदि विकार नष्ट होते है।